April to June 2026
E-Journal
Volume I, Issue LIV (54)

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Scientific Journal Impact Factor -8.054
ISO 9001:2015 (QMS) : E2024049304
(Quality Management Systems)

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

Index

01. Index 02

02. Regional Editor Board / Editorial Advisory Board 08/09

03. Referee Board 10

04. Spokesperson 12

05. Medicinal Applications of *Lagenaria siceraria* Leaf Extract: A Qualitative Analytical Study (Dr. Akhilesh Chandra Verma) 14

06. In The Shade of Tagore's Groves and Chopin's Waters: Ecocritical Reflections (Shivashree Chail) ... 18

07. Organic Mulching-Physical Properties and Adoption in Nimar Region (Kumud Dubey, Avinash Dube) . 22

08. A Legal Critical Analysis on Gender Based Relgious Violence (Dr. Shubham Bhatt) 24

08. Aesthetic Beauty in Sundar Kand: A Literary and Spiritual Study (Dr. Sehba Jafri) 31

09. Baratiya Model of Gram Swaraj (Anushka Shrivas) 33

10. Medicinal Value and Critical Analysis of Mango Kernel (Mangifera indica Seed): A Brief Study (Dr. Akhilesh Chandra Verma) 35

11. Impact of a Three-Month Yogic Intervention on State Anxiety and Concentration Levels Among State and National Level Adolescent Athletes (Khomeshswari Sahu, Dr. Malati Bag) 40

12. यमदीप: किन्नरों के संघर्ष की कथा (निकिता बोहिदार) 44

13. भारत और जर्मनी में किशोर अपराध पर एक कानूनी आलोचनात्मक विश्लेषण पहलू (मोहित श्रीवास्तव, डॉ. योगेश वामंकर) 46

14. कोरोना महामारी का अभिभावकों पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, नरसिंहपुर जिले की जनपद पंचायत साईंखेड़ा के संदर्भ में (इन्द्रेश कुमार कोष्टा) 51

15. महिला सशक्तिकरण में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन (विजय लक्ष्मी जोशी) 55

16. तुलनात्मक अध्ययन पद्धति : स्वरूप, विकास, महत्व एवं साहित्यिक अनुसंधान में उपयोगिता (महीपाल दान) 58

17. The Benefits of Physical Activity on Mental Health (Dr. Sonali Singh) 60

18. वर्तमान समय में सोशल मीडिया का सामाजिक सम्बन्धों, मानसिक स्वास्थ्य और राजनीतिक व्यवहार पर प्रभाव (डॉ. बरखा घावरी) 63

19. Live-In Relationships in India: Social and Political Perspective (Dr. Karunendra Kumar) 66

20. Tribal Agriculture and Millets Production in Madhya Pradesh: Sustainable Practices and Future Prospects (Dr. Vikram Singh Gehlot) 72

21. Emerging Patterns of Cybercrime and Preventive Strategies (Sarvesh Kumar) 77

22. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य में आदिवासियों की सांस्कृतिक अस्मिता का अंतर्संबंध (छबीलाल सिदार, डॉ. आँचल श्रीवास्तव) 82

23. बीकानेर जिले की सांस्कृतिक धरोहर और पर्यटन विकास : स्थापत्य, लोककला एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण (राजेश स्वामी, डॉ. नरेंद्र सिंह राणावत) 86

24. Revisiting Indian Knowledge System in Contemporary Contexts (Dr. Radhashyam Dey) 90

25. A Legal Critical Analysis of Wildlife Protection Act Towards the Environment System in India (Dr. Bhagat Singh Thakur) 94

26. Virtual Reality Therapy: Revolutionizing Mindfulness and Anxiety Management in Modern Counselling (Dr. Nitu Minz) 99

27. मरुस्थल क्षेत्र (पाली जिले) में ग्रामीण क्षेत्र में विकास की समस्या– एक भौगोलिक अध्ययन (ओम प्रकाश) 103

28. महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध: कारण एवं निराकरण (रविना कोचे, डॉ. पूजा तिवारी) 106

29. **Environmental Effects of Industrial Development in Selected Industrial Region of Bilaspur District (Dr. Kajal Moitra, Dipak Mandal)** 108

30. रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन (मनोहर दान) 112

31. **Green Infrastructure as a Strategy for Enhancing Urban Climate Resilience: A Literature Review (Ankita Pandey)** 116

32. दक्षिण राजस्थान में अनुसूचित जाति एवं जनजाति महिलाओं की सामाजिक एवं विधिक स्थिति (राकेश पालीवाल, डॉ. विनीता व्यास) 121

33. आधुनिकता के प्रभाव में लोकगीत, लोकपरंपराएँ एवं पर्यावरण संरक्षण : भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन (संदीप शर्मा, डॉ. उषा वैद्य) 125

34. आदिवासी परिवारों की महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक भूमिका (डॉ. राकेश कुमार चौहान) 127

35. किन्नर विमर्श की अभिव्यक्ति और अस्मिता : यमदीप उपन्यास के संदर्भ में (डॉ. गोविन्द नाएक) 129

36. भारत में साइबर अपराध और साइबर सुरक्षा : उभरते खतरे और चुनौतियां (डॉ. आभा सैनी) 133

37. बालिका स्वच्छता एवं स्वास्थ्य संरक्षण: मध्य प्रदेश के शासकीय विद्यालयों में गुणवत्ता सुधार का एक व्यवहारिक मॉडल (श्रीमती संगीता सक्सेना) 137

38. **Globalization and Sustainable Development (Dr. Sarojini Topno)** 140

39. **Fake News and Its Impact on Democratic Processes (Dr. Sudha Silawat (Retd.), Dr. Tripat Chawla (Retd.), Aditya Vikram Singh)** 142

40. ग्रामीण भारत में पलायन और उसके सामाजिक परिणाम : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (पंकज कुमार मीणा) 150

41. डिजिटल भारत और ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रविन्द्र सिंह राव) 154

42. **Problems Associated with Trend of Late Marriage : A Theoretical Analysis (Mitali Sen)** 158

43. पर्यावरणीय परिवर्तनों का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. मीनाक्षी तिवारी) 164

44. योग अभ्यास का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति पर प्रभाव (जसवंत मेनारिया, अल्पना सुखवाल) 166

45. डिजिटल युग के वैवाहिक सम्बंधों में संवादहीनता और अलगाव : मोहन राकेश के सन्दर्भ में (गीता कुमारी, डॉ.(प्रो.) अनुपमा सक्सेना) 169

46. शहीद करतार सिंह सराभा: गदर आंदोलन के महानायक और भगत सिंह के वैचारिक गुरु (डॉ. अमित कुमार ताम्रकार) 174

47. **Rights of Trees and Forests: A Commerce Perspective on Natural Capital, Environmental Governance, and Global Biodiversity Goals (Anant Kumar Garg)** 178

48. सवरा (सौरा) जनजाति में विजय दिवस : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष सन्दर्भ में (छन्नू कुमार मेरावी, डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक) 187

49. जैसा खाए अन्न वैसा हो मन व्यक्तिगत पोषण की शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में भूमिका (डॉ. कपिला बाला पांचाल) 190

50. **Graph Theory: From Euler's Foundations to Modern-Day Applications (Dr. Meenakshi Salviya (Rawal))** 192

51. **Cultural Integration of Afghan Refugees in India (Mohammad Ali Irfan, Dr. Virendra Singh)** 195

52. **Dr. A.P.J. Abdul Kalam's Vision and Contributions Towards Viksit Bharat (Sumit Kumar, Richa, Garima Rathi)** 204

53. पंचायती राज व्यवस्था में नागरिक सहभागिता की चुनौतियाँ: सामाजिक एवं आर्थिक आयामों का अध्ययन (डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. अरविन्द सिरोही) 208

54. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन 216
(डॉ. रश्मि शर्मा, पवन कुमार सोपरा)

55. The Role of Circular Business Models in Promoting Green Economic Growth in India: 220
A Commerce Perspective (Dr. Anjana Gorani)

56. शीलांमाऊ का जमर : सत्य और स्वाभिमान की अमर गाथा (अशोक दान) 223

57. किशोरावस्था की समस्याएं व समाधान (डॉ. बबीता) 225

58. पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 228
(दिवाकर पारीक)

59. कौशल विकास एवं आर्थिक विकास (सरोज कुशवाहा, डॉ. दीपक नेमा) 232

60. युद्धों के लिए मेवाड़ का ऐतिहासिक महत्व: एक ऐतिहासिक अध्ययन (डॉ. नरेंद्र सिंह राणावत) 234

61. हिन्दी उपन्यासों में पुरुष संवेदना (सुनीता मीना) 236

62. केसीसी योजना (किसान क्रेडिट कार्ड योजना) में सहकारी बैंकों की भूमिका : देवास जिले के विशेष संदर्भ में 240
(डॉ. जी एल खगोडे, श्रीमती स्वाति राठौड़)

63. कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. अमृता मौर्या) 244

64. कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. अमृता मौर्या) 247

65. रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचनात्मक दृष्टि में आधुनिक कविता (सारिका पाण्डेय) 250

66. प्राचीन ज्ञान प्रणाली में गृहस्थ आश्रम का समाज में योगदान (प्रिया सिंह) 254

67. Family Support and Sports Participation Among Para-Athletes in Rajasthan: A Sociological 256
Perspective (Rajshree Rathore, Dr. Shruti Tandon)

68. भूमि अधिग्रहण एक अमानवीय कृत्य (डॉ. मनीषा सिंह मरकाम, पूजा वर्मा) 261

69. Gender Quotas in Politics: Historical Development, Global Trends, and the Debate on 263
Their Merits and Demerits (Nitya Kanwar, Dr. Manju Ladla)

70. Ancient Heritage to Modern Identity: The Historical Journey of Jammu and Kashmir 268
(Vikas Chaturvedi)

71. डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया में सामाजिक समस्याओं की प्रासंगिकता : वर्तमान परिदृश्य के 275
संदर्भ में अध्ययन (निधी सिंह, डॉ. विनय कुमार सोनवानी)

72. समावेशी विकास में स्टैंड-अप इंडिया योजना की भूमिका: एक मूल्यांकनात्मक अध्ययन 277
(डॉ. दीपक कुमार राणा)

73. भोज रचित सरस्वती कण्ठाभरण तथा श्रृंगार प्रकाश (डॉ. पी. एस. बघेल) 282

74. प्रधानमंत्री आवास योजना का लाभार्थियों की सामाजिक-आर्थिक विकास का अध्ययन 284
(डॉ. विवेक कुमार पटेल, संजय कुमार पटेल)

75. Liquidity Management and Financial Performance of Hospital Equipment Industries: 287
A Comparative Empirical Analysis (Parv Jain, Dr. Pragya Sharma)

76. Role of Gond and Kawar Tribal Women in Sustainable Development: A Comparative 291
Geographical Study of Rural Raigarh District, Chhattisgarh
(Dr. Kajal Moitra, Chandan Kumar Mandal)

77. समान नागरिक संहिता भारत में: एक चर्चा: एक शैक्षणिक शोध पत्र (डॉ. नाजनीन खान, डॉ. निर्मल कुमार पगारिया) .. 299

78. Women's Legal Status & Rights in the Indian Constitution: A Constitutional and 305
Legislative Analysis (Dr. Najneen Khan, Dr. Nirmal Kumar Pagariya)

79. प्राथमिक विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा: न्यूनतम अधिगम स्तर से निपुण भारत मिशन के लक्ष्यो की ओर संक्रमण: एक विश्लेषण (शबाना परवीन, डॉ. संजीव कुमार) 314

80. Impact of GSTN Portal Issues on GST Compliance and Business Operations: An Empirical Study of MSMEs in Satna District, Madhya Pradesh (Vivek Nigam, Dr. Arun Kumar Gautam) 320

81. केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना (डॉ. बालेश्वर प्रसाद) 328

82. A Comparative Study on the Investment Behavior and Influencing Factors Among Salaried and Non-Salaried Individuals (Dr. Narendra Marwada, Yogesh Yadav) 331

83. Dynamic Interlinkages Among Nifty-Based Financial Sector Indices: A Var and Granger Causality Approach (Mr. Gaurav Sharma, Dr. Kumbhan Khandelwal) 339

84. आधुनिक प्रबन्धनार्थ शाश्वतं गीता ज्ञानम् (डॉ. पंकज कुमार सिंह) 348

85. वाश चित्रण में साहित्य एवं भक्ति का संगम : शैलेंद्रनाथ डे एवं क्षितिंद्रनाथ मजुमदार का कला विस्तार (आस्था कुमावत) ... 350

86. राजस्थान में बाल तस्करी के विधिक पहलुओं का विश्लेष्णात्मक अध्ययन (कृतिका राणावत) 355

87. नाथद्वारा की हरित गणगौर: पुष्टि मार्गीय परंपरा, समाज–संस्कृति एवं कलात्मक वैभव (सुरभि जैन) 359

88. कृषि उत्पादों के ई मार्केटिंग का किसानों की आय पर प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (ज्योति सिंह, डॉ. विद्युत प्रकाश मिश्रा) 362

89. भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं परंपरा का सामाजिक विश्लेषण: एक अध्ययन (डॉ. पुष्पा मिश्रा) 365

90. स्मार्ट सिटी मिशन का स्थानीय आर्थिक विकास पर प्रभाव: उज्जैन शहर के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (आभा चौरसिया) 370

91. Forest Resource Utilization and Economic Development in Bilaspur Division, Chhattisgarh: A Geographical Analysis (Supriyo Haldar, Dr. Ratnesh Kumar Khanna) 375

92. Quantum Transport in Low-Dimensional Nanostructures: Bridging Ballistic Regimes, Topological Phases, and Next-Generation Device Architectures (Dr. Santvana Bapna) 379

93. रायगढ़ नगर की जनसंख्या संरचना (छतेश्वरी चौहान, डॉ. सुनीता सोनवानी) 386

94. How Water Scarcity Affects the Medicinal Quality of Root Crops (Dr. Ragini Sikarwar) 390

95. Phytochemical Profiling and Antioxidant Potential of Selected Aquatic Medicinal Plants (Dr. Ragini Sikarwar) 396

96. स्वस्थ पारिवारिक संबंधों को बढ़ावा देने में पारिवारिक परामर्श की भूमिका: गृह विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन (रीना गौतम) 404

97. Economic Evaluation of Ethanol Blending: A Study of Petrol Pricing in India (Anil Kumar, Shivani Singh) 408

98. इतिहास के पन्नों में स्थान खोजता छपोरा गढ़ (डॉ. रामरतन साहू , ओंकार साहू) 412

Regional Editor Board - International & National

1. Dr. Manisha Thakur - Fulton College, Arizona State University, America.
2. Mr. Ashok Kumar - Employbility Operations Manager, Action Training Centre Ltd. London, U.K.
3. Ass. Prof. Beciu Silviu - Vice Dean (Management) Agriculture & Rural Development, UASVM, Bucharest, Romania.
4. Mr. Khgendra Prasad Subedi - Senior Psychologist, Public Service Commission, Central Office, Anamnagar, Kathmandu, Nepal.
5. Prof. Dr. G.C. Khimesara - Former Principal, Govt. PG College, Mandsaur (M.P.) India
6. Prof. Dr. Pramod Kr. Raghav - Research Guide, Jyoti Vidhyapeeth Women University, Jaipur (Raj.) India
7. Prof. Dr. Anoop Vyas - Former Dean, Commerce, Devi Ahilya University, Indore (India) India
8. Prof. Dr. P.P. Pandey - Dean, Commerce, Avadesh Pratapsingh University, Rewa (M.P.) India
9. Prof. Dr. Sanjay Bhayani - HOD, Business Management Deptt., Saurashtra University, Rajkot (Guj.) India
10. Prof. Dr. Pratap Rao Kadam - HOD, Commerce, Govt. Girls PG College, Khandwa (M.P.) India
11. Prof. Dr. B.S. Jhare - Professor, Commerce Deptt., Shri Shivaji College, Akola (Mh.) India
12. Prof. Dr. Sanjay Khare - Prof., Sociology, Govt. Auto. Girls PG Excellence College, Sagar (M.P.) India
13. Prof. Dr. R.P. Upadhayay - Exam Controller, Govt. Kamlaraje Girls Auto. PG College, Gwalior (M.P.) India
14. Prof. Dr. Pradeep Kr. Sharma - Professor, Govt. Hamidia Arts & Commerce College, Bhopal (M.P.) India
15. Prof. Akhilesh Jadhav - Prof., Physics, Govt. J. Yoganandan Chattisgarh College, Raipur (C.G.) India
16. Prof. Dr. Kamal Jain - Prof., Commerce, Govt. PG College, Khargone (M.P.) India
17. Prof. Dr. D.L. Khadse - Prof., Commerce, Dhanvate National College, Nagpur (Maharastra) India
18. Prof. Dr.Vandna Jain - Prof., Hindi, Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.) India
19. Prof. Dr. Hardayal Ahirwar - Prof.,Economics, Govt. PG College, Shahdol (M.P.) India
20. Prof. Dr. Sharda Trivedi - Retd. Professor, Home Science, Indore (M.P.) India
21. Prof. Dr. Usha Shrivastav - HOD, Hindi Deptt., Acharya Institute of Graduate Study, Soldevanali, Bengaluru (Karnataka) India
22. Prof. Dr. G. P. Dawre - Professor, Commerce, Govt. College, Badwah (M.P.) India
23. Prof. Dr. H.K. Chouarsiya - Prof., Botany, T.N.V. College, Bhagalpur (Bihar) India
24. Prof. Dr. Vivek Patel - Prof., Commerce, Govt. Shaheed Kedarnath College, Mauganj (M.P.) India
25. Prof. Dr. Dinesh Kr. Chaudhary - Prof., Commerce, Rajmata Sindhiya Govt. Girls College, Chhindwara (M.P.) India
26. Prof. Dr. P.K. Mishra - Prof., Zoological, Govt. PG College, Betul (M.P.) India
27. Prof. Dr. Jitendra K. Sharma - Prof., Commerce, Maharishi Dayanand Uni. Centre, Palwal (Haryana) India
28. Prof. Dr. R. K. Gautam - Prof., Govt. Manjkuwar Bai Arts & Commerce College, Jabalpur (M.P.) India
29. Prof. Dr. Gayatri Vajpai - Professor, Hindi, Govt. Maharaja Autonomus College, Chhattarpur (M.P.) India
30. Prof. Dr. Avinash Shendare - HOD, Pragati Arts & Commerce College, Dombivali, Mumbai (Mh.) India
31. Prof. Dr. J.C. Mehta - Fr. HOD, Research Centre, Commerce, Devi Ahilya Uni., Indore (M.P.) India
32. Prof. Dr. B.S. Makkad - HOD, Research Centre Commerce, Vikram University, Ujjain (M.P.) India
33. Prof. Dr. P.P. Mishra - HOD, Maths, Chattrasal Govt. PG College, Panna (M.P.) India
34. Prof. Dr. Sunil Kumar Sikarwar - Professor, Chemistry, Govt. PG College, Jhabua (M.P.) India
35. Prof. Dr. K.L. Sahu - Professor, History, Govt. PG College, Narsinghpur (M.P.) India
36. Prof. Dr. Malini Johnson - Professor, Botany, Govt. PG College, Mahu (M.P.) India
37. Prof. Dr. Ravi Gaur - Asso. Professor, Mathematics, Gujarat University, Ahmedabad (Gujarat) India
38. Prof. Dr. Vishal Purohit - M.L.B. Govt. Girls PG College, Kila Miadan, Indore (M.P.) India

Editorial Advisory Board, INDIA

1. Prof. Dr. Narendra Shrivastav - Scientist , ISRO, Bengaluru (Karnataka) India
2. Prof. Dr. Aditya Lunawat - Director, Swami Vivekanand Career Guidance deptt. M.P. Higher Education, M.P. Govt., Bhopal (M.P.) India
3. Prof. Dr. Sanjay Jain - O.S.D., Additional Director Office, Bhopal (M.P.) India
4. Prof. Dr S.K. Joshi - Former Principal, Govt. Arts & Science College, Ratlam (M.P.) India
5. Prof. Dr. J.P.N. Pandey - Fr. Principal, Govt. Auto.Girls P.G. Excellence College, Sagar (M.P.) India
6. Prof. Dr. Sumitra Waskel - Principal, Govt. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.) India
7. Prof. Dr. P.R. Chandelkar - Principal, Govt. Girls P.G. College, Chhindwara (M.P.) India
8. Prof. Dr. Mangal Mishra - Principal, Shri Cloth Market, Girls Commerce College, Indore (M.P.) India
9. Prof. Dr. R.K. Bhatt - Former Principal, Govt. Girls College, Narsinghpur (M.P.) India
10. Prof. Dr. Ashok Verma - Former HOD, Commerce (Dean) Devi Ahilya University, Indore (M.P.) India
11. Prof. Dr. Rakesh Dhand - HOD, Student Welfare Deptt., Vikram University, Ujjain (M.P.) India
12. Prof. Dr. Anil Shivani - HOD, Commerce /Management, Govt. Hamidiya Arts And Commerce Degree College, Bhopal (M.P.) India
13. Prof. Dr. PadamSingh Patel - HOD, Commerce Deptt., Govt. College, Mahidpur (M.P.) India
14. Prof. Dr. Manju Dubey - HOD (Dean), Home Science Deptt. Jiwaji University, Gwalior (M.P.) India
15. Prof. Dr. A.K. Choudhary - Professor, Psychology, Govt. Meera Girls College, Udiapur (Raj.) India
16. Prof. Dr. T. M. Khan - Principal, Govt. College, Dhamnod, Distt. Dhar (M.P.) India
17. Prof. Dr. Pradeep Singh Rao - Principal, Govt. College, Sailana, Distt. Ratlam (M.P.) India
18. Prof. Dr. K.K. Shrivastava - Professor, Eco., Vijaya Raje Govt. Girls P.G. College, Gwalior (M.P.) India
19. Prof. Dr. Kanta Alawa - Professor, Pol. Sci., S.B.N.Govt. P.G. College, Badwani (M.P.) India
20. Prof. Dr. S.C. Jain - Professor, Commerce, Govt. P.G. College, Jhabua (M.P.) India
21. Prof. Dr. Kishan Yadav - Asso. Professor, Research Centre Bundelkhand College, Jhasi (U.P.) India
22. Prof. Dr. B.R. Nalwaya - Chairman,Commerce Deptt.,Vikram University, Ujjain (M.P.) India
23. Prof. Dr. Purshottam Gautam - Dean, Commerce Deptt.,Devi Ahilya University, Indore (M.P.) India
24. Prof. Dr. Natwarlal Gupta - HOD, Commerce Deptt.,Devi Ahilya University, Indore (M.P.) India
25. Prof. Dr. S.C. Mehta - Former, Professor/HOD, Govt. Bhagat Singh P.G. College, Jaora (M.P.) India
26. Prof. Dr. A. K. Pandey - HOD, Economics Deptt., Govt. Girls College, Satna (M.P.)

Referee Board

Maths - (1) Prof. Dr. V.K. Gupta, Director Vedic Maths - Research Centre, Ujjain (M.P.)
Physics - (1) Prof. Dr. R.C. Dixit, Govt. Holkar Science College, Indore (M.P.)
(2) Prof. Dr. Neeraj Dubey, Govt. Arts & Commerce College, Sagar (M.P.)
Computer Science - (1) Prof. Dr. Umesh Kr. Singh, HOD, Computer Study Centre, Vikram University, Ujjain (M.P.)
Chemistry - (1) Prof. Dr. Manmeet Kaur Makkad, Govt. Kalidas Girls College,Ujjain (M.P.)
Botany - (1) Prof. Dr. Suchita Jain, Govt. Girls P.G. College, Kota (Raj.)
(2) Prof. Dr. Akhilesh Aayachi, Govt. Adarsh Science College, Jabalpur (M.P.)
(3) Prof. Dr. Jolly Garg,HOD, D.A.K. P.G. College, Moradabad (U.P.)
Life Science - (1) Prof. Dr. Manjulata Sharma, M.S.J. Govt. College, Bharatpur (Raj.)
- (2) Prof. Dr. Amrita Khatri, Mata Jijabai Govt. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
Statitics - (1) Prof. Dr. Ramesh Pandya, Govt. Arts - Commerce College, Ratlam (M.P.)
Military Science - (1) Prof. Dr. Kailash Tyagi, Govt. Motilal Science College, Bhopal (M.P.)
Biology - (1) Dr. Kanchan Dhingara, Govt. M.H. Home Science College, Jabalpur (M.P.)
Geology - (1) Prof. Dr. R.S. Raghuvanshi, Govt. Motilal Science College, Bhopal (M.P.)
(2) Prof. Dr. Suyesh Kumar, Govt. Adarsh College, Gwalior (M.P.)
Medical Science - (1) Dr.H.G. Varudhkar, R.D. Gardi Medical College, Ujjain (M.P.)
Microbiology Sci. & Biotechnology - (1) Anurag D. Zaveri, Biocare Research (I) Pvt. Ltd., Ahmedabad (Gujarat)
(2) Dr. Randhir Kumar, Indira Priyadarshini College, Chhindwara (M.P.)
(3) Annu Jha, Indira Priyadarshini College, Chhindwara (M.P.)

***** Commerce *****

Commerece - (1) Prof. Dr. P.K. Jain, Govt. Hamidia College, Bhopal (M.P.)
(2) Prof. Dr. Shailendra Bharal, Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.)
(3) Prof. Dr. Laxman Parwal, Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.)
(4) Prof. Naresh Kumar, NSCBM Govt. College, Hamirpur (H.P.)

***** Management *****

Management - (1) Prof. Dr. Anand Tiwari, Govt. Autonomus PG Girls Excellence College, Sagar (M.P.)
Human Resources - (1) Prof. Dr. Harwinder Soni, Pacific Business School, Udaipur (Raj.)
Business Admin. - (1) Prof. Dr. Kapildev Sharma, Govt. Girls P.G. College, Kota (Raj.)
(2) Dr. Kuldeep Agnihotri, Modern Group of Institutions, Indore (M.P.)

***** Law *****

Law - (1) Prof. Dr. S.N. Sharma, Principal, Govt. Madhav Law College, Ujjain (M.P.)
(2) Prof. Dr. Narendra Kumar Jain, Principal, Shri Jawaharlal Nehru PG Law College, Mandsaur (M.P.)
(3) Prof. Lok Narayan Mishra, Govt. Law College, Rewa (M.P.)
(4) Dr. Bijay Kumar Yadav, Om Sterling Global University, Hisar (Haryana)

***** Arts *****

Economics - (1) Prof. Dr. P.C. Ranka, Sri Sitaram Jaju Govt. Girls P.G. College, Neemuch (M.P.)
(2) Prof. Dr. J.P. Mishra, Govt. Maharaja Autonomus College, Chhattarpur (M.P.)
(3) Prof. Dr. Anjana Jain, M.L.B. Govt. Girls P.G. College, Kila Maidan, Indore (M.P.)
(4) Prof. Rakesh Kumar Gupta, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur (C.G.)
Political Science - (1) Prof. Dr. Ravindra Sohoni, Govt. P.G. College, Mandsaur (M.P.)
(2) Prof. Dr. Anil Jain, Govt. Girls College, Ratlam (M.P.)
(3) Prof. Dr. Sulekha Mishra, Mankuwar Bai Govt. Arts & Commerce College, Jabalpur (M.P.)
Philosophy - (1) Prof. Dr. Hemant Namdev, Govt. Madhav Arts, Commerce & Law College, Ujjain (M.P.)
Sociology - (1) Prof. Dr. Uma Lavania, Govt. Girls College, Bina (M.P.)
(2) Prof. Dr. H.L. Phulvare, Govt. P.G. College, Dhar (M.P.)
(3) Prof. Dr. Indira Burman, Govt. Home Science College, Hoshangabad (M.P.)

Hindi -	(1)	Prof. Dr. Vandana Agnihotri, Chairperson, Devi Ahilya University, Indore (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Kala Joshi , ABV Govt. Arts & Commerce College, Indore (M.P.)
	(3)	Prof. Dr. Chanda Talera Jain, M.J.B. Govt. Girls P.G. College, Indore (M.P.)
	(4)	Prof. Dr. Amit Shukla, Govt. Thakur Ranmatsingh College, Rewa (M.P.)
	(5)	Prof. Dr. Anchal Shrivastava, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur (C.G.)
English -	(1)	Prof. Dr. Ajay Bhargava, Govt. College, Badnagar (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Manjari Agnihotri, Govt. Girls College, Sehore (M.P.)
Sanskrit -	(1)	Prof. Dr. Bhawana Srivastava, Govt. Autonomus Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Balkrishan Prajapati, Govt. P.G. College, Ganjbasauda, Distt. Vidisha (M.P.)
	(3)	Prof. Dr. Nalini Tilkar, PMCoE Govt. Madhav College, Ujjain (M.P.)
History -	(1)	Prof. Dr. Naveen Gidiyan, Govt. Autonomus Girls P.G. Excellence College, Sagar (M.P.)
	(2)	Dr. Jaimini Khanwe, Indira Priyadarshini College, Chhindwara (M.P.)
Geography -	(1)	Prof. Dr. Rajendra Srivastava, Govt. College, Pipliya Mandi, Distt. Mandsaur (M.P.)
	(2)	Prof. Kajol Moitra, Dr. C.V. Raman University, Bilaspur (C.G.)
Psychology -	(1)	Prof. Dr. Kamna Verma, Principal, Govt. Rajmata Sindhiya Girls P.G. College, Chhindwara (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Saroj Kothari, Govt. Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Indore (M.P.)
Drawing -	(1)	Prof. Dr. Alpana Upadhyay, Govt. Madhav Arts-Commerce-Law College. Ujjain (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Rekha Srivastava, Maharani Laxmibai Govt. Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
	(3)	Prof. Dr. Yatindera Mahobe, Govt. Girls College, Narsinghpur (M.P.)
Music/Dance -	(1)	Prof. Dr. Bhawana Grover (Kathak),Swami Vivekanand Subharti University, Meerut (U.P.)
	(2)	Prof. Dr. Sripad Aronkar, Rajmata Sindhiya Govt. Girls College, Chhindwara (M.P.)
		***** Home Science *****
Diet/Nutrition Science -	(1)	Prof.Dr. Pragati Desai, Govt. Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Indore (M.P.)
	(2)	Prof. Madhu Goyal, Swami Keshavanand Home Science College, Bikaner (Raj.)
	(3)	Prof. Dr. Sandhya Verma, Govt. Arts & Commerce College, Raipur (Chhattisgarh)
Human Development -	(1)	Prof. Dr. Meenakshi Mathur, HOD, Jainarayan Vyas University, Jodhpur (Raj.)
	(2)	Prof. Dr. Abha Tiwari, HOD, Research Centre, Rani Durgawati University, Jabalpur (M.P.)
Family Resource Management -	(1)	Prof. Dr. Manju Sharma, Mata Jijabai Govt. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Namrata Arora, Vansthali Vidhyapeeth (Raj.)
		***** Education *****
Education -	(1)	Prof. Dr. Manorama Mathur, Mahindra College of Education, Bangluru (Karnataka)
	(2)	Prof. Dr. N.M.G. Mathur, Principal/Dean, Pacific EducationCollege, Udaipur (Raj.)
	(3)	Prof. Dr. Neena Aneja, Principal, A.S. College Of Education, Khanna (Punjab)
	(4)	Prof. Dr. Satish Gill, Shiv College of Education,Tigaon, Faridabad (Haryana)
	(5)	Prof. Dr. Mahesh Kumar Muchhal, Digambar Jain (P.G.) College, Baraut (U.P.)
		***** Architecture *****
Architecture -	(1)	Prof. Kiran P. Shindey, Principal,School of Architecture,IPS Academy, Indore (M.P.)
		***** Physical Education *****
Physical Education -	(1)	Prof. Dr. Joginder Singh, Physical Education, Pacific University, Udaipur (Raj.)
	(2)	Dr. Ramneek Jain, Associate Professor, Madhav University, Pindwara (Raj.)
	(3)	Dr. Seema Gurjar, Associate Professor, Pacific University, Udaipur (Raj.)
		***** Library Science *****
Library Science -	(1)	Dr. Anil Sirothia, Govt. Maharaja College, Chhattarpur (M.P.)

Spokesperson's

1. Prof. Dr. Davendra Rathore - Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.)
2. Prof. Smt. Vijaya Wadhwa - Govt. Girls P.G. College, Neemuch (M.P.)
3. Dr. Surendra Shaktawat - Gyanodaya Institute of Management - Technology, Neemuch (M.P.)
4. Prof. Dr. Devilal Ahir - Govt. College, Jawad, Distt. Neemuch (M.P.)
5. Shri Ashish Dwivedi - Govt. College, Manasa, Distt. Neemuch (M.P.)
6. Prof. Manoj Mahajan - Govt. College, Sonkach, Distt. Dewas (M.P.)
7. Prof. Dr. S.P. Panwar - Govt. P.G. College, Mandsaur (M.P.)
8. Prof. Dr. Puralal Patidar - Govt. Girls College, Mandsaur (M.P.)
9. Prof. Dr. Kshitij Purohit - Jain Arts, Commerce & Science College, Mandsaur (M.P.)
10. Prof. Dr. N.K. Patidar - Govt. College, Pipliyamandi, Distt. Mandsaur (M.P.)
11. Prof. Dr. Y.K. Mishra - Govt. Arts & Commerce College, Ratlam (M.P.)
12. Prof. Dr. Suresh Kataria - Govt. Girls College, Ratlam (M.P.)
13. Prof. Dr. Abhay Pathak - Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.)
14. Prof. Dr. Malsingh Chouhan - Govt. College, Sailana, Distt. Ratlam (M.P.)
15. Prof. Dr. Gendalal Chouhan - Govt. Vikram College, Khachrod, Distt. Ujjain (M.P.)
16. Prof. Dr. Prabhakar Mishra - Govt. College, Mahidpur, Distt. Ujjain (M.P.)
17. Prof. Dr. Prakash Kumar Jain - Govt. Madhav Arts, Commerce & Law College, Ujjain (M.P.)
18. Prof. Dr. Kamla Chauhan - Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.)
19. Prof. Abha Dixit - Govt. Girls P.G. College, Ujjain (M.P.)
20. Prof. Dr. Pankaj Maheshwari - Govt. College, Tarana, Distt. Ujjain (M.P.)
21. Prof. Dr. D.C. Rathi - Swami Vivekanand Career Gudiance Deptt., Higher Education Deptt., M.P. Govt., Indore (M.P.)
22. Prof. Dr. Anita Gagrade - Govt. Holkar Science College, Indore (M.P.)
23. Prof. Dr. Sanjay Pandit - Govt. M.J.B. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
24. Prof.Dr. Rambabu Gupta - Govt. Arts & Commerce College, Indore (M.P.)
25. Prof. Dr. Anjana Saxena - Govt. Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Indore (M.P.)
26. Prof. Dr. Sonali Nargunde - Journalism & Mass Comm .Research Centre, D.A.V.V., Indore (M.P.)
27. Prof. Dr. Bharti Joshi - Life Education Department, Devi Ahilya University, Indore (M.P.)
28. Prof. Dr. M.D. Somani - Govt. M.J.B. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
29. Prof. Dr. Priti Bhatt - Govt. N.S.P. Science College, Indore (M.P.)
30. Prof. Dr. Sanjay Prasad - Govt. College, Sanwer, Distt. Indore (M.P.)
31. Prof. Dr. Meena Matkar - Suganidevi Girls College, Indore (M.P.)
32. Prof. Dr. Mohan Waskel - Govt. College, Thandla Distt. Jhabua (M.P.)
33. Prof. Dr. Nitin Sahariya - Govt. College, Kotma Distt. Anooppur (M.P.)
34. Prof. Dr. Manju Rajoriya - Govt. Girls College, Dewas (M.P.)
35. Prof. Dr. Shahjad Qureshi - Govt. New Arts & Science College, Mundi, Distt. Khandwa (M.P.)
36. Prof. Dr. Shail Bala Sanghi - Maharani Lakshmibai Govt. Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
37. Prof. Dr. Praveen Ojha - Shri Bhagwat Sahay Govt. P.G. College, Gwalior (M.P.)
38. Prof. Dr. Omprakash Sharma - Govt. P.G. College, Sheopur (M.P.)
39. Prof. Dr. S.K. Shrivastava - Govt. Vijayaraje Girls P.G. College, Gwalior (M.P.)
40. Prof. Dr. Anoop Moghe - Govt. Kamlaraje Girls P.G. College, Gwalior (M.P.)
41. Prof. Dr. Hemlata Chouhan - Govt. College, Badnagar (M.P.)
42. Prof. Dr. Maheshchandra Gupta - Govt. P.G. College, Khargone (M.P.)
43. Prof. Dr. Mangla Thakur - Govt. P.G. College, Badhwah, Distt. Khargone (M.P.)
44. Prof. Dr. K.R. Kumhekar - Govt College, Sanawad, Distt. Khargone(M.P.)

45. Prof. Dr. R.K. Yadav - Govt. Girls College, Khargone (M.P.)
46. Prof. Dr. Asha Sakhi Gupta - Govt. P.G. College, Badwani (M.P.)
47. Prof. Dr. Hemsingh Mandloi - Govt. P.G. College, Dhar (M.P.)
48. Prof. Dr. Prabha Pandey - Govt. P.G. College, Mehar, Distt. Satna (M.P.)
49. Prof. Dr. Rajesh Kumar - Govt. College, Amarpatan, Distt. Satna (M.P.)
50. Prof. Dr. Ravendra singh Patel - Govt. P.G. College, Satna (M.P.)
51. Prof. Dr. Manoharlal Gupta - Govt. P.G. College, Rajgarh, Biora (M.P.)
52. Prof. Dr. Madhusudan Prakash - Govt. College, Ganjbasauda, Distt. Vidisha (M.P.)
53. Prof. Dr. Yuwraj Shirvatava - Dr. C.V. Raman Univeristy, Bilaspur (C.G.)
54. Prof. Dr. Sunil Vajpai - Govt. Tilak P.G. College, Katni (M.P.)
55. Prof. Dr. B.S. Sisodiya - Govt. P.G. College, Dhar (M.P
56. Prof. Dr. Shashi Prabha Jain - Govt. P.G. College, Agar-Malwa (M.P.)
57. Prof. Dr. Niyaz Ansari - Govt. Aadarsh College, Umaria (M.P.)
58. Prof. Dr. ArjunSingh Baghel - Govt. College, Harda (M.P.)
59. Dr. Suresh Kumar Vimal - Govt. College, Bansadehi, Distt. Betul (M.P.)
60. Prof. Dr. Amar Chand Jain - Govt. Arts & Commerce College, Sagar (M.P.)
61. Prof. Dr. Rashmi Dubey - Govt. Autonomus Girls P.G. Excellence College, Sagar (M.P.)
62. Prof. Dr. A.K. Jain - Govt. P.G. College, Bina, Distt. Sagar (M.P.)
63. Prof. Dr. Sandhya Tikekar - Govt. Girls College, Bina, Distt. Sagar (M.P.)
64. Prof. Dr. Rajiv Sharma - Govt. Narmada P.G. College, Hoshangabad (M.P.)
65. Prof. Dr. Rashmi Srivastava - Govt. Home Science College, Hoshangabad (M.P.)
66. Prof. Dr. Laxmikant Chandela - Govt. Autonomus P.G. College, Chhindwara (M.P.)
67. Prof. Dr. Balram Singotiya - Govt. College, Saunsar, Distt. Chhindwara (M.P.)
68. Prof. Dr. Vimmi Bahel - Govt. College, Kalapipal, Distt. Shajapur (M.P.)
69. Dr. Aprajita Bhargava - R.D.Public School, Betul (M.P)
70. Prof. Dr. Meenu Gajala Khan - Govt. College, Maksi, Distt. Shajapaur (M.P.)
71. Prof. Dr. Pallavi Mishra - Govt. College, Mauganj Distt. Rewa (M.P.)
72. Prof. Dr. N.P. Sharma - Govt. College, Datia (M.P.)
73. Prof. Dr. Jaya Sharma - Govt. Girls College, Sehore (M.P.)
74. Prof. Dr. Sunil Somwanshi - Govt. College, Nepanagar, Distt. Burhanpur (M.P.)
75. Prof. Dr. Ishrat Khan - Govt. College, Raisen (M.P.)
76. Prof. Dr. Kamlesh Singh Negi - Govt. P.G. College, Sehore (M.P.)
77. Prof. Dr. Bhawana Thakur - Govt. College, Rehati, Distt. Sehore (M.P.)
78. Prof. Dr. Keshavmani Sharma - Pandit Balkrishan Sharma New Govt. College, Shajapur (M.P.)
79. Prof. Dr. Renu Rajesh - Govt. Nehru Leading College ,Ashok Nagar (M.P.)
80. Prof. Dr. Avinash Dubey - Govt. P.G. College, Khandwa (M.P.)
81. Prof. Dr. V.K. Dixit - Chhatrasal Govt. P.G. College, Panna (M.P.)
82. Prof. Dr. Ram Awdesh Sharma - M.J.S. Govt. P.G. College, Bhind (M.P.)
83. Prof. Dr. Manoj Kr. Agnihotri - Sarojini Naidu Govt. Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
84. Prof. Dr. Sameer Kr. Shukla - Govt. Chandra Vijay College, Dhindori (M.P.)
85. Prof. Dr. Anoop Parsai - Govt. J. Yoganand Chattisgarh P.G. College, Raipur (Chattisgarh)
86. Prof. Dr. Anil Kumar Jain - Vardhaman Mahavir Open University, Kota (Rajasthan)
87. Prof. Dr. Kavita Bhadiriya - Govt. Girls College, Barwani (M.P.)
88. Prof. Dr. Archana Vishith - Govt. Rajrishi College, Alwar (Rajasthan)
89. Prof. Dr. Kalpana Parikh - S.S.G. Parikh P.G. College, Udaipur (Rajasthan)
90. Prof. Dr. Gajendra Siroha - Pacific University, Udaipur (Rajasthan)
91. Prof. Dr. Krishna Pensia - Harish Anjana College, Chhotisadri, Distt. Pratapgarh (Rajasthan)
92. Prof. Dr. Pradeep Singh - Central University Haryana, Mahendragarh (Haryana)

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Medicinal Applications of *Lagenaria siceraria* Leaf Extract: A Qualitative Analytical Study

Dr. Akhilesh Chandra Verma*

***Government Naveen College, Kui-Kukdur, Dist. Kabirdham (C.G.) INDIA**

Abstract: *Lagenaria siceraria*, commonly identified as bottle gourd, occupies a distinctive position within the continuum of plant-based therapeutics, where nourishment and healing subtly converge. While its culinary familiarity renders it an ordinary presence in daily life, its leaves enclose a less apparent yet significant reservoir of biologically active constituents. These constituents, composed of diverse phytochemical groups, participate in intricate physiological interactions that extend beyond mere nutritional contribution.

The present work undertakes a qualitative and interpretative exploration of the medicinal relevance of *L. siceraria* leaf extract, situating it within both traditional healing perspectives and contemporary scientific understanding. Rather than isolating individual effects, the discussion seeks to perceive the plant as an integrated entity, where antioxidant modulation, metabolic balance, and protective functions coexist in a state of dynamic harmony. The presence of compounds such as flavonoids, saponins, and triterpenoid structures reflects a biochemical richness that resonates with therapeutic potential.

Through a reflective synthesis of available knowledge, this paper attempts to articulate a coherent medicinal identity of the leaf extract, one that bridges empirical wisdom with analytical reasoning. In doing so, it invites a more nuanced engagement with plant-derived therapeutics, emphasizing subtle efficacy over overt intervention. The study ultimately foregrounds *L. siceraria* as a quietly significant botanical resource whose medicinal dimensions merit deeper and more refined exploration.

Keywords: *Lagenaria siceraria*, leaf extract, phytochemicals, antioxidant activity, medicinal plants, qualitative analysis.

Introduction - The association between human life and medicinal flora unfolds as a long-standing narrative shaped by observation, adaptation, and experiential continuity. Across diverse cultural landscapes, plants have served not only as sources of sustenance but also as subtle mediators of health, offering restorative potential through naturally occurring compounds [1]. In many parts of the world, particularly within developing regions, such botanical resources continue to form the foundation of primary healthcare practices, reflecting both accessibility and deep-rooted trust in plant-based healing systems [2].

Within this expansive botanical domain, the Cucurbitaceae family presents a remarkable diversity of species characterized by nutritional value and biological activity. Among these, *Lagenaria siceraria*—commonly referred to as bottle gourd—emerges as a plant of quiet therapeutic relevance, widely cultivated across tropical and subtropical regions [3]. Its presence within traditional dietary practices often conceals its broader medicinal significance, particularly in relation to its vegetative components.

While the fruit of *L. siceraria* has been extensively appreciated for its nutritional attributes, the leaves represent a comparatively understated yet pharmacologically meaningful aspect of the plant. Enriched with phytoconstituents such as polyphenols, sterols, and secondary metabolites, the leaf extract embodies a biochemical complexity that aligns with multiple physiological functions [4]. These constituents interact with biological systems in a manner that supports oxidative equilibrium, metabolic regulation, and systemic resilience, thereby contributing to a holistic framework of health maintenance.

Traditional healing perspectives have long regarded the plant as a gentle tonic, one that harmonizes with the body's internal processes rather than imposing abrupt pharmacological effects. This perception finds a subtle correspondence within contemporary scientific inquiry, where increasing attention is directed toward plant-derived compounds as modulators of chronic and degenerative conditions [5]. The leaf extract of *L. siceraria*, in this context, offers a fertile ground for interpretative exploration, where biochemical presence and therapeutic implication converge. The present study adopts a qualitative and analytical orientation, seeking not merely to catalogue medicinal

properties but to interpret their underlying coherence. By engaging with the plant through a reflective and integrative lens, the discussion aspires to reveal a unified medicinal identity that transcends isolated observations. In doing so, it positions *L. siceraria* leaf extract within a broader discourse of natural therapeutics, where subtle efficacy, continuity of use, and biochemical depth collectively shape its significance.

Methodology: The present study adopts a qualitative and analytical research design based on secondary data sources. Relevant data were collected from peer-reviewed journals, ethnobotanical records, pharmacognostic studies, and authoritative compilations of medicinal plants. Sources were selected based on their relevance to phytochemical composition, therapeutic attributes, and traditional applications of *Lagenaria siceraria*.

The analytical process involved identifying key themes such as antioxidant activity, metabolic regulation, and phytochemical diversity, and examining their interrelationships to understand the medicinal potential of *Lagenaria siceraria* leaf extract.

1. Conceptual and Botanical Overview of *Lagenaria siceraria:* The botanical identity of *Lagenaria siceraria* unfolds within the expansive family of Cucurbitaceae, a group known for its nutritional diversity and subtle medicinal significance. Often perceived through its culinary familiarity, the plant extends beyond its edible fruit into a more nuanced biological presence, particularly through its vegetative components. The leaf structure, characterized by its broad, lobed morphology and fine pubescence, reflects an adaptive design suited to tropical and subtropical climates where the plant thrives abundantly (see Fig. 1) [6], [7].

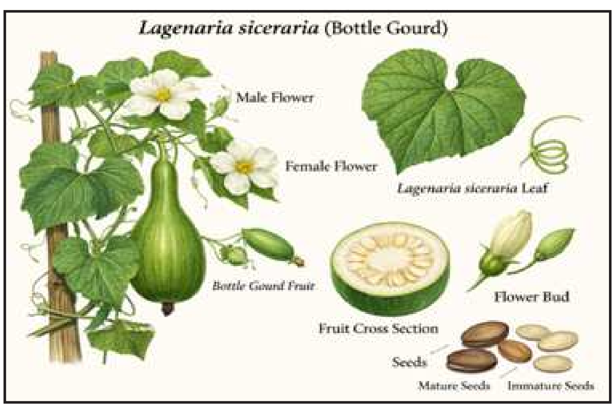

Fig. 1

Historically, *L. siceraria* is regarded among the earliest domesticated plant species, with its origins traced to regions of Africa and its gradual dispersal across Asia and other parts of the world [8], [9]. This long-standing association with human habitation suggests not only agricultural relevance but also an enduring recognition of its utilitarian and therapeutic potential. The plant's adaptability and accessibility have enabled its integration into both dietary practices and traditional healing systems, thereby reinforcing its significance across generations.

The leaves, in particular, embody a dimension of the plant that is often understated yet pharmacologically meaningful. Their biochemical composition and physiological responsiveness position them as active participants in the plant's medicinal profile, inviting closer analytical attention.

2. Phytochemical Constitution of Leaf Extract: The medicinal relevance of *Lagenaria siceraria* leaves emerges through a complex interplay of phytochemical constituents that operate within biological systems in a subtle yet impactful manner. These constituents include flavonoids, saponins, tannins, polyphenolic compounds, and triterpenoid structures, each contributing to the plant's integrative therapeutic potential [10].

Rather than functioning in isolation, these compounds exhibit a synergistic interaction that supports physiological equilibrium. Flavonoids, for instance, are associated with the modulation of oxidative processes, enabling the body to maintain a balanced response to reactive molecular species. Similarly, saponins and tannins contribute to cellular protection and structural integrity, reinforcing the plant's role as a natural stabilizer within biological environments.

The presence of such compounds reflects not merely chemical diversity but a coordinated biochemical framework that aligns with the body's inherent regulatory mechanisms. In this sense, the leaf extract may be understood as a composite entity wherein each constituent contributes to a broader therapeutic coherence rather than a fragmented set of isolated effects.

3. Therapeutic Dimensions of Leaf Extract: The therapeutic significance of *Lagenaria siceraria* leaf extract unfolds through multiple dimensions that collectively illustrate its role as a gentle yet effective mediator of physiological balance. These dimensions, while distinct in their expression, remain interconnected in their underlying function.

1. Antioxidant Potential: One of the most prominent attributes of the leaf extract lies in its capacity to engage with oxidative processes within the body. The presence of polyphenolic compounds and flavonoids enables the neutralization of reactive oxygen species, thereby contributing to the preservation of cellular integrity [5], [11]. This antioxidant potential does not manifest as an isolated action but rather as a continuous modulation of internal equilibrium, supporting the body's resilience against oxidative stress.

2. Metabolic Regulation: The influence of the leaf extract extends into the domain of metabolic balance, where it contributes to the regulation of biochemical processes associated with glucose metabolism and energy distribution. The phytochemical composition facilitates a harmonizing effect, allowing metabolic pathways to function with greater stability and coherence [12]. Such an effect becomes

particularly significant in conditions characterized by metabolic irregularities, where subtle modulation proves more sustainable than abrupt intervention.

3. Hepatoprotective Influence: The liver, as a central organ of detoxification and metabolic processing, benefits from the protective attributes associated with *L. siceraria* leaf extract. The presence of bioactive compounds supports hepatic function by mitigating the impact of toxic intermediates and enhancing the organ's intrinsic regenerative capacity [4]. This protective dimension aligns with the traditional perception of the plant as a supportive tonic for systemic health.

4. Anti-inflammatory Expression: Inflammatory responses, though essential for defense, often require modulation to prevent excessive physiological disruption. The leaf extract contributes to this modulation by influencing biochemical pathways associated with inflammation, thereby promoting a balanced response that preserves tissue integrity [13]. This effect further reinforces the plant's integrative role within the broader framework of natural therapeutics.

4. Extraction and Interpretative Understanding: The process of extraction plays a crucial role in determining the qualitative expression of the plant's medicinal properties. Different solvents, including aqueous, ethanolic, and methanolic mediums, facilitate the isolation of distinct groups of phytochemicals, each contributing to a varied therapeutic profile [14].

This variation in extract composition highlights the importance of methodological consideration, where the choice of solvent is not merely technical but interpretative. It reflects an understanding of how specific compounds can be emphasized or moderated to achieve desired physiological outcomes. Thus, extraction becomes an extension of analytical reasoning, bridging the gap between raw botanical material and its functional application.

5. Traditional Insight and Contemporary Relevance: The medicinal identity of *Lagenaria siceraria* is deeply rooted in traditional systems of knowledge, where it has been valued for its cooling, restorative, and balancing properties [15]. Such traditional interpretations, though articulated in a different conceptual language, resonate with contemporary scientific perspectives that recognize the plant's biochemical activity.

This convergence between traditional insight and modern understanding reflects a continuity of knowledge rather than a divergence. The leaf extract, in this context, serves as a point of intersection where empirical observation and analytical inquiry meet, offering a more holistic understanding of plant-based therapeutics.

6. Safety, Limitations and Subtle Concerns: While the therapeutic potential of *Lagenaria siceraria* remains significant, it is equally important to acknowledge the boundaries within which its application remains beneficial. The presence of certain bitter compounds, particularly cucurbitacins, introduces a dimension of caution, as excessive or improper consumption may lead to adverse physiological responses [16].

This awareness does not diminish the plant's medicinal value but rather situates it within a framework of responsible utilization. The effectiveness of plant-based remedies often lies in their measured application, where balance and moderation become essential guiding principles.

7. Integrated Discussion: The preceding exploration reveals that the medicinal potential of *Lagenaria siceraria* leaf extract cannot be confined to isolated attributes. Instead, it emerges as a cohesive system in which phytochemical composition, therapeutic action, and traditional understanding converge into a unified whole.

The antioxidant, metabolic, hepatoprotective, and anti-inflammatory dimensions, while individually significant, collectively contribute to a broader physiological harmony. This integrative perspective allows the plant to be perceived not merely as a source of specific remedies but as a participant in maintaining systemic balance.

In this sense, the leaf extract represents more than a pharmacological entity; it embodies a subtle interplay between nature and biological function, where efficacy is expressed through continuity rather than intensity. Such an understanding invites a more refined engagement with plant-based medicine, one that values coherence over fragmentation and interpretation over mere observation.

Findings: The qualitative examination of *Lagenaria siceraria* leaf extract indicates that its medicinal potential is primarily rooted in its phytochemical composition, including flavonoids, saponins, and triterpenoid compounds. These constituents collectively contribute to multiple physiological functions, particularly in regulating oxidative stress, supporting metabolic balance, and protecting vital organs such as the liver.

The analysis also reflects that the therapeutic effects are not isolated but interconnected, where antioxidant activity, anti-inflammatory influence, and metabolic regulation operate in a coordinated manner. Furthermore, the comparison between traditional usage and contemporary understanding suggests a strong alignment, reinforcing the relevance of the plant within both indigenous and modern medicinal frameworks.

At the same time, the presence of certain bioactive compounds highlights the necessity of controlled and informed usage, ensuring that therapeutic benefits are achieved without adverse effects.

Conclusion: In conclusion, *Lagenaria siceraria* leaf extract demonstrates a coherent and multi-dimensional medicinal profile supported by its phytochemical richness. Its therapeutic relevance lies in its integrative action rather than isolated effects, making it a valuable component within plant-based healthcare approaches.

The study underscores the importance of interpreting medicinal plants through a balanced analytical lens, where

traditional insights and scientific understanding complement each other. While the plant offers promising potential, its application requires moderation and further focused exploration to establish more defined clinical relevance.

References :-

1. R. A. Oluwafemi, I. Olawale, and J. O. Alagbe, "Recent trends in the utilization of medicinal plants as growth promoters in poultry nutrition," *Research in Agricultural and Veterinary Sciences*, vol. 4, no. 1, pp. 5–11, 2020.
2. S. K. Marwat et al., "Fruit plant species and their ethnomedicinal importance," *American-Eurasian Journal of Agricultural and Environmental Science*, vol. 5, no. 2, pp. 284–295, 2009.
3. H. Zaid et al., "Herbal medicine and therapeutic applications," *The Open Nutraceuticals Journal*, vol. 3, 2010.
4. T. Sivasankaranarayana et al., "Pharmacological and pharmaceutical applications of Lagenaria siceraria," *International Journal of Pharmaceutical Sciences and Invention*, vol. 1, no. 4, pp. 288–292, 2013.
5. V. Mayakrishnan et al., "Free radical scavenging potential of Lagenaria siceraria extracts," *Asian Pacific Journal of Tropical Medicine*, vol. 6, no. 1, pp. 20–26, 2013.
6. D. Kumar et al., "Pharmacognostical and phyto-chemical profile of Lagenaria siceraria," *British Journal of Pharmaceutical Research*, vol. 7, no. 5, pp. 340–352, 2015.
7. S. Minocha, "Overview on Lagenaria siceraria," *Journal of Biomedical and Pharmaceutical Research*, vol. 4, no. 3, 2015.
8. A. N'dri et al., "Dispersal of bottle gourd from Africa," *Plant Molecular Biology Reporter*, vol. 34, pp. 454–466, 2016.
9. D. S. Decker-Walters et al., "Genetic assessment of wild bottle gourd," *Economic Botany*, vol. 58, no. 4, pp. 501–508, 2004.
10. B. N. Shah and A. K. Seth, "Pharmacognostic studies of Lagenaria siceraria," *International Journal of PharmTech Research*, 2010.
11. C. A. Rice-Evans and N. J. Miller, "Antioxidant activities of flavonoids," *Biochemical Society Transactions*, vol. 24, no. 3, 1996.
12. R. P. Prajapati et al., "Phytochemical and pharma-cological review of Lagenaria siceraria," *Journal of Ayurveda and Integrative Medicine*, vol. 1, no. 4, 2010.
13. B. V. Ghule et al., "Anti-inflammatory activities of Lagenaria siceraria extract," *Pharmacognosy Magazine*, vol. 2, no. 8, 2006.
14. CSIR, *The Wealth of India: Raw Materials*, New Delhi, 2004.
15. P. K. Warrier et al., *Indian Medicinal Plants*, Orient Longman, 1995.
16. C. K. Kokate et al., *Pharmacognosy*, NiraliPrakashan, 1999.

✼✼✼✼✼✼✼✼✼✼✼✼✼

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

In The Shade of Tagore's Groves and Chopin's Waters: Ecocritical Reflections

Shivashree Chail*

*Research Scholar (English) Ranchi University, Ranchi (Jharkhand) INDIA

Abstract: In the soft rustle of leaves, the murmur of rivers, and the whisper of winds, nature reflects stories of life, loss, resilience, and hope. Yet, as human ambition reshapes forests, rivers, and skies, it leaves scars that take centuries to heal. This paper explores how literature bears witness to this conflict, revealing the ethical and emotional ties between humans and the natural world. Focusing on Rabindranath Tagore and Kate Chopin, it shows how writers give voice to nature while reflecting on human choices. Tagore's landscapes embody harmony, interconnectedness, and ecological awareness, while Chopin's seas and islands become spaces of freedom, especially for women, drawing parallels between human oppression and environmental vulnerability. The study also examines ecocriticism and its links with Ecofeminism, Deep Ecology, and Social Ecology. It highlights how literary devices like imagery and symbolism challenge human-centered thinking and foster responsibility toward all forms of life. Ultimately, literature emerges as an ethical guide that inspires reflection, empathy, and respect for the fragile balance sustaining our planet.
Keywords: Nature, deep ecology, environment, ecological consciousness, interconnectedness.

Introduction - In the contemporary world, the relationship between humans and nature stands on the edge of crisis, demanding a serious reassessment of our environmental responsibilities. Ecocriticism, a term introduced by William Rueckert in 1978 in Literature and Ecology: An Experiment in Ecocriticism, provides a powerful lens to examine this connection. It is not merely the study of nature in literature but an ethical approach that challenges anthropocentrism and encourages a deeper engagement with the natural world, viewing it as a life-sustaining partner rather than a resource for exploitation.

In India, this ecological consciousness has ancient roots in texts like the Mahabharata and the Ramayana, where nature is portrayed as a living, active presence. This tradition continues in the works of writers such as Rabindranath Tagore, Amitav Ghosh, and Arundhati Roy.

This essay explores the evolution of ecocriticism and its connection with Ecofeminism, showing how literature reveals humanity's moral and spiritual duty toward nature, much like Mahasweta Devi's Draupadi symbolizes resistance against oppression.

Main Thrust: A growing consciousness regarding the fragile state of our natural environment has, over the past few decades, found a profound voice in literature under the banner of Ecocriticism. Coined by William Rueckert in 1978 in his pioneering essay, "Literature and Ecology: An Experiment in Ecocriticism," the term signifies more than a mere study of natural landscapes or pastoral imagery; it encompasses an earnest reflection on the intricate, often precarious relationship between humanity and the broader ecological world. Ecocriticism invites readers to probe beneath the surface of literary texts, revealing the ways in which human society interacts with, disrupts, and depends upon the natural environment. At its core, ecocriticism fosters the recognition that human existence is inextricably linked with the life forms and landscapes surrounding us, and that any imbalance within this web of life reverberates across both human and non-human spheres.

Contrary to traditional approaches that often portray nature as a passive backdrop or a resource to be exploited, ecocritical literature challenges anthropocentric assumptions. It argues that humans are neither the ultimate arbiters nor the sole beneficiaries of life on Earth. Instead, all species—animals, plants, rivers, and forests—possess intrinsic worth, deserving of ethical consideration and protection. Lawrence Buell, a leading voice in the field, defines ecocriticism as "a study of the relationship between literature and the environment," emphasizing the ethical, aesthetic, and cultural responsibilities embedded within literary engagement. Through this lens, literature becomes a vehicle for ecological awareness, nurturing a moral imagination attuned to the interdependence of all beings.

Building upon the ethical and aesthetic dimensions of ecocriticism, one observes that literature often serves as a bridge between human consciousness and ecological awareness. Writers and poets, through their nuanced

engagement with the natural world, illuminate the intricate interconnections that sustain life. Rabindranath Tagore (1861–1941), India's Nobel laureate, exemplifies this ecocritical sensibility in both his literary and social endeavors. For Tagore, nature was never a mere backdrop for human activity; it was an active participant in life's unfolding, endowed with emotion, intelligence, and presence. Trees, rivers, clouds, and flowers were imbued with vitality and significance, reflecting a sophisticated understanding of what modern ecologists term Deep Ecology—the philosophy that all living beings possess inherent value, independent of their utility to humans. In his poems, Tagore often anthropomorphizes nature, describing clouds that "come floating into my life, no longer to carry rain or usher storm, but to add colour to my sunset sky," thus weaving human emotional experience with natural phenomena in a manner both intimate and ecologically aware.

Tagore's ecological consciousness was not confined to literary imagination; it extended into tangible social action. He organized tree-planting initiatives, promoted awareness about conservation, and advocated harmonious interaction with the environment long before environmental concerns became global imperatives. His vision of humanity's relationship with nature was both spiritual and ethical, emphasizing gratitude, respect, and reciprocity rather than dominion and exploitation. By presenting humans as collaborators rather than conquerors, Tagore's works model the transformative potential of literature: to reflect, inspire, and cultivate ecological responsibility.

Contemporary ecocriticism, while informed by such philosophical and literary legacies, has also expanded to encompass multiple critical frameworks, including Ecofeminism, Social Ecology, and Eco-Marxism. Ecofeminism, in particular, explores the parallels between the subjugation of women and the exploitation of the natural environment. By linking the oppression of female bodies with the degradation of natural ecosystems, ecofeminist literature underscores the shared structures of domination embedded in patriarchal societies. Both women and nature have historically been treated as passive, vulnerable, and expendable; literature exposes these parallels, advocating for liberation, equality, and ethical stewardship.

One illustrative example of ecofeminist insight can be found in Kate Chopin's The Awakening (1899). Though not explicitly an environmental text, Chopin's novel intricately connects the protagonist Edna Pontellier's quest for autonomy with the natural world. Edna frequently seeks refuge in water and open landscapes, where she experiences freedom and self-recognition, free from the constraining judgments of society. Nature, in this context, functions as a sanctuary and as a mirror of emotional liberation. A descriptive passage reads, "a breeze blowing, choppy stiff wind that whipped water into froth. It fluttered the skirts of the two women…," capturing how the elemental forces of wind and water allow Edna to momentarily escape the pressures of her prescribed social role, emphasizing her inseparable bond with nature.Edna's immersion in nature in Chopin's narrative underscores a central tenet of ecocriticism: that human liberation and ecological awareness are often intertwined. The natural environment is not merely a passive setting but a participant in human transformation, offering reflection, solace, and guidance. This intimate reciprocity between humans and their surroundings challenges the entrenched homocentric worldview, reminding readers that the health of our psyche and society is inseparable from the health of the natural world. Through literature, one begins to perceive the destructive consequences of neglecting this interconnection, as exploitation, pollution, and environmental degradation reverberate across both human and non-human domains.The homocentric attitude that prioritizes human desires at the expense of ecological balance has been a driving force behind contemporary environmental crises. Deforestation, industrial pollution, overfishing, and climate change are symptomatic of a worldview that regards the Earth as a repository of resources for human consumption. Ecocritical literature, however, consistently calls for a reorientation of this mindset, urging readers to consider the intrinsic value of all life forms. It fosters an awareness that ethical and sustainable living depends on humility, respect, and recognition of the interdependence of all beings. In this context, ecocriticism operates not merely as an academic exercise but as a moral and social intervention, bridging the gap between knowledge and action.

India's literary tradition offers abundant examples of texts resonant with ecological consciousness. Beyond Tagore, contemporary authors such as Amitav Ghosh and Arundhati Roy engage deeply with environmental concerns in their narratives, weaving ecological themes into complex social, political, and cultural landscapes. Ghosh's work, for instance, often emphasizes the fragile coexistence of human and non-human life, highlighting the consequences of human intrusion and exploitation. Similarly, Roy's narratives interrogate the social dimensions of ecological destruction, revealing how marginalized communities disproportionately bear the brunt of environmental degradation. Through their writing, these authors extend ecocriticism beyond aesthetic appreciation, emphasizing the urgency of ethical responsibility, collective action, and systemic change.The roots of ecocritical thought, however, are not limited to modern texts. In Indian epics like the Mahabharata and Ramayana, nature is imbued with spiritual significance, portraying rivers, forests, and animals as sentient participants in human destiny. Sacred groves, venerated rivers, and temple gardens represent more than religious symbolism; they signify a cultural recognition of the interdependence of life. Such narratives implicitly advocate a worldview in which humans are part of a broader

ecological matrix rather than its rulers, anticipating many of the insights articulated by contemporary ecocritics.

By tracing these literary and cultural connections, ecocriticism reveals the profound ways in which literature can shape ecological consciousness. Through imaginative engagement, readers are invited to experience empathy not only for other humans but for the non-human world, recognizing that ethical responsibility extends across species and ecosystems. Literature, in this sense, becomes both mirror and moral compass, reflecting the consequences of human action while guiding readers toward sustainable, respectful coexistence with the natural environment.This deep interconnection between literature and ecological consciousness is further amplified through the lens of Ecofeminism, which highlights the parallel oppression of women and nature in patriarchal societies. Both have historically been treated as passive, expendable, and subject to domination, a pattern that literature has repeatedly exposed. Ecofeminist readings assert that just as women's voices have been silenced, natural ecosystems have been exploited, resulting in ecological and social imbalance. By examining this dual subjugation, literature encourages a recognition of power structures, inviting both men and women to reevaluate their responsibilities toward the environment. Nature, like women, becomes both symbol and subject—bearing witness, enduring exploitation, yet offering resilience and regeneration. This perspective allows readers to see ecological degradation not only as a physical crisis but also as a moral and ethical failure of society.

Tagore's works exemplify this harmonization of ethical awareness with artistic expression. His poetry, stories, and plays consistently highlight how human existence is intertwined with natural rhythms, seasons, and landscapes. In the poem "On the Nature of Love," he celebrates the sensory richness of forests, describing "scents, touches, sounds, snatches of songs [that] brush us, pass us, give us delightful shocks." Here, the forest is not merely a repository of trees but a living, breathing entity interacting with humanity in mutually enriching ways. By attributing vitality, joy, and emotional resonance to natural elements, Tagore anticipates modern ecocritical notions, framing nature as a partner rather than an object of exploitation. Contemporaryecocritical discourse builds upon these foundations, expanding into diverse literary forms and thematic concerns. Deep Ecology emphasizes the intrinsic value of all life; Social Ecology critiques the structural inequalities that exacerbate environmental crises; Eco-Marxism interrogates the socio-economic forces driving ecological destruction. Across these approaches, literature is recognized as a vehicle for ethical reflection, advocacy, and transformation. Writers, poets, and philosophers—ranging from Tagore to Roy, Ghosh, and beyond—demonstrate how storytelling can illuminate the consequences of environmental negligence while inspiring more sustainable, equitable practices.The symbolic use of nature in literature is also evident in the spatial and elemental metaphors that authors employ. Water, wind, forests, and islands often represent freedom, refuge, and renewal, as seen in Kate Chopin's The Awakening, where the protagonist Edna turns to the sea and open landscapes for liberation from societal constraints. Similarly, Indian epics depict forests as spaces of spiritual retreat and ethical challenge, rivers as purifiers, and animals as divine agents. These narratives collectively reinforce the principle that human life cannot be disentangled from its ecological context, and that sustainable living requires both awareness and humility.

Ultimately, ecocriticism bridges imagination and action, offering a vision of human life that honors interconnectedness and balance. By fostering empathy for non-human beings, celebrating natural cycles, and exposing the consequences of domination, ecocritical literature invites a transformative ethical engagement. It reminds us that the health of ecosystems, the dignity of women, and the well-being of human society are inseparable, and that literature remains a crucial conduit for awakening the consciousness required to navigate an ecological age.

The culmination of ecocritical inquiry in literature lies in its ability to transform awareness into ethical responsibility, urging humanity to rethink its place within the natural world. As we observe the persistent environmental crises—deforestation, air and water pollution, climate change, and the extinction of species—it becomes evident that literature's role is not merely reflective but prescriptive, providing both cautionary insight and moral guidance. By engaging with texts that foreground ecological interdependence, readers are encouraged to cultivate empathy, respect, and stewardship, recognizing that every action, however small, reverberates across the intricate web of life. This holistic perspective challenges the anthropocentric belief that humans are the ultimate arbiters of existence, emphasizing instead the necessity of humility and reciprocity in our interactions with nature.

Ecofeminist perspectives reinforce this understanding, revealing how systems of oppression intersect across gender and environmental exploitation. Women and nature have frequently been objectified, silenced, and subjugated, yet literature consistently highlights their resilience, agency, and interconnectedness. In The Awakening, Edna's retreat to the sea embodies both liberation and communion with natural forces, illustrating how the emancipation of self can coincide with an ecological sensibility. Likewise, Indian epics and cultural practices underscore a profound recognition of interdependence, with sacred groves, rivers, and animals symbolizing the ethical and spiritual dimensions of human life. Such narratives remind us that respect for women and respect for nature are inseparable ethical imperatives, and that ignoring either threatens the balance and sustainability of society.Modern Indian literature continues to advance this dialogue, with authors like Amitav Ghosh and Arundhati

Roy intertwining ecological concerns with social, political, and cultural narratives. Their works demonstrate that environmental degradation is never isolated from human activity, but deeply entwined with issues of class, marginalization, and governance. Literature, therefore, becomes a medium through which readers can apprehend both the beauty and fragility of the natural world, while simultaneously recognizing their responsibilities within it. By portraying nature as a partner, participant, and moral touchstone, these texts encourage a shift from domination to stewardship, from exploitation to ethical coexistence.

Ultimately, ecocriticism affirms that human flourishing is inseparable from ecological balance. Literature that foregrounds environmental consciousness—whether through the poetic reflections of Tagore, the narrative arcs of Chopin, or the socially engaged novels of contemporary authors—invites us to reconsider our place within the natural order. It calls for a departure from a homocentric worldview toward a more inclusive, egalitarian perspective that honors all life forms. In embracing this vision, readers are not only educated aesthetically but morally, inspired to act with awareness, compassion, and reverence for the interconnected web of existence that sustains us all.

Thus, literature, through the lens of ecocriticism, emerges as a vital instrument for cultivating ecological consciousness, ethical reflection, and social responsibility. It bridges imagination and action, fostering empathy for both human and non-human life. By engaging with literary texts that celebrate, interrogate, and protect the natural world, humanity can begin to reconcile its ambitions with the imperatives of ecological balance, forging a path toward a more harmonious, sustainable, and just coexistence on this fragile planet we call home.

Conclusion: Ultimately, ecocriticism is not merely a study of literature; it is a call to ethical awareness, a lens through which the intertwined destinies of humanity and nature can be recognized and respected. Just as Mahasweta Devi's Draupadi stood fearless against the forces of oppression, literature imbued with ecocritical consciousness confronts the homocentric mindset, challenging humanity to reconsider its dominance over the natural world. Through the works of Tagore, Chopin, Ghosh, and Roy, readers witness the myriad ways in which human actions disrupt ecosystems, exploit resources, and perpetuate inequalities—yet these texts also illuminate paths toward empathy, responsibility, and coexistence.In this light, ecocritical literature becomes both mirror and moral compass, reflecting the consequences of neglect while guiding humanity toward sustainable, equitable, and compassionate engagement with all forms of life. By embracing this vision, we are reminded that nature is not a backdrop for human ambition but a living, breathing participant in the drama of existence. The earth, with its rivers, forests, animals, and skies, demands not mere survival but reverence. The task of literature, and of readers alike, is to honor this interdependence, to act with awareness, and to ensure that the world we inhabit today is preserved, restored, and celebrated for generations yet to come.

References:-

1. Buell, Lawrence. *The Environmental Imagination: Thoreau, Nature Writing, and the Formation of American Culture. Belknap Press*, 1995.
2. Chopin, Kate. *The Awakening.* Herbert S. Stone & Co., 1899.
3. Garrard, Greg. *Ecocriticism.* 2nd ed., Routledge, 2012.
4. Glotfelty, Cheryll, and Harold Fromm, editors. *The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology*. University of Georgia Press, 1996.
5. Heise, Ursula K. *Sense of Place and Sense of Planet: The Environmental Imagination of the Global*. Oxford University Press, 2008.
6. Merchant, Carolyn. *The Death of Nature: Women, Ecology, and the Scientific Revolution.* HarperOne, 1980.
7. Plumwood, Val. *Feminism and the Mastery of Nature*. Routledge, 1993.
8. Rueckert, William. *"Literature and Ecology: An Experiment in Ecocriticism." Interdisciplinary Studies in Literature and Environment*, vol. 1, 1978, pp. 1–14.
9. Tagore, Rabindranath. *Gitanjali: Song Offerings*. Macmillan, 1912.
10. Tagore, Rabindranath. *The Gardener*. Macmillan, 1913.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Organic Mulching-Physical Properties and Adoption in Nimar Region

Kumud Dubey* Avinash Dube**

***MLC Govt. Girls P. G. College, Khandwa (M.P.) INDIA**
**** PMCoE Shri Neelkantheshwar Govt. P. G. College, Khandwa (M.P.) INDIA**

Abstract: Organic mulching is a simple, effective, easily applicable agricultural practice. Organic mulching is a highly beneficial practice that support soil conservation, water saving, weed control and improved plant growth. Due to economic and environmental benefits this technique is considered as an essential practice. It is seen that it is widely used by farmers inNimar Region due to its low cost and ecofriendly nature.
Keywords: Organic Mulching, Mulch Materials, Ecofriendly.

Introduction - Agriculture is backbone of our country and economy. New technology highly affected the agriculture, with adoption of smart practices. Organic mulching is a widely adopted agricultural and horticulture practice that involves covering the soil surface with naturally available materials like straw, leaves, crop residuals, wood chips, compost etc.

The technique is used to improve soil health, conserve moisture and support sustainable farming. Layers of materials in the form of mulch act as a protective layer over the soil, reducing water evaporation and maintaining a stable soil temperature.Ondecomposing of mulch materials nutrients and organic materials added in the soil, which improve soil fertility. It reduces the need for frequent irrigation and protects plants from extreme weather conditions. Organic mulching helps prevent soil erosion caused by wind and rain. It helps healthy plant growth without relying heavily on chemical fertilizers.

Farmers of Nimar Region has also adopted organic mulching practices. As the area is with a semi-arid climate and with an average rainfall, organic mulching helps conserve soil moisture and protects crops from excessive heat.The present study is made to analyze adoption of organic mulching and physical properties of the material used for mulching as it is a cast effective and environmentally friendly technique that is essential for sustainable farming.

Technique of Organic Mulching: The technique begins with cleaning of field and irrigation if the soil is dry. Available organic materials like dry leaves, straw, gross- clippings, compost bark, farmyard manure, plant part trashes etc. collected and evenly spread on the soil surface.The mulch layer is usually applied 5-10 cm thick around crops or garden plants and trees.

As the organic material decompose with action of moisture, they add humus and nutrients to the soil. It improves soil structure and microbial activity. Mulching helps reduce evaporation, maintain soil moisture for a longer time. Mulching also regulates soil temperature.

Physical Properties of Organic Mulch: Organic mulch totally composed natural materials. Organic mulch materials vary with places to places. The physical properties include bulk density, water holding capacity, thermal conductivity, permeability, decomposition rates.

1. **Bulk density:** Bulk density refers to the mass of mulch per unit volume. Organic mulches generally have low bulk density, making them light and porous. This enhances soil actions and reduces soil compaction. Mulching significantly decreases soil bulk density while increases porosity, allowing better root penetration and gas exchange.
2. **Porosity:** Organic mulch materials contain many pore spaces that allow air and water movement. High porosity in soil improves aeration which promote healthy root growth. It also helps in retaining moisture by reducing evaporation from the soil surface. It also provides suitable conditions for the microbe's growth.
3. **Water Holding Capacity:** Organic materials can absorb and retain large amount of water. Dry grasses, straw and compost can hold moisture for a long time, helping plants survival during dry periods. It helps in conserve water, prevents rapid runoff and increases water infiltration in to the soil.
4. **Texture:** Components of mulch may vary in texture. It may be coarse or fine. Texture influences water infiltration, aeration and the ability of mulch to suppress weeds. Fine mulches breakdown quickly and improves soil structure faster, while coarse mulches allow better air circulation.
5. **Thermal Properties:**organic mulches act as insulating

materials that moderate soil temperature. It helps to keep soil cool in hot weather by reducing direct sunlight, and in winter it helps to keep soil warmth, protect plant root system from cold injury. The thermal property creates a stable environment for microbial activitiesand for seed germination.

6. Surface Reflectivity: Dark coloured mulches absorb more solar radiation and warm the soil faster, while light-coloured mulches reflect sunlight and keep the light cooler. The colour of mulch therefore affects plant growth and seasonal soil management practices. For example, dark compost may increase soil temperature in cooler climate and straw mulch helps in reducing heat buildup in tropical regions. Light blocking ability of mulches are highly effective in controlling weed growth via reducing the germination of weed seeds, because a thick mulch layer prevents sunlight from reaching the seeds.

Benefits of Organic Mulching: Farmers have practical mulching for centuries because of its numerous advantages. Common organic mulching materials includes straw and hay, dry leaves, bark, wood chips, compost, saw dust, crop residues, dry grasses, husk etc. The layer with these materials acts as a protective layer between the soil and the atmosphere. There are many advantages of using organic mulching, some of which are:

a) Soil Structure Improvement: As organic matter decomposes, it binds soil particles and increase soil porosity, It also prevents soil hardening. The structure of soil support healthy root growth and increases the ability of plants to absorb water and nutrients more efficiently.

b) Soil Moisture Prevention: The mulch layer reduces evaporation from the soil surface by blocking direct sunlight and wind exposure. So, soil can retain water for a larger time,irrigationrequirement become less. Soil moisture conservation improve plant growth.

c) Weed Control: The mulch blocks sunlight to reach in soil so prevents seed germination of weed plants. Crop face less competition for nutrients, water and space.

d) Soil Fertility: As organic mulches decompose; it adds humus and nutrients to the soil. Microbes and earthworms also develop in the soil.

Present scenerio in Nimar Region: The Nimar Region of Madhya Pradesh is predominating a rainfed agricultural area where Soyabean, Cotton, Wheat, Maize and Pulses are major crops. The area with an average rainfall of 910 mm. In recent years the adoption of organic mulching has emerged as an important component of sustainable and organic farming systemsin the region.

Farmers of the area are increasingly recognizing the ecological, economic and agronomic benefits of mulching. Farmers have reported that mulched fields retain moisture for longer periods. Farmers also observed improvement in soil fertility and crop yield quality after using crop residues and biomass as mulch.

The role of farmer training and extension services has been crucial in promoting mulching practices in the region. The adoption pattern in the area also varies as the areas where better availability of biomass has higher acceptance of mulching practices. It means local resource availability strongly influences the success of organic mulching adoption.

Limited availability of biomassfor mulching become limitation for adoption. Crop residues are mostly used as fodder for cattle. Availability of labour, lack of awareness and technical knowledge among farmers also limits adoption of rates.

Concluding Remarks: Organic mulching makesuse of agricultural waste and biodegradable materials. By recycling these materials mulching reduces environmental pollution and support sustainable farming. Mulch materials are having unique features which make organic mulching ecofriendly.

References:-

1. Mairata A. etal.(2024), Organic mulching versessoil conservational practices in Vineyards. A comprehensive study on plant physiology. Agronomic and Grape quality effects, Agronomy, Vol.14 (10), 2014.
2. Md. Mollah etal. (2025), Potential organic Mulches for Sustainable Agricultural Production and Improving Soil Environment, Int. Journal of Environmental Sciences, Vol 11 (8).
3. Parida PK etal (2023), Effect of organic mulches on yield water Productivity and economy of gardens pea cultivators, International Journal of Environment and Climate Change, Vol 13(8), pp 1773-1783.
4. Rossi G. etal. (2024), Organic Mulching: A sustainable Technique to Improve soil quality, Sustainability, Vol.16(23) , pp 1-11
5. Solanki S & Singh GS (2025), Effect of different types of organic mulches on growth and yield of Turmeric, Journal of Advances in Biology and Biotechnology, Vol.28(10), pp 1623-1628.
6. Vanella etal (2025), Effect of organic Mulching and regulated deficit irrigation on crop water status, soil and yield features in an arrange arched under Mediterranean climate, Science of the total environment, Vol. 958 (1).
7. Zhang P. etal. (2023), Effect of organic mulching on moisture and temperature of soil in green house production of tomato under unheated greenhouse cultivation in the cold zone of china, Food Science and Nutrition, Vol. 11 (8), pp 4829-4842.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

A Legal Critical Analysis on Gender Based Relgious Violence

Dr. Shubham Bhatt*

***Assistant Professor, Motilal Nehru Law College, Khandwa (M.P.) INDIA**

Abstract: As we all know about that a gender-based religious violence refers to harm or discrimination faced by people, especially women and gender minorities, becauseof their gender as well astheirreligious identity. Thisstudyexamines howlawsrespondto suchviolenceandwhetherthey provide realprotection and justice to victims. It looks at constitutionalrights, criminal laws, and human rights principles to understand how legal systems try to prevent violence and punish offenders. The paper also highlights important challenges, such as victims being afraid to report crimes, socialstigma, lackofawareness, and some werebiaswithin institutions likethepolice or courts.

The analysis explores the difficult balance between protecting freedom of religion and ensuring gender equality. In some situations such as cultural or religious practices may be used to justify harmful behavior, which makes legal intervention and more complex. The study uses feminist and intersectional perspectives to explain how individuals can face multiple forms of discrimination at the same time due to gender, religion, and social background.

By reviewing legal cases, policies, and social human rights standards, the research identifies gaps between what laws promise and what actually happens in real life. It argues that stronger legal protections, gender-sensitive approaches, better law enforcement, and improved support systems for victims are necessary. The main aim of the study is to critically examine and encourage the development of fair and effective legal frame works that respect religious freedom while also protecting fundamental human rights. Ultimately, the research seeks to promote justice, equality, and safety for individuals affected by gender-based religious violence.

Introduction - Gender-based religious violence means hurting or treating someone badly because of their gender and religion. It mostly affects women and some times people from other gender groups. In many societies, religion influences how people think about men and women and what roles they should have. Sometimes, religious beliefs are used in the wrong way to control women or deny them equal rights. As we all known about that we are facing so many problems regarding the gender based religious violence which can not be tolerate more. people live in india from different state, different religion, different cast, different colour and even different sex. But even in present condition people are facing religion problem which is not fully justified.

This kind of violence often increases during religious conflicts or communal riots. In such situations, women are usually the most affected. They may face harassment, sexual violence, forced conversion, or social boycott. In many communities, women are seen as symbols of family or community honor, and this makes them more vulnerable during religious tensions.

From a legal point of view, gender-based religious violence is a violation of human rights. In India, the Constitution gives equal rights to all citizens. Article 14 talks about equality before the law, and Article 15 says that no one should be discriminated against on the basis of religion, race, caste, sex, or place of birth. At the same time, the Constitutional so gives people the right to follow their religion.

During the last few year we seen so much problem regarding discrimination on religious caste and this effect directly not towards the society but against the whole nation. At the international level, documents like the Universal Declaration of Human Rights and the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women protect people from discrimination and violence.

A legal critical analysis helps us understand whether the current laws are strong enough to protect women and ensure both equality and religious freedom. A legal critical analysis of gender-based religious violence examines not only the existing legal framework but also its effectiveness, limitations, and gaps. It questions whether current laws adequately protect victims and whether legal institutions are sensitive to the intersection of gender and religion. This analysis also explores the need for stronger implementation mechanisms, judicial activism, and reforms to ensure that constitutional values of equality, secularism, and human

dignity are fully realized in practice.

Meaning of gender based religious violence: There was not a any specific definition regarding on gender based religion violence but we can say that a Gender-based religious violence refers to acts of violence, coercion, or discrimination targeting individuals based on their gender and interpreted through a religious lens, often aiming to enforce specific gender roles or punish violations of religious norms. This includes forced marriage, sexual exploitation, or violence justified by interpretations of religious doctrines.

Objectives of the Study:

1. To understand the meaning and concept of gender-based religious violence and how gender and religion together create discrimination and violence.
2. To study the historical background of gender-based religious violence and examine important examples from India and other countries.
3. To examine the constitutional provisions in India, especially Articles 14, 15, and 25–28, which deal with equality and freedom of religion.
4. To analyze the role of laws and legal systems in preventing and punishing gender-based religious violence.
5. To study international legal protections, such as the Universal Declaration of Human Rights and the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women, that promote gender equality and protect women from violence.

Historical approach on Gender-Based Religious Violence: Gender-based religious violence has been present for a very long time. In ancient and medieval times, religion played a big role in deciding how men and women should live. In many societies, men were given more power, and women were expected to stay at home, follow strict rules, and obey male family members. Some religious beliefs and customs were used to justify unequal treatment of women.

During religious wars and conflicts, women often suffered the most. When two religious groups fought, women were sometimes attacked to insult or take revenge against the other community. They faced problems like kidnapping, sexual violence, forced marriage, and forced conversion. Women were seen as symbols of family or community honor, so harming them was used as a way to hurt the whole group.

During the colonial period in India, social reform movements began challenging harmful religious practices. Reformers like Raja Ram Mohan Roy opposed practices such as Sati, which was later abolished under British rule. Similarly, Ishwar Chandra Vidyasagar worked towards widow remarriage rights. These reforms marked the beginning of legal intervention in religious customs that harmed women.

Over time, many countries and international organizations have made laws to protect women from such violence. However, gender-based religious violence still happens in different parts of the world. Gender-based religious violence has been happening for many centuries. In old times, religion strongly influenced society and family life. Men were usually given more power, and women were expected to follow strict social and religious rules. Sometimes, religious teachings were interpreted in a way that limited women's freedom and justified unequal treatment.

During religious wars and conflicts, women often became the main victims. For example, during the medieval Crusades between Christians and Muslims, many women suffered violence, kidnapping, and forced marriages. Women were often targeted because harming them was seen as a way to insult the entire community.

In India, one of the most serious examples is the Partition of India in 1947. When India and Pakistan were separated, large-scale violence broke out between Hindu, Muslim, and Sikh communities. Thousands of women were abducted, sexually assaulted, or forced to convert their religion. Women's bodies were used as tools of revenge and humiliation during this time.

These examples show that when religion and gender discrimination come together, women often suffer the most. Over time, many laws and international agreements have been created to protect women's rights. However, such violence still continues in some parts of the world. Understanding these real-life examples helps us see why strong legal protection and social awareness are necessary to prevent gender-based religious violence.

Problems of Religious Discrimination in Society: Religious discrimination creates many serious problems in society. Some of them are explained below in simple words:

1. Damage to Property and Life Religious conflicts can cause damage to homes, shops, and religious places. Sometimes innocent people lose their lives.
2. Lack of Job Opportunities People may not get jobs or promotions because of their religion. This makes it difficult for them to earn money and live a good life.
3. Use of Religion for Politics Sometimes leaders use religion to divide people and gain support. This increases misunderstanding and weakens unity.
4. Fear and Insecurity People who face discrimination may feel unsafe in their own country. They may avoid public places or hide their religious identity.
5. Restriction on Religious Freedom Some people may not be allowed to wear religious clothes, celebrate festivals, or follow their religious customs freely.
6. Sexual Violence During Religious Conflicts During religious riots or conflicts, women are often targeted. They may face rape, harassment, or assault as a way to insult or take revenge against a community.
7. Forced Conversion and Marriage Some women and girls are forced to change their religion or marry against their will. This violates their freedom and basic human rights.
8. Restrictions on Education In some extremist situations,

girls are not allowed to go to school in the name of religion. This limits their future opportunities.

9. Strict Dress Codes Women may be forced to wear certain clothes or follow strict rules about their appearance based on religious beliefs, even if they do not agree.
10. Limited Participation in Religious Activities Women may not be allowed to enter certain religious places or take leadership roles in religious institutions.
11. Domestic Violence Justified by Religion In some cases, religious teachings are wrongly used to justify controlling or abusing women inside the family.
12. Social Boycott and Isolation Women who refuse to follow certain religious customs may be socially excluded or boycotted by their community.
13. Psychological Trauma Victims of gender-based religious violence often suffer from fear, depression, and long-term emotional pain.
14. Lack of Legal Support Many women do not report such violence because of fear, shame, or lack of proper legal protection.
15. Violation of Fundamental Rights Gender-based religious violence goes against the right to equality and dignity guaranteed by the Constitution of India and international laws like the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women. While religious discrimination is a serious problem that affects equality, peace, and development in society. It is important to promote respect and understanding among all religions.

Solution regarding gender based religious problem: Gender-based religious violence is a serious issue, but it can be reduced through strong laws awareness, and social change. Some important solutions are:

1. Strong Implementation of Laws The government must strictly enforce laws that protect equality and punish violence. Articles 14 and 15 of the Indian Constitution guarantee equality and prohibit discrimination. Proper implementation of constitutional fundamental right is very important. Because its essentials to every person.
2. Equal Education for All Education plays a major role in changing mindsets. Schools and colleges should teach values like equality, respect, and religious tolerance. Girls must be given equal access to education. It seems that in a village level place are always find out the discrimination on the basis of cultural socio, economic and also on the base of religion also.
3. Awareness Programs Public awareness campaigns should be conducted to inform people about women's rights and human rights. Society must understand that violence in the name of religion is wrong. Government should must also become the part of social awareness. But govt. only approach of social awareness on the of election propaganda.
4. Women Empowerment Women should be economically and socially empowered. Providing job opportunities, skill training, and financial support can help them become independent and confident. Such as educational society and NGO are also help them regarding towards women empowerment.
5. Legal Support and Fast Justice Victims should get quick legal help and protection. Special courts and strict punishment for offenders can reduce such crimes.
6. Interfaith Dialogue Religious leaders from different communities should promote peace and equality. Positive interpretation of religious teaching can help reduce discrimination.
7. International Protection International agreements like the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women support gender equalityand encourage governments to take action.
8. Strict Action Against Hate Speech The government must take strict action against those who spread religious hatred or violence.

Legal frame work regarding gender based religious discrimination: India is a secular country, and the law protects every person from discrimination on the basis of religion. The following laws apply:

1. Constitution of India

The Constitution of India provides important protections:

Article14– Guarantees equality before the law.

Article 15 – Prohibits discrimination on the grounds of religion, race, caste, sex, or place of birth.

Article16– Provides equal opportunity in public employment.

Articles 25–28 – Guarantee freedom of religion, including the right to practice, profess, and propagate religion.

Article 21 – Protects the right to life and personal liberty, which includes the right to live with dignity.

2 TheBharatiya Nyaya Sanhita (BNS): The Indian Penal Code contains provisions to punish religious hatred and violence:

1. Promoting Enmity and Causing Disharmony (BNSSection196): This section replaces IPC Section 153A and punishes promoting disharmony or enmity between groups through words, signs, visible representations, or electronic communication. It also covers organizing activities intended to train people in violence against religious groups. The punishment is up to 3 years, a fine, or both, with a higher penalty of 5 years and a fine if committed in a place of worship. These offenses are cognizable and non-bailable.

2. Outraging Religious Feelings (BNSSection299): Replacing IPC Section 295A, this section penalizes deliberate and malicious acts, including through electronic means, that are intended to outrage the religious feelings of any group by insulting their religion or beliefs. Offenders can face imprisonment up to 3 years, a fine, or both. This is a cognizable and non-bailable offense.

3. Disturbing Religious Assembly (BNSSection300): This section replaces IPC Section 296 and punishes anyone

who voluntarily disturbs a religious assembly or ceremony. The penalty is imprisonment up to 1 year, a fine, or both.

4. Trespassing/Insulting Places of Worship (BNSSection301): Replacing IPC Section 297, this section prohibits trespassing on burial grounds or places of worship with the intent to insult a religion or wound feelings, as well as offering indignity to a corpse with the same intent. The punishment is up to 1 year of imprisonment, a fine, or both.

5. Uttering Words to Wound Religious Feelings(BNS Section 302): This section, which replaces IPC Section 298, punishes intentionally wounding the religious feelings of any person through words, sounds, gestures, or objects. The penalty is up to 1 year of imprisonment, a fine, or both.

6. Mob Lynching (BNS Section103(2)): A new provision, this section addresses murder committed by a group of five or more individuals based on grounds such as race, caste, community, personal belief, or language. The punishment is life imprisonment or the death penalty.

7. Statements Conducing to Public Mischief(BNS Section 353): Replacing IPC Section 505, this section criminalizes making, publishing, or circulating statements, rumors, or reports that are likely to cause fear, alarm, or incite one community against another. The punishment is up to 3 years of imprisonment.

3. Protection of Human Rights Act,1993: The Protection of Human Rights Act establishes the National Human Rights Commission (NHRC) to protect individuals from human rights violations, including religious discrimination.

4. Representation of the People Act,1951: The Representation of the People Act prohibits the use of religion to seek votes during elections.

1. Corrupt Practices (Section 123(3) and 123(3A)):The Act deems it a "corrupt practice" for a candidate or their agent to appeal for votes or appeal to refrain from voting based on religion, race, caste, community, or language. It also prohibits creating hatred or enmity between different classes of citizens on religious grounds.
2. Promotion of Enmity (Section 125):This section makes it a punishable offense to promote feelings of enmity or hatred between different classes of citizens on grounds of religion, race, caste, community, or language during an election campaign.
3. Disqualification(Section8):A person convicted of offenses related to religious hatred or promoting enmity is disqualified from contesting elections.

5. The Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023 (BNSS)

1. Banon Publications Promoting Religious Hatred(OldSection95CrPC) New Provision: Section 135of BNSS(corresponding to Section95 ofCrPC).

Description: This section empowers the state government to declare certain publications (newspapers, books, documents) as forfeited if they promote enmity between different religious groups, cause disharmony, or outrage religious feelings (related to Section 196 and 298 of Bharatiya Nyaya Sanhita - BNS).

Action: A warrant can be issued to search for and seize such publications.

2. Preventive Action Against Communal Violence(OldSections107& 151CrPC)

Security for Keeping Peace (Old 107): Section 138 of BNSS(corresponding to Section 107 of CrPC). Allows an Executive Magistrate to ask a person to execute a bond to keep the peace for up to one year if they receive information that the person is likely to commit a breach ofpeace.

Arrest to Prevent Offences (Old 151): Section 170 of BNSS(corresponding to Section 151 of CrPC). Empowers a police officer to arrest a person without a warrant, if they know of a design to commit any cognizable offence (including communal violence), to prevent the commission of such an offence.

3. Restrictions on Gatherings/Riots(OldSection144 CrPC)

New Provision: Section 163 of BNSS (corresponding to Section144of CrPC).

Description: Empowers District Magistrates, Sub-divisional Magistrates or any other Executive Magistrate empowered by the state government to issue orders in urgent cases of nuisance or apprehended danger.

Usage: It allows authorities to restrict gatherings of five or more people, prohibit carrying weapons, or stop activities likely to cause communal tension or riots.

Duration: Generally valid for up to two months, though the state government can extend it.

6. Unlawful Activities (Prevention)Act (UAPA)

The Unlawful Activities (Prevention) Act (UAPA), 1967, originally designed to handle secessionist movements, has evolved through amendments (2004, 2008, 2012, 2019) to become India's primary anti-terror legislation, capable of addressing religious violence that threatens the sovereignty, unity, or stability of India. It defines "unlawful activity" and "terrorist act" in broad terms that cover acts, words (spoken/written), and signs that incite enmity or violence.

1. Used to take action against organizations involved in terrorism or activities that threaten religious harmony and national unity.
2. Communal Harmony Violation: It covers activities that cause or are intended to caused is affection against India or disharmony/feelings of enmity, hatred, or ill-will between different religious, racial, language, or regional groups or communities.

7. Protection of Civil Rights Act

1. Although mainly related to caste discrimination, it protects individuals from discrimination in public places, which may also connect with religious discrimination in some situations.

8. Information Technology Act

1. Section 66 and related provisions help punish online hate speech and spreading religious hatred through social

media.

9. National Commission for Minorities Act

1. Establishes the National Commission for Minorities (NCM) to protect the rights of religious minorities in India.
2. Purpose: To protect, monitor, and evaluate the safeguards provided to minorities under the Constitution and laws, as well as advise the Government on minority welfare.
3. Minority Communities: Initially, five religious communities were notified :Muslims, Christians, Sikhs, Buddhists, and Zoroastrians (Parsis). Jains were added in 2014.

10. Places of Worship(Special Provisions)Act

1. The Places of Worship (Special Provisions) Act, 1991 is an Indian law enacted to maintain the religious character of any place of worship as it existed on August 15, 1947, and to prohibit its conversion. It ensures that any temple, mosque, gurudwara, church, or monastery cannot be converted into a different religion's place of worship, preserving communal harmony.

11. Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act

1. Protects SC/ST communities from violence and discrimination, which may sometimes overlap with religious identity.
2. These laws work to protect equality ,religious freedom, and harmony in India. However, proper enforcement and awareness are necessary to prevent discrimination effectively.
3. Affirmative approach policies towards on Gender based religious violence

1. Goverment should speared the awareness regarding the discrimination on gender based religion. doing such type of activity which encourage the secularism in the country. people belong from any category but he will be not discriminated on the ground of religion, caste, colour, sex. In so many place I have seen that person belong from ST/SC community they were totally restricted to worship in a temple or even they were not organized a marriage ceremony program. They should be go out side of that village or quit the marriage or waiting for police support.
2. Stablishment of more NGO society for stop the discrimination on religion based violence and make a good approachable life towards the people. help them and provide a some guideline towards the benefit of this toxic violence.
3. While there was a most important thing is today's media ,news are play a very important role in the society. under this there was a clear crystal report to be given towards a crime. and also provide a daily circular towards there right in social media platform and ask a question from government that why a women from any community will not get a proper right.
4. It is very important that women who are belonging from any category should known their right. Know we are live in20th century in this era women are self empower now it's a time to get some opportunity and beside all the customs women should become self independent.
5. It is also very important thing is that the Education in non-violence and equality between women and men is to be very important thing in our society. without any type of violence or any type of discrimination women and children should get a proper education.

Case Study

- **Shah Bano Case (1985)–Short Note on Judgment**

Case: Mohd. Ahmed Khan v.Shah Bano Begum, (1985)2 SCC 556

The Shah Bano case is a landmark judgment of the Supreme Court of India dealing with the issue of maintenance rights of a divorced Muslim woman. Shah Bano, a 62-year-old Muslim woman, was divorced by her husband, Mohd. Ahmed Khan, through triple talaq. After the divorce, she filed a petition under Section 125 of the Criminal Procedure Code (CrPC), seeking maintenance from her husband as she was unable to maintain her self. The husband argued that under Muslim Personal Law, his responsibility was limited only to the iddat period (a short period after divorce),and therefore he was not required to provide maintenance beyond that time.

Judgment: The Supreme Court held that Section 125 CrPC applies to all citizens, irrespective of religion .The Court ruled that a Muslim husband is legally bound to provide maintenance to his divorced wife if she is unable to maintain herself, even after the iddat period. The Court emphasized that this provision is a secular law meant to prevent destitution and poverty. The judgment highlighted the importance of gender justice and equality under Articles 14 and 21 of the Constitution of India. It also observed the need for a Uniform Civil Code under Article 44 to promote national integration and gender equality.

Significance:

1. Strengthened the rights of Muslim women to claim maintenance.
2. Affirmed that secular criminal law overrides personal religious law in matters of maintenance.
3. Sparked nation wide debate on personal laws and gender justice.
4. Led to the enactment of the Muslim Women (Protection of Rights on Divorce)Act, 1986.

In conclusion, the Shah Bano judgment was a historic step toward protecting women's rights and ensuring that religious personal laws do not violate constitutional principles of equality and dignity.

- **Shayara Bano v. Union of India(2017)–Short Note on Judgment**

Citation:(2017)9SCC 1

The case of Shayara Bano v. Union of India is a landmark judgment concerning the validity of instanttripletalaq(talaq-e-biddat)underMuslimPersonalLaw.ShayaraBano challenged the practice after her husband divorced her by pronouncing triple talaq in one sitting, which immediately ended the marriage. She argued that this practice violated

her fundamental rights under Articles 14 (Right to Equality), 15 (Non-discrimination), and 21 (Right to Life and Personal Liberty) of the Constitution of India.

Judgment

Ina3:2majoritydecision, the Supreme Court declared instant triple talaq unconstitutional and void. The Court held that:

1. Triple talaq is arbitrary and violates Article14 of the Constitution.
2. It is not an essential religious practice protected under Article25(Freedom of Religion).
3. A practice that allows husband to end a marriage instantly without giving the wife any opportunity for reconciliation is unfair and discriminatory.

Significance:

1. Strengthened the protection of Muslim women's rights.
2. Confirmed that personal laws must follow constitutional principles of equality and dignity.
3. Led to the enactment of the Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019, which made instant triple talaq a punishable offense.

This judgment is an important mile stone in promoting gender justice and ensuring that religious practices do not override fundamental rights

- **Indian Young Lawyers Association v. State of Kerala**

Citation:(2019)11SCC 1

Popularly Known As: Sabari mala Temple Case

This case dealt with the constitutional validity of the practice that prohibited women between the ages of10 and 50 from entering the Sabari mala Temple in Kerala. The restriction was based on

The belief that Lord Ayyappa is a celibates it and that women of menstruating age should not enter the temple.

The petitioners argued that the ban violated fundamental rights guaranteed under the Constitution of India, especially:

1. Article14(Right to Equality)
2. Article15 (Prohibition of discrimination on grounds of sex)
3. Article25(Freedom of Religion)

Judgment:

Ina4:1 majority decision(2018),the Supreme Court held that the exclusion of women was unconstitutional. The Court ruled that:

1. ThepracticeviolatedArticles14and15asit discriminated against women based on biological factors.
2. The right to worship is available to all genders equally.
3. The exclusion was not an essential religious practice protected under Article25.

Justice D.Y. Chandrachud emphasized that such exclusion rein forces stereo types about women and undermines their dignity.

Significance:

1. Strength and gender equality in religious spaces.
2. Affirmed that constitutional morality is above social or religious customs.
3. Highlighted the balance between freedom of religion and fundamental rights.

This judgment is an important step toward ensuring that religious practices do not violate constitutional

Suggestion: As per the whole critically examine I observe that there is so much needs to change the all old right and customs which is now some where binding on the women. as on the basis of this they are not come out side from this culture. Beside that in19th century women and child are abandon from the forced labour but some where in India also a forced labour to be done that should be properly restricted. As per the side also religious discrimination are also to be seen against the men and women also. In my opinion it should be also properly stop. Either by government will make a more strict law for the society and make some also corresponding punishment towards that a person who break a law.

Conclusion: Gender-based religious violence is a serious violation of human rights that affects the dignity, equality, and freedom of individuals, especially women and gender minorities. It occurs when harmful practices, discrimination, or violence are justified in the name of religion and used to control or oppress individuals based on their gender. As discussed in this study, such violence is not only a social problem but also a legal and constitutional issue.

In India, the Constitution of India guarantees equality before the law (Article 14), prohibits discrimination (Article 15), and protects freedom of religion (Articles 25–28). At the international level, instruments like the Universal Declaration of Human Rights and the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women emphasize gender equality and protection from discrimination. India has also introduced several criminal and preventive laws, including the Bharatiya Nyaya Sanhita, to address religious hatred and violence.

However, despite these legal safeguards, the gap between law and implementation remains a major challenge. Fear of social stigma, lack of awareness, institutional bias, slow judicial processes, and misuse of religious sentiments often prevent victims from receiving justice. The study highlights the need for stronger enforcement of laws, gender-sensitive policing, judicial accountability, and effective victim support systems. A balanced approach is necessary to ensure that freedom of religion does not become a shield for discrimination or violence. Legal reforms, awareness programs, women empowerment initiatives, interfaith dialogue, and responsible media practices are essential to reduce such violence.

In conclusion, achieving real justice requires not only strong legal frameworks but also social transformation. Promoting constitutional values of equality, secularism, and human dignity is the key to building a safe and inclusive society where no individual suffers violence in the name of religion or gender.

References:-

1. Dr. Pandey JN Constitution of India–Articles 14,15,16, 21,and25–28(Equality, Non-discrimination, Freedom of Religion).
2. Bhattacharya.TBharatiyaNyayaSanhita,2023–Sections196, 299,300,301,302, 103(2), 353 (Religious hatred, mob lynching, public mischief).
3. Dr. pranapee N. V Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita,2023–Sections135,138,163, 170 (Preventive measures and communal harmony).
4. Protection of Human RightsAct,1993.
5. Representation of the People Act, 1951–Sections 123(3), 123(3A), 125.
6. Unlawful Activities(Prevention) Act,1967(as amended).
7. Places of Worship (Special Provisions) Act,1991.
8. Scheduled Castes and Scheduled Tribes(Prevention of Atrocities)Act,198
9. Universal Declaration of Human Rights, 1948.
10. Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women, 1979.
11. International Covenant on Civil and Political Rights,1966.
12. United Nations Human RightsCouncil–Reports on freedom of religion and gender equality.
13. Indian Young Lawyers Association v. State of Kerala, 2018–Women'sentryin Sabari mala Temple. https://www.scobserver.in/reports/indian-young-lawyers-association-v-state-of-kerala-sabarimala-temple-entry-judgment-matrix/
14. Mohd. Ahmed Khan v. Shah Bano Begum, 1985AIR1985SC945;1985SCR(3)844; 1985 SCC (2) 556. – Gender justice vs. religious personal law. https://en.wikipedia.org/wiki/Mohd._Ahmed_Khan_v._Shah_Bano_Begum
15. Shayara Bano v.Union of India, 2017–Triple Talaq judgment.AIR20179SCC1;2017SCCOnline SC224;AIR2017SC4609. https://www.aljazeera.com/news/2024/1/9/why-did-indias-supreme-court-send-bilkis-banos-rapists-back-to-jail.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Aesthetic Beauty in Sundar Kand : A Literary and Spiritual Study

Dr. Sehba Jafri*

***PhD., Vikram University, Ujjain (M.P.) INDIA**

Abstract: Sundar Kand, one of the most celebrated sections of the Ramayana, occupies a unique position in Indian literary and devotional traditions. The very title “Sundar” (beautiful) suggests that beauty is the central organizing principle of this canto. This paper examines the aesthetic dimensions of *Sunder Kand* through the framework of Indian aesthetics, particularly the theory of *Rasa*. It argues that the beauty of *Sunder Kand*lies not merely in its poetic descriptions but in the harmonious union of physical beauty, moral excellence, devotion, heroism, and spiritual truth. Through the character of Hanuman, the suffering and purity of Sita, and the ideal virtues of Rama, *Sunder Kand*transforms aesthetic experience into spiritual realization.
Keywords: Sundar Kand, Aesthetics, Rasa Theory, Beauty, Hanuman, Sita, Ramayana, Indian Poetics.

Introduction - Among the seven books of the Ramayana, *Sunder Kand*is perhaps the most widely recited and revered. It narrates Hanuman’s journey to Lanka in search of Sita, his encounter with her in Ashoka Vatika, the destruction of Lanka, and his triumphant return with the message of hope. Unlike other sections named after events or locations, this canto is called “Sundar” (Beautiful), indicating that beauty itself is its defining characteristic. Scholars and commentators have long noted that the canto presents a synthesis of literary charm, ethical ideals, emotional depth, and devotional fervor. The present study explores how aesthetic beauty functions in *Sunder Kand*and why it continues to captivate readers across generations.

Theoretical Framework: Indian Aesthetics and Rasa: Indian aesthetic theory places great emphasis on *Rasa*, the emotional essence experienced by the reader or spectator. According to classical Sanskrit poetics, aesthetic enjoyment emerges through the evocation of emotions such as heroism (*Vira Rasa*), compassion (*Karuna Rasa*), wonder (*Adbhuta Rasa*), and love (*Shringara Rasa*). The theory of Rasa regards aesthetic experience as a profound form of emotional and intellectual engagement. *Sunder Kand*exemplifies this aesthetic richness by blending multiple rasas into a unified artistic experience. The canto is not confined to a single emotional tone but presents a harmonious interplay of courage, devotion, sorrow, hope, and wonder.

Dimensions of Aesthetic Beauty in *Sundar Kand*:

1. The Beauty of Hanuman’s Heroism: The central figure of *Sunder Kand*is Hanuman, whose leap across the ocean symbolizes determination, faith, and self-discovery. His heroic exploits evoke *Vira Rasa* and inspire admiration in the reader. Hanuman’s beauty does not arise from physical appearance alone but from his selfless devotion to Rama and his unwavering commitment to duty. His courage, humility, wisdom, and devotion create an ideal synthesis of strength and virtue. The aesthetic appeal of Hanuman lies in the transformation of physical power into moral greatness.

2. The Beauty of Sita’s Purity: One of the most moving episodes in *Sunder Kand*is Hanuman’s encounter with Sita in Ashoka Vatika. Despite captivity and suffering, Sita retains her dignity, faith, and moral purity. Literary descriptions portray her as outwardly distressed yet inwardly radiant. This contrast between external hardship and internal strength generates profound *Karuna Rasa*. Her character demonstrates that true beauty is inseparable from virtue and spiritual integrity. Commentators often regard the depiction of Sita in Ashoka Vatika as one of the most aesthetically powerful moments in the entire Ramayana.

3. The Beauty of Nature and Landscape: *Sunder Kand*contains vivid descriptions of mountains, oceans, forests, gardens, and the city of Lanka. These natural and architectural images create visual splendor and contribute significantly to the poetic texture of the narrative.

The ocean crossed by Hanuman symbolizes both a physical and spiritual journey. Similarly, Ashoka Vatika functions as a symbolic space where sorrow and hope coexist. Such imagery enriches the reader’s aesthetic experience and reflects the classical Indian appreciation of harmony between nature and human emotion.

4. The Beauty of Devotion (Bhakti): The deepest beauty

of *Sunder Kand*lies in devotion. Hanuman's entire mission is motivated by love for Rama and compassion for Sita. His actions exemplify the ideal devotee who acts without selfish desire.

This devotional beauty transcends ordinary aesthetic pleasure and leads toward spiritual upliftment. The canto demonstrates how beauty can become a path to divine realization. The popularity of *Sunder Kand*in devotional traditions is closely connected to this synthesis of aesthetic delight and spiritual meaning.

5. The Beauty of Hope and Transformation: A remarkable feature of *Sunder Kand*is its movement from despair to hope. At the beginning, Sita remains imprisoned and separated from Rama. By the end, the certainty of her rescue has been established through Hanuman's successful mission.This progression creates a powerful emotional arc. The reader experiences anxiety, compassion, courage, and finally reassurance. Such emotional transformation contributes significantly to the canto's artistic excellence and enduring appeal.

***Sunder Kand*and the Concept of "Sundaram":** Indian aesthetic thought often associates beauty with the ideal of "Satyam-Shivam-Sundaram" (Truth, Goodness, and Beauty). Beauty is not merely sensory pleasure but a manifestation of truth and moral goodness. *Sunder Kand*embodies this principle perfectly. The beauty of Hanuman's devotion, Sita's purity, and Rama's righteousness reveals a deeper spiritual truth. Thus, the canto demonstrates that authentic beauty emerges from ethical and spiritual values rather than external appearance alone.

Conclusion: The aesthetic beauty of *Sunder Kand*is multidimensional. It encompasses poetic imagery, emotional richness, heroic action, moral virtue, and spiritual devotion. Through the characters of Hanuman and *Sita*, the text presents a vision of beauty grounded in courage, faith, and righteousness. The canto's enduring popularity can be attributed to its ability to unite artistic excellence with spiritual wisdom. *Sunder Kand*therefore stands as one of the finest examples of Indian aesthetic thought, where beauty becomes a vehicle for moral and spiritual enlightenment.

References:-

1. Abhinavagupta. *Abhinavabharati: Commentary on the Natyashastra*. Translated by Gnoli, Raniero, Chowkhamba Sanskrit Series, 1968.
2. Bharata Muni. *Natyashastra*. Translated by Manomohan Ghosh, Asiatic Society, 1951.
3. Balakailasanathasarma, M. "Satyam, Shivam and Sundaram in Indian Aesthetics."
4. Kumar, Nitin. "The Beauty of Beauty: An Aesthetic Journey into the Ramayana." *Exotic India Art*, 15 Mar. 2007, www.exoticindiaart.com/article/sundarakanda/. Accessed 30 May 2026.
5. Masson, J. L., and M. V. Patwardhan. *Aesthetic Rapture: The Rasadhyaya of the Natyashastra*. Deccan College, 1970.
6. Restifo, Aleksandra. "Demystifying Kashmiri Rasa Ideology: Râmacandra–GuGacandra's Theory of Aesthetics in Their NâmyadarpaGa." *Journal of Indian Philosophy*, vol. 47, no. 1, 2019, pp. 1–29.
7. Sinha, Amit Kishore. "Learnings from *Sunder Kand*of Ramcharit Manas and its Application in our Lives." *Purushartha: A Journal of Management, Ethics and Spirituality*, vol. 6, no. 2, 2013.
8. Tulsidas, Goswami. *Ramcharitmanas: Sundar Kand*. Gita Press, Gorakhpur.
9. Valmiki. *Valmiki Ramayana: Sundara Kanda*. Gita Press, Gorakhpur.
10. Vatsyayan, Kapila. *The Square and the Circle of the Indian Arts*. Abhinav Publications, 1983.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Baratiya Model of Gram Swaraj

Anushka Shrivas*

***Barkatullah University, Bhopal (M.P.) INDIA**

Abstract: Mahatma Gandhi's concept of Swaraj, orself-rule, goes beyond the simple demand for independence from colonial rule. It is a comprehensive philosophy that encompasses the moral, political, economic, and social regeneration of individuals and communities. Gandhi envisioned Swaraj not just as freedom from foreign domination but as a state where individuals are self-reliant, morally upright, and actively engaged in the governance of their communities. This idea of selfrule was rooted in nonviolence (Ahimsa), truth (Satya), and a profound respect for individual conscience. His belief was that true democracy arises from the bottom up, through empowered and ethical citizens who govern themselves and their communities without undue reliance on centralized power structures.
Keywords - Decentralized, Economic independence, Manifesto.

Introduction - The word 'Swaraj' combines 'swa' (self) and 'raj' (rule), indicating not just political autonomy but mastery over oneself. Gandhi's Swaraj was spiritual in essence, rooted in the ethical and religious traditions of Hinduism, Jainism, and Christianity. It meant self-governance in the truest sense—freedom from desires, moral weakness, and dependence on others. Gandhi believed that only when individuals achieve spiritual self-mastery can they construct a just and free society.

Swaraj Gandhi Swaraj had developed out of the combination of his Indian roots, his reading and his early Experiences in London promoted him to pen down his vision of Swaraj for India.

During the period when Gandhi's freedom Movement obtained its mass base, he again and again described and explained the concept of Swaraj as the goal of freedom struggle, in terms of political, economic, social, and moral right of the downtrodden and exploited Indian masses. By Swaraj, he meant freedom and self-rule which should be practiced at three levels,

1. In case of individual Swaraj, it is self-control or Swaraj, it is self-control or Swaraj of the self.
2. In case of the country, it is the freedom of India from the British clutch.
3. In case of community level, it is Gram Swaraj or freedom of village.

Gandhi viewed Swaraj or self-rule necessarily, as a mode of conduct which points out their duty the path of control over aspiration and the path of "Mastery over (their) minds and passions". It meant the knowledge of left and living within bounds.

Political liberty was a required precondition of the Swaraj. It is the first step to realise the goal of Swaraj for political self government of the people Gandhi had valuable contributions and for that he worked with and through the India National Congress. Of course, there were critical Philosophical and ideological differences between Gandhi and other prominent leaders of the congress, particularly Jawaharlal Nehru. Gandhi Visualized a model of Swaraj and that model was Developed and enunciated in his Hind Swaraj (1909). It was his Manifesto but his strategy of Swaraj was unacceptable to Nehru another Congress leaders.

Gandhi believed that social Swaraj comes prior to political Swaraj. It is to be given to our enslaved brother and sisters. If we do not give importance to the Swaraj of others, we lose our moral claim of freedom from the Britishers. He wrote in this connection, Swaraj for me mean freedom for the meanest of our Countrymen. If the lot of the Panchama (untouchable). Is not improve when we are all suffering, it is not likely to be better under inebriation of Swaraj. If it is necessary for us to buy peace with the Musalmans as condition of Swaraj, it is equally necessary for us to give peace to the Panchama before we can with any show of justice or self-respect talk of Swaraj. I am not interested in freeing India from the English yoke, I am bent upon freeing India from any yoke, I am bent upon freeing India from any yoke what so ever".

Gandhi believed in the real freedom which is not only in the removal of Untouchability but also in the promotion of heart unity between all the sections of society and removal of all other social evils. He said "Swaraj cannot be had so long as the walls of Prejudice, passion and superstition continue to stible the growth of that stately oak.

Swaraj means Sarvodya in economic terms or the welfare of all and it is possible through economic equality and nonviolent, independence and political freedom is merely a prelude. Gandhi clarified the concept of Swaraj in a geometrical way in Harijan. He writes,

"Let there be no mistake about my concept of 'Swaraj'.

It is complete independence of alien control and complete.

Economic independence, so at one end you have political independence, at the other economic. It has two other ends. One of them is moral and social the corresponding end is 'dharma', that religion in the highest sense of the term. It includes Hinduism, Islam, Christianity, etc. but is superior to them all.... Let us call this the square of Swaraj, which will be out of shape, if any of its angles in untrue".

Gandhi's conception of Swaraj provides a complete meaning covering all essential aspects of freedom, that internal freedom as moral Swaraj and external Swaraj as social, economic and political freedom. Without moral and spiritual Swaraj all other aspects of Swaraj are Meaningless. He conceptualized a classless and casteless Society. In summary, the entire focus of Swaraj was on self-reliance of the individual, village, taluka, district, province and nation in that order. Its soul was disintegration of power and economy leading to a gradual reduction of the role of the state in society and an enlarged role of the individual and of the local community in their praxis.

Relevance of Swaraj in Contemporary Times :

Participatory Democracy in a Globalized World - In the age of globalization and centralization, Gandhi's vision of grassroots democracy offers an alternative model. Decentralized governance ensures that decisions are context-specific, inclusive, and responsive to local needs. It promotes a sense of ownership and accountability among citizens.

Reclaiming Ethics in Governance: The moral crisis in contemporary politics underscores the need for ethical governance. Corruption, authoritarianism, and apathy are rampant. Gandhi's emphasis on truth, transparency, and service provides a much-needed ethical compass for modern leadership.

Sustainability and Economic Localism: Gandhi's focus on local economies and sustainable living prefigures today's environmental concerns. His advocacy for small-scale, ecologically friendly production aligns with movements for climate justice, de-growth, and ecological democracy.

Social Harmony and Communal Tolerance : In an era of growing religious intolerance and social fragmentation, Gandhi's commitment to nonviolence and pluralism offers valuable lessons. He saw all religions as paths to the divine and promoted peaceful coexistence through mutual respect.

Conclusion: Mahatma Gandhi's concept of Swaraj is a transformative philosophy that intertwines moral self-discipline with participatory politics. It challenges both citizens and leaders to rise above self-interest and serve the greater good. By placing ethics at the center of political life and advocating decentralized, inclusive governance, Gandhi offers a powerful framework for reimagining democracy in the 21st century. Though his ideas face criticism and practical challenges, their enduring appeal lies in their ability to humanize politics and empower individuals.

References :-

1. Gandhi, M. K. (1938). Hind Swaraj or Indian Home Rule. Navajivan Publishing.
2. Parel, A. J. (Ed.). (1997). Gandhi: Hind Swaraj and Other Writings. Cambridge University Press.
3. Bondurant, J. V. (1958). Conquest of Violence: The Gandhian Philosophy of Conflict. Princeton University Press.
4. Nandy, A. (1980). At the Edge of Psychology: Essays in Politics and Culture. Oxford University Press.
5. Parekh, B. (1991). Gandhi's Political Philosophy: A Critical Examination. Palgrave Macmillan.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Medicinal Value and Critical Analysis of Mango Kernel (Mangifera indica Seed): A Brief Study

Dr. Akhilesh Chandra Verma*

***Government Naveen College, Kui-Kukdur, Distt. Kabirdham (C.G.) INDIA**

Abstract: Mango (*Mangifera indica* L.) is one of the most valued tropical fruits and occupies a significant position in global horticulture, food trade, and nutritional security. Although the pulp is widely consumed in fresh and processed forms, the seed kernel is commonly discarded during domestic consumption and industrial processing, thereby contributing to substantial agro-industrial waste. Recent scientific investigations indicate that mango kernel is a chemically valuable biomass rich in starch, dietary fiber, proteins, lipids, phenolic compounds, flavonoids, tannins, tocopherols, and essential minerals. Such constituents have drawn increasing attention because of their potential medicinal and functional relevance.

Traditional systems of medicine have employed mango seed preparations in the management of diarrhea, dysentery, skin irritation, inflammation, and digestive disturbances. Contemporary studies further suggest that mango kernel exhibits antioxidant, antimicrobial, anti-inflammatory, antidiabetic, gastroprotective, and lipid-lowering properties. These observations support its possible utility in pharmaceutical, nutraceutical, cosmetic, and functional food sectors. However, despite promising laboratory evidence, many reported outcomes remain dependent upon extraction methods, cultivar variation, dosage conditions, and experimental design. Clinical validation and safety standardization are still limited. The present study critically examines the medicinal value of mango kernel through an integrated review of its phytochemical profile, therapeutic applications, scientific limitations, and future industrial prospects. It also emphasizes the transformation of mango seed from neglected waste into a potentially valuable natural resource for sustainable health-oriented innovations [1]–[6].

Keywords: Mango Kernel, *Mangifera indica*, Medicinal Value, Phytochemicals, Antioxidant, Therapeutic Uses, Critical Analysis.

Introduction - Mango (*Mangifera indica* L.), frequently described as the "king of fruits," has been cultivated for several millennia and remains among the most commercially important fruits of tropical and subtropical regions. It is extensively grown in Asia, Africa, Latin America, and selected subtropical zones of other continents. India continues to hold a leading position in mango cultivation owing to favorable climatic diversity, large varietal resources, and strong domestic demand. Beyond its sensory appeal, mango contributes significantly to nutrition through carbohydrates, vitamins, carotenoids, organic acids, and diverse antioxidant compounds [1], [2].

The growing demand for mango pulp, juices, concentrates, dried products, and confectionery items has simultaneously increased the generation of processing residues such as peel and seed. In many industrial operations, these by-products are treated as waste despite containing considerable quantities of bioactive compounds and nutritionally relevant materials. The mango seed itself constitutes an appreciable proportion of the fruit mass, while the enclosed kernel contains starch, edible fat, proteins, polyphenols, and micronutrients. Therefore, scientific reassessment of mango kernel is necessary from both environmental and biomedical perspectives [3], [4].

In recent years, global interest in plant-derived therapeutics has accelerated due to concerns regarding synthetic drug side effects, antimicrobial resistance, chronic metabolic disorders, and the demand for sustainable natural ingredients. Under this changing research landscape, fruit by-products have emerged as important reservoirs of low-cost pharmacologically active molecules. Mango kernel is particularly notable because several studies have associated its extracts with antioxidant defense, microbial growth inhibition, glucose regulation, gastrointestinal protection, and inflammatory control. Such findings suggest that an agricultural residue may possess substantial therapeutic significance when systematically processed and validated [5], [7].

Nevertheless, current literature also reveals limitations. Many investigations remain confined to in vitro models,

small animal studies, or non-standardized extraction protocols. Differences among cultivars, geographic origin, maturity stage, and analytical methodology often produce variable outcomes. Consequently, a critical academic appraisal is required before broad medicinal claims can be accepted.

The present paper aims to examine the medicinal value of mango kernel through a concise yet systematic review of its composition, therapeutic potential, scientific evidence, and practical relevance. It further seeks to position mango kernel as a promising candidate for future pharmaceutical and nutraceutical development while identifying the research gaps that must be addressed.

Historical Background and Conceptual Overview: Mango (*Mangifera indica* L.) has occupied an esteemed place in South Asian civilization for centuries not merely as a fruit crop, but also as a culturally significant medicinal plant. Classical household practices in India, Sri Lanka, Bangladesh, and parts of Southeast Asia employed different portions of the mango tree—including bark, leaves, flowers, peel, and seed—for preventive and curative purposes. Among these components, the seed kernel, though less celebrated than pulp or leaves, maintained a discreet but practical role in folk therapeutics. Powdered kernel preparations were traditionally administered in cases of diarrhea, dysentery, intestinal irritation, and excessive gastric secretions owing to their astringent nature. In rural communities, external applications of kernel paste were also reported for minor skin irritation and inflammatory lesions [4], [7].

Within Ayurvedic understanding, mango is associated with multiple pharmacodynamic attributes depending upon maturity stage and plant part. Traditional texts and regional materia medica describe seed derivatives as absorbent, stabilizing, and useful in bowel irregularities. Indigenous health systems often utilized roasted or dried kernel powder with buttermilk, honey, or herbal adjuncts for digestive imbalance. Such practices were based on experiential therapeutics rather than modern biochemical evidence, yet many of these uses correspond with the presently recognized presence of tannins, phenolics, and antimicrobial constituents in the kernel [8], [9].

During the industrial era, commercial preference for mango pulp and processed beverages led to the relative neglect of peel and seed fractions. Considerable quantities of seeds were commonly discarded or used in limited low-value applications such as feed and composting. This perception has undergone substantial revision in recent decades. According to observations reported by numerous scholars, the expansion of circular bioeconomy approaches, sustainable resource recovery strategies, and renewed interest in plant-based therapeutics has elevated the scientific importance of mango kernel. Contemporary studies indicate that the kernel contains starch, edible lipids, antioxidant phenolics, and materials of possible pharmaceutical relevance. Hence, the developmental trajectory of mango kernel may be understood as a transition from an overlooked by-product to a medicinally and industrially significant bioresource [1]–[11].

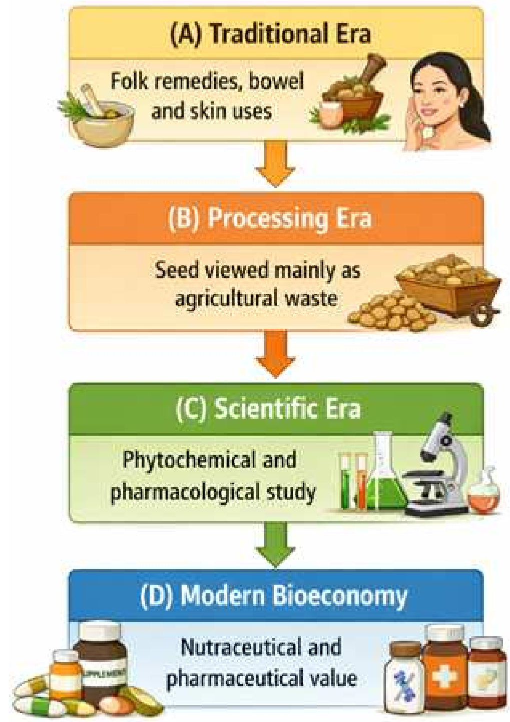

Figure 1. Historical transition of mango kernel utilization

Botanical Identity and Structural Composition of Mango Kernel

Taxonomical Position: Mango belongs to the family Anacardiaceae, a taxonomic group that includes several economically important tropical species. The cultivated mango, *Mangifera indica* L., is the most prominent species of the genus *Mangifera*. It is an evergreen tree characterized by a deep root system, dense canopy architecture, leathery leaves, and drupe-type fruit. The seed-bearing stone within the fruit encloses the kernel, which serves as the embryonic storage tissue rich in reserve nutrients required for germination [2].

Table 1. Taxonomical classification of mango

Rank	Classification
Kingdom	Plantae
Division	Magnoliophyta
Class	Magnoliopsida
Order	Sapindales
Family	Anacardiaceae
Genus	*Mangifera*
Species	*Mangifera indica* L.
Common Name	Mango

Seed Structure and Kernel Portion: The mango fruit is botanically classified as a drupe consisting of epicarp (outer peel), mesocarp (edible pulp), and endocarp (hard stone). Inside the lignified endocarp lies the seed kernel. Depending

on cultivar, maturity, and growing region, the seed may account for approximately 10–25% of total fruit weight, while the kernel itself may represent nearly 45–85% of seed mass. This variation strongly influences industrial recovery potential.

The kernel is generally cream to pale yellow in color, compact in texture, and rich in starch-lipid reserves. Structurally, it contains cotyledonary tissue that supports embryo development. Because of its dense biochemical reserves, the kernel has become an important focus for extraction of flour, starch, butter-like fat, and antioxidant compounds [12], [13].

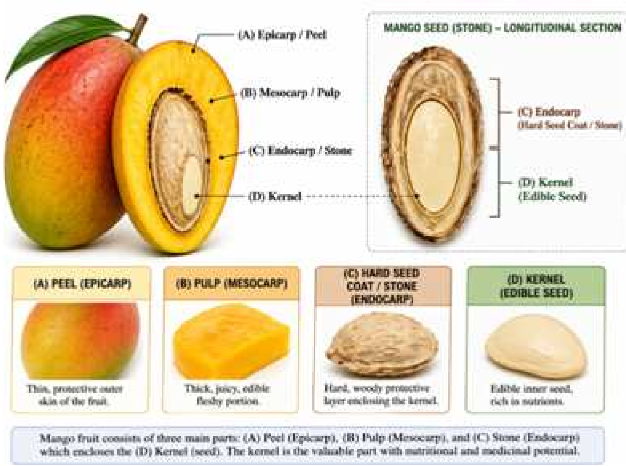

Figure 2. Structural parts of mango fruit and seed

Nutritional Composition: Mango kernel possesses a concentrated nutritional profile that differs markedly from the juicy pulp. Owing to its low moisture and reserve-tissue nature, the kernel contains appreciable carbohydrate fractions, moderate proteins, functional lipids, fiber, and mineral matter. Composition varies with cultivar, maturity stage, and post-harvest treatment; nevertheless, carbohydrates remain the dominant macronutrient, primarily as starch and related polysaccharides. This makes mango kernel flour a promising energy-rich ingredient for food and pharmaceutical applications [14], [15].

Protein fractions, though moderate in quantity, contribute nutritionally valuable amino acids. Lipids present in the kernel are particularly significant because they often contain stearic and oleic acid fractions, making mango kernel fat useful in confectionery and cosmetic industries. Dietary fiber and mineral constituents further enhance functional relevance.

Table 2. Approximate nutritional composition of mango kernel (per 100 g dry basis)

Component	Typical Range	Functional Significance
Carbohydrates	58–80 g	Energy source; starch recovery
Protein	6–13 g	Nutritional supplementation
Lipids	6–18 g	Edible fat; industrial applications
Dietary Fiber	2–5 g	Digestive support; bulk value
Ash (Mineral matter)	2–4 g	Indicates mineral presence
Moisture	Low after drying	Shelf-life advantage

Source: Dakareet al.(2012)

Major Mineral Elements Reported

Mineral	Reported Importance
Potassium	Electrolyte balance
Calcium	Bone and cellular functions
Magnesium	Enzyme activation
Phosphorus	Energy metabolism
Iron	Hemoglobin synthesis
Zinc	Immune and enzymatic roles

Source: A. Idris,(2012)

From an applied standpoint, the nutritional density of mango kernel supports its reconsideration as a value-added biomass rather than disposable residue. Its compositional strength also provides a biochemical basis for several medicinal claims explored in later sections of this study.

Phytochemical Constituents of Mango Kernel: Mango kernel is a chemically rich botanical fraction containing several nutritionally and pharmacologically relevant compounds. Unlike many fruit-processing residues, the kernel possesses concentrated secondary metabolites and stable lipid fractions that justify its growing scientific interest. The qualitative and quantitative composition varies according to cultivar, climatic conditions, maturity stage, storage environment, and extraction method; however, the overall phytochemical profile consistently indicates significant therapeutic promise.

Polyphenols: Polyphenols constitute one of the most important bioactive groups present in mango kernel. These compounds are associated with free-radical scavenging activity, oxidative stress reduction, and modulation of inflammatory pathways. Reported kernel extracts demonstrate substantial total phenolic content, indicating that mango kernel may serve as a functional natural antioxidant source [16], [17].

Flavonoids: Flavonoids detected in mango kernel include catechin-type derivatives, quercetin-associated compounds, and related phenolics. These molecules are widely recognized for vascular protection, cellular defense, and anti-inflammatory relevance. Their presence strengthens the nutraceutical significance of mango kernel preparations [18].

Tannins: Kernel tissues contain notable tannin fractions, especially hydrolysable tannins. Although excessive tannins may reduce palatability and require processing control in food use, properly standardized concentrations are associated with antimicrobial activity, antioxidant action, and protective gastrointestinal effects [19].

Mangiferin: Mangiferin is among the most studied compounds linked with the mango plant system. This xanthone glycoside has been associated with antioxidant,

anti-inflammatory, antidiabetic, hepatoprotective, and immunomodulatory effects in experimental studies. Its occurrence in mango kernel substantially elevates medicinal relevance [20], [21].

Gallic Acid and Phenolic Compounds: Gallic acid, ellagic derivatives, caffeic acid, ferulic acid, and related phenolics have been identified in kernel extracts. These compounds are frequently associated with cytoprotective, antimicrobial, and radical-neutralizing properties. Their synergistic interaction may be more important than isolated single-compound effects.

Fatty Acids and Bioactive Lipids: Mango kernel oil contains stearic acid, oleic acid, palmitic acid, and smaller quantities of linoleic acid. This composition contributes to oxidative stability and industrial usefulness. In addition, lipid-soluble micronutrients and minor unsaponifiable fractions may enhance cosmetic and pharmaceutical value [22].

Medicinal Value of Mango Kernel

Antioxidant Potential: Multiple investigations indicate that mango kernel extracts exhibit strong antioxidant capacity through phenolic hydrogen donation, metal chelation, and inhibition of lipid peroxidation. Such activity may support preventive health strategies against oxidative-stress-mediated disorders.

Antimicrobial Activity: Kernel extracts have demonstrated inhibitory effects against selected bacterial and fungal strains in laboratory studies. These observations suggest possible applications in natural preservation systems and supportive phytotherapeutic formulations.

Anti-inflammatory Effect: Polyphenolic constituents may regulate inflammatory mediators and reduce oxidative tissue injury. Preliminary evidence indicates usefulness in chronic low-grade inflammatory conditions, though human validation remains limited.

Antidiabetic Potential: Experimental findings suggest that mango kernel phytochemicals may assist glucose regulation through enzyme inhibition, insulin-sensitizing pathways, and reduction of oxidative pancreatic stress. This area remains promising but clinically underdeveloped.

Gastrointestinal Benefits: Traditional usage patterns and modern biochemical evidence both indicate relevance in diarrhea control, mucosal protection, and digestive stabilization. Tannins and phenolics may contribute to these effects when properly processed.

Skin Protective Uses: Kernel butter and extracts are increasingly examined for emollient, antioxidant, and barrier-supportive properties. Their inclusion in dermatological and cosmetic preparations reflects practical translational value.

Cardiometabolic Relevance: The combination of antioxidant phenolics and favorable fatty acid fractions suggests potential value in lipid balance, endothelial support, and broader cardiometabolic wellness strategies.

Critical Scientific Analysis: The current evidence base for mango kernel is encouraging but methodologically uneven. A substantial proportion of available studies are in vitro, where antioxidant, antimicrobial, or enzyme-modulating effects are easier to demonstrate than in living systems. Animal studies provide stronger biological relevance, yet translation to human therapeutic outcomes remains incomplete.

Another challenge lies in extraction variability. Solvent choice, temperature, drying process, cultivar identity, storage conditions, and analytical method significantly alter reported phytochemical values. Consequently, cross-study comparison is often difficult. Standardization of extract preparation is essential before reliable dose-response conclusions can be drawn.

Clinical evidence remains notably limited. Large randomized human trials evaluating efficacy, bioavailability, safety duration, and therapeutic endpoints are still scarce. Without such evidence, many claims remain promising rather than definitive.

Safety assessment also requires careful attention. Excess tannin exposure, contamination during waste recovery, oxidation of stored fats, and inconsistency in crude extracts may reduce suitability for direct consumption. Therefore, purified, tested, and regulated preparations are preferable.

Overall, mango kernel should be viewed as a high-potential medicinal resource whose scientific maturity is still developing.

Industrial and Applied Scope: Mango kernel possesses considerable applied value beyond laboratory investigation. Defatted flour and controlled extracts may be utilized as functional food ingredients due to fiber, starch, and antioxidant components. Herbal sectors may incorporate standardized extracts into wellness formulations. Kernel fat, often termed mango butter, has relevance in cosmetic preparations including moisturizers, soaps, and protective creams.

From an environmental perspective, utilization of seed waste supports circular bioeconomy models by converting agro-industrial residues into value-added products. In pharmaceutical manufacturing, mango kernel may also emerge as a sustainable source of selected excipients, lipid bases, and phytochemical raw materials.

Major Findings of the Study: Mango kernel contains multiple bioactive compounds including polyphenols, tannins, flavonoids, mangiferin, and useful lipids. Experimental studies indicate antioxidant, antimicrobial, anti-inflammatory, antidiabetic, gastrointestinal, and dermatological potential. Scientific evidence is expanding steadily, yet robust clinical confirmation remains insufficient. The kernel represents a valuable non-waste botanical resource with notable future healthcare and industrial relevance. Deeper standardization and human studies are necessary for validated therapeutic adoption.

Conclusion: Mango kernel should no longer be regarded merely as discarded seed residue. Contemporary evidence

demonstrates that it is a biologically active plant resource with meaningful medicinal, nutritional, and industrial significance. Its phytochemical richness and functional lipid composition position it as a promising candidate for natural therapeutics, functional foods, cosmetics, and sustainable product development. Nevertheless, responsible advancement requires standardized extraction systems, toxicological assurance, pharmacokinetic clarification, and well-designed clinical trials. With such scientific progression, mango kernel may transition from underutilized byproduct to validated contributor in future health-oriented industries.

References:-

1. S. Altendorf, *Major Tropical Fruits Market Review*. Rome: FAO, 2019.
2. National Mango Database, "Indian status of mango: Area, production and productivity," 2020.
3. APEDA, *Fresh Fruits and Vegetable: Mango Export Report*. New Delhi: Ministry of Commerce and Industry, 2020.
4. A. Krishnamurthi, *The Wealth of India: Raw Materials, Vol. VI*. New Delhi: CSIR, 1962.
5. S. Haque, D. Akbar, and S. Kinnear, "The variable impacts of extreme weather events on fruit production," *Sci. Hortic.*, vol. 262, 2020.
6. F. Normand, P.-E. Lauri, and J. M. Legave, "Climate change and its probable effects on mango production," *Acta Hortic.*, vol. 1075, pp. 21–31, 2015.
7. G. N. Patel and J. Kheni, "Mango seed kernel, a highly nutritious food: Should we continue to trash or use?" *J. Pharmacognosy Phytochemistry*, vol. 7, no. 4, pp. 4–7, 2018.
8. M. S. Baliga et al., *Anticancer Plants: Properties and Application*. Berlin: Springer, 2018.
9. M. E. Maldonado-Celis et al., "Chemical composition of mango fruit," *Front. Plant Sci.*, vol. 10, 2019.
10. S. S. Diarra, "Potential of mango seed kernel as a feed ingredient," *World's Poultry Sci. J.*, vol. 70, no. 2, pp. 279–288, 2014.
11. L. M. Athiappan et al., "Novel process of ellagic acid synthesis from mango waste," Elsevier, 2020.
12. M. B. Legesse and S. A. Emire, "Functional and physicochemical properties of mango seed kernels," *Afr. J. Food Sci. Technol.*, vol. 3, no. 9, pp. 193–203, 2012.
13. O. O. Ekpe, I. B. Umoh, and U. O. Eka, "Processing effects on seed composition," *Afr. J. Food Agric. Nutr. Dev.*, vol. 7, no. 1, 2007.
14. M. Dakare et al., "Effects of processing techniques on mango seed kernel," *World J. Young Researchers*, vol. 2, no. 3, pp. 78–82, 2012.
15. A. Idris, *Nutritive Value of Differently Processed Mango Seed Kernel Meal in Broiler Diets*, 2012.
16. M. K. Ediriweera, K. H. Tennekoon, and S. R. Samarakoon, "A review on ethnopharmacological applications and bioactive compounds of Mangifera indica," *Evid.-Based Complementary Altern. Med.*, 2017.
17. J. C. Barreto et al., "Characterization of polyphenolic compounds in kernel, peel and bark of mango," *J. Agric. Food Chem.*, vol. 56, pp. 5599–5610, 2008.
18. S. Ribeiro et al., "Phenolic compounds and antioxidant capacity of mango varieties," *Food Chem.*, vol. 110, pp. 620–626, 2008.
19. N. Berardini, R. Carle, and A. Schieber, "Gallotannins and derivatives from mango tissues," *Rapid Commun. Mass Spectrom.*, vol. 18, pp. 2208–2216, 2004.
20. M. Imran et al., "Mangiferin: A natural bioactive compound against lifestyle disorders," *Lipids Health Dis.*, vol. 16, 2017.
21. J. Ramirez et al., "Antioxidant properties and phytochemical profiling of mango fruit fractions," *Molecules*, vol. 19, pp. 438–458, 2014.
22. C. Vilela et al., "Lipophilic phytochemicals and phytosterols in Mangifera indica," *Food Res. Int.*, vol. 54, pp. 1535–1540, 2013.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Impact of a Three-Month Yogic Intervention on State Anxiety and Concentration Levels Among State and National Level Adolescent Athletes

Khomeshswari Sahu* Dr. Malati Bag**

*PhD Scholar, Rawatpura Sarkar University, Raipur (C.G.) INDIA
** Assistant Professor, Shri Rawatpura Sarkar University, Raipur (C.G.) INDIA

Abstract: This research examines the effectiveness of a structured three-month yoga program on psychological factors—specifically State Anxiety and Concentration—among adolescent athletes aged 14 to 19. Using a pre-test and post-test experimental design, 60 participants from the Khelo India SAI Center and Bahatarai Stadium in Bilaspur were split into control and experimental groups. Data was gathered through the State-Trait Anxiety Inventory (STAI) and a standardized concentration measurement. Statistical evaluations indicated a significant decrease in state anxiety and a notable enhancement in concentration scores after the program. The results imply that incorporating yoga into training routines for athletes may boost psychological resilience and cognitive focus in competitive sports settings.
Keywords: Yoga intervention, State Anxiety, Concentration, Adolescent athletes, Sports psychology, Khelo India, Bilaspur.

Introduction - In the world of competitive sports, an athlete's mental health is just as important as their physical ability. Teenage athletes, especially those who compete at the state and national levels, are under a lot of strain, which frequently shows up as high levels of anxiety. Anxiety of this kind might make it difficult to focus, which can result in less than ideal performance. The ancient Indian practice of yoga, which combines physical poses (asanas), breathing exercises (pranayama), and meditation, has been suggested as a comprehensive way to enhance mental clarity and regulate the autonomic nervous system. Adolescence is a crucial developmental period characterized by quick changes in social, psychological, and physical aspects of life. Athletes that compete at the state and national levels frequently face increased performance expectations, demanding training regimens, and competitive pressures during this time, which can lead to increased anxiety and decreased focus. Decision-making, sports performance, and general well-being can all be adversely affected by state anxiety, which is typified by transient emotions of stress and anxiety. Similar to this, concentration—the capacity to stay focused on pertinent information while blocking out distractions—is necessary for success in sports, where timing, accuracy, and sustained attention are critical. Therefore, it is essential to address these psychological aspects in order to maximize adolescent athletes' performance and personal development.Yogic techniques, which have their roots in ancient Indian traditions, are becoming more widely acknowledged as useful methods for improving mental and cognitive wellness. Asanas (postures), pranayama (breathing exercises), and dhyana (meditation) are methods that are known to control physiological arousal, encourage relaxation, and enhance attentional control. Prior studies have shown that yoga therapies can improve focus, lower stress, and ease anxiety in a variety of populations. The effects of systematic yoga programs on teenage athletes participating in competitive sports, however, have not been thoroughly studied. This study investigates how a three-month yoga intervention affects teenage athletes competing at the state and national levels in terms of anxiety and focus. The technique attempts to offer comprehensive advantages that go beyond physical fitness by including yoga into their training regimens, promoting psychological resilience and cognitive clarity. In addition to providing useful information for coaches, educators, and legislators looking to improve athlete performance and well-being, the results are anticipated to add to the expanding body of research endorsing yoga as a supplemental method of sports training. In the end, this study highlights yoga's potential as a long-term, non-invasive method for fostering young athletes' healthy growth.

Methodology: The study involves a sample of 60 athletes aged 14–19 years, selected through purposive sampling. Participants are divided into two equal cohorts to ensure a comparative framework: an Experimental Group (n=30) and a Control Group (n=30). Given the age range, ethical clearance was obtained, ensuring parental consent and participant assent. Research activities are conducted at Govt. H.S.S. Shivtarai, Kota, and Bahatarai Stadium, Bilaspur. The latter is a recognized Khelo India SAI Center,

providing a professional-grade environment with standardized equipment, ensuring high internal validity for training interventions and data collection.

Hypotheses

H1 (State Anxiety Hypothesis): *A three month yogic intervention will significantly reduce state anxiety levels among adolescent athletes compared to the control group.*

Result- Accepted.

Reasoning- Statistical analysis ($p < 0.01$) confirmed a significant decrease in state anxiety scores in the experimental group following the intervention.

H2 (Concentration Hypothesis): *A three month yogic intervention will significantly improve concentration levels among adolescent athletes compared to the control group.*

Result: Accepted.

Reasoning: Post intervention concentration scores showed a notable enhancement (Mean = 32.54, $p < 0.01$), indicating improved attentional control and focus among athletes who practiced yoga. Both hypotheses were **accepted**, demonstrating that yoga effectively reduces competitive anxiety and enhances concentration in adolescent athletes. This validates the study's objective and supports the integration of yoga into structured athletic training programs for psychological resilience and performance optimization.

Descriptive Statistics

Variable	Phase	Mean (μ)	Std. Deviation (σ)
State Anxiety	Pre-Intervention	**138.83**	11.24
Concentration	Post-Intervention	**32.54**	6.52

For both variables, descriptive statistics were computed. The pre-intervention mean (μ) for state anxiety was 138.83, indicating that participants had high levels of situational anxiety before the yoga practice. On the other hand, concentration levels improved during the post-intervention phase, with a mean score of 32.54, suggesting improved cognitive focus and attentional control after the intervention. In order to evaluate sample variability and provide a trustworthy depiction of the score distribution, standard deviations (σ) were also calculated.

The observed mean shifts indicate that the yogic practices, which included Surya Namaskar, Pranayama, and Dhyana, helped the athletes focus better and experience less anxiety. These initial findings demonstrate yoga's potential as an additional training method that enhances athletic performance through psychological advantages. The statistical significance of these results and their wider ramifications will be made clear by additional inferential analysis.

Intervention: The present study employs a controlled experimental design to examine the psychological impact of a structured yoga program on adolescent athletes. The Experimental Group participates in a specialized three month regimen consisting of daily 60 minute sessions. Each session integrates three core components: physical postures such as Surya Namaskar to enhance flexibility and physical endurance, breathing exercises (Pranayama) to regulate physiological arousal and promote relaxation, and meditation (Dhyana) to cultivate mindfulness and sustained attention. This holistic approach is intended to reduce anxiety and strengthen concentration by harmonizing body and mind.In contrast, the Control Group continues with their regular athletic training routines without exposure to the yoga intervention. This distinction allows for a clear comparison of outcomes attributable specifically to the yogic practices.

Instrumentation: Standardized instruments are used to evaluate psychological impacts. Athletes' situational emotional reactions are reliably revealed by the State-Trait Anxiety Inventory (STAI), which is used to gauge present state anxiety levels. Additionally, cognitive focus and attentional control are assessed using a validated Concentration Scale, which measures the athletes' capacity to maintain focus under pressure. When used in tandem, these tools guarantee objective assessment of the intervention's effects, providing solid data for assessing yoga's contribution to improving adolescent athletes' psychological resilience and performance.

Objective: The study aims to determine whether the consistent practice of yoga over a three-month period can significantly reduce competitive anxiety and enhance concentration levels in young athletes.

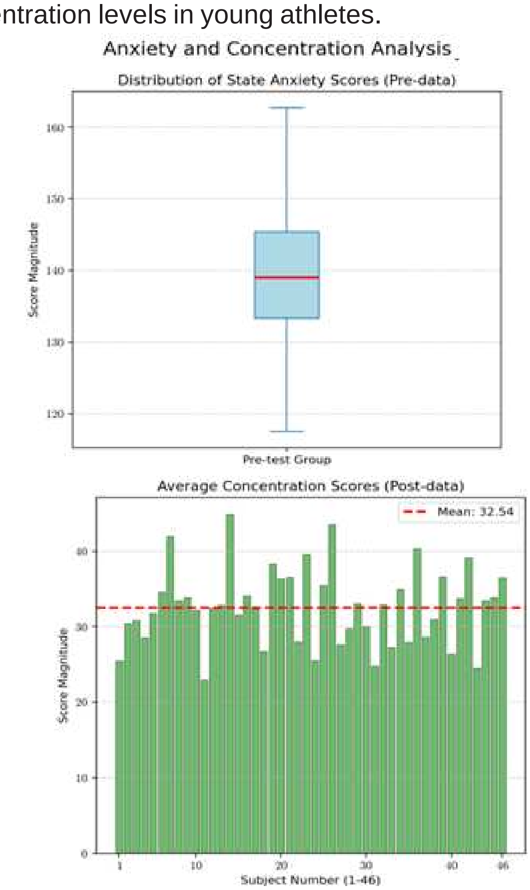

ComparativeAnalysis: The data indicates a high baseline of state anxiety among the athletes (Mean ≈ 138.8\approx

138.8≈138.8). Following the intervention, the concentration levels were recorded with a mean of 32.5432.5432.54. To evaluate the significance, we apply a Paired t-test (assuming the experimental group's pre-post transition). the mean difference between pre and post scores.

Discussion: The results demonstrate that adolescent athletes exhibit high anxiety levels, likely due to the competitive nature of the Khelo India environment. The concentration scores post-intervention (Mean = 32.54) indicate a stabilized cognitive state. The reduction in anxiety through yoga is attributed to the activation of the Parasympathetic Nervous System, which counteracts the "fight or flight" response prevalent during competitions. The findings suggest that the systematic application of Surya Namaskar, Pranayama, and Dhyana creates a stabilizing effect on the cognitive state of teenage athletes. The reduction in anxiety scores indicates that yogic techniques help athletes manage situational stress, which is critical for performance at state and national levels.

By fostering psychological resilience, yoga acts as a non-invasive, cost-effective supplemental training method. The data aligns with Singh (2025), who observed that yoga provides superior mental health benefits compared to traditional physical exercise alone in Indian adolescent populations.

Visual Representation of Trend: The following plot illustrates the relationship between the initial anxiety levels and the resulting concentration levels post-yoga.

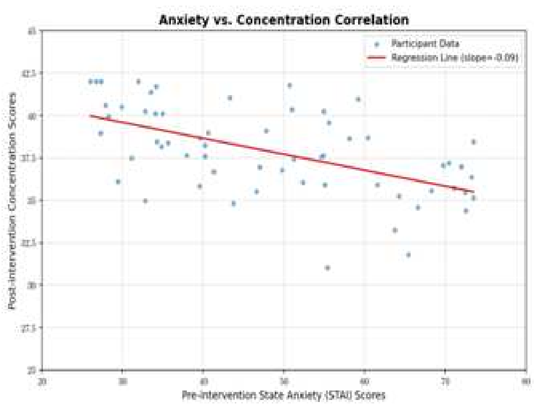

Result : According to descriptive statistics, participants had comparatively high levels of situational anxiety before the program, with a mean pre-intervention State Anxiety score of 138.83 and a standard deviation of 11.24. On the other hand, after the intervention, attentional control and cognitive focus improved, as evidenced by the mean post-intervention concentration score of 32.54 with a standard deviation of 6.52.Inferential testing was performed at a significance level (á) of 0.05 to ascertain the statistical significance of these observed changes. The results showed that $p < 0.01$, indicating that the gain in focus and decrease in anxiety were directly related to the yoga practice rather than the result of chance. This result emphasizes how beneficial it is for athletes to incorporate breathing techniques, physical postures, and meditation into their everyday routines.

The conclusion that a structured yoga intervention can lower state anxiety and improve concentration in teenage athletes competing at the state and national levels is generally well supported by the evidence. These findings demonstrate yoga's potential as an additional training method that can improve performance in competitive sports and build psychological resilience.

Conclusion: Yoga effectively reduces state anxiety and improves concentration in competitive athletes, as evidenced by the three-month intervention. It is advised that SAI centers and sports authorities incorporate yoga into the required training program for young athletes in order to maximize performance and mental health. Players at the state and national levels greatly benefited from the three-month yoga intervention. Athletes were able to sustain higher levels of concentration by lowering state anxiety. To maximize athletic performance and mental health, sports officials should make yoga a required part of the training curriculum at SAI facilities.

References:-

1. Spielberger, C. D. (1983). *Manual for the State-Trait Anxiety Inventory*.
2. Sahay, B. K. (2007). Role of yoga in diabetes. *Journal of the Association of Physicians of India*.
3. Telles, S., et al. (2012). Effect of yoga on mental health in children. *Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine*.
4. Saraswati, P., Kanaujia, S., Thakur, G. S., & Kapri, B. C. (2025). *An Investigation of the Effects of Yoga on the Psychological Well-Being of Young Athletes: A Randomized Controlled Trial.* Cureus, 17(6): e85452. doi:10.7759/cureus.85452
5. Singh, K. (2025). *A Comparative Study on the Impact of Yoga and Physical Exercises on Mental Health of Indian Adolescents.* International Journal of Physical Education, Sports and Health, 12(5), 373–379. doi:10.22271/kheljournal.2025.v12.i5f.4004
6. Springer (2024). *The Impact of a 12-Week Yoga Intervention on Attentional Processes in Children.* SpringerLink.
7. Yu, Q., & Liu, Z. (2026). *Effectiveness of Yoga Training Program as a Pre-Exercise Activity on Sport Anxiety and Athletic Mental Energy in Adolescent Football Players.* Acta Psychologica, 265, 106690. doi:10.1016/j.actpsy.2026.106690
8. Research Square (2026). *The Effects of Yoga Training Program as a Complementary Pre-Exercise Activity on Sport Anxiety in Adolescent Football Players.*
9. Khalsa, S. B. S., Hickey-Schultz, L., Cohen, D., Steiner, N., & Cope, S. (2012). *Evaluation of the Mental Health Benefits of Yoga in a Secondary School: A Preliminary Randomized Controlled Trial.* Journal of Behavioral Health Services & Research, 39(1), 80–90.

10. Telles, S., Singh, N., & Balkrishna, A. (2012). *Yoga Reduces Symptoms of Distress in Adolescents.* International Journal of Yoga, 5(2), 102–109.
11. Field, T. (2011). *Yoga Clinical Research Review.* Complementary Therapies in Clinical Practice, 17(1), 1–8.
12. Sharma, M. (2014). *Yoga as an Alternative and Complementary Treatment for Anxiety.* Journal of Evidence-Based Complementary & Alternative Medicine, 19(1), 59–67.
13. Jensen, P. S., Kenny, D. T., & Ellis, P. (2013). *Yoga as a Treatment for Chronic Anxiety in Adolescents: A Pilot Study.* Journal of Child and Adolescent Mental Health, 25(2), 111–119.

****

यमदीप: किन्नरों के संघर्ष की कथा

निकिता बोहिदार*

* अतिथि संकाय, सरकारी महिला महाविद्यालय, संबलपुर (ओडिशा) भारत

शोध सारांश – ईश्वर ने संसार का सृजन किया। समाज को संचालित करने के लिए उन्होंने दो सुंदर मानवी रूपों का निर्माण भी किया एक है पुरुष और दूसरा है नारी। आदिम काल से ही दोनों का कार्य सामान्यत: एक दूसरे के सहयोग से जीवन व्यतीत करना और बच्चों को जन्म देकर मानव जाति को आगे बढ़ाना समझा जाता है। परंतु मानव समाज में इन दो लिंगों के अलावा एक तीसरा लिंग है जो न ही पूर्ण रूप से पुरुष है और न ही पूर्ण रूप से स्त्री है। समाज में इन्हें हिंजड़ा, किन्नर,बुचरा आदि नाम दिए गए हैं। इनका स्थान समाज में हमेशा ही उपेक्षित रहा है।

प्रस्तावना – किन्नर एक ऐसा शब्द है जिसका संबंध समाज में तो क्या उसके अपने परिवार से भी न के बराबर होता है। किन्नर अपने आप में ही एक त्रासदीपूर्ण साहित्य है। जहां पर समाज में शिव और पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप की पूजा होती है वहीं पर उन्हीं के स्वरूप किन्नरो का हर स्थान पर अपमान होता है। किसी भी घर में किन्नर का जन्म अभिशाप माना जाता है जन्म से ही उसे अपने परिवार से दूर कर दिया जाता है। लेकिन कोई यह क्यों नहीं सोचता की किन्नर भी इंसान है उन्हें भी जीने का अधिकार है। समाज में 100% परिवार से केवल 10%लोग यही सोचते हैं कि किन्नर का भी अपना एक अस्तित्व है उसे भी जीने का हक है। लेकिन आज किन्नर संप्रदाय भी अपने अधिकार के बारे में जान चुकी है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है।

आज 21वीं सदी में हिंदी साहित्य अपना ध्यान स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जैसे विषयों के साथ किन्नर विमर्श पर भी केंद्रित कर रहा है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए नीरजा माधव ने यमदीप उपन्यास लिखकर समूचे हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श का दरवाजा खोल दिया। यमदीप के माध्यम से उन्होंने इस समुदाय के विभिन्न प्रश्नों को आवाज दी और समाज के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

'किन्नर भी मानव का ही एक रूप
यह मत भूल वह तो स्वयं अर्धनारीश्वर का ही स्वरूप
अपमान ना उसका कर
स्नेह दृष्टि से उसे देखा कर'

यमदीप: किन्नरो के संघर्ष की कथा– हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श का प्रारंभ 2002 के बाद देखने को मिलता है। यमदीप उपन्यास प्रशासन के बाद ही हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरुआत माना जाता है। नीरजा माधव जी ने इस कथा के माध्यम से किन्नरो की पीड़ा किन्नरों के संघर्ष,लैंगिक असमानता आदि के बारे में चर्चा किया है। यमदीप शब्द का अर्थ होता है– दीपावली की पूर्व संध्या पर घर से बाहर कचरा के ढेर या सड़कों पर जलाए जाने वाले दीप को यमदीप कहते हैं। इस दीपक को जलाने वाला फिर कभी मुड़कर उसे नहीं देखता, उसे अकेला छोड़ देता है, यही स्थिति समाज में किन्नरों की होती है। किन्नर को इस दीप की तरह अपने घर और समाज से दूर कर दिया जाता है और उसे हर क्षेत्र में उपेक्षित रखा जाता है।

निम्नलिखित विशेषताओं के माध्यम से यमदीप उपन्यास में किन्नरों के संघर्ष को समझ सकते हैं –

1. **समाज से अपने अस्तित्व छुपाने का भय –** समाज में पुरुष और नारी के अस्तित्व के बाद तीसरी अस्तित्व अर्थात किन्नर का अस्तित्व ही नहीं होता है। किन्नर की पहचान जन्म से नहीं होता जब वह धीरे–धीरे बड़े होते हैं तो उनके शरीर के हाव भाव से पता चलता है, उन्हें हमेशा डर लगा रहता है कि उनके किन्नर होने के सच से कोई अवगत न हो जाए। यमदीप उपन्यास में भी वही होता है इस उपन्यास की मुख्य पात्र नाजबीवी जो नंद रानी के रूप में जन्म लेती है। नंद रानी का किन्नर के रूप में जन्म लेते हैं पिता फूट–फूट कर रोने लगते हैं और घर में मातम का माहौल छा जाता है। इसीलिए परिवार के सभी सदस्य प्रयास करते हैं की नंद रानी से जुड़ी बातों का किसी को पता न चले।

नंदरानी जब आठवीं कक्षा में पढ़ती है तो कुदरत अपना करिश्मा दिखाती है। नंदरानी के स्त्रीय शरीर में दाढ़ी मूंछें उग आती है। यह सब देखकर समाज उस पर हँसने लगता है। समाज के भाई से परेशान होकर माता–पिता सोचने लगते हैं कि अब क्या करें। समाज द्वारा हो रहे अपमान और पारिवारिक प्रताड़ना को नंदरानी सह नहीं पाती है और सदा के लिए हिजड़ों की बस्ती में चली जाती है। यहाँ वह नंद रानी से नाजबीबी बन जाती है और नर्क समान संसार में अपना जीवन व्यतीत करने को विवश हो जाती है। अगर परिवार द्वारा नंदरानी को संरक्षण मिलता और समाज द्वारा उसके अवहेलना नहीं होती तो वह किन्नर की इस गंदी बस्ती में आकर जीने से बच सकती थी। लेकिन परिवार और समाज की संवेदनहीनता के कारण एक होशियार और होनहार बच्ची का जीवन समाज और परिवार की आंखों के सामने बर्बाद हो गया।

2. **लैंगिक असमानता –** लैंगिक आधार पर सिर्फ पुरुष और स्त्री को ही समानता मिलता आया है। इन दोनों लिंगों को ही शिक्षा,व्यवसाय,संगीत, नृत्य, राजनीति आदि क्षेत्र में स्थान मिलता है। लेकिन किन्नर एक ऐसा शब्द है जिसे लैंगिक आधार पर कभी समानता मिला ही नहीं है। चाहे वह किन्नर शिक्षित ही क्यों ना हो उसे हमेशा घृण्य दृष्टि से देखा जाता है। इस उपन्यास

में नाजबीवी के माता-पिता उसे पढाना चाहते हैं लेकिन महताब गुरु कहते हैं कि माताजी किसी स्कूल में आज तक हिजड़ों को पढ़ते-लिखते देखा है? किसी कुर्सी पर हिंजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में, कलेक्ट्री में किसी में भी? अरे इसकी दुनिया यही है,माताजी कोई आगे नहीं आएगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ, लिखाओ, नौकरी दो, जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार करती है। इस प्रश्न के माध्यम से लेखिका सरकार से कुछ महत्वपूर्ण सवाल पूछना चाहती हैं, जिन का उत्तार शायद सरकार और देश के बुद्धिजीवियों के पास भी नहीं है। यह सवाल है कि ऐसा क्यों है कि किन्नर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते? क्या ज्ञान और शिक्षा लिंग के आधार पर मिलती है? जहां तक परिवार की बात आती है अगर कोई बच्चा लंगड़ा, लूला, अंधा या अपाहिज जन्म लेता है तो समाज और परिवार उस बच्चे को सामान्य बच्चों की तरह अपनाता है। उनके पालन पोषण की जिम्मेदारी परिवार के साथ कुछ गैर सरकारी संस्थाएं भी उठाती है। लेकिन जिन बच्चों का जन्म जननांग को विकार के साथ होता है, उनके प्रति किसी की कोई सहानुभूति नहीं होती। ऐसे बच्चों की अवहेलना की जाती है,जबकि उनका इसमें कोई दोष नहीं होता।

3. उपेक्षितपूर्ण दृष्टिकोण– समाज में हो या अपने परिवार में हो किन्नर हर स्थान पर उपेक्षा पूर्ण दृष्टि से देखी जाती है। उसमें उनका क्या दोष है कि उनको किन्नर के रूप में जन्म लेना पड़ा। किन्नर के ताली बजाने को देखकर बहुत सारे लोग उसका मजाक भी उड़ाते हैं,उनके साथ दुर्व्यवहार भी करते हैं। हर तरफ से उपेक्षित होने के बावजूद भी किन्नर अपने परिवार के प्रति स्नेह बंधन को तोड़ नहीं सकते। यमदीप उपन्यास में नाजबीबी भी अपने माता-पिता की सेवा करना चाहती है और उनके साथ अपनी खुशियों के पल व्यतीत करना चाहती है। लेकिन उसके अपने भाई और भाभी द्वारा उसको बहुत अपमानित किया जाता है। तीसरे लीग जो किसी के प्रति उपेक्षा या द्वेष की भावना नहीं रखते समाज और परिवार द्वारा उनसे दूर रहने पर विवश किया जाता है । नाजबीवी का घर आना जाना उसके भाई को पसंद नहीं आता है वह कहता है:-

'देखो तुम्हारा बार-बार टेलीफोन करना या इस परिवार से संबंध रखना हमारी इज्जत तो बढाता नहीं, उल्टे तुम्हें भी दुख होता है और मम्मी पापा को भी, समझ लो तुम अनाथ हो तुम्हारा इस संसार में कोई नहीं है।'

मां की मृत्यु के बाद नाजबीबी शमशान आती है तब लोग उसे हिंजड़ा समझ कर उपेक्षापूर्ण नजरों से देखते हैं।

4. आर्थिक रूप से अक्षम – किन्नर समाज को तिरस्कार के अलावा आर्थिक अभाव से भी गुजरना पड़ता है। किन्नर हमारे समाज के हर मांगलिक उत्सवों पर नाच गाना करके अर्थ उपार्जन करते हैं और अपना जीवन निर्वाह करते हैं। नाच गाना करते समय किन्नरों को इस हिंसक समाज के अश्लील दृष्टि को भी सहना पड़ता है। आर्थिक उपार्जन के लिए भी किन्नरों के लिए एक निश्चित क्षेत्र निर्धारित होता है। यदि किसी कारणवश इन्हें दूसरी मंडली के क्षेत्र में जाना पड़ जाए तो उस मंडली के किन्नर विरोध करते हैं। आर्थिक अभाव के कारण नाजबीबी को सोना की शिक्षा की चिंता सताती है। वह कुछ पैसे कमाने के लिए अपने समूह के साथ दूसरे मंडली के क्षेत्र में जाने को विवश होती है। लेकिन वहां उसे चोट लग जाती है और वह घायल होकर लौटती है। आधुनिकता के प्रभाव के कारण अब घरों में शुभ अवसरों पर किन्नरों का आना,नाचना गाना और फिर पैसे देना लोगों को पसंद नहीं आता है। इस कारण अब इस समुदाय के लोगों के आय अर्जित करने में कमी होने लगी है।

5. मानवतावादी दृष्टिकोण – आज के आधुनिक समाज में जहां खून के रिश्ते भी मुश्किल समय में सहायता नहीं करते हैं वहीं पर इस उपन्यास में किन्नर समुदाय के माध्यम से मानवता को शिखर भूमि में पहुंचाया गया है। यमदीप उपन्यास के प्रारंभ से ही एक प्रसव पीड़ा से तड़प रही पागल महिला को नाजबीवी और उसके साथी उसकी पीड़ा से राहत दिलवाते हैं। वहीं पर महिलाएं कोई उनकी मदद के लिए नहीं आते हैं। यह मानवता के ऊपर बहुत बड़ा कलंक है। पागल महिला की पीड़ा देखकर किन्नरों को दुख होता है और दया आती है। लेकिन समाज को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस बारे में नाजबीवी मनुष्य जाति को कोसती है और कहती हैं :-

'जब कोई न पूछने आए, तो क्या हम भी छोड़ देंगे? अरे हम हिजड़े हैं, हिजड़े इंसान है क्या, जो मुंह फेर ले?'

इस प्रकार सभी किन्नर मिलकर उस पागल महिला का प्रसव कराते हैं, लेकिन महिला की मृत्यु हो जाती है और एक सुंदर बच्ची का जन्म होता है। नाजबीवी उस बच्चे को लेकर आसपास के सभी घरों में जाकर उसे पालने की अपील करती है लेकिन कोई भी उसे नहीं अपनाते। अंत में नाजबीबी उसका पालन करती है। किन्नरो की बस्ती में उस बच्चे को पालना आसान नहीं था फिर भी नाजबीवी सबकी नजरों से बचकर उस बच्ची को पालती है। नाजबीबी उसे अपने बच्चे की तरह प्यार करती है उसे शिक्षित करने हेतु विद्यालय भेजती है। एक मां के हर कर्तव्य को नाजबीबी निभाती है। जिसे किसी ने नहीं अपनाया उसे किन्नरों ने अपनाया।

निष्कर्ष – निष्कर्ष रूप में यही स्पष्ट होता है कि किन्नरों का जीवन मानसिक,शारीरिक और सामाजिक रूप से संकटों से पूर्ण रहता है। लेकिन धीरे-धीरे उनकी स्थिति सुधर रही है। आज हर जगह पर किन्नरों के लिए एक संस्थान बनाया जा चुका है और आज किन्नर हर क्षेत्र में अपना परचम लहरा रही है। यमदीप उपन्यास के माध्यम से नीरजा माधव ने किन्नर विमर्श, स्त्री विमर्श और वृद्ध विमर्श के बारे में बताया है। देखा जाए तो मनुष्य के इस हिंसक दुनिया में किन्नर ही ऐसा लिंग है जिसके पास मनुष्य से भी बड़ा मानवता पूर्ण हृदय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ संख्या- 250
2. यमदीप, नीरजा माधव (2002) सुनील साहित्य सदन, दिल्ली।
3. यमदीप, नीरजा माधव, पृष्ठ संख्या- 82
4. वही, पृष्ठ संख्या -95
5. वही, पृष्ठ संख्या -46
6. वही, पृष्ठ संख्या-137
7. वही, पृष्ठ संख्या-139
8. वही, पृष्ठ संख्या -12
9. वही, पृष्ठ संख्या-13
10. वही, पृष्ठ संख्या-115-116
11. वही, पृष्ठ संख्या-269
12. वही, पृष्ठ संख्या -53

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारत और जर्मनी में किशोर अपराध पर एक कानूनी आलोचनात्मक विश्लेषण पहलू

मोहित श्रीवास्तव* डॉ. योगेश वामंकर**

*रिसर्च स्कॉलर, मानसरोवर ग्लोबल यूनिवर्सिटी, बिलकिसगंज, सीहोर (म.प्र.) भारत
**एसोसिएट प्रोफेसर, मानसरोवर ग्लोबल यूनिवर्सिटी, बिलकिसगंज, सीहोर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – दैनिक समाचार पत्रों की सुर्खियों पर एक सरसरी नजर ही इस तथ्य को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है कि लगातार बढ़ती अपराध दर आज समाज की सबसे बड़ी चिंताओं में से एक है, और यह स्पष्ट नहीं है कि हम इसके बारे में क्या कर सकते हैं, ताकि यह भारत जैसे तेजी से विकासशील राष्ट्र के विकास में बाधा न बने। अपराध रोकथाम के क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोणों की वकालत की गई है, जिनमें से एक सबसे महत्वपूर्ण और आकर्षक क्षेत्र देश में किशोर अपराधियों की पहचान और पुनर्वास है,जिसका उद्देश्य बच्चों के संभावित भविष्य के आपराधिक व्यवहार में सुधार और रोकथाम करना है। इस प्रकार, किशोर अपराध का अध्ययन अपराध अनुसंधान में एक विशेष स्थान रखता है। इस प्रकार के कई अध्ययन समय-समय पर न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर में किए गए हैं,जो एक दूसरे से पूरी तरह से अलग नहीं हो सकते हैं, लेकिन निश्चित रूप से किशोर अपराध के मुद्दे पर उनके दृष्टिकोण, दर्शन और विचारों में भिन्नता है। आज के तेजी से बदलते समय में, किशोर अपराध की गंभीरता को समझने के लिए इस क्षेत्र में एक समेकित शोध की तत्काल आवश्यकता है, विशेष रूप से पिछले वर्षों में विकसित हुई मौजूदा किशोर न्याय प्रणाली के मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रित करते हुए।

किशोर अपराध के विभिन्न आयाम हैं जिन्हें इसके अनुभवजन्य अध्ययन के दौरान ध्यान में रखना आवश्यक है। हम राष्ट्रीय स्तर पर यह विचार करने का प्रयास कर रहे हैं कि मानवीय आचरण के संबंध में अब तक क्या हुआ है और वर्तमान में क्या हो रहा है। विशेष रूप से 18 वर्ष तक की आयु के व्यक्तियों के संदर्भ में, जो कानूनी और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से बच्चे या किशोर हैं।

बच्चे होने के नाते, उन्हें माता-पिता, रिश्तेदारों,पड़ोसियों, समुदाय आदि के सख्त नियंत्रण में रहना चाहिए, लेकिन जहां परिस्थितियां प्रोत्साहित करती हैं और उचित ठहराती हैं,वे समुदाय या समाज द्वारा निर्धारित व्यवहार के मानकों का उल्लंघन करने लगते हैं,जिसके कारण उन्हें कानूनी ढांचे के दायरे में किशोर अपराधी कहा जाता है। वर्तमान विश्लेषण में केवल उन्हीं बच्चों को ध्यान में रखा गया है जिन्हें कानूनी मानकों के अनुसार अपराधी माना गया है। संभवत: ऐसे कई लोग हो सकते हैं जिनका आपराधिक व्यवहार जानबूझकर या अनजाने में राज्य के प्राधिकरण या एजेंसियों द्वारा कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत नहीं लाया गया हो और दर्ज नहीं किया गया हो। और हम इस विषय के अंतर्गत जर्मनी जैसे अन्य देशों में किशोर अपराध से संबंधित प्रावधानों पर भी चर्चा करेंगे।

यह भारत में किशोर अपराध की प्रवृत्ति का एक व्यापक विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जो आजकल तेजी से बदल रही है। गहन विवादों के बीच पारित किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015, भारत में आपराधिक न्याय प्रशासन में एक महत्वपूर्ण बदलाव है। पहले, यदि 16 वर्ष से कम आयु का लड़का या 18 वर्ष से कम आयु की लड़की कोई अपराध करती थी, तो उसे किशोर अपराधी कहा जाता था। लेकिन इस अधिनियम के लागू होने के बाद, यदि 18 वर्ष से कम आयु का लड़का या लड़की कोई अपराध करती है, तो उसे कानून के साथ संघर्ष करने वाला किशोर, यानी किशोर अपराधी माना जाएगा। न केवल ‘अपराधी’ शब्द की अवधारणात्मक रूपरेखा में बदलाव आया है, बल्कि अपराध का आकार, स्वरूप और दर भी लगातार बदल रही है। भारत में कानून से संघर्ष करने वाले किशोरों की संख्या, यानी जिन्हें परंपरागत रूप से किशोर अपराधी कहा जाता है, ग्रामीण क्षेत्रों में और जिला स्तरीय क्षेत्रों मां घट रही है। हाल के वर्षों में अपराध दर में भी स्पष्ट रूप से गिरावट देखी जा रही है।

प्रस्तावना – किशोर अपराध वर्तमान समय में विश्व स्तर पर एक गंभीर सामाजिक एवं कानूनी समस्या बन चुका है। जब कोई बालक या किशोर, जिसकी आयु कानून द्वारा निर्धारित सीमा से कम होती है, किसी अपराध में संलिप्त पाया जाता है, तो उसे किशोर अपराध कहा जाता है। भारत सहित अनेक देशों में बढ़ते किशोर अपराध समाज, परिवार, शिक्षा व्यवस्था तथा न्याय प्रणाली के लिए चुनौती उत्पन्न कर रहे हैं। चोरी, हिंसा, नशीले पदार्थों का सेवन, साइबर अपराध, यौन अपराध तथा गैंग गतिविधियों जैसे अपराधों में किशोरों की भागीदारी लगातार बढ़ती दिखाई दे रही है।

भारत में किशोर अपराध की समस्या के समाधान हेतु National Crime Records Bureau के आँकड़ों तथा किशोर न्याय प्रणाली के माध्यम से अनेक प्रयास किए गए हैं। भारत में Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 लागू किया गया है, जिसका उद्देश्य अपराध करने वाले किशोरों के सुधार, पुनर्वास और सामाजिक पुनर्स्थापन को सुनिश्चित करना है। यह अधिनियम दंड के स्थान पर सुधारात्मक दृष्टिकोण को महत्व देता है। इसके बावजूद, गंभीर अपराधों में किशोरों की बढ़ती संलिप्तता ने भारतीय न्याय व्यवस्था के समक्ष कई कानूनी और नैतिक प्रश्न खड़े कर दिए हैं।

अन्य देशों जैसे United States, United Kingdom, Japan तथा

Canada में किशोर न्याय प्रणाली भारत से भिन्न है। कुछ देशों में कठोर दंडात्मक व्यवस्था अपनाई जाती है, जबकि कुछ देशों में पुनर्वास, परामर्श और शिक्षा आधारित सुधारात्मक नीतियों को प्राथमिकता दी जाती है। इन देशों की कानूनी व्यवस्थाओं का अध्ययन यह समझने में सहायक होता है कि किशोर अपराध की रोकथाम और नियंत्रण के लिए कौन-सी नीतियाँ अधिक प्रभावी हैं।

यह शोध भारत और अन्य देशों में किशोर अपराध की स्थिति, उसके कारणों, प्रभावों तथा उपलब्ध कानूनी व्यवस्थाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करेगा। साथ ही यह अध्ययन विभिन्न देशों की किशोर न्याय प्रणालियों की तुलना करते हुए भारतीय कानून की कमियों, चुनौतियों तथा सुधार की संभावनाओं का मूल्यांकन करेगा। इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि किशोर अपराध की समस्या के समाधान हेतु केवल दंड पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक जागरूकता, शिक्षा, पारिवारिक सहयोग और प्रभावी पुनर्वास नीतियाँ भी अत्यंत आवश्यक हैं।

बच्चे एक महत्वपूर्ण संपत्ति हैं, जो राष्ट्र के भविष्य को आकार देने में अहम भूमिका निभाते हैं। वे आज रखी जा रही नींव हैं, जिन पर कल राष्ट्र का भविष्य टिका होगा। इसलिए, इन नींवों को मजबूत बनाने के लिए, उन्हें सर्वांगीण विकास के समान अवसर प्रदान करने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए, ताकि वे भविष्य के सशक्त नागरिक बन सकें, जो शारीरिक रूप से स्वस्थ, मानसिक रूप से जागरूक और नैतिक रूप से स्वस्थ हों, और समाज की प्रगति के लिए आवश्यक कौशल और प्रेरणाओं से संपन्न हों।

अपने बच्चों की उचित देखभाल करना और उन्हें जीवन में एक मजबूत शुरुआत प्रदान करना प्रत्येक व्यक्ति का प्राथमिक कर्तव्य है, और यह सुनिश्चित करना कि उन्हें उचित पोषण, देखभाल मिले और किसी भी संभावित घटना से आवश्यक सुरक्षा मिले जो उनके शोषण, दुर्व्यवहार, उपेक्षा, पतन आदि की ओर ले जा सकती है।

यह कर्तव्य राज्य द्वारा कानून के माध्यम से लागू किया जाता है, क्योंकि उपेक्षित बच्चों की देखभाल और संरक्षण की अंतिम जिम्मेदारी राज्य की होती है। जहां माता-पिता आवश्यक देखभाल और संरक्षण प्रदान करने में विफल या असमर्थ होते हैं, या घर का वातावरण अस्वस्थ या बच्चों के उचित विकास के लिए हानिकारक होता है, वहां राज्य से 'पितृसत्तात्मक अभिभावक' के रूप में हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया जाता है ताकि उपेक्षित बच्चों को समाज में उनके पुनर्वास के लिए उचित देखभाल और संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके, और उन्हें समाज के उत्पादक सदस्यों के रूप में शामिल किया जा सके। यह दायित्व एक कल्याणकारी और लोकतांत्रिक राज्य में अधिक स्पष्ट हो जाता है, जहां बच्चों के मानवाधिकारों को कानून के शासन और वितरणात्मक न्याय की गारंटी के माध्यम से लागू किया जाना है।

बच्चों की मानसिक अपरिपक्वता, भावनात्मक अस्थिरता, कोमल और संवेदनशील उम्र, कमजोर शारीरिक बनावट, दुराचार और हिंसा की ओर आसानी से प्रवृत्त होने की प्रवृत्ति, स्वयं की देखभाल करने में असमर्थता आदि के कारण, उनके व्यक्तित्व को एक परिपूर्ण व्यक्ति के रूप में ढालने के लिए विशेष देखभाल, संरक्षण, उपचार और स्नेहपूर्ण ध्यान की आवश्यकता होती है। बच्चों के मानवाधिकार नैतिक और भौतिक उपेक्षा द्वारा उनके शोषण से बचाव के लिए सुनियोजित और सुरक्षित संरक्षण की मांग करते हैं।

किशोर अपराध का अर्थ – किशोर अपराध से आशय ऐसे अवैधानिक या असामाजिक कार्यों से है, जिन्हें कोई बालक या किशोर, जिसकी आयु कानून द्वारा निर्धारित सीमा से कम हो, करता है। जब कोई किशोर चोरी, हिंसा, नशाखोरी, झगड़ा, साइबर अपराध या अन्य गैर-कानूनी गतिविधियों में शामिल होता है, तो उसे किशोर अपराध कहा जाता है। सामान्यत: यह अपराध सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक कारणों से उत्पन्न होते हैं

भारत में Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को किशोर या बालक माना जाता है।

Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 की धारा 2(13) के अनुसार: 'Child in Conflit with Law' से अभिप्राय ऐसे बालक से है, जिसने अपराध किया हो और जिसकी आयु अपराध किए जाने की तिथि पर 18 वर्ष से कम हो। अर्थात, भारतीय कानून में किशोर अपराध का संबंध केवल अपराध से नहीं, बल्कि अपराध करने वाले बालक की आयु और उसके सुधारात्मक अधिकारों से भी है। भारतीय किशोर न्याय प्रणाली दंडात्मक दृष्टिकोण के बजाय सुधारात्मक एवं पुनर्वासात्मक दृष्टिकोण को अधिक महत्व देती है।

किशोर अपराध की परिभाषाएँ :

1. **गिलिन एवं गिलिन –** 'किशोर अपराध वह व्यवहार है जो समाज के नियमों एवं कानूनों का उल्लंघन करता है तथा जिसे समाज अस्वीकार्य मानता है।'
2. **सिरिल बर्ट –** 'जब कोई बालक या किशोर ऐसी गतिविधियों में संलग्न होता है जो कानून के विरुद्ध हों और समाज के लिए हानिकारक हों, तब उसे किशोर अपराध कहा जाता है।'
3. **संयुक्त राष्ट्र –** 'किशोर अपराध ऐसे गैर-कानूनी कार्यों को कहा जाता है, जो कम आयु के व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं और जिनके लिए विशेष न्यायिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है।'

इतिहास

भारत और अन्य देशों में किशोर अपराध का इतिहास – किशोर अपराध का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन काल से ही समाज में बच्चों और किशोरों द्वारा अनुचित या अपराधपूर्ण व्यवहार की घटनाएँ देखने को मिलती रही हैं। प्रारंभिक समय में बच्चों और वयस्क अपराधियों के बीच कोई विशेष अंतर नहीं किया जाता था तथा दोनों को समान दंड दिया जाता था। समय के साथ यह विचार विकसित हुआ कि किशोर मानसिक एवं सामाजिक रूप से पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं होते, इसलिए उनके साथ अलग और सुधारात्मक व्यवहार किया जाना चाहिए।

प्राचीन एवं मध्यकालीन स्थिति – प्राचीन समाजों में अपराध करने वाले बच्चों को कठोर दंड दिया जाता था। उस समय यह माना जाता था कि अपराध चाहे किसी भी आयु के व्यक्ति द्वारा किया जाए, उसके लिए समान दंड आवश्यक है। मध्यकाल में भी यूरोप तथा अन्य देशों में किशोर अपराधियों को वयस्क अपराधियों के साथ जेलों में रखा जाता था, जिससे उनमें और अधिक अपराध प्रवृत्ति विकसित होती थी।

आधुनिक किशोर न्याय प्रणाली का विकास – 19वीं शताब्दी में औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा गरीबी के कारण किशोर अपराधों में वृद्धि

हुई। इसके परिणामस्वरूप समाज सुधारकों और विधिवेत्ताओं ने यह मांग उठाई कि बच्चों के लिए अलग न्याय व्यवस्था होनी चाहिए। इसी विचार के आधार पर United States में वर्ष 1899 में पहला किशोर न्यायालय स्थापित किया गया। इसके बाद United Kingdom, Canada तथा अन्य देशों में भी किशोर न्याय प्रणाली विकसित हुई।

भारत में किशोर अपराध का इतिहास – भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान किशोर अपराधियों के लिए विशेष कानून बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। वर्ष 1850 में "Apprentices Act" लागू किया गया, जिसका उद्देश्य अपराधी बच्चों को प्रशिक्षण देकर सुधारना था। इसके बाद वर्ष 1897 में "Reformatory Schools Act" बनाया गया, जिसके अंतर्गत किशोर अपराधियों को जेल के स्थान पर सुधार विद्यालयों में भेजने की व्यवस्था की गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में बाल अधिकारों और किशोर न्याय प्रणाली को अधिक महत्व दिया गया। वर्ष 1960 में "Children Act" लागू किया गया, जिसने बच्चों के संरक्षण और पुनर्वास की व्यवस्था की। बाद में Juvenile Justice Act, 1986 पारित किया गया, जिससे पूरे देश में एक समान किशोर न्याय प्रणाली लागू हुई।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा बाल अधिकारों से संबंधित मानकों को अपनाने के बाद भारत ने Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2000 लागू किया। इसके बाद बढ़ते गंभीर अपराधों को ध्यान में रखते हुए Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 लागू किया गया। इस अधिनियम में 16 से 18 वर्ष के किशोरों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों में विशेष प्रावधान किए गए हैं।

वर्तमान स्थिति – आज अधिकांश देशों में किशोर न्याय प्रणाली का मुख्य उद्देश्य दंड देना नहीं, बल्कि किशोरों का सुधार, पुनर्वास और समाज में पुनर्स्थापन करना है। शिक्षा, परामर्श, पारिवारिक सहयोग तथा सामाजिक जागरूकता को किशोर अपराध की रोकथाम के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। फिर भी बढ़ते साइबर अपराध, नशाखोरी और हिंसात्मक घटनाएँ विश्वभर में किशोर न्याय प्रणाली के सामने नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही हैं।

जर्मनी में किशोर अपराध का इतिहास – जर्मनी में किशोर अपराध की अवधारणा का विकास सामाजिक कल्याण और सुधारवादी दृष्टिकोण के आधार पर हुआ। प्रारंभिक समय में यहाँ भी किशोर अपराधियों को वयस्क अपराधियों के समान दंड दिया जाता था, लेकिन बाद में यह समझ विकसित हुई कि बच्चों के सुधार हेतु अलग न्याय प्रणाली आवश्यक है।

किशोर न्याय प्रणाली का विकास – 20वीं शताब्दी की शुरुआत में जर्मनी ने किशोर अपराधियों के लिए विशेष कानून और न्यायालय विकसित किए। वर्ष 1923 में जर्मनी में 'Juvenile Court Act' लागू किया गया, जिसने किशोर न्याय प्रणाली को संगठित रूप प्रदान किया।

इस कानून का उद्देश्य किशोर अपराधियों को कठोर दंड देने के बजाय उनका नैतिक एवं सामाजिक सुधार करना था। जर्मनी की न्याय प्रणाली में शिक्षा, अनुशासन और सामाजिक पुनर्वास को विशेष महत्व दिया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का विकास– द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जर्मनी में किशोर न्याय प्रणाली को और अधिक मानवीय बनाया गया। सरकार ने यह नीति अपनाई कि किशोर अपराधियों को जेल भेजने के बजाय उन्हें सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान की जाए।
जर्मनी में किशोर न्याय प्रणाली निम्न सिद्धांतों पर आधारित है:–

- सुधार और पुनर्वास
- शिक्षा और प्रशिक्षण
- सामाजिक पुनर्स्थापन
- न्यूनतम कारावास

वर्तमान स्थिति – आज जर्मनी की किशोर न्याय प्रणाली विश्व की सबसे प्रभावी सुधारात्मक प्रणालियों में मानी जाती है। यहाँ किशोर अपराधियों को परामर्श, व्यावसायिक प्रशिक्षण, मनोवैज्ञानिक सहायता तथा सामुदायिक सेवा के माध्यम से सुधारने का प्रयास किया जाता है। जर्मनी में दंड की अपेक्षा पुनर्वास को अधिक महत्व दिया जाता है।

भारत और अन्य देशों में किशोर अपराध से संबंधित प्रावधान
किशोर न्याय (देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 के अनुसार

- क्रूरता (धारा 75): किसी बच्चे पर हमला करने, उसे छोड़ने, दुर्व्यवहार करने या उसे असुरक्षित छोड़ने वाले किसी भी व्यक्ति को 3 वर्ष तक का कारावास, 1 लाख रुपये तक का जुर्माना या दोनों हो सकते हैं।
- भीख मांगने के लिए रोजगार (धारा 76): 5 वर्ष तक का कारावास और 1 लाख रुपये का जुर्माना। मादक पदार्थ
- (धारा 77 और 78): शराब या नशीली दवाओं की आपूर्ति के लिए किसी बच्चे को देना या उसका उपयोग करना 7 वर्ष तक के कारावास और 1 लाख रुपये के जुर्माने से दंडनीय है।
- बाल श्रमिक का शोषण (धारा 79): 5 वर्ष तक का कारावास और 1 लाख रुपये का जुर्माना। बिक्री और खरीद (धारा 81): 7 वर्ष तक का कारावास और 5 लाख रुपये का जुर्माना।
- शारीरिक दंड (धारा 82): किसी बच्चे की देखरेख में रहने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा उसे शारीरिक दंड देने पर 1 वर्ष तक का कारावास और जुर्माना हो सकता है।

जर्मन कानून – जर्मन कानून में, किशोरों के लिए प्रावधानों को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया गया है: जब कोई नाबालिग अपराध का अपराधी होता है, और जब वह किसी अपराध का शिकार होता है। यह ढांचा सजा की तुलना में पुनर्वास पर अधिक जोर देता है।

1. **अपराधी के रूप में किशोर:** जर्मन किशोर न्याय प्रणाली 'सजा के बजाय शिक्षा' के सिद्धांत पर काम करती है। इसे नियंत्रित करने वाला प्राथमिक कानून युवा न्यायालय कानून है। आपराधिक जिम्मेदारी की आयुरू 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को आपराधिक रूप से उत्तारदायी नहीं ठहराया जा सकता है।
2. **किशोर (आयु 14–17):** विशेष किशोर न्यायालयों में मुकदमा चलाया जाता है, उन्हें मुख्य रूप से शैक्षिक उपायों, अनुशासनात्मक कार्रवाइयों (जैसे चेतावनी या पीड़ित–अपराधी मध्यस्थता), या अल्पकालिक हिरासत की सजा दी जाती है।
3. **किशोर (आयु 18–20):** युवा वयस्कों पर किशोर कानून के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है यदि वे कम उम्र के व्यक्ति की भावनात्मक या बौद्धिक परिपक्वता प्रदर्शित करते हैं, या यदि विशिष्ट अपराध ष्युवा दुराचारष का कार्य था।

भारत और जर्मनी के बीच किशोर अपराध की आवृत्ति का आलोचनात्मक विश्लेषण – भारत और जर्मनी के बीच किशोर अपराध की आवृत्ति का आलोचनात्मक विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों देशों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा कानूनी व्यवस्थाओं

में व्यापक अंतर होने के कारण किशोर अपराध की प्रकृति, कारण तथा उसकी आवृत्ति में भी महत्वपूर्ण भिन्नताएँ पाई जाती हैं। किशोर अपराध से आशय उन अपराधों से है जो विधि द्वारा निर्धारित आयु सीमा से कम आयु के बच्चों या किशोरों द्वारा किए जाते हैं। भारत में किशोर अपराध एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में उभर रहा है, जबकि जर्मनी जैसे विकसित देशों में यह समस्या अपेक्षाकृत नियंत्रित दिखाई देती है।

भारत में किशोर अपराध की बढ़ती आवृत्ति के पीछे अनेक कारण उत्तरदायी हैं। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, पारिवारिक विघटन, घरेलू हिंसा, नशे की लत, सोशल मीडिया का दुष्प्रभाव तथा गलत संगति किशोरों को अपराध की ओर प्रेरित करती है। तेजी से हो रहे शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण परिवारों में नियंत्रण और नैतिक मूल्यों की कमी भी किशोर अपराध को बढ़ावा देती है। भारत में चोरी, लूट, हत्या, यौन अपराध, साइबर अपराध तथा नशीले पदार्थों से जुड़े अपराधों में किशोरों की संलिप्तता बढ़ती देखी गई है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आँकड़ों के अनुसार, पिछले कुछ वर्षों में किशोर अपराध के मामलों में वृद्धि दर्ज की गई है, जो सामाजिक और प्रशासनिक चुनौतियों को दर्शाती है।

इसके विपरीत, जर्मनी में किशोर अपराध की आवृत्ति अपेक्षाकृत कम है। इसका प्रमुख कारण वहाँ की मजबूत शिक्षा प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था तथा प्रभावी पुनर्वास नीति है। जर्मनी में सरकार किशोरों के मानसिक और सामाजिक विकास पर विशेष ध्यान देती है। वहाँ के विद्यालयों में परामर्श सेवाएँ, मनोवैज्ञानिक सहायता तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, जिससे किशोर अपराध की संभावना कम हो जाती है। जर्मनी की किशोर न्याय प्रणाली दंडात्मक दृष्टिकोण के बजाय सुधारात्मक और पुनर्वासात्मक दृष्टिकोण को अधिक महत्व देती है। वहाँ अपराध करने वाले किशोरों को जेल भेजने के बजाय परामर्श, सामुदायिक सेवा, शिक्षा तथा पुनर्वास कार्यक्रमों के माध्यम से समाज की मुख्यधारा में वापस लाने का प्रयास किया जाता है।

आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भारत की किशोर न्याय प्रणाली में अभी भी अनेक कमियाँ विद्यमान हैं। सुधार गृहों की खराब स्थिति, प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी, पुनर्वास योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन न होना तथा सामाजिक जागरूकता का अभाव इस समस्या को और गंभीर बनाता है। कई बार किशोर अपराधियों को उचित मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सहायता नहीं मिल पाती, जिसके कारण वे दोबारा अपराध की ओर आकर्षित हो जाते हैं। दूसरी ओर, जर्मनी में किशोर अपराधियों के प्रति मानवीय और संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया जाता है, जिससे अपराध की पुनरावृत्ति कम होती है।

भारत और जर्मनी की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि केवल कठोर कानून बनाकर किशोर अपराध को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसके लिए परिवार, समाज, विद्यालय तथा सरकार सभी की संयुक्त भूमिका आवश्यक है। भारत को जर्मनी की पुनर्वास आधारित नीतियों, शिक्षा सुधार तथा सामाजिक सुरक्षा मॉडल से सीख लेकर किशोर न्याय प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाना चाहिए। यदि किशोरों को उचित शिक्षा, नैतिक मार्गदर्शन, रोजगार के अवसर और मानसिक सहयोग प्रदान किया जाए, तो किशोर अपराध की बढ़ती प्रवृत्ति को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार, किशोर अपराध की समस्या केवल कानूनी नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक चुनौती भी है, जिसके समाधान के लिए समग्र और संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष – भारत और जर्मनी में किशोर अपराध पर किए गए इस कानूनी आलोचनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि किशोर अपराध केवल एक कानूनी समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से जुड़ी एक जटिल चुनौती है। दोनों देशों की किशोर न्याय प्रणालियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि किशोर अपराध की रोकथाम के लिए केवल कठोर दंड पर्याप्त नहीं है, बल्कि सुधारात्मक एवं पुनर्वासात्मक दृष्टिकोण अधिक प्रभावी सिद्ध होता है।

भारत में किशोर अपराध की बढ़ती घटनाएँ गरीबी, अशिक्षा, पारिवारिक विघटन, बेरोजगारी, नशाखोरी, सामाजिक असमानता तथा आधुनिक तकनीक के दुरुपयोग जैसी समस्याओं से प्रभावित हैं। यद्यपि भारत में Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 के माध्यम से किशोर अपराधियों के सुधार और पुनर्वास हेतु महत्वपूर्ण कानूनी प्रावधान किए गए हैं, फिर भी सुधार गृहों की खराब स्थिति, पुनर्वास योजनाओं के कमजोर क्रियान्वयन तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी जैसी समस्याएँ अभी भी विद्यमान हैं। इसके कारण कई बार किशोर अपराधी समाज की मुख्यधारा में पुन: स्थापित नहीं हो पाते और पुन: अपराध की ओर आकर्षित हो जाते हैं।

दूसरी ओर, जर्मनी की किशोर न्याय प्रणाली पुनर्वास, शिक्षा, मनोवैज्ञानिक सहायता तथा सामाजिक पुनर्स्थापन पर आधारित है। वहाँ किशोर अपराधियों को अपराधी के रूप में नहीं, बल्कि सुधार योग्य व्यक्ति के रूप में देखा जाता है। जर्मनी की व्यवस्था यह सिद्ध करती है कि यदि किशोरों को उचित शिक्षा, परामर्श, पारिवारिक सहयोग तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए, तो अपराध की पुनरावृत्ति को काफी हद तक रोका जा सकता है।

भारत और जर्मनी की तुलना से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत को अपनी किशोर न्याय प्रणाली को और अधिक प्रभावी एवं संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। भारत को जर्मनी की पुनर्वास आधारित नीतियों, शिक्षा प्रणाली तथा सामाजिक कल्याण मॉडल से सीख लेकर सुधार गृहों की स्थिति में सुधार, मनोवैज्ञानिक परामर्श की व्यवस्था, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा सामाजिक जागरूकता कार्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए।

अंततः यह कहा जा सकता है कि किशोर राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति हैं और उनका संरक्षण, सुधार तथा पुनर्वास समाज और राज्य दोनों की जिम्मेदारी है। यदि बच्चों को उचित शिक्षा, नैतिक मार्गदर्शन, सुरक्षित पारिवारिक वातावरण तथा सकारात्मक सामाजिक अवसर प्रदान किए जाएँ, तो किशोर अपराध की समस्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इसलिए आवश्यक है कि कानून के साथ-साथ समाज, परिवार, विद्यालय तथा सरकार सभी मिलकर किशोरों के उज्ज्वल भविष्य और अपराधमुक्त समाज के निर्माण हेतु समन्वित प्रयास करें।

सुझाव – भारत और जर्मनी में किशोर अपराध की स्थिति तथा किशोर न्याय प्रणाली के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि किशोर अपराध की समस्या के समाधान के लिए केवल कानूनी दंड पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा पुनर्वासात्मक उपायों को भी समान महत्व देना आवश्यक है। इस संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

1. **शिक्षा और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए–** विद्यालयों में

केवल औपचारिक शिक्षा ही नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा, अनुशासन, सामाजिक उत्तारदायित्व तथा जीवन कौशल से संबंधित शिक्षा भी प्रदान की जानी चाहिए। इससे किशोरों में सकारात्मक सोच और जिम्मेदारी की भावना विकसित होगी।

2. **पारिवारिक वातावरण को मजबूत बनाया जाए –** परिवार किशोरों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माता-पिता को बच्चों के प्रति संवेदनशील व्यवहार अपनाना चाहिए तथा उन्हें उचित मार्गदर्शन और भावनात्मक सहयोग प्रदान करना चाहिए। घरेलू हिंसा, उपेक्षा और पारिवारिक विघटन को कम करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।

3. **मनोवैज्ञानिक परामर्श और काउंसलिंग की व्यवस्था हो –** किशोरों में मानसिक तनाव, अवसाद, क्रोध तथा सामाजिक दबाव को कम करने के लिए विद्यालयों और सुधार गृहों में प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों और परामर्शदाताओं की नियुक्ति की जानी चाहिए। इससे किशोरों को अपराध की ओर बढ़ने से रोका जा सकेगा।

4. **सुधार गृहों की स्थिति में सुधार किया जाए –** भारत में कई सुधार गृहों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। वहाँ स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा पुनर्वास कार्यक्रमों को बेहतर बनाया जाना चाहिए ताकि किशोर अपराधियों का वास्तविक सुधार संभव हो सके।

5. **पुनर्वास आधारित न्याय प्रणाली को प्राथमिकता दी जाए –** जर्मनी की तरह भारत में भी दंडात्मक दृष्टिकोण के बजाय सुधारात्मक और पुनर्वासात्मक दृष्टिकोण को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। किशोर अपराधियों को समाज की मुख्यधारा में वापस लाने के लिए शिक्षा, रोजगार प्रशिक्षण और सामुदायिक सेवा कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।

6. **साइबर अपराध और नशाखोरी पर नियंत्रण आवश्यक है –** वर्तमान समय में किशोरों में साइबर अपराध और नशीले पदार्थों की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसके लिए इंटरनेट के सुरक्षित उपयोग, नशा मुक्ति अभियान तथा जागरूकता कार्यक्रमों को बढ़ावा देना आवश्यक है।

7. **कानूनी जागरूकता बढ़ाई जाए –** किशोरों तथा उनके अभिभावकों को किशोर न्याय कानूनों और बाल अधिकारों के संबंध में जागरूक किया जाना चाहिए। विद्यालयों, कॉलेजों और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से कानूनी साक्षरता अभियान चलाए जा सकते हैं।

8. **सरकार और समाज के संयुक्त प्रयास आवश्यक हैं –** किशोर अपराध की रोकथाम केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं है। समाज, परिवार, विद्यालय, गैर-सरकारी संगठन तथा न्याय प्रणाली सभी को मिलकर कार्य करना होगा। सामुदायिक सहयोग और सामाजिक जागरूकता से ही इस समस्या का प्रभावी समाधान संभव है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि किशोर अपराध की समस्या का समाधान कठोर दंड में नहीं, बल्कि बच्चों को सही दिशा, शिक्षा, सुरक्षा, प्रेम और अवसर प्रदान करने में निहित है। यदि किशोरों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाए, तो वे राष्ट्र के जिम्मेदार और सशक्त नागरिक बन सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अग्रवाल, एच. ओ. (2019). मानवाधिकार। इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स।
2. आहूजा, राम. (2018). भारत में सामाजिक समस्याएँ। जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
3. बेदी, किरण. (2017). भारत में किशोर अपराध एवं आपराधिक न्याय प्रणाली। नई दिल्ली: यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कंपनी।
4. भट्टाचार्य, एस. के. (2016). भारत में किशोर न्याय प्रणाली। नई दिल्ली: दीप एंड दीप पब्लिकेशन्स।
5. गिलिन, जे. एल., एवं गिलिन, जे. पी. (1954). सांस्कृतिक समाजशास्त्र। न्यूयॉर्क: मैकमिलन कंपनी।
6. भारत सरकार। (2015). किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015। नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय।
7. कुमार, वी. (2020). भारत में बाल अधिकार एवं किशोर न्याय। नई दिल्ली: लेक्सिसनेक्सिस।
8. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो। (2022). भारत में अपराध रिपोर्ट 2022। नई दिल्ली: गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
9. परांजपे, एन. वी. (2021). अपराधशास्त्र एवं दंडशास्त्र। इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी।
10. पिल्लई, पी. एस. ए. (2019). आपराधिक विधि। नई दिल्ली: लेक्सिसनेक्सिस बटरवर्थ्स।
11. सदरलैंड, ई. एच., एवं क्रेसी, डी. आर. (1978). अपराधशास्त्र के सिद्धांत। फिलाडेल्फिया: लिप्पिनकॉट कंपनी।
12. संयुक्त राष्ट्र। (1985). किशोर न्याय प्रशासन हेतु संयुक्त राष्ट्र न्यूनतम मानक नियम (बीजिंग नियम)। न्यूयॉर्क: संयुक्त राष्ट्र।
13. यूनिसेफ। (2021). बाल संरक्षण एवं किशोर न्याय रिपोर्ट। न्यूयॉर्क: यूनिसेफ।
14. वर्मा, एस. के. (2015). भारत में किशोर न्याय प्रणाली एवं बाल अधिकार। नई दिल्ली: इंडियन लॉ इंस्टीट्यूट।
15. जर्मन युवा न्यायालय अधिनियम। (1923). जर्मनी किशोर न्याय अधिनियम। बर्लिन: संघीय न्याय मंत्रालय, जर्मनी।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

कोरोना महामारी का अभिभावकों पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, नरसिंहपुर जिले की जनपद पंचायत साईंखेड़ा के संदर्भ में

इन्द्रेश कुमार कोष्टा*

* शोधार्थी (समाजशास्त्र एवं समाजकार्य) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – कोरोना महामारी के दौरान सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा व्यवस्था अभूतपूर्व रूप से प्रभावित हुई। भारत में भी विद्यालयों के बंद होने के कारण ऑनलाइन शिक्षा को वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपनाया गया। चूँकि महामारी के दौरान शिक्षा का माध्यम ऑनलाइन हो गया था छात्र अपने-अपने घरों से अभिभावकों के बीच रहते हुए शिक्षा प्राप्त कर रहें थे। अभिभावकों ने अपने पाल्यों को प्राप्त हो रही शिक्षा के प्रभाव को अनुभव किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य अभिभावकों के दृष्टिकोण से ऑनलाइन शिक्षा के प्रभावों का अध्ययन करना है। शोध कार्य हेतु अध्ययन क्षेत्र के रुप में मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले की छ: जनपद पंचायतों में से साईंखेडा जनपद पंचायत को लिया गया। अध्ययन हेतु 100 अभिभावकों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया। तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का सारणीयन एवं विश्लेषण किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिकांश अभिभावक कृषि एवं मजदूरी आधारित निम्न-मध्यम आय वर्ग से संबंधित हैं, जिनकी आय महामारी के दौरान प्रभावित हुई। डिजिटल संसाधनों की कमी, आर्थिक दबाव, घर पर अध्ययन हेतु उपयुक्त वातावरण का अभाव, बच्चों के बढ़ते स्क्रीन टाइम, डिजिटल उपकरणों की लत, छात्रों की दिनचर्या में परिवर्तन तथा ऑनलाइन शिक्षा से असंतुष्टि प्रमुख समस्याएँ रहीं। दूसरी ओर ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों में तकनीकी दक्षता एवं डिजिटल साक्षरता का विकास भी कियाहै। अध्ययन में अधिकांश अभिभावकों ऑफलाइन शिक्षा को प्राथमिकता दी है साथ ही उन्होंने मिश्रित (हाइब्रिड) शिक्षा प्रणाली को भविष्य के लिए अधिक उपयुक्त माना है। उन्होंने मिश्रित शिक्षा प्रणाली में ऑनलाइन शिक्षा को एक निश्चित एवं नियंत्रित वातावरण में संपन्न करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

शब्द कुंजी – कोरोना महामारी, ऑनलाइन शिक्षा, अभिभावक दृष्टिकोण, डिजिटल संसाधन, स्क्रीन टाइम, हाइब्रिड शिक्षा।

प्रस्तावना – कोविड-19का प्रकोप सबसे पहले दिसंबर 2019 में वुहान शहर,हुबेई प्रांत, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना में रिपोर्ट किया गया था और संक्रमित रोगियों में गंभीर श्वसन विकार, सिरदर्द, थकान, गले में दर्द, हल्का बुखार और अन्य लक्षण पाए गए थे इस बीमारी को आधिकारिक तौर पर 11 फरवरी, 2020 को थक्ज द्वारा कोरोना वायरस रोग-2019 (COVID-19) नाम दिया गया है। 11 मार्च को WHO द्वारा कोविड-19को महामारी घोषित कर दिया गया। कोविड-19 तेजी से चीन तक ही सीमितप्रतीत होने वाली एक गंभीर समस्या से लगभग रातों-रात वैश्विक स्वास्थ्य आपातकाल में बदल गया। चूंकि यह एक संक्रामक रोग था कुछ देशों में कमज़ोर स्वास्थ्य सुविधाओं और संसाधनों की कमी के कारण, कोविड-19 महामारी के प्रसार को नियंत्रित करने के लिए कठोर नीतियाँ आवश्यक थीं। कोरोनावायरस के प्रसार से लड़ने के दौरान लोगों की जान बचाने के लिए संबंधित अधिकारियों द्वारा शारीरिक दूरी और लॉकडाउन संबंधी नीतिगत उपायों का समर्थन किया गया, कोरोना महामारी ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया, जिसमें शिक्षा क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों में से एक रहा है। महामारी के कारण विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को बंद करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा की निरंतरता बनाए रखने हेतु ऑनलाइन शिक्षा को अपनाया गया। ऑनलाइन शिक्षा ने एक ओर शिक्षा की निरंतरता को बनाए रखने का कार्य किया, वहीं दूसरी ओर अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न की है।

भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ बड़ी संख्या में परिवार निम्न एवं मध्यम आय वर्ग से संबंधित हैं, वहाँ डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता एवं तकनीकी पहुँच एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आई। विशेष रूप से ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में औसत/निम्न इंटरनेट गुणवत्ता, स्मार्टफोन एवं डिजिटल साक्षरता की कमी ने ऑनलाइन शिक्षा की प्रभावशीलता को प्रभावित किया। चूकिं महामारी के कारण विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को बंद करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा की निरंतरता बनाए रखने हेतु ऑनलाइन शिक्षा को अपनाया गया। इसके परिणामस्वरुप सभी छात्रों ने ऑनलाइन शिक्षा अपने-अपने घरों से अभिभावकों के बीच रहते हुए प्राप्त की है। इसका व्यापक प्रभाव अभिभावकों पर भी पड़ा। सभी अभिभावकों ने अपने पाल्यों को प्राप्त होने वाली शिक्षा की गुणवत्ता, उसका छात्रों में पड़ने वाले प्रभाव, उनकी दिनचर्या में आये परिवर्तन, मनोवैज्ञानिक प्रभाव एवं ऑनलाइन शिक्षा के कारण बच्चों की पढ़ाई की निगरानी, डिजिटल संसाधनों की व्यवस्था तथा स्वयं पर पड़ने वाले आर्थिक दबाव को अनुभव किया है इसलिए अभिभावकों के अनुभवों एवं दृष्टिकोण का अध्ययन करना आवश्यक है, जिससे भविष्य की शिक्षा नीति में सुधार हेतु उपयोगी सुझाव प्राप्त हो सकें। प्रस्तुत शोध-पत्र में अभिभावकों के दृष्टिकोण से ऑनलाइन शिक्षा के सकारात्मक एवं

नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. अभिभावकों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. ऑनलाइन शिक्षा हेतु डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता का अध्ययन करना।
3. ऑनलाइन शिक्षा के कारण अभिभावकों पर पड़े आर्थिक प्रभाव का विश्लेषण करना।
4. बच्चों के व्यवहार, स्क्रीन टाइम एवं दिनचर्या पर ऑनलाइन शिक्षा के प्रभावों का अध्ययन करना।
5. अभिभावकों के दृष्टिकोण से ऑनलाइन एवं ऑफलाइन शिक्षा की तुलना करना।
6. भविष्य की शिक्षा प्रणाली हेतु उपयुक्त माध्यम के संबंध में अभिभावकों की राय जानना।

साहित्य समीक्षा

1. जे. हुफ़मैन, और ई. सेकॉर्ड, (2021)- स्कूलों के ऑफलाइन उपस्थिति से इंटरनेट के ज़रिए ऑनलाइन उपस्थिति में बदलने के कारण परिवारों में नया दबाव आ गया है। यह स्पष्ट हुआ है कि परिवार और बच्चे स्कूलों पर पढ़ाई के साथ अन्य चीज़ों जैसे- खाना, हेल्थ केयर, रहने की जगह और सामाजिक कल्याण के लिए स्कूलों पर आश्रित थे। कई परिवारों का कहना है कि महामारी के तनाव की वजह से बच्चों की डाइट खराब हो गई है और वे मीठा और तला हुआ खाना ज़्यादा खाने लगे हैं। घर पर रहने के आदेश और ऑनलाइन पढ़ाई की वजह से व्यायाम के मौके कम हो गए हैं।कोविड-19 के दौरान सोशल मीडिया के बढ़ते इस्तेमाल, साथ ही शिक्षा के पारंपरिक तरीकों के डिजिटल प्लेटफॉर्म पर जाने से, ज़्यादातर किशोर स्क्रीन के सामने काफी ज़्यादा समय बिता रहे हैं। ज़्यादा स्क्रीन टाइम खराब नींद, सुस्त आदतें, मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं और शारीरिक स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़ा है।

2. एस. महेंद्र देव और राजेश्वरी सेनगुप्ता(2020)-भारत में लगभग 90प्रतिशत कामकाजी आबादी अनौपचारिक क्षेत्र में काम करती है जो देश की कुल जीडीपी में 45 प्रतिशत से ज़्यादा का योगदान देती है।नोटबंदी एवं गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स से संघर्ष कर रहा अनौपचारिक क्षेत्र कोविड-19 के प्रकोप के कारण असमान रूप से प्रभावित हुआ है।शहरी इलाकों में रहने वाले मज़दूरों की लॉकडाउन की वजह से बड़े पैमाने पर नौकरियां और इनकम खत्म हो गई हैं। अप्रैल 2020 में 122 मिलियन नौकरियां खत्म हो गईं। इनमें से छोटे व्यापारियों और दिहाड़ी मज़दूरों की 91 मिलियन नौकरियां चली गईं (सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी(CMIE))।अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के एक सर्वे से पता चलता है कि लॉकडाउन के दौरान 57 प्रतिशत ग्रामीण मज़दूरों और 80 प्रतिशत शहरी मज़दूरों की नौकरी चली गई।

शोध पद्धति-यह अध्ययन अन्वेषणात्मक शोध पर आधारित है।

अध्ययन क्षेत्र- प्रस्तुत शोध पत्र हेतु अध्ययन क्षेत्र मध्यप्रदेश राज्य के नरसिंहपुर जिले की छ: जनपद पंचायतों में से एक जनपद पंचायत साईंखेड़ा को चुना गया जिसके अंतर्गत ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में आने वाली उच्चतर माध्यमिक शालाओं में अध्ययन करने वाले छात्रों के अभिभावकों को लिया गया है।

निदर्शन- अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में स्थित उच्चतर माध्यमिक शालाओं में अध्ययन करने वाले छात्रों के अभिभावकों में से 100 अभिभावकों का उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा चयन किया गया।शाला के शिक्षकों के माध्यम से छात्रों के अभिभावकों से संपर्क कर साक्षात्कार अनुसूची के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए गये।

तथ्य संकलन के उपकरण- चूंकि अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र दोनों है।ऑनलाइन शिक्षा का अपने पाल्यों पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में अभिभावकों के अनुभव को जानने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया।

तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण- साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त उत्तरों का तथ्यों के रूप में वर्गीकरण, सारणीयन कर उनका विश्लेषण किया गया। साक्षात्कार अनुसूची में पूछे गए प्रश्नों एवं अभिभावकों से प्राप्त उत्तरों वर्गीकरण है-

तालिका 1 - **(अन्तिम पृष्ठ पर देखे)**

परिणाम एवं विश्लेषण

सामाजिक-आर्थिक स्थिति-अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 40 प्रतिशत अभिभावक कृषि एवं 36 प्रतिशत मजदूरी से जुड़े हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि एवं श्रम आधारित है। अधिकांश अभिभावक निम्न एवं निम्न-मध्यम आय वर्ग से संबंधित पाए गए। लगभग 64 प्रतिशत अभिभावकों की वार्षिक आय 100000 से 300000 रुपये के बीच थी। यह स्थिति दर्शाती है कि महामारी के दौरान डिजिटल शिक्षा हेतु आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करना इन परिवारों के लिए चुनौतीपूर्ण रहा होगा।

महामारी का आर्थिक प्रभाव-लगभग 74 प्रतिशत अभिभावकों ने स्वीकार किया कि कोरोना महामारी के दौरान उनकी आय प्रभावित हुई। महामारी के कारण रोजगार एवं आय के स्रोत सीमित हुए, जिससे परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर हुई। इसके अतिरिक्त 78 प्रतिशत अभिभावकों को बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई हेतु डिजिटल संसाधन खरीदने पड़े। इससे यह स्पष्ट होता है कि महामारी ने शिक्षा को आर्थिक बोझ में परिवर्तित कर दिया।

डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता-अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 62 प्रतिशत अभिभावकों के पास प्रारंभ में ऑनलाइन शिक्षा हेतु आवश्यक डिजिटल संसाधन उपलब्ध नहीं थे। परिणामस्वरूप अधिकांश परिवारों को स्मार्टफोन, इंटरनेट एवं अन्य उपकरण खरीदने पड़े। डिजिटल संसाधनों में स्मार्टफोन का उपयोग सर्वाधिक (86 प्रतिशत) पाया गया। इसका मुख्य कारण इसकी कम लागत, बहुउपयोग एवं आसान उपलब्धता है। लैपटॉप एवं कंप्यूटर का उपयोग अत्यंत सीमित रहा। यह परिणाम भारत में डिजिटल विभाजन की वास्तविकता को स्पष्ट करता है।

ऑनलाइन शिक्षा के प्रति अभिभावकों की संतुष्टि-लगभग 68 प्रतिशत अभिभावक ऑनलाइन शिक्षा से असंतुष्ट पाए गए। असंतोष के प्रमुख कारण निम्न थे-इंटरनेट एवं नेटवर्क समस्या, बच्चों का ध्यान भटकना, प्रत्यक्ष शिक्षण का अभाव, सीमित शिक्षक-विद्यार्थी संवाद, डिजिटल उपकरणों की कमी, अनुशासन एवं निगरानी की समस्या आदि। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि अधिकांश अभिभावकों की दृष्टि में पारंपरिक ऑफलाइन शिक्षा अधिक प्रभावी एवं विश्वसनीय है।

बच्चों के व्यवहार एवं मानसिकता पर प्रभाव-अध्ययन में 82 प्रतिशत अभिभावकों ने बताया कि बच्चे ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान चैटिंग, मूवी एवं कार्टून देखने जैसी गतिविधियों में संलग्न रहते थे। इसके अतिरिक्त 86 प्रतिशत अभिभावकों को बच्चों की लगातार निगरानी करनी पड़ती थी वही

84 प्रतिशत अभिभावकों ने माना कि बच्चों में मोबाइल/टैबलेट की लत विकसित हुई साथ ही 87 प्रतिशत अभिभावकों के अनुसार इस लत को छुड़ाना कठिन है। यह परिणाम स्पष्ट करता है कि ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों के व्यवहार एवं मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाला।

बच्चों की दिनचर्या एवं स्क्रीन टाइम पर प्रभाव–लगभग 83 प्रतिशत अभिभावकों ने माना कि बच्चों की दिनचर्या में परिवर्तन आया। अधिकांश अभिभावकों ने इस परिवर्तन को नकारात्मक माना। स्क्रीन टाइम में वृद्धि भी एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष के रूप में सामने आई। 86 प्रतिशत अभिभावकों के अनुसार बच्चों का स्क्रीन टाइम बढ़ा, जिसमें अधिकांश बच्चों का स्क्रीन टाइम 2–3 घंटे तक बढ़ गया। अत्यधिक स्क्रीन टाइम बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है।

ऑनलाइन शिक्षा के सकारात्मक प्रभाव–यद्यपि ऑनलाइन शिक्षा से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुईं, फिर भी इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी सामने आए। लगभग 83 प्रतिशत अभिभावकों का मानना था कि बच्चों में तकनीकी दक्षता बढ़ी। बच्चों ने मोबाइल एवं लैपटॉप संचालन, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का उपयोग, डिजिटल सामग्री डाउनलोड/अपलोड करना, ऑनलाइन संचार कौशल आदि कौशल विकसित किए है। इससे बच्चों की डिजिटल साक्षरता में वृद्धि हुई है।

शिक्षा के उपयुक्त माध्यम के संबंध में अभिभावकों की राय–अध्ययन में कोई भी अभिभावक केवल ऑनलाइन शिक्षा को उपयुक्त नहीं मानता। 64 प्रतिशत अभिभावकों ने मिश्रित (ऑनलाइन + ऑफलाइन) शिक्षा प्रणाली को बेहतर माना है। लेकिन इन अभिभावकों ने एक नियंत्रित एवं निश्चित वातावरण में ही ऑनलाइन शिक्षा देना स्वीकार किया है अर्थात स्मार्ट बोर्ड के माध्यम से शाला कक्ष में एवं शिक्षक के नियंत्रण में ऑनलाइन शिक्षा देने को स्वीकार किया है। वही 36 प्रतिशत अभिभावकों ने ऑफलाइन शिक्षा को प्राथमिकता दी है। यह स्पष्ट करता है कि भविष्य की शिक्षा प्रणाली में डिजिटल तकनीक एवं पारंपरिक शिक्षण का संतुलित समन्वय आवश्यक है।

निष्कर्ष–प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कोरोना महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षा एक आवश्यक विकल्प के रूप में उभरी, जिसने शिक्षा की निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तथापि, इसके साथ अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ भी सामने आईं।

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिकांश अभिभावक निम्न एवं मध्यम आय वर्ग से संबंधित थे, जिनकी आर्थिक स्थिति महामारी के दौरान प्रभावित हुई। डिजिटल संसाधनों की कमी एवं बढ़ते खर्च ने परिवारों पर अतिरिक्त आर्थिक दबाव डाला। बच्चों में स्क्रीन टाइम, मोबाइल की लत एवं एकाग्रता की समस्या, घर पर पढ़ाई हेतु उपयुक्त वातावरण का अभाव जैसी चुनौतियाँ भी बढ़ीं। दूसरी ओर ऑनलाइन शिक्षा ने बच्चों में तकनीकी दक्षता एवं डिजिटल साक्षरता का विकास किया।

अतः यह कहा जा सकता है कि भविष्य की शिक्षा व्यवस्था में केवल ऑनलाइन या केवल ऑफलाइन प्रणाली पर्याप्त नहीं होगी, बल्कि दोनों के संतुलित समन्वय पर आधारित हाइब्रिड (मिश्रित) शिक्षा प्रणाली अधिक प्रभावी एवं व्यवहारिक सिद्ध होगी।

सुझाव:

1. ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट एवं डिजिटल अवसंरचना का विस्तार किया जाए ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में उच्च गुणवत्ता इंटरनेट की व्यवस्था की जाए।
2. आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के किसी एक सदस्य को डिजिटल उपकरण उपलब्ध कराए जाएँ।
3. अधिकांश परिवारों में पढ़ाई के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध नहीं है अतः छात्रों को शाला में ही शिक्षक की निगरानी में ऑनलाइन पढाई करने की सुविधा दी जाए।
4. समस्त शालाओं में खास तौर पर ग्रामीण शालाओं में विधुत की आपूर्ति हेतु सौलर पैनल लगाये जाए।
5. ऑनलाइन शिक्षा हेतु कक्षाओं में स्मार्ट बोर्ड लगाये जाये एवं शिक्षक की निगरानी में ऑनलाइन पढ़ाई कराई जाए।
6. ऑनलाइन शिक्षा हेतु शिक्षकों को प्रतिवर्ष प्रशिक्षण दिया जाए।
7. सप्ताह में प्रत्येक विषय की कम से कम एक कक्षा ऑनलाइन (स्मार्ट बोर्ड के माध्यम से) कराई जाए।
8. बच्चों के स्क्रीन टाइम को नियंत्रित करने हेतु दिशानिर्देश बनाए जाएँ।
9. ऑनलाइन एवं ऑफलाइन शिक्षा के संतुलित उपयोग पर आधारित हाइब्रिड मॉडल विकसित किया जाए।
10. विद्यालयों में डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Mahendra Dev, S. and Sengupta, Rajeswari -Covid-19: Impact on the Indian Economy http://www.igidr.ac.in/pdf/publication/WP-2020-013.pdf
2. Hoofman, J., & Secord, E. (2021). The effect of COVID-19 on education. *Pediatric Clinics of North America*, *68*(5), 1071.
3. Aggarwal, J. C. (2010). *Educational Research*. New Delhi: Arya Book Depot.
4. Best, J. W., & Kahn, J. V. (2016). *Research in Education*. Pearson Education.
5. Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Education.
6. UNESCO. (2020). *Education in a Post-COVID World*. Paris: UNESCO Publications.
7. UNICEF. (2021). *The State of the World's Children Report*.
8. Mishra, L., Gupta, T., & Shree, A. (2020). Online teaching-learning in higher education during lockdown period of COVID-19 pandemic. *International Journal of Educational Research Open*, 1, 100012.
9. Dhawan, S. (2020). Online Learning: A Panacea in the Time of COVID-19 Crisis. *Journal of Educational Technology Systems*, 49(1), 5–22.
10. Singh, A. & Sharma, R. (2021). Impact of Online Education on Students during COVID-19 Pandemic. *Indian Journal of Education and Research*, 12(2), 45–58.
11. शर्मा प्रकाश(2004) : 'रिसर्च मैथोडोलोजी' पंचशील प्रकाशन , जयपुर,
12. आहूजा.रामः'सामाजिक अनुसंधान' रावत पब्लिकेशन, जयपुर
13. https://narsinghpur.nic.in
14. https://udiseplus.gov.in
15. https://cepr.org/about/people/hans-henrik-sievertsen

तालिका 1

क्र.	**प्रश्न विकल्प**	**प्रश्न विकल्प / उत्तरदाता संख्या**			
1	उत्तरदाताओं का आर्थिक विवरण(रुपयों में)	1-2 लाख/ 24	2-3 लाख/ 34	3-4 लाख/ 30	4-5 लाख से अधिक /12
2	उत्तरदाताओं का निवास संबंधी विवरण	ग्रामीण / 48		नगरीय / 52	
3	कोरोना महामारी का अभिभावकों की आय पर प्रभाव	हां / 74		नहीं / 26	
4	बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई हेतु अभिभावकों के पास उपलब्ध डिजिटल संसाधन संबंधी विवरण	हां / 38		नहीं / 62	
5	बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई हेतु अभिभावकों पर डिजिटल संसाधन क्रय करने की बाधयता संबंधी विवरण	हां / 78		नहीं / 22	
6	अभिभावकों द्वारा क्रय किए गए डिजिटल संसाधन संबंधी विवरण	स्मार्टफोन/ 86	कंप्यूटर/ 02	लेपटॉप/ 10	अन्य / 02
7	अभिभावकों का बच्चों को प्राप्त हो रही ऑनलाइन शिक्षा से संतुष्टि संबंधी विवरण	हां / 32		नहीं / 68	
8	अभिभावकों पर डिजिटल डिवाइस को रिचार्ज/मरम्मत कराने का खर्च बढ़ने संबंधी विवरण	हां / 86		नहीं / 14	
9	'ऑनलाइन शिक्षा ऑफलाइन शिक्षा से बेहतर है' अभिभावकों का दृष्टिकोण संबंधी विवरण	हां / 18		नहीं / 82	
10	अभिभावकों के अनुसार ऑनलाइन शिक्षा के दौरान बच्चों का चैट, मूवी, कार्टून आदि देखने संबंधी विवरण	हां / 82		नहीं / 18	
11	अभिभावकों द्वारा ऑनलाइन शिक्षा के दौरान बच्चों की निगरानी करने संबंधी विवरण	हां / 86		नहीं / 14	
12	ऑनलाइन शिक्षा ग्रहण करने के कारण बच्चों में मोबाइल, टेबलेट, आदि की लत पड़ने संबंधी विवरण	हां / 84		नहीं / 16	
13	'ऑनलाइन शिक्षा ग्रहण करने के कारण बच्चों में मोबाइल, टेबलेट, आदि की लत को छुड़ाने मुश्किल है' संबंधी विवरण	हां / 87		नहीं / 13	
14	'ऑनलाइन शिक्षा के कारण बच्चे तकनीकि (डिवाइस संचालन) में कुशल हुए है' संबंधी विवरण	हां / 83		नहीं / 17	
15	ऑनलाइन शिक्षा ग्रहण करने के कारण बच्चों की दिनचर्या में परिवर्तन आने संबंधी विवरण	हां / 83		नहीं / 17	
16	'ऑनलाइन शिक्षा के कारण बच्चों की दिनचर्या में आये परिवर्तन का प्रभाव कितना एवं कैसा रहा' संबंधी विवरण	थोड़ा / 34	बहुत / 49	अच्छा / 19	बुरा / 64
17	ऑनलाइन शिक्षा के कारण बच्चों के स्क्रीन टाइम में वृद्धि होने संबंधी विवरण	हां / 86		नहीं / 14	
18	'बच्चों के समग्र विकास के लिए अभिभावक किस शिक्षा माध्यम को अच्छा मानने' संबंधी विवरण	ऑनलाइन / 00	ऑफलाइन / 36	दोनों (मिश्रित) / 63	
19	सामान्य स्थिति में अभिभावक अपने बच्चों को किस माध्यम से पढ़ाना चाहते है संबंधी विवरण	ऑनलाइन / 00	ऑफलाइन / 37	दोनों (मिश्रित) / 63	

****

महिला सशक्तिकरण में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन

विजय लक्ष्मी जोशी*

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय विधि महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका का होना लोकतंत्र के विशेष लक्षणों में से एक है। हमारी सरकार के तीन आवश्यक अंग है– कार्यपालिका, न्यायपालिका, एवं विधायिका। हमारी न्यायपालिका कार्यपालिका एवं विधायिका से पूर्णत: स्वतंत्र है। भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों का जहॉ कार्यपालिका एवं विधायिका द्वारा अतिक्रमण किया गया है वहॉ न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता के माध्यम से कार्यपालिका एवं विधायिका को आवश्यक निर्देश देकर नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा की है। हमारी न्यायपालिका ने देश के शोषित वर्गो विशेषकर महिलाओं को उनके मूल अधिकार दिलाने में, उन्हें शोषण के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करने में उनके सशक्तिकरण में न्यायिक सक्रियता के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसका प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णन किया गया है।

शब्द कुंजी – महिला सशक्तिकरण, न्यायपालिका की भूमिका।

प्रस्तावना – न्यायपालिका क्या है?

यह सरकार की एक शाखा होती है जिसमें न्यायिक शक्ति निहित होती है। इसे कानून की अदालतों की एक प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है। न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करती है, विवादों को विधि के अनुसार हल करती है, संविधान का सही निर्वचन करती है और यह सुनिश्चित करती है कि लोकतंत्र की जगह किसी एक व्यक्ति या समूह की तानाशाही न ले लें। अत: एक संघीय व्यवस्था में न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका यह होती है कि वह 'विधि के शासन' की रक्षा करें और विधि की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करें। भारत में एकीकृत न्यायप्रणाली है जिसमें सर्वोच्च स्थान पर उच्चतम न्यायालय एवं उसके अधीनस्थ कुल 25 उच्च न्यायालय है जो मिलकर भारतीय न्यायपालिका का निर्माण करते है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ – सशक्तिकरण शब्द स+शक्ति+करण से मिलकर बना है जिसका अर्थ है शक्ति सहित गति। सशक्तिकरण एक निर्बल को सबल बनाने की प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है एक पूर्ण सशक्त व्यक्ति वह है जो अपने जीवन से संबंधित निर्णय लेनें में पूरी तरह स्वतंत्र हो, जिस पर किसी प्रकार का कोई दवाब न हो। अत: महिला सशक्तिकरण का अर्थ यह हैं कि महिलाओं को इस योग्य बनाना कि वे अपने जीवन के सारे निर्णय स्वयं बिना किसी दवाब के ले सके, उनके अपने जीवन के सभी पहलुओं पर नियंत्रण हो। उन्हें इस योग्य बनाने के लिए निति निर्माण में उनकी बराबर की भागीदारी, राजनीति, व्यापार, समाज के साथ–साथ घर के प्रत्येक निर्णयों में उनकी पुरूषों के समान भागीदारी अत्यंत आवश्यक हैं।

अत: महिला सशक्तिकरण महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त बनाने की प्रक्रिया हैं। इसका उद्देश्य महिलाओं को अपने जीवन के सभी पहलुओं पर नियंत्रण प्रदान करना और उन्हें पुरूषों के समान अवसर प्रदान करना है। शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सशक्तिकरण महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम हैं।

महिला सशक्तिकरण में न्यायपालिका की भूमिका– भारतीय न्यायपालिका ने संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अधीन न्यायिक सक्रियता के माध्यम से भारतीय समाज के विभिन्न शोषित वर्गो के उत्थान में अपना अमिट योगदान दिया है जिसमें महिलाएँ भी शामिल है। संविधान के लागू होने से पहले महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी, पुरूषों से पृथक उनका कोई अस्तित्व नहीं था वे पुरूषों की सम्पति मानी जाती थी, महिला सशक्तिकरण का अस्तित्व ना के बराबर था। भारतीय संविधान निर्माताओं ने महिलाओं की इस पतीत स्थिति में सुधार करने के लिए भारतीय संविधान में उन्हें महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए इसके अतिरिक्त भारत में कई ऐसे विशेष कानून पारित किए गए जो महिलाओं को अधिकार प्रदान कर उन्हें सशक्त कर सके एवं जो उनकी विभिन्न प्रकार के शोषणों से रक्षा कर सके जैसे – समान वेतन अधिनियम 1976, घरेलू हिंसा निवारण अधिनियम 2005, प्रसूति प्रसुविधा(संशोधन) अधिनियम 2017, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, नारी शक्ति वंदन अधिनियम 2023, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न(निवारण, प्रतिषेध, प्रतितोष) अधिनियम 2013, महिलाओं का अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 आदि। इन सब कानूनों के बावजूद भी भारतीय समाज की पितृसतात्मक सोच होने के कारण महिलाओं को इन कानूनों में प्राप्त अधिकार नहीं मिल पाए एवं उनका शोषण होता रहा एवं वे कमजोर होने के कारण अपने अधिकारों के लिए लड़ने में असमर्थ थी, ऐसे में न्यायपालिका ने संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अधीन लोकहितवाद के माध्यम से न्यायिक सक्रियता का उपयोग करके कमजोर एवं शोषित महिलाओं को उनके अधिकार प्रदान किए तथा उनके खिलाफ हो रहे विभिन्न प्रकार के शोषणों के विरूद्ध कार्यपालिका एवं विधायिका को समय समय पर आवश्यक दिशा निर्देश भी दिए, निम्नलिखित न्याय निर्णयन इसके जीवंत दृष्टांत है।

- **श्रमजीवी महिलाओं का काम के स्थान पर यौन उत्पीड़न से**

संरक्षण :-

वाद- विषाखा विरूद्ध राजस्थान राज्य

के मामलें में न्यायालय ने श्रमजीवी महिलाओं के साथ कार्यस्थल पर होने वाले यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए जब तक कि इस प्रयोजन हेतु कोई कानून नहीं बनाया जाता है विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत विहित किए है। न्यायालय ने कहा कि देश की वर्तमान आपराधिक विधियॉ या सिविल विधियॉ काम के स्थान पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से बचाने के लिए पर्याप्त संरक्षण नहीं प्रदान करती है और इसके लिए विधि बनाने में काफी समय लगेगा। अत: जब तक विधान मण्डल कोई विधि नहीं बनाता है तब तक न्यायालय द्वारा विहित निर्देशों को ही लागू किया जाएगा। इस मामलें में महिलाओं के अनुच्छेद 14,19 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को लागू करानें के लिए विशाखा नामक एक गैर सरकारी संस्था ने लोकहितवाद दायर कर समुचित दिशा निर्देश देने का निवेदन किया। वाद दायर करने का तत्काल कारण राजस्थान राज्य में एक सामाजिक महिला कार्यकर्ता के सामूहिक बलात्कार की घटना थी।

- **महिलाओं के यौन उत्पीड़न के लिए प्रतिकर एवं पुनर्वास के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत :-**

वाद- दिल्ली डोमेस्टीक वर्किंग वुमेंस फोरम विरूद्ध भारत संघ

के मामलें में न्यायालय ने महिलाओं के साथ बढ़ते हुए यौन अपराधों के प्रति गंभीर चिन्ता व्यक्त की तथा ऐसे मामलों के शीघ्र परीक्षण तथा उन्हें प्रतिकर प्रदान करने एवं उनके पुनर्वास के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत विहित किए। इस मामलें में दिल्ली श्रमजीवी फोरम ने लोकहितवाद के माध्यम से चार घरेलू श्रमजीवी महिलाओं के साथ सेना के जवानों द्वारा बलात्कार की घटना को रोकने के लिए और सरकार को समुचित निर्देश देने के लिए याचिका दायर की।

- **बलात्कार से पीड़ित महिला का अंतरिम प्रतिकर पाने का अधिकार :-**

वाद- बोधीसत्व गौतम विरूद्ध शुभ्रा चक्रवर्ती

के मामलें में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया हैं कि न्यायालय को बलात्कार की शिकार महिला को अंतरिम प्रतिकर देने की शक्ति है जब तक कि परीक्षण न्यायालय अभियुक्त के ऊपर लगाए आरोप पर अपना निर्णय नहीं दे देता है।

- **एकान्तता का अधिकार :-**

वाद- महाराष्ट्र राज्य विरूद्ध मधुकर नारायन

के मामलें में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक चरित्रहीन महिला को भी एकांतता का अधिकार प्राप्त हैं, उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

वाद- सुरजित सिंह विरूद्ध जीत कौर

के मामले न्यायालय ने यह निर्णीत किया कि महिला के कौमार्य परीक्षण के लिए अनुमति देना अनुच्छेद 21 के अधीन प्रदत्ता उसके एकांतता के अधिकार का उल्लंघन है।

- **स्वेच्छा से विवाह करने का अधिकार :-**

वाद- लता सिंह विरूद्ध उत्तर प्रदेश राज्य

में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक वयस्क बालिका को अपनी स्वेच्छा से किसी भी व्यक्ति के साथ विवाह करने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन प्रदत्ता उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता का अधिकार है।

- **महिलाओं के प्रति केवल लिंग के आधार पर भेदभाव का प्रतिषेध :-**

वाद- एयर इण्डिया विरूद्ध नरगिस मिर्जा

के वाद में उच्चतम न्यायालय ने एयर इण्डिया और इण्डियन एयर लांइस द्वारा बनाए गए विनियमों को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि उनके अधीन 35 वर्ष की आयु में विवाह होने पर या गर्भवती होने पर सेवामुक्ति करने वाली सेवा शर्त अयुक्तियुक्त और विभेदकारी हैं तथा अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है।

वाद- अनुज गर्ग विरूद्ध भारत का होटल संघ

के वाद में पंजाब सरकार के एक अधिनियम की धारा 30 जिसके अधीन होटल या बार में शराब परोसने के कार्य में महिलाओं के नियोजन पर रोक लगा दी, को चुनौती देने पर न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि उक्त अधिनियम स्त्री और पुरूष में लिंग के आधार पर भेद करता है, अत: अवैध है।

- **महिलाओं के प्रति अनुच्छेद 15(3) के अधीन सकारात्मक भेदभाव :-**

वाद- विजय लक्ष्मी विरूद्ध पंजाब विश्वविद्यालय

के मामले में विश्वविद्यालय कैलेण्डर के एक नियम के तहत महिला विद्यालयों में प्राचार्य के पद पर केवल महिलाओं की नियुक्ति के प्रावधान को चुनौती देने पर न्यायालय ने यह निर्णीत किया कि यह नियम अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 16 का उल्लंघन नहीं है क्योंकि इसके अधीन किया गया वर्गीकरण युक्तियुक्त है, इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 15(3) के अधीन राज्य को स्त्रियों के लिए विशेष उपबंध करने की शक्ति हैं।

वाद- दतात्रेय विरूद्ध स्टेट

के मामलें मे न्यायालय ने यह कहा कि राज्य द्वारा केवल स्त्रियों के लिए शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना एवं उसमें उनके लिए स्थान आरक्षित करना अनुच्छेद 15(1) का अतिक्रमण नहीं है।

वाद- यूसुफ अब्दुल अजीज विरूद्ध बंबई राज्य

में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 497 की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती देने पर कि यह जारकर्म के अपराध के लिए केवल पुरूष को दण्डित करती है स्त्री को नहीं, अत: लिंग के आधार पर विभेद करने के कारण यह अनुच्छेद 15(1) का अतिक्रमण करती है। न्यायालय ने निर्णीत किया कि धारा 497 वैध है क्योंकि वर्गीकरण केवल लिंग के आधार पर नहीं बल्कि समाज में स्त्रियों की विशेष स्थिति के आधार पर किया गया हैं।

वाद- टी. सुधाकर रेडडी विरूद्ध आ. प्र. राज्य

में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 15(3), 16(2), 16(4) के अधीन सरकारी नौकरियों में स्त्रियों को यदि वे पुरूषों के समान योग्य एवं उनकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त है तो राज्य को उन्हें प्राथमिकता देनें की शक्ति प्राप्त है।

- **तलाकशुदा मुस्लिम महिला का ईददत की अवधि के बाद भी अपने पति से भरण-पोषण का अधिकार :-**

वाद- डैनियल लतीफी विरूद्ध भारत संघ

में न्यायालय ने पुन: शाहबानो के मामले को जीवित करते हुए निर्णित किया कि एक मुस्लिम तलाकशुदा स्त्री अपने पूर्व पति से इददत की अवधि के बाद भी जब तक कि उसका पुर्नविवाह नहीं हो जाता, भरण-पोषण की हकदार है।

वाद– नूरशाबा खातून विरूद्ध मोहम्मद कासिम

के मामलें में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला को अपने बच्चों के लिए जब तक कि वे बालिग नहीं हो जाते है, पति से भरण–पोषण पाने का अधिकार है।

वाद– बाई ताहिरा विरूद्ध अली हुसैन

के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अवलोकन किया कि तलाकशुदा पत्नी द्वारा भरण–पोषण प्राप्त करने का अधिकार अधिनियमित अधिकार है और इसे मुस्लिम विधि के नियमों से पराजित नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष – निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारत में महिला सशक्तिकरण में न्यायपालिका ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जहॉ विधायिका और कार्यपालिका महिलाओं को न्याय प्रदान करने में विफल रही है वहॉ न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता के माध्यम से महिलाओं को न्याय दिलाया है, चाहे वह महिलाओं का कार्यस्थल पर यौन शोषण का मामला हो, तलाकशुदा मुस्लिम महिला के भरण–पोषण का मामला हो, एक समान सिविल संहिता का मामला हो या तीन तलाक का मामला हो। तत्कालीन समय में इन विषयों पर कोई कानून नहीं होने के कारण महिलाओं के प्रति अत्याचार बढ़ते जा रहे थे एवं कार्यपालिका कानून के अभाव में इन्हें रोकने में असमर्थ थी ऐसे में न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता के माध्यम से इन अत्याचारों को रोकने के लिए दिशा निर्देश दिए जो अनुच्छेद 141 के अधीन विधि के समान प्रभावशाली थे। अत: विधि की अभाव में महिलाओं को न्याय दिलाने, उन्हें अधिकार प्रदान कर सशक्त करनें में न्यायपालिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महिला सशक्तिकरण में न्यायपालिका कार्यपालिका एवं विधायिका से अधिक सक्रिय एवं संवेदनशील है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पाण्डेय, डॉ. जय नारायण(2009) *भारत का संविधान.* 42वॉ संस्करण। इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
2. NEXT IAS Content Team(2024) *भारत में महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता* (ऑनलाइन)। यहॉ उपलब्ध हैं: https://www.nextias.com/blog. (एक्सेस: 13 अप्रैल 2024).
3. अहमद, अकील(1989) *मुस्लिम विधि.* सत्रहवा संस्करण। इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
4. गौतम, श्रुति(2023) *भारत में महिला सशक्तिकरण* (ऑनलाइन)। यहॉ उपलब्ध हैं: https://www.drishtiias.com/hindi/blog/women-employment-in-india. (एक्सेस: 15 अप्रैल 2024)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

तुलनात्मक अध्ययन पद्धति : स्वरूप, विकास, महत्व एवं साहित्यिक अनुसंधान में उपयोगिता

महीपाल दान*

* सहायक आचार्य (हिन्दी) सेठ मथुरादास बिनानी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नाथद्वारा (जिला राजसमंद) (राज.) भारत

शोध सारांश – तुलनात्मक अध्ययन पद्धति आधुनिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक पद्धति है, जिसके माध्यम से दो या दो से अधिक साहित्यकारों, कृतियों, भाषाओं, साहित्यिक प्रवृत्तियों अथवा सांस्कृतिक परंपराओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। यह पद्धति समानताओं एवं भिन्नताओं की खोज के साथ–साथ विभिन्न साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रभावों का अध्ययन भी करती है। आधुनिक हिंदी अनुसंधान में तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का विशेष महत्व है क्योंकि इसके माध्यम से साहित्य की व्यापकता, सार्वभौमिकता और अंतर्सांस्कृतिक संबंधों को समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के स्वरूप, विकास, सिद्धांत, विशेषताओं, महत्व, सीमाओं तथा साहित्यिक अनुसंधान में उसकी उपयोगिता का विवेचन किया गया है।

शब्द कुंजी – तुलनात्मक अध्ययन, तुलनात्मक साहित्य, अनुसंधान पद्धति, साहित्यिक तुलना, शोध–विधि।

प्रस्तावना – मानव स्वभावत: तुलना करने वाला प्राणी है। वह किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार अथवा घटना का मूल्यांकन प्राय: किसी अन्य वस्तु या विचार से तुलना करके करता है। यही प्रवृत्ति आगे चलकर वैज्ञानिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण पद्धति के रूप में विकसित हुई जिसे तुलनात्मक अध्ययन पद्धति कहा जाता है। साहित्य के क्षेत्र में यह पद्धति विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुई है क्योंकि इसके माध्यम से विभिन्न भाषाओं, देशों, संस्कृतियों तथा साहित्यिक परंपराओं के बीच संबंधों को समझा जा सकता है।[1]

तुलनात्मक अध्ययन केवल समानताओं की खोज नहीं करता, बल्कि भिन्नताओं के कारणों और उनके प्रभावों का भी विश्लेषण करता है। यही कारण है कि आधुनिक साहित्यिक अनुसंधान में इस पद्धति को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

तुलनात्मक अध्ययन : अर्थ एवं परिभाषा – 'तुलनात्मक' शब्द 'तुलना' से निर्मित है, जिसका अर्थ है–दो या दो से अधिक वस्तुओं का परस्पर मिलान करके उनके गुण–दोष, समानता एवं असमानता का अध्ययन करना।

डॉ. इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार– 'तुलनात्मक अध्ययन दो या दो से अधिक साहित्यिक कृतियों, साहित्यकारों अथवा साहित्यिक परंपराओं के पारस्परिक संबंधों और प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन है।'[2]

डॉ. नगेंद्र के अनुसार–'तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के साहित्य में निहित समानताओं एवं विभिन्नताओं का विवेचन करना है।'[3]

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन पद्धति साहित्यिक तथ्यों के विश्लेषण की एक वैज्ञानिक विधि है जिसके माध्यम से व्यापक निष्कर्ष प्राप्त किए जाते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का विकास– तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा प्राचीन काल से विद्यमान रही है। भारतीय साहित्य में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य के पारस्परिक प्रभावों का उल्लेख मिलता है।[4] आधुनिक अर्थों में तुलनात्मक साहित्य का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ। फ्रांसीसी विद्वानों ने विभिन्न राष्ट्रों के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रारंभ किया। इसके बाद यह पद्धति यूरोप, अमेरिका तथा एशिया के विभिन्न देशों में लोकप्रिय हुई।[5] भारत में तुलनात्मक साहित्य के विकास का श्रेय मुख्यत: विश्वविद्यालयों और आधुनिक साहित्यिक आलोचना को जाता है। हिंदी, बांग्ला, मराठी, गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन व्यापक रूप से किया जाने लगा।[6]

तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का स्वरूप – तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का स्वरूप बहुआयामी है। इसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

(क) समानता का अध्ययन– इसमें दो साहित्यकारों या कृतियों के बीच समान तत्वों का विश्लेषण किया जाता है।

(ख) भिन्नता का अध्ययन – तुलना का उद्देश्य केवल समानता खोजना नहीं बल्कि भिन्नताओं को समझना भी है।

(ग) प्रभाव–अध्ययन – एक साहित्यकार या साहित्यिक परंपरा का दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका अध्ययन किया जाता है।

(घ) सांस्कृतिक अध्ययन– तुलनात्मक पद्धति विभिन्न संस्कृतियों के साहित्यिक संबंधों को समझने में सहायक होती है।

(ङ) अंतर्विषयी अध्ययन– यह पद्धति साहित्य को इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन तथा संस्कृति से जोड़ती है।[7]

तुलनात्मक अध्ययन के प्रमुख सिद्धांत

1. **तुलनीयता का सिद्धांत–** तुलना उन्हीं विषयों की की जानी चाहिए जिनमें किसी प्रकार की समानता या संबंध विद्यमान हो।[8]
2. **निष्पक्षता का सिद्धांत–** शोधकर्ता को पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अध्ययन

करना चाहिए।

3. वैज्ञानिकता का सिद्धांत – तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने चाहिए।

4. वस्तुनिष्ठता का सिद्धांत – अध्ययन में व्यक्तिगत रुचि अथवा पक्षपात का प्रभाव नहीं होना चाहिए।

5. समग्रता का सिद्धांत – तुलना केवल किसी एक पक्ष तक सीमित न रहकर समग्र अध्ययन पर आधारित होनी चाहिए।[9]

6. साहित्यिक अनुसंधान में तुलनात्मक अध्ययन पद्धति– साहित्यिक अनुसंधान में तुलनात्मक अध्ययन निम्न क्षेत्रों में किया जाता है:

1. दो साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन।
2. दो कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन।
3. दो साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन।
4. दो भाषाओं के साहित्य का अध्ययन।
5. भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन।
6. सांस्कृतिक एवं वैचारिक प्रभावों का अध्ययन।[10]

उदाहरण के लिए:

1. जैनेंद्र कुमार और अज्ञेय की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन।
2. प्रेमचंद और शरतचंद्र के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन।
3. हिंदी और बांग्ला कहानी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।

तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का महत्व – तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के अनेक लाभ हैं:

1. साहित्य की व्यापक समझ विकसित होती है।
2. विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद स्थापित होता है।
3. साहित्यिक प्रभावों की पहचान होती है।
4. अनुसंधान अधिक वैज्ञानिक और प्रमाणिक बनता है।
5. राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक संबंधों का ज्ञान प्राप्त होता है।
6. साहित्य की सार्वभौमिकता का बोध होता है।[11]

तुलनात्मक अध्ययन पद्धति की सीमाएँ – यद्यपि यह पद्धति अत्यंत उपयोगी है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं:

1. उचित तुलनीय विषय का चयन कठिन होता है।
2. विभिन्न भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता होती है।
3. निष्पक्षता बनाए रखना कठिन हो सकता है।
4. सांस्कृतिक संदर्भों के अंतर के कारण निष्कर्ष प्रभावित हो सकते हैं।[13]

आधुनिक हिंदी अनुसंधान में तुलनात्मक अध्ययन की प्रासंगिकता– वर्तमान वैश्वीकरण के युग में तुलनात्मक अध्ययन का महत्व और अधिक बढ़ गया है। आज साहित्य केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं है। विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के बीच निरंतर संवाद हो रहा है। ऐसे में तुलनात्मक अध्ययन पद्धति साहित्य की नई व्याख्याओं और शोध की संभावनाओं को विस्तृत करती है।[14]

उपसंहार – तुलनात्मक अध्ययन पद्धति आधुनिक साहित्यिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक पद्धति है। यह विभिन्न साहित्यिक कृतियों, साहित्यकारों और सांस्कृतिक परंपराओं के बीच संबंधों को स्पष्ट करती है। इसके माध्यम से साहित्य की व्यापकता, विविधता और सार्वभौमिकता का ज्ञान प्राप्त होता है। हिंदी साहित्य के अनुसंधान में यह पद्धति विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुई है क्योंकि इसके माध्यम से न केवल साहित्यिक समानताओं और भिन्नताओं का अध्ययन किया जा सकता है, बल्कि विभिन्न सांस्कृतिक और वैचारिक प्रभावों का भी विश्लेषण संभव होता है। अतः आधुनिक शोध कार्यों में तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का महत्व अत्यंत व्यापक और स्थायी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. 12.
2. वही, पृ. 18.
3. डॉ. नगेंद्र, तुलनात्मक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1993, पृ. 25.
4. डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, तुलनात्मक साहित्य और अनुसंधान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 31.
5. Henry H. H. Remak, Comparative Literature: Method and Perspective, Southern Illinois University Press, Illinois, 1971, p. 3.
6. डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 44.
7. डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, तुलनात्मक साहित्य और अनुसंधान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 56.
8. डॉ. नगेंद्र, तुलनात्मक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1993, पृ. 47.
9. डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1998, पृ. 62.
10. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी आलोचना रू शिखरों का साक्षात्कार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016, पृ. 143.
11. डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, तुलनात्मक साहित्य और अनुसंधान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 88.
12. डॉ. नगेंद्र, तुलनात्मक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1993, पृ. 94.
13. डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 119.

****

The Benefits of Physical Activity on Mental Health

Dr. Sonali Singh*

***Physical Education Department, JKP PG College, Muzaffarnagar (U.P.) INDIA**

Abstract: Many people find that being active is good for both their physical and mental health, and there's increasing evidence to support this. In fact, the National Institute for Health and Care Excellence(NICE), recommends three sessions of group exercise lasting at least 45 minutes a week as one of the first treatments for mild-to-moderate depression. In addition to the apparent physical health benefits, physical activity also affects mental health positively. Physically inactive individuals have been reported to have higher rates of morbidity and healthcare expenditures. Commonly, exercise therapy is recommended to combat these challenges and preserve mental wellness. According to empirical investigations, physical activity is positively associated with certain mental health traits. In nonclinical investigations, the most significant effects of physical exercise have been on self-concept and body image. An attempt to review the current understanding of the physiological and psychological mechanisms by which exercise improves mental health is presented in this review article. Regular physical activity improves the functioning of the hypothalamus-pituitary-adrenal axis. Depression and anxiety appear to be influenced by physical exercise, but to a smaller extent in the population than in clinical patients. Numerous hypotheses attempt to explain the connection between physical fitness and mental wellness. Physical activity was shown to help with sleep and improve various psychiatric disorders. Exercise in general is associated with a better mood and improved quality of life. Physical exercise and yoga may help in the management of cravings for substances, especially in people who may not have access to other forms of therapy. Evidence suggests that increased physical activity can help attenuate some psychotic symptoms and treat medical comorbidities that accompany psychotic disorders. The dearth of literature in the Indian context also indicated that more research was needed to evaluate and implement interventions for physical activity tailored to the Indian context.

Keywords: anxiety, depression, morbidity, mental health, physical activity.

Introduction and background - Physical activity has its origins in ancient history. It is thought that the Indus Valley civilization created the foundation of modern yoga in approximately 3000 B.C. during the early Bronze Age.The beneficial role of physical activity in healthy living and preventing and managing health disorders is well documented in the literature. Physical activity provides various significant health benefits. Mechanical stress and repeated exposure to gravitational forces created by frequent physical exercise increase a variety of characteristics, including physical strength, endurance, bone mineral density, and neuromusculoskeletal fitness, all of which contribute to a functional and independent existence. Exercise, defined as planned, systematic, and repetitive physical activity, enhances athletic performance by improving body composition, fitness, and motor abilities. The function of physical activity in preventing a wide range of chronic illnesses and premature mortality has been extensively examined and studied. Adequate evidence links medical conditions such as cardiovascular disease and individual lifestyle behaviours, particularly exercise. Regular exercise lowered the incidence of cardiometabolic illness, breast and colon cancer, and osteoporosis. In addition to improving the quality of life for those with non-psychiatric diseases such as peripheral artery occlusive disease and fibromyalgia, regular physical activity may help alleviate the discomforts of these particular diseases . Exercise also helps with various substance use disorders, such as reducing or quitting smoking. As physical exercise strongly impacts health, worldwide standards prescribe a weekly allowance of "150 minutes" of modest to vigorous physical exercise in clinical and non-clinical populations. When these recommendations are followed, many chronic diseases can be reduced by 20%-30%. Furthermore, thorough evaluations of global studies have discovered that a small amount of physical exercise is sufficient to provide health benefits.

How does physical activity improve mental health?

Physical activity is not just about aerobic capacity and muscle size. Sure, exercise can improve your physical health and your physique, trim your waistline, improve your sex life, and even add years to your life. But that's not what motivates most people to stay active.People who physical activity regularly tend to do so because it gives them an enormous sense of well-being. They feel more energetic throughout the day, sleep better at night, have sharper memories, and feel more relaxed and positive about themselves and their lives. And it's also a powerful medicine for many common mental health challenges.Regular physical activity can have a profoundly positive impact on depression, anxiety, and ADHD. It also relieves stress, improves memory, helps you sleep better, and boosts your overall mood. And you don't have to be a fitness fanatic to reap the benefits. No matter your age or fitness level, you can learn to use physical activity as a powerful tool to deal with mental health problems, improve your energy and outlook, and get more out of life.

Benefits of physical activity on depression: Studies show that physical activity can treat mild to moderate depression as effectively as antidepressant medication—but without the side-effects, of course. As one example, a 2019 study done by the Harvard T.H. Chan School of Public Health found that running for 15 minutes a day or walking for an hour may reduce the risk of major depression by 26 percent. In addition to relieving depression symptoms, research also shows that maintaining an exercise schedule can prevent you from relapsing.Physical activity is a powerful depression fighter for several reasons. Most importantly, it promotes all kinds of changes in the brain, including neural growth, reduced inflammation, and new activity patterns that promote feelings of calm and well-being. It also releases endorphins, powerful chemicals in your brain that energize your spirits and make you feel good. Finally, physical activity can also serve as a distraction, allowing you to find some quiet time to break out of the cycle of negative thoughts that feed depression.

Benefits of physical activity on anxiety: Physical activity is a natural and effective anti-anxiety treatment. It relieves tension and stress, boosts physical and mental energy, and enhances well-being through the release of endorphins. Anything that gets you moving can help, but you'll get a bigger benefit if you pay attention instead of zoning out.Try to notice the sensation of your feet hitting the ground, for example, or the rhythm of your breathing, or the feeling of the wind on your skin. By adding this mindfulness element—really focusing on your body and how it feels as you exercise—you'll not only improve your physical condition faster, but you may also be able to interrupt the flow of constant worries running through your head.

Physical activity and alcohol dependence syndrome: Substance abuse, namely alcohol abuse, may have devastating effects on a person's mental and physical health. Tolerance and an inability to control drinking are some hallmarks of alcoholism. Research shows that physical activity is an effective supplement in the fight against alcohol use disorder. In addition to perhaps acting centrally on the neurotransmitter systems, physical exercise may mitigate the deleterious health consequences of drinking. Evidence suggests that persons with alcohol use disorder are not physically active and have low cardiorespiratory fitness. A wide number of medical comorbidities, like diabetes mellitus, hypertension, and other cardiovascular illnesses, occur with alcohol use disorders. Physical exercise may be highly useful in aiding the management of these comorbidities. Physical exercise and yoga may help in the management of cravings for substances when other forms of therapy, such as counselling or medication for craving management are not feasible or acceptable. Physical exercise has been shown to have beneficial effects on mental health, relieve stress, and provide an enjoyable replacement for the substance. However, the patient must take an active role in physical activity-based therapies rather than passively accept the process as it is, which is in stark contrast to the approach used by conventional medicine. Since most substance use patients lack motivation and commitment to change, it is recommended that physical activity-based therapies be supplemented with therapies focusing on motivation to change to maximise therapeutic outcomes.

One hundred seventeen persons with alcohol use disorder participated in a single-arm, exploratory trial that involved a 12-minute fitness test using a cycle ergometer as an intervention. Statistically, significantly fewer cravings were experienced by 40%. Exercise programmes were found to significantly reduce alcohol intake and binge drinking in people with alcohol use disorder in a meta-analysis and comprehensive review of the effects of such therapies .

Easy ways to move more that don't involve the gym: Don't have a 30-minute block of time to dedicate to yoga or a bike ride? Don't worry, there are ways to exercise without the gym. Think about physical activity as a lifestyle rather than just a single task to check off your to-do list. Look at your daily routine and consider ways to sneak in activity here, there, and everywhere.Move in and around your home. Clean the house, wash the car, tend to the yard and garden, mow the lawn with a push mower, sweep the sidewalk or patio with a broom.Sneak activity in at work or on the go. Bike or walk to an appointment rather than drive, use stairs instead of elevators, briskly walk to the bus stop then get off one stop early, park at the back of the lot and walk into the store or office, or take a vigorous walk during your coffee break.Get active with the family. Jog around the soccer field during your kid's practice, make a neighborhood bike ride part of your weekend routine, play tag with your children in the yard, go canoeing at a lake, walk the dog in a new place.Get creative with exercise ideas. Pick fruit at an orchard, boogie to music, go to the beach or

take a hike, gently stretch while watching television, organize an office bowling team, take a class in martial arts, dance, or yoga.

Physical activity

↓

Improves functioning of HPA axis

↓

Reduction of cortisol levels

↓

Restoration of the balance of leptin and ghrelin

Results: Results of the best-evidence synthesis revealed strong evidence for 12 mediators including affect, mental health and wellbeing, self-esteem, self-efficacy, physical self-worth, body image satisfaction, resilience, social support, social connection, physical health, pain, and fatigue. Moderate evidence was identified for a further 15 mediators and eight moderators.

Conclusion: Findings should inform the design of future physical activity interventions to ensure optimal effects on mental health related outcomes. Additionally, if health professionals were to take these mediators and moderators into consideration when prescribing or recommending physical activity, physical activity would likely have a greater impact on population mental health.

References:-

1. Greer, T. L., Trombello Make exercise fun Exercise & Fitness ,The Mental Health Benefits of Exercise. Last updated on February 3, 2026,
2. http://www.gov.uk/government/publications/physical-activity-guidelines-infographic.
3. Positive impact of prescribed physical activity on symptoms of schizophrenia: randomized clinical trial. Curcic D, Stojmenovic T, Djukic-Dejanovic S, et al. PsychiatrDanub. 2017;29:459–465. doi: 10.24869/psyd.2017.459. [DOI] [PubMed] [Google Scholar]
4. Cureus. 2023 Jan 7;15(1):e33475. doi: 10.7759/cureus.33475.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

वर्तमान समय में सोशल मीडिया का सामाजिक सम्बन्धों, मानसिक स्वास्थ्य और राजनीतिक व्यवहार पर प्रभाव

डॉ. बरखा घावरी*

* सहायक आचार्य (समाजशास्त्र) राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – आजकल आम लोगों द्वारा इंटरनेट का उपयोग बहुत बढ़ गया है, वे फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम जैसी साइटों का उपयोग कर रहे हैं, जिसका अंतत: उनके कार्य प्रदर्शन पर प्रभाव पड़ता है और इसका वास्तविक प्रभाव उनके व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों पर पड़ता है।

सोशल मीडिया ने सामाजिक संबंधों को गहराई से बदला है, जहाँ यह भौगोलिक दूरियों को मिटाकर दूर बैठे लोगों से जुड़ने का सशक्त जरिया बना है। इसने संवाद को तेज और सुविधाजनक बनाया है, लेकिन साथ ही प्रत्यक्ष मेलजोल में कमी, मानसिक तनाव, `FOMO' (कुछ खो देने का डर), और निजता से जुड़े मुद्दों जैसे नकारात्मक प्रभाव भी डाले हैं।

सोशल मीडिया एक दोधारी तलवार की तरह है। इसका विवेकपूर्ण उपयोग रिश्तों को बढ़ा सकता है, जबकि इसकी लत उन्हें कमजोर कर सकती है।

शब्द कुंजी – सोशल मीडिया, इंटरनेट, समाज, सामाजिक संबंध, मानसिक स्वास्थ्य, राजनीतिक व्यवहार।

प्रस्तावना – वर्तमान समय में सोशल मीडिया ने समाज के विभिन्न पहलुओं को अत्यधिक प्रभावित किया है। यह डिजिटल प्लेटफॉर्म्स जैसे कि फेसबुक, टिवट्र, इंस्टाग्राम और लिक्डइन लोगों के बीच संचार, जानकारी के आदान-प्रदान और सामाजिक सक्रियता के तरीकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए है। सोशल मीडिया ने वैश्विक संवाद को सरल व त्वरित बना दिया है। जिससे लोग अपनी राय और विचर जल्दी और व्यापक रूप से साझा कर सकते है। हालांकि, इसके साथ ही, यह कई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है, जैसे कि मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव, फेकन्यूज का प्रसार और सोशल मीड़िया पर आधारित सामाजिक अलगाव।

सोशल मीडिया परिचय – सोशल मीडिया से तात्पर्य उन वेब आधारित अनुप्रयोगों से है जो उपयोगकर्त्ता द्वारा निर्मित सामग्री के निर्माण और आदान-प्रदान को बढावा देते है। सोशल मीडिया का दायरा वैश्विक है और इसके विषय और उपयोगकर्त्ता प्रकारों की विविधता लगभग असीमित है। सोशल मीडिया में मेटा की फेसबुक, इस्ट्राग्राम, टिवअ्र, यूट्यूब और अनगिनत ब्लॉग जैसी इन्टरनेट साइटे शामिल है।

सोशल मीडिया ऑनलाइन मंचों का एक विशाल अनौपचारिक नेटवर्क बन गया है – सार्वजनिक और निजी सशुल्क सदस्यता वाले और नि:शुल्क बड़े और छोटे सभी प्रकार के प्लेटफार्म इसमें शामिल है। इसका उपयोग कई उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है जैसे –

1. पारिवारिक समारोह
2. राजनीतिक अभियान
3. धर्मार्थ प्रचार
4. स्वास्थ्य सहायता समूह
5. स्पोर्ट्स क्लब
6. प्रार्थना मण्डलियां
7. शौक और व्यवसाय
8. निधिवर्धक
9. सूत्रों की जानकारी

सोशल मीड़िया फैशन और खान-पान के रूझानों, पारिवारिक और किशोर स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्दो, विश्व समाचारों और स्थानीय घटनाओं, राजनीतिक और सामुदायिक गतिविधियों पर सांस्कृतिक प्रभाव डालता है।

सोशल मीडिया एक जटिल घटना बन गई है क्योंकि यह व्यक्तियों द्वारा शब्दों के आदान-प्रदान से कही अधिक है। सोशल मीडिया साइटे वे स्थान जहाँ संचार होता है – उनके प्लेटफार्म मालिकों द्वारा नियंत्रित होती है।

21वीं सदी में सोशल मीडिया का विस्फोट – 2000 के दशक में सोशल मीडिया के नवाचारों की समयरेखा इस बात को उजागर करती है कि उस युग में सोशल मीडिया क्रान्ति कितनी तेजी से आगे बढ़ी। जहाँ किसी विकी और अन्य ऑनलाइन साइटे सामान्य जानकारी पर केंद्रित थी, वही आधुनिक ऑनलाइन साइटों में सोशल मीडिया के उपयोग के लिए आसान व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने की क्षमता विकसित हुई।

2002 में फ्रेंडस्टर के लान्च में ई-मेल ग्रुप और वर्चुअल बुलेटिन बोर्ड द्वारा स्थापित नेटवर्किंग की अवधारणा को और विस्तृत किया।

माई स्पेस 2003 में लान्च हुआ जिसके तुरन्त बाद 2004 में फेसबुक आया। 2005 में यूट्यूब अस्तित्व में आया तब से यू ट्यूब का विस्तार उपयोगकत्ताओं द्वारा अपलोड किए गये वीडियों के संग्रह से बढ़कर लाइव स्ट्रीमिंग, संगीत, विज्ञापन और मार्केटिंग चैनलों को शामिल करने को हो गया।

वर्ष 2006 में टिवटर की शुरूआत हुई यह एक रीयल टाइम संवाद समाचार और विचार साझा करने की प्रणाली है।

2010 में Pinterest जैसी डिजिटल इमेज साइटों ने सामाजिक आदान-प्रदान में एक दृश्य आयाम जोडा। 2016 तक TikTok पर शौ किया

मनोरंजन और व्यक्तिगत इन्फ्लूएसंर रील्स कॉफी लोकप्रिय हो गये जिन्हें Snapchat, Facebook के रील्स और Instagram से कडी टक्कर मिली।

प्यू रिसर्च सेंटर के अनुसार 2024 तक फेसबुक और यूट्यूब सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले प्लेटफार्म है। सोशल मीडिया का उपयोग व्यापक है और विभिन्न विकल्पों के साथ लगातार बढ रहा है।

सोशल मीडिया का सामाजिक सम्बन्धों पर प्रभाव – सोशल मीडिया का सामाजिक संबंधों पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव पड़ा है। यह दूर बैठे लोगों से तुरन्त जुड़ने (सकारात्मक) का बेहतरीन साधन है, जो दूरियों को मिटाता है और सामुदायिक भावना को बढ़ाता है। हालांकि इसका अत्यधिक उपयोग आमने-सामने के संचार में कभी मानसिक तनाव, ईर्ष्या और आभासी दुनिया में खोकर वास्तविक रिश्तों में दूरी (नकारात्मक) जैसी समस्याएँ भी पैदा कर रहा है।

सकारात्मक प्रभाव :-

(अ) कनेक्टिविटी :- दूर के रिश्तेदारों, मित्रों और परिवारों के साथ जुड़ना आसान हो गया है।

(इ) समुदाय निर्माण :- समान रूचियों वाले लोगों से जुड़ने और समर्थन पाने में मदद मिलती है।

(उ) त्वरित संचार :- विचारों और समाचारों को तुरन्त साझा करना सम्भव है।

नकारात्मक प्रभाव :-

(अ) मानसिक स्वाध्य पर असर :- दूसरो के जीवन की 'आदर्श' छवियों से तुलना के कारण हीन भावना, चिंता और अवसाद (Facebook Depression) हो सकता है।

(इ) वास्तविक संवाद में कमी :- आभासी दुनिया के कारण आमने-सामने की बातचीत और भावनात्मक जुडाव कम हो रहा है।

(उ) गलतफहमी :- सोशल मीड़िया पर गलत जानकारी या गलत तरीके से समझी गई बातों से रिश्ते टूट सकते है। संक्षेप में, सोशल मीडिया एक दोधारी तलवार है इसका संतुलित और जागरूक उपयोग ही इसे संबंधों के लिए उपयोगी बना सकता है।

सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव – सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा और मिश्रित प्रभाव पड़ता है। यह जुड़ाव और सूचना का एक बेहतरीन स्त्रोत है लेकिन अत्यधिक उपयोग (दैनिक 6-7 घंटे) से चिंता, अवसाद (Depression) अकेलेपन, एग्जांयटी और नींद में कमी जैसी समस्याएँ बढ सकती है।

युवाओं में दूसरों से तुलना (Comparison) हीनभावना, साइबर बुलिंग और FOMO (Fear of Missing out कुछ छूट जाने का डर) का खतरा सबसे अधिक होता है।

सोशल मीडिया के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव :-

सकारात्मक प्रभाव (संतुलित उपयोग से)

(अ) जुडाव और समुदाय :- दूर के दोस्तो/परिवार से जुड़ने और समान रूचि वाले लोगों से जुड़ने का जरिया।

(इ) मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता :- मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता और जानकारी बढ़ाना।

(उ) भावनात्मक समर्थन :- मुश्किल समय में ऑनलाइन समूहों के माध्यम से मदद मिलना।

नकारात्मक प्रभाव (अत्यधिक उपयोग से)

(अ) अवसाद और चिंता :- लगातार दूसरों की 'परफेक्ट' जिंदगी देखकर निराशा, कम आत्म-सम्मान और हीन भावना पैदा होती है।

(इ) नींद में व्यवधान :- रात में देर तक स्क्रीन देखने से अनिद्रा की समस्या।

(उ) साइबर बुलिंग :- विशेषकर किशोरों ने तनाव और मानसिक आघात का कारण।

(ऊ) FOMO और लत :- हर समय अपडेट रहने का दबाव और लाइक/कमेंट न मिलने पर निराशा।

(ए) एकाग्रता में कमी :- सूचनाओं के भारी बोझ के कारण ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता कम होना।

बचाव के उपाय :-

(1) सोशल मीडिया डिटॉक्स – 1-2 सप्ताह का ब्रेक लेने से डिप्रेशन/एन्जायटी में 25% तक कमी आ सकती है।

(2) समय सीमा :- स्क्रीन टाइम को कम करना (प्रतिदिन 30-60 मिनिट तक सीमित करना।

(3) सचेत उपयोग :- यह सोचना कि सोशल मीडिया पर हर चीज वास्तविक नहीं होती।

सोशल मीडिया का राजनीतिक व्यवहार पर प्रभाव – सोशल मीडिया ने राजनीतिक परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है, जिससे नेताओं और मतदाताओं के बीच सीधा संवाद संभव हुआ है। यह सूचनाओं के लोकतंत्रीकरण, वास्तविक समय के डेटा एनालिटिक्स के माध्यम से चुनावी रणनीतियों, और किफायती प्रचर के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बन गया हे, जो नागरिकों को जागरूक करता है।

हालाँकि यह फर्जी खबरों के प्रसार, ध्रुवीकरण और मतदाओं के हेर-फेर का कारण भी बन रहा है।

(1) गलत सूचना :- फर्जी खबरे और दुष्प्रचार तेजी से फैलते है, जिससे लोगों की राय प्रभावित होती है और भ्रांतियाँ पैदा होती है।

(2) ध्रुवीकरण :- सोशल मीडिया एल्गोरिदम उपयोगकत्ताओं को समान विचारधारा वाली सामग्री दिखाते है, जिसको इको चैम्बर (echo chambers) बनते है और राजनीतिक ध्रुवीकरण बढता है।

(3) भागीदारी :- यह राजनीतिक आंदोलनों और जनमत संग्रह में आम नागरिकों की भागीदारी को आसान बनाता है।

(4) निगरानी की शक्ति :- सरकार और विपक्ष के कार्यों पर नजर रखने और उनकी जवाब देही तय करने में जनता इसका उपयोग एक उपकरण के रूप में कर रही है।

(5) सूचना का लोकतंत्रीकरण:- इसने सूचनाओं पर चंद हाथों के एकाधिकार को तोड़ दिया है, जिससे नागरिकों को विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर आवाज उठाने का मंच मिला है।

(6) सीधा संवाद, और जुडाव :- राजनेता जब पारंपरिक मीडिया के बिना सीधे मतदाताओं तक अपनी बात पहुँचा सकते है, रैलियों की घोषणा कर सकते है फीड पर प्रतिक्रिया पा सकते है।

सुझाव :-

(अ) सोशल मीडिया का उपयोग सीमित करे और डिजिटल डिटॉक्स (डिजिटल ब्रेक) ले।

(इ) सकारात्मक सामग्री को फॉलों करे और साइबरबुलिंग से बचे।

निष्कर्ष – सोशल मीडिया का उपयोग समाज पर गहरा प्रभाव डाल रहा है।

जिसमें इसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलू शामिल है। यह फ्लेटफार्म लोगों के बीच संचार और जानकारी के प्रसार को आसान बनाते है लेकिन इसके साथ ही मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ फेक न्यूज और सामाजिक अलगाव जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न होती है।

सोशल मीडिया के प्रभावों को संतुलित ढंग से समझना और निजता के मुद्दों पर गंभीरता से ध्यान देना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चोपडा, संगीता। (2020) 'सोशल मीडिया का सामाजिक प्रभाव निजता और पहचान के मुद्दे' समाजशास्त्र पत्रिका।
2. https://online.utpb.edu
3. https://www.hilarispublisher.com
4. https://www.medanta. org
5. https://www.linkdin.com
6. https://www.questjournals.org.
7. बेनर्जी, अपर्णा (2018) 'सोशल मीडिया और डिजिटल विभाजन, समाज पर प्रभाव समाजशास्त्र और मीडिया'।

****

Live-In Relationships in India: Social and Political Perspective

Dr. Karunendra Kumar*

***Government College, Alote (M.P.) INDIA**

Abstract: The institution of live-in relationships - defined as cohabitation between two consenting adults outside the formal framework of marriage - has emerged as a significant and often contentious social phenomenon in contemporary India. As rapid urbanization, liberalized economic policies, and expanding higher education have reshaped the aspirations and lifestyles of younger generations, traditional frameworks of courtship, marriage, and domesticity have come under increasing scrutiny and challenge. This paper examines live-in relationships in India from dual social and political perspectives, analyzing their historical evolution, legal ambiguity, judicial interpretation, legislative responses, and socio-cultural contestations. Drawing upon landmark Supreme Court and High Court judgments, sociological surveys, legislative debates, and feminist discourse, the paper argues that live-in relationships occupy a paradoxical space in Indian public life — simultaneously gaining limited legal recognition while remaining socially stigmatized, morally contested, and politically instrumentalised. The paper further explores the gendered dimensions of cohabitation, the rights of children born from such unions, and the divergent approaches of progressive and conservative political actors. It concludes that the absence of a comprehensive statutory framework, combined with entrenched patriarchal norms and the electoral politics of cultural conservatism, continues to leave partners in live-in relationships — particularly women — in a precarious and legally uncertain position. A nuanced, rights-based legislative approach is proposed to bridge the gap between constitutional guarantees and social reality.
Keywords: Live-in relationship, Article 21, domestic violence, social stigma, personal autonomy, political discourse, Hindu conservatism, gender rights.

Introduction - India stands at a crossroads between tradition and modernity. For millennia, the family has been the foundational unit of Indian society, and marriage — sanctified by religion, codified in personal laws, and celebrated through elaborate ritual — has been the only socially acceptable arrangement for cohabitation between men and women. Yet the Twenty-first century has witnessed a quiet but discernible transformation in the domestic arrangements of a growing segment of the urban Indian population. Live-in relationships, once confined to the margins of bohemian intellectual circles or to whispered scandal, have become increasingly visible in metropolitan cities such as Mumbai, Delhi, Bengaluru, Hyderabad, and Pune.

The phenomenon is not homogeneous. For some, cohabitation is a pragmatic prelude to marriage — a way of testing compatibility before committing to a lifelong legal contract. For others, particularly among educated urban women who have experienced economic independence, it represents a conscious rejection of the patriarchal structures embedded in traditional marriage. For migrant workers sharing accommodation out of economic necessity rather than romantic partnership, the lived reality is different still. What unites these diverse arrangements, however, is their position outside the formal legal structure of matrimony — and it is precisely this extralegal status that has generated intense judicial, legislative, and political contestation. The Indian state has adopted an ambivalent posture towards live-in relationships. On the one hand, the Supreme Court of India has, through a series of landmark pronouncements, recognized cohabitation as falling within the ambit of the right to life and personal liberty guaranteed under Article 21 of the Constitution of India. On the other hand, Parliament has not enacted specific legislation to govern the rights and obligations arising from such relationships, leaving courts to extrapolate from existing statutes designed for married couples. The result is a patchwork of judicial precedent that offers partial recognition but limited protection — particularly to women and children.

Politically, live-in relationships have become a flashpoint in the broader culture wars that have intensified in India since the early 2000s. Hindu nationalist organizations and conservative political formations have denounced cohabitation as a Western import incompatible

with Indian cultural values. Progressive and feminist organizations have countered that personal choice in domestic arrangements is a fundamental right that the state must protect rather than penalise. Between these poles, mainstream political parties have largely been content with strategic ambiguity, seeking neither to champion nor to alienate constituencies on either side of the debate.

This paper seeks to provide a comprehensive, interdisciplinary analysis of live-in relationships in India. Section 2 traces the historical and socio-cultural context. Section 3

Examines the evolution of judicial interpretation. Section 4 analyses the legislative landscape. Section 5 explores the gendered dimensions and impact on children. Section 6 assesses the political discourse. Section 7 offers a comparative perspective, and Section 8 concludes with policy recommendations.

Historical and Socio-Cultural Context

Pre-Colonial and Colonial Antecedents: The contemporary debate over live-in relationships must be situated within a longer historical trajectory. Classical Hindu texts such as the Manusmriti and the Arthashastra acknowledge various forms of marriage and cohabitation. The Gandharva form of marriage, described in the Mahabharata and other texts, involved voluntary union between two consenting adults without formal ritual or parental consent, bearing a structural resemblance to modern cohabitation. Similarly, certain tribal communities across the Indian subcontinent have historically practiced forms of trial marriage or cohabitation prior to formal union.

The colonial period brought significant changes to the legal regulation of domestic arrangements. The codification of Hindu, Muslim, and Christian personal laws under British administration created a more rigid legal framework around marriage, simultaneously delegitimizing alternative arrangements. The Criminal Tribes Act of 1871 and the enforcement of social purity norms through legislative and administrative mechanisms narrowed the space for non-normative domestic arrangements, particularly among lower castes and tribal communities. The nationalist movement's valorisation of the Hindu family as the repository of cultural authenticity further entrenched the normativity of formal marriage, even as it sometimes opened space for educated women's entry into public life.

Post-Independence Transformations: The constitutional promise of equality between men and women, the Hindu Code Bills of the 1950s, and the gradual expansion of women's education and employment created the conditions for a slow but steady renegotiation of gender roles within Indian families. However, the pace of social change lagged considerably behind legal reform. It was not until the liberalisation of the Indian economy beginning in 1991 that structural forces began to rapidly reshape social norms around cohabitation. Urbanisation, internal migration, the growth of information technology campuses and special economic zones, the proliferation of Paying-guest accommodations, and the delayed age of marriage among educated urban professionals all contributed to creating practical conditions in which cohabitation became more feasible. A National Family Health Survey conducted in the mid-2010s indicated that while cohabitation remained statistically rare relative to formal marriage, its incidence had risen measurably in urban areas, particularly among younger, educated, economically independent respondents.

The influence of global popular culture, streamed through cable television, cinema, and the internet, normalised representations of cohabitation and premarital romance. While these cultural flows were frequently contested and condemned by conservative commentators as cultural imperialism, they nonetheless reshaped aspirations and expectations — particularly among urban middle-class youth. The result is a deepening but uneven social cleavage: cohabitation is increasingly visible and partially tolerated in metropolitan centers while remaining heavily stigmatised in smaller cities, towns, and rural areas.

Judicial Interpretation of Live-In Relationships

The Constitutional Foundation: Article 21: The judicial recognition of live-in relationships in India has its constitutional anchor in Article 21, which guarantees that no person shall be deprived of their life or personal liberty except according to procedure established by law. Over several decades, the Supreme Court has interpreted this provision expansively to include a wide range of rights — including privacy, dignity, and personal autonomy. The right to choose one's partner and the manner in which one cohabits with that partner falls, according to the Court, within this broad constitutional protection.

The foundational case in this domain is S. Khushboo v. Kanniammal (2010), in which the Supreme Court quashed criminal cases filed against a Tamil actress who had publicly endorsed premarital sex and live-in relationships. The Court held that living together is not an offence and that the moral disapproval of society cannot be translated into criminal liability. The Court unambiguously affirmed that consensual adult cohabitation was protected under Articles 21 and 19 of the Constitution.

Recognition under the Domestic Violence Act: A particularly significant development in the legal recognition of live-in relationships came through the Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 (PWDVA). Section 2(f) of the Act defines "domestic relationship" broadly to include relationships "in the nature of marriage", thereby extending the Act's protections — including the right to residence, protection orders, and maintenance — to women in live-in relationships.

The Supreme Court interpreted this provision in D. Velusamy v. D. Patchaiammal (2010), laying down criteria for identifying a relationship "in the nature of marriage": the couple must hold themselves out to society as akin to spouses, must be of legal marriageable age, must be

otherwise qualified to marry, and must have voluntarily cohabited for a significant period. This ruling, while providing a framework, has been criticised for its restrictive conditions — particularly the requirement that the couple present themselves publicly as akin to spouses, which disadvantages women in relationships where the male partner resists such public acknowledgement. Subsequent decisions expanded and refined the Velusamy framework. In Indra Sarma v. V.K.V. Sarma (2013), the Supreme Court emphasised the need for Parliament to enact a comprehensive law on live-in relationships, cataloguing the various categories of such relationships and the differing rights and obligations that should attach to each. The Court noted that the judiciary could only do so much through interpretation and that the protection of women in cohabitation arrangements ultimately required legislative action.

Maintenance Rights: The question of whether women in live-in relationships are entitled to maintenance under Section 125 of the Code of Criminal Procedure has generated conflicting judicial opinion. In Chanmuniya v. Virendra Kumar Singh Kushwaha (2011), the Supreme Court held that a woman in a long-term live-in relationship is entitled to maintenance under Section 125, and that such relationships should be construed as marriages if they have subsisted for a considerable period. The Court invoked the presumption of marriage under Section 114 of the Indian Evidence Act, holding that a long-standing cohabitation creates a rebuttable presumption in favour of legal marriage. This approach, while protective of women, has attracted academic criticism for conflating marriage and cohabitation rather than recognising cohabitation as a distinct legal relationship deserving its own framework. Critics argue that the judicial tendency to assimilate cohabitation into marriage, rather than recognising it as a standalone arrangement, paradoxically reinforces the primacy of marriage as the normative domestic form.

Rights of Children: On the question of children born from live-in relationships, the Supreme Court has been more clearly progressive. In Bharata Matha v. R. Vijaya Renganathan (2010), the Court held that children born to parents in live-in relationships are legitimate and entitled to inheritance rights in their parents' property. This ruling was a significant departure from older legal positions that denied legitimacy to children born outside marriage. The Court grounded its reasoning in the constitutional guarantee of equality and the best interests of the child, holding that children cannot be penalised for the domestic arrangements of their parents.

The Legislative Landscape

Absence of Specific Legislation: Despite repeated judicial calls for comprehensive legislation, India has no statute specifically governing live-in relationships. The partners in such relationships derive whatever legal protections they enjoy from interpretive extensions of laws enacted primarily for married persons — principally the PWDVA, the Hindu Marriage Act, the Special Marriage Act, the Hindu Succession Act, and the Code of Criminal Procedure. This reliance on judicial construction rather than legislative design creates significant unpredictability and leaves large categories of rights and obligations undetermined. Several Law Commission reports and Parliamentary Standing Committees have noted this gap. The 174th Law Commission Report and subsequent reviews have considered but not conclusively recommended specific legislation for live-in relationships, reflecting both the genuine complexity of the issue and the political sensitivity of any legislative intervention in the domain of personal relationships and family law.

State-Level Initiatives and Controversies: The absence of central legislation has created space for state-level interventions, not all of which have been progressive in orientation. In 2019, the Uttarakhand government proposed regulations requiring live-in couples to register their relationships with local authorities, ostensibly to provide legal protection. This proposal generated controversy: women's rights organisations argued it infantilised adult decision-making and effectively penalised non-marital cohabitation, while proponents claimed it would protect women from abandonment. The Uttarakhand Live-in Relationship Registration Regulation, ultimately enacted in 2022, remains one of the few state-level regulatory attempts at this issue, and its Implementation has raised serious concerns about privacy and state surveillance of intimate relationships.

The compulsory registration requirement raises profound constitutional questions. If Article 21 protects the right to privacy in intimate relationships — as the Supreme Court unanimously held in K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017) — then mandating state registration of a private domestic arrangement would appear to strain against this constitutional guarantee. Civil liberties organisations have challenged such provisions on this basis.

The Special Marriage Act and Its Limitations: The Special Marriage Act of 1954 provides a secular, non-religious framework for marriage between persons of different faiths or those who prefer a civil marriage. While not directly applicable to live-in relationships, this legislation has been invoked in discussions about extending similar civil registration frameworks to cohabitation. Proponents of reform point to civil union or registered partnership regimes in European jurisdictions as models that India might adapt to provide legal clarity without mandating formal marriage. Such proposals, however, have found little legislative traction, partly because of their association with debates about same-sex partnership recognition following the Supreme Court's decision in Navtej Singh Johar v. Union of India (2018) which decriminalised consensual same-sex relations under Section 377.

Gendered Dimensions and Vulnerability

Women's Autonomy and the Double Standard: The social and legal analysis of live-in relationships in India cannot be gender-neutral. While men who cohabit outside marriage typically face limited social censure, women in such arrangements bear a disproportionate burden of stigma. A woman who enters a live-in relationship risks being labelled with derogatory terms, being ostracised by her family, losing employment in contexts where social respectability is valued, and being denied housing — as landlords frequently refuse to rent to unmarried couples, particularly in smaller cities and conservative urban localities.

This asymmetry reflects and reinforces the structural inequality between men and women in Indian society. The patriarchal construction of women's sexuality as family property and the associated honour-shame complex means that woman's decisions regarding.

Their intimate lives are subject to collective regulation in a way that men's are not. Feminist scholars have noted that this double standard operates even within progressive families and urban environments, and that the liberal embrace of live-in relationships often does not extend to questioning the underlying gender hierarchy.

Economic Vulnerability and Abandonment: One of the most serious concerns raised by feminist legal scholars and women's rights organisations is the economic vulnerability of women who enter long-term live-in relationships and are subsequently abandoned. Unlike wives, who have clearly defined rights to maintenance, marital property, and alimony, women in live-in relationships occupy a far more precarious legal position. The judicial extensions of maintenance rights under Section 125 Cr PC are helpful but insufficient: the evidentiary burden of proving a long-standing cohabitation, the discretion available to lower courts, and the practical difficulties of enforcing maintenance orders leave many women — particularly those from lower socioeconomic backgrounds — without effective redress.

The situation is further complicated by cases in which a man enters a live-in relationship while concealing an existing marriage. In such cases — which appear with considerable frequency in reported litigation — women have been deceived into cohabitation under false representations of marital availability. Courts have held in several such cases that the woman is entitled to protection under the PWDVA, but criminal liability for the man remains limited in the absence of a specific statutory provision analogous to bigamy within the live-in relationship context.

Children born from live-in relationships face a complex social and legal landscape. Despite the Supreme Court's recognition of their inheritance rights, social stigma around "illegitimacy" — a term that has no legal force but retains powerful social currency — continues to affect children's educational and social opportunities in many communities. Schools, particularly in smaller towns, have been reported to discriminate against children of unmarried parents. Community institutions, including religious bodies and caste panchayats, continue to treat such children as lesser members of the community.

The question of custody and guardianship in the event of the breakdown of a live-in relationship also remains insufficiently addressed. Courts typically apply the best-Interests-of-the-child standard derived from the Guardians and Wards Act, 1890 and the Hindu Minority and Guardianship Act, 1956, but the statutory framework was not designed with cohabitation in mind. Gaps in the law create uncertainty and expose children to protracted custody disputes.

Political Discourse on Live-In Relationships

Conservative and Hindu Nationalist Perspectives: The political right in India — encompassing organizations of the Sangh Parivar, the Vishwa Hindu Parishad, and associated formations — has consistently opposed the normalisation of live-in relationships on the grounds that it threatens the traditional Hindu family structure, encourages immorality, and represents the colonisation of Indian minds by Western cultural values. Spokespersons for these organisations have called for legal prohibition of cohabitation outside marriage or, alternatively, for "protective" registration requirements designed to create administrative visibility and thereby deter non-marital cohabitation. This position is rooted in a conception of Indian culture — specifically Hindu culture — as fundamentally opposed to individualism in matters of family formation. The argument draws upon the Brahmanical textual tradition that valorises the pativrata ideal for women, upon the observation that marriage rates in India remain high relative to Western nations as evidence that Indians "naturally" prefer marriage, and upon the claim that the breakdown of the traditional family generates social pathologies including crime, substance abuse, and mental illness.

Progressive and Liberal Political Perspectives: Progressive political formations — including left parties, liberal wings of centrist parties, and feminist organisations — have generally defended the right to live-in relationships as an expression of personal autonomy protected by the Constitution. These actors have argued that the state has no legitimate interest in the domestic arrangements of consenting adults and that the state's obligation is to ensure that those within such arrangements — particularly women — are protected from exploitation and abuse, not to coerce conformity to a particular family form.

Feminist scholars and activists have, however, complicated this liberal position by pointing out that formal legal recognition of live-in relationships can become a mechanism for disciplining women rather than liberating them. If registration is mandatory, if the state Acquires power to adjudicate which relationships qualify for legal recognition, and if recognition carries with it obligations as

well as rights, then the state apparatus can be used to penalise women who do not conform to the terms of recognised cohabitation. The demand, from this perspective, is not simply for the extension of marriage-like recognition to cohabitation but for a fundamental rethinking of the state's role in regulating intimate relationships.

Electoral Politics and Strategic Ambiguity: Mainstream political parties have largely adopted positions of strategic ambiguity on live-in relationships. The Congress party, historically associated with a secular and progressive constitutional vision, has at times signaled support for extending legal protections to cohabiting couples but has consistently avoided legislating on the issue, fearing electoral backlash from conservative constituencies. The Bharatiya Janata Party, ideologically aligned with Hindu nationalist social conservatism, has also been inconsistent — allowing Supreme Court judgments recognising cohabitation to stand without legislative challenge while rhetorically affirming the sanctity of traditional marriage in electoral campaigns. Regional parties reflect the social conservatism of their respective political ecosystems. In states such as Uttar Pradesh, Rajasthan, and Madhya Pradesh, political discourse on live-in relationships has often been dominated by community panchayat perspectives that are openly hostile to cohabitation, and political parties have calibrated their positions accordingly. In contrast, in Maharashtra and Karnataka, where urban professional constituencies carry greater weight, parties have been somewhat more tolerant of judicial recognition of cohabitation rights.

The Khap Panchayat Problem: Any political analysis of live-in relationships in India must grapple with the role of khap panchayats — extra-judicial caste and community bodies concentrated in the north Indian states of Haryana, Punjab, Uttar Pradesh, and Rajasthan — in policing domestic arrangements. Khap panchayats have issued diktats prohibiting not only live-in relationships but same-gotra marriages, inter-caste relationships, and other forms of association that violate their interpretation of community norms. In numerous documented cases, couples — whether married, cohabiting, or merely associated — have been subjected to social boycotts, forced separation, and in extreme cases violence, including honour killings, at the instigation or with the tacit approval of khap bodies. The Supreme Court addressed the khap panchayat problem

Directly in Shakti Vahini v. Union of India (2018), directing state governments to prevent and punish khap-sponsored violence and directing district authorities to set up protection mechanisms for couples facing threats from their communities. The enforcement of this directive, however, has been uneven. Political parties in affected states have maintained ambiguous relationships with khap bodies, recognising their importance as vote-mobilising institutions while formally endorsing the rule of law.

Comparative Perspective: A comparative perspective illuminates both the distinctiveness of India's approach to cohabitation and possible directions for reform. In many European jurisdictions — France, the Netherlands, Germany, Sweden, and others — specific civil partnership or registered cohabitation regimes exist alongside marriage, providing legal clarity and protection to cohabiting couples without requiring them to enter formal matrimony. The French Pacte Civil de Solidarité (PACS), introduced in 1999, has become a widely used alternative to marriage, particularly among younger couples, offering a flexible, dissolvable agreement that confers specific rights regarding taxation, property, and inheritance.

The United Kingdom adopts a different approach: there is no specific civil partnership regime for heterosexual cohabiting couples, but courts have developed a body of common law and equitable doctrines — including resulting trusts, constructive trusts, and proprietary estoppel — to protect cohabitants' property interests. The Law Commission of England and Wales has repeatedly recommended reform to provide clearer statutory rights to cohabitants on relationship breakdown, though comprehensive legislation has yet to be enacted.

South Asian comparators are instructive. Nepal, which underwent significant constitutional and social transformation in the 2010s, has moved towards more explicit recognition of diverse family arrangements. Bangladesh, a Muslim-majority nation with significant Hindu and other minorities, adheres more closely to religious personal law frameworks. Pakistan's position on live-in relationships is substantially more restrictive, with cohabitation potentially actionable under its interpretation of Islamic law.

India's situation is unique in combining a liberal constitutional framework — which clearly supports personal autonomy in intimate matters — with pluralistic personal law regimes, entrenched patriarchal social norms, significant variation across regions and Communities and a political environment in which cultural nationalism exerts strong pressure on family law reform. Any approach to legislative reform must navigate these dimensions simultaneously.

Conclusion and Policy Recommendations: The foregoing analysis demonstrates that live-in relationships in India occupy a contested and legally precarious position. The judiciary has made significant strides in extending constitutional protection and limited statutory rights to cohabiting couples, particularly under the PWDVA, but has rightly called for comprehensive parliamentary action. That action has not been forthcoming, leaving a critical gap between constitutional promise and social reality — a gap that is borne most heavily by women and children.

Politically, the issue has become entangled in broader culture wars over Indian identity, modernity, and the

appropriate role of the state in regulating intimate life. Conservative formations have sought to restrict non-marital cohabitation; progressive actors have defended personal autonomy; mainstream parties have mostly avoided legislating. The result is a status quo that satisfies no one and protects too few.

Several policy recommendations emerge from this analysis:

First, Parliament should enact a Cohabitation Rights Act that establishes a voluntary registration mechanism for live-in couples, confers defined rights regarding property, maintenance, and inheritance on registered partners, and extends child legitimacy protections regardless of registration. The Act should make registration genuinely optional and should not impose penalties or stigma on unregistered cohabitation.

Second, the PWDVA should be amended to remove the requirement that a live-in relationship be "in the nature of marriage" as a precondition for protection, extending its remedies to all cohabiting couples regardless of whether they hold themselves out as spouses.

Third, the right to privacy recognised in Puttaswamy must be explicitly applied to protect cohabiting couples from intrusive state and community scrutiny. Mandatory registration requirements imposed without adequate privacy safeguards should be subject to judicial review.

Fourth, comprehensive anti-discrimination legislation should be enacted to prohibit discrimination by landlords, employers, and educational institutions on the basis of domestic arrangement or marital status.

Fifth, the enforcement of the Supreme Court's directives against khap panchayat violence should be strengthened through dedicated institutional mechanisms, including fast-track courts and victim protection schemes for couples facing community-based persecution.

Ultimately, the question of live-in relationships in India is a question about the kind of society India wishes to be: one in which constitutional guarantees of liberty, equality, and dignity are substantively realized across the full diversity of its citizens' lives, or one in which formal constitutional commitments are subordinated to the enforcement of community norms that have historically served to discipline women and consolidate patriarchal authority. The trajectory of judicial interpretation suggests the former aspiration; the trajectory of legislative and political action has too often reflected the latter tendency. Closing this gap is both a legal imperative and a democratic necessity.

References:-

1. Agnes, F. (2011). Family Law Volume 1: Family Laws and Constitutional Claims. Oxford University Press.
2. Agnes, F. (2012). Women, Marriage, and the Subordination of Rights. Economic and Political Weekly, 47(13), 14–16.
3. Baxi, U. (2002). The Future of Human Rights. Oxford University Press.
4. Beteille, A. (2002). The Backward Classes and the New Social Order. Oxford University Press.
5. Chanmuniya v. Virendra Kumar Singh Kushwaha (2011) 1 SCC 141.
6. D. Velusamy v. D. Patchaiammal (2010) 10 SCC 469.
7. Deshpande, S. (2003). Contemporary India: A Sociological View. Penguin Books India.
8. Government of India. (2005). Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005. Ministry of Law and Justice.
9. Government of India. (1984). 174th Law Commission Report: Property Rights of Women: Proposed Reforms under Hindu Law. Law Commission of India.
10. Indra Sarma v. V.K.V. Sarma (2013) 15 SCC 755.
11. Jaising, I. (2014). Gender Justice and Judicial Activism in India. Economic and Political Weekly, 49(52), 36–42.
12. K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017) 10 SCC 1.
13. Kishwar, M. (1993). Codified Hindu Law: Myth and Reality. Economic and Political Weekly, 28(33), 1762–1772.
14. Kumari, V. (2018). Challenges in Implementing Domestic Violence Law in India. Asian Journal of Women's Studies, 24(1), 22–40.
15. Menski, W. (2003). Hindu Law: Beyond Tradition and Modernity. Oxford University Press.
16. Patel, R. (2010). Hindu Women's Property Rights in Rural India. Ashgate Publishing.
17. Rajan, R. S. (2003). The Scandal of the State: Women, Law, and Citizenship in Postcolonial India. Duke University Press.
18. S. Khushboo v. Kanniammal (2010) 5 SCC 600.
19. Sen, A. (2005). The Argumentative Indian: Writings on Indian Culture, History and Identity. Penguin Books.
20. Shakti Vahini v. Union of India (2018) 7 SCC 192.
21. Sharma, A. (2008). Logics of Empowerment: Development, Gender, and Governance in Neoliberal India. University of Minnesota Press.
22. Singh, K. (2019). Live-in Relationships and Legal Recognition: A Feminist Critique. Journal of Indian Law and Society, 10(2), 88–112.
23. Supreme Court of India. (2010). Bharata Matha v. R. Vijaya Renganathan. (2010) 11 SCC 483.
24. Uttarakhand Government. (2022). Uttarakhand Live-In Relationship Registration Regulation. Government Gazette.
25. Vatuk, S. (2013). The "Women's Court" in India: An Alternative Dispute Resolution Body for Women in Distress. Journal of Legal Pluralism and Unofficial Law, 45(1), 76–103

****

Tribal Agriculture and Millets Production in Madhya Pradesh: Sustainable Practices and Future Prospects

Dr. Vikram Singh Gehlot*

***Asistant Professor (Economics) Government College, Alote (M.P.) INDIA**

Abstract: Madhya Pradesh, home to the largest tribal population in India, has a rich agricultural heritage deeply intertwined with millet cultivation. This research paper examines the current state of tribal agriculture with specific focus on millets production in Madhya Pradesh, exploring traditional farming practices, socio-economic challenges, government interventions, and future opportunities. The study highlights how millets, once considered "coarse grains," are experiencing a renaissance as climate-resilient crops with significant nutritional value. Through analysis of tribal farming systems, production trends, and policy frameworks, this paper demonstrates that revitalizing millet cultivation among tribal communities can contribute to food security, nutritional security, climate adaptation, and sustainable rural livelihoods in the state.

Keywords: Tribal agriculture, millets, Madhya Pradesh, food security, sustainable agriculture, indigenous farming practices.

Introduction - Madhya Pradesh occupies a unique position in India's tribal landscape, being home to approximately 15.3 million tribal people, constituting about 21.1% of the state's population as per the 2011 Census. The state has the largest tribal population in absolute numbers among all Indian states. These communities, including major tribes such as Bhil, Gond, Korku, Baiga, and Sahariya, have traditionally practiced agriculture as their primary livelihood, with deep-rooted knowledge of cultivating indigenous crops suited to their agro-climatic conditions. Millets, collectively known as "Nutri-cereals" or "Shree Anna," have been integral to tribal agriculture for millennia. These small-seeded grasses include varieties such as jowar (sorghum), bajra (pearl millet), ragi (finger millet), kodo (kodo millet), kutki (little millet), and other minor millets. Historically, millets formed the staple diet of tribal communities due to their ability to grow in marginal lands with minimal inputs, their drought tolerance, and their superior nutritional profile compared to rice and wheat.

Significance of the Study: The relevance of studying tribal agriculture and millet production in Madhya Pradesh has increased manifold in recent years due to several converging factors:

First, the United Nations declared 2023 as the International Year of Millets, bringing global attention to these forgotten crops. Second, climate change has made traditional water-intensive crops increasingly vulnerable, while millets demonstrate remarkable resilience to erratic rainfall and temperature fluctuations. Third, rising concerns about malnutrition, particularly among tribal populations, have highlighted millets' rich nutritional content including proteins, dietary fiber, minerals and vitamins.Furthermore, the economic marginalization of tribal farmers and the decline in traditional farming practices necessitate urgent interventions to preserve indigenous agricultural knowledge while improving livelihoods. This study aims to provide a comprehensive understanding of the current status, challenges, and opportunities in tribal millet agriculture in Madhya Pradesh.

Tribal Agriculture in Madhya Pradesh: An overview

Geographical Distribution and Agro-climatic Zones: Madhya Pradesh's tribal population is predominantly concentrated in specific regions with distinct agro-climatic characteristics. The major tribal-dominated districts include Jhabua, Alirajpur, Barwani, Dhar, Mandla, Dindori, Balaghat, Chhindwara, Seoni, and Sheopur. These areas fall primarily under three agro-climatic zones: The Vindhyan Plateau Zone, covering districts like Sidhi and Singrauli, experiences moderate rainfall and has predominantly red and black soils. The Satpura Plateau Zone, encompassing districts such as Betul, Chhindwara, and Seoni, receives higher rainfall and has mixed forest and agricultural land. The Malwa Plateau and Nimar Valley regions in western Madhya Pradesh, including Jhabua and Alirajpur, have medium black soils and face frequent drought conditions.

Characteristics of Tribal Farming Systems: Tribal agriculture in Madhya Pradesh exhibits several distinctive features that differentiate it from mainstream agriculture:

Subsistence-oriented Production: Most tribal farmers practice subsistence agriculture, growing crops primarily for household consumption rather than commercial sale. Average landholdings are small, typically between 1-2 hectares, with significant numbers of marginal and small farmers. Rainfed Agriculture: Approximately 80-90% of tribal agriculture depends entirely on monsoon rainfall, with minimal irrigation infrastructure. This makes farming highly vulnerable to rainfall variability and drought. Mixed Cropping Systems: Traditional tribal farming involves intercropping and mixed cropping systems that enhance biodiversity, reduce pest incidence, and provide food security through crop diversification. Millets are commonly grown alongside pulses, oilseeds, and vegetables. Low Input Usage: Tribal farmers traditionally use minimal external inputs, relying instead on organic manures, crop residues, and indigenous seed varieties. While this reduces costs, it also limits productivity compared to intensive farming systems. Forest-based Integration: Many tribal communities practice shifting cultivation or have farming systems integrated with forest resources, collecting minor forest produce alongside agricultural activities.

Millets production in Madhya Pradesh: Current Status

Types of Millets Cultivated

Madhya Pradesh cultivates both major and minor millets, each with specific geographical concentrations:

Jowar (Sorghum): The most widely cultivated millet in the state, primarily grown in western and northern Madhya Pradesh including Malwa and Gwalior regions. Both kharif and rabi varieties are cultivated.

Bajra (Pearl Millet): Predominantly grown in drought-prone areas of western Madhya Pradesh, particularly in tribal-dominated districts like Jhabua and Alirajpur. Known for exceptional drought tolerance.

Kodo-Kutki (Kodo and Little Millet): These minor millets are particularly important in tribal agriculture, mainly cultivated in the hilly terrains of Mandla, Dindori, Balaghat, and Chhindwara districts. They thrive in poor soils with minimal inputs.

Ragi (Finger Millet): Cultivated in limited areas, particularly in eastern and southern tribal belts, valued for its calcium content and storage qualities.

Production Trends and Statistics: Millet cultivation in Madhya Pradesh has witnessed significant fluctuations over the past few decades. According to agricultural statistics, the state had approximately 2.5-3.0 million hectares under millet cultivation in the early 2000s, which declined to around 1.8-2.0 million hectares by 2010-2015 due to the Green Revolution's focus on rice and wheat.

However, recent years have shown signs of stabilization and modest revival. Jowar occupies the largest area among millets, followed by bajra and kodo-kutki. Production levels vary considerably based on monsoon performance, ranging from 1.5 to 2.5 million tonnes annually for all millets combined.Productivity remains a challenge, with average yields around 800-1200 kg/hectare for jowar and bajra, and 600-900 kg/hectare for minor millets like kodo-kutki. These figures are significantly lower than the potential yields achievable with improved varieties and management practices. In tribal-dominated districts, millets continue to occupy a more prominent position in the cropping pattern compared to non-tribal areas. Districts like Mandla, Dindori, and Alirajpur have higher proportions of area under millets, reflecting their cultural and nutritional importance to tribal communities.

Traditional Cultivation Practices: Tribal communities in Madhya Pradesh have developed sophisticated indigenous knowledge systems for millet cultivation:

Seed Selection and Storage: Farmers maintain traditional seed varieties adapted to local conditions, selected over generations for traits like drought tolerance, pest resistance, and taste. Seeds are stored in traditional structures using neem leaves and ash to prevent pest damage.

Land Preparation: Minimal tillage practices are common, with emphasis on organic matter incorporation. Some communities practice "bewar" or shifting cultivation in forested areas, though this is declining due to forest regulations.

Sowing Methods: Broadcasting is the traditional method for minor millets, while line sowing is used for jowar and bajra. Mixed cropping with pulses like tur, urad, and moong is widespread.

Nutrient Management: Tribal farmers rely on organic sources including farmyard manure, compost, and green manuring. Chemical fertilizer use remains minimal due to cost constraints and traditional preferences.

Pest and Disease Management: Indigenous practices include using neem-based preparations, ash, and crop rotation to manage pests. Harvest timing and storage methods are carefully planned to minimize pest damage.

Nutritional and Economic Significance of Millets

Nutritional Profile

Millets are nutritional powerhouses, offering superior benefits compared to refined cereals:

Jowar contains 10-12% protein, significant amounts of iron, phosphorus, and B-vitamins. It is gluten-free and has a low glycemic index, making it suitable for diabetics.

Bajra is rich in protein (11-12%), iron, zinc, and magnesium. It provides energy and is particularly beneficial during pregnancy and for children's growth.

Ragi stands out for its exceptional calcium content (300-350 mg/100g), making it invaluable for bone health. It also contains essential amino acids like methionine.

Kodo-Kutki offers high fiber content, antioxidants, and minerals. These millets are particularly valued for their cooling properties in traditional medicine systems.

For tribal populations facing malnutrition, especially iron deficiency anemia and protein-energy malnutrition, regular millet consumption can significantly improve nutritional

outcomes. Studies have shown that tribal children consuming millet-based diets have better growth indicators compared to those dependent solely on rice.

Economic Benefits

From an economic perspective, millets offer multiple advantages to tribal farmers:

Low Input Costs: Millets require minimal fertilizers, pesticides, and irrigation, reducing cultivation costs by 30-50% compared to rice or wheat.

Climate Resilience: Their ability to withstand drought and grow in marginal lands provides income security in uncertain climatic conditions where other crops fail.

Shorter Duration: Many millet varieties mature in 70-90 days, allowing for multiple cropping or early harvests, providing food security during lean periods.

Value Addition Potential: Processing millets into flour, ready-to-eat products, and health foods can generate additional income, with urban markets increasingly demanding millet-based products. However, market linkages remain weak, with tribal farmers often selling at low prices to local traders. Lack of processing infrastructure and organized marketing channels limits income realization.

Challenges Facing Tribal Millet agriculture

Agricultural Challenges: Declining Area and Production: Despite recent revival efforts, the overall area under millets has declined significantly since the 1960s due to policy bias favoring rice and wheat through Minimum Support Prices and Public Distribution System.

Low Productivity: Traditional varieties and farming practices result in yields much lower than potential, reducing economic viability.

Labor Intensity: Millet cultivation, especially minor millets, is labor-intensive for activities like weeding, harvesting, and processing, while mechanization options are limited.

Pest and Disease Pressure: Lack of resistant varieties and proper management leads to significant crop losses, particularly from birds and storage pests.

Socio-economic Challenges: Land Tenure Insecurity: Many tribal farmers lack proper land titles, making them ineligible for institutional credit and government schemes. Forest Rights Act implementation remains incomplete in many areas.

Limited Market Access: Poor road connectivity, absence of local processing facilities, and exploitation by middlemen result in low farmgate prices. Most tribal farmers lack storage facilities, forcing distress sales immediately after harvest.

Credit Constraints: Formal banking penetration is low in tribal areas, pushing farmers toward informal credit sources with high interest rates. Crop insurance coverage remains minimal.

Changing Dietary Preferences: Younger generations increasingly prefer rice and wheat over millets, influenced by PDS availability and urban food cultures. This reduces household consumption and cultivation incentives.

Policy and Institutional Gaps

Research and Development: Limited research focus on minor millets compared to major cereals has resulted in fewer improved varieties and production technologies suitable for tribal conditions.

Extension Services: Agricultural extension in tribal areas suffers from poor infrastructure, insufficient staff, and cultural-linguistic barriers between extension workers and tribal farmers.

Procurement and MSP: While the government announced Minimum Support Prices for millets, procurement mechanisms remain weak or non-existent in most tribal districts, unlike the well-established systems for rice and wheat.

Government Initiatives and Policy Interventions

National and State-level Programs: Several initiatives target tribal agriculture and millet promotion in Madhya Pradesh:

National Food Security Mission (NFSM) - Nutri Cereals: This program provides financial assistance for improved seeds, micro-nutrients, plant protection measures, and demonstrations for millets.

Rashtriya Krishi Vikas Yojana (RKVY): State-level projects under RKVY focus on millet value chains, including seed production, processing units, and market linkages in tribal areas.

Tribal Sub-Plan (TSP): Madhya Pradesh allocates funds proportionate to tribal population for tribal development, including agricultural programs.

Madhya Pradesh Millet Mission: The state government has launched focused initiatives to revive millet cultivation, including distribution of improved seeds, creation of custom hiring centers for millet processing machinery, and promotion of millet consumption in mid-day meals and ICDS programs.

Recent Policy Developments: The declaration of 2023 as the International Year of Millets has catalyzed several policy measures:

MSP Announcement: The central government declared MSP for kodo-kutki and other minor millets, though procurement infrastructure needs strengthening.

Inclusion in PDS: Some states are exploring inclusion of millets in the Public Distribution System, which could create assured demand and support farmer incomes.

Startup Support: Entrepreneurship programs encourage millet-based food processing enterprises, creating market opportunities for tribal farmers.

MGNREGA Integration: Using MGNREGA funds for creating water harvesting structures and land development in tribal areas supports millet cultivation.

Success Stories and best Practices

Community-based Initiatives: Several grassroots initiatives demonstrate successful models for tribal millet agriculture: Tribal Cooperative Societies: In districts like Mandla and Dindori, tribal farmer cooperatives collect,

process, and market kodo-kutki collectively, eliminating middlemen and ensuring fair prices. Some cooperatives have established brands for organic millets, accessing urban markets.

Seed Sovereignty Programs: Organizations working with tribal communities have established community seed banks preserving traditional millet varieties. Farmers participate in seed exchange fairs, maintaining genetic diversity.

Women's Self-Help Groups: SHGs in tribal areas have taken up millet processing and value addition, producing products like millet flour, ready-to-cook mixes, and snacks. This provides additional income and encourages continued cultivation.

Technology Interventions: Improved Varieties: Research institutions have developed high-yielding varieties of jowar, bajra, and finger millet with better disease resistance. Participatory varietal selection involving tribal farmers ensures adoption of suitable varieties.

Processing Technologies: Introduction of small-scale dehulling and milling machines has reduced drudgery and improved millet processing efficiency. Solar dryers help in better post-harvest management.

Intercropping Systems: Scientific validation of traditional mixed cropping systems has led to standardized recommendations that increase overall productivity while maintaining sustainability.

Future Prospects and Recommendations

Market Development:

Branding and Certification: Developing geographical indication (GI) tags and organic certification for tribal millets can create premium market segments. Products like "Bastar Kodo" or "Malwa Jowar" can attract urban health-conscious consumers.

E-commerce Platforms: Linking tribal farmer groups with online marketplaces can eliminate intermediaries and improve price realization.

Institutional Procurement: Mandatory procurement of millets for government programs like mid-day meals, ICDS, and army rations can create stable demand.

Production Enhancement

Climate-smart Agriculture: Promoting millets as climate-resilient crops through demonstrations and farmer field schools can increase adoption. Integrated farming systems combining millets with livestock and horticulture offer better income stability.

Mechanization: Developing and subsidizing appropriate small-scale machinery for sowing; weeding, harvesting, and processing can reduce labor requirements and improve efficiency.

Irrigation Support: Even minimal supplemental irrigation through farm ponds and micro-irrigation significantly boosts millet yields. MGNREGA and watershed programs should prioritize tribal areas.

Institutional Strengthening

Research Focus: Increased investment in minor millet research, including genomics, breeding, and agronomic practices, is essential. Establishing dedicated millet research stations in tribal regions can develop location-specific solutions.

Extension Reforms: Recruiting extension workers from tribal communities, using local languages, and employing digital tools can improve technology dissemination. Farmer-to-farmer extension through progressive farmers has proven effective.

Land Rights: Expediting implementation of Forest Rights Act and providing land titles to tribal farmers will improve access to credit and government schemes.

Financial Inclusion: Expanding banking and insurance services in tribal areas, with products tailored to millet cultivation cycles, will reduce vulnerability.

Nutritional Security Programs

Awareness Campaigns: Comprehensive campaigns highlighting millets' nutritional benefits can counter negative perceptions and restore pride in traditional foods.

Value Addition Training: Skill development programs for tribal women in preparing diverse millet-based recipes and products can boost consumption and create livelihoods.

Integration with Nutrition Programs: Making millets central to ICDS and mid-day meal programs in tribal areas ensures childhood nutrition while creating local demand.

Conclusion: Tribal agriculture and millet production in Madhya Pradesh stand at a critical juncture. After decades of neglect and decline, there is renewed recognition of millets' importance for nutrition, climate adaptation, and sustainable livelihoods. The state's large tribal population, with their indigenous knowledge and traditional millet cultivation practices, represents both a challenge and an opportunity.The challenges are multifaceted—ranging from agronomic constraints and market failures to policy gaps and changing food preferences. However, the convergence of favorable factors including government initiatives, growing urban demand for healthy foods, climate change imperatives, and international recognition creates unprecedented opportunities. Revitalizing tribal millet agriculture requires a holistic approach addressing production, processing, marketing, and consumption simultaneously. It demands recognition of tribal farmers as knowledge holders and equal partners in development, not merely beneficiaries. Strengthening community institutions, ensuring land rights, improving infrastructure, and creating remunerative market sare foundational requirements. Success will be measured not just by production statistics but by improved nutritional status of tribal populations, enhanced resilience of farming systems, preservation of biodiversity, and dignified livelihoods for tribal farmers. Madhya Pradesh, with its rich tribal heritage and agricultural diversity, has the potential to become a model for sustainable, nutrition-sensitive agriculture centered on millets. The path forward requires sustained commitment from policymakers, researchers, development practitioners,

and most importantly, tribal communities themselves. If pursued with appropriate investments and genuine partnership, tribal millet agriculture can contribute significantly to achieving food security, nutritional security, environmental sustainability, and inclusive rural development in Madhya Pradesh.

References:-

1. Census of India (2011). Madhya Pradesh - Data Highlights: The Scheduled Tribes. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India.
2. Department of Agriculture, Madhya Pradesh. (2022). Agricultural Statistics at a Glance.
3. ICAR-Indian Institute of Millets Research. (2021). Millets: Nutritional Security for India.
4. Ministry of Agriculture & Farmers Welfare. (2023). National Food Security Mission - Nutri Cereals: Operational Guidelines.
5. National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD). (2020). Potential Linked Credit Plan for Madhya Pradesh.
6. Planning Commission of India. (2013). Report of the Expert Group to Review the Methodology for Measurement of Poverty.
7. Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India (TRIFED). (2022). Minor Forest Produce and Value Addition.
8. United Nations. (2023). International Year of Millets 2023: Policy Brief.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Emerging Patterns of Cybercrime and Preventive Strategies

Sarvesh Kumar*

***Assistant Professor, Sant Kripal Singh Institute of Law, Banda (U.P.) INDIA**

Abstract: The rapid digital transformation of global societies has significantly increased reliance on information and communication technologies, thereby expanding the scope and complexity of cybercrime. Cybercriminal activities have evolved from basic hacking and identity theft to sophisticated operations such as ransomware attacks, cryptojacking, cloud exploitation, and IoT-based intrusions. This paper examines the emerging patterns of cybercrime in the contemporary digital ecosystem and analyses the factors contributing to their growth. Through a review of existing literature, the study highlights technological vulnerabilities, human behavioural weaknesses, and regulatory gaps that facilitate cybercriminal activities. The paper further explores preventive strategies including technological safeguards, cybersecurity awareness, legislative reforms, and international cooperation. It concludes that a comprehensive, multi-layered, and collaborative approach is essential to effectively combat modern cyber threats and ensure digital security.
Keywords: Cybercrime; Ransomware; Phishing; Social Engineering; IoT Security; Cryptojacking; Cloud Vulnerabilities; Cybersecurity; Preventive Strategies; Digital Forensics.

Introduction - In an increasingly digital world, cybercrime has become one of the most pressing challenges for governments, corporations, and individuals. Cybercrime refers to illegal activities executed through or targeting digital systems, networks, or devices. With the global adoption of the internet, smartphones, cloud computing, and digital services, cybercriminals have continually evolved their tactics, exploiting technological vulnerabilities and human weaknesses. This paper examines emerging patterns in cybercrime and proposes preventive strategies to mitigate these threats effectively.

The rapid expansion of digital infrastructure has transformed the way societies function. E-governance platforms, online banking systems, digital payment applications, e-commerce portals, and social media networks have significantly improved efficiency and accessibility. However, this digital transformation has simultaneously expanded the attack surface for malicious actors. As dependency on interconnected systems increases, the risks associated with data breaches, identity theft, financial fraud, and cyber espionage have grown proportionately. Cybercrime is no longer limited to isolated incidents of hacking; it has developed into an organised, transnational activity often linked to sophisticated criminal networks.

One of the defining characteristics of contemporary cybercrime is its borderless nature. Unlike traditional crimes, cyber offences can be committed remotely, across jurisdictions, and often anonymously. The anonymity provided by encryption technologies, dark web marketplaces, and cryptocurrency transactions has made detection and prosecution significantly more difficult. This has posed substantial challenges to law enforcement agencies, which must navigate complex jurisdictional and technical barriers. Consequently, cybercrime has emerged not merely as a technical issue but as a legal, social, economic, and national security concern.

Moreover, the evolution of emerging technologies such as Artificial Intelligence (AI), Machine Learning (ML), Internet of Things (IoT), blockchain systems, and cloud computing has created new dimensions of cyber risk. While these technologies enhance innovation and economic growth, they also provide cybercriminals with advanced tools to automate attacks, bypass security mechanisms, and target critical infrastructure. The rise of ransomware-as-a-service, deepfake-enabled fraud, and AI-driven phishing campaigns illustrates how cybercrime is adapting rapidly to technological progress.

The human element also plays a crucial role in the proliferation of cybercrime. Lack of cybersecurity awareness, poor password hygiene, and susceptibility to social engineering tactics often enable cyber attackers to bypass technical safeguards. In many cases, the weakest link in cybersecurity frameworks is not technological but

behavioural. Therefore, addressing cybercrime requires not only technical countermeasures but also behavioural change, digital literacy, and institutional accountability.

Given the dynamic and evolving nature of cyber threats, there is a pressing need to systematically analyse emerging patterns and develop comprehensive preventive strategies. A reactive approach is insufficient; instead, proactive, multi-layered, and collaborative mechanisms must be implemented. This study seeks to contribute to the ongoing discourse by examining current trends in cybercrime and identifying practical, legal, and technological responses capable of enhancing resilience in the digital ecosystem.

Objectives of the Study: The primary objectives of this article are:

1. To identify and analyse the emerging patterns of cybercrime in the contemporary digital ecosystem.
2. To understand the factors contributing to the proliferation of cybercrime.
3. To review preventive strategies adopted globally to combat cybercrime.
4. To suggest integrated and practical approaches for policymakers, law enforcement agencies, and end-users to enhance cybersecurity.

Literature Review

Evolution of Cybercrime: Scholars and cybercrime experts have traced the origins of cybercrime back to the early days of computer networking. Wall (2007) explains that cybercrime initially involved simple hacking for intellectual challenge but soon transformed into criminal enterprises driven by profit and anonymity. Yar (2013) emphasises that modern cybercrime involves a blend of technical exploits and social engineering, making detection and prosecution more complex.

Types and Patterns of Cybercrime: According to Brenner (2010), cybercrime encompasses a spectrum of activities such as identity theft, phishing, ransomware, Distributed Denial of Service (DDoS), and financial fraud. More recent research highlights data breaches, cryptojacking, and Internet of Things (IoT) exploitation as emerging threats. The widespread use of digital financial services has also catalysed online banking fraud and mobile payment scams.

Human and Technological Factors in Cybercrime: Human factorssuch as lack of cybersecurity awareness and poor password practicesare consistently identified in literature as major enablers of cybercrime. Social engineering remains one of the most effective tools for cybercriminals because it targets psychological vulnerabilities rather than technical ones.Technological advancements, including Artificial Intelligence (AI), cloud storage systems, and high-speed connectivity, expand the attack surface, enabling cybercriminals to execute large-scale operations with relative ease.

Preventive Frameworks and Strategies: Researchers highlight the importance of a multi-layered defensive approach. Traditional security mechanisms (firewalls, antivirus software) must be combined with user education, legislative reforms, and international cooperation. Cybersecurity is not merely a technical challenge but also a socio-legal issue requiring coordinated efforts.

Emerging Patterns of Cybercrime: Cybercrime is dynamic and continually reshapes itself in response to technological, social, economic, and geopolitical developments. Unlike traditional crime, cybercrime evolves at the pace of technological innovation. As new digital infrastructures emerge, cybercriminals quickly identify vulnerabilities and exploit them for financial gain, political manipulation, espionage, or disruption of essential services. The contemporary cyber threat landscape is therefore characterised by increasing sophistication, automation, and transnational coordination. Significant emerging patterns are discussed below.

Ransomware Attacks: Ransomware has emerged as one of the most disruptive and financially damaging forms of cybercrime. In ransomware attacks, malicious software infiltrates a system, encrypts critical files, and demands paymentoften in cryptocurrencyin exchange for decryption keys. What distinguishes modern ransomware from earlier versions is its strategic targeting and operational sophistication.

Recent trends demonstrate the rise of Ransomware-as-a-Service (RaaS), where cybercriminal groups develop ransomware tools and lease them to affiliates, thereby lowering the technical barrier to entry for attackers. This commercialisation of cybercrime has significantly increased the frequency and scale of attacks. Moreover, attackers now adopt a “double extortion” model, where they not only encrypt data but also threaten to publicly leak sensitive information if ransom demands are not met.

Critical infrastructure sectors—such as healthcare institutions, educational establishments, energy grids, and government departments—have increasingly become targets. These institutions are often more likely to pay ransoms due to the urgency of restoring essential services. The economic, reputational, and operational impacts of ransomware have thus expanded beyond financial losses to include threats to public safety and national security.

Phishing and Social Engineering: Phishing remains one of the most prevalent forms of cybercrime, but its methods have evolved considerably. Traditional mass-email phishing campaigns have transitioned into more targeted and personalised attacks known as spear-phishing and whaling (targeting high-ranking officials). Cybercriminals now leverage data harvested from social media platforms, corporate websites, and data breaches to craft highly convincing messages.

An emerging concern is the use of Artificial Intelligence (AI) to generate realistic phishing emails and even deepfake audio or video impersonations. For example, fraudsters have used voice-cloning technologies to impersonate executives and authorise fraudulent financial transfers.

These techniques significantly increase the credibility of scams and reduce the likelihood of detection.

Social engineering exploits psychological factors such as urgency, fear, authority, or trust. The COVID-19 pandemic, for instance, witnessed a surge in phishing campaigns disguised as health advisories or financial relief schemes. This demonstrates how cybercriminals adapt quickly to social circumstances, making phishing a constantly evolving threat.

IoT Exploitation: The proliferation of Internet of Things (IoT) devicessuch as smart home appliances, wearable devices, industrial sensors, and connected vehicleshas dramatically expanded the digital attack surface. Many IoT devices are designed with limited computational capacity and minimal security features, making them particularly vulnerable to exploitation.

One significant pattern is the use of compromised IoT devices to form botnets, which are networks of infected devices controlled remotely by cybercriminals. These botnets can be deployed to launch Distributed Denial of Service (DDoS) attacks, overwhelming targeted servers and causing service disruptions. Industrial IoT systems, especially those integrated into critical infrastructure, are also at risk of sabotage and espionage.

The challenge with IoT exploitation lies in the lack of standardised security protocols and insufficient regulatory oversight. As IoT devices continue to integrate into daily life and industrial operations, the risk of systemic cyber vulnerabilities increases proportionately.

Cryptojacking and Cryptocurrency Fraud: The rise of cryptocurrencies has introduced new avenues for cybercrime. Cryptojacking involves the covert installation of malware that utilises a victim's computing resources to mine cryptocurrency without consent. Unlike ransomware, cryptojacking is often designed to remain undetected for long periods, silently degrading system performance while generating profits for attackers.

In addition to cryptojacking, cryptocurrency fraud has expanded significantly. Fraudulent investment schemes, phishing attacks targeting digital wallets, and fake cryptocurrency exchanges have resulted in substantial financial losses for individuals and investors. The decentralised and pseudonymous nature of blockchain transactions makes tracing illicit financial flows challenging for law enforcement agencies.

Furthermore, cryptocurrencies are frequently used to facilitate payments in ransomware attacks and dark web transactions, thereby reinforcing the financial ecosystem that sustains cybercriminal enterprises.

Cloud-based Attacks: The widespread adoption of cloud computing has transformed organisational data management and service delivery. However, misconfigured cloud storage systems, weak authentication controls, and inadequate encryption practices have created new security vulnerabilities.

One emerging trend is the exploitation of improperly secured cloud databases, leading to large-scale data leaks. Attackers may gain access to sensitive customer information, intellectual property, or confidential government data. Additionally, compromised credentials obtained through phishing are often used to infiltrate cloud environments.

Cloud supply chain attacks are also becoming more frequent, where cybercriminals target third-party service providers to gain indirect access to multiple organisations simultaneously. Such attacks highlight the interconnected and interdependent nature of modern digital ecosystems.

Emerging AI-Driven and Deepfake Crimes: Another growing pattern involves the misuse of Artificial Intelligence technologies. Deepfake videos and synthetic media are increasingly used for fraud, political manipulation, and reputational damage. AI tools can automate vulnerability scanning, password cracking, and phishing campaigns, increasing both the scale and speed of cyberattacks.

The integration of AI into cybercrime reflects a broader shift toward automation and data-driven targeting, where attacks are no longer random but strategically optimised for maximum impact.

Attacks on Critical Infrastructure and Cyber Warfare: Beyond financial crimes, cyberattacks increasingly target critical infrastructure, including power grids, transportation systems, healthcare networks, and communication channels. Such attacks may be conducted by organised criminal groups or state-sponsored actors. These incidents blur the line between cybercrime and cyber warfare, raising concerns about national security and international stability. The increasing frequency of such attacks demonstrates that cybercrime is no longer merely an economic threat but a strategic one, capable of disrupting entire societies.

Preventive Strategies: The evolving and increasingly sophisticated nature of cybercrime necessitates a comprehensive and multi-layered preventive framework. Cybersecurity cannot rely solely on technological tools; it must integrate legal mechanisms, institutional coordination, behavioural awareness, and international collaboration. Preventive strategies must therefore operate at multiple levelsindividual, organisational, national, and globalto ensure sustainable protection of digital ecosystems.

Strengthening Cybersecurity Infrastructure: A robust cybersecurity infrastructure forms the first line of defence against cyber threats. Technological safeguards must be proactive rather than reactive, focusing on prevention, early detection, and rapid response.

Multi-Factor Authentication (MFA) has become an essential security mechanism. By requiring multiple forms of verificationsuch as passwords, biometric identification, or one-time codesMFA significantly reduces the risk of unauthorised access caused by stolen or compromised credentials. As phishing and credential-harvesting attacks increase, implementing MFA across digital platforms,

especially financial and governmental systems, is critical. End-to-End Encryption (E2EE) ensures that data remains protected during transmission and storage. Encryption transforms sensitive information into coded formats that can only be accessed by authorised users. In sectors such as banking, healthcare, and e-governance, encryption safeguards personal and confidential data from interception or manipulation. However, encryption must be balanced with lawful access mechanisms to address concerns related to national security and criminal investigations.

Regular Vulnerability Assessments and Penetration Testing are equally important. Organisations should conduct systematic security audits to identify weaknesses in networks, applications, and databases. Penetration testing simulates real-world cyberattacks to evaluate system resilience. Continuous monitoring systems and intrusion detection technologies further enhance the ability to detect anomalies and respond promptly to threats.

In addition, adopting a Zero-Trust Security Model, where every access request is verified regardless of its source, can reduce the risk of insider threats and lateral movement within networks. Investment in cybersecurity infrastructure must therefore be viewed not as an optional expense but as a strategic necessity.

Enhancing User Awareness: Despite advanced technological safeguards, human error remains one of the most significant contributors to cyber incidents. Cybercriminals frequently exploit psychological vulnerabilities through phishing, social engineering, and deceptive online practices. Therefore, strengthening cybersecurity awareness is a critical preventive measure. Cybersecurity education programs should focus on recognising suspicious emails, avoiding unsafe downloads, using strong and unique passwords, and understanding privacy settings. Digital literacy initiatives must begin at the school level and extend to corporate training environments. Employees in sensitive sectors such as banking, healthcare, and public administration should receive specialised training to handle confidential data securely.

Public awareness campaigns conducted by governments and regulatory bodies can help disseminate information about emerging cyber threats. Simulation exercises, such as mock phishing tests within organisations, can improve preparedness and reduce susceptibility to real attacks. Ultimately, cultivating a culture of cybersecurity consciousness is essential to building long-term resilience.

Legislative and Policy Reforms: Effective legal frameworks are indispensable for deterring cybercriminal activities and ensuring accountability. As cybercrime evolves, legislation must be periodically updated to address new forms of digital offences, including ransomware, identity theft, AI-driven fraud, and cryptocurrency-related crimes. Stricter penalties and clearly defined offences can enhance deterrence. However, laws must also ensure due process, protection of digital rights, and proportionality in enforcement. Regulatory frameworks should mandate data protection standards, breach notification requirements, and cybersecurity compliance obligations for organisations handling sensitive information.

In addition, the establishment of specialised cybercrime courts or dedicated cybercrime investigation units can improve prosecution efficiency. Legal reforms must also address evidentiary challenges in digital investigations, including admissibility of electronic records and cross-border data access mechanisms.

A well-balanced legislative approach should integrate cybersecurity governance, privacy protection, and national security considerations within a coherent policy framework.

International Cooperation: Cybercrime is inherently transnational; attackers may operate from one jurisdiction while targeting victims in another. This borderless nature complicates investigation, extradition, and prosecution processes. Therefore, international cooperation is essential for effective cybercrime prevention and response. Cross-border information sharing between law enforcement agencies allows for timely identification of cybercriminal networks. Mutual Legal Assistance Treaties (MLATs), international conventions, and collaborative frameworks facilitate evidence collection and extradition procedures. Global organisations such as INTERPOL and regional cybersecurity alliances play a significant role in coordinating international cybercrime operations.

Moreover, harmonisation of cyber laws across countries can reduce safe havens for cybercriminals. Standardising definitions of cyber offences and establishing common procedural guidelines enhance collective capacity to combat cyber threats. Without coordinated global action, isolated national efforts may prove insufficient against organised cybercriminal networks.

Public–Private Partnerships: Given that much of the digital infrastructure is owned and operated by private entities, collaboration between governments and the private sector is crucial. Public–private partnerships (PPPs) enable information sharing, coordinated incident response, and development of cybersecurity standards.

Private technology firms often possess advanced technical expertise and real-time threat intelligence. Governments, on the other hand, provide regulatory authority and law enforcement capabilities. By combining these strengths, PPPs can enhance early warning systems, share best practices, and strengthen critical infrastructure protection.

Sector-specific information sharing and analysis centres (ISACs) have proven effective in facilitating communication among organisations facing similar threats. Additionally, encouraging private sector investment in cybersecurity innovation promotes the development of advanced defence technologies.

Adoption of Emerging Defensive Technologies: Preventive strategies must also leverage emerging

technologies such as Artificial Intelligence and Machine Learning for threat detection. AI-driven security systems can analyse large volumes of data to identify suspicious patterns and predict potential cyberattacks. Automation reduces response time and enhances system resilience.

Blockchain technology can also strengthen data integrity and authentication processes. However, technological solutions must be accompanied by ethical oversight and regulatory compliance to prevent misuse.

Conclusion: Cybercrime has emerged as one of the most significant challenges of the digital age, evolving in complexity, scale, and impact alongside rapid technological advancement. The transformation of global communication systems, financial transactions, governance mechanisms, and social interactions into digital formats has expanded opportunities not only for innovation and growth but also for criminal exploitation. As examined in this study, emerging patterns such as ransomware attacks, AI-driven phishing, IoT exploitation, cryptojacking, cloud vulnerabilities, and attacks on critical infrastructure demonstrate that cybercrime is no longer isolated or experimental in natureit is organised, commercialised, and increasingly strategic.

A key finding of this analysis is that cybercrime thrives on a combination of technological vulnerabilities and human weaknesses. While sophisticated malware and automated attack systems pose serious risks, social engineering and behavioural manipulation remain equally powerful tools for cyber offenders. This dual dimension of cyber threats underscores the need for comprehensive responses that go beyond purely technical solutions.

Preventive strategies must therefore adopt a multi-layered and integrated approach. Strengthening cybersecurity infrastructure through encryption, multi-factor authentication, and continuous monitoring is essential, but insufficient on its own. Enhancing digital literacy and cultivating a culture of cybersecurity awareness are equally critical in reducing susceptibility to cyber threats. Furthermore, legislative and policy reforms must remain adaptive to emerging technological developments, ensuring accountability while safeguarding fundamental rights and privacy.

The transnational character of cybercrime further highlights the necessity of international cooperation and public–private collaboration. No single nation or institution can effectively combat cyber threats in isolation. Coordinated global efforts, harmonised legal frameworks, and shared threat intelligence mechanisms are indispensable to addressing the borderless nature of cybercrime.

In conclusion, the fight against cybercrime demands continuous innovation, vigilance, and cooperation. As digital ecosystems continue to expand and integrate into every aspect of human life, cybersecurity must be treated as a foundational component of governance, economic stability, and national security. Only through proactive, adaptive, and collaborative strategies can societies ensure a secure and resilient digital future.

References:-

A. Books:

1. Brenner, S. W. (2010). Cybercrime: Criminal threats from cyberspace. Praeger.
2. Hadnagy, C. (2018). Social engineering: The science of human hacking (2nd ed.). Wiley.
3. McQuade, S. C. (2006). Understanding and managing cybercrime. Allyn & Bacon.
4. Wall, D. S. (2007). Cybercrime: The transformation of crime in the information age. Polity Press.
5. Yar, M. (2013). Cybercrime and society (2nd ed.). Sage Publications.

B. Journal Articles:

1. Choo, K.-K. R. (2011). The cyber threat landscape: Challenges and future research directions. Computers & Security, 30(8), 719–731. https://doi.org/10.1016/j.cose.2011.08.004
2. Wall, D. S. (2008). Cybercrime and the culture of fear: Social science fiction(s) and the production of knowledge about cybercrime. Information, Communication & Society, 11(6), 861–884. https://doi.org/10.1080/13691180802007788
3. Wall, D. S., & Williams, M. (2007). Policing diversity in the digital age: Maintaining order in virtual communities. Criminology & Criminal Justice, 7(4), 391–415. https://doi.org/10.1177/1748895807082064

C. Reports / Institutional Publications:

1. Symantec Corporation. (2019). Internet security threat report. Symantec.
2. Europol. (2023). Internet organised crime threat assessment (IOCTA). European Union Agency for Law Enforcement Cooperation.
3. INTERPOL. (2022). Global crime trend report. INTERPOL.

D. Newspaper Articles:

1. The Hindu. (2023, October 12). Rise in ransomware attacks targeting Indian healthcare sector.
2. The Indian Express. (2022, August 5). Government strengthens cybersecurity framework amid growing digital fraud cases.
3. The Times of India. (2023, March 18). Surge in phishing scams linked to cryptocurrency investments.

****

छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य में आदिवासियों की सांस्कृतिक अस्मिता का अंतर्संबंध

छबीलाल सिदार* डॉ. आँचल श्रीवास्तव**

* शोधार्थी (हिन्दी) डॉ. सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.) भारत
** सह. प्राध्यापक (हिन्दी) डॉ. सी.व्ही.रमन विश्वविद्यालय करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.) भारत

शोध सारांश – छत्तीसगढ़ का लोक साहित्य यहाँ के मूल निवासियों के जीवन दर्शन को पूर्ण रूप से समृद्ध किया हुआ है। उनकी पहचान का आधाार अर्थात् उनके 'स्व' का बोध 'जल, जंगल तथा ज़मीन' के साथ उनके गहरे जुड़ाव में निहित है। जब हम छत्तीसगढ़ी लोकगीत जैसे 'कर्मा', 'ददरिया' या 'सुआ' सुनते हैं, तो वे केवल संगीत मात्र नहीं होते, अपितु वे यहाँ के मूल निवासियों के सुख-दुख, अपने देवी-देवताओं के प्रति उनकी श्रद्धा तथा प्रकृति के प्रति उनके गहरे सम्मान को दर्शाते हैं। मूल निवासियों हेतु जंगल केवल एक प्राकृतिक संसाधन नहीं है, वरन् यह उनके पूर्वजों से मिली एक विरासत है, एक ऐसा भाव जो उनके लोक साहित्य में पाए जाने वाले गीतों और लोककथाओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रहता है। उनकी सांस्कृतिक पहचान का एक और महत्वपूर्ण पहलू 'सामूहिकता' की भावना है। जहाँ आधुनिक साहित्य अधिकांशत: व्यक्ति-केंद्रित होता है, वहीं छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य सम्पूर्ण समुदाय को अपने साथ लेकर चलता है और उसे आत्मसात करता है। उनके नृत्यों एवं गीतों में कोई एक अकेला नायक या पात्र नहीं होता, अपितु सम्पूर्ण समुदाय एक साथ, पूर्ण तालमेल के साथ थिरकता और झूमता है। यही सामूहिक भावना उनकी पहचान को अत्यधिक सुदृढ़ बनाती है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य एक ऐसे माध्यम के रूप में कार्य करता है जो आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव के विरुद्ध मूल निवासियों की परंपराओं, विशिष्ट बोलियों और जीवन जीने के अनूठे माध्यमों की रक्षा करता है। लोक साहित्य एक दर्पण का काम करता है, जिसमें इन मूल समुदायों की गौरवशाली संस्कृति और उनकी अंतरात्मा की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

शब्द कुंजी – लोक साहित्य, सांस्कृतिक अस्मिता, आदिवासी संस्कृति, लोक-कल्याण, लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोककथाओं।

प्रस्तावना – भारत की पहचान उसकी विविधा संस्कृतियों से होती है, जहाँ की कलात्मक परंपराएँ हज़ारों साल पुरानी हैं। इस धारती की लोक तथा जनजातीय कलाएँ समाज की जड़ों से गहराई से जुड़ी हुई हैं ये कलाएँ हमारे जंगलों, पहाड़ों, रीति-रिवाजों और सामुदायिक जीवन की एक सुंदर झलक प्रस्तुत करती हैं। सदियों से ये कला रूप एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते आए हैं। औपचारिक शिक्षा या किताबों के माध्यम से नहीं, अपितु केवल मौखिक परंपरा, आपसी मेल-जोल और बड़ों से सीखकर। जहाँ एक ओर आधुनिक युग और तेज़ी से बढ़ते शहरीकरण ने जनजातीय समुदायों की पारंपरिक जीवन शैली को बदल दिया है, वहीं दूसरी ओर इसने उनकी कला को वैश्विक पहचान दिलाने का एक नया अवसर भी प्रदान किया है। ऐतिहासिक रूप से जनजातीय समुदाय इस राष्ट्र के समाज का सबसे प्राचीन हिस्सा हैं ऐसे लोग जिनका कभी पहाड़ों और जंगलों पर पूर्ण आधिपत्य था। हालाँकि, समय बीतने के साथ, शिक्षित और आधुनिक समाज धीरे-धीरे उन पर हावी होता गया, इसका मुख्य कारण यह था कि आदिवासी संस्कृति लिखित के बजाय मौखिक थी। औपनिवेशिक काल से लेकर आज तक उन्हें विभिन्न नामों से पुकारा गया है, फिर भी, हमारी शिक्षा प्रणाली में अधिकांशत: उन्हें 'पिछड़ा' कहकर एक रूढ़िवादी दायरे में बाँध दिया गया है। इस सोच का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि व्यापक दुनिया जनजातीय संस्कृति की समृद्धि और गहराई को सही मायने में समझ पाने में विफल रही है तथा यहाँ तक कि जनजातीय बच्चे भी अपनी विरासत पर गर्व महसूस नहीं कर पाए हैं, जिसके वे पूरी तरह से हकदार हैं। यह लेख लोक साहित्य में आदिवासियों के सांस्कृतिक अस्मिता के अंतर्संबंध के गहन महत्व को पहचानने का एक प्रयास है।

छत्तीसगढ़ की आदिवासी संस्कृति पूरी तरह से प्रकृति और आपसी भाईचारे पर आधारित है। यहाँ के मूल समुदायों के लिए, उनका गाँव ही उनके अस्तित्व का केंद्र होता है एक ऐसी जगह जहाँ वे मिल-जुलकर और सौहार्दपूर्ण ढंग से रहते हैं तथा अपनी सदियों पुरानी परंपराओं को सहेजकर रखते हैं। उनकी अपनी अलग भाषाएँ हैं, जैसे गोंडी और हल्बी, जो उनके इतिहास को सुरक्षित रखने का काम करती हैं। आस्था के मामले में इन समुदायों का प्रकृति के साथ गहरा जुड़ाव है, वे जंगलों, पहाड़ों और नदियों को देवताओं के रूप में पूजते हैं और उनका मानना है कि एक समृद्ध जीवन सुनिश्चित करने के लिए प्रकृति की रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। उनकी खान-पान की आदतें और जीवनशैली भी इस धारती से ही गहराई से जुड़ी हुई हैं। अपने खेतों में अनाज उगाने के अलावा वे जंगलों से इकट्ठा किए गए फलों और कंद-मूल पर भी निर्भर रहते हैं यह एक ऐसी प्रथा है जो पर्यावरण की दृष्टि से भी टिकाऊ है। उनके पहनावे में चमकीले, हाथ से बने वस्त्र शामिल होते हैं, जो उनकी अनूठी पहचान की एक दृश्य अभिव्यक्ति के रूप में सामने आते हैं।

लोक साहित्य – लोक साहित्य समाज के हर वर्ग से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है। लोक साहित्य का अर्थ है 'साहित्य का वह स्वरूप, जिसमें आम

लोगों के दैनिक जीवन के अनुभव और उनकी अभिव्यक्तियाँ परिलक्षित होती हैं।' लोकसाहित्य के क्षेत्र में सन् 1990 के बाद से महत्वपूर्ण बदलाव देखे गए हैं। वैश्वीकरण के दौर ने लोक-जीवन पर सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह के प्रभाव डाले हैं तथा इन प्रभावों की वास्तविकता लोक साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार 'लोक मानव समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य-बोध, शास्त्रीय औपचारिकता और पांडित्य के अहंकार से मुक्त होता है तथा जो एक जीवंत परंपरा के निरंतर प्रवाह में विद्यमान रहता है।'

समाज में होने वाली हर हलचल लोकसाहित्य में अपना स्थान पा लेती है। यह साहित्य सामाजिक जागरण का उद्देश्य पूरा करता है और इसमें एक सुप्त समाज को जगाने की शक्ति होती है। लोकसाहित्य में सृजनात्मकता को सर्वोपरि माना जाता है, क्योंकि प्राचीन काल से लेकर आज तक इसने निरंतर लोक-कल्याण की शक्ति के रूप में अपनी भूमिका सिद्ध की है। यह बात बिल्कुल सही कही गई है कि 'कला, कला के लिए होती है' और लोकसाहित्य के संदर्भ में यह कला लोकगीतों, लोकनृत्यों, संगीत, मुहावरों और लोककथाओं जैसे विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है जहाँ विविध धर्मो और संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते हैं; परिणामस्वरूप इनमें से प्रत्येक समूह का लोकसाहित्य अपनी विशिष्ट भाषा और सांस्कृति से समृद्ध है। अनेक धार्मिक आस्थाओं जैसे हिंदू धर्म, इस्लाम, सिख धर्म और ईसाई धर्म के अस्तित्व के बावजूद उन सभी का लोकसाहित्य के साथ एक मूलभूत जुड़ाव है। समकालीन विमर्श में साहित्य की प्रमुख विषय-धाराओं, जिनमें स्त्रियाँ, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और पर्यावरण के बीच आदिवासी साहित्य लोकसाहित्य के एक विशिष्ट स्वरूप के रूप में अत्यंत प्रमुखता के साथ उभर रहा है।

आदिवासी की परिभाषा

क्रोबर के मतानुसार - 'जनजातीय लोगों की मुख्य पहचान उनकी साझा संस्कृति है। यदि किसी समूह के सदस्य रीति-रिवाजों और परंपराओं के एक समान समूह का पालन करते हैं, तो वे एक जनजाति का निर्माण करते हैं।'

रिवर्स के मतानुसार - 'जनजातीय लोगों को एक सुसंगत इकाई माना है जो लोग न केवल एक ही बोली बोलते हैं, बल्कि संकट या युद्ध के समय एक ही परिवार की तरह मिलकर काम भी करते हैं।'

डॉ. रमनिका गुप्ता का मत है कि 'प्रकृति और जनजातीय लोग एक-दूसरे के पूरक हैं। प्राकृतिक संसाधनों और अपनी मूल भाषा के बिना किसी जनजातीय व्यक्ति की पहचान की कल्पना भी नहीं की जा सकती, वास्तव में वे इस ज़मीन के मूल निवासी हैं।'

आदिवासी लोक साहित्य की विशेषताएँ- आदिवासी लोक साहित्य की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- **भाषाई विविधाता** - भारत में विभिन्न आदिवासी समुदायों की अपनी अलग-अलग भाषाएँ और बोलियाँ हैं। यह भाषाई विविधाता आदिवासी लोक साहित्य में परिलक्षित होती है, जो स्थानीय और सांस्कृतिक संदर्भों को उजागर करती है।
- **विद्रोह तथा संघर्ष की आवाजें** - आदिवासी लोक साहित्य उनके शोषण, दमन और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किए गए संघर्षों तथा विद्रोहों का एक दस्तावेज़ है। यह साहित्य साम्राज्यवादियों, ज़मींदारों और बाहरी आक्रमणकारियों के खिलाफ उनकी लड़ाइयों, साथ ही उनके ऐतिहासिक संघर्षों का गवाह है।
- **वाचिक परंपरा** - आदिवासी लोक साहित्य मुख्य रूप से मौखिक परंपरा पर आधारित होता है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी बातचीत, गीतों या कहानियों के माध्यम से आगे बढ़ता है। लिखित रूपों पर निर्भर रहने के स्थान पर यह कहानियों, गीतों, लोककथाओं और नृत्य-नाटकों के माध्यम से अनुभवों, मान्यताओं और परंपराओं को जीवित रखते हैं।
- **कृषि और पशुपालन पर आधारित जीवनशैली** - उनका लोक साहित्य ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं, कृषि गतिविधियों, पशुपालन और शिकार पर विशेष ज़ोर देता है। बदलते मौसम और खेती से जुड़ी खुशियाँ तथा कठिनाइयाँ इन सभी को उनके गीतों और कहानियों में प्रमुखता से दर्शाया गया है।
- **नैतिक और सामाजिक शिक्षा** - यह साहित्य आने वाली पीढ़ियों को नैतिक शिक्षा प्रदान करने का एक माध्यम भी है। कहानियों और गाथाओं के माध्यम से बच्चों को साहस, सत्यनिष्ठा, सूझ-बूझ और नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी जाती है।
- **सामूहिकता और सामाजिक न्याय** - आदिवासी समाज में, व्यक्ति की तुलना में समुदाय और सामूहिकता को अधिक महत्व दिया जाता है। उनका साहित्य सामूहिक प्रयास, सहयोग और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं पर विशेष ध्यान केंद्रित करता है।
- **धार्मिक आस्थाएँ और पारंपरिक मान्यताएँ** - उनके साहित्य में देवी-देवताओं, पूर्वजों की पूजा, प्रकृति की शक्तियों और विशिष्ट धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तृत चित्रण मिलता है। यह उनकी आधयात्मिक और धार्मिक पहचान को संरक्षित रखने का कार्य करता है।
- **सरलता और स्वाभाविकता** - आदिवासी साहित्य की भाषा और शैली अत्यंत सरल, सहज और स्वाभाविक होती है। यह किसी भी प्रकार की जटिलता या भारी-भरकम साहित्यिक अलंकरणों के बोझ से मुक्त होती है, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य भावनाओं को स्पष्ट और सीधो तौर पर व्यक्त करना होता है।
- **प्रकृति के साथ गहरा जुड़ाव** - आदिवासी जीवन और साहित्य प्रकृति के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं। उनके साहित्य में जानवरों, पक्षियों, पेड़ों, पौधों, नदियों और पहाड़ों का विस्तृत चित्रण मिलता है ये ऐसे तत्व हैं जो उनके जीवन का एक अभिन्न अंग हैं।

आदिवासी लोक साहित्य का महत्व - वर्तमान युग की पहचान वैचारिक और तकनीकी क्रांतियों से होती है, जिन्होंने लोकसाहित्य को उसके पारंपरिक दायरे से मुक्त करके उसे एक 'आधुनिक और परिवर्तनकारी' स्वरूप प्रदान किया है। जहाँ एक ओर वैश्वीकरण और बाज़ारीकरण ने समाज में एक सूचना क्रांति का सूत्रपात किया है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण लोकसाहित्य में निहित पारंपरिक 'सामूहिकता' में गिरावट आई है। आज लोकसाहित्य केवल 'ग्राम्य साहित्य' तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि अब यह ग्रामीण और शहरी दोनों ही परिवेशों की क्षेत्रीय बारीकियों को अपने में समेटे हुए है। आज अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और अनूठे स्वरूप के बल पर यह एक प्रकार के 'जातीय साहित्य' के रूप में उभर रहा है जो दलित और आदिवासी विमर्शों के रूप में मुखर हो रहा है और इस प्रकार इसकी प्रासंगिकता तथा लोकप्रियता को और भी अधिाक बढ़ा रहा है।

सांस्कृतिक अस्मिता के निर्माण में योगदान - ये परंपराएँ केवल उल्लास के पर्व ही नहीं हैं, अपितु वे बुनियादी स्तंभ हैं जो किसी समाज की सांस्कृतिक

पहचान को आकार देते हैं। यह तथ्य कि ये परंपराएँ जनजातीय लोकगीतों, वेशभूषा और लोककथाओं में जीवंत रूप में आज भी विद्यमान हैं, यह दर्शाता है कि संस्कृति कोई स्थिर इकाई नहीं है, वरन् एक निरंतर प्रवाहित होने वाली सामाजिक प्रक्रिया है। आधुनिक युग में ऐसे समय में जब सरकार पर्यटन, शिक्षा और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से इन्हें संरक्षित करने का प्रयास कर रही है, ये परंपराएँ अपनी खोई हुई पहचान को पुनर्जीवित करने और समाज में अपनी जड़ों को पुन: स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरी हैं।

आधुनिकता एवं सांस्कृतिक परिवर्तन

- **आधुनिकता तथा परंपरा के मध्य मतभेद–** आज छत्तीसगढ़ की संस्कृति एक चौराहे पर खड़ी है एक तरफ सदियों पुरानी परंपराएँ हैं, तो दूसरी तरफ तेज़ी से बदलता आधुनिक समाज। जो लोकगीत और लोकनृत्य कभी हमारी पहचान हुआ करते थे, वे अब आधुनिक मनोरंजन और फिल्मी धुनों के गहरे प्रभाव में आ रहे हैं। इस बदलाव के परिणामस्वरूप वे रीति-रिवाज और परंपराएँ, जिनका पालन कभी पूरी पवित्रता और श्रद्धा के साथ किया जाता था, धीरे-धीरे व्यावसायिक आयोजनों या महज़ दिखावटी समारोहों में बदलते जा रहे हैं। वास्तव में कहें, तो आधुनिकता के प्रभाव में आकर हमारी सांस्कृतिक जड़ें कमज़ोर पड़ने लगी हैं।
- **प्रौद्योगिकी एवं शहरीकरण का प्रभाव –** शहरीकरण और आधुनिक शिक्षा ने हमारी सोच को मौलिक रूप से बदल दिया है। शहरों में बढ़ते अकेलेपन के एहसास के कारण, सामूहिक जीवन और सामुदायिक जुड़ाव की वह भावना जो ग्रामीण जीवन की खास पहचान थी अब वह कम होती जा रही है। जहाँ एक ओर शिक्षा ने निस्संदेह जागरूकता बढ़ाई है, वहीं इसने एक बड़ी समस्या को भी जन्म दिया है युवा पीढ़ी अपनी ही परंपराओं को 'पिछड़ेपन' की निशानी के तौर पर देखने लगी है और परिणामस्वरूप उनसे दूरी बना रही है। जहाँ तक प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया की बात है, हालाँकि इन्होंने हमारी कला को दुनिया के सामने लाने का माध्यम बनाया है, लेकिन इंटरनेट पर प्रख्यात होने की होड़ ने लोगों को लोककला के असली स्वरूप से छेड़छाड़ करने पर मजबूर कर दिया है, जिससे उसकी मौलिकता खत्म होती जा रही है।
- **संरक्षण की रणनीतियाँ और आगे का रास्ता –** सबसे बड़ी चुनौती यह सुनिश्चित करना है कि हमारी लोक संस्कृति केवल किताबों या संग्रहालयों तक ही सीमित न रह जाए। इसे बचाने के लिए हमें इसे लोगों के रोज़मर्रा के जीवन का हिस्सा बनाना होगा। इस दिशा में यह ज़रूरी है कि बच्चों को स्कूल के पाठ्यक्रम में ही अपनी संस्कृति के बारे में पढ़ाया जाए और पारंपरिक कला रूपों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए डिजिटल रूप से सुरक्षित किया जाए। इसके अतिरिक्त हमारी कला रूपों और सांस्कृतिक उत्सवों को पर्यटन से जोड़कर हम कलाकारों के लिए रोज़गार के अवसर पैदा कर सकते हैं और साथ ही युवाओं में भी इनके प्रति रुचि जगा सकते हैं। यदि हम प्रौद्योगिकी और परंपरा के बीच सही संतुलन बना पाए, तो आने वाले वर्षों में हमारी संस्कृति नि:संदेह और भी अधिक मज़बूत होकर उभरेगी।

सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण – छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एक अत्यंत महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण कार्य के रूप में उभरा है, क्योंकि वैश्वीकरण, शहरीकरण और बाज़ार की ताकतों के दबाव के कारण पारंपरिक कला रूप और त्योहार जैसे 'फाग' गीत, 'कर्मा' नृत्य और 'भोजली' धीरे-धीरे लुप्त होने की कगार पर पहुँच रहे हैं। जहाँ एक ओर आधुनिक तकनीक और 'सोशल मीडिया' ने इन लोक कलाओं को बढ़ावा देने के माध्यम के रूप में कार्य किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने इनके पारंपरिक प्रस्तुतीकरण के मूल स्वरूप को विकृत करने का जोखिम भी पैदा किया है। भविष्य के लिए इन विरासत संपत्तियों को सुरक्षित रखने हेतु, यह शोध-पत्र 'नवोन्मेशी संरक्षण रणनीतियों' पर ज़ोर देता है यह लोक परंपराओं के अनिवार्य डिजिटल अभिलेखीकरण और उन्हें शैक्षिक पाठ्यक्रमों में शामिल करने की वकालत करता है, जिससे नई पीढ़ी अपनी जड़ों से पुन: जुड़ सके। अंतत: भविष्य की दिशा इस बात पर निर्भर करती है कि राज्य सरकार लोक संस्कृति को केवल एक प्रदर्शनकारी तमाशे के रूप में न देखकर, बल्कि एक महत्वपूर्ण 'सांस्कृतिक संसाधन' के रूप में मान्यता दे और डिजिटल मंचों तथा पुरस्कारों के माध्यम से युवाओं को इस समृद्ध विरासत के संरक्षक के रूप में आगे आने के लिए प्रोत्साहित करें।

निष्कर्ष – छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य न केवल इस क्षेत्र के आदिवासी समाज की सांस्कृतिक पहचान का संरक्षक है, बल्कि उनके अस्तित्व का एक अभिन्न अंग भी है। यह साहित्य 'जल, जंगल और ज़मीन' के साथ उनके गहरे जुड़ाव को व्यक्त करता है एक ऐसा लोकाचार जिसमें प्रकृति को केवल एक संसाधान के रूप में नहीं, बल्कि एक पूजनीय विरासत के रूप में देखा जाता है। लोकगीतों और लोककथाओं के माध्यम से यह मुख्य तथ्य उभरकर सामने आता है कि इन आदिवासी समुदायों की पहचान उनकी 'सामूहिकता' की भावना में निहित है एक ऐसी सामूहिक भावना जिसमें समाज को एकजुट रखने की शक्ति है, भले ही आज का युग व्यक्तिवाद का हो। हालाँकि, वैश्वीकरण और शहरीकरण के बढ़ते प्रभाव ने इन पारंपरिक कला रूपों और जीवन मूल्यों के सामने गंभीर चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, जिसके कारण युवा पीढ़ी अपनी मूल जड़ों से दूर होती जा रही है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य एक ऐसे दर्पण का काम करता है जो आदिवासी लोगों के संघर्षों, आस्था और गौरवशाली इतिहास को दर्शाता है। केवल इस विरासत की सुरक्षा करके डिजिटल दस्तावेज़ीकरण, स्थानीय संस्कृति को शैक्षिक पाठ्यक्रम में शामिल करने और नवीन दृष्टिकोणों के माध्यम से ही इन आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार इस अद्वितीय पहचान की अखंडता को बनाए रखना लोक साहित्य के संरक्षण को केवल एक अकादमिक अभ्यास ही नहीं, बल्कि एक गहन सामाजिक और सांस्कृतिक दायित्व बना देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उप्रेती, डॉ. हरिशचंद्र. 'भारतीय जनजातियाँ' संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर : पृष्ठ संख्या 01.
2. गुप्ता, डॉ. रमणिका. आदिवासी कौन, राधाकृष्ण : पृष्ठ संख्या 27.
3. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य के संदर्भ में डॉ. पीसीलाल यादव का रचनात्मक अवदान (2017) पी-एच.डी. शोध प्रबंध, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) : पृष्ठ संख्या 28
4. मंडल, इंद्रजीत (2021) छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ- Ilkogretim Online - Elementary Education Online, 2021; Vol 20 (2) : पृष्ठ संख्या 3978-3996.
5. चौबे रवीन्द्र (2021) छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति. Double-blind, Peer-reviewed, Quarterly, Multidiciplinary and Multilingual Research Journal, SHODH SAMAGAM,

Volume-04, Issue-02 : पृष्ठ संख्या 1713-1719.

6. हजारा, डॉ. अयान (2022) छत्तीसगढ़ में आदिवासी जीवन : एक विश्लेषण. International Journal of All Research Education and Scientific Methods 10(2) : पृष्ठ संख्या 1572-75.
7. शर्मा, डॉ. प्रियंका (2022) जनजातीय साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का एक अवलोकन. International Journal of Creative Research Thoughts, 10(11) : पृष्ठ संख्या 208-211.
8. श्रीवास्तव डॉ. मधुलिका 2023 गोंड़ जनजाति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का एक अध्ययन. International Journal of Advanced Research In Science, Communication and Technology, 3, (1) : पृष्ठ संख्या 741.748.
9. ताम्रकार, राजन (2024) छत्तीसगढ़ के लोकगीत संस्कृति और संचार के संरक्षक के रूप में. Innovation and Integrative Research Center Journal, 2(11) : पृष्ठ संख्या 136-150.
10. पटेल, ज्योतिमा और सिंह संजना (2024) छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक संरचना का ऐतिहासिक अनुशीलन : परंपरा, धर्म, लोककला और समकालीन चुनौतियां. *ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts, 5(6) :* पृष्ठ संख्या 3022-3028.
11. निनामा, डॉ. केशरीमल (2025) लोक साहित्य में आदिवासी जन जीवन- International Journal of Creative Research Thoughts, 10(1) : पृष्ठ संख्या 99-103.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

बीकानेर जिले की सांस्कृतिक धरोहर और पर्यटन विकास : स्थापत्य, लोककला एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण

राजेश स्वामी* डॉ. नरेंद्र सिंह राणावत**

* पीएचडी शोधार्थी (इतिहास) भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
** शोध पर्यवेक्षक व सहायक आचार्य (इतिहास) भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – राजस्थान का बीकानेर जिला अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, स्थापत्य वैभव, लोककला, मरुस्थलीय जीवनशैली तथा ऐतिहासिक परंपराओं के कारण भारतीय पर्यटन मानचित्र पर विशिष्ट स्थान रखता है। प्रस्तुत शोध पत्र में बीकानेर जिले की सांस्कृतिक धरोहर और पर्यटन विकास के मध्य अंतर्संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि बीकानेर की स्थापत्य कला, चित्रकला, भित्तिचित्र परंपरा, लोकसंस्कृति, ऊँट-शिल्प, हस्तकला तथा धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों ने पर्यटन उद्योग को किस प्रकार सुदृढ़ किया है। जूनागढ़ दुर्ग, लालगढ़ महल, देवीकुंड सागर, गजनेर महल, करणीमाता मंदिर तथा बीकानेर शैली की लघुचित्रकला जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों ने इस क्षेत्र को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन केंद्र के रूप में स्थापित किया है।

शोध पत्र में पर्यटन विकास के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों का भी समग्र विश्लेषण किया गया है। पर्यटन उद्योग ने स्थानीय हस्तशिल्प, होटल व्यवसाय, परिवहन, लोककलाओं तथा पारंपरिक उद्योगों को नई ऊर्जा प्रदान की हैजिससे रोजगार सृजन और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को गति मिली है। साथ हीअध्ययन में पर्यटन विकास की चुनौतियों जैसे आधारभूत संरचना की कमी, संरक्षण संबंधी समस्याएँ, पर्यावरणीय दबाव, सीमित प्रचार-प्रसार तथा स्थानीय समुदाय की कम भागीदारी का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है। शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यदि सांस्कृतिक धरोहरों का वैज्ञानिक संरक्षण, डिजिटल प्रचार-प्रसार, सतत् पर्यटन नीति तथा स्थानीय समुदाय आधारित पर्यटन मॉडल को प्रभावी रूप से लागू किया जाएतो बीकानेर भविष्य में वैश्विक सांस्कृतिक पर्यटन का एक सशक्त केंद्र बन सकता है। यह शोध पत्र बीकानेर जिले की सांस्कृतिक विरासत और पर्यटन विकास के मध्य गहरे संबंधों को शोधात्मक दृष्टि से स्पष्ट करता है।

शब्द कुंजी – सांस्कृतिक धरोहर, पर्यटन विकास, स्थापत्य कला, लोककला, भित्तिचित्र परंपरा, आर्थिक प्रभाव, मरुस्थलीय पर्यटन।

प्रस्तावना– राजस्थान की सांस्कृतिक भू-दृष्टि में बीकानेर एक ऐसे ऐतिहासिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में प्रतिष्ठित हैजिसने मरुस्थलीय सभ्यता, राजपूत स्थापत्य, लोकसंस्कृति और व्यापारिक वैभव के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को गहनता प्रदान की है। उत्तर-पश्चिमी राजस्थान के शुष्क एवं अर्धशुष्क भू-भाग में स्थित यह नगर केवल भौगोलिक दृष्टि से मरुभूमि का प्रतिनिधि क्षेत्र नहीं है बल्कि यह सामंती शक्ति-संरचना, धार्मिक चेतना, कलात्मक अभिव्यक्ति तथा सांस्कृतिक बहुलता का जीवंत अभिलेख भी है। पंद्रहवीं शताब्दी में राठौड़ शासक राव बीका द्वारा स्थापित यह नगर शीघ्र ही राजनैतिक, सामरिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केंद्र बन गया।

बीकानेर राज्य की भौगोलिक स्थिति ने इसे मध्य एशिया, सिंध और पश्चिमी भारत के व्यापारिक मार्गों से जोड़ाजिसके परिणामस्वरूप यहाँ सांस्कृतिक आदान-प्रदान की बहुआयामी प्रक्रिया विकसित हुई। इसी ऐतिहासिक अंत:क्रिया ने बीकानेर को स्थापत्य, चित्रकला, लोककला तथा धार्मिक परंपराओं की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध सांस्कृतिक इकाई के रूप में विकसित किया।बीकानेर की सांस्कृतिक धरोहर का सबसे महत्तवपूर्ण आयाम इसकी स्थापत्य परंपरा हैजो राजपूत और मुगल वास्तुकला के अंतर्संबंधों का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। जूनागढ़ दुर्ग, लालगढ़ महल, देवीकुंड सागर, गजनेर महल तथा शिवबाड़ी मंदिर जैसी संरचनाएँ उस समय की राजनीतिक वैधता, सामाजिक स्तरीकरण तथा सांस्कृतिक वर्चस्व की प्रतीकात्मक संरचनाएँ भी हैं।

स्थापत्य इतिहासकार हरमन गोएट्ज ने बीकानेर स्थापत्य को 'मरुस्थलीय सामंती वैभव और मुगल सौंदर्यशास्त्र के संगम' की संज्ञा प्रदान की है। 'जूनागढ़ दुर्ग की स्थापत्य संरचना में सैन्य सुरक्षा और कलात्मकता का जो समन्वय दिखाई देता हैवह राजस्थान के अन्य दुर्गों से इसे भिन्न बनाता है। महलों की आंतरिक संरचनाओं में दर्पण कला, स्वर्ण अलंकरण, भित्तिचित्र और नक्काशीदार स्तंभों का प्रयोग तत्कालीन दरबारी संस्कृति की भव्यता और सांस्कृतिक अभिरुचि को व्यक्त करता है।'

बीकानेर की सांस्कृतिक चेतना का दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम इसकी लोककला और चित्रकला परंपरा है। बीकानेर शैली की लघुचित्रकला राजस्थानी चित्र परंपरा की अत्यंत विकसित शाखा मानी जाती है जिसमें मुगल चित्रकला की सूक्ष्मता तथा राजस्थानी रंग-संयोजन का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इस शैली में धार्मिक आख्यानों, कृष्णलीला, रागमाला, नायक-नायिका भेद तथा दरबारी जीवन का सूक्ष्म और सांकेतिक चित्रण किया गया है। बीकानेर शैली की चित्रकला भावात्मक सूक्ष्मता और रंग-प्रतीकवाद की दृष्टि से भारतीय लघुचित्र परंपरा का अत्यंत परिपक्व रूप है।

इसके अतिरिक्त उस्ता कला, आलागीला कला तथा ऊँट-आधारित

हस्तशिल्प ने बीकानेर की लोककलात्मक परंपरा को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। विशेष रूप से उस्ता कलाकारों द्वारा ऊँट की खाल पर की जाने वाली स्वर्ण चित्रकारी ने मरुस्थलीय लोकसंस्कृति को कलात्मक गरिमा प्रदान की।समकालीन वैश्विक अर्थव्यवस्था में पर्यटन उद्योग को सांस्कृतिक पूँजी के आर्थिक रूपांतरण का प्रमुख माध्यम माना जाता है। सांस्कृतिक पर्यटन उन क्षेत्रों के लिए विशेष महत्तव रखता है जहाँ ऐतिहासिक धरोहरें, लोककलाएँ और सांस्कृतिक विविधता विद्यमान होती हैं। बीकानेर की सांस्कृतिक विरासत ने इस क्षेत्र को राजस्थान के प्रमुख पर्यटन केंद्रों में सम्मिलित कर दिया है। मरुस्थलीय पर्यटन, ऊँट उत्सव, धार्मिक मेले, लोकसंगीत, हस्तशिल्प बाजार तथा विरासत पर्यटन ने बीकानेर की अर्थव्यवस्था को नई संरचनात्मक दिशा प्रदान की है।

सांस्कृतिक पर्यटन स्थानीय अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष और प्रेरित आर्थिक प्रभाव उत्पन्न करता हैजिससे रोजगार, निवेश और सेवा क्षेत्र में वृद्धि होती है।बीकानेर में भी पर्यटन उद्योग ने होटल व्यवसाय, परिवहन सेवाओं, लोककला, हस्तशिल्प और स्थानीय व्यापार को आर्थिक रूप से सक्रिय किया है।सांस्कृतिक पर्यटन के इस विस्तार के साथ अनेक संरचनात्मक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। ऐतिहासिक धरोहरों का क्षरण, आधारभूत संरचना की कमी, पर्यावरणीय दबाव, अनियोजित शहरीकरण तथा सीमित संरक्षण नीतियाँ बीकानेर की सांस्कृतिक विरासत के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर रही हैं।

अनेक विरासत भवन समय, प्रदूषण और पर्यटक दबाव के कारण संरचनात्मक क्षति का सामना कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त मरुस्थलीय क्षेत्र होने के कारण जल यदि सांस्कृतिक पर्यटन को संरक्षण-आधारित नीति से नहीं जोड़ा गयातो पर्यटन स्वयं सांस्कृतिक धरोहरों के विनाश का माध्यम बन सकता है।अत: सतत् पर्यटन विकास की अवधारणा बीकानेर जैसे सांस्कृतिक क्षेत्रों के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाती है।

बीकानेर की स्थापत्य धरोहर और पर्यटन- बीकानेर की स्थापत्य धरोहर को केवल दृश्य वैभव या राजसी निर्माण परंपरा के रूप में नहीं देखा जा सकताबल्कि यह मरुस्थलीय भूगोल, सामरिक आवश्यकता, राजपूती सत्ता संरचना, मुगल कलात्मक प्रभाव और स्थानीय शिल्पबोध के दीर्घ ऐतिहासिक समन्वय का परिणाम है। अध्याय में जूनागढ़ किला, लालगढ़ पैलेस, गजनेर महल, रामपुरिया हवेलियाँ और देवीकुंड सागर को बीकानेर की स्थापत्य पहचान के प्रमुख केंद्रों के रूप में रेखांकित किया गया है। ये स्थल पर्यटक अनुभव को इतिहासबोध, सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक स्मृति से जोड़ने वाले जीवंत सांस्कृतिक प्रतीक हैं। बीकानेर की स्थापत्य संरचनाएँ इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि मरुस्थलीय क्षेत्रों में निर्मित भवन केवल निवास या सुरक्षा के लिए नहींबल्कि सत्ताा की दृश्य अभिव्यक्ति, जलवायु अनुकूलन और सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में भी निर्मित किए जाते थे।

जूनागढ़ दुर्ग बीकानेर की स्थापत्य चेतना का सर्वाधिक प्रौढ़ उदाहरण है। इसकी प्राचीरें, प्रवेशद्वार, महल, कक्ष, चित्रित छतें और आंतरिक अलंकरण युद्धनीति और सौंदर्यशास्त्र के समन्वित प्रतिमान को प्रस्तुत करते हैं। दुर्ग का स्थापत्य इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि मध्यकालीन राजस्थान में किला केवल सैन्य शक्ति का प्रतीक नहीं था बल्कि वह प्रशासन, राजकीय अनुष्ठान, सांस्कृतिक संरक्षण और कला विकास का भी केंद्र था। दुर्ग के भीतर के महलों में काँच, स्वर्ण अलंकरण, भित्तिाचित्र और सूक्ष्म नक्काशी का प्रयोग बीकानेर दरबार की सौंदर्याभिरुचि और कलात्मक संरक्षण नीति को व्यक्त करता है।

लालगढ़ महल और गजनेर महल बीकानेर के स्थापत्य विकास में उत्तार मध्यकालीन तथा औपनिवेशिक संक्रमण के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। लालगढ़ महल में राजपूत, मुगल और यूरोपीय स्थापत्य तत्वों का संयोजन उस समय की बदलती राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करता है। लाल बलुआ पत्थर, मेहराब, झरोखे, स्तंभ और आंतरिक दरबारी सज्जा इस महल को शाही निवास से अधिक सांस्कृतिक प्रदर्शन स्थल में रूपांतरित करते हैं। गजनेर महल में जल, वन्यजीव, शिकार परंपरा और राजसी अवकाश संस्कृति का समन्वय दिखाई देता है। यह धरोहर आज विरासत पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे स्थल ऐतिहासिक उपयोग से आधुनिक पर्यटन उपयोग की ओर स्थानांतरित होकर आर्थिक संसाधन भी बनते हैं।

देवीकुंड सागर, शिवबाड़ी मंदिर, कोलायत और बीकानेर की हवेलियाँ स्थापत्य धरोहर को धार्मिक चेतना और लोक जीवन से जोड़ती हैं। देवीकुंड की छतरियाँ शाही स्मृति, मृत्यु संस्कार और स्थापत्य प्रतीकवाद का ऐसा संगम हैं जिसमें लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर दोनों का कलात्मक उपयोग मिलता है। रामपुरिया हवेलियों तथा अन्य शहरी हवेलियों में झरोखे, जालियाँ, आंतरिक आँगन और भित्तिचित्र मरुस्थलीय नगर संस्कृति की सामाजिक संरचना को प्रकट करते हैं। इस दृष्टि से बीकानेर का स्थापत्य पर्यटन शहरी इतिहास, राजवंशीय स्मृति, धार्मिक विश्वास और स्थानीय शिल्पकला के बहुस्तरीय संसार से परिचित कराता है।

बीकानेर की लोककला और चित्रकला परंपरा- बीकानेर की लोककला और चित्रकला परंपरा को राजस्थान की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का विशिष्ट आयाम माना जाता है। यहाँ की चित्रकला केवल दरबारी मनोरंजन अथवा राजसी सौंदर्याभिरुचि की उपज नहीं हैबल्कि यह धार्मिक आख्यानों, लोकविश्वासों, ग्रामीण जीवन, सामाजिक अनुष्ठानों और राजनीतिक संरक्षण के संयुक्त विकास से निर्मित सांस्कृतिक अभिलेख है। अध्याय में बीकानेर शैली की लघुचित्रकला को राजस्थानी चित्रकला की महत्तवपूर्ण शाखा के रूप में प्रस्तुत किया गया हैजिसमें कृष्णलीला, राग रागिनी, बारहमासा, राजसी जीवन, शिकार दृश्य और स्त्री-पुरुष आकृतियों के माध्यम से तत्कालीन सांस्कृतिक मानस को रूपायित किया गया है।

बीकानेर शैली की चित्रकला में मुगल सूक्ष्मता, दक्कनी रंग संवेदना और स्थानीय राजस्थानी प्रतीक विधान का अद्भुत मिश्रण दिखाई देता है। इसमें रेखांकन की महीनता, रंगों की नियंत्रित चमक, नारी आकृति की कोमलता, राजसी व्यक्तित्व की गरिमा और धार्मिक प्रसंगों की भावात्मकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'बीकानेर पेंटिंग मारवाड़ पद्धति की एक शाखा प्रतीत होती है। यद्यपि इस स्कूल के पेंटरों ने मारवाड़ और मुगल तकनीकों का सफलतापूर्वक समावेश किया है। बीकानेर रियासत के शासकों के दक्षिण भारत में रहने से दक्कन शैली का भी इस पर प्रभाव परिलक्षित है।'

'यहाँ के पेंटरों ने 'दरबारी जीवन' (Court Life) की भव्यता और औपचारिकताओं, शिकार दृश्यों, नारी जीवन (Life od the barren), महाकाव्यों और पौराणिक कथाओं को अपनी तूलिका से सुन्दरता से प्रदर्शित किया है।' शोध पत्रों में भी बीकानेर लघुचित्र परंपरा को उसकी सूक्ष्मता, सममितीय विन्यास और रंग योजना के कारण विशिष्ट माना गया है। उपलब्ध स्रोतों में यह उल्लेख मिलता है कि बीकानेर की लघुचित्र परंपरा ने स्थानीय दरबारी संस्कृति को धार्मिक और लौकिक दोनों स्तरों पर अभिव्यक्त

किया।

उस्ता कला बीकानेर की कलात्मक पहचान का सबसे विशिष्ट रूप है। यह कला दीवारों, छतों, लकड़ी, कागज और विशेष रूप से ऊँट की खाल पर स्वर्ण अलंकरण तथा उभारदार चित्रांकन के रूप में विकसित हुई। उस्ता कला के विकास एवं प्रतिष्ठा में उस्ता हामिद, रफकुद्दीन तथा अयूब अली उस्ता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस्ता हामिद ने राजमहलों में विविध कलात्मक आकृतियों का सृजन किया, जबकि रफकुद्दीन ने महाराजा अनूप सिंह के काल मेंरसिकप्रियापर आधारित अनेक चित्रों का निर्माण किया। अयूब अली उस्ता ने लक्ष्मी–नारायण मंदिर के उत्कृष्ट चित्रांकन द्वारा अपनी कलात्मक प्रतिभा का परिचय दिया।

बीकानेर की भित्तिचित्र परंपरा भी विशेष महत्तव रखती है क्योंकि यह कला को राजदरबार से निकालकर जनजीवन तक ले जाती है। हवेलियों, मंदिरों और पुराने घरों की दीवारों पर बने चित्रों में प्राकृतिक दृश्य, धार्मिक कथाएँ, विवाह, लोकपर्व, ग्रामीण गतिविधियाँ और सामाजिक जीवन के दृश्य अंकित मिलते हैं। पर्यटन की दृष्टि से यह परंपरा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पर्यटक केवल स्मारक नहीं देखतेबल्कि रंग, रेखा, शिल्प, लोककथा और सांस्कृतिक स्मृति से निर्मित एक संपूर्ण दृश्य संसार का अनुभव करते हैं।इससे स्पष्ट होता है कि बीकानेर की चित्रकला केवल अभिजन कला नहीं थीबल्कि सामुदायिक स्मृति और लोक अनुभव की दृश्य अभिव्यक्ति भी थी।

पर्यटन विकास और आर्थिक प्रभाव– बीकानेर में पर्यटन विकास को क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था की संरचना से पृथक करके नहीं समझा जा सकता। पर्यटन यहाँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों स्तरों पर आर्थिक सक्रियता उत्पन्न करता है। प्रत्यक्ष स्तर पर होटल, अतिथि गृह, परिवहन, गाइड सेवा, ऊँट सफारी, स्थानीय बाजार और भोजनालय लाभान्वित होते हैं। अप्रत्यक्ष स्तर पर हस्तशिल्प, ऊनी उत्पाद, लोककला, पशुपालन आधारित उत्पाद, सांस्कृतिक आयोजन और ग्रामीण सेवाएँ पर्यटन से जुड़ती हैं। 'पर्यटन विकास के लिये अति आवश्यक सेवाओं जैसे सुगम पहुँचएयरपोर्ट टर्मिनल, रेलवे स्टेशन, होटल व पूरक आवास सुविधा और रेस्टोरेंट व बार, स्पोर्ट्स सुविधाएँ और मनोरंजन की भी आवश्यकता होती है।'

पर्यटन के आर्थिक प्रभाव का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष रोजगार सृजन है। 'सुव्यवस्थित विकसित पर्यटन संरचना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में रोजगार के अवसर प्रदान करती है। एक होटल निर्माण से, विशेषज्ञों के अनुसार प्रति कमरे से तीन व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध होता है। जबकि सहायक उद्योगों और व्यवसायों की वृद्धि से प्रत्यक्ष रोजगार की तुलना में 9 गुना से अधिक व्यक्तियों को अप्रत्यक्ष रूप में रोजगार भी मिलता है।'

बीकानेर में पर्यटन ने युवाओं, महिलाओं, कारीगरों, कलाकारों, परिवहन संचालकों और छोटे व्यापारियों के लिए आय के विविध स्रोत उपलब्ध कराए हैं। ऊँट उत्सव, धार्मिक मेले, मरुस्थलीय शिविर और सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ मौसमी रोजगार को भी बढ़ाती हैं। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार बीकानेर में 2024 में देशी पर्यटकों की संख्या लगभग तीन लाख से अधिक और विदेशी पर्यटकों की संख्या लगभग अड़तीस हजार से अधिक बताई गई हैजिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव का संकेत मिलता है।

बीकानेर की अर्थव्यवस्था में हस्तशिल्प और लोककला की भूमिका पर्यटन के माध्यम से और अधिक सुदृढ़ हुई है। ऊनी शिल्प, दरी, कालीन, कंबल, कृत्रिम आभूषण, ऊँट उत्पाद, उस्ता कला और स्थानीय खाद्य उत्पाद पर्यटकों की खरीदारी का महत्तवपूर्ण हिस्सा बनते हैं। मरूनगरी में खरीददारी के लिये प्रमुख शोरूम में प्राचीन सोवेनियर शॉप, जूनागढ़, अभिव्यक्ति (उरमूल ट्रस्ट हैंडीक्राफ्ट सेल्स आउटलेट) केन्द्रीय बस स्टैंड के समीप, जैमिनी कलाकार आर्ट्स, खादी शॉप के.ई.एम. रोड, राजस्थान आर्ट गैलेरी, शिव बाड़ी रोड, राजस्थान हैंडीक्राफ्ट लालगढ़ पैलेस, स्वामी आर्ट्स कीर्ति स्तम्भ, आदि प्रमुख हैं।

राजस्थान पर्यटन विकास पर उपलब्ध शोध भी यह बताता है कि पर्यटन राज्य की अर्थव्यवस्था में रोजगार, अवसंरचना और स्थानीय व्यवसाय के विस्तार का प्रमुख माध्यम है।डिजिटल प्रचार–प्रसार, ऑनलाइन बुकिंग, सोशल मीडिया और दृश्य माध्यमों ने बीकानेर के पर्यटन को नए आयाम प्रदान किए हैं। पर्यटन अब केवल भौतिक गमन का विषय नहीं रहाबल्कि छवि निर्माण, डिजिटल ब्रांडिंग और सांस्कृतिक प्रस्तुति का भी विषय बन चुका है। बीकानेर की स्थापत्य धरोहर, ऊँट उत्सव, उस्ता कला, लोक संगीत और मरुस्थलीय जीवन यदि संगठित डिजिटल माध्यमों से प्रस्तुत किए जाएतो यह क्षेत्र वैश्विक सांस्कृतिक पर्यटन में अधिक प्रभावशाली स्थान बना सकता है। शोध साहित्य में पर्यटन विपणन और सांस्कृतिक विरासत ब्रांडिंग को स्थानीय अर्थव्यवस्था और सामुदायिक गर्व से जोड़ा गया है।

पर्यटन विकास की चुनौतियाँ– बीकानेर के पर्यटन विकास की पहली गंभीर चुनौती आधारभूत संरचना से संबंधित है। विभिन्न पर्यटन स्थलों तक पहुँचने वाली सड़कें, संकेत व्यवस्था, सार्वजनिक परिवहन, स्वच्छता, पेयजल, पार्किंग और प्राथमिक चिकित्सा सुविधाएँ अपेक्षित स्तर पर विकसित नहीं हैं। मरुस्थलीय क्षेत्र होने के कारण दूरस्थ स्थलों तक पहुँच स्वयं एक चुनौतीपूर्ण अनुभव बन जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि पर्यटन स्थलों पर सड़क, जल, बिजली, सुरक्षा और अन्य सार्वजनिक सुविधाओं की आवश्यकता पर्यटकों की बढ़ती संख्या के साथ और अधिक महत्तवपूर्ण हो जाती है।

दूसरी बड़ी चुनौती धरोहर संरक्षण की है। बीकानेर की स्थापत्य धरोहरें, हवेलियाँ, छतरियाँ, महल और भित्तिचित्र समय, मौसम, प्रदूषण, अतिक्रमण, अनियोजित उपयोग और पर्यटक दबाव के कारण क्षरण का सामना कर रहे हैं। विरासत पर्यटन पर उपलब्ध शोध यह स्वीकार करता है कि यदि संरक्षण और पर्यटन प्रबंधन में संतुलन न होतो पर्यटन स्वयं धरोहर स्थलों पर दबाव उत्पन्न कर सकता है। इसलिए बीकानेर में वैज्ञानिक संरक्षण, नियमित रख–रखाव, विशेषज्ञ पुनरुद्धार और स्थानीय निगरानी की आवश्यकता है।

तीसरी चुनौती पर्यावरणीय दबाव से संबंधित है। बीकानेर मरुस्थलीय पारिस्थितिकी वाला क्षेत्र है जहाँ जल संसाधन सीमित हैं और प्राकृतिक संतुलन अत्यंत संवेदनशील है। पर्यटन गतिविधियों के विस्तार से जल उपयोग, कचरा, प्लास्टिक, वाहन प्रदूषण और अनियंत्रित निर्माण जैसी समस्याएँ बढ़ सकती हैं। मरुस्थलीय पर्यटन, ऊँट सफारी, शिविर पर्यटन और सांस्कृतिक आयोजनों को यदि नियंत्रित पर्यावरणीय नीति से न जोड़ा जाएतो प्राकृतिक संसाधनों पर अनावश्यक दबाव उत्पन्न होगा। इस कारण सतत् पर्यटन, इको पर्यटन और नियंत्रित वहन क्षमता की अवधारणा यहाँ विशेष रूप से आवश्यक हो जाती है।

चौथी चुनौती स्थानीय समुदाय की अपर्याप्त भागीदारी है। पर्यटन से आर्थिक लाभ तभी व्यापक सामाजिक विकास में बदल सकता है जब स्थानीय कलाकार, कारीगर, ग्रामीण परिवार, महिलाएँ और युवा पर्यटन

प्रबंधन, उत्पाद निर्माण, विपणन, मार्गदर्शन और आतिथ्य सेवाओं में सक्रिय रूप से जुड़े हों। शोध पत्र में स्पष्ट किया गया है कि ग्रामीण परिवार ऊँट सफारी, लोकसंगीत, पारंपरिक भोजन और हस्तशिल्प के माध्यम से पर्यटकों से जुड़ रहे हैंजिससे आय और रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैंकिंतु यह सहभागिता अभी व्यापक संस्थागत रूप नहीं ले सकी है। अत: प्रशिक्षण, सहकारी विपणन, स्थानीय उत्पाद ब्रांडिंग और समुदाय आधारित पर्यटन मॉडल अत्यंत आवश्यक हैं।

सतत् पर्यटन और भविष्य की संभावनाएँ – बीकानेर में सतत् पर्यटन विकास की संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं क्योंकि यहाँ सांस्कृतिक धरोहर, धार्मिक पर्यटन, मरुस्थलीय भू दृश्य, लोककला, हस्तशिल्प और ग्रामीण जीवन जैसे विविध आकर्षण एक साथ उपलब्ध हैं। सतत् पर्यटन की दृष्टि से बीकानेर को केवल किला, महल और मंदिर आधारित पर्यटन तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिएबल्कि इसे सांस्कृतिक परिपथ, ग्रामीण अनुभव, लोककला कार्यशाला, हस्तशिल्प ग्राम, मरुस्थलीय इको पर्यटन और विरासत आवास के समेकित मॉडल के रूप में विकसित किया जा सकता है।

बीकानेर के भविष्य का पर्यटन संरक्षण केंद्रित होना चाहिए। इसका अर्थ है कि जूनागढ़, लालगढ़, देवीकुंड, रामपुरिया हवेलियाँ, शिवबाड़ी, कोलायत और उस्ता कला जैसी धरोहरों को केवल दर्शनीय वस्तु न मानकर जीवित सांस्कृतिक संसाधन के रूप में विकसित किया जाए। पर्यटक को केवल देखने का अवसर नहींबल्कि समझने, संवाद करने, सीखने और स्थानीय जीवन से जुड़ने का अवसर मिलना चाहिए। इसके लिए बहुभाषी सूचना पट्ट, डिजिटल ऑडियो गाइड, संग्रहालयीय प्रस्तुति, व्याख्या केंद्र और प्रशिक्षित स्थानीय गाइडों की व्यवस्था आवश्यक है।

सतत् पर्यटन में पर्यावरणीय संतुलन प्रमुख आधार होना चाहिए। मरुस्थलीय क्षेत्रों में वाहन नियंत्रित पर्यटन, जल संरक्षण, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, प्लास्टिक नियंत्रण, स्थानीय सामग्री आधारित निर्माण और ऊर्जा दक्षता को पर्यटन नीति से जोड़ना आवश्यक है। शोध में नियंत्रित निर्माण, पर्यावरण अनुकूल परिवहन, स्थानीय समुदाय की सहभागिता, डिजिटल प्रचार, ऑनलाइन सूचना प्रणाली, बहुभाषी सूचना पट्ट, प्रशिक्षित गाइड, सुरक्षा व्यवस्था और आपदा प्रबंधन सुविधाओं के विकास को दीर्घकालिक पर्यटन विकास की शर्त बताया गया है।

भविष्य में बीकानेर सांस्कृतिक पर्यटन, धार्मिक पर्यटन, साहसिक पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन और रचनात्मक पर्यटन का संयुक्त केंद्र बन सकता है। ऊँट उत्सव, लोकनृत्य, उस्ता कला, चित्रकला, हस्तशिल्प, पारंपरिक भोजन और मरु शिविरों को योजनाबद्ध रूप से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित किया जाए तो बीकानेर का पर्यटन जयपुर, उदयपुर और जैसलमेर की प्रतिस्पर्धी धारा में अधिक प्रभावी रूप से उभर सकता है। करणी माता मंदिर के उन्नयन हेतु बजटीय प्रावधान जैसे प्रयास बीकानेर के धार्मिक पर्यटन को आधारभूत सुविधा की दृष्टि से मजबूत कर सकते हैं।वर्तमान सरकारी निवेश और धार्मिक पर्यटन स्थलों के उन्नयन से भी यह सकारात्मक संकेत मिलता है कि राजस्थान में विरासत और धार्मिक पर्यटन को नई प्राथमिकता दी जा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गोएट्ज,हरमन : द आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट, ऑक्सफोर्ड : ब्रूनो कैसिरर, 1950
2. माथुर,लक्ष्मण प्रसाद : फोर्ट्स एंड स्ट्रॉन्गहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, इंटर–इंडिया पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली।
3. शर्मा, एन.एस.यशर्मा, एम.एल.: राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2006 पृ. 326
4. गहलोत, जे.एस.: राजस्थानकृए सोशियो–इकोनोमिक स्टडी, राजस्थान साहित्य मंदिर, सोजती गेट, जोधपुर, 1981,पृ. 148
5. ट्यूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, ट्यूरिज्म मैनेजमेंट, टी.एम.एस. 2, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा, पृ. 17–18
6. वही,पृ. 17
7. गोस्वामी, प्रेमचंद : राजस्थान संस्कृति, कला एवं साहित्य, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2006, पृ. 37
8. नीरज, जयसिंह; शर्मा भगवती : राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2000, पृ. 42
9. व्यास, डॉ. राजेशकुमार : पर्यटन उद्‌भव एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ. 7

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Revisiting Indian Knowledge System in Contemporary Contexts

Dr. Radhashyam Dey*

***Asst. Prof. (English) Yogoda Satsanga Mahavidyalaya (Affiliated to Ranchi University) Jagannathpur, P.O-Dhurwa, Ranchi (Jharkhand) INDIA**

Abstract: The Indian Knowledge System (IKS) represents a holistic, integrated and indigenous framework of learning and living that has evolved over millennia. The IKS offers a unique blend of theoretical depth and practical wisdom. It is embedded in the Vedas, Upanisads, Sastras, Purans, epics, classical literature, folk traditions, and oral narratives, and continues to shape India's cultural and intellectual ethos. In the current global scenario, there is a renewed interest in traditional knowledge systems to address modern challenges such as ecological crisis, mental health, educational reforms, ethical leadership, and cultural identity. The National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes the inclusion of IKS into mainstream education to promote critical thinking, holistic development, and self-reliance rooted in cultural values.The core of IKS lies in its emphasis on holistic understanding, experiential learning, and the integration of knowledge with contemporary contexts. Contemporary challenges are in areas like Health and Wellness, Education, Sustainable Development, Environmental Conservation. *Panchatantra* is ripe with entertaining stories loved with timeless teachings and moral values.*Arthashastra* is arguably the greatest treatise ever written on political, military, and economic strategies by a shrewd man popularly referred to as the Indian Machiavelli. Bharata's*Natyashastra* considered tobe the fifth *Veda* propagates righteousness, good reputation, long life, well being and increase in mental ability. My paper is all about how*Panchatantra, Arthashastra* and *Natyashastra* effectively deal with some of the contemporary contexts.
Keywords:IKS, contemporary contexts, theoretical depth, practical wisdom, self-reliance.

Introduction - Indian Knowledge System is marginalized due to lack of understanding and appreciation. This leads to lack of interest, preservation and promotion. The West for their own selfish interest forced our people to treat our indigenous knowledge as inferior and unscientific. Thus our youth is oblivions of our own glorious past. We do not know that a vast treasure of knowledge lies in our Vedas, Puranas and Shastras. The Britishers stopped publishing our classics and even did not allow our children to read Sanskrit in the school curriculum. After our independence a revival of the classical learning has been started. The real revival has taken place through National Education Policy 2020. I will not sound out of place if I say the Western perspectives often dominate our literature, culture and inclusive attitude. Our indigenous knowledge system is interdisciplinary and this teaches us that life and living believe in co-existence. IKS needs to be incorporated into modern curricula in a way that is relevant and engaging for students. Here lies the importance of my paper thatexplores how the ancient classical texts like *PanchatantraArthashastra* and the *Natyashastra* are still relevant in this era of science and technology.

Panchatantra is the book of tales rich in timeless wisdom and morals. Its aim was to educate the princes in the art of administration. Thanks to the foresight of the authorr that *Panchatantra* has become immortal. It is used as a guide to life. Through talking animals and cunning tricksters, it teaches essential values like friendship, resilience, and the importance of intelligence over brute. Here lies the beauty of Indian Knowledge System which is timeless. Wisdom is our goal of education. We want an education which enlightens us and *Panchatantra* does. It also makes us sensible to the animals, birds and other creatures making us sensitive to ecology. It also tells us how to tell stories and how to captivate the attention of the readers or the listeners. So it has permanent literary value. These stories shape character and decision making. The originator Vishnu Sharma was a great scholar and teacher. Teachers are man-makers and Vishnu Sharma justifies it. The author through *Panchatantra* deals with the art of teaching pedagogy. As legend goes he taught successfully the sons of a king who had lack of intelligence and leadership. He took on the challenge and devised a unique teaching method. He intertwined moral and political lessons into engaging fables featuring animals as their central characters. He divided these stories into five "tantras" or

sections. Vishnu Sharma's "tantras" teach the writers how they should plan their chapterisation. Each section of *Panchatantra* is meant to be used as a way to conduct our own way of life. All the five Section if to be told in capsule-form are meant to be used as guide to navigate the complexities of life. These chapters are: (i) Loss of Friends, (ii) Gaining Friends, (iii) Conflict and War, (iv) Loss of Gains, and (v) Reckless Actions.

Our rich tradition has always been looked down upon by the colonizers. That was their well thought of plan. They treated us as inferior, superstitions, lazy and dull. Remember our *Panchatantra* fables have travelled across cultures, even seemingly influencing some of the world's most famous collections of tales such as Aesop's *Fables*, *The Arabian Nights* and various European folktales. Even today, the *Panchatantra* is evolving. Its fables have been adapted into contemporary children's literature, animated films and interactive digital experiences.

About *Panchatantra*one of the renowned translators Arthur William Ryder writes:

> One Vishnusharman, shrewdly gleaning
> All worldly wisdom's inner meaning,
> In these five books the charm compresses
> Of all such books the world possesses
> (*Panchatantra*7).

Ryder also writes:

> The *Panchatantra* is a niti-shastra or text book of'niti'. The word niti means roughly the wise conduct of life. Western civilization must endure certain shame in realizing that no precise equivalent of the term is found in English, French, Latin or Greek(*Panchatantra*9).

This is 'niti', "the harmonious development of the power of man, a life in which security, prosperity, resolute action, friendship, and good learning are so combined as to produce joy. Joy comes when we believe in coexistence whereas the Western philosophy is all about anthropocentric living. The West believes that man has every right to exploit anything and everything under the sun for his own enjoyment. This selfish attitude has resulted in ecological disaster. The result is natural calamities and serious diseases like Covid 19.

Chanakya, also known as Kautilya and Vishnu Gupta was an Indian philosopher, statesman, royal advisor and a master of political strategist. Probably he was a man of fourth century BCE. *Arthashastra*/*Neetishastra* (*Chanakyaniti*) though is very old can be applied to situations in the modern day world. Translated as the science of gaining wealth, *Arthashastra* is a treatise on state governance written with in idea that the able government will lead to a generation of wealth for in the people of the nation. This text has become a source of national pride, rivaling work by philosophers in the West. It is a record of Chanakya's philosophies on taxation, foreign policy, punishment for crimes, defense and war. This work promotes the idea of a ruler to use any means possible to hold on to his power, from trickery and surveillance to even espionage and propaganda. *Arthashastra* has two main objectives. Firstly it seeks to show how the ruler should protect his territory and secondly it shows how a territory should be acquired. Hence*Arthashastra* deals with varied themes like training of the prince for duties of rulership, the question of theappointment of ministers, administration of justice, punishment for various criminal offences, measures that can be adopted by a state in its relations with foreign states, means of taking a fort etc.

L.N. Rangarajan, a diplomat whose work on the *Arthashastra* has argued that in so far as the nature of human beings remained the same and states behaved in the manner as they always have done, Kautilya has relevance. K.M. Panikkar also opines that Kautilya is relevant even in today for his doctrines of 'sama-dama-danda-bheda'. Kautilyain *Arthashastra* says, "What produces unfavourable results is bad policy. That is a policy to be judged by the results it produces, and diplomacy is not concerned with ideals but with achieving practical results to the state."The quotation of Kautilya is ever relevant:"When the advantages to be derived from peace and war are equal one should prefer peace for disadvantages such as loss of power and wealth are ever attendant upon war. Similarly, if the advantage to be derived from neutrality and war are equal, one should prefer neutrality" (*Arthashastra* 97).

The value of *Arthashastra* as a piece of literature study also makes it universal and permanent. It has references to the art of performances like dance, music, musical instruments etc. Personality-studies remain as fresh as ever. *Arthasastra* is also a very good book of this field too:

> He who isself – sufficient; he who is fond ofhonours; he who is intolerant of his rival's honour; he who is esteemed low; he who is of a fiery spirit; he who is foolhardy as well as he who is not content with what he has been enjoying – all these come under the group of haughty persons (42).

Chanakya also writes:

> He who is impoverished; he who has lost much wealth; he who is niggardly; he who is addicted to evil propensities; and he who is engaged in dangerous transactions – all these constitute the group of ambitious persons (42).

Today, the figure of Chanakya and the endurance of his teachings can be seen through the heavy adaption of his life – story in plays and many immensely popular television series, proving that his life is an area of interest not only to scholars but to the masses as well. He was one of the greatest; perhaps the most cunning, political masterminds to have ever existed and his philosophy on Indian polity, economics, and statecraft will always hold relevance in the people's minds. Kautilyatalks about the ideals of a welfare state. Here the state controls and contributes of the resources, benefits and wealth of the

state. In the present day world, the challenges to national security are no different from the challenges that concerned the Mauryan Empire. Kautilya advocated the participation of the subjects in national security. In our own time we see how our fishermen work as watchmen of our country. Mention may be made that our shepherds reported the security forces about the presence of some Pak infiltrators, and the consequences was the Kargil War. Thus we may fairly statethat the solution to many of our present day problems in political, economic, social and security spheres are all dealt with in this ancient book called *Arthashastra*.

The *Natyashastra*, a text on performing arts is the main source of dramatic theory in classical India. Bharata Muni codified the rules and codes for drama and dance in this compilation. Bharata adopted a universal approach and affirmed that art universalizes emotions making them as a tool of appeal to the spectators. In reality *Natyashastra* has relevance more for practitioners than for academicians. Bharata has clearly stated that the theatrical experiments (proyoga) and the ideas relevant to the time should be added to the Shastra. The 'Rasa' theory developed by Bharata is extremely relevant till date, as many theatre personalities in the contemporary world are inspired by these 'rasas' and use these sentiments for their plays. At present, theatre is competing with all of the popular mass – culture and media, including television, video, music and radio. The content consumption is also different materially and economically. How Bharata's*Natyashastra* is still relevant can well be explained if we understand andanalyse it in relation to Keats' Negative Capability; Coleridge's "willing suspension of disbelief" and Eliot's Unification of Sensibility. All these British concepts gained currencyworldwide because of the language politics though Bharata's *Natyashastra* encompasses all these three and many more, remains unknown and unappreciated because we have failed to place it in the world literary forum. Even *Natyashastra*is more inclusive and exhaustive than that of the much hyped *Poetics*. The 'sahridaya' reader is none but he who "willingly suspends his disbelief."Bharata's actor soaked in the 'rasa', the sentiment that he wants to arouse in the spectators is all that we talk about Eliot's "Unification of Sensibility.""Rasa" is a creative force too, as well as a force of arthetics. Keats' Negative Capabilitycan be well explained with Bharata's creative force of "rasa."Bharata argues that the desired 'bhava' can be roused in the audience only when the dramatist and the actors experience the same feeling negating their own consciousness.

Life is a drama. So drama is our all-timefavourite. Bharata's*Natyashastra*details, with all the aspects of performance including movements, emotional expression, theatre architecture, dance, music etc. This inclusiveness has made*Natyashastra*relevant even today while Aristotle's *Poetics* concentrated on the analysis of Greek tragedies. M. Winternitz says, "No country except India and no language except Sanskrit can boast of a passion so ancient or vulnerable" (54).

Bharata refers to 'bhavas", the imitations of emotions that the actors perform. He argues that there are eight-principal'rasas' love, pity, anger, disgust, heroism, awe, terror and comedy. Each 'rasa' experienced by the audience is associated with a specific 'bhava' portrayed on the stage. For example, in order for the audience to experience 'sringara' (erotic) rasa, the playwright, actors and musicians work together to portray the 'bhava' called 'rati' (love). We can boast of our own language and literature when John Dewey admits the absence of a word like 'rasa' in English language. 'Rasa' envisages complete continuity of the poetic process beginning with the creative experience of the poet, through the birth of his poem, to the aesthetic experience of the reader. So *Natyashastra*as a theoretical, creative and critical text remains immortal and universal. Bharata's 'rasa' theory comprises a significant contribution on understanding the exquisiterapport between the play and its audience, something akin to Aristotle's Catharsis theory. Seturamanwrites:

> In the subconscious and unconscious regions there are always lying dormant various types of emotio – motive complexes. When through artistic creation a purely universal emotional fear, amour, etc., are projected in the mind they become affiliated to this type of emotio – motive complexes and this mutual affiliation or appreciation transforms the presented artistic universal into artistic joy or 'Rasa'. It is for this reason that in experiencing artistic joy there is a Kinship and identity among all enjoyers (194).

Bharata says that 'rasa' is achieved as a result of functioning of the (i) 'vibhava', the objective condition causing an emotion (a lover on the stage), (ii) the 'anubhavas' (bodily gestures/expression) by which the emotion is expressed and (iii) 'vyabhicharibhavas' (secondary emotion and sensations) which feed the dominant emotion. 'Vibhavas' include persons (characters) as well as the circumstances that cause or excite the emotions. A love-lorn woman on the stage as a character in a play or a dancer expressing by gestures the feelings and sensations of love-lorn woman exciting a response in the spectator is an example. To get the art experience, the artist has to be disinterested, objective and capable of contemplating life experiences without being affected by them. What art communicates is the emotion of an emotion. There is the substratum of peace, delight and in the process what is particular and individual gets universalized. There is the freedom from involvement in life emotions of pain and pleasure and its pathological consequences caused by selfishness, struggle, personal loss or gain etc. Art takes us beyond the dualities of life to a state of delight against the background of peace. This critical approach of the *Natyashastra* to art makes it immortal.

Natyashastra is increasingly utilized not just for classical Indian dance, but as frame work for physical

theatre, actor training and emotional intelligence in acting globally. Modern actors use the Rasa-Bhava theory to understand emotional intelligence. Rasa and Bhava help performers evoke specific emotions in the audience. This text provides a detailed system of hand gestures, body postures and eye movements that are integrated into contemporary dance theatre and physical theatre. The *Natyashastra*is taught in global universities and studied in departments of English, theatre, and cultural anthropology to provide alternative, non-western parameters for performance analysis. *Natyashastra* is all the time relevant because drama is ever enjoyed and one of the important aspects of *Natyashastra* talks about how the audience derives the aesthetic pleasure from stage performance. *Natyashastra* enumerates eleven elements of drama including rasa (sentiment), bhava (emotion), abhinaya (acting), Dharmi (modes of representation), viritti (style of expression), pravtti (local usages), Siddhi (succes of production), Swara (note), atodya (musical instruments), Gana (song), and lastly Ranga (theatre). This wide range of *Natyashastra*is also anotherfactor that makes this great book ever relevant.*Natyashastra*can well be studied as a book on body language. The modern world has become a global village because of the development in the field of technology. Technology has also made the entire world a business centre. The business executives understand the psychology of their coworkers with the help of body language. So *Natyashastra* as tool to understand body language makes this book very contemporary.

Conclusion: My paper with the analytical study of *Panchatantra*, *Arthashastra* and *Natyashastra*has explored the multidimensional aspects of Indian Knowledge System– its historical development, lived practices, transmission across generations, and future potential in a globalized Knowledge economy. Thesetextshave been revisited and reinterpreted in the Indian knowledge traditions in contemporary contexts. My discussion has highlighted the relevance of our indigenous knowledge in pedagogy, governance, aesthetics, writing literature and sustainable living. *Natyashastra*is an organic, living and classical text in aesthetics and performing arts and not a fixed set of ideas and instructions. Our indigenous knowledge system lacks recognition in the Western World. This skepticism or dismissal in modern academic and scientific communities is to be well replied by our scholars exposing them to our vast treasure of art, literature culture and scientific advancement. The IKS should be incorporated into the modern curricula so that present generation becomes aware of the rich cultural past of India which was intentionally downplayed by the colonizers. By addressing contemporary challenges and leveraging global relevance, the IKS contributes to a more inclusive sustainable and enlightened world. My analysis has also highlighted that the IKS believes in interdisciplinary approaches and integrates science, philosophy, and spirituality inspiring new research areas. The Indian Government has also taken initiatives to promote IKS including the establishment of the Indian Knowledge System Division at the Ministry of Education. Traditional Indian knowledge requires specialized translators so that right knowledge comes to the present generation. India has suffered from language loss and it has immensely affected our cultural heritage. Too much of so called urbanization and modernization has also harmed our indigenous knowledge system.Our indigenous knowledge system can be made known to the world community through cultural exchange. Sri Aurobindo is one of the great critical and creative minds of the world literature. Aurobindo's synthetic vision has not only recovered for us the salient principles of ancient Indian aesthetics but their potentialities too. This is the time that we need to integrate IKS with modern knowledge systems for a sustainable growth of the mankind. The knowledge, wisdom and practical contents impregnated in *Panchatantra*, *Arthashastra* and the *Natyashastra* effectively challenge the modern contexts with a loud and clear voice to the world community that the Indian Knowledge System is holistic and sustainable.

References:-

1. Chari, V.K. *SanskritCriticism*. MotilalBanarsidass, 1992.
2. De, S.K. *Studies in the History of Sanskrit Poetics*. Luzac Company, 1951.
3. Devy, G.N.(Ed.) *Indian Literary Criticism: Theory and Interpretation*. Orient Black Swan, 2012.
4. House, Humphry. *Aristotle's Poetics*. Kalyani Publishers, 1988.
5. Kapoor, Kapil. *Text and Interpretation: The Indian Tradition.* D.K. Printworld, 2005.
6. Kautilya, *Arthashastra*. FP Classics, 2022.
7. Ryder, Arthur William. *Panchatantra*. FP Classics, 2022.
8. Seturaman, V.S. *Indian Aesthetics*. Trinity Press, 2015.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

A Legal Critical Analysis of Wildlife Protection Act Towards the Environment System in India

Dr. Bhagat Singh Thakur*

***Assistant Professor, Government law college, Rajgarh (M.P.) INDIA**

Abstract: Wildlife Protection Act, 1972 plays a significant role in maintaining environmental balance and conserving biodiversity in India. The Act was enacted with the objective of protecting wild animals, birds, plants, and their natural habitats from exploitation and extinction. The present study titled "A Legal Critical Analysis of Wildlife Protection Act towards the Environmental System in India" aims to critically examine the legal effectiveness of the Act, its contribution to environmental protection, and the challenges faced in its implementation. The research focuses on the major provisions of the Act, important amendments, judicial interpretations, and governmental policies related to wildlife conservation.

The study highlights that the Wildlife Protection Act has contributed substantially to the establishment of national parks, wildlife sanctuaries, and protected areas, thereby supporting ecological balance and sustainable environmental development. However, issues such as illegal hunting, deforestation, habitat destruction, human-wildlife conflict, and weak enforcement mechanisms continue to hinder its effective implementation. The research further analyzes the need for stronger legal frameworks and improved administrative measures to address emerging environmental concerns. It concludes that effective implementation of the Act, public awareness, community participation, and stricter enforcement of environmental laws are essential for ensuring long-term wildlife conservation and environmental sustainability in India. This how under this research I clearly defined my work toward the wildlife deal with a environment.

Introduction - Wildlife Protection is one of the most important environmental laws in India. It was enacted by the Government of India to protect wild animals, birds, plants, and forests from illegal hunting, trade, and destruction. Wildlife plays a vital role in maintaining ecological balance and protecting biodiversity. A healthy environment depends on the proper conservation of wildlife and natural habitats. Due to increasing industrialization, urbanization, deforestation, and human activities, many species of animals and plants are becoming endangered. Therefore, strong legal measures are necessary for the protection of wildlife and the environment.

The Wildlife Protection Act, 1972 provides legal protection to endangered species and establishes national parks, wildlife sanctuaries, and protected areas across the country. It also imposes punishments for illegal hunting, poaching, and wildlife trade. Over the years, the Act has been amended several times to strengthen wildlife conservation and improve environmental protection measures.

This research titled "A Legal Critical Analysis of Wildlife Protection Act towards the Environmental System in India" aims to study the effectiveness of the Act in preserving environmental balance and biodiversity. The study also examines the challenges faced in the implementation of the law, such as weak enforcement, habitat destruction, and human-wildlife conflicts. The research further analyzes the role of the judiciary, government policies, and public participation in wildlife conservation. The study highlights the importance of strict implementation of environmental laws for achieving sustainable development and ecological protection in India.

Meaning of Wildlife Protection: Wildlife protection means the conservation, preservation, and proper management of wild animals, birds, plants, and their natural habitats. It aims to protect wildlife from dangers such as illegal hunting, poaching, deforestation, pollution, habitat destruction, and extinction. Wildlife protection helps maintain ecological balance and biodiversity, which are essential for a healthy environment and sustainable development.

Wildlife protection also includes creating national parks, wildlife sanctuaries, and protected areas, along with enforcing laws and policies for the safety of endangered species and forests.

Definitions of Wildlife Protection

1. **General Definition:** Wildlife protection refers to the legal and environmental measures taken to conserve wild animals, birds, plants, and their habitats from exploitation

and destruction.

2. **Legal Definition:** Under Wildlife Protection Act, 1972, wildlife includes any animal, aquatic or land vegetation that forms part of any habitat. The Act provides protection to wild animals, birds, and plants through legal regulations and conservation measures.

3. **Environmental Definition:** Wildlife protection is the process of maintaining and restoring wildlife populations and their ecosystems in order to preserve biodiversity and environmental balance.

4. **Dictionary Definition:** According to environmental studies, wildlife protection means safeguarding wild living organisms and their habitats through conservation laws, awareness, and sustainable practices.

History Wildlife Protection in India Before Independences: Wildlife protection in India before independence was mainly based on traditional beliefs, religious values, and the policies of different rulers. In ancient India, forests and animals were considered sacred, and many communities protected nature as part of their culture and religion. Animals such as cows, elephants, snakes, and peacocks were respected and worshipped in different parts of the country. Ancient Indian texts like the Vedas, Upanishads, and Arthashastra emphasized the importance of protecting forests, animals, and natural resources.

During the rule of Emperor Ashoka in the Mauryan period, several measures were taken for the protection of wildlife and forests. Ashoka issued edicts that prohibited unnecessary killing of animals and encouraged compassion toward living beings. Forest areas and certain species of animals were protected under his administration.

In the medieval period, some kings and rulers also maintained forests and hunting reserves. However, hunting was often considered a royal sport among kings and nobles. During the Mughal period, emperors like Akbar showed interest in nature and wildlife, but large-scale hunting by royal families continued.

Under British rule, the condition of wildlife in India deteriorated significantly. The British administration encouraged hunting for recreation and trade. Many wild animals such as tigers, lions, elephants, and rhinoceroses were killed in large numbers. Forests were cleared for agriculture, railways, and commercial purposes, leading to habitat destruction. Although some forest laws like the Indian Forest Act, 1927 were enacted during British rule, their main purpose was to control forest resources for economic benefits rather than wildlife conservation.

By the end of the colonial period, the rapid decline in wildlife populations created awareness about the need for legal protection and conservation measures in India. This ultimately led to the development of modern wildlife protection laws after independence, including the Wildlife Protection Act, 1972.

Wildlife Protection in India After Independence: After independence, India recognized the urgent need to protect wildlife and preserve environmental balance. Rapid industrialization, deforestation, population growth, illegal hunting, and habitat destruction caused a serious decline in the population of many wild animals and birds. To address these issues, the Government of India introduced various laws, policies, and conservation programs for wildlife protection.

One of the earliest steps taken after independence was the enactment of the Indian Forest Act, 1927 and the strengthening of forest administration to regulate the use of forest resources. Later, the Government enacted the Wildlife Protection Act, 1972, which became the most important legislation for wildlife conservation in India. The main objective of this Act was to provide protection to wild animals, birds, plants, and their habitats. The Act prohibited illegal hunting, poaching, and trade in wildlife products and established strict punishments for wildlife crimes.

Under this Act, several national parks, wildlife sanctuaries, biosphere reserves, and protected areas were established across the country to conserve endangered species and maintain ecological balance. Conservation projects such as Project Tiger launched in 1973, Project Elephant, and crocodile conservation programs played a major role in increasing wildlife populations in India.

The Indian judiciary has also contributed significantly to wildlife protection through various landmark judgments related to environmental conservation and forest protection. In addition, constitutional provisions such as Article 48A and Article 51A(g) of the Constitution of India emphasize the duty of the State and citizens to protect the environment and wildlife.

India also became a member of several international environmental agreements and organizations for wildlife conservation, including International Union for Conservation of Nature and Convention on International Trade in Endangered Species of Wild Fauna and Flora.

Despite these efforts, challenges such as illegal wildlife trade, habitat loss, climate change, and human-wildlife conflict still continue. Therefore, effective implementation of laws, public awareness, and community participation remain essential for successful wildlife conservation and environmental sustainability in India.

Wildlife and Cultural Importance in Today's Scenario in India: Wildlife has great cultural, environmental, and social importance in present-day India. Indian culture has always respected nature, animals, forests, and biodiversity. Many animals and birds are connected with Indian traditions, religions, festivals, and beliefs. For example, animals such as the tiger, elephant, cow, snake, monkey, and peacock are considered sacred or culturally significant in different communities. The peacock, which is the national bird of India, and the tiger, the national animal, symbolize India's rich wildlife heritage.

In today's scenario, wildlife plays an important role in

maintaining ecological balance and supporting environmental sustainability. Forests and wildlife help in controlling climate change, maintaining the food chain, conserving water resources, and protecting biodiversity. Wildlife tourism has also become an important source of income and employment in many states of India. National parks and wildlife sanctuaries such as Jim Corbett National Park, Kaziranga National Park, and Ranthambore National Park attract tourists from across the world and contribute to local economic development.

At the cultural level, many tribal and rural communities still follow traditional practices that support forest and wildlife conservation. Environmental awareness campaigns, wildlife documentaries, and social media have increased public interest in protecting animals and forests. Schools, colleges, and non-governmental organizations also promote wildlife conservation through educational programs and activities. However, modern challenges such as urbanization, industrial development, deforestation, pollution, illegal wildlife trade, and human-wildlife conflict are threatening wildlife in India. Climate change and shrinking forest areas have also affected many endangered species. Therefore, strong implementation of the Wildlife Protection Act, 1972, public participation, and sustainable development policies are necessary to preserve India's wildlife and cultural heritage for future generations.

Wildlife Protection Provisions Related to Environment in India: India has adopted several constitutional, legal, and policy provisions for the protection of wildlife and the environment. These provisions aim to conserve biodiversity, maintain ecological balance, and protect endangered species and natural habitats.

1. Constitutional Provisions: The Constitution of India provides important environmental and wildlife protection provisions:

1. Article 48A directs the State to protect and improve the environment and safeguard forests and wildlife.

2. Article 51A(g) makes it a fundamental duty of every citizen to protect and improve the natural environment, including forests, lakes, rivers, and wildlife.

3. Article 21 (Right to Life) has been interpreted by the judiciary to include the right to live in a clean and healthy environment.

2. Wildlife Protection Act, 1972: This is the primary legislation for wildlife conservation in India. Important provisions include:

1. Protection of wild animals, birds, and plants.
2. Prohibition of hunting of endangered species.
3. Establishment of national parks, wildlife sanctuaries, conservation reserves, and community reserves.
4. Regulation of trade and commerce in wildlife products.
5. Punishment and penalties for poaching and illegal wildlife trade.
6. Protection of endangered species listed under different Schedules of the Act.

3. Environment (Protection) Act, 1986: This Act was enacted after the Bhopal Gas Tragedy to provide comprehensive protection to the environment. It empowers the Central Government to:

1. Protect and improve environmental quality.
2. Control pollution and hazardous substances.
3. Restrict industrial activities near ecologically sensitive areas.
4. Protect biodiversity and ecosystems.

4. Forest Conservation Act, 1980: This Act aims to prevent deforestation and regulate the use of forest land for non-forest purposes. It helps in protecting wildlife habitats and maintaining ecological balance.

5. Protected Areas and Conservation Programs: India has established:

1. National Parks
2. Wildlife Sanctuaries
3. Biosphere Reserves
4. Tiger Reserves
5. Elephant Corridors

Programs such as Project Tiger and Project Elephant help in conserving endangered species and preserving biodiversity.

6. Judicial Role in Wildlife Protection: The Indian judiciary has played a major role in environmental and wildlife conservation. The Supreme Court and High Courts have passed several judgments to prevent illegal mining, deforestation, and wildlife exploitation. Courts have also emphasized sustainable development and ecological protection.

7. International Environmental Agreements: India is a member of several international conventions related to wildlife and environmental protection, including:

1. Convention on International Trade in Endangered Species of Wild Fauna and Flora
2. International Union for Conservation of Nature
3. Convention on Biological Diversity

These provisions collectively strengthen wildlife conservation and environmental protection in India. However, effective implementation, public awareness, and community participation are necessary for achieving long-term ecological sustainability.

Critical Examination of Wildlife Protection Measures

Although India has strong environmental laws, several challenges continue to affect wildlife conservation:

1. Weak Enforcement of Laws: Many wildlife crimes such as poaching, illegal hunting, and smuggling of animal products continue due to corruption, lack of monitoring, and weak implementation of laws.

2. Habitat Destruction: Rapid urbanization, industrial projects, mining, and deforestation are destroying forests and natural habitats of wildlife. This has reduced biodiversity and increased environmental imbalance.

3. Human-Wildlife Conflict: Expansion of human settlements near forest areas has increased conflicts

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

between humans and wild animals. Crop damage, attacks on humans, and killing of animals are common problems in several states.

4. **Illegal Wildlife Trade:** Illegal trade in animal skins, ivory, horns, and other wildlife products remains a major issue despite strict legal prohibitions.

5. **Climate Change and Pollution:** Climate change, water pollution, and environmental degradation have negatively affected wildlife populations and ecosystems.

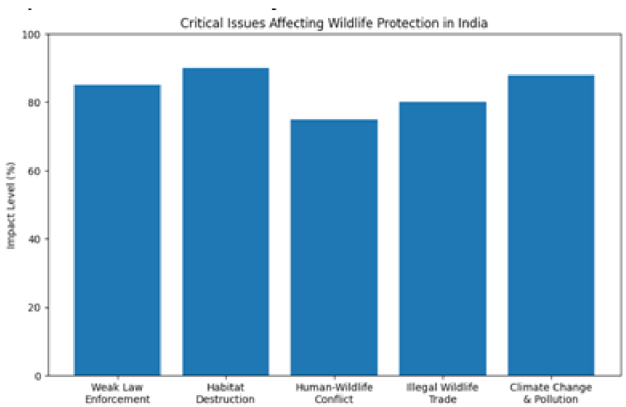

Graph 1: Index chart report given by BBC report in the year of 2022 on the bases of environment offence

Conclusion: Wildlife Protection Act, 1972 has played a significant role in protecting wildlife and maintaining environmental balance in India. The Act provides legal protection to wild animals, birds, plants, and their natural habitats, and it has contributed greatly to the establishment of national parks, wildlife sanctuaries, biosphere reserves, and conservation programs. Through constitutional provisions, judicial support, and government initiatives such as Project Tiger and Project Elephant, India has made important progress in wildlife conservation and environmental safeguarding.

The study shows that wildlife protection is closely connected with environmental sustainability because forests and wildlife help maintain biodiversity, ecological balance, climate stability, and natural resources. Wildlife also has cultural, social, and economic importance in India, especially through tourism and traditional conservation practices followed by local communities.

However, despite strong legal frameworks, several challenges continue to affect the effective implementation of wildlife protection laws. Problems such as illegal hunting, poaching, deforestation, habitat destruction, pollution, climate change, and human-wildlife conflict remain major threats to biodiversity and the environment. Weak enforcement mechanisms, corruption, lack of awareness, and increasing industrial and urban development further worsen the situation.

The graph and environmental offence reports indicate that environmental crimes and wildlife-related offences continue to rise, showing the need for stronger implementation of environmental laws and stricter monitoring systems. Therefore, effective conservation requires active participation from the government, judiciary, local communities, non-governmental organizations, and citizens.

In conclusion, wildlife protection is essential for achieving sustainable development and ecological security in India. Strict enforcement of environmental laws, public awareness, scientific conservation methods, and community participation are necessary to preserve India's rich wildlife heritage and protect the environment for future generations

Suggestion : Suggestions and Reformative Measures for Wildlife Protection and Environmental Safeguarding in India

1. **Strengthening Implementation of Laws:** Although India has strong environmental laws such as the Wildlife Protection Act, 1972, proper implementation is still lacking. The government should strengthen monitoring systems, improve forest administration, and ensure strict punishment for wildlife crimes such as poaching, illegal hunting, and wildlife trafficking.

2. **Increasing Public Awareness:** Public awareness programs should be conducted in schools, colleges, villages, and urban areas to educate people about the importance of wildlife conservation and environmental protection. Media campaigns, documentaries, and social platforms can help spread awareness among citizens.

3. **Community Participation in Conservation:** Local communities and tribal groups living near forests should be actively involved in wildlife conservation programs. Providing employment opportunities, eco-tourism benefits, and forest-based livelihood support can encourage people to protect wildlife and forests.

4. **Protection of Forests and Natural Habitats:** Deforestation and habitat destruction are major threats to wildlife. The government should control illegal cutting of trees, mining activities, and industrial expansion near forest areas. More wildlife corridors, protected forests, and eco-sensitive zones should be developed.

5. **Use of Modern Technology:** Modern technologies such as drones, GPS tracking, satellite monitoring, artificial intelligence, and digital surveillance should be used for wildlife monitoring and prevention of illegal activities in forest areas.

6. **Control of Illegal Wildlife Trade:** Special wildlife crime control units should be strengthened to prevent illegal trade in animal skins, ivory, horns, and other wildlife products. International cooperation should also be improved to stop cross-border wildlife trafficking.

7. **Reducing Human-Wildlife Conflict:** The government should develop better rehabilitation policies and compensation systems for people affected by wildlife attacks. Proper fencing, wildlife corridors, and scientific forest management can help reduce conflicts between humans and animals.

8. **Climate Change and Environmental Protection:**

Special measures should be taken to control pollution, climate change, and environmental degradation because they directly affect wildlife and biodiversity. Afforestation and sustainable development policies should be encouraged.

9. Judicial and Administrative Reforms: Fast-track environmental courts and special wildlife tribunals should be established for speedy justice in environmental and wildlife-related cases. Administrative accountability and transparency should also be improved.

1. Establishment of Special Environmental Courts: The judiciary should establish more special environmental courts and wildlife tribunals for speedy disposal of cases related to poaching, illegal mining, deforestation, and wildlife trafficking. Fast-track courts can reduce delays in environmental justice.

2. Strict Interpretation of Environmental Laws: Courts should adopt a strict approach while interpreting laws such as the Wildlife Protection Act, 1972 and Environment (Protection) Act, 1986. Strong penalties and strict legal action against offenders can help prevent wildlife crimes.

3. Strengthening Public Interest Litigation (PIL): The judiciary should encourage Public Interest Litigations (PILs) related to wildlife conservation and environmental protection. PILs allow citizens, social activists, and organizations to approach courts for protecting forests, endangered species, and ecological balance.

4. Judicial Monitoring of Environmental Projects: Courts should closely monitor industrial, mining, and developmental projects that affect forests and wildlife habitats. Environmental clearance should only be granted after proper ecological assessment and compliance with environmental laws.

5. Protection of Endangered Species and Habitats: The judiciary should issue directions for the protection of endangered species, wildlife corridors, forests, wetlands, and eco-sensitive zones. Courts should ensure that conservation policies are properly implemented by government authorities.

6. Promoting Sustainable Development: The judiciary should balance development and environmental protection by promoting the principle of sustainable development. Economic growth should not take place at the cost of environmental destruction and biodiversity loss.

7. Use of Scientific and Expert Opinions: Courts should rely on scientific research, wildlife experts, and environmental studies while deciding wildlife-related disputes. Expert committees can help courts make effective and environmentally sensitive decisions.

8. Increasing Accountability of Authorities: The judiciary should ensure accountability of forest departments, pollution control boards, and administrative authorities for negligence in wildlife protection and environmental management.

9. Environmental Awareness Through Judicial Directions: Courts can direct governments and educational institutions to conduct environmental education and wildlife awareness programs to create social responsibility among citizens.

10. Promotion of Research and Education: Universities and research institutions should promote studies on biodiversity, wildlife conservation, and environmental law. Scientific research can help develop effective conservation policies and sustainable environmental practices.

References:-

1. Wildlife Protection Act, 1972. (1972). *The Wildlife Protection Act, 1972*. Government of India. New Delhi: Ministry of Environment, Forest and Climate Change.
2. Environment (Protection) Act, 1986. (1986). *The Environment (Protection) Act, 1986*. Government of India. New Delhi.
3. Forest Conservation Act, 1980. (1980). *The Forest Conservation Act, 1980*. Government of India. New Delhi.
4. Environmental Law. Leelakrishnan, P. (2019). *Environmental law in India* (5th ed.). New Delhi: LexisNexis.
5. Environmental Law. Shastri, S. C. (2018). *Environmental law*. Lucknow: Eastern Book Company.
6. Law Relating to Protection of Environment and Prevention of Pollution. Diwan, P., & Diwan, P. (2017). *Law relating to protection of environment and prevention of pollution*. New Delhi: Orient Publishing House.
7. International Union for Conservation of Nature. (2021). *Biodiversity and wildlife conservation reports*. Gland, Switzerland: IUCN Publications.
8. Convention on International Trade in Endangered Species of Wild Fauna and Flora. (2022). *Guidelines on international wildlife trade and conservation*. Geneva: CITES Secretariat.
9. Textbook on Environmental Law. Swamy, M. (2020). *Textbook on environmental law*. New Delhi: Asia Law House.
10. Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2023). *Annual report on wildlife conservation in India*. New Delhi: Government of India.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Virtual Reality Therapy: Revolutionizing Mindfulness and Anxiety Management in Modern Counselling

Dr. Nitu Minz*

***Assistant Professor (English) Ramgarh College, Ramgarh (Jharkhand) INDIA**

Abstract: In today's fast paced life with immense competition for humans, stress and anxiety is very common. As per the World Health Report,1 out of 4 people suffer from neurologicalor mental disorders. A part from the traditional therapy interventions, modern therapy offers innovative therapies including virtual or augmented reality therapy as line of treatment. We know that psychiatry offers comprehensive care through both therapeutic and medical approaches and unlike psychologists, psychiatrists prescribe medicines and address underlying physical causes of mental health issues to diagnose and treat conditions such as anxiety, depression, anger management, bipolar disorder, schizophrenia using medication, psychotherapy (talk therapy), and brain stimulation therapies (ECT,TMS) etc. Before deep diving into the various aspects of virtual reality therapy (VRT) which is nowadays revolutionizing mindfulness and anxiety management in modern counselling, it is necessary to understand as to how and why modern technology seeped into day-to-day modern psychotherapy and psychiatrist practices. The answer is simple – with over exposure to online presence via various gadgets on social media, digi space, workfront exposure, binge watching and so on, dependency on virtual assets is extensive for people. This is why virtual reality interventions in modern counselling is required, which in turn uses immersive, simulated environments to treat mental health issues such as PTSD, anxiety, phobias, depression by offering safe and controlled exposure, empathy building, and social skills training, allowing gradual desensitization, new Behavioural practices, building self-compassion, and so on. VR offers customizable, repeatable, and ecologically valid experiences, enhancing traditional therapy by making triggers manageable and allowing for embodied self-reflection, though challenges like cost and patient acceptance.

Keywords: Virtual Reality, Augmented Reality, Anxiety, Mental Disorders, Depression, Counselling, Anxiety Management, PTSD, VRET.

Introduction - The new wave of immersive technology which is transforming mental healthcare practices is called virtual or augmented therapy. It working mechanism is simple: (a) **immersion:** Headsets create believable virtual worlds (airports, social gatherings, traumatic scenes); (b) **control:** therapists adjust intensity (e.g., adding smells, changing crowds) and replay scenarios; and (c) **embodiment:** users inhabit avatars, allowing them to experience situations from different perspectives (e.g., giving advice as a therapist).

The key applications include (a) **virtual reality exposure therapy (VRET):** safely confronts fears (heights, flying, public speaking) in controlled, adjustable settings to reduce anxiety; (b) **PTSD:** recreates traumatic scenarios for processing and desensitization, (c) **social anxiety/ skills:** practices social interactions in realistic but safe simulations, useful for autism spectrum disorder and social phobias. **Depression & self-compassion** uses 'embodied self-counselling' where users advise themselves from an avatar's perspective (e.g., a supportive friend or family member) to improve self-acceptance. Further, **stress & pain management** reduces distress in chronic pain and palliative care. At any time or place, patients can be transported into immersive and interactive virtual worlds that are fully controlled by the researcher or clinician. This capability is central to recent interest in how VR might be harnessed in both treatment and assessment of mental health conditions. As per a review report of Grand View Research, the market size of AR and VR in healthcare is projected to reach staggering $41.18 billion by 2030.

It is to be noted that clinical potential of VR in improving accessibility to care, supporting immersive and personalized interventions, and enhancing patient engagement and outcomes across many mental health contexts is substantial. Across many findings, VR is also shown to contribute to pain distraction, cognitive training, and social skill development. Recent findings underscore the increasing relevance of VR in mental healthcare and the need for continued research to guide its broader implementation in clinical practice.

Virtual Reality Therapy and Mental Healthcare: Benefits & Challenges: Virtual reality (VR) therapy uses a computer-simulated world as a treatment tool. A person might use it to practice new skills, face a fear in a safe environment, or become more confident in social interactions. VR therapy does not replace standard treatments for mental health conditions. Instead, most clinicians use it as an additional treatment. For example, a therapist might use VR as a part of cognitive behavioural therapy (CBT), empowering a client to test new skills in a more controlled environment than in the real world. A number of studies have found that virtual reality therapy can be effective for managing various mental health conditions, including anxiety, depression, post-traumatic stress disorder (PTSD), and phobias.

The benefits of VR therapy includes: (a) **safety and control** that is, it offers a safe space for confronting triggers for the individual patient, (b) **customization** that is, environments can be tailored to individual patient's requirements, (c) **accessibility** that is, can reach remote or mobility-limited patients, (d) **engagement** that is, gamification and immersive nature can boost motivation, and (e) **better outcomes** (in many cases) as it improves maintenance of results and reduces daily life interference compared to traditional imagery.

Virtual reality (VR) effectively reduces symptoms in individuals with anxiety disorders,Including PTSD, specific phobias, and performance-based anxiety, according to Donnelly *et al.* (2021) in "Virtual Reality for the Treatment of Anxiety Disorders: A Scoping Review." Of 28 studies, 17 showed positive out comes with VR. One study established no major difference between standard care and VR treatment, while another showcased that standard care was more effective due to unrealistic VR stimuli. The remaining 9 studies confirmed VR's Feasibility for coaxing therapeutic anxiety levels, with one noting that immersive CAVEVR (which uses a multi-projection environment) provokes even greater anxiety.

The major challenges or limitations of VR therapy in mental healthcare include (a) **cost and access** that is ,high cost of equipment and accessibility limitations for usage, (b) **training** hat is, specific training for the therapists using it, and (c) **ethics** that is, privacy concerns and over-reliance on technology.

Working Mechanism of VR Therapy: VR therapy uses virtual scenarios as a therapeutic tool. A person may wear a headset or use a device to immerse themselves in the virtual world and interact with it, for example, a family member. It is possible to simulate a wide variety of worlds and scenarios with VR, which makes it useful for constructing situations that are hard to recreate in real life or that could be too scary or risky, for example climbing a mountain. Therapists may use VR to allow patients to practice real-life challenges, revisit a past event, or help an individual confront his fears in a controlled environment. Researchers published the first paper on VR therapy over almost three decades ago, but as the technology has improved with time, interest in this therapeutic tool has increased substantially.

VR therapy works by allowing people to act out, practice, or revisit situations in a safe environment. This may, (i) reduce fears, (ii) teach life skills, (iii) build confidence, and (iv) help process a situation that happened in the past and overcome its outcomes. By filtering the real-world risks, VR can also make something frightening feel more manageable. For example, a person with a phobia may not be ready to confront it in real life. Inter acting with a simulation in VR may help such individuals to slowly become accustomed to the object/reason of their fear (phobia) and learn it is not a threat. This is how VR may help bridge the gap between therapy and the real-world scenarios especially day-to-day challenges for the patients.

Therapists originally used VR therapy to treat phobias, but over time, therapists have tried it for a variety of mental health conditions. Some of the conditions could VR help with as discussed below.

(i) Phobias: Therapists can use VR for exposure therapy, which is a main stay of phobia treatment. It involves gradually exposing a person to what they fear in small, manageable steps with their consent. The exposure therapy can be done without VR, but sometimes, this is difficult to do. For example, a person with a fear of flying cannot fly on an airplane for a few seconds and work their way upward. Additionally, other phobias, such as a fear of wild animals, could put someone in danger if they try to interact with one. VR expands the possibilities of exposure therapy. A 2022 systematic review of 18 articles found that this approach improved almost all types of specific phobias the research included, such as animal phobias and blood or injection phobias, and so on.

(ii) PTSD: Exposure therapy can also help treat PTSD (post-traumatic stress disorder), but as with phobias, controlled exposure to a traumatic situation can be difficult and may not be very safe. A handful of studies suggest that VR therapy offers an alternative. For example, a 2019 review and meta-analysis of nine previous studies compared the effects of VR exposure therapy to no therapy. In comparison to the participants who received no treatment, VR therapy reduced PTSD symptoms, and the benefits continued for at least three months after the treatment ended.

(iii) Social and emotional skills: A person can practice various social and emotional skills using VR therapy. For example, they might practice talking through a conflict with their partner or asking their boss for arise. This allows them to safely test new skills while under the guidance of a therapist.

(iv) Anxiety and depression: A review of previous research works notes the potential for VR to help with multiple aspects of anxiety and depression treatment. VRT can help people understand mental health, visualize CBT techniques, teach self-compassion, simulate other therapies,

such as gardening or animal-assisted therapy.

Anxiety Management, Mindfulness and VR Techniques: Anxiety management, mindfulness, and VR techniques when combined by using immersive virtual reality to create calming or exposure-based environments, help individuals practice mindfulness skills (for example, focused breathing in a virtual mountain) or safely confront fears (such as height, public speaking) which reduces anxiety, and offers a controlled, engaging way to train the brain for real-world calm and resilience. VR enhances traditional mindfulness by reducing distractions, allowing for better focus on breath or sensory input in simulated natural settings, and serves as a tool for virtual reality exposure therapy (VRET) for treating phobias and PTSD. Studies show VR mindfulness consistently lowers stress, anxiety, and negative emotions, thereby enhancing positive feelings, attention, and relaxation. VR-mediated behavioural practices show similar results to face-to-face exposure therapy.

The efficacy of mindfulness training is, however, influenced by an individual personality. Those who have higher levels of trait mindfulness may be less anxious, less stressed, and more confident. They may also be more effective self-regulators with better mental-health outcomes than those with relatively low mindfulness straits. Both *trait* and *state* mindfulness can be measured via self-reported questionnaires and other psycho-physiological approaches. Mindfulness-based interventions, or MBI, are designed to address particular mental issues, and they may be implemented together with other clinical treatments.

The most used MBIs are mindfulness-based cognitive therapy (MBCT) and mindfulness- based stress reduction (MBSR).The mechanism of MBCT is designed to inspire individuals to demonstrate more self-compassion and self-acceptance. MBSR, on the contrary, aims to mitigate stress by raising the individual's awareness of the present moment. Both MBCT and MBSR were found to be effective in treating depression and other mental disorders in adult population. Traditional MBI usually requires eight weeks to be spent under the guidance of professional trainers. This is demanding, and many individuals find it challenging to commit to such levels of attendance.

In recent years, a combination of mindfulness and/or meditation training with virtual reality (VR) has been promoted. This model generally comprises specific professional guidance alongside changeable virtual immersive environments, background music, and instant evaluations. Studies have, meanwhile, verified the feasibility of incorporating VR within mindfulness training. One such study found that participants in VR-based mindfulness practice believed their feelings of calmness, relaxation, and peace improved, as did their general emotions and state mindfulness. Good-looking scenery, soft music and gentle audio guidance that applied in VR may help users to focus their attention on the practice. This suggests that VR-based mindfulness practice may help individuals maintain present-moment awareness and block distractors and may be more effective than conventional mindfulness approaches. There are draw backs as well such as sub-optimal video quality, the heaviness of VR headsets and the potential for motion sickness, high costs, and limited accessibility, affecting its overall effectiveness for some users.

In research-based case studies, overall, the outcomes of participants' mood, anxiety, sleep quality, mindfulness level, cognitive function, and experience of meditation are measured using standardized questionnaires and objective measurements. More details about Measurements and all citations applied in the included studies are noted down and evaluated.

It has been reported that training son both group (VR-based mindfulness training versus conventional mindfulness training) effectively decreased participants' stress, and the participants in VR-based mindfulness group reported less stressful than those in control group.

VRT as Progressive Alternative Therapy in Modern Counselling- VRT's versatility allows for personalized and progressive treatment, making it effective in many therapeutic settings. VRT has demonstrated a success rate of 66–90% for individuals with PTSD when combined with cognitive behavioural therapy (CBT), as explored in "Virtual Reality Applications in Chronic Pain Management: Systematic Review and Meta-analysis" by Goudman *et al*. (2022).

Clark Atlanta University's Human-Computer Interaction Laboratory established Virtual Reality Therapy (VRT) in 1992 as a therapeutic intervention using computer-generated environments. Max North pioneered Virtual Reality Therapy (VRT) research, starting in 1992 at Clark Atlanta University. North's ground breaking work included key publications and the development of therapeutic applications using computer-generated environments, with a focus on treating anxiety disorders and PTSD.

Researchers Pot-Kolder *et al.* (2020) examined the economic viability of VR-based CBT for treating paranoia in psychosis in the study "Cost-Effectiveness of Virtual Reality Cognitive Behavioural Therapy for Psychosis: Health-Economic Evaluation With in a Randomized Controlled Trial." The trial, conducted with 116 participants, demonstrated that VR-CBT led to a considerable uptick in social participation, with 90.74-99.74% of patients experiencing benefits over standard treatment. The cost per quality-adjusted life year (QALY) gained was estimated at •48,868 (approx. $53,000), indicating VR-CBT as a cost-effective option, though further long-term analysis is suggested.

A survey conducted in 2012 involving 262 therapists who had not previously utilized virtual reality (VR) revealed concerns regarding training, equipment, costs, and a lack of understanding of the benefits and applications of VR, as explored by Schwartzman *et al.* in "Perceptions of Virtual Reality Among Therapists Who Do Not Apply This

Technology in Clinical Practice." However, by 2019, a survey of 185 behavioural therapists indicated reduced concerns related to technical and cost issues, as VR equipment had become widely commercialized since 2016 as discussed by Lindner *et al.* (2019) in Attitudes Toward and Familiarity with Virtual Reality Therapy Among Practicing Cognitive Behaviour Therapists: A Cross-sectional Survey Study in the Era of Consumer VR Platforms."

The challenges of virtual reality therapy are ethical considerations, technological limitations, the need for trained therapists, security and privacy concerns, and high costs of technology. These challenges preclude the productive implementation of virtual reality therapy, influencing accessibility and efficacy for individuals seeking treatment.

Conclusion: Mindfulness practices constitute a form of meta cognitive training by which individual scan take control and balance the physiological processes that determine cognition, mood, and well-being. Virtual reality maximizes therapeutic outcomes, especially for people with Disabilities or difficulties with conventional interventions. Virtual Reality Therapy (VRT) is an immersive therapeutic technique that uses virtual environments to simulate real-life scenarios for psychological or physical treatment, especially simulate different real-life Triggers or scenarios to help people learn new skills, or to face their fears in a safe environment. Initially, therapists used it for the treatment of phobias, but today, the rapists use it for a range of conditions. VR can provide a controlled space to try things that could beover whelming or risky in real life, making it useful for exposure therapy. However, as with any therapy, it is important to seek care from a licensed, experienced practitioner. A 2021 scoping review that assessed nine previous studies that combined VR with CBT found that it could benefit the treatment of anxiety and depression. Virtual reality provides numerous benefits facilitating training conditions, optimizing the experience, and increasing the effectiveness of interventions. In addition, it strengthens self-control skills. These results indicate also that those physiological parameters, which are out of human control, can be modified with self-control practices. To try VR therapy, a person needs to find a licensed psychotherapist with access to a VR device. Virtual Reality Therapy (VRT) is revolutionizing mental healthcare, offering innovative treatment for a variety of anxiety disorders, phobias, and attention-related challenges. While exposure therapy (the safe exposure to situations or activities that induce fear) has been a long standing effective therapeutic tool for treating anxiety and phobias, the process can often be time-consuming, impractical, and expensive. VRT offers a safe and effective way for individuals to face their fears, build resilience, and develop coping strategies without ever leaving the therapy room. VR technology can facilitate mindfulness learning by reducing the interference of distractors from the natural environment and providing a sense of presence in immersive environments. These qualities have great potential to benefit research in that extraneous variables that would otherwise be uncontrollable can be limited. There has been widespread use of VR-based MI in diverse clinical areas including psychosis.

References:-

1. How AR/VR is Revolutionizing Mental Health Treatment in 2025https://share.google/00aQFrW4YDkWtEjv4accessedon 11thDecember2025.
2. https://www.who.int/news-room/detail/28-09-2001-the-world-health-report-2001-mental-disorders-affect-one-in-four-people accessed on 11th December 2025.
3. https://www.grandviewresearch.com/industry-analysis/virtual-reality-vr-healthcare-market-report accessed on 12th December 2025.
4. https://www.liebertpub.com/doi/10.1177/29941520251394885accessedon12th December 2025.
5. Arias D, Saxena S, Verguet S (2022). Quantifying the Global Burden of Mental Disorders and their Economic Value. *E Clinical Medicine* 54:101675.
6. Dreison KC, Luther L, Bonfils KA, *et al.*(2018).Job Burnout in Mental Health Providers: A Meta-Analysis of 35Years of Intervention Research. *J Occup Health Psychol*; 23(1):18–30.
7. https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1550830722001227accessedon 12th December 2025.
8. https://www.betterliferecovery.com/therapy/virtual-reality-therapy-vrt/ accessed on 12th December 2025.
9. Virtual Reality Applications in Chronic Pain Management: Systematic Review and Meta-analysis" by Goudman *et al*. (2022), *JMIR*.
10. Donnelly *et al.*(2021) in "Virtual Reality for the Treatment of Anxiety Disorders: A Scoping Review." *American Journal of Occupational Therapy*
11. Pot-Kolder *et al.*(2020) "Cost-Effectiveness of Virtual Reality Cognitive Behavioural Therapy for Psychosis: Health-Economic Evaluation With in a Randomized Controlled Trial."

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

मरुस्थल क्षेत्र (पाली जिले) में ग्रामीण क्षेत्र में विकास की समस्या-एक भौगोलिक अध्ययन

ओम प्रकाश*

* सहायक आचार्य (VSY) भूगोल, राजकीय महाविद्यालय,सोजत सीटी पाली (राज.) भारत

शोध सारांश – ग्रामीण क्षेत्र का भौतिक उदय और विकास विश्व के समस्त भागों में लगभग समान रूप से हुआ है तथापि आधुनिक समय में भी गांव गांव का विकास एक समान नहीं हुआ है और ना ही पहले हुआ था। ग्रामीण विकास का अभिप्राय है, कि व्यक्ति विशेष का एक समूह जो गांव में निवास करता है तथा उनके जीवन शैली में परिवर्तन को ग्रामीण विकास का दर्जा दिया जाता है। ग्रामीण विकास आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन का महत्वपूर्ण पहलू है। ग्रामीण विकास का आशय है ग्रामीण क्षेत्र का संपूर्ण विकास ग्रामीण से आशय है गांव में निवास करने वाले जिनकी जीविका का मूल आधार कृषि है। अर्थात ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना ग्रामीण विकास कहलाता है। ग्रामीण क्षेत्र का विकास देश के विकास का आधार है। क्योंकि भारत में 68.84 प्रतिशत जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। वह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है।

ग्रामीण विकास में कृषि विकास के साथ-साथ आधारभूत सेवाओं के निर्माण के साथ-साथ मानवीय विकास के विभिन्न विविध पहलू को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है बगैर बुनियादी सेवा के निर्माण एवं विकास के संपूर्ण ग्रामीण विकास कल्पना करना व्यर्थ है। बुनियादी सेवा में रेल, सड़क परिवहन, दूर संचार, ऊर्जा ,शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि विकास आधुनिक सिंचाई सुविधा सुविधा, स्वच्छ जल आपूर्ति, रोजगार मुखी कार्यक्रम आदि शामिल है। इन बुनियादी आधारभूत सेवाओं के विकास पर ही ग्रामीण विकास एवं देश का विकास टिका हुआ है। यदि देश के ग्रामीणों में आधारभूत सुविधाओं का विकास नहीं है तो संपूर्ण ग्राम का विकास संभव है।

शब्द कुंजी –कृषि, पेयजल, ग्रामीण विकास, पशुपालन, रोजगार, जनसँख्या।

प्रस्तावना – ग्रामीण विकास का अभिप्राय है, कि व्यक्ति विशेष का एक समूह जो गांव में निवास करता है तथा उनके जीवन शैली में परिवर्तन को ग्रामीण विकास का दर्जा दिया जाता है। ग्रामीण विकास आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन का महत्वपूर्ण पहलू है। राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में जिलों की कुल संख्या लगभग 12 जिले हैं जो जैसलमेर, बाड़मेर, बालोतरा, जालौर, जोधपुर, चुरु, झुन्झनू, बीकानेर, अनूपगढ़, गंगानगर, हनुमानगढ़, नागौर, सीकर, पाली का पश्चिमी भाग लगभग 77.73 प्रतिशत (2011) जनसंख्या गांव में निवास करती है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक कृषि पशुपालन तथा मजदूरी प्राथमिक व्यवसाय पर अपना जीवन यापन करते हैं। इन क्षेत्रों में जैसलमेर बाड़मेर एवं जालौर में सबसे अधिक जनसंख्या गांव में रहती है जो क्रमश: 86.71, 93.02 ,91.70% है। यह जिले में आर्थिक व शिक्षा की दृष्टि से सबसे पिछड़े हुए जिले हैं जिनमें जीवन स्तर बहुत ही नीचे इन जिलों में मूलभूत संसाधनों तथा आधारभूत सुविधाओं का अभाव में संपूर्ण विकास ढंग से नहीं हो पाया है। मरुस्थलीय भाग के जिलों पर विश्लेषण से आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य जिलों में बहुत नीचे स्तर पर हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण विकास के स्तर का विश्लेषणात्मक अध्ययन- ग्रामीण विकास के लिए केंद्र व राज्य सरकार के द्वारा समय-समय पर आधारभूत विकास के लिए ग्रामीण विकास योजनाएं लागू की जाती है। जिनमें से मरुस्थलीय क्षेत्रों में भी उनका विशेष विश्लेषणात्मक अध्ययन में प्रमुख योजनाएं इस प्रकार:- 1. भारत निर्माण कार्यक्रम 2.मुख्यमंत्री ग्रामीण बीपीएल आवास योजना 3.प्रधानमंत्री आवास योजना 4.प्रधानमंत्री सड़क योजना 5.जननी सुरक्षा योजना 6.कुटीर ज्योति योजना 7.इंदिरा आवास योजना 8.अक्षत योजना 9.मरुस्थलीय कार्यक्रम एवं सूखा संभावित कार्यक्रम 10. अकाल राहत कार्यक्रम 11.ग्रामीण पेयजल योजना 12.स्वच्छ भारत योजना 13. जल जीवन मिशन योजना 14. प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना 15.अरावली विकास योजना इत्यादि को ध्यान में रखते हुए राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में ग्रामीण विकास का विश्लेषणात्मक एवं महत्वपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखकर किया है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व – भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपात करते हुए ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था के एक भाग में परिवर्तन विकास एवं आधुनिकरण की प्रक्रिया का स्तर बहुत अधिक है जबकि दूसरे भाग में अपेक्षाकृत बहुत ही कम रहता है। इस विकास के इन पहलुओं में अंतर का विश्लेषणात्मक अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। तथा एक विकसित तथा विकासशील आर्थिक क्षेत्र में रोजगार की दृष्टि से आवश्यक भी होता है। पाली जिले के ग्रामीण विकास में शोध का निम्न प्रकार से महत्व होता है-

1. ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के स्वरूप और प्रक्रियाओं को समझने में योगदान रहता है।

2. विकास का आर्थिक-सामाजिक के क्षेत्र में अध्ययन का सैद्धांतिक महत्व।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में विकास का रोजगार एवं योजनाओ का विश्लेषण करने में महत्व।
4. संपूर्ण समाज का विविधता के अध्ययन में महत्व।
5. सरकार की लाभकारी योजनाओं की वास्तविकता एवं वस्तु स्थिति ज्ञात करने में सहायक होता है।

शोध के उद्देश्य:

1. गांव में समग्र विकास में ही देश का विकास निहित है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास एवं वृद्धि के फलस्वरुप उत्पन्न हुए सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक परिवर्तन का विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए निम्न उद्देश्य है: मरुस्थलीय क्षेत्र में गांव में आर्थिक सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करना।
2. विकास योजनाओं का मूल्यांकन व ग्रामीण समाज पर उनके प्रभाव का अध्ययन करना।
3. मरुस्थलीय क्षेत्र में सामाजिक संरचनात्मक सांस्कृतिक, आर्थिक कारकों में अंतर्संबंधों का अध्ययन।
4. पाली जिले में पेयजल, परिवहन व संचार सुविधाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

शोध प्रविधि– यह शोध विषय द्वितीय आंकड़ों पर तृतीय आंकड़ों पर आधारित है। साथ ही आवश्यकता अनुसार इसमें प्राथमिक आंकड़ों का भी प्रयोग किया जा सकता है जिसमें द्वितीयक आंकड़ों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। तथा सूचकांक के माध्यम से आंकड़ों का आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

तालिका 1 – राजस्थान के मरुस्थलीय जनांकिकीय स्थिति

S.	District	Rural pop. %	Urban pop. %	Population growth 2001-2011	Density
1.	Jhalor	91.7	8.3	26.20	172
2.	Badmer	93.0	7.0	32.50	92
3.	Nagour	80.7	19.3	19.20	187
4.	Jeslmer	86.7	13.3	31.80	17
5.	Ganganager	72.8	27.2	10.0	179
6.	Bikaner	66.1	33.9	24.30	78
7.	Churu	71.7	28.3	20.30	147
8.	Junjunu	77.1	22.9	11.70	361
9.	Jhodhapur	65.7	34.3	27.70	161
10.	Hanuman -gardh	80.3	19.7	16.90	184
11.	Sikar	76.3	23.7	17.0	346
12.	Pali	77.4	22.6	11.90	164
	Rajasthsan	**75.1**	**24.6**	**21.30**	**200**

Sourece: rajasthan cences handbook raj.govt.2011

पाली जिले में जनन की स्थिति राजस्थान के कुल जनसंख्या 2037573 जिले में है। मरुस्थलीय क्षेत्र का 75.1% आबादी गांव में निवास करती है। जिसमें राजस्थान में मरुस्थलीय क्षेत्र के पांच जिले से हैं। जिनमें राजस्थान की कुल जनसंख्या का 80% से अधिक भाग ग्रामीण जनसंख्या का है इन क्षेत्रों में जैसलमेर, बाड़मेर एवं जालौर में सबसे अधिक जनसंख्या गांव में रहती है। जो क्रमश: 86.71, 93.02 एवं 91.70 प्रतिशत है। जबकि इन जिलों की जनसंख्या घनत्व आबादी जिले से काफी कम है। जैसलमेर का सबसे कम जनसंख्या घनत्व 17 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। राजस्थान में मरुस्थलीय क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि में तेजी से वृद्धि हो रही है देखा। जाए तो बाड़मेर जैसलमेर की सबसे ज्यादा जनसंख्या वृद्धि दर है जो क्रमश: 32.5 एवं 31.80% है। मरुस्थलीय क्षेत्र के जिलों की औसतन जनसंख्या वृद्धि दर या दर्शा रहे हैं कि इंची क्षेत्र में जनसंख्या नियंत्रण के लिए जागरूकता की कमी या सरकार की योजनाओं से कहीं ना कहीं वंचित है। या ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी के कारण जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण माना गया है दूसरा प्रमुख कारण महिला शिक्षा में कमी राजस्थान में जनसंख्या बढ़ने से गरीबी में भी वृद्धि हो रही है।

क्रं.	जिला	कुल	पुरुष	महिला
1.	Jalor	54.9	70.7	38.5
2.	Badmer	56.5	70.9	40.6
3.	Naogor	62.8	77.2	47.7
4.	Jeslmer	57.2	72.0	39.7
5.	Gaganager	69.6	78.5	59.7
6.	Bikaner	65.1	75.9	53.2
7.	Churu	66.8	78.8	54.0
8	Ghunjunu	74.1	86.9	61.0
9	Jodhapur	65.9	79.0	51.8
10	Haumangardh	67.1	77.4	55.8
11	Sikar	71.9	85.1	58.2
12	Pali	62.4	76.8	48.0

राजस्थान की मरुस्थलीय क्षेत्र में साक्षरता का अस्तर राष्ट्रीय औसत से कम है तथा महिला की साक्षरता पर गौर करें यह स्थिति इतनी खराब है कि कल महिला का लगभग 50% भाग अशिक्षित है। जो कभी विद्यालय गए ही नहीं राजस्थान के जालौर बाड़मेर एवं जैसलमेर जिला में शिक्षा का स्तर देखने लायक है यही महिला शिक्षा न्यूनतम स्तर पर है। 38.5 40.6 एवं 39.7 प्रतिशत मात्रा है। मरुस्थलीय क्षेत्र में यहां आंकड़े शिक्षा की सुविधा दो पर काम विकास को दर्शाता है। अत: ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों में भौतिक सुविधाओं की स्थिति मजबूत और बेहतर करने चाहिए राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में रेट के टीलों में इनकी मकान है । जिनकी झोपड़ियां प्रमुख आवास होती है। यह मुख्यमंत्री आवास योजना एवं प्रधानमंत्री आवास योजना के चलते पक्के आवासों में वृद्धि हुई है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों की आवासीय स्थिति बहुत दाहिनी है यह लोग कच्चे छप्पर घास भुस लकड़ी से झोपड़िया में अपना जीवन गुजार रहे हे। गर्मी दिनो को बारिश व गर्मी में विकट परिस्थितियों का भीषण सामना करना पड़ता है। आंधी और तूफान में इन परिवारों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जाती है।

पेयजल – राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में गांव के लिए प्रमुख और मुख्य समस्या पेयजल की है। ग्रामीण लोगों को शुद्ध पेयजल प्राप्त नहीं होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग जल संरक्षण के लिए बड़े-बड़े टंकियां का निर्माण ताकि टाको का निर्माण करते हैं। गांव में महिलाओं को पानी के लिए लंबी दूरी तय कर अपनी दूर से लाना पड़ता है क्योंकि लोग दानियो में दूरदराज क्षेत्रों में निवास करते हैं। सरकार ने कई योजनाओं में घर-घर टैंक की सुविधा भी की गई है।

रोजगार – राजस्थान मरुस्थलीय क्षेत्र में ग्रामीणों की प्रमुख समस्या रोजगार मजदूरी पशुपालन एवं कृषि कार्य है। कृषि मानसून पर निर्भर है। वर्षा की कम मात्रा के अभाव में ग्रामीण क्षेत्र से पुरुषों का रोजगार की तलाश में प्रवास करते हैं। सरकार ने मनरेगा योजना ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में घर पर रहने वाली महिलाएं कार्य करती है। यह रोजगार बढ़ाने व उपलब्ध कराने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

मरुस्थलीय क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्र की प्रमुख समस्याए – मरुस्थलीय क्षेत्र में शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न होता है। जिसमें ग्रामीण योजना की पूरी जानकारी से वंचित रहते हैं जिसके कारण योजना का लाभ सही ढंग से नहीं मिलता है आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य क्षेत्रों से बहुत नीचे स्तर पर मरुस्थली क्षेत्र में संसाधनों की कमी भी प्रमुख समस्या है। जिसके अभाव में भारी मात्रा में कार्यशील जनसंख्या का प्रवास रोजगार की तलाश में बढ़ जाता है ।

1. महिला शिक्षा का न्यूनतम स्तर से महिला सशक्तिकरण का स्तर निम्न है।
2. ग्रामीण क्षेत्र दूरदराज ढाणीया में होने से संचार सुविधाओं के अभाव में जागरूकता की कमी से विकास योजना का लाभ सही नहीं पहुंच पाता है।
3. मरुस्थलीय क्षेत्र में जल के अभाव होने से आज भी शुद्ध पर जल एवं सिंचाई की प्रमुख समस्या रहती है।
4. यहां प्रमुख व्यवसाय पशुपालन एवं मजदूरी प्राथमिक व्यवसाय पर ही ज्यादातर जनसंख्या निर्भर है।

निष्कर्ष एवं सुझाव – ग्रामीण क्षेत्र मरुस्थलीय क्षेत्र पॉलिश पाली जिले में आधारभूत सुविधाओं के अभाव से ग्रामीण क्षेत्र का संपूर्ण विकास धीमी गति से हो पता है क्योंकि गांव के विकास स्तर में प्रत्येक गांव आसमान रूप से ढाणीया में बसे हुए हैं जो अलग–अलग दूर–दूर है ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की परी समस्याएं प्राथमिक क्षेत्र के अलावा तृतीय तृतीय व्यवसाय में बहुत ही कमी है शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधा भी बहुत ज्यादा है क्योंकि रेगिस्तान और रेतीला इलाका होने की वजह से विकास में गति कम है । राजस्थान राज्य में सामाजिक–आर्थिक विकास भौतिक कारकों से प्रभावित है। पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीय दशाएँ एवं दक्षिणी राजस्थान में अरावली पर्वतमाला की अवस्थिति के कारण इस क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल का 69.96 प्रतिशत भाग व कुल जनसंख्या का 60.81 प्रतिशत भाग निम्न व अतिनिम्न विकसित है। राज्य में सामाजिक–आर्थिक विकास का स्तर कृषि विकास से सकारात्मक रूप से संबंधित है। यह शोध विकास के आयामों और पिछड़ेपन की स्थिति विश्लेषण करने में मदद करता है और संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए भविष्य की योजना और सूक्ष्म स्तर पर विकास के स्तर में स्थानिक भिन्नता को कम करने के लिए एक प्रासंगिक रणनीति तैयार करने के लिए भी उपयोगी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. माथुर, बी.एल. (2009) श्ग्रामीण अर्थव्यवस्थाश् अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।
2. डॉ. माथूर, बी.एल. (2009) श्भारतीय अर्थव्यवस्थाश् अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली।
3. डॉ. माथुर, रीता (2009) श्आर्थिक विकास और योजनाश् अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
4. तिवारी आर.टी. और सिन्हा आर.सी. (1988) भारत में ग्रामीण विकास, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. डॉ. गर्ग डी.पी., (1986) श्एकीकृत ग्रामीण विकास और सहकारिता, शिव प्रकाशन, इंदौर, पृ. 256.
6. के. एल. चार्लिस (1990) टोटल डेवलपमें, नेशनल बुक सेन्टर, दिल्ली।
7. मार्ग दर्शिका, 2011 मनरेगा तथा अंकेक्षण भारत सरकार।
8. योजना (पत्रिका) 2013–14, ग्रामीण विकास मंत्रालय, दिल्ली।
9. कुरुक्षेत्र पत्रिका (2014) ग्रामीण विकास मंत्रालय, दिल्ली।

****

महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध: कारण एवं निराकरण

रविना कोचे* डॉ. पूजा तिवारी**

* शोधार्थी, शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिंदवाड़ा, राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत
** विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ,जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – महिलाएँ समाज की रीढ़ हैं, और उनका सम्मान करना हमारा कर्तव्य है।

महिलाओं के बिना जीवन अधूरा है, और उनके अधिकारों की रक्षा करना हम सभी की जिम्मेदारी है।

महिलाओं के प्रति अपराध एक गहरी समस्या है, जो समाज के हर वर्ग में व्याप्त है। बलात्कार, छेड़छाड़ और घरेलू हिंसा जैसी घटनाएँ महिलाओं के आत्मविश्वास को तोड़ती हैं। और उनके अधिकारों का उल्लंघन करती हैं। हमें महिलाओं के प्रति अपराध के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए और उन्हें सुरक्षा और सम्मान दिलाने के लिए करना चाहिए। महिलाओं के बिना जीवन अधूरा है, और उनके अधिकारों की रक्षा करना हम सभी की जिम्मेदारी है।

भारतीय समाज की नैतिक और सामाजिक संरचना पर भी नकारात्मक प्रभावित डालते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो इन अपराधों के पीछे पितृसत्तात्मक व्यवस्था, लैंगिक असमानता, अशिक्षा, गरीबी और सामाजिक कुरीतियाँ प्रमुख कारण हैं। इन अपराधों का प्रभाव महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिससे उनमें भय, असुरक्षा, आत्मविश्वास की कमी और सामाजिक अलगाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अलावा, यह समस्या परिवार और समाज के समग्र विकास को बाधित करती है। महिलाओं के प्रति अपराधों की रोकथाम के लिए सामाजिक जागरूकता बढ़ाना, महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के अवसर प्रदान करना तथा उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाना भी अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ ही सरकार से बनाए गए कानूनों का कठोरता से पालन, अपराधियों को सख्त सजा और पुलिस व न्याय व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाना भी जरूरी है। समाज के सभी वर्गों–परिवार, विद्यालय, सामाजिक संस्थाएँ और सरकार–को मिलकर महिलाओं के प्रति सम्मान और समानता की भावना विकसित करनी होगी। जब समाज में महिलाओं को सुरक्षित वातावरण, समान अवसर और सम्मान मिलेगा, तभी एक स्वस्थ, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज का निर्माण संभव हो सकेगा।

भारत जैसे विशाल और विविधता वाले देश में अपराध की समस्या कई सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों से जुड़ी हुई है। इसलिए अपराधों के प्रभाव को समझना और उसके निवारण के उपायों का अध्ययन करना आवश्यक है।

इस शोध पत्र में मुख्यत: महिलाओं के प्रति अपराधों के प्रभाव एवं निवारण का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी – अपराध, महिला, समाज,सोशल मीडिया, अपराधी।

अपराध को कम करने के कुछ उपाय निम्न हैं : –

- **शिक्षा का प्रसार –** अच्छी शिक्षा से लोगों में क्या अच्छा और क्या गलत की समझ बढ़ती है। पढ़े–लिखे लोग अपराध की ओर कम झुकते हैं, इसलिए शिक्षा का स्तर बढ़ाना जरूरी है।
- **रोजगार के अवसर बढ़ाना –** बेरोजगारी कई बार लोगों को अपराध की ओर धकेल देती है। यदि सरकार और समाज अधिक रोजगार के अवसर पैदा करें तो अपराध कम हो सकता है।
- **कड़े कानून और सख्त सजा का प्रावधान –** कानून जब सख्त होते हैं तब अपराधियों को जल्दी से सजा मिलती है, तो अपराध करने से डरते हैं।
- **पुलिस व्यवस्था मजबूत करना –** पुलिस की संख्या, प्रशिक्षण और तकनीक जैसे बबजअ साइबर मॉनिटरिंग बढ़ाने से अपराध पर नियंत्रण रखा जा सकता है।
- **समाज में नैतिक मूल्यों का विकास –** परिवार और समाज में ईमानदारी, सहानुभूति और जिम्मेदारी जैसे मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए।
- **नशे पर नियंत्रण–** शराब और नशे की वजह से कई अपराध होते हैं। नशे पर नियंत्रण करने से अपराध कम हो सकते हैं।
- **जनजागरूकता और सामुदायिक भागीदारी –** लोगों को कानून और अपने अधिकारों के बारे में जागरूक करना तथा पड़ोस की निगरानी बढ़ाना भी जरूरी है।

साहित्य समीक्षा

खंडेला नरसिंह जी (2004) – अपने शोध में महिला उत्पीड़न पर काम किया है, जिसमें उन्होंने महिलाओं के खिलाफ होने वाले उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया है। उनके शोध में महिलाओं के अधिकारों, उनके साथ होने वाले दुर्व्यवहार, और उन्हें मिलने वाले न्याय के बारे में जानकारी शामिल हैं। उन्होंने अपने शोध में यह भी बताया है कि महिलाओं के खिलाफ उत्पीड़न को रोकने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं और समाज में महिलाओं के प्रति जागरूकता बढ़ाई जा सकती है।

सुरभि आग्रहा (2009) – अपने शोध में बताया कि ग्रामीण विवाहित महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा ने अपने अध्ययन के कुल 50 दंपत्ति पाया कि 35 प्रतिशत ग्रामीण दंपत्ति ने घरेलू हिंसा स्वीकार की है एवं 22 से 40 वर्ष की आयु दंपत्ति बीच मारपीट ज्यादा देखी गई है।

अनिता पटेल (2001) – अपने शोध में बताया कि महिला उत्पीड़न से पीड़ित महिलाओं की मानसिक स्थिति व उनकी संतान के विकास पर पड़ने

वाले नकारात्मक प्रभाव का वर्णन किया गया है। इस शोध पत्र में स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार से परिवार के सदस्य चाहे वह महिला हो या पुरुष दोनों ही महिला अपराध के लिए उत्तरदायी हैं। इस शोध के निष्कर्ष के आधार पर स्पष्ट किया गया कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा में जो गालियाँ देना, मार-पीट करना होता है। उसका दुष्प्रभाव बच्चों के व्यवहार पर होता है। और बच्चे भी उसी भांति व्यवहार अपने खिलौनों या सदस्य से करते हैं।

गुप्त अनुजा (2001) - अपने शोध में बताया कि महिलाओं के साथ बचपन और किशोरावस्था में यौन शोषण एक समस्या न केवल व्यक्तिगत है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक भी है। यौन शोषण के कारण महिलाओं को अपने जीवन में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जैसे कि मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, आत्मसम्मान की कमी और सामाजिक संबंधों में कठिनाइयाँ।

अपराध के कारण कुछ निम्न प्रकार के नीचे दिए गए हैं -

1. **शराब और नशे की लत -** जब पति शराब या अन्य नशे का सेवन करता है तो गुस्सा, हिंसा और नियंत्रण खोने की संभावना बढ़ जाती है, जिससे घरेलू हिंसा की घटनाएँ बढ़ती हैं।

2. **शिक्षा और जागरूकता की कमी -** कई जगहों पर अभी भी महिलाओं के अधिकारों के बारे में जानकारी कम होती है। इससे पति महिलाओं के साथ गलत व्यवहार करते हैं।

3. **पुरुष प्रधान की मानसिकता -** कुछ समाजों में अभी यह सोच है कि पति का अधिकार ज्यादा है और पत्नी को दबाकर रखना चाहिए, जिससे अत्याचार बढ़ता है।

4. **आर्थिक तनाव और बेरोजगारी -** पैसे की कमी, नौकरी का तनाव या बेरोजगारी घर में झगड़े और हिंसा का कारण बन सकते हैं।

5. **दहेज और पारिवारिक दबाव -** दहेज की मांग या परिवार के दबाव के कारण भी कई बार महिलाओं पर अत्याचार या अपराध होते हैं।

6. **गुस्सा और मानसिक समस्याएँ -** कुछ लोगों में क्रोध नियंत्रण की समस्या या मानसिक तनाव भी हिंसक व्यवहार को बढ़ा सकता है।

7. **कानून का डर कम होना -** जब लोगों को लगता है कि उन्हें सजा नहीं मिलेगी या कानून सख्ती से लागू नहीं होता तो वे अपराध करने से नहीं डरते।

शोध पद्धति - यह अध्ययन समाजशास्त्रीय अध्ययन दृष्टिकोण पर आधारित शोध पत्र है। जिसमें महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध कारण एवं निराकरण का अध्ययन सामाजिक समर्थन का विश्लेषण किया गया है। जिसमें द्वितीयक आंकड़ों जैसे विषय वस्तु से संबंधित पुस्तिकाओं का अध्ययन कर समाचार पत्रों पत्रिकाओं तथा रिपोर्ट्स आदि से तथ्य एकत्रित किया गया है।

इस शोध पत्र को द्वितीयक आंकड़ों के द्वारा तैयार किया गया है।

निष्कर्ष - प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक महिलाओं को दासता, रूढ़ियों, हिंसा का सामना करना पड़ रहा है। कभी धर्म के नाम पर कभी आधुनिकता के नाम पर महिलाओं को शोषण का सामना करना पड़ता है। जमाना कभी औरतों के लिए नहीं बदलता है ऐसा प्रतीत होता है। इस शोध प्रबंध के माध्यम से महिलाओं के विचारों और वो समाज से अपेक्षा रखती हैं। और महिला अपराधों की सूचना शासन और कानून तक पहुंचाने की सजगता और जागरूकता पर ध्यान केंद्रित किया जा सकेगा। क्योंकि आज भी महिलाएँ अपने साथ हुए अत्याचारों को छुपा लेती हैं उन्हें जागरूक किया जाना है।

अपराध को कम करने के लिए शिक्षा, रोजगार, सख्त कानून, मजबूत पुलिस और समाज में अच्छे संस्कार इन सभी का मिलकर काम करना जरूरी है।

महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध समाज के लिए एक गंभीर और चिंताजनक समस्या है। यह समस्या अशिक्षा, गलत मानसिकता, नशे की लत, सामाजिक असमानता और कानून के कमजोर पालन के कारण बढ़ती है। इसे रोकने के लिए समाज में जागरूकता बढ़ाना, महिलाओं को शिक्षा और अधिकार देना, सख्त कानून लागू करना और पुरुष-महिला समानता की भावना को बढ़ावा देना बहुत आवश्यक है। जब समाज के सभी लोग मिलकर महिलाओं के सम्मान और सुरक्षा के लिए काम करेंगे, तभी एक सुरक्षित और सभ्य समाज का निर्माण हो सकेगा।

इस शोध पत्र का मुख्य केंद्रबिंदु है यह शोध पत्र समाज के लिए बहुत उपयोगी साबित होगा ऐसी आशा करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पटेल अनिता (2001) महिला उत्पीड़न का सिलसिला,शोध-पत्र वॉल्यूम।
2. खंडेला नरसिंह जी (2004) महिला उत्पीड़न, जयपुर प्रकाशन।
3. आग्रहा सुरभि(2009)ग्रामीण विवाहित महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा, दिल्ली प्रकाशन।
4. गुप्त अनुजा (2001) महिलाओं के साथ बचपन और किशोरावस्था में यौन शोषण एक समस्या, सीबीएस प्रकाशन।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Environmental Effects of Industrial Development in Selected Industrial Region of Bilaspur District

Dr. Kajal Moitra* Dipak Mandal**

*Professor (Geography) and Head (Social Science) Dr. C V Raman University. Bilaspur (CG) INDIA
**Research Scholar (Geography) Dept. of Social Science, Dr. C V Raman University, Bilaspur (CG) INDIA

Abstract: Industrial development is an essential component of regional economic growth, generating employment opportunities, infrastructure, and technological advancement. However, rapid industrial expansion often leads to significant environmental degradation if adequate environmental safeguards are not implemented. The present study examines the environmental effects of industrial development in selected industrial regions of Bilaspur District. The research focuses on major environmental concerns, including air pollution, water pollution, soil degradation, noise pollution, solid waste generation, reduction in green cover, and health-related problems experienced by nearby communities. The study is based on primary data collected from 400 respondents residing in villages located near industrial establishments. A structured questionnaire based on a five-point Likert scale was used to assess public perception regarding environmental impacts. The findings indicate that industrial activities have considerably affected environmental quality, with respondents expressing serious concerns regarding deteriorating air and water quality, increasing industrial waste, declining vegetation, and growing health issues. The study concludes that sustainable industrial development requires strict implementation of environmental regulations, continuous monitoring, adoption of cleaner technologies, effective waste management, and community participation to minimize ecological degradation while maintaining economic growth.

Keywords: Industrial Development, Environmental Pollution, Sustainable Development, Industrial Regions, Environmental Impact.

Introduction - Industrialization is widely recognized as one of the primary drivers of economic transformation and regional development. It contributes significantly to employment generation, industrial production, infrastructure development, urbanization, and improvement in living standards. Developing countries have increasingly promoted industrial growth to accelerate economic progress and improve regional competitiveness. However, rapid industrial expansion has also intensified environmental challenges, particularly in regions dominated by mining, steel production, thermal power generation, engineering industries, and manufacturing activities.

Industrial processes release pollutants into the atmosphere, contaminate water resources, degrade agricultural land, generate large quantities of solid waste, and contribute to the depletion of natural vegetation. These environmental changes affect ecosystem stability, biodiversity, agricultural productivity, and public health. Communities residing near industrial regions are particularly vulnerable because of continuous exposure to industrial emissions, hazardous waste, excessive noise, and contaminated natural resources.

The selected industrial region of Bilaspur District has experienced considerable industrial expansion during recent decades. Although this growth has strengthened the regional economy, it has also increased environmental pressure on surrounding villages and ecosystems. Therefore, assessing the environmental consequences of industrial development is essential for promoting sustainable industrial planning and environmental conservation.

Review of Literature

Several researchers have examined the relationship between industrial development and environmental sustainability. Early studies emphasized the economic benefits of industrialization while recognizing the environmental costs associated with rapid industrial expansion.

Allen J. Scott highlighted that industrial concentration accelerates regional economic growth but simultaneously increases pressure on environmental resources. David W. Pearce emphasized the importance of integrating environmental considerations into development planning to achieve sustainable economic growth. Studies by Robert Costanza demonstrated that environmental degradation imposes long-term economic and social costs if natural

resources are not managed sustainably.

Indian researchers have also documented the environmental impacts of industrialization, particularly in mining and heavy industrial regions. Their findings indicate that industrial emissions, untreated wastewater, fly ash disposal, mining activities, and deforestation significantly affect air quality, water resources, agricultural productivity, and public health. Most previous studies recommend stronger environmental governance, cleaner production technologies, regular environmental monitoring, and increased community participation. However, relatively limited research has focused specifically on the environmental effects of industrial development in selected industrial regions of Bilaspur District, creating the need for the present investigation.

Objectives: The study was conducted with the following objectives:

1. To examine the environmental effects of industrial development in the selected industrial region of Bilaspur District.
2. To assess the impact of industrial activities on air, water, soil, and noise pollution.
3. To evaluate the influence of industrialization on solid waste generation, green cover, and public health.
4. To suggest measures for promoting environmentally sustainable industrial development.

Methodology: The present study is based on a descriptive and analytical research design. Both primary and secondary sources of information were utilized. Primary data were collected through structured questionnaires administered to 400 respondents residing in villages surrounding the selected industrial region. Respondents were selected using purposive and random sampling techniques to ensure adequate representation of different socio-economic groups.

The questionnaire consisted of statements related to major environmental issues associated with industrial development, including air pollution, water contamination, soil degradation, noise pollution, solid waste generation, reduction in green cover, and health problems. Responses were obtained using a five-point Likert scale. Secondary information was collected from government reports, environmental publications, research articles, census documents, industrial reports, and relevant academic literature. The collected data were analyzed using descriptive statistical techniques and interpreted to understand the environmental consequences of industrial development.

Discussion: The findings of the present study reveal that industrial development has produced a dual impact on the selected industrial region of Bilaspur District. On the one hand, industrialization has contributed significantly to economic development by generating employment opportunities, promoting infrastructure development, encouraging urbanization, and increasing regional income. On the other hand, rapid industrial expansion has created considerable environmental challenges that have affected the ecological balance and the quality of life of nearby communities. The perceptions of respondents indicate that environmental degradation has become an inevitable consequence of unplanned industrial growth and inadequate environmental management practices.

Among the various environmental issues investigated, air pollution emerged as the most significant concern. Respondents reported that emissions from manufacturing industries, mining activities, thermal power plants, transportation, and construction work have substantially deteriorated ambient air quality. Continuous release of particulate matter, sulphur dioxide, nitrogen oxides, carbon monoxide, and industrial dust has resulted in visible environmental degradation. The accumulation of dust on agricultural fields, residential buildings, and vegetation has become a common phenomenon in villages located close to industrial establishments. Poor air quality not only affects visibility but also reduces agricultural productivity by interfering with plant growth and photosynthesis. These findings support earlier studies which emphasize that industrial emissions remain one of the major contributors to atmospheric pollution in rapidly industrializing regions.

Water pollution was identified as another major environmental concern affecting the study area. Respondents believed that industrial wastewater, mining runoff, fly ash disposal, and improper management of industrial effluents have considerably deteriorated the quality of both surface water and groundwater. Local ponds, streams, canals, and groundwater sources used for domestic purposes and irrigation have become increasingly vulnerable to contamination. Water pollution not only threatens drinking water availability but also affects agricultural activities, livestock, fisheries, and aquatic biodiversity. Many respondents expressed concern that contaminated water has increased the incidence of water-borne diseases and reduced the productivity of agricultural lands dependent on local water resources. These findings indicate the necessity of strengthening wastewater treatment facilities and implementing stricter environmental monitoring to prevent further degradation of water resources.

The study further highlights soil pollution as an important environmental consequence of industrial development. Disposal of industrial waste, fly ash, mining overburden, chemical residues, and construction debris has adversely affected soil quality in villages surrounding industrial zones. Respondents perceived that contamination of agricultural land has reduced soil fertility, resulting in lower crop productivity and increased dependence on chemical fertilizers. Continuous deposition of industrial dust and hazardous substances alters soil composition and negatively affects microorganisms essential for maintaining soil health. In addition, mining activities disturb natural

landforms and increase the risk of soil erosion and land degradation. These observations demonstrate that improper industrial waste management has long-term implications for agricultural sustainability and environmental conservation.

Noise pollution has also emerged as a serious environmental issue in the selected industrial region. Heavy machinery, mining operations, industrial equipment, transportation of raw materials, and continuous industrial production generate excessive noise levels that affect surrounding settlements. Respondents reported that prolonged exposure to industrial noise has resulted in stress, sleep disturbances, headaches, reduced work efficiency, hearing-related problems, and psychological discomfort. Noise pollution also affects school environments, healthcare facilities, and wildlife habitats located near industrial areas. Although industries generally focus on controlling air and water pollution, noise management often receives comparatively less attention. Therefore, effective implementation of sound barriers, green buffer zones, maintenance of industrial machinery, and enforcement of permissible noise standards are essential for improving environmental quality.

Another important finding of the study relates to the increasing generation of industrial solid waste. Respondents observed that industrialization has significantly increased the production of fly ash, slag, metal scrap, chemical residues, construction debris, hazardous waste, and mining overburden. Inadequate segregation, improper disposal, and open dumping of industrial waste have intensified land degradation and environmental contamination. Solid waste accumulation not only occupies valuable land resources but also creates secondary pollution through leaching, dust generation, and contamination of nearby water bodies. The study suggests that scientific waste management practices, recycling, resource recovery, and environmentally sound disposal techniques are essential for minimizing the adverse environmental impacts associated with industrial solid waste.

The decline in green cover was another important environmental issue identified during the investigation. Respondents perceived that rapid industrial expansion, mining activities, infrastructure development, and urbanization have considerably altered natural landscapes by replacing forests, agricultural land, and open spaces with industrial infrastructure. Reduction in vegetation has weakened ecological stability, increased local temperatures, reduced biodiversity, and diminished the natural capacity of ecosystems to absorb atmospheric pollutants. Although several industries have implemented plantation programmes under Corporate Social Responsibility (CSR) initiatives and environmental compliance requirements, respondents believed that these efforts are insufficient to compensate for the extensive loss of natural vegetation. The findings emphasize the need for large-scale afforestation, ecological restoration of degraded land, and development of green belts around industrial areas to improve environmental sustainability.

Public health emerged as one of the most critical dimensions of environmental degradation associated with industrial development. Respondents reported frequent occurrence of respiratory illnesses, asthma, chronic cough, skin diseases, eye irritation, allergies, headaches, and other pollution-related health problems among residents living close to industrial establishments. Continuous exposure to polluted air, contaminated water, excessive noise, and hazardous industrial waste has adversely affected both physical and mental well-being. Children, elderly people, and individuals with pre-existing health conditions were perceived to be more vulnerable to industrial pollution. Increased healthcare expenditure, reduced labour productivity, and declining quality of life further highlight the socio-economic consequences of environmental degradation.

Overall, the findings demonstrate that while industrial development has played an important role in promoting regional economic growth, its environmental costs have become increasingly evident. The study indicates that sustainable industrial development cannot be achieved solely through economic expansion but must also incorporate environmental protection, pollution control, efficient resource utilization, and community participation. Adoption of cleaner production technologies, strict enforcement of environmental regulations, regular environmental impact assessments, continuous monitoring of pollution levels, scientific waste management, restoration of degraded ecosystems, and active involvement of local communities are essential for ensuring a balance between industrial growth and environmental sustainability. Such integrated approaches will help minimize ecological degradation while supporting long-term economic development and improving the quality of life of people residing in industrial regions.

Conclusion: Industrial development has significantly contributed to the economic advancement of the selected industrial region of Bilaspur District by creating employment opportunities, improving infrastructure, and supporting regional growth. However, the environmental consequences of rapid industrialization have become increasingly evident. Air pollution, water contamination, soil degradation, excessive noise, industrial waste generation, reduction in green cover, and growing health problems collectively threaten environmental sustainability and public well-being. Achieving sustainable industrial development requires balancing economic growth with environmental protection. Industries should adopt cleaner production technologies, strengthen pollution control systems, improve waste management practices, increase afforestation efforts, and comply strictly with environmental regulations. Continuous environmental monitoring, public awareness programmes,

and active participation of local communities are equally important for ensuring sustainable industrial development. The study recommends integrated environmental planning and responsible industrial governance to minimize ecological degradation while supporting long-term economic development.

References:-

1. Costanza, R., d'Arge, R., de Groot, R., Farber, S., Grasso, M., Hannon, B., et al. (1997). *The value of the world's ecosystem services and natural capital*. Nature, 387(6630), 253–260.
2. Pearce, D., & Turner, R. K. (1990). *Economics of Natural Resources and the Environment*. Harvester Wheatsheaf.
3. Scott, A. J. (2006). *Geography and Economy*. Oxford University Press.
4. Government of India. (2023). *Economic Survey of India 2022–23*. Ministry of Finance.
5. Government of Chhattisgarh. (2024). *Economic Survey of Chhattisgarh 2023–24*. Directorate of Economics and Statistics.
6. Central Pollution Control Board. (2023). *Annual Report*. Ministry of Environment, Forest and Climate Change.
7. Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2023). *State of Environment Report*. Government of India.
8. World Bank. (2021). *Pollution Management and Environmental Health Program*. World Bank Publications.

****

रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन

मनोहर दान*

* ई-96, सेक्टर 12, सिद्धार्थ नगर, मालवीय नगर, जयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – आधुनिक हिंदी साहित्य में रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय चेतना के सर्वाधिक सशक्त कवियों में परिगणित किए जाते हैं। उन्होंने ऐसे समय में साहित्य सृजन किया जब भारतीय समाज औपनिवेशिक शासन, सांस्कृतिक संक्रमण, सामाजिक विषमता तथा राजनीतिक संघर्षों से गुजर रहा था। दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा तथा विश्वबंधुत्व की व्यापक भावना समाहित है। प्रस्तुत शोध आलेख में दिनकर के काव्य में निहित राष्ट्रीय चेतना के विविध आयामों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। विशेष रूप सेरेणुका, हुंकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथीतथापरशुराम की प्रतीक्षाजैसी कृतियों के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि दिनकर की राष्ट्रीय चेतना भारतीय समाज के सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा नैतिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है।

शब्द कुंजी – राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय, दिनकर, आधुनिक हिंदी कविता, स्वतंत्रता आंदोलन।

प्रस्तावना – साहित्य और समाज का संबंध अत्यंत घनिष्ठ माना गया है। साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं होता, बल्कि वह समाज की सामूहिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्यों और ऐतिहासिक अनुभवों का संवाहक भी होता है। किसी राष्ट्र की राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक संरचनाएँ तथा सांस्कृतिक मान्यताएँ उसके साहित्य में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अभिव्यक्त होती हैं। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में राष्ट्रीय चेतना का विकास विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भारत में राष्ट्रीय पुनर्जागरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। विदेशी शासन के दमन, आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक हीनता की भावना ने भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित किया। इस परिस्थिति में साहित्यकारों ने जनता में राष्ट्रीय भावना जागृत करने का दायित्व निभाया। भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलालचतुर्वेदी तथा सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे कवियों ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसी परंपरा को रामधारी सिंह दिनकर ने नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

दिनकर का साहित्य भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ। उनकी कविताओं में संघर्ष, स्वाभिमान, क्रांति और सांस्कृतिक गौरव के स्वर अत्यंत मुखर हैं। उन्होंने राष्ट्र को केवल राजनीतिक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखा। उनकी राष्ट्रीयता में भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था, सामाजिक विषमताओं के प्रति असंतोष तथा मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई देती है।

राष्ट्रीय चेतना : अवधारणा एवं स्वरूप – राष्ट्रीय चेतना आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। सामान्यत: इसका अर्थ किसी राष्ट्र के प्रति प्रेम, निष्ठा और समर्पण की भावना से लगाया जाता है, किंतु इसका वास्तविक स्वरूप इससे कहीं अधिक व्यापक है। राष्ट्रीय चेतना में साझा इतिहास, सांस्कृतिक परंपराएँ, भाषा, सामाजिक मूल्य तथा सामूहिक आकांक्षाएँ सम्मिलित होती हैं।[1]

भारतीय राष्ट्रीयता की विशेषता यह है कि इसका आधार केवल राजनीतिक एकता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निरंतरता भी है। भारत विभिन्न भाषाओं, धर्मों और जातीय समूहों का देश है, फिर भी उसकी सांस्कृतिक आत्मा सदियों से एक रही है। इसी सांस्कृतिक एकता ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं:

1. **सांस्कृतिक आयाम –** सांस्कृतिक राष्ट्रीयता किसी राष्ट्र की परंपराओं, भाषाओं, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक उपलब्धियों के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न करती है। दिनकर भारतीय संस्कृति को मानव सभ्यता की महत्वपूर्ण धरोहर मानते हैं।
2. **राजनीतिक आयाम –** राजनीतिक राष्ट्रीयता का संबंध स्वतंत्रता, स्वशासन और लोकतांत्रिक मूल्यों से है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान यह चेतना अत्यंत प्रबल रूप में विकसित हुई।
3. **सामाजिक आयाम –** राष्ट्रीय चेतना तभी सार्थक मानी जा सकती है जब समाज में समानता, न्याय और बंधुत्व की स्थापना हो। दिनकर सामाजिक विषमताओं को राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक मानते हैं।
4. **मानवीय आयाम –** दिनकर की राष्ट्रीयता अंतत: मानवता की व्यापक भावना में परिणत होती है। वे संकीर्ण राष्ट्रवाद के समर्थक नहीं हैं।[2]

रामधारी सिंह दिनकर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं युगीन पृष्ठभूमि– रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ। उनका बचपन आर्थिक कठिनाइयों में बीता, किंतु उन्होंने स्वाध्याय और परिश्रम के बल पर व्यापक ज्ञान अर्जित किया।

इतिहास, दर्शन, राजनीति और भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता थी।

दिनकर ऐसे समय में साहित्य क्षेत्र में आए जब भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहा था। देश में असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसी घटनाएँ राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित कर रही थीं। इन परिस्थितियों का प्रभाव दिनकर के काव्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

उनकी प्रमुख कृतियों मेंरेणुका, हुंकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षातथासंस्कृति के चार अध्यायविशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्हेंउर्वशीके लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।

दिनकर की काव्य प्रतिभा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनकी ओजस्वी अभिव्यक्ति है। उनकी कविताएँ केवल भावनात्मक आवेग की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि उनमें गहन वैचारिकता भी विद्यमान है। उन्होंने कविता को समाज परिवर्तन का प्रभावी माध्यम माना।[3]

रेणुका में राष्ट्रीय चेतना– दिनकर की प्रारंभिक काव्य कृतियों में रेणुका का विशेष महत्व है। इस संग्रह का प्रकाशन ऐसे समय में हुआ जब भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन नई गति प्राप्त कर रहा था।रेणुकामें राष्ट्रीय चेतना अपने प्रारंभिक किंतु प्रभावशाली रूप में दिखाई देती है।

इस संग्रह में कवि ने भारत के गौरवशाली अतीत का स्मरण करते हुए वर्तमान पीढ़ी को प्रेरणा देने का प्रयास किया है। दिनकर का विश्वास था कि कोई भी राष्ट्र अपने इतिहास से कटकर प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए वे भारतीय संस्कृति और परंपरा की उपलब्धियों को राष्ट्रीय आत्मविश्वास का आधार मानते हैं।

रेणुका में मातृभूमि के प्रति गहरा प्रेम व्यक्त हुआ है। कवि के लिए राष्ट्र केवल भूभाग नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक सत्ता है। विदेशी शासन के कारण भारतीय समाज में जो हीन भावना उत्पन्न हुई थी, दिनकर उसे दूर करना चाहते हैं। वे जनता में आत्मसम्मान और स्वाधीनता की चेतना जागृत करने का प्रयास करते हैं।[4]

हुंकार में राष्ट्रीय चेतना– यदि रेणुका राष्ट्रीय भावना की कोमल अभिव्यक्ति है, तोहुंकार उसका प्रखर और ऊर्जस्वित स्वरूप है। इस कृति में कवि अन्याय, दमन और पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करता है।

हुंकार का मूल स्वर विद्रोह है। किंतु यह विद्रोह विनाशकारी नहीं, बल्कि रचनात्मक है। दिनकर मानते हैं कि जब समाज में अन्याय बढ़ जाए और शोषण असहनीय हो जाए, तब उसके विरुद्ध संघर्ष करना आवश्यक हो जाता है।

इस संग्रह में युवाओं को विशेष रूप से संबोधित किया गया है। कवि उन्हें राष्ट्र निर्माण की सबसे बड़ी शक्ति मानता है। उनकी राष्ट्रीय चेतना कर्मशीलता, साहस और त्याग की भावना से प्रेरित है।[5]

कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना– दिनकर के काव्य साहित्य में कुरुक्षेत्र एक ऐसी कृति है जिसमें राष्ट्रीय चेतना अपने परिपक्व, दार्शनिक तथा मानवीय स्वरूप में अभिव्यक्त हुई है। यह काव्यमहाभारतके युद्धोत्तर प्रसंग पर आधारित होते हुए भी केवल पौराणिक आख्यान का पुनर्पाठ नहीं है, बल्कि आधुनिक विश्व की राजनीतिक और नैतिक समस्याओं का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् संपूर्ण विश्व हिंसा, साम्राज्यवाद और विनाशकारी प्रवृत्तियों से जूझ रहा था। ऐसी परिस्थितियों में दिनकर ने महाभारत के प्रसंगों को आधुनिक संदर्भों से जोड़ते हुए युद्ध और शांति के प्रश्नों पर पुनर्विचार किया।

दिनकर युद्ध को स्वभावतः अनिष्टकारी मानते हैं, किंतु वे यह भी स्वीकार करते हैं कि जब अन्याय, अत्याचार और शोषण अपनी सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं, तब उनके प्रतिरोध के लिए संघर्ष आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि न्याय, समता और मानवीय गरिमा की स्थापना का माध्यम बन जाती है।

दिनकर की दृष्टि में राष्ट्रीयता का अंतिम लक्ष्य मानव कल्याण है। वे किसी भी प्रकार के उग्र और संकीर्ण राष्ट्रवाद के विरोधी हैं। उनकी राष्ट्रीय चेतना विश्वबंधुत्व और सहअस्तित्व की भावना से प्रेरित है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र में युद्ध की विभीषिका के साथ–साथ शांति की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया है।

दिनकर के अनुसार शांति केवल युद्ध की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि वह सामाजिक न्याय और मानवीय समानता पर आधारित व्यवस्था का परिणाम है। यदि समाज में आर्थिक विषमता, शोषण और अन्याय विद्यमान रहेंगे तो स्थायी शांति की स्थापना संभव नहीं हो सकती। इस दृष्टि से कुरुक्षेत्र दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक विकसित रूप प्रस्तुत करता है।[6]

रश्मिरथी में राष्ट्रीय चेतना– रश्मिरथी दिनकर की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इस प्रबंध काव्य का केंद्रीय पात्र महाभारत का महायोद्धा कर्ण है। दिनकर ने कर्ण के माध्यम से सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और राष्ट्रीय समरसता के आदर्शों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यद्यपि रश्मिरथी प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय काव्य नहीं है, तथापि इसकी मूल संवेदना राष्ट्रीय चेतना से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। दिनकर ने कर्ण के चरित्र को ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है जो जन्मना निम्न समझे जाने के कारण निरंतर अपमान और उपेक्षा का सामना करता है, किंतु अपनी प्रतिभा, परिश्रम और आत्मबल के माध्यम से महानता प्राप्त करता है।

कर्ण का संघर्ष भारतीय समाज में विद्यमान जातीय और सामाजिक विषमताओं का प्रतीक बन जाता है। दिनकर इस चरित्र के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति तभी संभव है जब उसके प्रत्येक नागरिक को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो। सामाजिक अन्याय राष्ट्रीय एकता को कमजोर करता है और राष्ट्र की सामूहिक शक्ति को क्षीण करता है। रश्मिरथीमें कर्ण की कर्तव्यनिष्ठा, मित्रता और आत्मसम्मान की भावना भी राष्ट्रीय चेतना के महत्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करती है। दिनकर यह स्थापित करना चाहते हैं कि राष्ट्रनिर्माण के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन आवश्यक है।

हालाँकि कुछ आलोचकों ने यह मत व्यक्त किया है कि कर्ण की दुर्योधन के प्रति अत्यधिक निष्ठा नैतिक दृष्टि से प्रश्नांकित है, किंतु दिनकर ने उसके व्यक्तित्व को मानवीय जटिलताओं के साथ प्रस्तुत किया है। यही कारण है किरश्मिरथीसामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण कृति बन जाती है।[7]

परशुराम की प्रतीक्षामें राष्ट्रीय चेतना– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज जिन चुनौतियों से जूझ रहा था, उनका प्रभाव दिनकर की उत्तरवर्ती रचनाओं पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।परशुराम की प्रतीक्षा इसी संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है।

इस रचना में परशुराम केवल पौराणिक चरित्र नहीं हैं, बल्कि वे अन्याय,

भ्रष्टाचार और नैतिक पतन के विरुद्ध संघर्ष करने वाली परिवर्तनकारी शक्ति के प्रतीक हैं। दिनकर स्वतंत्र भारत की परिस्थितियों से संतुष्ट नहीं दिखाई देते। वे अनुभव करते हैं कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के बावजूद समाज में आर्थिक विषमता, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, नैतिक पतन तथा सामाजिक असंतुलन जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं।

दिनकर की दृष्टि में स्वतंत्रता केवल शासन परिवर्तन का नाम नहीं है। उसका वास्तविक उद्देश्य सामाजिक और नैतिक पुनर्निर्माण होना चाहिए। यदि स्वतंत्रता के पश्चात भी समाज में अन्याय और शोषण बना रहे, तो स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ अधूरा रह जाता है।

इस कृति में कवि ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता अनुभव करता है जो राष्ट्रहित को व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर रखकर समाज को नई दिशा प्रदान कर सके। इस प्रकारपरशुराम की प्रतीक्षास्वतंत्र भारत के संदर्भ में राष्ट्रीय चेतना का आत्मालोचनात्मक स्वर प्रस्तुत करती है।[8]

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन– रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय चेतना बहुआयामी और व्यापक है। उसमें सांस्कृतिक गौरव, राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, मानवीय संवेदना तथा विश्वबंधुत्व की भावनाओं का समन्वय दिखाई देता है।

उनकी राष्ट्रीयता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका सांस्कृतिक आधार है। दिनकर भारतीय संस्कृति को राष्ट्र की आत्मा मानते हैं। वे भारतीय सभ्यता की समन्वयवादी परंपरा, आध्यात्मिक दृष्टि तथा मानवीय मूल्यों को राष्ट्रीय जीवन का आधार स्वीकार करते हैं।[8]

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना संघर्षशील भी है। वे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध को राष्ट्रीय कर्तव्य मानते हैं।हुंकारऔर रेणुका में यह स्वर अत्यंत प्रबल रूप में उपस्थित है।

इसके साथ ही उनकी राष्ट्रीयता सामाजिक चेतना से भी अनुप्राणित है। वे जातीय भेदभाव, आर्थिक असमानता और सामाजिक अन्याय को राष्ट्र की प्रगति के लिए घातक मानते हैं।रश्मिरथी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

दिनकर की राष्ट्रीयता का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष उसका मानवतावादी स्वरूप है। वे संकीर्ण राष्ट्रवाद के विरोधी हैं। उनकी दृष्टि में राष्ट्रप्रेम का अंतिम उद्देश्य समस्त मानवता के कल्याण में निहित होना चाहिए।[9]

फिर भी उनकी राष्ट्रीय चेतना की कुछ सीमाएँ भी दृष्टिगत होती हैं। कुछ आलोचकों का मत है कि उनकी प्रारंभिक कविताओं में भावनात्मक आवेग अपेक्षाकृत अधिक है और वैचारिक संतुलन कुछ स्थानों पर कम दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने यह भी संकेत किया है कि दिनकर का सांस्कृतिक दृष्टिकोण कभी–कभी अतीत के गौरव पर अत्यधिक केंद्रित प्रतीत होता है। तथापि इन सीमाओं के बावजूद उनकी राष्ट्रीय चेतना का महत्व कम नहीं होता।[10]

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना पर आलोचकों की दृष्टि– रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का मूल्यांकन हिंदी आलोचना जगत में विविध दृष्टिकोणों से किया गया है। हिंदी साहित्य के प्रख्यात विद्वान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि भारतीय साहित्य की मूल चेतना सदैव लोकमंगल, सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय संवेदनाओं से अनुप्राणित रही है। इसी परंपरा के आधुनिक प्रतिनिधि कवि के रूप में दिनकर भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पुनरुत्थान का कार्य करते हैं।[11]

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीयता का स्वर केवल राजनीतिक प्रतिरोध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता तथा सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता के प्रश्नों को भी समाहित किया। दिनकर के काव्य में यह प्रवृत्ति अत्यंत सशक्त रूप में दिखाई देती है।[12]

डॉ. शिवकुमार मिश्र ने दिनकर को भारतीय जनमानस का कवि माना है। उनके अनुसार दिनकर की राष्ट्रीयता किसी विशेष वर्ग अथवा समुदाय की राष्ट्रीयता नहीं है, बल्कि वह समग्र भारतीय समाज की आकांक्षाओं और संघर्षों की प्रतिनिधि है। दिनकर ने अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्र को एक जीवंत सांस्कृतिक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया।[13]

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का मत है कि दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का विकास भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की परिस्थितियों में हुआ, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उसमें परिवर्तनशीलता बनी रही। उनकी उत्तरवर्ती रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक आत्मविश्लेषणात्मक और यथार्थवादी हो जाता है।[14]

डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना के विकास की चर्चा करते हुए दिनकर को मैथिलीशरण गुप्त के पश्चात राष्ट्रीय काव्यधारा का सबसे प्रभावशाली कवि माना है। उनके अनुसार दिनकर ने वीर रस की परंपरा को आधुनिक सामाजिक संदर्भों से जोड़कर राष्ट्रीय चेतना को नई ऊर्जा प्रदान की।[15]

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि दिनकर के साहित्य में राष्ट्रीयता का आधार सांस्कृतिक स्मृति और ऐतिहासिक चेतना है। वे अतीत के गौरव का स्मरण केवल भावनात्मक कारणों से नहीं करते, बल्कि उसे वर्तमान समाज के नैतिक पुनर्निर्माण का साधन मानते हैं।[16]

डॉ. नगेन्द्र ने दिनकर के काव्य को ओज, विचार और संवेदना का अद्भुत समन्वय बताया है। उनके अनुसार दिनकर की कविताएँ पाठक के भीतर केवल भावनात्मक उत्तेजना उत्पन्न नहीं करतीं, बल्कि उसे सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्वों के प्रति भी सजग बनाती हैं।[17]

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने दिनकर के राष्ट्रीय चिंतन को भारतीय परंपरा और आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों के मध्य सेतु की संज्ञा दी है। वे मानते हैं कि दिनकर की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक अस्मिता के साथ–साथ लोकतांत्रिक समानता और मानवीय स्वतंत्रता का भी समर्थन करती है।[18]

डॉ. सत्यकाम वर्मा ने विशेष रूप से दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का अध्ययन करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि दिनकर का राष्ट्रवाद संकीर्ण राजनीतिक राष्ट्रवाद न होकर सांस्कृतिक और मानवीय राष्ट्रवाद है। उनके काव्य में राष्ट्र की अवधारणा व्यक्ति, समाज और विश्वमानवता के मध्य समन्वय स्थापित करती है।[19]

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार भारतीय संस्कृति की वास्तविक शक्ति उसकी समन्वयकारी प्रवृत्ति में निहित है। दिनकर इसी सांस्कृतिक परंपरा के कवि हैं, जिन्होंने राष्ट्रीयता को सामाजिक न्याय और जनहित से जोड़कर उसकी व्याख्या की है।[20]

उपसंहार – निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रामधारी सिंह दिनकर आधुनिक हिंदी कविता के ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना को व्यापक वैचारिक आधार प्रदान किया। उनकी राष्ट्रीयता में स्वतंत्रता, स्वाभिमान, सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक न्याय तथा मानवीय मूल्यों का समन्वय दिखाई देता है।

रेणुका और हुंकार में स्वतंत्रता आंदोलन की ऊर्जा और क्रांतिकारी चेतना व्यक्त हुई है।कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीयता का दार्शनिक और मानवतावादी स्वरूप उभरता है।रश्मिरथी सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को राष्ट्रीय संदर्भों से जोड़ती है, जबकि परशुराम की प्रतीक्षा स्वतंत्र भारत की समस्याओं पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार दिनकर की राष्ट्रीय चेतना किसी संकीर्ण राजनीतिक विचारधारा की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा विश्वमानवता की भावना से अनुप्राणित एक व्यापक राष्ट्रीय दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है। वर्तमान समय में भी जब भारतीय समाज अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, दिनकर का काव्य हमें राष्ट्रीय जीवन के मूल्यों पर पुनर्विचार करने की प्रेरणा प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2015, पृ. 482।
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2018, पृ. 15।
3. नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ. 87।
4. रामधारी सिंह दिनकर, रेणुका, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2017, पृ. 11।
5. रामधारी सिंह दिनकर, हुंकार, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2016, पृ. 19।
6. रामधारी सिंह दिनकर, कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2017, पृ. 32।
7. रामधारी सिंह दिनकर, रश्मिरथी, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2019, पृ. 58।
8. रामधारी सिंह दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2018, पृ. 41।
9. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य और राष्ट्रीय चेतना, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 154।
10. सीतारामचतुर्वेदी, दिनकर और उनका साहित्य, वाराणसी : हिंदी प्रचारक संस्थान, 1998, पृ. 208।
11. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 271।
12. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2009, पृ. 119।
13. डॉ. शिवकुमार मिश्र, दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2005, पृ. 131।
14. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिंदी साहित्य, प्रयागराज : हिंदी परिषद प्रकाशन, 2014, पृ. 326।
15. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2013, पृ. 412।
16. डॉ. रामस्व रूपचतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2011, पृ. 289।
17. डॉ. नगेन्द्र, विचार और विवेचन, नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2007, पृ. 94।
18. डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, रामधारी सिंह दिनकर, नई दिल्ली ख साहित्य अकादमी, 2003, पृ. 78।
19. डॉ. सत्यकाम वर्मा, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना, कानपुर : विकास प्रकाशन, 2015, पृ. 165।
20. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 214।

****

Green Infrastructure as a Strategy for Enhancing Urban Climate Resilience: A Literature Review

Ankita Pandey*

***Department of Geography, Mohanlal Sukhadiya University, Udaipur (Raj.) INDIA**

Abstract: Cities face an increasing range of compound climate risks, including more frequent heat waves, flash flooding, biodiversity collapse and declining environmental quality. Green infrastructure (GI) the planned networks of natural and semi-natural features embedded in urban fabrics, has emerged as a central paradigm for addressing these challenges while delivering multiple co-benefits. This literature review synthesises empirical and conceptual scholarship primarily published between 2015 and 2024 to evaluate the evidence base for GI as a climate resilience strategy in three key areas of urban climate resilience: urban heat island (UHI) mitigation, stormwater and flood management, and urban biodiversity and ecosystem services. Using studies from cities across Europe, North America, Asia-Pacific and the Global South, the review finds strong evidence that well-designed GI interventions can reduce urban air temperatures by 0.3-3 °C, attenuate stormwater runof f by 40-85% and substantially increase urban biodiversity and human well-being. However, the review also highlights persistent gaps in the literature such as geographical bias toward the Global North, limited long-term monitoring data, limited attention to the dimensions of equity and under-representation of integrated GI network assessments. The paper concludes with a research agenda for the future which stresses the necessity for the integration of GI into more comprehensive, governance-led urban climate adaptation frameworks.

Keywords: Green infrastructure, urban climate resilience, urban heat island, stormwater management, urban biodiversity, nature-based solutions, ecosystem services.

Introduction - Urbanization and climate change are accelerating, increasing environmental risks in cities such as extreme heat, flooding and ecological degradation. Cities are facing increasing challenges from rising temperatures, changing precipitation patterns and growing exposure to climate hazards, with more than half of the world's population living in urban areas and with urban growth expected to continue (United Nations, 2018; Elmqvist et al., 2019). Climate resilience is now front and centre of urban planning and governance due to these pressures.

Green infrastructure (GI) has become a major approach for addressing these issues by incorporating ecological processes into urban systems. Unlike traditional grey infrastructure designed for single hazards, GI is a network of natural and semi-natural elements, such as parks, urban forests, street trees, wetlands, bioswales and green roofs that offers multiple environmental and social benefits (Benedict & McMahon, 2006; Pauleit et al., 2017). GI is increasingly viewed not only as an amenity but also as a type of functional infrastructure that can offer measurable climate adaptation benefits.

The idea of GI has moved from landscape ecology and biodiversity conservation to a wider concept addressing ecosystem services and nature-based solutions (Cohen-Shacham et al., 2016). Consequently, GI is now recognised as a major component of urban climate resilience, providing multiple benefits of temperature regulation, flood mitigation, biodiversity conservation and human well-being at the same time.

Although there has been a significant increase in research on GI, the evidence remains patchy in thematic domains and geographically skewed towards cities in the Global North. Many studies focus on cooling, flood management or biodiversity separately, limiting understanding of their combined contribution to urban resilience. Furthermore, it is not clear whether the findings are transferable to rapidly urbanising regions in Asia, Africa and Latin America (Nagendra et al., 2018).

This review therefore provides a synthesis of recent literature published mainly in the period 2015–2024 towards assessing the role of green infrastructure in improving urban climate resilience. The review has three major focuses: urban heat island mitigation, stormwater and flood management, and biodiversity and ecosystem services. It also identifies important research gaps and identifies priorities for future research.

Conceptual Foundations: Green Infrastructure and Urban Climate Resilience: Green infrastructure (GI) is a network of natural and semi-natural elements that provide environmental, social and economic benefits in urban areas. These include parks, urban forests, wetlands, green roofs, bioswales, and ecological corridors that function in concert rather than as isolated green spaces (Benedict & McMahon, 2006; Ahern, 2013). From an infrastructure perspective, these features are planned and managed to deliver particular ecosystem functions and climate-related services.

Closely related concepts such as nature-based solutions (NbS) and ecosystem-based adaptation have broadened GI research. Within this framework, GI is often seen as an operational version of NbS that includes ecological processes in urban planning to face climate challenges and produce multiple co-benefits (Cohen-Shacham et al., 2016; Lafortezza et al., 2018).

Urban climate resilience is the analytical framework to understand the role of GI in adaptation. Resilience is the capacity of urban systems to absorb, adapt to and recover from climate shocks and stresses while still providing critical functions (Meerow et al., 2016). Ecological networks are an important element of resilience as cities function as socio-ecological systems and contribute to reducing vulnerability to heat, flooding and environmental degradation.

The ecosystem services framework further explains the benefits created by GI. Urban green infrastructure provides regulating services, such as temperature moderation, stormwater retention and air purification, as well as cultural and supporting services, such as recreation, biodiversity and human well-being (Elmqvist et al., 2015). Its main advantage is its multifunctionality, that is, one intervention can provide multiple environmental and social benefits simultaneously, often delivering more overall value than single-purpose grey infrastructure (Kabisch et al., 2016).

Table 1

GI Type	Primary Functions
Urban parks and green spaces	Cooling, recreation, biodiversity
Street trees and urban forests	Shading, air quality improve -ment, runoff interception
Green roofs and walls	Cooling, insulation, stormwater retention
Bioswales and rain gardens	Flood mitigation and water filtration
Permeable pavements	Runoff reduction and groundwater recharge
Urban wetlands and green corridors	Flood control, biodiversity, blue-cooling
Community gardens	Food security and social well-being

Green Infrastructure and Urban Heat Island Mitigation: One of the most widespread consequences of Urbanization and climate change is the urban heat island (UHI) effect, which causes cities to have higher temperatures than the surrounding rural areas due to the presence of impervious surfaces and anthropogenic heat emissions (Santamouris, 2020). Higher temperatures increase heat stress, energy demand and health risks, especially for vulnerable populations.

Green infrastructure mitigates UHI through evapotranspiration, shading and modifying surface energy balances. Urban vegetation evapotranspires sensible heat to latent heat and tree canopies reduce solar radiation reaching built surfaces. Green roofs and walls further add to thermal regulation by offering insulation and evaporative cooling (Zölch et al., 2016).

There is a considerable body of evidence to show the cooling potential of GI in a wide range of urban settings. Bowler et al. (2010) found that urban parks are, on average, almost 1°C cooler than their surrounding built-up areas. Likewise, Zölch et al. (2016) found that urban trees can reduce peak temperatures by up to 2.5°C, whereas increasing tree canopy cover substantially reduces surface temperatures. Global evidence synthesised by Santamouris (2020) shows that GI interventions decrease ambient air temperatures by about 0.3–3°C, with cooling effects depending on vegetation type, spatial configuration and climatic conditions. Large parks and urban forests are generally more effective in providing cooling, with studies from rapidly urbanising Chinese cities reporting reductions in UHI intensity of up to 3.5°C (Kong et al., 2022).

However, the efficiency of GI depends on urban morphology, vegetation types and local weather conditions. Urban centers that are densely populated and have limited space for vegetation may need to employ innovative ways such as green roofs and vertical greening systems to improve cooling performance (Meerow& Newell, 2017). Therefore, the effectiveness of GI-based heat mitigation depends on context-sensitive planning and integration within broader urban climate adaptation strategies.

Table 2. Selected Evidence on Green Infrastructure and Urban Heat Island Mitigation

Study	Main Findings
Bowler et al. (2010)	Urban parks are approximately 0.94°C cooler than surrounding areas
Zölch et al. (2016)	Urban trees reduce peak temperatures by up to 2.5°C
Santamouris (2020)	GI lowers air temperatures by 0.3–3°C
Kong et al. (2022)	Large parks reduce UHI intensity by 1.8–3.5°C
Meerow and Newell (2017)	Cooling performance varies with urban form and climate

Green Infrastructure for Stormwater and Flood Management: The rapid pace of Urbanization and climate change is making urban flooding an increasingly serious problem. Traditional grey infrastructure often has difficulties in dealing with the increasing intensity of rainfall and the increase in impervious surfaces. Green infrastructure

controls stormwater through interception, infiltration, retention and evapotranspiration, which reduces runoff volumes and delays peak flows (Berland et al., 2017; Shafique et al., 2018). The most common GI elements for stormwater management are green roofs, bioswales, rain gardens and urban wetlands. Green roofs have shown retention rates from 40% to 90% based on the vegetation and substrate characteristics (Shafique et al., 2018). Rain gardens and bioswales are good at capturing and filtering runoff at the neighbourhood scale, while integrated blue-green networks provide wider catchment-scale benefits. Evidence from international case studies shows that GIs are effective in reducing the risk of floods. Nature-based interventions can reduce flood peaks by 20–80% (Keesstra et al., 2018). In China, Sponge City projects led to runoff reductions of 57–85% in pilot areas (Qin et al., 2019) and Singapore's ABC Waters Programme reduced peak storm discharge by 18–35% and enhanced urban water quality (Lim et al., 2020). Urban trees also help with stormwater management, as mature canopies intercept a significant portion of the annual runoff (Berland et al., 2017). Hybrid approaches combining green and grey infrastructure are increasingly seen as the most pragmatic ways of improving the resilience of cities to flooding. Such approaches improve performance and longevity of existing drainage systems while providing ecological and social co-benefits at the same time. GI is therefore increasingly recognised as an important element of sustainable urban water management and climate adaptation.

Table 3. Selected Evidence on Green Infrastructure and Stormwater Management

Study	Main Findings
Shafique et al. (2018)	Green roofs retain 40–90% of rainfall
Berland et al. (2017)	Urban trees reduce annual runoff
Keesstra et al. (2018)	Nature-based solutions reduce flood peaks by 20–80%
Qin et al. (2019)	Sponge City projects achieve runoff reductions of 57–85%
Lim et al. (2020)	Blue-green corridors reduce peak discharge by 18–35%

Urban Biodiversity and Ecosystem Services: Urbanization is a key driver of biodiversity loss through habitat fragmentation and ecological degradation. However, well-planned green infrastructure can improve habitat quality and increase species diversity in urban areas. Biodiversity outcomes are strongly affected by factors such as patch size, connectivity and vegetation composition, with interconnected green networks generally providing greater ecological benefits than isolated green spaces (Beninde et al., 2015).

Native vegetation and structurally diverse habitats support increased numbers of birds, insects and other species. Urban forests and green corridors can provide important refugia for biodiversity, and green roofs and other vegetated spaces can provide additional habitat in highly built environments (Aronson et al., 2017).

Beyond biodiversity conservation, GI provides a broad range of ecosystem services that underpin urban sustainability and human well-being. They include temperature regulation, air quality improvement, carbon sequestration, recreation and mental health benefits (Elmqvist et al., 2015). Research has shown that regular exposure to urban green spaces is associated with better mental health and reduced stress levels, and that environments with high biodiversity provide greater well-being benefits than species-poor landscapes (Shanahan et al., 2015; Dallimer et al., 2012).

Urban vegetation also plays a role in climate mitigation through carbon storage and sequestration. Urban trees and green spaces, although less important than natural forests in total, are important components of municipal climate strategies and ecosystem service provision (Nowak et al., 2018).

Table 4. Selected Evidence on Biodiversity and Ecosystem Services

Study	Main Findings
Aronson et al. (2017)	Urbanization reduces species richness
Beninde et al. (2015)	Patch size and connectivity determine biodiversity
Elmqvist et al. (2015)	GI provides multiple ecosystem services
Shanahan et al. (2015)	Nature exposure improves mental health
Dallimer et al. (2012)	Biodiversity positively influences well-being
Nowak et al. (2018)	Urban forests contribute to carbon sequestration

Cross-Cutting Themes: Governance, Equity, and Economic Valuation: Good governance is key to the effective implementation of green infrastructure. Mainstreaming GI into urban planning needs cross-sector coordination, supportive policies and long-term institutional commitment (Pauleit et al., 2017; Kabisch et al., 2016). Lessons learned from cities such as Singapore and New York show that integrated governance frameworks and policy support can enable large-scale GI deployment.

Equity has emerged as a key issue in the GI literature. Research suggests that inequalities in the distribution of high-quality green space are common, with disadvantaged communities receiving less environmental benefit (Jennings et al., 2016). Furthermore, some greening initiatives may result in rising property values and displacement, signifying problems related to green gentrification (Gould & Lewis, 2017). Thus, equitable distribution of the gains of climate resilience calls for prudent planning and community involvement.

In recent years the economic justification for GI has gained significant importance. Along with the environmental benefits, GI also reduces energy use, improves air quality, improves public health and increases property values. Given these co-benefits, green infrastructure often provides higher

value than traditional grey infrastructure (Brander &Koetse, 2011; Nowak et al., 2018). Further development of standardised valuation approaches is, however, needed to support evidence-based decision making.

Table 5. Key Themes in Green Infrastructure Implementation

Theme	Main Issues
Governance	Institutional coordination and policy integration
Equity	Unequal access to green space and environmental justice
Green gentrification	Potential displacement associated with urban greening
Economic valuation	Multiple co-benefits strengthen investment rationale
Planning	Need for integrated and long-term strategies

Research Gaps and Future Directions: There is growing evidence for the role of green infrastructure in climate adaptation, but there remain several important gaps. Research on GI is mainly European, North American and Australian, constraining understanding of GI performance in fast-urbanising regions of the Global South where climate vulnerability is often greatest (Nagendra et al., 2018).

Another limitation is the number of short-term studies. Long-term monitoring is required to assess the effects of vegetation growth, maintenance and changing climatic conditions on green infrastructure performance over time (Pauleit et al., 2017). There is a need for more emphasis on climate specific design strategies especially for tropical, arid and semi-arid environments.

The majority of studies have focused on single GI elements rather than on interconnected networks. Therefore, the overall impacts of integrated green infrastructure systems are still poorly understood (Meerow& Newell, 2017). In addition, social equity, governance, and benefit distribution issues need to be further studied so that climate adaptation can be effective and socially just (Jennings et al., 2016; Gould & Lewis, 2017).

Future research should focus on long-term assessments, network-wide analyses and context-specific studies that support the integration of GI into urban climate resilience planning.

Table 6. Major Research Gaps and Future Needs

Gap Area	Future Research Priorities
Geographic bias	More studies in the Global South
Long-term performance	Monitoring over extended periods
Climate specificity	Design guidelines for diverse climates
Integrated networks	City-scale analyses and cumulative effects
Equity and justice	Distributional impacts and community participation
Governance	Comparative institutional frameworks
Economic valuation	Improved assessment of ecosystem service benefits

Conclusion: One strategy identified is improving urban climate resilience through green infrastructure. Evidence suggests that GI plays a leading role in mitigating urban heat islands, stormwater management, biodiversity conservation and ecosystem services. Unlike traditional grey infrastructure, its multifunctionality enables the simultaneous provision of environmental, social and economic benefits.

The success of GI, however, is dependent upon appropriate design, governance and long-term management. To maximise climate resilience outcomes, institutional coordination, equitable benefit distribution and integration into wider urban planning frameworks are essential.

There remain significant gaps in knowledge to address, especially around long-term performance, effects at a network scale and use in the Global South, but the extant evidence strongly supports the role of green infrastructure in climate adaptation policies. As climate risks are increasing, the growth and efficient management of urban green infrastructure will be more and more important to promote sustainable and resilient cities.

References :-

1. Ahern, J. (2013). *Urban landscape sustainability and resilience: The promise and challenges of integrating ecology with urban planning and design*. *Landscape Ecology, 28*(6), 1203–1212. https://doi.org/10.1007/s10980-012-9799-z
2. Aronson, M. F. J., Lepczyk, C. A., Evans, K. L., Goddard, M. A., Lerman, S. B., MacIvor, J. S., Nilon, C. H., & Vargo, T. (2017). Biodiversity in the city: Key challenges for urban green space management. *Frontiers in Ecology and the Environment, 15*(4), 189–196. https://doi.org/10.1002/fee.1480
3. Beninde, J., Veith, M., &Hochkirch, A. (2015). Biodiversity in cities needs space: A meta-analysis of factors determining intra-urban biodiversity variation. *Ecology Letters, 18*(6), 581–592. https://doi.org/10.1111/ele.12427
4. Berland, A., Shiflett, S. A., Shuster, W. D., Garmestani, A. S., Goddard, H. C., Herrmann, D. L., & Hopton, M. E. (2017). The role of trees in urban stormwater management. *Landscape and Urban Planning, 162*, 167–177. https://doi.org/10.1016/j.landurbplan.2017.02.017
5. Bowler, D. E., Buyung-Ali, L., Knight, T. M., & Pullin, A. S. (2010). Urban greening to cool towns and cities: A systematic review of the empirical evidence. *Landscape and Urban Planning, 97*(3), 147–155. https://doi.org/10.1016/j.landurbplan.2010.05.006
6. Brander, L. M., & Koetse, M. J. (2011). The value of urban open space: Meta-analyses of contingent valuation and hedonic pricing results. *Journal of Environmental Management, 92*(10), 2763–2773. https://doi.org/10.1016/j.jenvman.2011.06.019
7. Benedict, M. A., & McMahon, E. T. (2006). *Green infrastructure: Linking landscapes and communities*.

Island Press.

8. Cohen-Shacham, E., Walters, G., Janzen, C., & Maginnis, S. (2016). *Nature-based solutions to address global societal challenges*. International Union for Conservation of Nature. https://doi.org/10.2305/IUCN.CH.2016.13.en
9. Dallimer, M., Irvine, K. N., Skinner, A. M. J., Davies, Z. G., Rouquette, J. R., Maltby, L. L., Warren, P. H., Gaston, K. J., &Armsworth, P. R. (2012). Biodiversity and the feel-good factor: Understanding associations between self-reported human well-being and species richness. *BioScience, 62*(1), 47–55. https://doi.org/10.1525/bio.2012.62.1.8
10. Elmqvist, T., Setälä, H., Handel, S. N., van der Ploeg, S., Aronson, J., Blignaut, J. N., Gómez-Baggethun, E., Nowak, D. J., Kronenberg, J., & de Groot, R. (2015). Benefits of restoring ecosystem services in urban areas. *Current Opinion in Environmental Sustainability, 14*, 101–108. https://doi.org/10.1016/j.cosust.2015.05.001
11. Elmqvist, T., Andersson, E., Frantzeskaki, N., McPhearson, T., Olsson, P., Gaffney, O., Folke, C., &Rockström, J. (2019). Sustainability and resilience for transformation in the urban century. *Nature Sustainability, 2*(4), 267–273. https://doi.org/10.1038/s41893-019-0250-1
12. Gould, K. A., & Lewis, T. L. (2017). *Green gentrification: Urban sustainability and the struggle for environmental justice*. Routledge.
13. Jennings, V., Larson, L., & Yun, J. (2016). Advancing sustainability through urban green space: Cultural ecosystem services, equity, and social determinants of health. *International Journal of Environmental Research and Public Health, 13*(2), 196. https://doi.org/10.3390/ijerph13020196
14. Kabisch, N., Korn, H., Stadler, J., & Bonn, A. (Eds.). (2016). *Nature-based solutions to climate change adaptation in urban areas*. Springer. https://doi.org/10.1007/978-3-319-56091-5
15. Keesstra, S., Nunes, J., Novara, A., Finger, D., Avelar, D., Kalantari, Z., &Cerdà, A. (2018). The superior effect of nature-based solutions in land management for enhancing ecosystem services. *Science of the Total Environment, 610–611*, 997–1009. https://doi.org/10.1016/j.scitotenv.2017.08.077
16. Kong, F., Yin, H., James, P., Hutyra, L. R., & He, H. S. (2022). Effects of spatial pattern of greenspace on urban cooling in a large metropolitan area of eastern China. *Landscape and Urban Planning, 128*, 35–47. https://doi.org/10.1016/j.landurbplan.2014.04.018
17. Lafortezza, R., Chen, J., van den Bosch, C. K., & Randrup, T. B. (2018). Nature-based solutions for resilient landscapes and cities. *Environmental Research, 165*, 431–441. https://doi.org/10.1016/j.envres.2017.11.038
18. Lim, H. S., Lu, X. X., & Wong, T. H. F. (2020). Blue-green infrastructure and urban water management in Singapore. *Sustainability, 12*(18), 7481.
19. Meerow, S., & Newell, J. P. (2017). Spatial planning for multifunctional green infrastructure: Growing resilience in Detroit. *Landscape and Urban Planning, 159*, 62–75. https://doi.org/10.1016/j.landurbplan.2016.10.005
20. Meerow, S., Newell, J. P., & Stults, M. (2016). Defining urban resilience: A review. *Landscape and Urban Planning, 147*, 38–49. https://doi.org/10.1016/j.landurbplan.2015.11.011
21. Nagendra, H., Bai, X., Brondizio, E. S., &Lwasa, S. (2018). The urban south and the predicament of global sustainability. *Nature Sustainability, 1*(7), 341–349. https://doi.org/10.1038/s41893-018-0101-5
22. Nowak, D. J., Hirabayashi, S., Doyle, M., McGovern, M., &Pasher, J. (2018). Air pollution removal by urban forests in Canada and its effect on air quality and human health. *Urban Forestry & Urban Greening, 29*, 40–48. https://doi.org/10.1016/j.ufug.2017.10.019
23. Pauleit, S., Zölch, T., Hansen, R., Randrup, T. B., & van den Bosch, C. K. (2017). Nature-based solutions and climate change adaptation in urban areas. In N. Kabisch et al. (Eds.), *Nature-based solutions to climate change adaptation in urban areas* (pp. 1–11). Springer.
24. Qin, H., Li, Z., & Fu, G. (2019). The effects of low impact development on urban flooding under different rainfall characteristics. *Journal of Environmental Management, 129*, 577–585.
25. Santamouris, M. (2020). Recent progress on urban overheating and heat island research. *Integrated Assessment and Policy Implications*. *Atmosphere, 11*(3), 307. https://doi.org/10.3390/atmos11030307
26. Shafique, M., Kim, R., & Kyung-Ho, K. (2018). Green roof benefits, opportunities and challenges – A review. *Renewable and Sustainable Energy Reviews, 90*, 757–773. https://doi.org/10.1016/j.rser.2018.04.006
27. Shanahan, D. F., Fuller, R. A., Bush, R., Lin, B. B., & Gaston, K. J. (2015). The health benefits of urban nature: How much do we need? *BioScience, 65*(5), 476–485. https://doi.org/10.1093/biosci/biv032
28. United Nations. (2018). *World urbanization prospects: The 2018 revision*. United Nations.
29. Zölch, T., Maderspacher, J., Wamsler, C., &Pauleit, S. (2016). Using green infrastructure for urban climate-proofing: An evaluation of heat mitigation measures. *Urban Forestry & Urban Greening, 20*, 305–316. https:////doi.org/10.1016/j.ufug.2016.09.011

****

दक्षिण राजस्थान में अनुसूचित जाति एवं जनजाति महिलाओं की सामाजिक एवं विधिक स्थिति

राकेश पालीवाल* डॉ. विनीता व्यास**

* शोधार्थी (विधि) जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड टू बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
** सहायक आचार्य (विधि) जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड टू बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – दक्षिण राजस्थान में अनुसूचित जाति एवं जनजाति महिलाओं की सामाजिक एवं विधिक स्थिति अत्यंत जटिल एवं चुनौतीपूर्ण है, जहाँ जातिगत भेदभाव एवं लैंगिक असमानता दोहरी वंचना उत्पन्न करती है। उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा जैसे जनजातीय बहुल जिलों में ये महिलाएँ जनसंख्या का 40-50% हिस्सा हैं, किंतु गरीबी, साक्षरता कमी एवं सामाजिक बहिष्कार से उनकी स्थिति दयनीय बनी हुई है।

प्रस्तावना – दक्षिण राजस्थान का भौगोलिक परिदृश्य अरावली पर्वत श्रृंखलाओं से लेकर हाड़ौती के उपजाऊ मैदानों तक विस्तृत है, जहाँ उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ एवं चित्तौड़गढ़ जैसे जिले आदिवासी बहुलता के लिए प्रसिद्ध हैं। यह क्षेत्र राजस्थान के कुल 33 जिलों में से लगभग 20% क्षेत्रफल घेरे हुए है, जिसमें दक्षिणी अरावली की ऊँची चोटियाँ जैसे आचलगढ़ (1075 मीटर) एवं गोगा पहाड़ियाँ वर्षा ऋतु में हरियाली प्रदान करती हैं, किंतु शुष्क मानसून एवं कठोर चट्टानी भूमि कृषि को सीमित रखती है। विन्ध्याचल एवं सह्याद्रि की शाखाएँ यहाँ वनस्पति को समृद्ध बनाती हैं, जहाँ बांस के जंगल, महुआ एवं साल वृक्ष आदिवासी अर्थव्यवस्था का आधार हैं, जबकि अंबा नदी, सोम नदी एवं महि नदी घाटियाँ बस्तियों को जीवन देते हैं। राजस्थान का सामान्य रेगिस्तानी स्वरूप यहाँ भिन्न दिखता है, क्योंकि दक्षिणी भाग मालवा पठार से जुड़कर औसत वर्षा 60-80 सेमी प्राप्त करता है, जो उत्तरी थार के 20-30 सेमी से कहीं अधिक है। फिर भी, जल संकट एवं मिट्टी कटाव विकास को बाधित करते हैं, विशेषकर डूंगरपुर-बांसवाड़ा के पहाड़ी ब्लॉकों में जहाँ भूमि 70% ढलान वाली है। इस भौगोलिक विविधता ने अनुसूचित जनजाति समुदायों को वन आधारित जीवनशैली अपनाने पर मजबूर किया है, जबकि अनुसूचित जाति समुदाय मैदानी कृषि एवं मजदूरी पर निर्भर हैं।

राजस्थान की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि राजपूत शौर्य, मराठा प्रभाव एवं मुगल संमिश्रण से युक्त है, किंतु दक्षिणी भाग में आदिवासी संस्कृति प्रमुखता रखती है, जहाँ भील, मीणा एवं गरासिया जनजातियाँ लोक नृत्य जैसे घूमर, गवरी एवं तीजा त्योहारों से अपनी पहचान बनाती हैं। भील समुदाय, जो बांसवाड़ा में 50% से अधिक हैं, धनुषबाण एवं तीरंदाजी की परंपरा रखते हैं, जबकि मीणा उदयपुर-चित्तौड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में योद्धा इतिहास के लिए जाने जाते हैं। गरासिया महिलाएँ रंग-बिरंगे घाघरा-चोली एवं चाँदी के आभूषणों से सजती हैं, जो उनकी सामुदायिक एकता दर्शाते हैं। राजस्थान का सामाजिक ताना-बाना पितृसत्तात्मक है, जहाँ वंशानुगत जाति व्यवस्था एवं गोत्र प्रथा विवाह को नियंत्रित करती है, किंतु दक्षिणी आदिवासी क्षेत्रों में सामूहिक विवाह एवं बहुपत्नी प्रथा प्रचलित रही है। सांस्कृतिक रूप से, लोक देवताओं जैसे भील देवी, भेरूजी एवं गोलू देवता पूजा आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग हैं, जबकि हिंदू पर्वों में भागीदारी दर्शाती है कि ये समुदाय मुख्यधारा से जुड़ चुके हैं। फिर भी, सांस्कृतिक रूढ़ियाँ जैसे दुल्हा-दुल्हन चढ़ावा एवं विधवा विवाह निषेध महिलाओं को बाँधे रखते हैं।

इस भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति महिलाएँ भील, मीणा एवं गरासिया जैसे समुदायों से संबंधित हैं, जो दक्षिण राजस्थान की जनसंख्या का 40-50% हिस्सा बनाती हैं। 2011 जनगणना के अनुसार ST साक्षरता दर मात्र 44% रही, जो राज्य औसत 52.6% से 8.6% कम है, जबकि SC महिलाओं में संपत्ति स्वामित्व केवल 15-20% है, क्योंकि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के बावजूद पितृसत्तात्मक रीति से पुत्रों को प्राथमिकता मिलती है। सामाजिक रूप से इन्हें जातिगत हिंसा का सामना करना पड़ता है, जहाँ NCRB डेटा के अनुसार राजस्थान में SC/ST अत्याचार मामलों का 35-40% दक्षिणी जिलों से जुड़ा है, जिसमें यौन शोषण एवं सामाजिक बहिष्कार प्रमुख हैं। बाल विवाह की दर यहाँ 25-30% है, जो बालिका शिक्षा को रोकता है, जबकि बंधुआ मजदूरी में 20-25% महिलाएँ फँसी हैं, विशेषकर चित्तौड़गढ़ के पत्थर खदानों में। विधिक प्रावधान जैसे संविधान के अनुच्छेद 15(4) पिछड़े वर्गों के लिए विशेष उपबंध, अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता उन्मूलन एवं अनुच्छेद 46 कमजोर वर्गों के संरक्षण की बात करते हैं, जो SC/ST महिलाओं को समानता एवं सुरक्षा का अधिकार देते हैं।SC/ST (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 एवं 2015 संशोधन विशेष अदालतें स्थापित करते हैं, जबकि POSCO अधिनियम 2012 एवं घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 बालिकाओं एवं महिलाओं की रक्षा सुनिश्चित करते हैं। फिर भी, क्रियान्वयन में अंतराल जैसे जागरूकता की कमी (82% महिलाएँ अनभिज्ञ), पुलिस लापरवाही एवं विशेष अदालतों का अभाव (राज्य में केवल 194 कार्यरत) इनकी स्थिति को प्रभावित करते हैं।

राजस्थान का भौगोलिक विविधता दक्षिणी भाग को आदिवासी केंद्र बनाती है, जहाँ अरावली की घाटियाँ वन उत्पाद जैसे तेंदू पत्ता एवं महुआ संग्रहण को प्रोत्साहित करती हैं, किंतु वर्षा अनियमितता से फसलें असफल

होती हैं, जिससे ST महिलाएँ मजदूरी पर निर्भर हो जाती हैं। उदयपुर जिले का 30% क्षेत्र वनाच्छादित है, जहाँ गरासिया महिलाएँ पशुपालन करती हैं, लेकिन भूमि पट्टा अभाव से स्वामित्व विवाद उत्पन्न होते हैं। डूंगरपुर की पहाड़ी संरचना ने भील समुदाय को अलग-थलग रखा है, जहाँ सड़क घनत्व राज्य औसत 0.8 किमी/वर्ग किमी से कम 0.4 है, जो स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच को 50% तक सीमित करता है। बांसवाड़ा का महि नदी बेसिन सिंचाई प्रदान करता है, किंतु बाढ़ एवं सूखा चक्र महिलाओं को प्रभावित करते हैं। SC समुदाय, जो मैदानी चित्तौड़गढ़ एवं प्रतापगढ़ में बिखरा है, कृषि मजदूरी पर आश्रित है, जहाँ जिरामजी योजना भागीदारी 33% होने के बावजूद वेतन विलंब से कर्ज चक्र चलता रहता है। राजस्थान की सामाजिक संरचना में जाति पदानुक्रम प्रमुख है, जहाँ राजपूत एवं बनिया उच्च वर्ण हैं, जबकि SC/ST निचले पायदान पर धकेल दिए गए हैं। दक्षिणी क्षेत्र में मीणा जनजाति को OBC का दर्जा मिला है, किंतु सामाजिक भेदभाव बना रहता है। महिलाओं की स्थिति पितृसत्ता से प्रभावित है, जहाँ घूँघट प्रथा एवं दहेज हिंसा प्रचलित हैं।

इस संदर्भ में SC/ST महिलाओं का डबल डिस्क्रिमिनेशन जाति एवं लिंग दोनों से उत्पन्न होता है, जहाँ सामाजिक बहिष्कार उन्हें शिक्षा से वंचित रखता है। 2011 डेटा के बाद 2021 सर्वे में ST साक्षरता 52% पहुँची, किंतु दक्षिण राजस्थान में 46% ही रही, क्योंकि स्कूल दूर होने से ड्रॉपआउट 40% है। संपत्ति स्वामित्व में कमी से आर्थिक निर्भरता बढ़ती है, जो घरेलू हिंसा को आम बनाती है। विधिक प्रावधानों का क्रियान्वयन कमजोर होने से दोषसिद्धि दर 20-30% रहती है, क्योंकि गवाह डरते हैं एवं FIR दर्ज नहीं होती। राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण मुफ्त सहायता देता है, किंतु ग्रामीण शिविरों की कमी से पहुँच सीमित है। भौगोलिक रूप से पहाड़ी रास्ते पुलिस प्रतिक्रिया को विलंबित करते हैं, जबकि सांस्कृतिक रूप से पंचायतें विवाद सुलझाती हैं, लेकिन पक्षपातपूर्ण रहती हैं।

दक्षिण राजस्थान की नदियाँ एवं जंगल जैव विविधता प्रदान करते हैं, किंतु वन नीति से विस्थापन SC/ST महिलाओं को प्रभावित करता है। उदाहरणस्वरूप, उदयपुर के बड़गाँव बाँध परियोजना ने 5000 आदिवासी परिवार प्रभावित किए, जिनमें महिलाएँ पुनर्वास में पिछड़ी रहीं। सांस्कृतिक उत्सवों में महिलाएँ सक्रिय हैं, किंतु निर्णय लेने से वंचित रहती हैं। विधिक रूप से अनुच्छेद 243D पंचायतों में 33% आरक्षण देता है, किंतु प्रॉक्सी सरपंच प्रथा से प्रभाव शून्य हो जाता है। बाल विवाह निषेध अधिनियम के बावजूद 18-25 आयु वर्ग में 28% विवाहित बालिकाएँ हैं। बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम 1976 लागू है, किंतु खदानों में 15% महिलाएँ बंधुआ हैं।

राजस्थान का इतिहास मेवाड़ राज्यों से जुड़ा है, जहाँ राणा प्रताप जैसे शासकों ने मीणा योद्धाओं का साथ लिया, किंतु जातिगत भेद आज भी है। आधुनिक समय में भामाशाह योजना ने डिजिटल समावेशन किया, किंतु ST महिलाओं की साक्षरता कमी से लाभ सीमित रहा। कुल मिलाकर, भौगोलिक बाधाएँ, सांस्कृतिक रूढ़ियाँ एवं क्रियान्वयन अंतराल SC/ST महिलाओं की स्थिति को दयनीय बनाए रखते हैं। सुधार हेतु जागरूकता, बुनियादी ढाँचा एवं निगरानी आवश्यक है, जो इन्हें सशक्त बनाकर राजस्थान के विकास में योगदान देगा।

सामाजिक स्थिति- दक्षिण राजस्थान के ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति महिलाएँ आर्थिक शोषण एवं सामाजिक बहिष्कार की गंभीर शिकार हैं, जहाँ राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के 2022 आंकड़ों के अनुसार राजस्थान में SC/ST के विरुद्ध कुल 8651 अत्याचार मामले दर्ज हुए, जिनमें लगभग 40% दक्षिणी जिलों जैसे उदयपुर, डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा से जुड़े पाए गए, जिसमें यौन हिंसा एवं सामाजिक बहिष्कार प्रमुख घटनाएँ हैं। NCRB की 2022 रिपोर्ट में राजस्थान SC/ST अत्याचारों में दूसरे स्थान पर रहा, जहाँ 2521 ST मामलों में महिलाओं पर हमले 1022 तक पहुँचे, जो दर्शाता है कि जातिगत हिंसा इन महिलाओं की दैनिक वास्तविकता बन चुकी है। साक्षरता दर न्यून होने से स्वास्थ्य एवं शिक्षा योजनाओं की पहुँच सीमित रहती है, क्योंकि 2011 जनगणना में दक्षिण राजस्थान के ST महिलाओं की साक्षरता मात्र 44% रही, जो राज्य औसत 52.12% से काफी कम है, तथा 2021 सर्वेक्षणों में भी यह 46% तक ही सुधरी, जबकि जालौर एवं सिरोही जैसे निकटवर्ती जिलों में 38.47% एवं 39.73% की दरें हैं। NFHS-5 के अनुसार चित्तौड़गढ़ में बाल विवाह दर 42.6% एवं बांसवाड़ा में 25-33.5% है, जो दर्शाता है कि सांस्कृतिक रूढ़ियाँ जैसे दहेज प्रथा एवं बाल विवाह इनकी गरिमा को लगातार ठेस पहुँचाते हैं, क्योंकि 82% उत्तरदाताओं ने गिरफ्तारी एवं मुकदमेबाजी को रोकथाम का कारक माना, किंतु गरीबी एवं परंपराएँ (91%) प्रमुख बाधक बनी हुई हैं।

पंचायती स्तर पर 73वें संशोधन के तहत 50% आरक्षण के बावजूद भागीदारी 18-38% ही है, क्योंकि राजस्थान में 196490 चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों में से ग्रामीण स्तर पर प्रॉक्सी सरपंच प्रथा एवं पारिवारिक दबाव से वास्तविक निर्णय लेने की क्षमता सीमित रहती है, जैसा कि CWDS अध्ययन में उल्लेखित है कि SC/ST महिलाओं का प्रतिनिधित्व जाति-वर्ग असंतुलन से प्रभावित होता है। कुल मिलाकर, सामाजिक संरचना इन महिलाओं को मुख्यधारा से अलग रखती है, जिससे गरीबी चक्र बना रहता है, क्योंकि PWESCR रिपोर्ट के अनुसार दलित महिलाएँ ऊँची जातियों द्वारा आर्थिक शोषण का शिकार होती हैं, जिसमें बंधुआ मजदूरी शामिल है, तथा दक्षिण राजस्थान के पत्थर खदानों एवं कृषि क्षेत्रों में 15-25% SC/ST महिलाएँ प्रभावित हैं। CAG की 2022 रिपोर्ट में राजस्थान में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की रोकथाम में कमियाँ रेखांकित की गईं, जहाँ SC/ST मामलों में दोषसिद्धि दर 20-30% रहती है, क्योंकि पुलिस लापरवाही एवं गवाह भय प्रमुख हैं। NFHS-5 डेटा से स्पष्ट है कि चित्तौड़गढ़ (42.6%), भीलवाड़ा (41.8%) एवं प्रतापगढ़ जैसे दक्षिणी जिलों में बाल विवाह राष्ट्रीय औसत 23.3% से दोगुना है, जो बालिका शिक्षा को 40% ड्रॉपआउट दर तक ले जाता है।

विधिक एवं संवैधानिक प्रावधान - भारतीय संविधान अनुच्छेद 14 के माध्यम से विधि के समक्ष समानता का अधिकार प्रदान करता है, जो SC/ST महिलाओं सहित सभी को भेदभाव से मुक्त रखता है, जबकि अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता के उन्मूलन को स्पष्ट रूप से निषिद्ध घोषित करता है तथा अनुच्छेद 46 राज्य को अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा का निर्देश देता है, जो इन महिलाओं को मजबूत विधिक ढाल प्रदान करता है। SC/ST(अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 धारा 3 के तहत जातिगत अपमान, हिंसा एवं यौन उत्पीड़न को विशेष अपराध बनाता है, तथा 2015 संशोधन ने विशेष अदालतों (Section 14) एवं त्वरित सुनवाई सुनिश्चित की, जहाँ राजस्थान में 2023 SAR रिपोर्ट के अनुसार 33 जिलों में 7 विशेष अदालतें (जयपुर, अजमेर,

कोटा, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, पाली) कार्यरत हैं, किंतु 2025 तक कुल 194 विशेष अदालतें देशभर में हैं जबकि जिलों की संख्या 766 है, जिससे दक्षिण राजस्थान जैसे क्षेत्रों में कमी बनी हुई है। घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम 2005 धारा 18-22 के तहत संरक्षण आदेश, निवास अधिकार एवं मुआवजा प्रदान करता है, जबकि POSCO अधिनियम 2012 बालिकाओं के यौन अपराधों पर कठोर दंड (7 वर्ष से आजीवन कारावास) रखता है, जो SC/ST मामलों में लागू होता है।

राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (RALSA) अनुच्छेद 39। के तहत मुफ्त विधिक सहायता प्रदान करता है, जिसमें SC/ST महिलाओं के लिए विशेष शिविर एवं पैनल वकील शामिल हैं, किंतु जागरूकता अभाव एक प्रमुख समस्या है, क्योंकि पूर्व शोधों में 82% महिलाएँ अधिनियमों से अनभिज्ञ पाई गईं, तथा NCRB 2022 में राजस्थान के 8651 SC/ST मामलों में दोषसिद्धि दर मात्र 28-32% रही। विशेष अदालतों की कमी से मुकदमों का निपटान विलंबित होता है, जैसा कि 2025 में राजस्थान में SC/ST मामलों में 28.23% गिरावट दर्ज हुई, किंतु जाँच अवधि 75 दिनों तक सीमित रखने के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में FIR दर्ज न होने की समस्या बनी हुई है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 (2005 संशोधन) धारा 6 के तहत पुत्रियों को समान हिस्सा देता है, किंतु धारा 2(2)ST महिलाओं को अपवाद बनाती है, जिसे राजस्थान हाईकोर्ट ने Manni Devi मामले में 'भेदभावपूर्ण बाधा' कहा तथा संशोधन की मांग की। समान मजदूरी अधिनियम 1976 धारा 3 के तहत लिंग आधारित वेतन भेदभाव निषिद्ध है, जो SC/ST महिलाओं को आर्थिक अधिकार देता है, किंतु राजस्थान में असंगठित क्षेत्रों में कार्यान्वयन कमजोर है। इन प्रावधानों का उद्देश्य डबल डिस्क्रिमिनेशन को समाप्त करना है, किंतु क्रियान्वयन अंतराल जैसे पुलिस प्रशिक्षण कमी एवं गवाह संरक्षण अभाव बाधक हैं, क्योंकि 2025 CJP रिपोर्ट में जनवरी-जून तक 113 जातिगत अत्याचार दर्ज हुए। राजस्थान हाईकोर्ट ने हालिया निर्णयों में SC/ST अधिनियम के तहत सख्ती बरतने के निर्देश दिए हैं। कुल मिलाकर, ये विधिक उपकरण सशक्त हैं, किंतु जागरूकता एवं बुनियादी ढाँचे से सुधार आवश्यक है।

क्रियान्वयन की चुनौतियाँ – विधिक प्रावधानों के बावजूद दक्षिण राजस्थान में पुलिस लापरवाही एक प्रमुख समस्या बनी हुई है, जहाँ SC/ST (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के तहत FIR दर्ज करने में 40-50% मामले अस्वीकृत हो जाते हैं, क्योंकि थानों पर जातिगत पूर्वाग्रह एवं प्रशिक्षण की कमी से प्रारंभिक जाँच प्रभावित होती है, तथा NCRB 2022 डेटा के अनुसार राजस्थान में कुल 8651 मामलों में से दक्षिणी जिलों के 35% में प्रारंभिक कार्रवाई विलंबित रही। गवाहों का भय सामाजिक प्रतिशोध के कारण प्रमुख बाधा है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में 70% गवाह परिवारिक दबाव या हिंसा के भय से बयान वापस ले लेते हैं, जिससे चार्जशीट दर 60% से नीचे गिर जाती है, तथा राजस्थान हाईकोर्ट ने कई निर्णयों में गवाह संरक्षण योजना के सख्त अनुपालन का निर्देश दिया है। प्रशासनिक बाधाएँ जैसे स्टाफ की कमी एवं फाइलों का लंबित रहना दोषसिद्धि दर को मात्र 20-30% तक सीमित रखती हैं, क्योंकि 2023 SAR रिपोर्ट में राजस्थान के 33 जिलों में विशेष अदालतों की कार्यक्षमता केवल 65% पाई गई, विशेषकर उदयपुर एवं बांसवाड़ा जैसे आदिवासी बहुल क्षेत्रों में जहाँ जजों की कमी एवं केस बैकलॉग 5000 से अधिक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल निगरानी एवं जागरूकता अभियानों की कमी से सरकारी योजनाएँ कागजी रह जाती हैं, क्योंकि भामाशाह कार्ड एवं UPI डैशबोर्ड के बावजूद ST महिलाओं में डिजिटल साक्षरता मात्र 25-30% है, जिससे लखपति दीदी एवं नारी शक्ति उद्यम योजना के लाभ 40% से कम पहुँच पाते हैं, तथा जिला प्रशासन की मासिक रिपोर्टिंग अपर्याप्त होने से ट्रैकिंग असफल रहती है। जागरूकता अभियानों की कमी से 82% SC/ST महिलाएँ विधिक प्रावधानों से अनभिज्ञ रहती हैं, क्योंकि ग्राम पंचायत स्तर पर मात्र 15-20% शिविर आयोजित होते हैं, तथा RALSA के पैनल वकीलों की पहुँच पहाड़ी ब्लॉकों तक सीमित रहती है। सांस्कृतिक प्रतिरोध विधिक सहायता को प्रभावित करता है, क्योंकि आदिवासी परंपराओं में पंचायतें विवाद सुलझाती हैं, किंतु पक्षपातपूर्ण निर्णय (65% मामलों में) विधिक प्रक्रिया को कमजोर बनाते हैं, तथा घूँघट प्रथा एवं जातिगत कलंक से महिलाएँ शिकायत दर्ज करने से हिचकिचाती हैं।

योजनाओं में भागीदारी कम होने से आर्थिक सशक्तिकरण रुकता है, क्योंकि जिरामजी योजना में SC/ST महिलाओं की भागीदारी 33% होने के बावजूद वेतन विलंब (45-60 दिन) एवं तकनीकी खराबी से 25% लाभार्थी निष्क्रिय हो जाते हैं, तथा NSFDC ऋण योजना में दक्षिण राजस्थान के 4000 लाभार्थियों में से 60% डिफॉल्ट पर हैं, जो साक्षरता कमी एवं गारंटर अभाव से उपजता है। कुल परिणामस्वरूप, विधिक सुरक्षा सिद्धांत तक सीमित रहती है, क्योंकि क्रियान्वयन अंतराल डबल डिस्क्रिमिनेशन को बनाए रखते हैं, तथा सुधार हेतु ग्राम स्तर डिजिटल हेल्पलाइन, विशेष FIR सेल एवं 20% बजट वृद्धि आवश्यक है।

निष्कर्ष एवं सुझाव– दक्षिण राजस्थान में SC/ST महिलाओं की सामाजिक एवं विधिक स्थिति सुधार हेतु ग्राम स्तर जागरूकता अभियान आवश्यक हैं, क्योंकि वर्तमान में 82% महिलाएँ SC/ST अधिनियम एवं अन्य प्रावधानों से अनभिज्ञ रहती हैं, अत: प्रत्येक पंचायत में मासिक शिविर आयोजित कर अनुच्छेद 15(4), 17 एवं 46 के साथ-साथ POSCO एवं घरेलू हिंसा अधिनियम की जानकारी दी जानी चाहिए, जिसमें स्थानीय भाषा में नुक्कड़ नाटक एवं वीडियो प्रदर्शन शामिल हों। विशेष FIR सेल प्रत्येक थाना स्तर पर गठित किए जाएँ, जहाँ महिला पुलिसकर्मी एवं विधिक सहायक तैनात रहें, क्योंकि NCRB डेटा में 40-50% शिकायतें अस्वीकृत हो जाती हैं, तथा ये सेल 24x7 हेल्पलाइन एवं त्वरित जाँच सुनिश्चित करेंगी, जो दोषसिद्धि दर को 20-30% से बढ़ाकर 60% तक ले जा सकती हैं। डिजिटल ट्रैकिंग हेतु UPI आधारित डैशबोर्ड एवं भामाशाह ऐप को मजबूत बनाया जाए, जिसमें योजना लाभार्थियों की मॉनिटरिंग रीयल-टाइम हो, क्योंकि वर्तमान में लखपति दीदी एवं नारी शक्ति योजना की पहुँच मात्र 40% है।

पंचायती समितियों का सशक्तिकरण अनुच्छेद 243D के 33-50% आरक्षण को वास्तविक बनाने हेतु प्रशिक्षण शिविर एवं प्रॉक्सी सरपंच प्रथा पर रोक आवश्यक है, क्योंकि भागीदारी 18-38% रहने से निर्णय प्रक्रिया प्रभावित होती है, तथा नारी शक्ति प्रशिक्षण योजना 2025 से कौशल संवर्धन संभव होगा। बजट में SC/ST महिलाओं हेतु 20% वृद्धि जेंडर रेस्पॉन्सिव बजट के माध्यम से की जाए, जो SDG 5 लक्ष्यों के अनुरूप NSFDC ऋण एवं जिरामजी योजना को मजबूत करेगी, क्योंकि वर्तमान में संपत्ति स्वामित्व 15-20% ही है। निरंतर निगरानी हेतु जिला स्तरीय समितियाँ गठित हों, जिसमें NGO एवं पंचायत प्रतिनिधि शामिल हों, तथा वार्षिक ऑडिट अनिवार्य बनाया जाए।

सामुदायिक भागीदारी से SHG (स्वयं सहायता समूह) को विधिक

जागरूकता केंद्र बनाया जाए, जो सांस्कृतिक प्रतिरोध को तोड़ेगी एवं डबल डिस्क्रिमिनेशन समाप्त करेगी। ये कदम सच्चा परिवर्तन लाएँगे, जो सामाजिक न्याय की आधारशिला बनेगा एवं दक्षिण राजस्थान को सशक्त बनाएगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भारतीय संविधान (1950). भारत का संविधान. विधायी विभाग, भारत सरकार.
2. जनगणना आयुक्त (2011). राजस्थान जनगणना 2011: अनुसूचित जनजाति साक्षरता डेटा. कार्यालय पंजीयक जनरल एण्ड सेंसस कमिश्नर, भारत.
3. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022). अपराध भारत 2022. गृह मंत्रालय, भारत सरकार.
4. पालीवाल, आर. (2024). दक्षिण राजस्थान में SC/ST महिलाओं की सामाजिक स्थिति: एक समालोचनात्मक अध्ययन. राजस्थान विधिक जर्नल, 15(2), 45-67.
5. एनएफएचएस-5 सर्वेक्षण (2019-21). राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5: राजस्थान रिपोर्ट. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय.
6. सीडब्ल्यूडीएस (2023). पंचायती राज में महिलाओं का अनुभव. सेंटर फॉर विमेंस डेवलपमेंट स्टडीज.
7. पीडब्ल्यूईएससीआर (2020). राजस्थान में दलित महिलाएँ. पीपुल्स विजन फॉर एजुकेशनल सोशल कल्चरल राइट्स.
8. देवात्मा, ए. (2022).SC/ST अत्याचार निवारण अधिनियमरू प्रावधान एवं चुनौतियाँ. कानूनी संरचना प्रकाशन, जयपुर.
9. राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (2023). वार्षिक प्रतिवेदन 2022-23. उच्च न्यायालय, जोधपुर.
10. राजस्थान हाईकोर्ट (2025). मन्नी देवी बनाम राज्य: हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में ST महिलाओं का अधिकार. AIR 2025 राज 245.
11. सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया (2018). डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम राज्य: SC/ST अधिनियम व्याख्या. (2018) 7SCC 1
12. सीएजी (2022). महिलाओं के विरुद्ध अपराध: राजस्थान लेखा परीक्षा. भारत के नियंत्रक एवं महालेखाकार.
13. जिला प्रशासन उदयपुर (2024).SC/ST कल्याण योजनाएँ: क्रियान्वयन रिपोर्ट. उदयपुर जिला प्रशासन.
14. पालीवाल, आर. (2025). दक्षिण राजस्थान SC/ST महिलाओं हेतु नीतिगत सुझाव. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग, राजस्थान.
15. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय (2024). जेंडर रेस्पॉन्सिव बजटिंग गाइडलाइन्स. भारत सरकार.
16. आरजीएवीपी (2023). राजीविका ग्रामीण आजीविका विकास परिषद: SHG रिपोर्ट. राजस्थान सरकार.
17. एनएसडीसी (2025). NSFDC ऋण योजनाएँ: दक्षिण राजस्थान प्रभाव मूल्यांकन. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम.
18. दृष्टि आईएएस (2025). भारत में SC/ST कल्याण: राजस्थान पर विशेष.
19. सीजेएस (2025). जातिगत अत्याचार मानचित्रण 2025. सिटिजन्स फॉर जस्टिस एंड पीस.
20. ई-ज्ञानकोश (2023). बंधुआ श्रम: राजस्थान संदर्भ. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय.
21. राजस्थान जनसूचना पोर्टल (2020). अनुसूचित जनजातियाँ एवं क्षेत्र.https://jansoochna.rajasthan.gov.injansoochna.rajasthan.
22. महिला एवं बाल विकास विभाग (2024). POSCO कार्यान्वयन राजस्थान. राजस्थान सरकार.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

आधुनिकता के प्रभाव में लोकगीत, लोकपरंपराएँ एवं पर्यावरण संरक्षण : भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

संदीप शर्मा* डॉ. उषा वैद्य**

* रिसर्च स्कॉलर, रबींद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.) भारत
** प्रोफेसर, ह्यूमैनिटीज और लिबरल आर्ट्स, रबींद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय लोक संस्कृति, लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं में निहित पर्यावरणीय चेतना का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति के प्रति सम्मान, संरक्षण एवं नैतिक दृष्टिकोण प्राचीन काल से विद्यमान रहा है। लोकगीतों, धार्मिक परंपराओं, पर्व-त्योहारों एवं सामाजिक व्यवहारों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की भावना विकसित होती रही है। वर्तमान समय में आधुनिकता, शहरीकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव से पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों एवं पर्यावरणीय चेतना में परिवर्तन देखा जा रहा है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि भारतीय लोक संस्कृति एवं लोक परंपराएँ पर्यावरण संरक्षण में किस प्रकार योगदान देती हैं तथा आधुनिकता के प्रभाव से इन परंपराओं में किस प्रकार परिवर्तन आया है। अध्ययन समाजशास्त्रीय एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। शोध में विभिन्न समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों एवं पर्यावरणविदों के विचारों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि लोक संस्कृति पर्यावरणीय चेतना को विकसित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है, किन्तु आधुनिकता एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण पारंपरिक पर्यावरणीय मूल्यों में कमी आती जा रही है।

शब्द कुंजी – लोकगीत, लोकपरंपराएँ, पर्यावरण संरक्षण, भारतीय संस्कृति, पर्यावरणीय चेतना, आधुनिकता, समाजशास्त्रीय अध्ययन, सांस्कृतिक परिवर्तन, सतत विकास।

प्रस्तावना – भारतीय समाज में लोक संस्कृति का विशेष महत्व रहा है। लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक अनुष्ठान, पर्व-त्योहार एवं सामाजिक परंपराएँ केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे समाज की सामूहिक चेतना एवं नैतिक मूल्यों को भी व्यक्त करते हैं। भारतीय लोक संस्कृति में प्रकृति को जीवनदाता एवं पूजनीय तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। वृक्षों, नदियों, पर्वतों एवं पशु-पक्षियों के प्रति सम्मान भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं का अभिन्न अंग रहा है।

ग्रामीण एवं आदिवासी समाजों में लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं के माध्यम से पर्यावरणीय चेतना पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। वर्षा, कृषि, जल संरक्षण एवं प्रकृति से संबंधित अनेक लोकगीत एवं धार्मिक परंपराएँ पर्यावरण संरक्षण की भावना को व्यक्त करती हैं।

किन्तु आधुनिकता, औद्योगिकीकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव से लोक संस्कृति के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। उपभोक्तावादी जीवन शैली एवं तकनीकी विकास के कारण पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव कम होता जा रहा है, जिससे पर्यावरणीय चेतना भी प्रभावित हो रही है।

ऐसे समय में यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय लोक संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण के मध्य संबंधों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाए तथा यह समझा जाए कि आधुनिकता ने इन परंपराओं को किस प्रकार प्रभावित किया है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. भारतीय लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं की प्रकृति का अध्ययन करना।
2. भारतीय लोक संस्कृति में निहित पर्यावरणीय चेतना का विश्लेषण करना।
3. लोकपरंपराओं एवं पर्यावरण संरक्षण के मध्य संबंधों का अध्ययन करना।
4. आधुनिकता एवं शहरीकरण के प्रभाव से लोक संस्कृति में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
5. पर्यावरण संरक्षण में पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों की भूमिका का अध्ययन करना।
6. सतत विकास के संदर्भ में लोक संस्कृति की प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।

परिकल्पनाएँ:

H_{a0} – लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं का पर्यावरण संरक्षण से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है।

H_{a1} – लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं का पर्यावरण संरक्षण से महत्वपूर्ण संबंध है।

H_{b0} – आधुनिकता का लोक संस्कृति एवं पर्यावरणीय चेतना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

H_{b1} – आधुनिकता के प्रभाव से लोक संस्कृति एवं पर्यावरणीय चेतना में परिवर्तन आया है।

H_{c0} – भारतीय लोक संस्कृति पर्यावरणीय व्यवहार को प्रभावित नहीं करती।

H_{c1}– भारतीय लोक संस्कृति पर्यावरणीय व्यवहार को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

साहित्य समीक्षा :

1. ई. बी. टायलर (1871) ने संस्कृति को 'जटिल समग्रता' बताते हुए कहा कि संस्कृति समाज की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। ब्रोनिस्लाव मैलिनोव्स्की (1915) ने संस्कृति को मानव आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम माना तथा यह स्पष्ट किया कि सांस्कृतिक परंपराएँ सामाजिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होती हैं।

2. रेडक्लिफ ब्राउन (1922) ने सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक परंपराओं के संबंधों का विश्लेषण करते हुए कहा कि परंपराएँ सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करती हैं। वेरियर एल्विन (1955) ने मध्य भारत की जनजातियों का अध्ययन करते हुए बताया कि आदिवासी समाज प्रकृति को जीवनदाता मानता है।

3. रेचल कार्सन (1962) ने पर्यावरणीय संकटों को वैश्विक स्तर पर उजागर किया तथा पर्यावरणीय चेतना को नई दिशा प्रदान की। माधव गाडगिल (1984) एवं रामचंद्र गुहा (1988) ने स्थानीय समुदायों एवं पर्यावरण संरक्षण के संबंधों का अध्ययन करते हुए बताया कि पारंपरिक ज्ञान एवं लोक संस्कृति पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4. योगेंद्र सिंह (1991) ने आधुनिकता एवं परंपरा के संबंधों का अध्ययन करते हुए स्पष्ट किया कि आधुनिकता के प्रभाव से लोक संस्कृति में परिवर्तन हो रहा है। वंदना शिवा (2010) ने भारतीय कृषि परंपराओं एवं जैव विविधता संरक्षण में लोक संस्कृति की भूमिका को महत्वपूर्ण माना।

5. समकालीन अध्ययनों एवं UNESCO (2023), UNEP (2020) तथा IPCC (2021) की रिपोर्टों में भी यह स्वीकार किया गया है कि पारंपरिक सांस्कृतिक ज्ञान एवं स्थानीय समुदायों की भागीदारी पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

शोध पद्धति – प्रस्तुत शोध पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में मुख्यत: द्वितीयक तथ्यों का उपयोग किया गया है। तथ्यों के संकलन हेतु पुस्तकों, शोध पत्रों, शोध प्रबंधों, सरकारी रिपोर्टों एवं इंटरनेट स्रोतों का अध्ययन किया गया।

अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें लोक संस्कृति एवं पर्यावरणीय चेतना के मध्य संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या – अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं में प्रकृति के प्रति सम्मान एवं संरक्षण की भावना विद्यमान है। ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्ष पूजा, नदी आराधना, वर्षा गीत एवं कृषि से संबंधित परंपराएँ पर्यावरणीय चेतना को प्रकट करती हैं।

डेटा विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि जिन समुदायों में लोक परंपराओं का प्रभाव अधिक है, वहाँ पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता भी अधिक पाई जाती है। दूसरी ओर, शहरी क्षेत्रों एवं आधुनिक जीवन शैली में पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पाया गया।

यह भी स्पष्ट हुआ कि आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के कारण लोक संस्कृति में परिवर्तन हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय व्यवहार एवं पारंपरिक संरक्षण पद्धतियाँ प्रभावित हो रही हैं।

परिणाम एवं निष्कर्ष :

1. भारतीय लोक संस्कृति में पर्यावरणीय चेतना का महत्वपूर्ण स्थान पाया जाता है।
2. लोकगीत एवं लोकपरंपराएँ पर्यावरण संरक्षण की भावना को विकसित करते हैं।
3. ग्रामीण एवं आदिवासी समाजों में प्रकृति के प्रति नैतिक दृष्टिकोण अधिक पाया गया।
4. आधुनिकता एवं शहरीकरण के प्रभाव से पारंपरिक पर्यावरणीय मूल्यों में कमी आई है।
5. लोक संस्कृति एवं पर्यावरणीय व्यवहार के मध्य सकारात्मक संबंध पाया गया।
6. पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास के लिए लोक संस्कृति आज भी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय लोक संस्कृति एवं पर्यावरणीय चेतना के मध्य गहरा संबंध पाया जाता है। लोकगीतों एवं लोकपरंपराओं के माध्यम से प्रकृति के प्रति सम्मान एवं संरक्षण की भावना विकसित होती है। भारतीय समाज में लोक संस्कृति केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने का भी महत्वपूर्ण साधन है।

हालाँकि, आधुनिकता एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है। इसके बावजूद लोक संस्कृति आज भी पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। अत: पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों एवं लोक ज्ञान को संरक्षित एवं पुनर्जीवित करना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. टायलर, ई. बी. (1871). प्रिमिटिव कल्चर, लंदन : जॉन मरे।
2. मालिनोव्स्की, ब्रोनिस्लाव (1915). कल्चर एंड ह्यूमन नीड्स, लंदन।
3. रेडक्लिफ–ब्राउन, ए. आर. (1922). स्ट्रक्चर एंड फंक्शन इन प्रिमिटिव सोसायटी, लंदन।
4. एल्विन, वेरियर (1955). द बैगा, लंदन : जॉन मरे।
5. कार्सन, रैचल (1962). साइलेंट स्प्रिंग, बोस्टन : हॉटन मिफ्लिन।
6. दुबे, एस. सी. (1958). इंडियाज चेंजिंग विलेजेस, रूटलेज।
7. गाडगिल, माधव (1984). इकोलॉजी एंड इक्विटी, नई दिल्ली।
8. गुहा, रामचंद्र (1988). द अनक्वाइट वुड्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. सिंह, योगेंद्र (1991). मॉडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
10. शिवा, वंदना (2010). अर्थ डेमोक्रेसी, नई दिल्ली।
11. नारायण, सुनीता (2022). एनवायरनमेंटल चौलेंजेज इन इंडिया, नई दिल्ली।
12. यूनेस्को रिपोर्ट (2023). कल्चर एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट, पेरिस।
13. यूएनईपी रिपोर्ट (2020). ग्लोबल एनवायरनमेंट आउटलुक, संयुक्त राष्ट्र।
14. आईपीसीसी रिपोर्ट (2021). क्लाइमेट चेंज एंड सोसायटी, जेनेवा।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

आदिवासी परिवारों की महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक भूमिका

डॉ. राकेश कुमार चौहान*

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) सरदार वल्लभ भाई पटेल शासकीय महाविद्यालय, कुक्षी (म.प्र) भारत

शोध सारांश – मानव संसाधन का आधा हिस्सा महिलाएँ हैं और वे इस प्रकार देश की आर्थिक सम्पदा के आधे हिस्से की मालिक है। यदि मानव संसाधन के इस आधे हिस्से की उपेक्षा की जाए तो देश की प्रगति में रूकावट अवश्यभावी होगी। भारत सरकार ने विकास गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका को पहचाना है और उनके लिए कई सकारात्मक कदम उठाये हैं ताकि उन्हें विकास की मुख्यधारा में लाया जा सके। सरकार के इन कदमों से महिलाओं की सामजिक-आर्थिक दशाओं में प्रत्यक्ष बदलाव दिखाई पड़ने लगा है।

शब्द कुंजी – आदिवासी परिवार, महिलाएँ, आर्थिक-सामाजिक भूमिका।

प्रस्तावना – जब बात आदिवासी वर्ग की होती है, तो महिलाओं की आर्थिक स्थिति का महत्व और भी बढ़ जाता है। इस वर्ग के ज्यादातर परिवार आर्थिक रूप से कमजोर हैं। इस कारण से परिवार के पालन-पोषण में महिलाओं द्वारा भी आर्थिक कार्य करके महत्वपूर्ण योगदान दिया जाता है। ग्रामीण आदिवासी परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने से उन्हें परिवार के पालन-पोषण में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस स्थिति से निपटने के लिए उनके परिवार की महिलाएँ भी आर्थिक योगदान देती हैं।

शोध विषय का चयन – प्रस्तुत शोध कार्य के लिए मध्यप्रदेश के आदिवासी बाहुल्य झाबुआ जिले का चयन किया गया है। झाबुआ जिले **'आदिवासी परिवारों की महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक भूमिका'** विषय बहुत ही महत्वपूर्ण है। आदिवासी परिवारों की महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक योगदान से संबंधित पहलूओं का अध्ययन करने के लिए इस शोध विषय का चयन शोधार्थी द्वारा किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. आदिवासी परिवारों की महिलाओं की आर्थिक भूमिका का अध्ययन करना।
2. आदिवासी परिवारों की महिलाओं कार्यशीलता का अध्ययन करना।

अध्ययन का महत्व – इस शोध के माध्यम से आदिवासी परिवारों की महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक भूमिका से संबंधित महत्वपूर्ण पहलूओं की जानकारी प्राप्त हो सकेगी, जो कि आदिवासी महिलाओं के विकास से संबंधित नीति निर्धारकों एवं नवीन शेधकर्ताओं के लिए सहायक होगी।

अध्ययन का क्षेत्र– इस शोध कार्य के लिए मध्यप्रदेश के आदिवासी बाहुल्य झाबुआ जिले का चयन किया गया है। इस जिले में सर्वधिक जनजाति जनसंख्या निवास करती है।

निदर्षन प्रक्रिया

1. अध्ययन का समग्र – इस शोध कार्य के समग्र के रूप में अध्ययन हेतु चयनित आदिवासी आधिक्य झाबुआ जिले के जनजाति परिवारों को शामिल किया गया है।

2. अध्ययन की इकाई – अध्ययन की इकाई के रूप में झाबुआ जिले के जनजाति परिवारों में से कुल 360 आदिवासी परिवारों का चयन उत्तरदाताओं के रूप में दैव निदर्शन पद्धति से किया गया है।

उत्तरदाताओं का चयन– शोध कार्य की पूर्ति के लिए उत्तरदाताओं का चयन शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर **सोद्देश्य प्रतिचयन विधि** से किया गया है। झाबुआ जिले से कुल 360 आदिवासी परिवारों का चयन **सोद्देश्य प्रतिचयन विधि** से किया गया है।

आँकड़ों का संकलन– ग्रामीण आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अध्ययन से संबंधित इस शोध की पूर्ति के लिए प्राथमिक आँकड़ों एवं द्वितीयक आँकड़ों का संकलन किया गया है।

आँकड़ों के संकलन के स्त्रोत – अध्ययन क्षेत्र के आदिवासी उत्तरदाताओं से संकलित किए गए प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का वर्गीकरण, श्रेणीकरण एवं सारणीकरण के बाद में तथ्यों का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गए, जिसके आधार पर शोध कार्य की पूर्ति की गई है।

अध्ययन के निष्कर्ष:

1. महिलाओं द्वारा आर्थिक कार्य करने के संबंध में प्राप्त तथ्यों के अनुसार लगभग 89 प्रतिशत आदिवासी परिवारों की वयस्क महिलाएँ कार्यशील हैं तथा शेष परिवारों की महिलाएँ या तो कार्यशील नहीं हैं या वयस्क नहीं है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि अधिकतर आदिवासी परिवारों की महिलाएँ आर्थिक कार्य करके अपने परिवार के भरण-पोषण में योगदान देती हैं। जिससे उनके परिवार के पालन-पोषण में कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़े। इन परिस्थितियों में आदिवासी परिवारों में महिलाओं की भूमिका का महत्व बढ़ जाता है। अत: आर्थिक दृष्टि से परिवार के भरण-पोषण में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।

2. महिलाओं के आर्थिक कार्य के विभिन्न क्षेत्रों के संबंध में प्राप्त समंकों के अनुसार लगभग 91 प्रतिशत महिलाएँ कृषि-मजदूरी करके अपने परिवार के पालन पोषण में अपना आर्थिक योगदान देती हैं तथा शेष महिलाएँ अन्य कार्यों जैसे निर्माण कार्य, सब्जी बेचना आदि माध्यम से अपना आर्थिक योगदान देती हैं। इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र में कृषि कार्य में मजदूरी की उपलब्धता तुलनात्मक रूप से अधिक होती है और इसी कारण

से ग्रामीण क्षेत्र की अधिकतर महिलाएँ कृषि क्षेत्र में मजदूरी करती हैं। लेकिन दूसरी ओर कुछ महिलाएँ अन्य कार्य जैसे निर्माण कार्य, सब्जी बेचना आदि के द्वारा परिवार के पालन-पोषण में योगदान देती हैं।

3. विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक कार्य करने वाली महिलाओं को प्रतिदिन प्राप्त होने वाली मजदूरी की राशि के संबंध में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कृषि मजदूरी में संलग्न लगभग 82 प्रतिशत महिलाओं को प्रतिदिन रू. 25-50 मजदूरी की राशि प्राप्त होती है तथा लगभग 17 प्रतिशत महिलाएँ रू. 50-75 प्रतिदिन प्राप्त करती है। वहीं दूसरी ओर जो महिलाएँ अन्य कार्यों में संलग्न हैं, उनमें से लगभग 84 प्रतिशत महिलाओं को भी प्रतिदिन रू. 25-50 मजदूरी की राशि प्राप्त होती है। अन्य कार्यों में संलग्न शेष महिलाओं को प्रतिदिन रू. 50-75 मजदूरी की राशि मिलती है।

4. विभिन्न व्यावसायिक-संरचना वाले आदिवासी परिवारों की कार्यशील महिलाओं के संबंध में प्राप्त तथ्यों के अनुसार कृषि करने वाले आदिवासी परिवारों की लगभग 94 प्रतिशत महिलाएँ कृषि मजदूरी तथा शेष महिलाएँ अन्य क्षेत्र में कार्य करती हैं। इसी प्रकार से विभिन्न व्यवसाय एवं मजदूरी करने वाले परिवारों की भी अधिकतर महिलाएँ कृषि मजदूरी ही करती हैं। लेकिन नौकरी करने वाले परिवार की महिलाएँ कृषि मजदूरी की बजाय अन्य कार्य करती हैं।

5. महिलाओं को आर्थिक कार्य करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कारक उन्हें प्रभावित करते हैं। इस संबंध में प्राप्त तथ्यों के अनुसार दोनों तहसीलों की अधिकतर महिलाएँ अपने परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति होने के कारण आर्थिक कार्य करती हैं। लेकिन दूसरी कुछ महिलाएँ अन्य कारकों जैसे मंहगाई बढ़ना, आय कम होना आदि के परिणामस्वरूप भी आर्थिक कार्य करती हैं। परिवार का बड़ा आकार होना भी इस स्थिति के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है।

6. रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में संलग्न महिलाओं को समस्याओं का सामना करना पड़ता है या नहीं। इस संबंध में प्राप्त तथ्यों के अनुसार आदिवासी परिवारों की लगभग 82 प्रतिशत महिलाओं को उनके रोजगार में कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर लगभग 18 प्रतिशत महिलाओं को रोजगार में किसी भी प्रकार की समस्या नहीं आती है।

7. महिलाओं को अपने रोजगार के क्षेत्र में कौन-कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है ? इस संबंध में प्राप्त आँकड़ों के अनुसार लगभग 71 प्रतिशत महिलाओं को रोजगार में अन्य समस्याओं जैसे लगातार एवं समय पर काम न मिलना आदि का सामना करना पड़ता है। लगभग 23 प्रतिशत महिलाओं को जो मजदूरी दी जाती है, वह अपर्याप्त होती है। वहीं लगभग 6 प्रतिशत महिलाओं के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह है कि जहाँ पर वे कार्य करती है, वहाँ पर निर्धारित समय से अधिक काम लिया जाता है।

8. महिलाओं के जीवन-स्तर सूचकांक से जुडे विभिन्न पहलूओं का विश्लेषण करने पर जो तथ्य प्राप्त हुए हैं, उनके अनुसार पूर्व की तुलना में अब महिलाओं के आत्म सम्मान (Mean Score 3.19) में काफी वृद्धि हुई है तथा इस कारण से उनके परिवार में अब उनके सम्मान (Mean Score 3.05) में भी वृद्धि हुई है और अब उन्हें समान दर्जा दिया जाने लगा है। इनके जीवन की गुणवत्ता के अन्य पहलूओं को देखें तो स्पष्ट है कि अब इनके रोजगार के अवसरों (Mean Score 3.00) में वृद्धि हो रही है। इसके परिणाम स्वरूप इनके आय के स्तर (Mean Score 2.96) में भी सुधार हुआ है। आय-स्तर में वृद्धि का यह परिणाम है कि इन महिलाओं की पारिवारिक बचत (Mean Score 2.94) भी बढ़ने लगी है, जो एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक है।

विभिन्न पक्षों के संबंध में इनकी निर्णय लेने की क्षमता (Mean Score 2.92) में भी वृद्धि हुई है और इस कारण से उनकी सामाजिक गतिविधियाँ (Mean Score 2.90) बढ़ने लगी है अर्थात् उनकी सामाजिक सहभागिता में वृद्धि हुई है। स्वास्थ्य सुविधाओं (Mean Score 2.76) तथा शिक्षा के स्तर (Mean Score 2.64) के संबंध में परिणाम उत्साहजनक नहीं रहे हैं, क्योंकि जीवन की गुणवत्ता के ये दोनों पहलुओं में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। इसका आशय यह है कि महिलाओं की शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधाओं में अभी और सुधार करना आवश्यक है। अत: इस ओर ध्यान देकर इन दोनों महत्वपूर्ण पहलूओं में सुधार का प्रयास करना होगा, तभी उनके जीवन-स्तर सूचकांक में परिवर्तन लाया जा सकता है।

उपसंहार - अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि महिलाओं को आर्थिक क्षेत्र में कार्यशील करने वाले अनेक कारक प्रभावशील हैं। लेकिन कमजोर आर्थिक स्थिति सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इसके साथ ही परिवार का बड़ा आकार, महँगाई बढ़ना, आय कम होना आदि भी महत्वपूर्ण कारक है। प्रतिस्पर्धा के इस दौर में प्रत्येक व्यक्ति को समस्याओं का सामना करना पड़ता है और कार्यशील आदिवासी महिलाओं में से दो-तिहाई से अधिक महिलाओं को अपने रोजगार के क्षेत्र में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह, दीपा जैन (2007) भारत में महिलाएँ-सांख्यिकीय प्रोफाइल, राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 1
2. आहूजा, राम (2005), भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली. पृ. 122

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

किन्नर विमर्श की अभिव्यक्ति और अस्मिता : यमदीप उपन्यास के संदर्भ में

डॉ. गोविन्द नाएक*

* अतिथि अध्यापक (हिंदी) मां माणिकेश्वरी विश्वविद्यालय, भवानिपाटणा, कलाहांडी (ओड़िशा) भारत

शोध सारांश – लैंगिक आधार पर मानव मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित है, स्त्री एवं पुरुष। इन्हीं दो वर्गों के साथ-साथ मानव जाति में एक अन्य लिंग अर्थात् तृतीय लिंग प्रकृति के इंसान भी उपस्थित हैं। सामान्यत: समाज में ऐसे मानव के लिए 'किन्नर' अथवा 'हिजड़ा' शब्द प्रयोग किया जाता है। ये वे लोग होते हैं, जो लैंगिक आधार से न तो पूर्णत: स्त्री होते हैं और न ही पूर्णत: पुरुष। कुछ विशेष अंगों एवं गुण सूत्रों का नियत अनुपात में विकास न हो पाने के कारण, ये लोग सामान्य स्त्री एवं पुरुष की भाँति न तो संभोग कर पाते हैं और न ही गर्भ धारण कर सकते हैं।ईश्वर की सृष्टि बहुत हीं अदभुत है। सभी का निर्माण समान रूप से न हुआ है, न ही सभी को समान सुविधा मिला है। मनुष्य में भी कई भेद है। किन्नर समुदाय में जन्म हुए लोग मनुष्य है या ओर कोई दूसरा जीव है।ये आज भी प्रश्न का प्रसंग है? घर में कुत्ते, बिल्ली, पशु, पक्षी आदि सभी को रहने की अधिकार है लेकिन मनुष्य की योनि से जन्म हुए किन्नरों की स्थिति भारत जैसे गणतांत्रिक देश सामान्य अधिकार नही मिल पाता है।

शब्द कुंजी – विमर्श, अस्मिता, दलित, किन्नर, थर्ड जेंडर, ट्रांसफोबिया,मानवीय मूल्य, समानता अधिकार, सामाजिक उपेक्षा, आत्मस्वाभिमान, अभिव्यक्ति।

प्रस्तावना – 'किन्नर विमर्श 21वी शताब्दी की देन है किन्नर समुदाय केलिएहिजड़ा,थर्ड जेंडर, गे, लेस्बियन, ट्रांसजेंडर, नपुंसक, आदि।'[1] 'थर्ड जेंडर' शब्द एक प्रतीक हैं, समाज से भिन्न उन वर्गों को जो समाज में रहकर भी समाज के अपने ना हो सके। थर्ड जेंडर या थर्ड सेक्स का विभाजन स्त्री-पुरुष के रूप में नहीं किया जाता है। बल्कि ये दोनों शब्द समाज में ऐसे लोगों के लिए प्रयोग किए जाते हैं, जिसे समाज में स्त्री-पुरुष के रूप में शामिल नहीं किया जाता है। थर्ड जेंडर शब्द जिसे अन्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। भारतीय समाज के अंतर्गत अगर थर्ड जेंडर की बात की जाय तो एक अलग ही संस्थानीकृत समुदाय दिखाई देता है, जिसे मुख्य रूप से हिजड़ा समुदाय के रूप में परिभाषित किया जाता है।'किन्नर समुदाय को देश में 'तृतीय लिंग' या 'थर्ड जेण्डर' के रूप में संवैधानिक मान्यता सुप्रीम कोर्ट द्वारा 15 अप्रेल 2014 को भले ही मिले हुए हो लेकिन अभी भी समाज में थर्ड जेण्डरों की दशा में कोई खास सुधार नहीं आया है। वे आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर पिछड़े हुए हैं। इन्हें अभी भी हीन और तिरस्कृत नजर से देखा जा रहा है।'[2] समाज ही नहीं बल्कि परिवार के सभी सदस्य किन्नरो को हीन नजर से देखते हैं।'हिजड़ा' शब्द सुनते ही हमारी आँखों के सामने कमर लचकाते, तालियाँ बजाते, भद्दा मजाक करते, ट्रेनों व सिग्नलों पर भीख माँगते, चमकीली साड़ियाँ व बड़े-बड़े झुमके पहने, विचित्र रंग-रूप को धारण करने वाले व्यक्ति की छवि आती है। इसे सभ्य समाज में कोई भी अपने पास नहीं बिठाना चाहता, कोई भी पिता अपनी ऐसी संतान को समाज वालों के सामने लाकर स्वीकार नहीं करना चाहता। प्रश्न उठता है क्यों? हम ऐसा क्यों करते हैं? संभवत: दुनिया में बदनामी और हंसी के डर से। अंधा, बहरा, लंगड़ा, लूला व मनोरोगी हर प्रकार का बच्चा सामाजिक रूप से स्वीकार्य है बस हिजड़े या हिजड़ी का बाप कहलाना न पिता स्वीकार कर पाता है और न उसका परिवार। समाज के लोग ऐसे परिवार को जीने नहीं देते इसीलिए समाज के भय से कभी ऐसे बच्चे त्याग दिये जाते हैं।

'अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार थर्ड जेंडर से संबंधित कानून यौनिकता तथा जेंडर पहचान के रूप में 26 मार्च 2007 को घोषित किया गया। इसके अंतर्गत 25 देशों के विशेषज्ञों द्वारा पूरे विश्व का प्रतिनिधित्व करते हुए यौनिकता और जेंडर सिद्धांत का निरूपण किया गया और कहा गया कि शहर देश का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक इंसान को उसकी यौनिकता या जेंडर पहचान के आधार पर भेदभाव किए बिना, मानवाधिकार बहाल करें, उनकी सुरक्षा करें तथा उनको इज्जत दे।18 दिसम्बर 2008 में सयुक्त राष्ट्र आम सभा में प्रस्तावित सिद्धांतों पर 66 देशों द्वारा हस्ताक्षरित वक्तव्य पेश किया गया। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार रूपरेखा के आधार पर यौनिकता और जेंडर पहचान की इस फैसले में तीन श्रेणियां दी गईं (i) भेदभाव रहित (ii) निजी अधिकारों की सुरक्षा (iii) यौनिकता और जेंडर पहचान का भेदभाव न करते हुए सभी मनुष्यों के लिए मानवाधिकार सुनिश्चित करना।'[3] अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों तथा एल.जी.बी.टी आंदोलन के कारण ही समलैंगिकता के गैर अपराधीकरण का संदर्भ तैयार हुआ।

'थर्ड जेंडर समुदाय के मानवाधिकारों के संघर्ष की शुरुआत भारत में 1993 से मानी जा सकती है। पहली बार इन समुदाय के प्रति पुलिस के उत्पीड़न के खिलाफ एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन हुआ जिसमें धारा 377 को रद्द करने का मुद्दा उठा। कोर्ट में 1994 में अपराधी कानून के खिलाफ पहली याचिका ए.बी.वी.ए. ने दी। इस चुनौती का कारण था जेलों में किरण बेदी द्वारा कंडोम बाँटने पर रोक। किरण बेदी का मानना था की ऐसा करना धारा 377 के अंतर्गत जुर्म होगा। इस कारण यह समुदाय स्वास्थ्य संबंधी मुहिमों में पीछे छूटता जा रहा था। मुख्यधारा में शामिल न किए जाने के

कारण इन्हें सभी जरूरी सुविधाओं से भी दूर रखा गया था। 2001 में नाज फाउण्डेशन द्वारा धारा 377 के खिलाफ याचिका दायर की गई। 2009 में धारा 377 को दिल्ली न्यायालय ने अपराधिक श्रेणी से बाहर किया। उसी याचिका पर पुन: सुनवाई के दौरान दिसंबर 2013 में उच्च न्यायालय में धारा 377 को पुन: अपराध की श्रेणी में शामिल कर दिया गया। लंबे संघर्षो के पाद पुन: अपराधिक कानून में शामिल किए जाने के बाद के संघर्ष के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने 15 अप्रैल 2014 को अपने एक ऐतिहासिक फैसले में इस समाज को थर्ड जेंडर में शामिल किया और इन्हें ट्रांसजेंडर नाम दिया।'[4]

साहित्य इंसान की सबसे बड़ी सृजनात्मक खोजों में से एक है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है । समाज की सभी गतिविधियां साहित्य के विभिन्न विधाओ अभिव्यक्त होती आ रही है। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि विधाओ के माध्यम से समाज की समस्या मुखरित होती है। किन्नर समुदाय लैंगिग विषमता के सदियो से भारतीय समाज में अवहेलित होती आ रही है । परंतु हिंदी भाषा के साहित्यकार किन्नर समाज को केंद्र में रखकर दर्जनो उपन्यासो की रचना किए है। इनके दुख, दर्द, पीडा, शोषणऔर अत्याचार को मर्मिक रूप से चित्रण किए है।थर्ड जेंडर पर आधारित उपन्यासों में सिर्फ किन्नरों के समस्याओं का चित्रण नहीं मिलता बल्कि किन्नर समुदाय की जीवन शैली, रीति रिवाज, निराश, कुंठा, एकाकीपन, सामाजिक उपेक्षा आदि देखने को मिलता है, ये ही थर्ड जेंडर विमर्श की मूल अवधारणा है ।

हमारे सामाजिक परिवेश में किन्नर समुदाय सदैव अपेक्षित-सा रहा है। इन पर बोलना-लिखना आज भी सभ्य समाज की निशानी नहीं मानी जाती है। किन्नर को सदैव हेय दृष्टि से देखा जाता है। यह संतोष की बात है कि आज किन्नर विमर्श को साहित्य की महत्त्वपूर्ण धारा के रूप में जाना-समझा जा रहा है। विभिन्न उपन्यासों, कहानियों, आलेखों ने साहित्यकारों के साथ-साथ पाठकों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया है। थर्ड जेंडर विमर्श से संबंधित हिन्दी उपन्यासों की संख्या बहुत कम है । यमदीप- नीरजा माधव(2002), मैं भी औरत हूं- अनुसूया त्यागी(2005), तीसरी ताली-प्रदीप सौरभ(2010), किन्नर कथा- महेंद्र भीष्म(2011), गुलाम मंडी-निर्मला भुराड़िया(2013), पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा- चित्रा मुद्गल(2016), मैं पायल- महेंद्र भीष्म(2016), जिन्दगी 50-50 भगवंत अनमोल(2017), दरमियाना- सुभाष अखिल(2018) आदि उपन्यासों में किन्नर समाज के शोषण, अत्याचार, उत्थान और पतन का झलक देखने को मिलता है । सभी उपन्यासों की कथानक लगभग समान है । जिस प्रकार से स्त्री विमर्श पर आधारित साहित्य पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करके सामाजिक समानता का मांग करता है, ठीक उसी प्रकार किन्नर विमर्श पर आधारित उपन्यासों में भी सदियों से वंचित किन्नर समाज को मानवाधिकार दिलाने की कोशिश करता है ।किन्नर विमर्श पर आधारित यमदीप उपन्यास का समस्याए इस प्रकार से हैं ।

'यमदीप' उपन्यास नीरजा माधव द्वारा रचित एक मार्मिक उपन्यास है, जिसे हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श या थर्ड जेंडर समुदाय पर केंद्रित पहला उपन्यास माना जाता है। यह कृति समाज के हाशिए पर जी रहे इस वर्ग के दर्द, संघर्ष और उनकी छिपी हुई मानवीय संवेदनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज है।उपन्यास का शीर्षक 'यमदीप' एक बेहद मर्मस्पर्शी प्रतीक है। दीपावली की पूर्व संध्या पर यमराज के निमित्ता घर के बाहर घूरे पर एक दीया जलाकर रख दिया जाता है, जिसे कोई पलट कर नहीं देखता और ना ही जिसकी पूजा होती है। लेखिका ने किन्नर समाज को इसी 'यमदीप' की उपमा दी है। तथाकथित सभ्य समाज इस समुदाय को अभिशप्त मानकर अंधकार में अकेला छोड़ देता है।

'यमदीप' उपन्यास एक मेजर के घर तीसरी संतान के रूप में जन्मी 'नंदरानी' के जीवन की यात्रा कराता है। माँ की लाड़ली 'नंदरानी' से 'हिजड़ा नाज बीबी' में रूपान्तरण की उसकी कथा अत्यन्त हृदयविदारक है। समाज की अनेकानेक इकाइयाँ इस रूपान्तरण के लिए उत्तरदायी हैं, उपन्यास में बड़ी ही नि:संगता के साथ सबको कटघरे में खड़ा किया गया है। कथा-लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि से कुछ भी बच नहीं पाया है- परिवार, शिक्षण-संस्थाएँ, धर्म के ठेकेदार, मीडियाकर्मी, पुलिस, राजनेता.... सबकी भूमिका की निर्मम पड़ताल की है लेखिका ने। 'तीसरे लिंग' के विषय में सबकी मानसिकता कमोबेश एक-सी ही है। 'समाजशास्त्रियों ने इस मानसिकता को 'ट्रांसफोबिया' कहा है, इसका विकराल चेहरा इस उपन्यास के पृष्ठों पर बार-बार प्रकट होता है- पूरी भयंकरता के साथ। 'तीसरे लिंग' के प्रति भय, लज्जा, क्रोध, हिंसा, पूर्वाग्रह, भेदभाव आदि नकारात्मक भावों के सम्मिश्रण से बना यह 'ट्रांसफोबिया' तीसरे लिंग के जीवन को नरक बना देता है। जन्म के साथ ही तीसरे लिंग का मनुष्य इसका शिकार होने लगता है।'[5] उपन्यास का पाठ हमारे सामने स्पष्ट कर देता है कि एक मेजर के घर तीसरी संतान के रूप में जन्मी 'नंदरानी' वस्तुत: 'तीसरे लिंग' का मनुष्य है। उसके जन्म पर मेजर साहब फूट-फूट कर रो पड़ते हैं। मेजर साहब! फौज के एक उच्च अधिकारी! देश को दुश्मनों से बचाने वाले वीर-जांबाज! एक मेजर के साहस और शौर्य पर तो संदेह हो ही नहीं सकता। बहादुरफौजी !..... और फूट-फूटकर रो रहे हैं वे !! क्यों भला? दु:खी हैं वे अपने दुर्भाग्य पर। जानते हैं कि इस संतान के कारण उन्हें कदम-कदम पर समाज के सामने लज्जित होना पड़ेगा। ...और इस तरह जन्म लेते ही वह शिशु 'ट्रांसफोबिया' का शिकार होने लगता है। शिशु की माँ की क्या प्रतिक्रिया रही होगी उसके जन्म पर, उपन्यास में स्पष्ट नहीं है। मगर दादी? एक भय तत्काल उन्हें दबोच लेता है कि हिजड़े आएँगे और इस शिशु को जबरन अपने साथ ले जाएँगे। भयभीत दादी तुरन्त समाधान निकालती हैं कि शिशु को उसकी माँ समेत जल्द से जल्द ननिहाल भेज दिया जाए और अगले ही दिन उस नवजात शिशु को माँ समेत उसके ननिहाल भिजवा दिया जाता है और यहाँ घर में सबको मुँह बंद रखने की सख्त हिदायत दे दी जाती है ताकि यह मनहूस खबर फैले ही नहीं। हिजड़े आते हैं और नाच-गाकर अपना नेग लेकर चले जाते हैं तब दादी की साँस में साँस आती है। भय का भाव यहाँ स्पष्ट ही देखा जा सकता है। दादी डरी हुई हैं कि उनके घर जन्मे हिजड़े शिशु को कहीं हिजड़े अपने साथ न ले जाएँ। 'जिन हिजड़ों के हाथ अपने शिशु को सौंपने के ख्याल से ही दादी डरी-सहमी हुई हैं, उनका अपना शिशु भविष्य में वैसा जीवन न जीए, इसके लिए वे करती क्या हैं? सिवाय उसे समाज से छिपाकर रखने के! केवल वही क्यों, परिवार के अन्य सदस्य भी क्या करते हैं? उसकी देह के सच को सबसे छिपाने के सिवा ! जन्म के बाद के चार-पाँच साल माँ की कड़ी सुरक्षा में बीतते हैं ताकि यह सच किसी पर जाहिर न हो जाए। मगर अब स्कूल भेजना है उसे !! सख्त हिदायत दी जाती है उस पाँच साल की बच्ची को कि किसी के भी सामने 'छोटे बाहर' (मूत्र-विसर्जन) या 'बड़े बाहर' (शौच) नहीं जाना है।'[6] पिता स्कूल छुड़वा लेते हैं क्योंकि वहाँ यह भेद उजागर हो गया है। भाई क्रोध में आग-बबूला हो उसे कोसने लगता है जब उसके कारण बड़ी बहन के विवाह में अड़चनें आने लगती हैं। जानता था भाई कि भविष्य में उसके अपने विवाह के समय भी यह नंदरानी रूपी रोड़ा

आड़े आएगा। वह 'तीसरे लिंग' में जन्मी अपनी इस बहन पर क्रोध कर सकता है मगर उसके हक के लिए समाज के सामने छाती तानकर खड़ा नहीं हो सकता। अपने आस-पास जब हम नजर दौड़ाते हैं तो 'तीसरे लिंग' के मनुष्य 'संतान-जन्म' के अवसर पर या 'पुत्र-विवाह' के अवसर पर तालियाँ पीट-पीटकर नाचते-गाते ही दिखते हैं हमें। नाम मात्र के अपवादों को छोड़ दिया जाए तो स्कूलों में शिक्षा पाते कहाँ दिखते हैं ये? रोजगार की दुनिया में सम्मानजनक पदों पर कब दिखते हैं ये?

नंदरानी की माँ अपनी अभिशप्त कोख को कोसती और नंदरानी के पिता के साथ मिलकर केवल आँसू बहाती ही नजर आती हैं। माता-पिता के ये आँसू नंदरानी की नियति नहीं बदल पाते। वह बार-बार आशा भरी नजरों से उनकी ओर देखती है मगर वहाँ उसे विवशता ही पसरी दिखाई देती है। 'विधाता के क्रूर मजाक को समझने के बाद भी नंदरानी को लग रहा था कि वह माता-पिता के सहारे डॉक्टर बन जाएगी और बड़ी होकर उनकी सेवा करेगी मगर माता-पिता अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाते हैं..... और फिर एक दिन वह घर छोड़ देती है।'[7] कोई कह सकता है कि नंदरानी ने खुद घर छोड़ा, परिवारजनों ने उसे नहीं निकाला मगर उपन्यास का पाठ स्पष्ट कर देता है कि परिवार के सदस्यों ने ही घर में उसके लिए ऐसा दमघोंटू माहौल बना दिया कि विवश होकर उसे घर छोड़ना पड़ा। जैसे किसी को आत्महत्या के लिए उकसाया जाता है, यह भी वैसा ही कृत्य था। भाई का क्रोध और वाचिक हिंसा, पिता का उसके कारण उपजी अपनी दयनीय दशा का करुण प्रदर्शन, माँ के कायरता-भरे आँसू...सबने मिलकर अपराध-बोध से भर दिया नंदरानी को। कहाँ तक सहन करती वह? अपनों के बीच पराएपन का अहसास जब असह्य हो गया तो उस तथाकथित घर को सदा के लिए त्याग वह अपनी 'हिजड़ा जमात' में शामिल हो गयी। उपन्यास नाजबीबी के उदाहरण के माध्यम से ऐसे माता-पिता को कटघरे में खड़ा करता है। समाज के डर से अपने 'तीसरे लिंग' के बच्चों को निर्वासित करने वाले माँ-बाप क्या कभी उस पीड़ा का अनुमान लगा पाते हैं जो इन बच्चों को घर से जुदा होकर होती है! एक गुमनाम-सी जिंदगी जीनी पड़ती है इन्हें, पहचान बदलनी पड़ती है इन बच्चों को अपनी। माँ-बाप की तथाकथित इज्जत बचाने के लिए अपनी पुरानी पहचान छिपाते हुए अपने अतीत से नाता तोड़ना पड़ता है। मानो एक पौधे को नरम-उपजाऊ मिट्टी से उखाड़कर किसी एकान्त कोने की सख्त मिट्टी में प्रतिकूल जलवायु के बीच बेदर्दी से पटक दिया जाए ! नंदरानी इसी बेदर्दी की शिकार बनी थी।'

पुलिस वालों का व्यवहार भी उनके प्रति या तो उपहास से भरा है या हिंसा से। सोना की तलाश में जब पुलिस वाले हिजड़ों की बस्ती में छापा मारते हैं तो बड़ी ही बेरहमी से वे उन्हें पीटते हैं।' उपन्यास स्पष्ट कर देता है कि हिजड़े पुलिस वालों की यौन-हिंसा का शिकार भी होते हैं। केवल पुलिस ही नहीं, सेक्स की भूख से पीड़ित कई-कई पुरुषों के साथ हिजड़ों को यौन-संबंध बनाने पड़ते हैं। एकाधिक पुरुषों के साथ यौन-संबंध बनाने के कारण ये भयंकर यौन रोगों के शिकार हो जाते हैं। उपन्यास में सोबराती नाम का हिजड़ा ऐसे ही यौन रोग से ग्रस्त दिखाया गया है।' अच्छी चिकित्सा के अभाव में वह बरसों तक तड़प-तड़पकर अंत में प्राण त्याग देता है।

'एक ममतामयी, कर्त्तव्यपरायण माँ की तरह वह सोना को पालती है। सोना ही अब उसकी जिंदगी है। उससे बिछुड़ने की कल्पना-मात्र से ही वह विह्वल हो उठती है। उपन्यास के उत्तरार्ध में जब एक डॉक्टर की चुगली से सोना का भेद पुलिस पर खुल जाता है और विवश हो नाज बीबी को सोना को नारी उद्धार गृह भेजना पड़ता है तब उसकी व्याकुल दशा, उसका रोना-बिलखना पाठक को भी करुणा-विगलित कर देता है।'[8] यही नहीं, नारी उद्धार गृह के भीतरी शर्मनाक सत्य का पर्दाफाश जब एक अखबारी समाचार द्वारा नाजबीबी के सामने होता है तो सोना की चिंता में पहले उसका निरीह-कातर होना और फिर उसके तुरंत बाद सोना को उस कुचक्र से मुक्ति दिलाने के लिए उसका कमर कस लेना उसके चरित्र को एक अत्यन्त उदात्त धरातल पर स्थापित कर देता है। वस्तुत: उसके चरित्र के माध्यम से नीरजा माधव ने 'तीसरे लिंग' की त्रासदीहैं। नारी-उद्धार गृह में शरण पाने वाली मजबूर-मासूम लड़कियों को देह व्यापार में धकेलने वाले और विरोध करने पर उनकी हत्या तक कर देने वाले ये हैवान क्या 'मनुष्य' कहलाने के अधिकारी हैं? और इधर, नाज बीबी ही नहीं, छैलू, अकरम, चमेली जैसे अनेकानेक हिजड़ा चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने अपनी इसी संकल्पना को अभिव्यक्ति दी है कि तीसरे लिंग में जन्म हुए लोगो के पास भी मानवता जीवित है।

उपन्यास्कार नीरजा माधव ने उपन्यास का अंत मानवी के उस संकल्प के साथ किया है जिसमें वह भ्रष्ट राजनीतिज्ञ मन्ना बाबू के विरोध में नाज बीबी को चुनाव में खड़ा करना चाहती है। डी. एम. आनन्द का सहयोग भरा साथ उसे प्राप्त है ही। इस प्रकार उपन्यास का अंत तीनों लिंगों के सहयोगी प्रयास की मधुर कल्याणकारी संकल्पना के साथ होता है। आनन्द 'पुल्लिंग' के प्रतिनिधि हैं मानवी 'स्त्रीलिंग' की और नाज बीबी 'तीसरे लिंग' की। स्त्री-पुरुष के अद्वैत की बात तो साहित्य में बार-बार दोहराई गई है मगर इस सहयोगी-संकल्पना में कभी भी 'तीसरे लिंग' को शामिल नहीं किया गया था। उनके सम्मिलन के बिना 'संपूर्ण एकता' का दावा कितना झूठा था, कितना अधूरा ! नीरजा माधव के 'यमदीप' के माध्यम से मानो इस त्रुटि का परिमार्जन कर लिया साहित्य ने! 'समानता' और 'स्वतंत्रता' जैसे चिर प्राचीन और चिर नवीन शब्द भी तब तक अर्थहीन ही माने जाएँगे जब तक 'तीसरे लिंग' तक इन शब्दों की अर्थवत्त का प्रसार नहीं हो जाता। नाज बीबी जैसे तीसरे लिंग के मनुष्यों को 'यमदीप' की तरह 'घूरे' पर निर्वासित कर देना अब मानव-समाज को बंद करना होगा।

निष्कर्ष –किन्नर समाज को आज भी अपने बुनियादी अधिकारों, सामाजिक स्वीकार्यता और सम्मान के लिए भारी संघर्ष करना पड़ता है। उनके सामने प्रमुख चुनौतियाँ पहचान, शिक्षा, रोजगार और भेदभाव से जुड़ी हुई हैं।सामाजिक बहिष्कार,शिक्षा और रोजगार का अभाव, स्वास्थ्य सेवाएं और मानसिक तनाव किन्नर समुदाय का प्रमुख समस्या है। भारत का पहला किन्नर विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले के फाजिल नगर में स्थापित किया जा रहा है।यह अपनी तरह का पहला संस्थान है जहाँ इस समुदाय के लोगों को प्राथमिक स्तर से लेकर पीएचडी तक की मुफ्त शिक्षा प्रदान की जाएगी।कानूनी तौर पर 2014 के बाद किन्नरों को पिछड़े वर्ग के भांति सरकारी सुविधा तो मिल रहा है, फिर भी आज किन्नर समाज के लोग ट्रांसफोबिया का शिकार हो रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. खान डॉ.एम. फिरोज, थर्ड जेंडर और साहित्य, विकाश प्रकाशन, कानपुर–2018, पृष्ठ क्र. –09
2. खान डॉ.एम. फिरोज, थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान, विकाश प्रकाशन, कानपुर–2018, पृष्ठ क्र.– 14
3. खान डॉ.एम. फिरोज, थर्ड जेंडर और साहित्य, विकाश प्रकाशन, कानपुर–2018, पृष्ठ क्र. –28

4. खान डॉ.एम. फिरोज, थर्डजेंडर और साहित्य, विकाश प्रकाशन, कानपुर–2018, पृष्ठ क्र. –33
5. खान डॉ.एम. फिरोज, थर्ड जेंडर अतीत और वर्तमान, विकाश प्रकाशन, कानपुर–2018, पृष्ठ क्र.– 17
6. माधव नीरज, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–2017, पृष्ठ क्र.–8
7. माधव नीरज, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–2017, पृष्ठ क्र.–20
8. माधव नीरज, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–2017, पृष्ठ क्र.–8

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारत में साइबर अपराध और साइबर सुरक्षा : उभरते खतरे और चुनौतियां

डॉ. आभा सैनी*

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (राजनीति विज्ञान) जैन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – आत्मनिर्भर भारत और भारतीय अर्थव्यवस्था, भारत की एक विशिष्ट पहचान अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बना रहे हैं आत्मनिर्भर भारत आत्मविश्वास से भरे भारतीय लोगों की अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है और देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करता है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों की गुणवत्ता और क्षमता तय करता है। मेक इन इंडिया, मेड इन इंडिया, मेड फॉर द वर्ल्ड इससे संबंधित उएम हैं। आजकल, डिजिटल इंडिया कार्यक्रम भी भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में अपना योगदान देता है वैश्वीकरण के युग में, बढ़ते इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के कारण साइबर अपराध बढ़ गए हैं और इसीलिए साइबर सुरक्षा एक आवश्यकता बन गई है। साइबर सुरक्षा में, डेटा को अनधिकृत स्रोतों से सिस्टम और नेटवर्क में सुरक्षित किया जाता है। साइबर खतरों के बदलते पैटर्न, कुशल साइबर सुरक्षा पेशेवरों की कमी, साइबर सुरक्षा के लिए इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की जागरूकता की कमी आदि भारत में बहुत सारे मुद्दे और चुनौतियां हैं। साइबर अपराध अब राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और व्यक्तिगत निजता के लिए गंभीर खतरा बन गया है।

साहित्य पुनरावलोकन

डॉक्टर एस. मार्सेलिन पुष्पा (2024) इंडियन गवर्नेंस के लगातार बदलते नजरिए को खासकर वैश्विक दुनिया के संदर्भ में वर्णन करती है। उन्होंने प्रशासन और डिजिटल सुरक्षा डिजिटल ट्रांसफॉर्मेशन, नागरिकों की भागीदारी और डिजिटल गवर्नेंस में भविष्य के ट्रेंड्स पर भी चर्चा की।

डॉ. अवस्थी और अवस्थी (2014) ने भारतीय प्रशासन के अलग-अलग पहलुओं और चुनौतियों पर चर्चा की है जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी और ई प्रशासन सम्मिलित है टांगजैम कै सिंह(2024) का मानना है कि पिछले दशकों में साइबर सुरक्षा का परिदृश्य बढ़ती हुई नई तकनीक के कारण तेजी से बड़ा है वह साइबर इकोसिस्टम की वर्तमान और भविष्य की बदलती हुई प्रवृत्तियो और चुनौतियों एवं सरकार की साइबर नीति को बताते हैं।

माइकल ई. मिलाकोविच (2012) पब्लिक सर्विस और भागीदारी को बेहतर बनाने के लिए एक नई टेक्नोलॉजी के तौर पर डिजिटल गवर्नेंस का विश्लेषण करते हैं। डॉ. बी.एल. फादिया (2003) डिजिटल और ई-गवर्नेंस और इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी के बारे में वर्णन करते हैं।

रघु संथानम और एम सेतु माधवन एवं मोहित वीरेंद्र (2011) साइबर सुरक्षा साइबर अपराध और साइबर फॉरेंसिक साइंस के प्रयोग और अवधारणा को विश्लेषित करते हैं।

शोध उद्देश्य और शोध विधि – प्रस्तुत शोध पत्र में साइबर अपराध और साइबर सुरक्षा की अवधारणा की व्याख्या की गई है इस शोध पत्र का उद्देश्य साइबर अपराध और साइबर सुरक्षा की उभरती हुई प्रवृत्तियों और चुनौतियों का विश्लेषण करना है भारत में साइबर खतरों से निपटने हेतु साइबर जागरूकता के महत्व की व्याख्या करना है प्रस्तुत शोध पत्र में भारत सरकार के द्वारा इस संदर्भ में उठाए गए कदमों का भी विश्लेषण किया गया हैऔर इस संदर्भ में उत्पन्न चुनौतियों और उन समस्याओं के समाधान को भी प्रस्तुत शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक और द्वितीय स्रोतों का प्रयोग किया गया है प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

साइबर अपराध और साइबर सुरक्षा– साइबर अपराध वह अपराध है जिसमें इंटरनेट, कंप्यूटर, मोबाइल फोन या किसी डिजिटल सिस्टम का उपयोग करके अपराध को अंजाम दिया जाता है। जैसे – व्यक्तिगत पैसे डेटा चोरी करना, ऑनलाइन बैंकिंग और यूपीआई फ्रॉड कर बैंक डिपॉजिट से बेचना, अश्लील सामग्री फैलाना या सरकारी वेबसाइट हैक करना।

साइबर अपराध में व्यक्ति के विरुद्ध अपराध सम्मिलित है जिसमें पहले साइबर सटॉकिंग अर्थात किसी व्यक्ति को बार-बार मैसेज करना जिससे कि वह मानसिक रूप से परेशान हो जाए दूसरे साइबर बुलिंग, किसी व्यक्ति का बार-बार ऑनलाइन मजाक उड़ाना धमकाना और सामान बेचना तीसरा, डॉक्सिंग, अर्थात किसी व्यक्ति की निजी जानकारी चुराकर उसे ऑनलाइन साझा करना जिसमें उसकी तस्वीर पता इत्यादि सम्मिलित हो चौथा फिशिंग जिसमें नकली ईमेल या वेबसाइट के माध्यम से लोगों की व्यक्तिगत जानकारी चुराना सम्मिलित है पांचवा ऑनलाइन यौन उत्पीड़न छठ फर्जी सोशल प्रोफाइल बनाना इसमें सम्मिलित किया जाता है।

दूसरे प्रकार का साइबर अपराध संपत्ति के विरुद्ध अपराध है जिसमें हैकिंग सम्मिलित है किसी के कंप्यूटर सिस्टम में अनधिकृत प्रवेश करना, दूसरे किसी के डाटा को नष्ट करने या खत्म करने की साइबर बॉर्बर्टा, तीसरी लाइसेंस के उपयोग या वितरण के बिना साइबर पायरेसी ,नकली फोन करके या नकली तरीके से क्रेडिट कार्ड की जानकारी चुराना और क्रेडिट कार्ड की धोखाधड़ी करना और रन समबियर अटैक कंप्यूटर को लॉक कर देना और उसके बदले में रोजगार की मांग करना।

तीसरे प्रकार का साइबर अपराध समाज और सरकार के प्रति है जिसमें

साइबर आतंकवाद सम्मिलित है जिसके अंतर्गत देश की रक्षा अथवा सरकारी नेटवर्क में घुसपैठ करना क्या उसे पर हमला करना सरकार की गुप्त जानकारी चलाने के लिए साइबर जासूसी करना इसके अतिरिक्त इसमें साइबर युद्ध भी सम्मिलित है जिसमें एक देश के द्वारा दूसरे देश पर साइबर तरीकों से उसको बाधित किया जाता है अभी हाल ही में रूस और यूक्रेन के युद्ध के दौरान इस तरीके की गतिविधि देखी गई वर्तमान समय में इंटरनेट के बढ़ते उपयोग के कारण सोशल नेटवर्क का प्रयोग भी बड़ा है इसीलिए इन सोशल नेटवर्क साइट के जरिए गलत समाचार प्रसारित करके हिंसा भड़काई जाती है या भ्रम फैलाया जाता है यह भी साइबर अपराध की श्रेणी में आता है

साइबर सुरक्षा कंप्यूटर सिस्टम, नेटवर्क और डेटा को अनधिकृत पहुंच या हमलों से बचाने की प्रक्रिया है। इसमें नेटवर्क सुरक्षा, एंडपॉइंट सुरक्षा, क्लाउड सुरक्षा और डेटा सुरक्षा जैसे प्रमुख क्षेत्र शामिल हैं। साइबर सुरक्षा में महत्वपूर्ण बुनियादी सुरक्षा ढांचा हैं।बचाव के तरीक में मजबूत पासवर्ड ,हमेशा कठिन और अलग-अलग पासवर्ड का उपयोग करना चाहिए साथ में टू-फैक्टर ऑथेंटिकेशन (2FA)अर्थात लॉगिन के लिए पासवर्ड के साथ ओटीपी (OTP) का उपयोग करना चाहिए।अपने डिवाइस और ऐप्स को हमेशा अपडेट रखें ताकि सुरक्षा खामियां दूर हो सकें।

एक भरोसेमंद एंटी-वायरस का उपयोग करें। किसी भी अनजान लिंक (URL) पर क्लिक न करें और अपना पासवर्ड या OTP किसी के साथ शेयर न करें।किसी भी अनजान क्यूआर (QR) कोड को स्कैन करने या UPI पिन डालने से पहले सोचें, क्योंकि पिन हमेशा पैसे भेजने के लिए होता है, प्राप्त करने के लिए नहीं।अपने महत्वपूर्ण डेटा का बैकअप हमेशा सुरक्षित रखें।सोशल मीडिया पर अपनी व्यक्तिगत जानकारी सार्वजनिक न करें और समय-समय पर अपने सभी ऑनलाइन खातों के पासवर्ड बदलते रहें। यदि कोई आपको ऑनलाइन परेशान कर रहा है, तो उसका स्क्रीनशॉट लें, उसे ब्लॉक करें और तुरंत नेशनल साइबर क्राइम रिपोर्टिंग पोर्टल पर रिपोर्ट करें।

भारत में साइबर अपराध और साइबर सुरक्षा के उभरते खतरे और चुनौतियां -वर्तमान समय में डिजिटल इंडिया के क्षेत्र में भारत आगे पहुंचा है और उसे आर्थिक लाभ भी इसमें प्राप्त हुआ है भारत में ऑनलाइन सुरक्षा बाजार 2025 में लगभग 10.84 बिलियन अमेरिकी डॉलर का हो गया है वहीं दूसरी और साइबर अपराध और साइबर धोखाधड़ी भी बड़ी है 2025 की पहली छमाही में भारत को साइबर धोखाधड़ी के कारण प्रति माह औसतन रू 1,000 करोड़ का नुकसान हुआ, जो कुल रू 7,000 करोड़ तक पहुँच गया।प्रमुख धोखाधड़ी शेयर बाजारध्निवेश धोखाधड़ी, डिजिटल अरेस्ट स्कैम, कार्य-आधारित और निवेश-आधारित धोखाधड़ी भारत में सक्रिय भरती एजेंट जरिए के द्वारा की जाती है।भारत के साइबर धोखाधड़ी पारिस्थितिकी तंत्र का दुरुपयोग के कारणों में डिजिटल बैंकिंग लेनदेन में खामियाँ, टेलीकॉम सेक्टर में PoS एजेंटों द्वारा फर्जी सिम कार्ड जारी करना, आव्रजन में कमजोर सत्यापन प्रक्रियाएँ, आदि शामिल हैं, जिससे अज्ञात और सीमापार साइबर अपराध संभव हो पाते हैं। असंतोष, निजी लाभ, विचारधारा के आधार पर हिंसक होने पर और भू राजनीतिक स्थितियों के कारण साइबर अपराधों में वृद्धि हुई है राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आंकड़ों के अनुसार, भारत में साइबर अपराधों में लगातार तेजी दर्ज की गई है। मामलों में लगभग 18% से 24% की वार्षिक वृद्धि हुई है। इन मामलों में लगभग 73% से अधिक घटनाएं वित्तीय धोखाधड़ी और ऑनलाइन ठगी से संबंधित हैं।

AI का खतरा 2025 में उसके बढ़ते प्रयोग के कारण साइबर अपराधों की श्रेणी में वृद्धि कर रहा है ।AIआधारित हमले और डीपफेक तकनीक सुरक्षा के लिए बड़ी चुनौती बन गए हैंआज के साइबर सिक्योरिटी खतरे, साइबर अटैक और सिक्योरिटी प्रोटोकॉल मुख्य चुनौतियों के रूप में उभर रहे हैं। भारत में इंटरनेट यूजर्स 25.15 करोड़ (2014) से बढ़कर 96.96 करोड़ (2024) हो गएए 97.65% गांवों में मोबाइल है, 96.80% में 4G है (मई 2025), लेकिन UN ई-गवर्नमेंट इंडेक्स (2024) में भारत 97वें स्थान पर है। भारत खास IT कानून वाला 12वां देश बन गया, जो भारत की डिजिटल इकॉनमी और इंटरनेट गवर्नेंस के लिए एक मजबूत फ्रेमवर्क देता है। लेकिन इसके बावजूद भी भारत में डिजिटल साक्षरता की कमी है और डिजिटल जागरूकता का अभाव निरंतर साइबर अपराध में वृद्धि करता है और साइबर सुरक्षा को चुनौती देता है भारत प्रौद्योगिकी और डिजिटल भुगतान का एक विशाल केंद्र है। इसी वजह से यह वैश्विक हैकर्स के लिए एक प्रमुख लक्ष्य बन जाता है। यहां मोबाइल आधारित हमलों की संख्या बहुत अधिक है।

साइबर टेररिज्म के अंतर्गत पेशेवर व्यक्तियों से काम लिया जाता है जिससे उन्हें कानूनी रूप से पकड़ना अत्यंत मुश्किल हो जाता है भारत में सरकारी विभागों में कुशल तकनीकी विशेषज्ञों की कमी है भारत में साइबर हमले की प्रमुख घटनाओं में एक मामला आधार डेटा लीक (2018) से संबंधित है जिसमें 1.1 अरब आधार कार्डधारकों की व्यक्तिगत जानकारी लीक हुई जिसमें आधार संख्या,PAN और बैंक विवरण शामिल थे। वर्ष 2022 में 9M कार्ड धारको का वित्तीय डाटा लीक हुआ जिसमें एसबीआई भी सम्मिलित था भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ता की संख्या अधिक है लेकिन वह यह नहीं जानते कि अपना पासवर्ड साइबर सुरक्षा के लिए कैसे बनाएं साइबर सुरक्षा के लिए कौन सा एंटीवायरस डाउनलोड करें और साइबर सुरक्षा हेतु क्या-क्या प्रक्रिया है अपना ही जा सकती है ऑनलाइन बैंकिंग का कैसे इस्तेमाल किया जा सकता है सुरक्षित तरीके से ऑनलाइन व्यक्तिगत जानकारी कैसे साझा की जा सकती है बहुत सारे लोग साइबर अपराध होने पर भी उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं करते हैं।

मौजूदा सिस्टम में कई चुनौतियाँ हैं, जिसमें अलग-अलग एजेंसियों के बीच रेगुलेटरी ओवरलैप और टेलीकम्युनिकेशन, IT और ब्रॉडकास्टिंग के कन्वर्जेंस को ठीक करने के लिए एक ज्यादा यूनिफाइड अप्रोच की जरूरत शामिल है डिजिटलाइजेशन के कारण लोगों को रोजगार खाना पड़ रहा है और यह असंतोष का कारण बन रहा है यह लोगों के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर रहा है बच्चे और युवा वर्ग पर इसका अधिक प्रभाव हो रहा है।

IT एक्ट 2000 मुख्य कानून बना हुआ है, नए डेवलपमेंट IT रूल्स 2021 और प्रस्तावित डिजिटल इंडिया एक्ट के जरिए रेगुलेटरी फ्रेमवर्क को कड़ा करना है, जो इंटरमीडियरी अकाउंटेबिलिटी और कंटेंट रेगुलेशन पर बहुत ज्यादा फोकस करता है।खतरों में आए बदलावों से निपटने के लिए राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति (2013) जैसी नीतियों में संशोधन काफी समय से लंबित हैं।वर्तमान भारतीय साइबर सुरक्षा नीति को बढ़ते हुए मुद्दों का सामना करना पड़ रहा है जिसमें की आधुनिकतम तकनीक जैसे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस या 5G का बढ़ता हुआ प्रयोग है अधिकांश सरकारी और निजी संस्थानों में पुराने आईटी सिस्टम का इस्तेमाल किया जाता है जो नए साइबर हमलों का मुकाबला करने में असमर्थ है एआई (AI) और डीपफेक जैसी नई तकनीकों के दुरुपयोग से निपटने के लिए कानूनों

को तेजी से अपग्रेड करने की भी चुनौती है साइबर अपराधियों का संगठन अब अंतर्राष्ट्रीय रैकेट और डार्क वेब के माध्यम से संगठित अपराध का रूप ले चुका है।साइबर अपराध अंतरराष्ट्रीय सीमाएं पर कर चुके हैं और उस समय अन्य देशों की कानून-प्रवर्तन एजेंसियों के साथ तालमेल और साक्ष्य जुटाना कठिन होता है।

साइबर खतरों की प्रभावी पहचान और खतरों का उचित प्रबंधन भी एक जटिल चुनौती है तकनीकी प्रगति के साथ-साथ साइबर खतरे और अधिक चुनौती प्रस्तुत करते हैं मैलवेयर अर्थात दुर्भावना पूर्ण सॉफ्टवेयर और रेंनसमव्हेयर लगातार और तेजी से विकसित होने वाले साइबर खतरों में से एक बना हुआ है एआई-संचालित मैलवेयर, जीरो-डे एक्सप्लॉइट और फाइललेस अटैक के कारण व्यवसायों के लिए इन खतरों का पता लगाना और उनसे बचाव करना तेजी से मुश्किल होता जा रहा है।एक डिस्ट्रिब्यूटेड डिनायल-ऑफ-सर्विस (DDoS) हमले की विशेषता किसी नेटवर्क या सर्वर पर ट्रैफिक की मात्रा को अत्यधिक बढ़ा देना, उसे घेर लेना और अंतत: उसे ठप कर देना है। ऐसा हमला बहुत अधिक विघटनकारी होता है, जो वेबसाइटों को ठप कर देता है, ऑनलाइन लेनदेन को बाधित करता है, और डिजिटल सेवाओं को अनुपलब्ध कर देता है, जिससे डाउनटाइम कई घंटों या दिनों तक बना रहता है। साइबर सुरक्षा के लिए यह एक महत्वपूर्ण खतरा है।

साइबर अपराध रोकने और साइबर सुरक्षा के लिए भारत में सरकार के द्वारा किए गए प्रयास - डिजिटल इंडिया और डिजिटल गवर्नेंस सेवाओं को अधिक उपयोगकर्ता के अनुकूल और नागरिकों के लिए उत्तरदायी बनाता है ताकि पारदर्शिता और नागरिक प्रबंधन बढ़े। भारत ने कोविड 19 के समय डिजिटल महत्व को देखा। आजकल सभी नागरिक मोबाइल, इंटरनेट, व्हाट्सएप, सोशल मीडिया, इंटरनेट आधारित उपकरणों, ई-गवर्नेंस आदि जैसी डिजिटल संपत्तियों पर निर्भर हैं। ये उनके जीवन का हिस्सा हैं।भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 2010 से 2022 के बीच 10 गुना बढ़ी है और 2040 तक 100 मिलियन तक पहुंचने की उम्मीद है। मार्च 2014 तक कुल इंटरनेट ग्राहक 251.59 मिलियन से बढ़कर मार्च 2024 में 954.40 मिलियन हो गए। अप्रैल 2024 तक, प्रेस सूचना ब्यूरो की अगस्त 2024 की रिपोर्ट के अनुसार 95.15% गांवों में 3 जी / 4 जी मोबाइल कनेक्टिविटी के साथ इंटरनेट की सुविधा थी। इसके अलावा, अप्रैल 2024 तक, देश के 6,44,131 गांवों में से (गांवों का डेटा रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया के अनुसार) 6,12,952 गांवों में 3जी/4जी मोबाइल कनेक्टिविटी है। इस तरह 95.15% गांवों में इंटरनेट की सुविधा है। इसका श्रेय सिर्फ मोबाइल डेटा प्लान को जाता है जो बहुत सस्ते दामों पर उपलब्ध हैं, भारत में 1GB की कीमत सिर्फ रू14 है।

डिजिटल डिवाइस का बढ़ता प्रयोग साइबर सुरक्षा की आवश्यकता को जन्म देता है भारत में साइबर अपराध को नियंत्रित करने की जानकारी के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (आईटी अधिनियम, 2000) लागू है, जिसे 2008 में बनाया गया कानूनी ढांचा सूचना प्रौद्योगिकी (IT) अधिनियम, 2000 भारत का प्राथमिक साइबर कानून है। साथ ही, डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम (DPDP), 2023 नागरिकों के डेटा की गोपनीयता और सुरक्षा को मजबूत करता है। Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY) द्वारा 25 फरवरी 2021 में एक नई गाइडलाइन दी गई जो सूचना तकनीक नियम 2021 के नाम से जानी जाती है राष्ट्रीय सुरक्षा साइबर सुरक्षा नीति 2013 का निर्माण किया गया है जिसमें सुरक्षित साइबर पर्यावरण बनाए रखने के लिए उचित दिशा निर्देश दिए गए हैं साइबर स्पेस को सुरक्षित करने के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण का नीति का दृष्टिकोण देश की अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में सरकार, उद्योग और डिजिटल समुदाय को शामिल करता है।2008 के संशोधन के माध्यम से साइबर आतंकवाद (धारा 66F) को दंडनीय बनाकर ऑनलाइन राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भारत की राष्ट्रीय नीति में सुधार करता है।

CERT-In (कंप्यूटर इमरजेंसी रिस्पांस टीम - भारत) भारत की एक एजेंसी है जो साइबर सुरक्षा का पता लगाती है,यह कंप्यूटर सुरक्षा से संबंधित घटनाओं पर प्रतिक्रिया देने वाली राष्ट्रीय नोडल एजेंसी है। उनका विश्लेषण करती है और अपनी कंपनी की रणनीति बनाती है। वायरस हटाने के लिए साइबर स्वच्छता केंद्र बुद्धि पोर्टल का निर्माण भी किया गया है CyMAC (Cyber Multi-Agency Centre)साइबर अपराध, जासूसी और आतंकवाद पर विभिन्न एजेंसियों के बीच बेहतर समन्वय के लिए इसे 2025 में और सशक्त बनाया गया है।

गृह मंत्रालय के द्वारा एक भारतीय साइबर अपराध समन्वय सहायता केंद्र भी बनाया गया है जिसके द्वारा राज्य और केंद्र के बीच समन्वय स्थापित करके व्यापक रूप से साइबर अपराधों से निपटने के लिए कार्य किया जाता है।कानून प्रवर्तन एजेंसियों को खोजी साइबर अपराध-केंद्रित डिजिटल फोरेंसिक उपकरण प्रदान करता है। साइबर अपराध का पता लगाने और जांच पर पुलिस और कानून प्रवर्तन एजेंसियों को प्रशिक्षण प्रदान करता है।वर्तमान में, साइबर अपराध मामलों की जांच में सहायता के लिए देश भर में सात केंद्रीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशालाएं और 27 राज्य फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशालाएं कार्यरत हैं।साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल http://www.cybercrime.gov.in भी बनाया गया है जो ऑनलाइन शिकायत दर्ज करता है हेल्पलाइन नंबर साइबर अपराध की मदद के लिए 1930 डायल किया जा सकता हैं।NCIIPC राष्ट्रीय महत्वपूर्ण सूचना अवसंरचना संरक्षण केंद्र राष्ट्रीय सुरक्षा, अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सूचना अवसंरचना (CII) के संरक्षण के लिए जिम्मेदार केंद्रीय एजेंसी के रूप में कार्य करता है।CII ऑपरेटरों और सरकारी संस्थाओं को परामर्श, दिशानिर्देश और घटना रिपोर्ट जारी करता है।साइबर खतरों के खिलाफ CII की सुरक्षा के लिए विभिन्न सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के हितधारकों के बीच साइबर सुरक्षा उपायों और प्रतिक्रियाओं का समन्वय करता है।

निष्कर्ष व सुझाव - 21वीं सदी में बढ़ते हुए डिजिटल उपयोग के कारण मनुष्य के जीवन को आसान तो बना दिया है लेकिन उसके साथ कहीं मुश्किलों को भी उत्पन्न किया है जिनमें एक है साइबर अपराध साइबर स्पेस आज के समय में लोगों को एक दूसरे के साथ जोड़ने और विश्व में अपना डाटा शेयर करने अर्थात सोशल नेटवर्क से संबंधित हो गया हैभारत में एक संपूर्ण साइबर सुरक्षा अधिनियम की आवश्यकता है जो डेटा की सुरक्षा, नेटवर्क सुरक्षा और साइबर खतरों से संबंधित सभी अलग-अलग ढांचों को जोड़ता हो। साइबर सुरक्षा का ढांचा तैयार करने में निजी क्षेत्र की कंपनियों का भी योगदान दिया जाए एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के साथ साइबर सुरक्षा ढांचा तैयार किया जाए साइबर अपराध को रोकने के लिए साइबर मामलों के तुरंत संस्थान के लिए फास्ट ट्रैक साइबर कोर्ट की स्थापना की जाए व्यक्तिगत टाटा संरक्षण के लिए वर्तमान कानून में व्यापक संशोधन

किया जाए स्वदेशी साइबर सुरक्षा नवाचार, अनुसंधान को बढ़ावा देना, तकनीकी और संस्थागत बुनियादी ढांचे का विकास करना,कॉर्पोरेट एवं बैंकिंग सुरक्षा उपाय को अपनाना, व्यवसायों और बैंकों में दो-चरणीय प्रमाणीकरण (2FA), डेटा एन्क्रिप्शन और सतत् निगरानी प्रणाली को अनिवार्य करना साइबर सुरक्षा के लिए जरूरी है साइबर शिक्षा को स्कूली शिक्षा में अनिवार्य बनाया जाए और सबसे महत्वपूर्ण साइबर सुरक्षा बनाए रखने के लिए और साइबर अपराध को रोकने के लिए साइबर सुरक्षा के बुनियादी सिद्धांतों को प्रयोग में लाना, व्यक्तिगत साइबर स्वच्छता अपनाना और साइबर सुरक्षा जागरूकता सबसे महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉक्टर एस. मार्सेलिन पुष्पा (2024) 'डिजिटल गवर्नेंस ट्रांसफॉर्मिग पब्लिक सर्विस', आ. जी. पब्लिशिंग हाउस, भोपाल ,मध्य प्रदेश, भारत।
2. डॉक्टर टांगजैम कै सिंह(2024),'इंडिया साइबर सिक्योरिटी पॉलिसी', रुटलज ,न्यूयॉर्क।
3. डॉ. अवस्थी और अवस्थी (2014),भारतीय प्रशासन,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. डॉ. बी.एल. फादिया (2003), 'भारतीय प्रशासन',साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
5. माइकल ई. मिलाकोविच (2012) 'डिजिटल गवर्नेंस', रुटलज, यू.के।
6. रघु संथानम और एम सेतु माधवन एवं मोहित वीरेंद्र (2011)'साइबर सिक्योरिटी साइबर क्राइम और साइबर फॉरेंसिक एप्लीकेशंस एंड परसेपेक्टिव्स', इनफॉरमेशन साइंस रेफरेंस ,न्यूयॉर्क, अमेरिका।
7. योजना, अगस्त 2021
8. योजना नवंबर 2021
9. योजना नवंबर 2023
10. योजना फरवरी 2024
11. www.sanskritiias.com
12. www.livehindustan.com
13. http:/pib.gov.in/pressreleasepage

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

बालिका स्वच्छता एवं स्वास्थ्य संरक्षण: मध्य प्रदेश के शासकीय विद्यालयों में गुणवत्ता सुधार का एक व्यवहारिक मॉडल

श्रीमती संगीता सक्सेना*

* प्राचार्य, कमला नेहरू सांदिपनि कन्या शासकीय विद्यालय, टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – शिक्षा मानव विकास का मूल आधार है, जो समाज में समता और सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त करती है। भारतीय स्कूल शिक्षा व्यवस्था में बालिकाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए अनुकूल, सुरक्षित और स्वस्थ विद्यालयी वातावरण का होना अनिवार्य है। किशोरावस्था के दौरान छात्राओं को विशिष्ट शारीरिक और जैविक परिवर्तनों से गुजरना पड़ता है, जिसमें मासिक धर्म स्वास्थ्य प्रबंधन (Menstrual Hygiene Management - MHM) और जल-स्वच्छता (WASH) सुविधाओं की उपलब्धता अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र मध्य प्रदेश के शासकीय विद्यालयों में बालिका स्वच्छता की वर्तमान स्थिति और इसके कारण छात्राओं की उपस्थिति एवं शैक्षणिक प्रदर्शन पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। यह शोध पूर्णत: द्वितीयक स्रोतों, राष्ट्रीय सर्वेक्षणों (जैसे NFHS-5, UDISE+ 2024-25) और विभागीय रिपोर्टों पर आधारित है। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष दर्शाते हैं कि स्कूलों में अवसंरचना के निर्माण के बावजूद उनके नियमित रखरखाव, निरंतर जल आपूर्ति और वैज्ञानिक जागरूकता के अभाव के कारण छात्राएं मासिक धर्म के दिनों में विद्यालय से अनुपस्थित रहती हैं, जो अंतत: उनके ड्रॉप-आउट का कारण बनता है। इन चुनौतियों के व्यावहारिक समाधान के रूप में, इस शोध-पत्र में एक अभिनव और कम लागत वाला '5S मॉडल' (Safe Toilets, Safe Water, Sanitary Support, Sensitization, School-Community Partnership)और 'पिंक हाइजीन कॉर्नर' जैसे नवाचार प्रस्तावित किए गए हैं। निष्कर्षत:, यह मॉडल न केवल छात्राओं की उपस्थिति में सुधार करेगा, बल्कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के समावेशी लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक सिद्ध होगा।

शब्द कुंजी –बालिका शिक्षा, WASH, मासिक धर्म प्रबंधन, 5S मॉडल, शासकीय विद्यालय, मध्य प्रदेश, लैंगिक समानता, ड्रॉप-आउट दर।

प्रस्तावना – 21वीं सदी में किसी भी राष्ट्र का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी आधी आबादी को शिक्षा और स्वास्थ्य के समान अवसर प्राप्त हैं या नहीं। भारत सरकार ने 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम' (RTE Act, 2009) और 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' (NEP 2020) के माध्यम से प्रत्येक बच्चे के लिए न्यायसंगत और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने का संकल्प लिया है। शिक्षा नीति 2020 स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है कि लैंगिक अक्षमताओं को दूर किए बिना शिक्षा में पूर्ण गुणवत्ता प्राप्त नहीं की जा सकती।

किन्तु, व्यावहारिक धरातल पर बालिकाओं की शिक्षा केवल पाठ्यक्रम या शिक्षकों की उपलब्धता पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इसका एक गहरा संबंध विद्यालय की भौतिक अवसंरचना और स्वास्थ्य संरक्षण से है। किशोरावस्था (10 से 19 वर्ष की आयु) जीवन का वह संक्रमण काल है जब बालिकाओं के शरीर में तीव्र हार्मोनल और शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस आयु वर्ग में मासिक धर्म की शुरुआत एक सामान्य जैविक प्रक्रिया है, लेकिन सामाजिक भ्रांतियों, संकोच और सूचना के अभाव के कारण यह बालिकाओं के लिए एक मानसिक और शैक्षणिक बाधा बन जाती है।

मध्य प्रदेश, जो कि भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक रूप से एक विविधतापूर्ण राज्य है, यहाँ के शासकीय विद्यालयों में पढ़ने वाली अधिकांश छात्राएं ग्रामीण, जनजातीय और आर्थिक रूप से कमजोर पृष्ठभूमि से आती हैं। इन छात्राओं के घरों में अक्सर स्वच्छता सुविधाओं का अभाव होता है, जिसके कारण वे पूर्णत: विद्यालय की व्यवस्था पर निर्भर रहती हैं। यदि विद्यालयों में उनके अनुकूल पृथक शौचालय, सुरक्षित पेयजल, हाथ धोने के लिए साबुन और सैनिटरी नैपकिन की गरिमापूर्ण व्यवस्था न हो, तो बालिकाओं के लिए नियमित रूप से विद्यालय आना असंभव हो जाता है।

यद्यपि मध्य प्रदेश शासन के स्कूल शिक्षा विभाग और राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन द्वारा समय-समय पर विभिन्न योजनाएं (जैसे उदिता योजना, सेनेटरी पैड वितरण आदि) संचालित की गई हैं, परंतु मैदानी स्तर पर निरंतरता, तकनीकी रखरखाव और व्यवहार परिवर्तन की चुनौतियां आज भी जस की तस बनी हुई हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी परिप्रेक्ष्य में यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार एक सुव्यवस्थित और व्यावहारिक मॉडल के माध्यम से शासकीय विद्यालयों में बालिका स्वच्छता के स्तर को सुधारा जा सकता है ताकि शिक्षा की समग्र गुणवत्ता में गुणात्मक वृद्धि हो सके।

साहित्य समीक्षा

विद्यालयों में जल, स्वच्छता और स्वच्छता (WASH-Water, Sanitation,Hygeine) सुविधाओं का प्रभाव सीधे तौर पर बालिकाओं के स्वास्थ्य और उनकी अकादमिक निरंतरता से जुड़ा हुआ है। वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर हुए विभिन्न अध्ययनों ने इस अंतर्संबंध को प्रमाणित किया है:

UNICEF और WAHO (Joint Monitoring Programme - JMP) की रिपोर्ट: वैश्विक अध्ययनों के अनुसार, विकासशील देशों में हर पांच में से एक किशोरी स्कूल छोड़ने या मासिक धर्म के दौरान अनुपस्थित रहने के लिए मजबूर होती है, जिसका मुख्य कारण स्कूलों में क्रियाशील और सुरक्षित शौचालयों का न होना है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के आंकड़े: भारत के संदर्भ में एनएफएचएस-5 की रिपोर्ट दर्शाती है कि ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में आज भी महिलाओं और किशोरियों के बीच वैज्ञानिक मासिक धर्म स्वच्छता उत्पादों (जैसे सैनिटरी नैपकिन) के उपयोग और उनके सुरक्षित निस्तारण को लेकर जागरूकता की भारी कमी है। मध्य प्रदेश के संदर्भ में, यद्यपि पैड के उपयोग में वृद्धि हुई है, लेकिन स्कूलों में इसके वितरण की नियमितता पर सवाल उठते रहे हैं।

दासगुप्ता और सरकार 2014 : भारतीय संदर्भ में किए गए एक शोध में यह पाया गया कि लगभग 72% किशोरियों को मासिक धर्म की शुरुआत से पहले इसके बारे में कोई वैज्ञानिक जानकारी नहीं थी। उन्होंने पाया कि स्कूलों में मासिक धर्म स्वास्थ्य शिक्षा अभाव के कारण छात्राओं में भय, अवसाद और हीनभावना की स्थिति निर्मित होती है, जिससे वे स्कूल से दूरी बना लेती हैं।

UDISE+ (Unified District Information System for Education) डेटा विश्लेषण: हालिया यूडीआईएसई .की रिपोर्टों के अनुसार, मध्य प्रदेश के अधिकांश शासकीय विद्यालयों में बालिकाओं के लिए पृथक शौचालय निर्मित तो दिखाए गए हैं, परंतु उनमें से एक बड़ा प्रतिशत पानी की अनुपलब्धता, टूटे हुए दरवाजों और लॉकिंग सिस्टम खराब होने के कारण 'गैर-क्रियाशील' श्रेणी में आता है।

उपरोक्त साहित्यों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि केवल शौचालय का ढांचा बना देना पर्याप्त नहीं हैय स्वच्छता को एक जीवित, क्रियाशील और संवेदनशील तंत्र के रूप में विकसित करना होगा।

अध्ययन के उद्देश्य - इस शोध-पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. मध्य प्रदेश के शासकीय विद्यालयों में वर्तमान बालिका स्वच्छता एवं WASH सुविधाओं की वास्तविक स्थिति का निष्पक्ष विश्लेषण करना।
2. विद्यालयों में स्वच्छता सुविधाओं की उपलब्धताध्अनुपलब्धता और छात्राओं की दैनिक उपस्थिति के मध्य संबंधों की पड़ताल करना।
3. मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन (MHM) से जुड़ी सामाजिक, मानसिक और व्यावहारिक चुनौतियों की पहचान करना।
4. शासकीय विद्यालयों के सीमित संसाधनों और बजट के भीतर लागू होने योग्य एक व्यवहारिक, वहनीय और संधारणीय मॉडल प्रस्तुत करना।
5. संस्था प्रमुखों (प्राचार्यो) और नीति निर्धारकों के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु नवाचार-आधारित नीतिगत सुझाव देना

शोध पद्धति - प्रस्तुत शोध-पत्र की प्रकृति विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक है। शासकीय विद्यालयों में संसाधनों की सीमित उपलब्धता और नीतिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, इस अध्ययन में मिश्रित शोध पद्धति का वैचारिक उपयोग किया गया है:

डेटा के स्रोत : यह शोध मुख्य रूप से द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। इसके लिए 'यूनिफाइड डिस्ट्रिक्ट इंफॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन' (UDISE+ 2024-25), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5), यूनिसेफ की 'वाश इन स्कूल्स' रिपोर्ट और मध्य प्रदेश स्कूल शिक्षा विभाग के वार्षिक प्रतिवेदनों का गहन विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र: शोध का मुख्य केंद्र बिंदु मध्य प्रदेश के ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के शासकीय कन्या एवं सह-शिक्षा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं, जहाँ बुनियादी ढांचे का सीधा प्रभाव छात्राओं के शैक्षणिक प्रदर्शन पर देखा गया है।

विश्लेषण की विधि: सरकारी आंकड़ों में दर्ज 'शौचालयों की संख्या' बनाम 'क्रियाशील शौचालयों की स्थिति' का तुलनात्मक अध्ययन करके उन व्यावहारिक बाधाओं की पहचान की गई है, जो छात्राओं की उपस्थिति दर को प्रभावित करती हैं।

डेटा विश्लेषण एवं प्रमुख चुनौतियाँ - विभिन्न सांख्यिकीय रिपोर्टों और मैदानी अनुभवों के विश्लेषण से शासकीय विद्यालयों में बालिका स्वच्छता से जुड़ी तीन मुख्य चुनौतियाँ उभरकर सामने आती हैं:

क) अवसंरचना बनाम क्रियाशीलता - सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, राज्य के लगभग 95% से अधिक उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बालिकाओं के लिए पृथक शौचालय निर्मित हैं। परंतु, वास्तविक चुनौती उनके क्रियाशील होने की है।

स्वच्छता घटक	यूडीआईएसई .अनुमानित स्थिति (MP)	मुख्य धरातलीय कारण
पृथक बालिका शौचालय	96% निर्मित	30% रखरखाव, पानी की कमी या टूटे दरवाजों के कारण आंशिक रूप से अनुपयोगी।
निरंतर जल आपूर्ति	75% कनेक्टिविटी आपूर्ति बाधित।	टंकियों की सफाई न होना, मोटर खराब होना या बिजली कटौती से
हाथ धोने की व्यवस्था	80% स्थान चिन्हित	साबुन की नियमित उपलब्धता और स्वच्छता आदतों की निगरानी का अभाव।

ख) मासिक धर्म और शैक्षणिक हानि - डेटा विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 11 से 17 वर्ष की आयु वर्ग की छात्राएं प्रति माह औसतन 3 से 5 दिन केवल इसलिए स्कूल नहीं आतीं क्योंकि मासिक धर्म के दौरान उनके पास सुरक्षित और निजी स्थान का अभाव होता है। यह वार्षिक रूप से लगभग 30 से 40 शैक्षणिक दिनों का नुकसान है, जो अंततः बोर्ड परीक्षाओं (कक्षा 10वीं व 12वीं) में उनके कम प्राप्तांकों या ड्रॉप-आउट का मुख्य कारण बनता है।

प्रस्तावित '5S मॉडल' और व्यावहारिक नवाचार - शासकीय विद्यालयों के सीमित बजट, आकस्मिक निधि की सीमाओं और प्रशासनिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए, यह शोध-पत्र एक '5S मॉडल' प्रस्तावित करता है। यह मॉडल बिना किसी बड़े अतिरिक्त बजटीय भार के, उपलब्ध संसाधनों के कुशल प्रबंधन पर केंद्रित है:

5S मॉडल: बालिका स्वच्छता

1. **सुरक्षित एवं क्रियाशील शौचालय**- क्रियान्वयन: शौचालय केवल निर्मित न हों, बल्कि गरिमापूर्ण हों। इसके तहत कम से कम एक शौचालय को 'पूर्णतः सुरक्षित' (लॉकिंग सिस्टम, उचित वेंटिलेशन, और कपड़ों को टांगने के लिए हुक) बनाया जाए।

नवाचार - हाइजीन मॉनिटरिंग रजिस्टर: प्रत्येक विद्यालय में एक दैनिक

स्वच्छता पंजी संधारित हो, जिसमें सफाई कर्मचारी या मनोनीत छात्रा प्रतिदिन सफाई के स्तर (सुबह 9:00 और दोपहर 2:00 बजे) की टिक-मार्किंग करे।

2. **निरंतर एवं सुरक्षित जल आपूर्ति –** क्रियान्वयन: शौचालय के भीतर रनिंग वाटर (नल से पानी) की व्यवस्था। इसके लिए स्थानीय 'ग्राम पंचायत' या 'नगर निगम' के समन्वय से स्कूल की पानी की टंकी को जोड़ा जाए।

तकनीकी बैकअप: मुख्य मोटर खराब होने की स्थिति के लिए ओवरहेड टैंक के साथ एक मैनुअल सिंटैक्स या ड्रम बैकअप की व्यवस्था अनिवार्य हो।

3. **सैनिटरी पैड एवं निस्तारण व्यवस्था –** नवाचार – पिंक हाइजीन कॉर्नर : विद्यालय के बालिका कॉमन रूम या प्रधानाध्यापक कक्ष के समीप एक सुरक्षित स्थान, जहाँ 'सैनिटरी नैपकिन वेंडिंग मशीन' (या मैन्युअल वितरण पेटी) और आकस्मिक स्थिति के लिए साफ कपड़े व दवाइयाँ (जैसे मेफ्टाल-स्पास) उपलब्ध हों।

भस्मक प्रबंधन: उपयोग किए गए नैपकिन के वैज्ञानिक डिस्पोजल के लिए कम लागत वाले मिट्टी के या इलेक्ट्रिक इनसिनेरेटर का संचालन, ताकि ड्रेनेज चोक होने की समस्या न हो।

4. **संवेदीकरण एवं वैज्ञानिक जागरूकता –** नवाचार – हेल्थ एंबेसडर प्रोग्राम प्रत्येक कक्षा (9वीं से 12वीं) से दो सक्रिय छात्राओं को श्स्वच्छता दूतश या 'हेल्थ एंबेसडर' के रूप में नामित किया जाए। ये छात्राएं साथी बालिकाओं की झिझक दूर करने में मदद करेंगी।

किशोरी स्वास्थ्य दिवस' माह के किसी एक निश्चित शनिवार (बाल सभा के दिन) महिला चिकित्सकों, एएनएम (ANM) या आशा कार्यकर्ताओं को आमंत्रित कर मासिक धर्म और पोषण (एनीमिया नियंत्रण) पर खुली चर्चा आयोजित करना।

5. **शाला-समुदाय सहभागिता –** क्रियान्वयन: स्वच्छता को केवल शाला प्रबंधन का काम न मानकर जन-भागीदारी से जोड़ा जाए।

एसएमसी (SMC) की भूमिका: शाला प्रबंधन समिति की मासिक बैठकों में अनिवार्य रूप से एक एजेंडा 'बालिका शौचालय की स्थिति' पर हो। इसमें महिला अभिभावकों की उपस्थिति सुनिश्चित की जाए, जो स्वयं समय-समय पर आकर व्यवस्थाओं का निरीक्षण कर सकें।

निष्कर्ष एवं नीतिगत अनुशंसाएँ – इस शोध-पत्र का निष्कर्ष यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा में लैंगिक समानता और 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के नारे को धरातल पर उतारने के लिए विद्यालयों को 'बालिका-अनुकूल' बनाना होगा। भौतिक निर्माण से कहीं अधिक महत्वपूर्ण उसका संधारणीय प्रबंधन है।

प्रमुख नीतिगत सुझाव:

1. **स्वच्छता ग्रांट का पृथक आवंटन:** संकुल (Cluster) स्तर पर मिलने वाली कंपोजिट स्कूल ग्रांट का एक निश्चित हिस्सा (न्यूनतम 15-20%) अनिवार्य रूप से बालिका स्वच्छता और सैनिटरी पैड डिस्पोजल व्यवस्था पर व्यय किया जाए।
2. **प्रशासनिक जवाबदेही:** प्राचार्यों के वार्षिक कार्य मूल्यांकन (CR) में शाला स्वच्छता और ड्राप-आउट दर में कमी को एक मूल्यांकन बिंदु के रूप में शामिल किया जा सकता है।
3. **अंतर-विभागीय समन्वय:** स्कूल शिक्षा विभाग, महिला बाल विकास विभाग (WCD) और लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग (PHE) के बीच एक जिला-स्तरीय टास्क फोर्स का गठन हो, जो हर तीन महीने में शासकीय स्कूलों के WASH इंफ्रास्ट्रक्चर का ऑडिट करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Ministry of Education, Government of India. (2025). UDISE+ Dashboard: State Profile of Madhya Pradesh. New Delhi.
2. International Institute for Population Sciences (IIPS). (2021). National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21: India / Madhya Pradesh Report. Mumbai.
3. UNICEF & WHO. (2023). Progress on Drinking Water, Sanitation and Hygiene in Schools (WASH in Schools): Special Focus on Gender Equality. Geneva.
4. Dasgupta, A., &Sarkar, M. (2014). Menstrual Hygiene: How Hygienic is the Adolescent Girl?. Indian Journal of Community Medicine, 39(2), 113-115.
5. National Education Policy (NEP) 2020. Chapter 6: Equitable and Inclusive Education: Learning for All. Ministry of Human Resource Development, GoI.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Globalization and Sustainable Development

Dr. Sarojini Topno*

***Assistant Professor (Economics) Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.) INDIA**

Abstract - Abstract: Globalization has become one of the most significant processes shaping the modern world. It connects economies, societies, and cultures across national boundaries. Global trade, technological advancement, and international cooperation have expanded rapidly due to globalization.However, globalization also creates challenges such as environmental degradation, social inequality, and excessive use of natural resources.

Sustainable development focuses on meeting the needs of the present generation without compromising the ability of future generations to meet their own needs. It emphasizes the balance between economic growth, environmental protection, and social equity. This research paper examines the relationship between globalization and sustainable development and highlights both opportunities and challenges created by globalization.

Keywords - Globalization, Sustainable Development, Economic Growth, Environmental Protection, Social Equality, Green Technology.

Introduction - In the twenty-first century, globalization has transformed the economic and social structure of countries around the world. Advances in communication technology, transportation systems, and digital networks have reduced geographical barriers and increased global interaction.

Globalization allows the movement of goods, services, capital, information, and ideas across national boundaries. While it provides economic opportunities and technological progress, it also increases environmental pressure and social challenges.

The concept of sustainable development has therefore become very important. It promotes development that ensures economic progress while protecting natural resources and maintaining social well-being.

Literature Review

Several scholars have studied the impact of globalization on development.

Joseph Stiglitz explained that globalization can bring economic growth, but it must be managed through fair and balanced policies so that all nations benefit from it.

Amartya Sen emphasized that development should focus on expanding human capabilities and freedoms. According to him, true development involves improving people's quality of life, education, and opportunities.

These studies highlight that globalization can contribute to development if it is guided by responsible policies and sustainable practices.

Objectives of the Study:

1. To understand the concept of globalization.
2. To analyze the relationship between globalization and sustainable development.
3. To examine the positive and negative impacts of globalization.
4. To suggest strategies for achieving sustainable development in a globalized world.

Research Methodology: This research paper is based on secondary data analysis. Information has been collected from books, academic journals, international reports, and reliable online sources. The study uses descriptive and analytical methods to examine the relationship between globalization and sustainable development.

Impact of Globalization

1. Positive Impacts

i. Economic Growth – Global trade and investment increase economic opportunities.
ii. Technological Advancement – Globalization promotes the exchange of modern technologies.
iii. Knowledge Sharing – International cooperation improves research and innovation.
iv. Employment Opportunities – Global markets create new job opportunities.

2. Negative Impacts:

i. Environmental Degradation – Industrial expansion leads to pollution and climate change.
ii. Economic Inequality – Benefits of globalization are not equally distributed.
iii. Cultural Influence – Local cultures may be affected by global cultural trends.
iv. Strategies for Sustainable Development

3. To achieve sustainable development in a globalized

world, the following strategies are important: Promotion of renewable energy resources.Adoption of green technologies.Implementation of strong environmental regulations.Responsible use of natural resources. Strengthening international cooperation for environmental protection.

Conclusion : Globalization and sustainable development are closely interconnected in the modern world. Globalization provides opportunities for economic growth and technological progress, but it also creates environmental and social challenges.

Therefore, it is essential to adopt balanced policies that integrate economic development with environmental protection and social justice. Sustainable development can only be achieved when globalization is guided by responsible governance, international cooperation, and environmentally friendly practices.

References:-

1. Stiglitz, Joseph. Globalization and Its Discontents.
2. Sen, Amartya. Development as Freedom.
3. United Nations. Sustainable Development Goals Report.
4. World Commission on Environment and Development. Our Common Future.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Fake News and Its Impact on Democratic Processes

Dr. Sudha Silawat (Retd.)* Dr. Tripat Chawla (Retd.) Aditya Vikram Singh*****

*Supervisor, Additional Director, Higher Education, Indore (M.P.) INDIA
** Co-Supervisor, Head and Professor, PMCoE, Shri Atal Bihari Vajpayee Govt. Arts And Commerce College, Indore (M.P.) INDIA
*** Research Scholar, Devi Ahilya Vishvavidhyalaya, Indore (M.P.) INDIA

Introduction - Fake news, deliberately fabricated or distorted information masquerading as legitimate journalism, poses a profound threat to democracy in the digital age. Unlike mere errors or biased reporting, it thrives on deception—sensational headlines, manipulated images, and viral falsehoods designed to inflame emotions and manipulate perceptions. As social media platforms like WhatsApp and X amplify its reach to billions, fake news erodes the foundational pillars of democratic governance: an informed electorate, free discourse, and accountable institutions.Virat Kohli deactivates his Instagram account by self or via platform for a brief span of 26 hours and it becomes national news being covered by the most popular news channels of the country. Speculations surround his retirement, his relations with BCCI, his relations with his wife and everything that could possibly go wrong with him. A petty, irrelevant, unimportant and non-life risking information as such invited a million tweets, responses, reshares and mentions. This is how a basic fake and illogical information impacts lives of the population. Fake news refers to deliberately fabricated or misleading information presented as legitimate news, often spread to deceive audiences for political, financial, or ideological gain.

Key Characteristics:

- **Intentional deception**: Unlike honest mistakes or biased reporting, it's created with the goal to mislead.
- **Sensational style**: Uses alarming headlines, emotional language, and unverified claims to go viral.
- **Common formats**: Articles, videos, memes, or deepfakes mimicking real outlets.

Brief History: The term exploded during the 2016 U.S. election, but roots trace back centuries—think 1890s "yellow journalism" wars between Hearst and Pulitzer, which sensationalized the Spanish-American War. Today, social media supercharges it, with sites like Before It's News or manipulated Facebook posts.

In 2017, a hoax story claimed Pope Francis endorsed Donald Trump, shared millions of times before debunked. It originated from a satirical site but spread unchecked.

Algorithms favor outrage; humans share emotionally charged content 20x faster (per NYU study). Check facts via Snopes, FactCheck.org, or reverse image search—cross-reference multiple reputable sources.Spot red flags like no author, poor grammar, or URLs ending in .co/.lol instead of .org/.edu. Tools like Google's Fact Check Explorer help too.

Democracy hinges on voters making rational choices based on verified facts. When misinformation floods the information ecosystem, it creates chaos, exploiting cognitive biases like confirmation bias—where people embrace lies aligning with their views—and the illusory truth effect, where repetition makes falsehoods feel factual. In India, this dynamic has manifested dramatically: WhatsApp rumors of child kidnappers sparked over 30 lynchings in 2018, while AI deepfakes in the 2024 Lok Sabha elections, such as fabricated clips of Rahul Gandhi and Narendra Modi, swayed undecided voters and deepened communal divides. NCRB data underscores the scale—1,087 fake news cases in 2023 alone, up 27% from prior years—often tied to political polarization.

The relation is symbiotic yet destructive. Fake news preys on democracy's openness, bypassing traditional media gatekeepers to micro-target vote banks via caste, religion, or region. In Madhya Pradesh's 2023 assembly polls, edited videos falsely claiming Kamal Nath would scrap welfare schemes like LadliBehna alienated 1.3 crore women beneficiaries, bolstering BJP's hold. Globally, echoes abound: U.S. Pizzagate led to violence, and Brexit falsehoods on immigration fragmented the UK electorate. Psychologically, it triggers emotional reliance—anger spreads lies six times faster than truth—fostering echo chambers that harden loyalties, suppress turnout, and entrench populism over policy.Leaders' public images crumble under such assaults, as seen when doctored Delhi riot videos in 2020 fueled anti-Muslim sentiment, consolidating Hindu vote banks while alienating minorities. This not only rigs perceptions but erodes trust: Edelman's barometer shows 57% global news distrust, correlating with

democratic backsliding.

Yet, democracy's resilience offers countermeasures—fact-checking like PIB's 1,116 busts, IT Rules mandating platform accountability, and ECI's myth-busting registers. In a world of deepening infodemics, safeguarding truth is paramount; unchecked fake news doesn't just mislead voters—it fractures the shared reality democracies demand for survival.

Daily Relations: Today's world has surrounding speculations on everything that floats on the internet. From a psychological viewpoint, fake news exploits cognitive shortcuts and emotions, leading to distorted beliefs, heightened anxiety, and societal polarization. Man as a social animal has a tendency to want to know of what the society is expecting and analysing. Confirmation bias makes people accept fake news aligning with preexisting views, ignoring contradictions. Illusory truth effect repeats lies until they feel true. Low analytical thinking correlates with higher belief in falsehoods, as less deliberation favors quick, biased judgments. Emotionally charged content spreads 6x faster than facts, with anger promoting partisan belief and anxiety amplifying doubt in corrections. Reliance on feelings over reason boosts fake news endorsement—studies show inducing emotional processing increases belief in hoaxes.Prolonged exposure triggers anxiety, depression, stress, and emotional fatigue, especially during crises like COVID-19 (49% reported worse well-being). It overwhelms coping, fosters paranoia, and heightens vulnerability via suggestibility and Barnum Effect (overgeneralizing vague claims).Echo chambers deepen divides, tying beliefs to identity and values, triggering defensive processing. This sustains "psychological tribes," eroding trust and rational discourse.

Fake news impacts democratic processes in ways that cannot be fully ever predicted. This paper has a psychological perspective to it as the human brain impact can never be analysed. In an era where information flows faster than ever, fake news has emerged as a stealthy saboteur of truth. Defined by the Oxford English Dictionary as "false, often sensational, information disseminated under the guise of news," fake news isn't new—rumors and propaganda have shadowed human history. Yet, the digital age has supercharged its reach, turning smartphones into megaphones for misinformation. From fabricated headlines on social media to deepfake videos of politicians, fake news distorts reality, sows division, and undermines the cornerstone of democracy: an informed electorate.The phenomenon gained notoriety during the 2016 U.S. presidential election. A study by the Pew Research Center found that 64% of Americans believed fake news caused "a great deal" of confusion about basic facts. Stories like the debunked claim that Hillary Clinton ran a child-trafficking ring from a D.C. pizzeria (Pizzagate) amassed millions of views, fueling real-world violence when a gunman stormed the site. Similarly, in the UK Brexit referendum, false narratives about EU immigrants "swamping" the NHS spread unchecked, swaying undecided voters. These weren't isolated incidents; they revealed how fake news exploits cognitive biases, like confirmation bias, where people gravitate toward stories reinforcing their worldview. At its core, fake news thrives on algorithmic amplification. Platforms like Facebook and Twitter (now X) prioritize engagement—likes, shares, outrage—over accuracy. A 2018 MIT study showed false stories spread six times faster than true ones online because they're more novel and emotional. Bad actors, from state-sponsored trolls to clickbait farms in Macedonia, churn out content at scale. During the 2020 U.S. election, the FBI warned of foreign interference via fabricated videos claiming voter fraud. In India, WhatsApp forwards alleging Muslims spread coronavirus led to lynchings, eroding trust in institutions amid the world's largest democracy.

The impacts on democratic processes are multifaceted and corrosive. First, **polarization intensifies**. Fake news creates echo chambers, where voters consume tailored falsehoods. A 2021 study in *Nature* analyzed 560 million tweets and found exposure to misinformation deepened partisan divides, making compromise impossible. In Brazil's 2018 election, WhatsApp hoaxes accusing Jair Bolsonaro's opponent of corruption helped propel him to victory, but at the cost of fractured social cohesion.

Second, **voter suppression and manipulation** become tools of control. Disinformation campaigns target turnout: a 2016 experiment in the U.S. showed fake news about polling place closures deterred minority voters. In Myanmar, Facebook posts falsely blaming Rohingya Muslims for violence incited genocide, as documented by the UN. Democracies rely on free, fair elections; when facts fray, ballots bend to narratives.

Third, **erosion of trust** in media and government is perhaps the most insidious effect. Edelman Trust Barometer reports show global trust in news at historic lows—only 43% in 2023. When citizens can't discern truth, they disengage: turnout plummets, as seen in France's 2022 election where youth abstention hit 30%. Leaders exploit this cynicism; "fake news" becomes a slur to dismiss scrutiny, as Donald Trump wielded it over 30,000 times per Washington Post tallies.

Moreover, fake news hampers policy-making. During COVID-19, myths like "vaccines contain microchips" delayed herd immunity, costing lives and economies. Democracies need evidence-based governance; misinformation muddies debates on climate change, immigration, and inequality, stalling progress.

Yet, democracy's resilience offers hope. Fact-checking initiatives like FactCheck.org and Full Fact have debunked thousands of claims. Tech giants now label dubious content—Twitter's Community Notes crowdsources corrections. Education campaigns teach "SIFT" (Stop, Investigate source, Find better coverage, Trace claims),

empowering digital literacy. Regulations, like the EU's Digital Services Act, mandate transparency from platforms. In Taiwan, prebunking—exposing tactics before hoaxes hit—curbed Chinese disinformation during elections.

Still, challenges persist. AI-generated deepfakes, like a 2023 video of Ukrainian President Zelenskyy "surrendering," blur lines further. As we approach global polls in 2024-2026, from U.S. midterms to India's Lok Sabha, the stakes are high. Fake news doesn't just mislead; it fractures the shared reality democracies demand.

In sum, fake news is democracy's kryptonite, weaponizing lies against deliberation and vote. Combating it requires vigilance: tech accountability, media literacy, and cross-partisan fact-seeking. Only then can the marketplace of ideas flourish, ensuring power rests with the people, not the fabricators.

Fake News And Indian Democracy: Democracy remains vital in today's misinformation-saturated world, serving as a resilient framework to counter lies, empower citizens, and safeguard collective decision-making.Misinformation floods social media, eroding facts and fueling division, as seen in India's WhatsApp lynchings and Madhya Pradesh election hoaxes from prior examples. Democracy provides structured avenues—like free press, elections, and courts—to verify truths and hold deceivers accountable. Without it, autocrats exploit rumors unchecked, turning public discourse into manipulation tools.In an era of deepfakes and viral falsehoods, democracy prioritizes voter agency through universal suffrage and debates. It encourages digital literacy via public education and fact-checking bodies, helping citizens like those in MP discern edited videos from reality. This bottom-up scrutiny prevents echo chambers from dictating policy, ensuring diverse voices challenge elite narratives.

Democratic institutions—independent judiciary, election commissions—act as firewalls against fake news onslaughts. They enforce transparency, as in India's responses to 2023 MP voter fraud claims, and adapt via laws like the IT Act. Robust checks and balances foster trust, unlike fragile regimes where one lie can topple stability.Leaders in democracies face periodic accountability, compelling them to combat misinformation proactively. Global examples include EU's Digital Services Act mandating platform fixes. This iterative process strengthens societies, turning crises like Delhi riots or MP violence into reforms rather than suppressions.

Fake news has repeatedly undermined India's democracy by inciting violence, polarizing voters, and eroding trust in elections and institutions.

WhatsApp Lynchings (2018): Rumors on WhatsApp claimed child kidnappers were in villages, leading to over 30 mob lynchings across states like Maharashtra, Tripura, and Assam. Victims included innocents like a government worker debunking rumors himself. This fueled public fear, distracted from governance, and pressured platforms like WhatsApp to limit forwards, highlighting how misinformation bypasses traditional media gatekeepers.

2019 General Elections: Both BJP and Congress spread hoaxes: WhatsApp messages falsely claimed Congress leader promised money to Pulwama bomber's family, while others accused BJP of war-mongering. A fake Election Commission circular suggested NRIs could vote online. These swayed public opinion in key states like Uttar Pradesh, where 20,000+ pro-BJP groups targeted castes/religions, polarizing voters and amplifying communal divides.

2020 Delhi Riots: Fake news exacerbated clashes during Citizenship Amendment Act protests, with doctored videos and claims of attacks on Hindus sparking riots that killed 53, mostly Muslims. Shared via WhatsApp and Facebook, these inflamed tensions between pro/anti-CAA groups, leading to arson and vandalism—exposing how disinformation turns policy debates into violence and questions state policing.

2024 Lok Sabha Elections: AI deepfakes proliferated: BJP shared a video of jailed opponent Rahul Gandhi "singing" mockingly; Congress altered Modi's speeches to criticize corporates. Over 584 fact-checks debunked verified accounts (including BJP handles) spreading falsehoods. Rahul Gandhi alleged 1.5 lakh fake voters in one constituency, claiming rigged polls—further eroding faith in the Election Commission.

These cases foster polarization, suppress minority voices, and boost vigilantism over rule of law. A 2025 study notes fake news erodes trust, incites communal violence, and challenges laws like IT Act amid free speech tensions. Responses include fact-checkers like BOOM and guidelines, but enforcement lags in India's mobile-first landscape.

General Human Analysis: Human brain works on intuitions over analysis and succumbed to misinformation and false areas even when the outside perspectives are large enough to put into their head. Familiarity and repetition makes may into one's brain and helps them to re believe what they have been hearing. Fake news and rumours have been a part of Indian propaganda since a very long time. It is analytical on how these games influence human brain and depict outcomes that can be extremely unfair in the very end. Repetition creates the illusory truth effect: brains process familiar info as easier and thus truer, even if false. Confirmation bias favors matching beliefs; emotional content (fear, anger) boosts sharing without checks. Low analytical thinking relies on gut feelings, embedding errors via misattribution.

Repeated claims like "vaccines contain microchips" or cause infertility spread rapidly. Emotional fear made them believable; one study showed prior exposure increased sharing by raising perceived accuracy, delaying vaccinations despite facts.In U.S. elections, repeated "Pizzagate" lies (Clinton child ring) led believers to storm a pizzeria.

Confirmation bias in partisans ignored debunkings; anger from in-group sources solidified false memories via continued influence effect.

In the digital age, fake news has become a potent weapon in electoral warfare, exploiting the human psyche to sway vote banks—those blocs of voters mobilized by shared identity, ideology, or grievance. Psychologically, it preys on cognitive vulnerabilities like confirmation bias, emotional arousal, and the illusory truth effect, turning fleeting doubts into entrenched loyalties. As voters cluster into echo chambers, fake news doesn't just inform; it reprograms beliefs, polarizes communities, and entrenches vote banks, often at democracy's expense. This 800-word exploration draws on psychological principles and real-world patterns to unpack how misinformation reshapes electoral landscapes.At its core, fake news leverages **confirmation bias**, where individuals favor information aligning with preexisting views. Voters in ideologically homogeneous vote banks—say, rural conservatives or urban progressives—gravitate toward hoaxes reinforcing their worldview. A fabricated story claiming an opposition leader "funds terrorists" resonates with anti-minority sentiments in a Hindu nationalist vote bank, ignored even when debunked. Repetition amplifies this via the **illusory truth effect**: brains equate familiarity with validity. Studies show repeated exposure makes lies feel factual; in India's 2023 Madhya Pradesh elections, AI-cloned voices of leaders like Kamal Nath falsely vowing to scrap welfare schemes circulated endlessly on WhatsApp, solidifying BJP supporters' distrust without evidence.

Emotional hijacking accelerates the process. Fake news thrives on **fear, anger, and disgust**, emotions that bypass rational scrutiny. Neuroimaging reveals amygdala activation during outrage-inducing content, prioritizing sharing over verification. Anger spreads falsehoods six times faster than facts, per MIT research. In polarized vote banks, this cements loyalty: a deepfake video of a rival "mocking the poor" ignites fury among low-income voters, binding them to the attacker's camp. During India's 2019 polls, WhatsApp hoaxes alleging Congress payoffs to a bomber's family whipped up nationalist fervor, herding undecided Hindus into BJP ranks. The result? Emotional priming locks voters into tribal "us vs. them" mindsets, where defection feels like betrayal.

Polarization deepens through **echo chambers**, algorithmic silos on platforms like Facebook and X. Here, selective exposure reinforces biases; a 2021 *Nature* study found misinformation widens partisan gaps by 20-30%. Vote banks harden as groups consume tailored fakes: Muslim voters see amplified "anti-CAA violence" claims, entrenching opposition support, while Hindu groups view "love jihad" conspiracies, bolstering ruling coalitions. In Madhya Pradesh's 2023 assembly race, edited videos targeting Shivraj Chouhan and Kamal Nath fueled caste divides—OBCs vs. tribals—splintering swing voters into rigid blocs. Psychologically, this triggers **backfire effects**: corrections boomerang, strengthening false beliefs via cognitive dissonance.

The **continued influence effect** ensures damage lingers post-debunking. Even knowing a story is fake, people incorporate it into reasoning—a "sins of memory" flaw where source misattribution blends truth with fiction. U.S. Pizzagate believers persisted in conspiracy theories despite facts, mirroring Indian lynchings from child-kidnapper rumors. In elections, this sustains vote bank mobilization: post-2024 Lok Sabha, Rahul Gandhi's "rigged polls" claims via alleged fake voters endured, galvanizing Congress's urban youth base against the Election Commission.

Vote banks suffer **identity fusion**, where misinformation fuses politics with self-concept. Social identity theory explains how threats to the group (real or fabricated) heighten in-group favoritism. Fake news portraying "illegal immigrants swamping jobs" unites working-class vote banks against liberals, as in Brexit or Trump's base. In India, 2020 Delhi riots amplified by doctored videos fused Muslim voters with anti-BJP sentiment, while Hindu groups doubled down on majoritarianism. Anxiety from constant exposure erodes mental resilience, fostering **learned helplessness**—voters disengage or cling harder to "their side," suppressing turnout or critical thinking.

Quantitatively, impacts are stark. Psychological profiles link low analytic thinkers (per Cognitive Reflection Test) to higher fake news susceptibility, skewing rural, less-educated vote banks. A Warwick University study tied prolonged exposure to anxiety spikes, reducing nuanced policy engagement. Platforms exploit this: microtargeting via data profiles delivers personalized psy-ops, as Cambridge Analytica did, herding undecideds into extremes.

Yet, this psychological siege weakens democracy. Solidified vote banks prioritize loyalty over merit, enabling populist demagogues. In MP's post-poll Shivpuri violence over "fake voting," feuds turned deadly, fracturing local coalitions. Globally, it erodes trust: Edelman's 2023 barometer showed news distrust at 57%, correlating with populist surges.

Countering requires **prebunking**—inoculating minds against tactics via education—and boosting **metacognition** (thinking about thinking). Taiwan's approach curbed Chinese fakes; India could scale fact-checkers like BOOM. Democracies must foster media literacy to loosen fake news's grip on psyches, lest vote banks become misinformation fortresses.

The reason why major politicians are worried about their image on social media and how they are fulfilling public promises is because the programming in a voter's mind would be accordingly affected. Public Relation agencies and the other digital marketing firms are gaining surplus business because of the propaganda that surrounds

multiple world leaders and their portraits. Leaders like Donald Trump, Narendra Modi, Kim Jong Ungh are all in traps of their identity and maintenance of a falsehood light. The case of the Epstein files has charred the image of major politicians and now the ground breaking task of rebranding and reimaging has begun. This ultimately will impact their vote banks and how they stay in power.

In democratic politics, a leader's public image serves as the emotional glue binding vote banks—cohesive blocs of supporters defined by caste, region, ideology, or class. Crafted through speeches, media, and symbolism, this image influences voter loyalty by evoking trust, aspiration, or fear. Positive portrayals expand vote banks by attracting swing voters, while negatives erode them, fragmenting support. Fake news amplifies these dynamics, weaponizing perceptions to fabricate scandals or heroes overnight. Public image acts as a cognitive shortcut for voters overwhelmed by policy details. Psychological research shows voters evaluate leaders on traits like competence, empathy, and integrity, often prioritizing these over platforms. A strong image—think Narendra Modi's "Vikas Purush" (development man) persona—resonates with aspirational middle-class and rural Hindu vote banks, promising stability and growth. Surveys like Lokniti-CSDS post-2019 reveal Modi's 45% approval drove BJP's sweep, pulling OBCs and upper castes into a consolidated Hindu nationalist bloc. Conversely, Rahul Gandhi's image as "Pappu" (foolish) has shrunk Congress's dynastic vote bank, with satirical memes reinforcing perceptions of inauthenticity among youth.Media mediation intensifies this. Newspapers and TV shape "mediated leader effects," where positive coverage boosts party support by 5-10% during campaigns, per European studies. In India, Shivraj Singh Chouhan's "Mama" (maternal uncle) image in Madhya Pradesh welfare schemes like LadliBehna cemented women and tribal vote banks, securing BJP's 2023 win. Regional leaders like Mamata Banerjee leverage "Didi" (sister) empathy to hold Bengal's Muslim-Bengali vote bank against BJP incursions. Image builds through rituals: Modi's yoga poses signal cultural revivalism, fusing Hindu pride with personal branding to retain 80% core supporters.Vote banks solidify via identity fusion. Social identity theory posits leaders embodying group values trigger loyalty; Yogi Adityanath's monk-warrior image galvanizes upper-caste and aggressive Hindutva voters in UP, evident in 2022 assembly gains. Charisma expands peripheries: Arvind Kejriwal's "common man" in muffler endeared Delhi's poor, flipping AAP into a Dalit-urban vote bank. Negative images reverse this—Manmohan Singh's "silent PM" caricature alienated Congress's middle-class base by 2014, halving seats.

Yet, fake news turbocharges vulnerabilities, exploiting psychological frailties like illusory truth and confirmation bias. It crafts alternate realities, harming leaders by eroding trust instantaneously. In MP's 2023 polls, AI voice clones falsely depicted Kamal Nath scrapping Ladli Behna, sparking outrage among 1.3 crore women beneficiaries—BJP's key vote bank. Repetition via WhatsApp made the lie "feel true," costing Congress Chhindwara despite Nath's legacy.

Deepfakes and edits amplify scandals. A fabricated 2024 Lok Sabha clip showed Rahul Gandhi "singing" mockingly, shared by BJP handles, reinforcing his inept image and depressing urban youth turnout. Conversely, Congress-altered Modi speeches criticizing "crony capitalists" backfired, hardening business vote banks against them. Pizzagate-style hoaxes, like 2019 claims of Congress paying Pulwama bomber's kin, fused patriotism with BJP loyalty, polarizing Muslims further into opposition camps.

Emotional warfare ensues. Fear-mongering fakes—like doctored Delhi riot videos portraying Hindus as victims—bolstered BJP's 2020 narrative, retaining Hindu vote banks amid 53 deaths. Anger spreads sixfold faster, per MIT; leaders smeared as "anti-national" hemorrhage neutrals. Backfire effects doom corrections: debunkings entrench biases, as with Nath's "fake voters" claims post-MP loss, alienating even moderates.

Quantitatively devastating, fake news slashes approval by 15-20% overnight. Cambridge Analytica-style microtargeting tailors attacks: rural WhatsApp blasts hit low-literacy vote banks hardest. In Shivpuri's 2023 post-poll clash, "fake voting" rumors ignited caste feuds, fracturing local BJP alliances.

Harm extends beyond polls. Sustained fakes foster cynicism, shrinking vote banks via disengagement—Edelman data shows 57% media distrust correlates with 5% turnout dips. Leaders pivot defensively: Modi dismisses critiques as "fake news," preserving his strongman image but risking overreach.

Mitigation demands proactive image armor: prebunking via influencers, rapid fact-checks (e.g., BOOM), and authentic counter-narratives. Taiwan's resilience against Chinese fakes offers lessons; India's IT Rules mandate traceability.

Ultimately, public image is vote banks' lifeblood—fluid yet fragile. Fake news doesn't just dent reputations; it reprograms loyalties, turning assets into liabilities. Leaders mastering authentic branding while navigating digital minefields thrive; others watch empires crumble pixel by pixel.

Ultimately, fake news doesn't steal votes; it reprograms minds, turning fluid electorates into psychological silos. Breaking these demands understanding the brain's frailties—not just tech fixes.

Fake News Analysis: Fake news inundates India's political landscape, with NCRB data showing 1,087 reported cases in 2023—a 27% surge from 858 in 2022—primarily under IPC Section 505 for spreading alarming rumors. This proliferation, amplified by social media's 535 million users (80% accessing news via WhatsApp/Facebook), erodes

electoral integrity, polarizes vote banks, and fuels violence, backed by stark statistics.

India generates 1 in 6 global fake news pieces, per UNESCO-Ipsos, with a 214% misinformation spike during COVID-19. Statista's 2023 survey of 86,000 respondents found 85% of urban Indians encounter "suspicious" news weekly, 38% from verified pages, and 70% via one verified handle (NewsChecker). PIB busted 1,116 fakes by 2023 (up from 704 in 2022), mostly political. States lead: Telangana (275 cases, +4%), UP (198, +35%), Maharashtra (136, +106%). ISB study pins X/Facebook as top spreaders across politics/religion.

Deepfakes peaked: BOOM fact-checked 584 AI-misinfos, including BJP's Rahul Gandhi "singing" parody and Congress-altered Modi speeches. 93% urban Indians want platforms regulated during polls (Ipsos-UNESCO). WhatsApp's 300M+ users forward unchecked content 5x more than globally, swaying 20-30% undecideds per Lokniti-CSDS.

Fake child-kidnap rumors triggered 30+ lynchings (2018), 81% WhatsApp-linked. NCRB's 27% case rise correlates with communal clashes: Delhi 2020 riots (53 deaths) from doctored videos; MP 2023 Shivpuri (3 killed) over "fake voting." 85% face online hate, blaming social media (64%).

Misinfo widens divides: 57% distrust news (Edelman 2023), dropping turnout 5% in affected areas. Partisan fakes boost loyalty—BJP WhatsApp groups (20K+ in UP 2019) hardened Hindu banks; Muslim blocs consolidated anti-BJP post-CAA hoaxes. MP 2023: AI clones cost Congress women voters (1.3cr Ladli Behna fears).

Metric	2022	2023	% Change
NCRB Fake News Cases newslaundry	858	1,087	+27%
Telangana Cases newslaundry	264	275	+4%
UP Cases newslaundry	147	198	+35%
PIB Busted Fakes data	704	1,116	+59%
Urban Suspicious News Encounter statista	-	85% weekly	-

Fake news rigs perceptions: Kamal Nath's 55L "fake voters" claim post-MP 2023 fueled ECI distrust, galvanizing opposition. 2019 polls: Bomber payoff hoax herded Hindus to BJP. Deepfakes sway 10-15% swing votes (GNET 2024). Polarization entrenches: *Nature* models show 20% partisan gap widening.

Lynchings cost Rs 100cr+ policing (2018); riots billions in damages. Distrust hampers policy—vaccine hesitancy from microchip myths delayed India's herd immunity.

India's infodemic demands action: IT Rules trace origins, but enforcement lags. Fact-checkers like BOOM debunk 100s weekly, yet 70% persists via forwards. Statistical escalation signals crisis—without curbs, politics devolves to post-truth battles.

Measures Taken By Indian Government To Curb Fake News: The Indian government has implemented a multi-pronged strategy to combat fake news in politics, blending legal frameworks, institutional mechanisms, and tech interventions while balancing free speech under Article 19(1). These measures target digital platforms, media, and government-related disinformation, with heightened focus during elections.

Key Legal Frameworks

1. **IT Rules 2021**: Mandates a Code of Ethics for digital news publishers, requiring self-regulation and grievance redressal. Intermediaries (e.g., WhatsApp, X) lose safe-harbour immunity if they fail to remove misinformation swiftly or trace originators. Section 69A empowers blocking content threatening sovereignty, public order, or elections.
2. **IPC Section 505**: Criminalizes statements causing public alarm or enmity; NCRB logged 1,087 cases in 2023 (up 27%).
3. **Proposed Updates**: Parliamentary panels recommend defining "fake news," mandatory fact-checking units in media houses, higher fines, and AI content labeling/ licensing.

Institutional Bodies

1. **PIB Fact Check Unit (FCU)**: Debunks Central Government-related fakes; busted 1,116 in 2023 (up 59% from 2022). Operates on "Find, Assess, Create, Target" (FACT) principle.
2. **Press Council of India (PCI)**: Enforces Norms of Journalistic Conduct against defamatory/misleading print content via inquiries and censure.
3. Election Commission of India launched "Myth v/s reality register" for 2024 Lok Sabha pollsto proactively counter election misinfo. They run awareness campaigns and monitors social media.

Platform-Specific Actions

1. **Electronic/Print Media**: NBSA/CBFC issues advisories, warnings, apology scrolls, or off-air bans for Programme Code violations.
2. **Social Media Directives**: Platforms must appoint India-based compliance officers, remove harmful content within 36 hours, and enable traceability during probes. 2024 advisories targeted deepfakes in polls.

Recent Developments (2024-2025)

1. November 2025 Rajya Sabha statement by Minister Ashwini Vaishnaw affirmed strengthened frameworks against AI deepfakes impacting democracy.
2. State-level pushes, like Karnataka's draft bill (up to 7 years jail, Rs 10L fine), though criticized for vagueness and press curbs.

These have curbed some spread—e.g., ECI's interventions debunked 100s of 2024 deepfakes—but critics note selective enforcement, vague definitions risking censorship, and lag against WhatsApp virality (70% fakes persist via forwards).[from prior] Ongoing reforms

emphasize transparency over blanket bans.

Conclusion: Fake news has evolved from fringe nuisance to existential threat for Indian democracy, weaponizing psychological vulnerabilities to fracture vote banks, tarnish leaders, and erode institutional trust. As explored—from WhatsApp lynchings in Madhya Pradesh to AI deepfakes in 2024 Lok Sabha polls—its proliferation (1,087 NCRB cases in 2023, up 27%) exploits confirmation bias, illusory truth, and emotional outrage, polarizing castes, religions, and regions into rigid blocs. Leaders' images crumble under fabricated scandals, while unchecked social media virality sways 20-30% of undecided voters. Yet, this crisis underscores democracy's resilience: structured accountability via elections, courts, and fact-checkers like PIB's 1,116 busts offers antidotes where autocracies falter. Looking ahead to 2026-2030, the trajectory hinges on technology's double-edged sword. AI deepfakes will surge—BOOM's 584 election fact-checks pale against generative models churning personalized psy-ops at scale. By 2027 Lok Sabha polls, quantum leaps in voice/video synthesis could fabricate "live" leader speeches, microtargeted via voter data, amplifying MP-style hoaxes (e.g., Kamal Nath's welfare scrap lies) to flip 10-15% swing seats. WhatsApp's 500M+ users, 70% forwarding unverified content, will remain ground zero, but X/Facebook algorithms may prioritize outrage further, per ISB findings. Rural low-literacy vote banks—OBCs, tribals—face highest risk, with 85% weekly "suspicious news" exposure fueling vigilantism over ballots.

Positive shifts loom if proactive. Government measures—IT Rules 2021's traceability, ECI's Myth vs Reality Register—must scale with AI labeling mandates and blockchain provenance for political ads. Prebunking campaigns, inoculating via "SIFT" (Stop, Investigate, Find, Trace), could cut belief by 30%, as Taiwan halved Chinese disinfo. Digital literacy in schools, targeting 300M youth, might halve rural susceptibility by 2030, loosening echo chambers. Platforms face reckoning: EU-style Digital Services Act equivalents could fine non-compliant giants 6% revenues, forcing demonetization of fakes.

Psychologically, future-proofing demands metacognition training—apps gamifying bias detection to counter emotional hijacks. Public image management evolves: authentic holograms, VR townhalls for leaders like Modi or Kejriwal rebuild trust, outpacing smears. Vote banks may fragment positively, with data-savvy millennials (40% electorate by 2029) prioritizing policy over tribe, diluting caste polarizers.

Challenges persist: selective enforcement risks weaponizing laws against opposition, as Karnataka's draft bill hints. Global headwinds—U.S. midterms' deepfake floods—will export tactics. Economic fallout mounts: riots cost billions; distrust stalls reforms like CAA or farm laws. Optimistically, India's 1.4B democracy, battle-tested through 2019/2024 upheavals, holds unique strengths. Diverse media (500+ channels), 900M voters, and cultural skepticism ("sadak pe aao") foster organic corrections. By 2030, hybrid human-AI fact-checkers could process 1M claims daily, restoring 20% eroded trust (Edelman 57% low). Leaders embracing transparency—e.g., ECI live voter roll audits—reclaim narrative control.

Delhi currently is facing high rates of crimes and abandonment issues, a fake news has been floating on the kidnapping of 500 girls which became a major concern in most Indian families wherein girls were not even allowed to return to their colleges. After the total floating fiasco, the entire thing came out to be fake, facts were unchecked and it came to be promotional event for a Bollywood movie. This is how Indian citizens are impacted and can

Ultimately, fake news thrives in cynicism's shadow; combating it revives democracy's essence: informed deliberation. India must lead—pioneering "truth infrastructure" blending regulation, tech, and education—to ensure 2047 centenary dawns on empowered, not manipulated, citizens. The marketplace of ideas can flourish anew, turning misinformation's chaos into democratic renewal.

References:-

1. Gnan Ganga Alliance. (2025, March 24). *Impact of fake news: An Indian electoral perspective*. https://gnanaganga.alliance.edu.in/entities/publication/321645fb-2c93-45b4-8dd4-f5b89df297df
2. Internet Just Society. (2021, February 6). *India's struggle against fake news*. https://www.internetjustsociety.org/indias-struggle-against-fakenews
3. India Today. (2025, August 1). *Lok Sabha poll rigged, we've proof: Rahul Gandhi's big charge at Congress event*. https://www.indiatoday.in/india/story/lok-sabha-polls-were-rigged-weve-documents-rahul-gandhis-big-charge-at-congress-event-2765
4. BBC News. (2018, July 19). *India lynchings: WhatsApp sets new rules after mob killings*. https://www.bbc.com/news/world-asia-india-44897714
5. Global Network on Extremism & Technology. (2024, September 10). *Deep fakes, deeper impacts: AI's role in the 2024 Indian general election and beyond*. https://gnet-research.org/2024/09/11/deep-fakes-deeper-impacts-ais-role-in-the-2024-indian-general-election-and-beyond/
6. Research and Reviews: Journal of Medical Sciences. (2025, March 30). *Examining the gaps in India's legal accountability https://rrijm.com/index.php/RRIJM/article/view/146*
7. Pulitzer Center. (2018, December 12). *How WhatsApp fuels fake news and violence in India*. https://pulitzercenter.org/stories/how-whatsapp-fuels-fake-news-and-violence-india
8. National Public Radio. (2018, July 16). *How the spread of fake stories in India has led to violence*. https://

www.npr.org/2018/07/17/629896525/how-the-spread-of-fake-stories-in-india-has-led-to-violence

9. NDTV. (2023, November 19). *1 burnt alive, 2 shot dead: Madhya Pradesh families clash over fake voting*. https://www.ndtv.com/india-news/1-burnt-alive-2-shot-dead-madhya-pradesh-families-clash-over-fake-voting-4589808
10. Times of India. (2025, July 12). *Kamal Nath claims 2023 assembly poll results influenced by 8 fake voters*. https://timesofindia.indiatimes.com/city/bhopal/kamal-nath-claims-2023-assembly-poll-results-influenced-by-8-fake-voters/article
11. Hindustan Times Tech. (2018, June 24). *Inside WhatsApp's fake news problem in India: When rumours lead to killings*. https://tech.hindustantimes.com/amp/tech/news/inside-whatsapp-s-fake-news-problem-in-india-when-rumours-lead-to-killings-story-3
12. BOOM Live. (2023, November 21). *Madhya Pradesh polls: Fake edited videos target Shivraj Singh Chouhan, Kamal Nath*. https://www.boomlive.in/fact-check/madhya-pradesh-elections-fake-news-edited-videos-shivraj-singh-chouhan-kamal-nath-23563
13. The Hindu. (2025, October 18). *Congress leader slams detention of two journalists from M.P. over publication of 'fake news'*. https://www.thehindu.com/news/national/madhya-pradesh/congress-leader-slams-detention-of-two-journalists-from-mp-over-publicatio
14. News18. (2019, July 29). *Fake WhatsApp message of child kidnaps causing mob violence in Madhya Pradesh*. https://www.news18.com/news/tech/fake-whatsapp-message-of-child-kidnaps-causing-mob-violence-in-madhya-pradesh-2252015.html
15. The India Forum. (2021, December 17). *Disinformation: A new type of state-sponsored violence*. https://www.theindiaforum.in/article/disinformation-new-type-state-sponsored-violence
16. National Herald India. (2018, June 26). *Fake social media messages fuel latest mob lynchings in India*. https://www.nationalheraldindia.com/opinion/fake-social-media-messages-fuel-latest-mob-lynchings-in-india
17. Vhora, M. (n.d.). *The impact of fake news on well-being: A psychological and philosophical perspective* [PDF]. University of Warwick. https://warwick.ac.uk/research/spotlights/digital/fundedprojects/mahek_vhora.pdf
18. Frontiers in Psychology. (2024, August 29). *Processing of misinformation as motivational and cognitive factors*. https://www.frontiersin.org/journals/psychology/articles/10.3389/fpsyg.2024.1430953/full
19. Martel, C., Pennycook, G., & Rand, D. G. (2020, October 6). Reliance on emotion promotes belief in fake news. *PubMed*. https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/33026546/
20. National Center for Biotechnology Information. (2024, November 17). *Findings and discussion*. https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC11575416/

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

ग्रामीण भारत में पलायन और उसके सामाजिक परिणाम : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

पंकज कुमार मीणा*

* सहायक आचार्य (समाजशास्त्र) समाजशास्त्र, एमएलवी, राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.) भारत

शोध सारांश – भारत को प्राय: गाँवों का देश कहा जाता है, क्योंकि देश की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण समाज भारतीय सामाजिक संरचना की आधारशिला रहा है। किन्तु आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा पर्यावरणीय कारणों से ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग निरंतर ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों तथा अन्य राज्यों की ओर पलायन कर रहा है। पलायन की यह प्रक्रिया केवल जनसंख्या के स्थान परिवर्तन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, पारिवारिक व्यवस्था, आर्थिक गतिविधियों, सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामुदायिक जीवन को भी प्रभावित करती है। ग्रामीण भारत में बढ़ते पलायन ने एक ओर लोगों को रोजगार, शिक्षा तथा बेहतर जीवन स्तर के अवसर उपलब्ध कराए हैं, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक विघटन, कृषि संकट, महिलाओं पर बढ़ते दायित्व, बच्चों के समाजीकरण में परिवर्तन तथा सामाजिक असंतुलन जैसी समस्याओं को भी जन्म दिया है। प्रस्तुत शोध लेख में ग्रामीण भारत में पलायन की प्रवृत्ति, उसके कारणों तथा सामाजिक परिणामों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी – पलायन, ग्रामीण समाज, सामाजिक परिवर्तन, नगरीकरण, कृषि संकट, परिवार, प्रवासी श्रमिक।

प्रस्तावना – सामाजिक गतिशीलता मानव समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। व्यक्ति और समूह बेहतर जीवन, रोजगार, शिक्षा, सुरक्षा तथा संसाधनों की उपलब्धता के उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गमन करते हैं। समाजशास्त्र में इस प्रक्रिया को पलायन कहा जाता है।[1]

भारत में पलायन की प्रक्रिया प्राचीन काल से विद्यमान रही है, किन्तु औद्योगिकीकरण, नगरीकरण तथा वैश्वीकरण के प्रभाव से इसमें उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर होने वाला पलायन भारतीय समाज के समक्ष एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया है।[2]

ग्रामीण भारत में भूमि जोतों का विखंडन, कृषि आय में कमी, बेरोजगारी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता तथा प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता दबाव लोगों को गाँव छोड़ने के लिए प्रेरित कर रहा है। दूसरी ओर नगरों में रोजगार के अवसर, उच्च शिक्षा, आधुनिक सुविधाएँ तथा बेहतर जीवन शैली लोगों को आकर्षित करती हैं।[3]

पलायन की प्रक्रिया ने ग्रामीण समाज के सामाजिक संगठन, पारिवारिक संरचना तथा सामुदायिक जीवन को प्रभावित किया है। इसने पारंपरिक सामाजिक संबंधों में परिवर्तन उत्पन्न किया है तथा ग्रामीण एवं नगरीय संस्कृतियों के मध्य अंत:क्रिया को बढ़ावा दिया है।[4]

पलायन की अवधारणा एवं प्रकार – पलायन सामाजिक जनांकिकी का एक महत्वपूर्ण विषय है। सामान्यत: पलायन से आशय किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा स्थायी या अस्थायी रूप से अपने निवास स्थान को छोड़कर किसी अन्य स्थान पर निवास स्थापित करने से है।[5]

जनसंख्या वैज्ञानिकों के अनुसार पलायन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी है।[6]

1. **आंतरिक पलायन–** जब व्यक्ति किसी देश की भौगोलिक सीमाओं के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, तो उसे आंतरिक पलायन कहा जाता है। भारत में ग्रामीण से नगरीय क्षेत्रों की ओर होने वाला पलायन इसका प्रमुख उदाहरण है।[7]
2. **बाह्य पलायन–** जब व्यक्ति अपने देश को छोड़कर किसी अन्य देश में निवास स्थापित करता है, तो उसे अंतरराष्ट्रीय अथवा बाह्य पलायन कहा जाता है।
3. **मौसमी पलायन–** कृषि कार्यों की समाप्ति के बाद सीमित अवधि के लिए रोजगार की तलाश में अन्य स्थानों पर जाने की प्रक्रिया को मौसमी पलायन कहा जाता है। राजस्थान, बिहार, झारखंड तथा ओडिशा के अनेक श्रमिक इस प्रकार के पलायन में संलग्न पाए जाते हैं।[8]
4. **अस्थायी एवं स्थायी पलायन–** कुछ लोग सीमित अवधि के लिए रोजगार या शिक्षा प्राप्त करने हेतु पलायन करते हैं, जबकि कुछ लोग स्थायी रूप से अपने मूल निवास स्थान को छोड़ देते हैं। यह स्थायी पलायन ग्रामीण समाज की जनसंख्या संरचना को प्रभावित करता है।

ग्रामीण भारत में पलायन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य– भारत में ग्रामीण पलायन की प्रक्रिया औपनिवेशिक काल से ही प्रारम्भ हो गई थी। ब्रिटिश शासन के दौरान चाय बागानों, रेल निर्माण परियोजनाओं तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रमिकों की आवश्यकता के कारण बड़ी संख्या में ग्रामीण जनसंख्या का स्थानांतरण हुआ।[9]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात औद्योगिकीकरण की नीतियों तथा महानगरों के विकास ने ग्रामीण पलायन को और अधिक गति प्रदान की। मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई तथा बेंगलुरु जैसे महानगर रोजगार के प्रमुख केंद्र बन

गए।[10]

आर्थिक उदारीकरण के बाद सेवा क्षेत्र के विस्तार तथा निर्माण उद्योग में वृद्धि के कारण ग्रामीण युवाओं के लिए शहरों में रोजगार के अवसर बढ़े। परिणामस्वरूप ग्रामीण से नगरीय क्षेत्रों की ओर पलायन की दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।[11]

कोविड-19 महामारी के दौरान प्रवासी श्रमिकों की समस्याएँ राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बनीं। महामारी के कारण बड़ी संख्या में श्रमिकों को पुन: अपने गाँवों की ओर लौटना पड़ा, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।[12]

ग्रामीण पलायन के प्रमुख कारण- ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन के पीछे अनेक आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारण उत्तारदायी हैं।

1. **कृषि संकट-** भारत की अधिकांश ग्रामीण आबादी कृषि पर निर्भर है, किन्तु कृषि क्षेत्र अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। भूमि जोतों का छोटा आकार, सिंचाई सुविधाओं का अभाव, उत्पादन लागत में वृद्धि तथा कृषि उत्पादों के अस्थिर मूल्य किसानों की आय को प्रभावित करते हैं।[13]

बार-बार होने वाले सूखे, बाढ़ तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों ने भी कृषि को जोखिमपूर्ण बना दिया है। परिणामस्वरूप अनेक किसान एवं कृषि श्रमिक रोजगार की तलाश में नगरों की ओर पलायन करने लगे हैं।

2. **बेरोजगारी एवं अल्परोजगार-** ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि रोजगार के अवसर सीमित हैं। कृषि कार्य भी वर्ष के कुछ महीनों तक ही उपलब्ध रहता है। ऐसी स्थिति में युवा वर्ग वैकल्पिक रोजगार की खोज में शहरों की ओर प्रस्थान करता है।[14]

3. **शिक्षा एवं कौशल विकास-** उच्च शिक्षा संस्थानों, तकनीकी प्रशिक्षण केंद्रों तथा व्यावसायिक शिक्षा सुविधाओं का अधिकांश भाग नगरीय क्षेत्रों में केंद्रित है। बेहतर शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में विद्यार्थी शहरों की ओर जाते हैं और बाद में वहीं रोजगार प्राप्त कर स्थायी रूप से बस जाते हैं।[15]

4. **औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण-** औद्योगिक विकास ने नगरों में रोजगार की संभावनाओं को बढ़ाया है। निर्माण उद्योग, परिवहन, होटल व्यवसाय, सूचना प्रौद्योगिकी तथा सेवा क्षेत्र में श्रमिकों की बढ़ती मांग ग्रामीण युवाओं को आकर्षित करती है।[16]

5. **प्राकृतिक आपदाएँ एवं जलवायु परिवर्तन-** सूखा, बाढ़, भूकंप तथा अन्य प्राकृतिक आपदाएँ ग्रामीण जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट आने से लोग वैकल्पिक आजीविका की तलाश में पलायन करने के लिए विवश हो जाते हैं।[17]

ग्रामीण परिवार व्यवस्था पर पलायन का प्रभाव- पलायन का सबसे अधिक प्रभाव परिवार संस्था पर पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार व्यवस्था पारंपरिक सामाजिक संगठन का महत्वपूर्ण अंग रही है। किन्तु रोजगार की तलाश में परिवार के युवा सदस्यों के बाहर चले जाने से संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा है।[18]

पलायन के कारण पति-पत्नी के मध्य भौगोलिक दूरी बढ़ जाती है, जिससे पारिवारिक संबंधों में तनाव उत्पन्न होने की संभावना रहती है। वृद्ध माता-पिता प्राय: गाँवों में अकेले रह जाते हैं, जिसके कारण उनकी देखभाल की समस्या उत्पन्न होती है।

दूसरी ओर प्रवासी सदस्यों द्वारा भेजी गई धनराशि से परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार भी होता है। बेहतर आवास, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं पर व्यय करने की क्षमता बढ़ती है।

महिलाओं की स्थिति एवं बदलती भूमिकाएँ- पुरुषों के पलायन के परिणामस्वरूप ग्रामीण महिलाओं की भूमिका में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। अब महिलाएँ केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं रह गई हैं, बल्कि कृषि कार्यों, पशुपालन, बच्चों की शिक्षा तथा पारिवारिक निर्णयों में भी सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं।[19]

महिलाओं की जिम्मेदारियों में वृद्धि होने से उनमें आत्मविश्वास तथा निर्णय क्षमता का विकास हुआ है। कई स्थानों पर महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों में भी भागीदारी कर रही हैं।[20]

हालाँकि कार्यभार में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा का अभाव तथा आर्थिक संसाधनों तक सीमित पहुँच जैसी समस्याएँ आज भी ग्रामीण महिलाओं के समक्ष विद्यमान हैं।

बच्चों की शिक्षा एवं समाजीकरण पर प्रभाव- पलायन की प्रक्रिया बच्चों के जीवन तथा उनके समाजीकरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। परिवार समाजीकरण का प्रथम एवं सर्वाधिक प्रभावशाली अभिकरण माना जाता है। जब परिवार का कोई सदस्य अथवा दोनों अभिभावक रोजगार की तलाश में अन्य स्थानों पर चले जाते हैं, तब बच्चों के पालन-पोषण एवं व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया प्रभावित होने लगती है।[21]

ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक ऐसे परिवार पाए जाते हैं जिनमें पिता अथवा माता लंबे समय तक घर से दूर रहते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों का पालन-पोषण प्राय: दादा-दादी अथवा अन्य परिजनों द्वारा किया जाता है। इससे बच्चों के भावनात्मक विकास पर प्रभाव पड़ सकता है। कई बार बच्चों में अकेलेपन, असुरक्षा तथा आत्मविश्वास की कमी जैसी समस्याएँ भी देखने को मिलती हैं।

दूसरी ओर, प्रवासी श्रमिकों द्वारा भेजी गई धनराशि के कारण परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, जिससे बच्चों को बेहतर शैक्षणिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकती हैं। निजी विद्यालयों में प्रवेश, कोचिंग संस्थानों में अध्ययन तथा तकनीकी शिक्षा तक पहुँच आसान हो जाती है।[22]

हालाँकि बार-बार स्थान परिवर्तन करने वाले प्रवासी परिवारों के बच्चों की शिक्षा निरंतरता के अभाव से प्रभावित होती है। विद्यालय परिवर्तन, भाषा संबंधी कठिनाइयाँ तथा सामाजिक समायोजन की समस्याएँ उनके शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित कर सकती हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं कृषि पर प्रभाव- ग्रामीण पलायन का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर मिश्रित प्रभाव पड़ता है। एक ओर प्रवासी श्रमिकों द्वारा भेजी गई धनराशि ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि करती है, वहीं दूसरी ओर कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों की कमी उत्पन्न हो जाती है।[23]

युवा एवं सक्षम श्रमिकों के पलायन के कारण कृषि गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं। अनेक क्षेत्रों में खेती योग्य भूमि परती छोड़ी जाने लगी है अथवा वृद्धजन एवं महिलाएँ कृषि कार्यों का दायित्व संभालने के लिए विवश हो जाती हैं।

पलायन के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी दरों में वृद्धि भी देखी गई है। इससे भूमिहीन कृषक एवं छोटे किसानों की उत्पादन लागत बढ़ जाती है। दूसरी ओर, प्रवासी आय के माध्यम से ग्रामीण परिवार आधुनिक कृषि उपकरण, सिंचाई साधन तथा उन्नत बीज खरीदने में सक्षम होते हैं।

कई अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रवासी आय का उपयोग

आवास निर्माण, उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद तथा बच्चों की शिक्षा पर अधिक किया जाता है, जबकि कृषि निवेश पर अपेक्षाकृत कम व्यय किया जाता है।[24]

नगरीय क्षेत्रों पर पलायन का प्रभाव– ग्रामीण क्षेत्रों से होने वाला पलायन केवल गाँवों को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि नगरीय समाज पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है।

नगरों में बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिकों के आगमन से सस्ते श्रम की उपलब्धता बढ़ती है, जिससे निर्माण उद्योग, परिवहन, होटल व्यवसाय, घरेलू कार्य तथा अन्य सेवा क्षेत्रों को लाभ मिलता है।[25]

किन्तु अनियंत्रित पलायन के कारण महानगरों में आवास संकट, झुग्गी-झोपड़ियों का विस्तार, यातायात दबाव, पेयजल की कमी तथा पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

प्रवासी श्रमिकों को प्राय: असंगठित क्षेत्र में कार्य करना पड़ता है, जहाँ सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा तथा न्यूनतम मजदूरी जैसी सुविधाएँ पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं होती हैं। कोविड-19 महामारी के दौरान प्रवासी श्रमिकों की कठिनाइयों ने इस समस्या को और अधिक स्पष्ट किया।[26]

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिणाम– पलायन सामाजिक परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज के पारंपरिक मूल्य, व्यवहार प्रतिमान तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ प्रभावित होती हैं।

नगरों में कार्यरत प्रवासी व्यक्ति जब अपने गाँव लौटते हैं, तो वे अपने साथ नए विचार, जीवन शैली, उपभोग संबंधी आदतें तथा सांस्कृतिक अनुभव भी लेकर आते हैं। इससे ग्रामीण समाज में आधुनिकता एवं नवीन सामाजिक चेतना का प्रसार होता है।[27]

जातिगत बंधनों तथा रूढ़िवादी मान्यताओं में भी परिवर्तन देखा जा रहा है। नगरीय जीवन में विभिन्न सामाजिक समूहों के साथ संपर्क स्थापित होने के कारण सामाजिक सहिष्णुता एवं बहुलतावादी दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलता है।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि अत्यधिक पलायन से ग्रामीण समुदायों की सामुदायिक एकता कमजोर होती है। पारंपरिक लोक कलाएँ, स्थानीय त्योहार तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्रभावित होने लगती हैं।

सामाजिक नियंत्रण की पारंपरिक संस्थाओं की भूमिका में भी परिवर्तन देखा जा रहा है। पंचायत, जातीय संगठन तथा पारिवारिक बुजुर्गों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हुआ है तथा व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला है।[28]

पलायन से संबंधित चुनौतियाँ एवं सरकारी प्रयास– ग्रामीण पलायन को पूर्णत: रोकना संभव नहीं है, क्योंकि यह विकास की प्रक्रिया का एक स्वाभाविक अंग है। तथापि अनियंत्रित एवं विवशतापूर्ण पलायन को कम करने के लिए प्रभावी नीतियों की आवश्यकता है।

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण रोजगार सृजन तथा आजीविका संवर्धन हेतु विभिन्न कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं।[29] इनमें प्रमुख हैं-

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)– यह योजना ग्रामीण परिवारों को प्रतिवर्ष 100 दिनों के रोजगार की गारंटी प्रदान करती है।

2. दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना– इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण युवाओं को कौशल प्रशिक्षण प्रदान कर रोजगार योग्य बनाना है।

3. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन– महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए यह योजना संचालित की जा रही है।

4. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना– कृषि उत्पादकता में वृद्धि तथा किसानों की आय बढ़ाने के उद्देश्य से इस योजना को लागू किया गया है। इन योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं तथा विवशतापूर्ण पलायन को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष – ग्रामीण भारत में पलायन एक बहुआयामी सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के परिणाम सामने आते हैं। यह प्रक्रिया एक ओर रोजगार, शिक्षा, आय वृद्धि तथा सामाजिक गतिशीलता के अवसर प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक विघटन, कृषि संकट, महिलाओं पर बढ़ते कार्यभार तथा बच्चों के समाजीकरण में परिवर्तन जैसी समस्याओं को जन्म देती है।

पलायन को केवल समस्या के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में समझना आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, कृषि आधारित उद्योग तथा स्थानीय रोजगार के अवसर विकसित किए जाएँ, जिससे लोग विवश होकर पलायन करने के बजाय अपनी इच्छानुसार आजीविका के विकल्प चुन सकें।

संतुलित क्षेत्रीय विकास, समावेशी आर्थिक नीतियाँ तथा सामाजिक सुरक्षा उपाय ग्रामीण पलायन की चुनौतियों का प्रभावी समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. किंग्सलेडेविस, मानव समाज (Human Society), मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क, 1949।
2. एम. एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन (Social Change in Modern India), ओरिएंटलॉन्गमैन, नई दिल्ली, 1995।
3. भारत की जनगणना, पलायन सारणियाँ (Migration Tables), भारत सरकार, 2011।
4. ए. आर. देसाई, भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र (Rural Sociology in India), पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 2012।
5. एवरट एस. ली, 'पलायन का सिद्धांत' (Theory of Migration), डेमोग्राफी, खंड-3, अंक-1, 1966।
6. एस. के. जैन, जनसंख्या अध्ययन (Population Studies), रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005।
7. भारत की जनगणना, पलायन संबंधी आँकड़े (Migration Data), भारत सरकार, 2011।
8. जान ब्रेमन, अस्थायी श्रम (Footloose Labour), कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस, 1996।
9. बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम (India's Struggle for Independence), पेंगुइनबुक्स, नई दिल्ली, 1989।
10. राम आहूजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था (Indian Social System), रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2014।
11. भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण 2023-24, वित्त मंत्रालय, नई दिल्ली, 2024।
12. अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), भारत में कोविड-19 एवं श्रम पलायन

(COVID-19 and Labour Migration in India), 2021।

13. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन2024, भारत सरकार, नई दिल्ली।
14. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO), रोजगार एवं बेरोजगारी प्रतिवेदन, 2023।
15. शिक्षा मंत्रालय, अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE), भारत सरकार, 2024।
16. भारत सरकार, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन, 2024।
17. जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (IPCC), जलवायु परिवर्तन मूल्यांकन प्रतिवेदन, जिनेवा, 2023।
18. आई. पी. देसाई, महुवा में परिवार के कुछ पक्ष (Some Aspects of Family in Mahuva), एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1964।
19. संयुक्त राष्ट्र महिला संगठन (UN Women), भारत में महिलाएँ और पलायन (Women and Migration in India), 2022।
20. नाबार्ड, भारत में स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups in India), मुंबई, 2023।
21. यूनिसेफ इंडिया, पलायन से प्रभावित बच्चे (Children Left Behind by Migration), नई दिल्ली, 2021।
22. यूनेस्को, वैश्विक शिक्षा निगरानी प्रतिवेदन (Global Education Monitoring Report), पेरिस, 2022।
23. राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड), वार्षिक प्रतिवेदन2024, मुंबई।
24. ए. कुंडू, भारत में पलायन और नगरीकरण (Migration and Urbanisation in India), सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2018।
25. आवासन एवं शहरी कार्य मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन2024, भारत सरकार, नई दिल्ली।
26. अंतरराष्ट्रीय प्रवासन संगठन (IOM), विश्व प्रवासन प्रतिवेदन2024 (World Migration Report), 2024।
27. एंथनीगिडेन्स, समाजशास्त्र (Sociology), पॉलिटी प्रेस, लंदन, 2013।
28. योगेन्द्र सिंह, भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण (Modernization of Indian Tradition), रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010।
29. ग्रामीण विकास मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन2024, भारत सरकार, नई दिल्ली।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

डिजिटल भारत और ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

रविन्द्र सिंह राव*

* सहायक आचार्य (समाजशास्त्र) एमएलवी, राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.) भारत

शोध सारांश – भारत एक ग्रामप्रधान देश है जहाँ आज भी लगभग दो–तिहाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ग्रामीण समाज भारतीय सामाजिक संरचना की आधारभूत इकाई रहा है। परंपरागत रूप से ग्रामीण जीवन कृषि, जाति व्यवस्था, सामुदायिक संबंधों तथा सीमित संसाधनों पर आधारित रहा है। किन्तु इक्कीसवीं सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने ग्रामीण जीवन के विविध आयामों को प्रभावित किया है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2015 में प्रारम्भ किए गए डिजिटल भारत कार्यक्रम ने ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशासनिक सेवाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बैंकिंग तथा संचार व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। डिजिटल तकनीकों के प्रसार से ग्रामीण समुदायों की सूचनाओं तक पहुँच बढ़ी है, आर्थिक गतिविधियों में विविधता आई है तथा सामाजिक चेतना के स्तर में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही डिजिटल असमानता, तकनीकी अशिक्षा तथा साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। प्रस्तुत शोध लेख में डिजिटल भारत कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण समाज में हुए सामाजिक परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी –डिजिटल भारत, ग्रामीण समाज, सामाजिक परिवर्तन, ई–गवर्नेंस, डिजिटल साक्षरता, सूचना प्रौद्योगिकी।

प्रस्तावना – समाज परिवर्तनशील है तथा परिवर्तन समाज की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन को सामाजिक संरचना, सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक मूल्यों तथा संस्थाओं में समय के साथ होने वाले परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया है। तकनीकी प्रगति को सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारकों में सम्मिलित किया जाता है।[1]

भारत जैसे विकासशील देश में सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक पुनर्गठन की प्रक्रिया को भी प्रभावित कर रहा है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साधनों की उपलब्धता ने लोगों के जीवन स्तर, कार्य पद्धतियों तथा सामाजिक संबंधों में परिवर्तन उत्पन्न किया है।[2]

डिजिटल भारत कार्यक्रम भारत सरकार की एक महत्वाकांक्षी पहल है जिसका उद्देश्य देश को डिजिटल रूप से सशक्त समाज तथा ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना है।ङ यह कार्यक्रम ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के मध्य विद्यमान डिजिटल विभाजन को कम करने का प्रयास करता है।

ग्रामीण भारत लंबे समय तक संचार सुविधाओं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा वित्तीय संसाधनों की कमी से जूझता रहा है। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने इन चुनौतियों को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आज ग्रामीण नागरिक स्मार्टफोन के माध्यम से सरकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं, ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का उपयोग कर रहे हैं तथा डिजिटल माध्यम से शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बना रहे हैं।[3]

डिजिटल भारत की अवधारणा एवं उद्देश्य– डिजिटल भारत कार्यक्रम का शुभारम्भ 1 जुलाई 2015 को किया गया। इसका उद्देश्य भारत को तकनीकी रूप से सक्षम बनाना तथा नागरिकों को डिजिटल माध्यम से सशक्त करना है।[4]

इस कार्यक्रम के तीन प्रमुख स्तंभ निर्धारित किए गए हैं–

(1) प्रत्येक नागरिक के लिए डिजिटलअवसंरचना की उपलब्धता।

(2) मांग के अनुरूप शासन एवं सेवाओं की डिजिटल उपलब्धता।

(3) नागरिकों का डिजिटलसशक्तिकरण।

डिजिटल भारत कार्यक्रम के अंतर्गत अनेक योजनाएँ संचालित की गई हैं जिनमें भारतनेट, डिजिलॉकर, उमंग पोर्टल, कॉमन सर्विस सेंटर, प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान तथा ई–हॉस्पिटल परियोजना प्रमुख हैं।[5]

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट सेवाओं का विस्तार करना, डिजिटल भुगतान प्रणाली को प्रोत्साहित करना तथा सरकारी सेवाओं को सरल एवं पारदर्शी बनाना है। इसके अतिरिक्त डिजिटलसाक्षरता के माध्यम से नागरिकों को नई तकनीकों के उपयोग के लिए प्रशिक्षित करना भी इसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

ग्रामीण समाज : अवधारणा एवं विशेषताएँ– ग्रामीण समाज एक ऐसी सामाजिक इकाई है जहाँ जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि तथा उससे संबंधित व्यवसायों में संलग्न रहता है। ग्रामीण जीवन की सामाजिक संरचना नगरीय समाज की अपेक्षा अधिक परंपरागत तथा सामुदायिक होती है।[6]

ग्रामीण समाज की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. कृषि आधारित अर्थव्यवस्था– ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि, पशुपालन, बागवानी तथा डेयरी व्यवसाय पर आधारित होती है। किसानों की आय प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर रहती है।

2. **प्राथमिक संबंधों की प्रधानता–** ग्रामीण समाज में व्यक्ति–व्यक्ति के बीच प्रत्यक्ष एवं आत्मीय संबंध पाए जाते हैं। परिवार, पड़ोस तथा जातीय समूह सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं।[7]

3. **परंपरागत मूल्यों का प्रभाव–** ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक रीति–रिवाजों तथा सांस्कृतिक परंपराओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सामाजिक नियंत्रण अनौपचारिक संस्थाओं के माध्यम से संचालित होता है।[8]

4. **सीमित संसाधन–** स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंकिंग तथा संचार सेवाओं की सीमित उपलब्धता ग्रामीण विकास में बाधा उत्पन्न करती रही है। किन्तु डिजिटल तकनीकों के विस्तार ने इन परिस्थितियों में परिवर्तन लाना प्रारम्भ कर दिया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटलअवसंरचना का विकास– डिजिटल भारत कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटलअवसंरचना के विकास पर विशेष बल दिया गया है। भारतनेट परियोजना के माध्यम से लाखों ग्राम पंचायतों को ऑप्टिकलफाइबर नेटवर्क से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।[9]

इंटरनेट सेवाओं के विस्तार के कारण ग्रामीण नागरिकों को वैश्विक सूचनाओं तक पहुँच प्राप्त होने लगी है। स्मार्टफोन की कीमतों में कमी तथा दूरसंचार सेवाओं के सस्ते होने से ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या निरंतर बढ़ रही है।[10]

कॉमन सर्विस सेंटरों ने ग्रामीण समाज में डिजिटल परिवर्तन को गति प्रदान की है। इन केंद्रों के माध्यम से नागरिक जन्म प्रमाण पत्र, मृत्यु प्रमाण पत्र, आधार सेवाएँ, बैंकिंग सुविधाएँ, पेंशन आवेदन तथा अन्य प्रशासनिक सेवाएँ प्राप्त कर रहे हैं।[11]

प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान के माध्यम से लाखों ग्रामीण परिवारों को कंप्यूटर एवं इंटरनेट के उपयोग का प्रशिक्षण प्रदान किया गया है। इससे डिजिटल जागरूकता में वृद्धि हुई है तथा ग्रामीण नागरिक नई तकनीकों को अपनाने के प्रति अधिक उत्साहित हुए हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक परिवर्तन– डिजिटल तकनीकों के विस्तार ने ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। पूर्व में ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षकों, पुस्तकालयों तथा अध्ययन सामग्री का अभाव पाया जाता था। डिजिटल शिक्षा के माध्यम से इन समस्याओं को काफी हद तक दूर किया गया है।[12]

दीक्षा पोर्टल, स्वयं पोर्टल, ई–पाठशाला तथा अन्य ऑनलाइन मंचों के माध्यम से विद्यार्थियों को नि:शुल्क अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है। इससे ग्रामीण विद्यार्थियों को महानगरों में उपलब्ध शैक्षिक संसाधनों के समान अवसर प्राप्त होने लगे हैं।

कोविड–19 महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के बंद होने की स्थिति में मोबाइल फोन, व्हाट्सएप तथा वीडियोकॉन्फ्रेंसिंगप्लेटफॉर्म के माध्यम से शिक्षण कार्य संचालित किया गया।[13]

डिजिटल शिक्षा ने विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन के तरीकों को बदल दिया है। अब विद्यार्थी ऑनलाइन व्याख्यान सुन सकते हैं, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर सकते हैं तथा राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के पाठ्यक्रमों का अध्ययन कर सकते हैं।

हालाँकि डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की कमजोर गति, बिजली आपूर्ति की अनियमितता तथा आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों में स्मार्टफोन की अनुपलब्धता शिक्षा के डिजिटलीकरण में बाधा उत्पन्न करती है।

कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन– कृषि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार है। डिजिटल तकनीकों ने कृषि क्षेत्र में आधुनिकता को बढ़ावा दिया है। किसान अब मोबाइल एप्लीकेशनों के माध्यम से मौसम पूर्वानुमान, फसल बीमा, उन्नत बीज, उर्वरकों के उपयोग तथा बाजार मूल्यों की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं।[14]

ई–नाम प्लेटफॉर्म ने किसानों को राष्ट्रीय स्तर के बाजारों से जोड़ने का कार्य किया है। इसके माध्यम से किसान अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त कर सकते हैं तथा बिचौलियों पर निर्भरता कम कर सकते हैं।[15]

डिजिटल भुगतान प्रणाली के विस्तार से किसानों को सरकारी सहायता राशि सीधे उनके बैंक खातों में प्राप्त होने लगी है। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना इसका प्रमुख उदाहरण है।[16]

इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में ई–कॉमर्स गतिविधियों के विस्तार से स्वरोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं। ग्रामीण युवा ऑनलाइन व्यापार, डिजिटल सेवा केंद्रों तथा फ्रीलांस कार्यों के माध्यम से आय अर्जित कर रहे हैं।

स्वास्थ्य सेवाओं में डिजिटल हस्तक्षेप– ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता लंबे समय से एक गंभीर चुनौती रही है। चिकित्सकों की कमी, स्वास्थ्य केंद्रों की अपर्याप्त संख्या तथा विशेषज्ञ सेवाओं का अभाव ग्रामीण समुदायों के समक्ष प्रमुख समस्याएँ रही हैं। डिजिटल भारत कार्यक्रम के अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाओं के डिजिटलीकरण ने इस स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया है।[17]

टेलीमेडिसिन सेवाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के रोगियों को दूरस्थ स्थानों पर स्थित विशेषज्ञ चिकित्सकों से परामर्श प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध हुई है। इससे यात्रा व्यय और समय दोनों की बचत हुई है। ई–संजीवनी पोर्टल ने विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच को सुदृढ़ किया है।[18]

डिजिटल स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को डिजिटल स्वास्थ्य पहचान पत्र उपलब्ध कराने की दिशा में कार्य किया जा रहा है। इससे स्वास्थ्य संबंधी अभिलेखों का सुरक्षित संधारण संभव हो सकेगा।[19]

कोविड–19 महामारी के दौरान डिजिटल स्वास्थ्य प्लेटफार्मों की उपयोगिता स्पष्ट रूप से सामने आई। ऑनलाइन पंजीकरण, टीकाकरण प्रमाण पत्र तथा स्वास्थ्य संबंधी परामर्श सेवाओं ने महामारी नियंत्रण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[20]

महिला सशक्तिकरण एवं डिजिटलसमावेशन– डिजिटल तकनीक ने ग्रामीण महिलाओं के जीवन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। पूर्व में महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सीमित अवसरों तक ही पहुँच बना पाती थीं। डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों ने उन्हें नई संभावनाओं से परिचित कराया है।

महिलाएँ अब मोबाइल बैंकिंग, डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन विपणन तथा ई–कॉमर्स गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं। स्वयं सहायता समूहों द्वारा निर्मित उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री से महिलाओं की आय में वृद्धि हुई है।[21]

डिजिटल माध्यमों के द्वारा महिलाएँ सरकारी योजनाओं, स्वास्थ्य

कार्यक्रमों तथा शिक्षा संबंधी सूचनाओं तक आसानी से पहुँच प्राप्त कर रही हैं। इससे उनकी सामाजिक चेतना तथा निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के मध्य डिजिटल साक्षरता का स्तर अभी भी अपेक्षाकृत कम है। अनेक परिवारों में महिलाओं को मोबाइल फोन के स्वतंत्र उपयोग की अनुमति नहीं मिल पाती, जिससे डिजिटलसमावेशन की प्रक्रिया प्रभावित होती है।[22]

पंचायत राज एवं ई-गवर्नेंस- डिजिटल भारत कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पक्ष ई-गवर्नेंस है। इसका उद्देश्य प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल, पारदर्शी तथा जवाबदेह बनाना है।

ई-पंचायत प्रणाली के माध्यम से ग्राम पंचायतों के कार्यों का डिजिटलीकरण किया जा रहा है। पंचायतों की योजनाएँ, बजट, विकास कार्य तथा वित्तीय विवरण ऑनलाइन उपलब्ध कराए जा रहे हैं।[23]

ग्रामीण नागरिक अब जाति प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र, निवास प्रमाण पत्र तथा अन्य प्रशासनिक सेवाओं के लिए ऑनलाइन आवेदन कर सकते हैं। इससे कार्यालयों के चक्कर लगाने की आवश्यकता कम हुई है तथा भ्रष्टाचार की संभावनाओं में भी कमी आई है।

डिजिटल भुगतान व्यवस्था ने पंचायत स्तर पर वित्तीय लेन-देन को अधिक पारदर्शी बनाया है। मनरेगा जैसी योजनाओं के अंतर्गत मजदूरी की राशि सीधे लाभार्थियों के बैंक खातों में हस्तांतरित की जा रही है।

ई-गवर्नेंस ने प्रशासन और नागरिकों के मध्य संबंधों को अधिक सुदृढ़ बनाया है तथा शासन व्यवस्था के प्रति लोगों के विश्वास में वृद्धि की है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन- डिजिटल तकनीकों ने ग्रामीण समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया है।

सोशल मीडिया प्लेटफार्मों ने ग्रामीण समुदायों को राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर जोड़ने का कार्य किया है। फेसबुक, व्हाट्सएप, यूट्यूब तथा इंस्टाग्राम जैसे माध्यमों के द्वारा लोग विभिन्न प्रकार की सूचनाओं, विचारों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़ रहे हैं।[24]

डिजिटल संचार के कारण पारंपरिक सामाजिक संबंधों में परिवर्तन देखा जा रहा है। जहाँ पूर्व में सामूहिक बैठकों तथा व्यक्तिगत संवादों का महत्व अधिक था, वहीं अब डिजिटल संचार माध्यमों के उपयोग में वृद्धि हुई है।

ग्रामीण युवाओं की जीवन शैली, पहनावा, उपभोग संबंधी आदतें तथा कैरियर संबंधी आकांक्षाएँ भी डिजिटल संस्कृति से प्रभावित हुई हैं। वैश्वीकरण और डिजिटलीकरण ने ग्रामीण एवं शहरी जीवन के मध्य की दूरी को कम करने का कार्य किया है।

हालाँकि सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव भी सामने आए हैं। अफवाहों का प्रसार, साइबर अपराध, सामाजिक तनाव तथा सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण जैसी समस्याएँ भी डिजिटल विस्तार के साथ उभरकर सामने आई हैं।[25]

डिजिटल भारत कार्यक्रम की चुनौतियाँ- डिजिटल भारत कार्यक्रम की उपलब्धियों के बावजूद अनेक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं।

1. **डिजिटल विभाजन-** ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के मध्य इंटरनेट की उपलब्धता तथा उपयोग के स्तर में अभी भी पर्याप्त अंतर विद्यमान है।

2. **डिजिटल अशिक्षा -** ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग आधुनिक डिजिटल उपकरणों के उपयोग में दक्ष नहीं है।

3. **तकनीकी अवसंरचना का अभाव-** कई दूरस्थ क्षेत्रों में इंटरनेट सेवाओं की गुणवत्ता संतोषजनक नहीं है तथा बिजली आपूर्ति भी नियमित नहीं रहती।

4. **साइबर सुरक्षा संबंधी समस्याएँ-** ऑनलाइन धोखाधड़ी, बैंकिंग फ्रॉड तथा व्यक्तिगत सूचनाओं की चोरी जैसी समस्याएँ डिजिटल विस्तार के साथ बढ़ी हैं।

5. **आर्थिक असमानता-** आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के लिए स्मार्टफोन, कंप्यूटर तथा इंटरनेट सेवाओं का नियमित उपयोग अभी भी चुनौतीपूर्ण है।

निष्कर्ष - डिजिटल भारत कार्यक्रम ने ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान की है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, प्रशासन तथा आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र में डिजिटल तकनीकों के सकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने ग्रामीण समुदायों को नई सूचनाओं, अवसरों तथा संसाधनों तक पहुँच प्रदान की है।

महिलाओं के सशक्तिकरण, किसानों की आय में वृद्धि, प्रशासनिक पारदर्शिता तथा सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में डिजिटल भारत कार्यक्रम की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इसके बावजूद डिजिटल विभाजन, तकनीकी अशिक्षा तथा साइबर सुरक्षा जैसी चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है।

यदि ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण इंटरनेट सेवाएँ, डिजिटल प्रशिक्षण तथा तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए, तो डिजिटल भारत कार्यक्रम सामाजिक न्याय, समावेशी विकास तथा ग्रामीण परिवर्तन के प्रभावी माध्यम के रूप में स्थापित हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आर. एम. मैकाइवर एवं चार्ल्सएच. पेज, समाज (Society), मैकमिलन प्रकाशन, न्यूयॉर्क, 1961।
2. एम. एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन (Social Change in Modern India), ओरिएंटलॉन्गमैन, नई दिल्ली, 1995।
3. भारत सरकार, डिजिटल इंडिया कार्यक्रम (Digital India Programme), नई दिल्ली, 2015।
4. इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY), डिजिटल इंडिया वार्षिक प्रतिवेदन2023-24, नई दिल्ली।
5. भारत सरकार, प्रेस विज्ञप्ति, 1 जुलाई 2015।
6. इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन2024, भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. ए. आर. देसाई, भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र (Rural Sociology in India), पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 2012।
8. डी. एन. मजूमदार, ग्रामीण रूपरेखाएँ (Rural Profiles), एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1958।
9. दूरसंचार विभाग, भारतनेट परियोजना प्रतिवेदन2024 (BharatNet Project Report), भारत सरकार, नई दिल्ली।
10. भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (TRAI), दूरसंचार सदस्यता प्रतिवेदन2024 (Telecom Subscription Report), नई दिल्ली।
11. सीएससी ई-गवर्नेंससर्विसेज इंडिया लिमिटेड, वार्षिक प्रतिवेदन2024, नई दिल्ली।
12. शिक्षा मंत्रालय, डिजिटल शिक्षा पहल (Digital Education

Initiatives), भारत सरकार, नई दिल्ली, 2023।
13. यूनेस्को, कोविड–19 महामारी के दौरान शिक्षा (Education During COVID-19 Pandemic), पेरिस, 2021।
14. कृषि मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन2024, भारत सरकार, नई दिल्ली।
15. ई–नाम पोर्टल (e-NAM Portal), भारत सरकार, 2024।
16. प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना दिशा–निर्देश (PM-KISAN Scheme Guidelines), भारत सरकार, 2024।
17. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन2024, भारत सरकार, नई दिल्ली।
18. ई–संजीवनी टेलीमेडिसिनप्रतिवेदन2024 (eSanjeevani Telemedicine Report), भारत सरकार, 2024।
19. राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन दस्तावेज (National Digital Health Mission Documents), भारत सरकार, 2024।
20. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), भारत में कोविड–19 के प्रति प्रतिक्रिया (COVID-19 Response in India), जिनेवा, 2022।
21. नाबार्ड, स्वयं सहायता समूह एवं डिजिटलसमावेशन (SHGs and Digital Inclusion), मुंबई, 2023।
22. संयुक्त राष्ट्र महिला संगठन (UN Women), भारत प्रतिवेदन2023 (UN Women India Report), 2023।
23. पंचायती राज मंत्रालय, ई–पंचायत मिशन मोड परियोजना (e-Panchayat Mission Mode Project), भारत सरकार, नई दिल्ली, 2024।
24. मैनुअलकैस्टेल्स, नेटवर्क समाज का उदय (The Rise of the Network Society), वाइली–ब्लैकवेल प्रकाशन, 2010।
25. एंथनीगिडेन्स, समाजशास्त्र (Sociology), पॉलिटी प्रेस, लंदन, 2013।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Problems Associated with Trend of Late Marriage : A Theoretical Analysis

Mitali Sen*

***MA Psychology, St. Wilfred's PG College, Jaipur (Raj.) INDIA**

Abstract: The increasing trend of late marriage has become a prominent social phenomenon in almost every society, especially among those with higher levels of education which is mainly due to a number of variables like increased educational attainment, building a good career with financial stability in life, goal setting and aspirations, economic constraints, and shifting social attitudes and values. Delaying marriage may result in a number of social, psychological, biological, and demographic issues, even though it has advantages including increased financial security and personal maturity. Through a review of the literature and pertinent sociological ideas, this theoretical study investigates the main issues related to late marriage.The study draws attention to problems like declining rate of fertility, various problems related to reproductive health, psychological stress, challenges in choosing and getting a good partner ,smaller families, and wider demographic ramifications. The study offers a thorough grasp of the difficulties associated with delayed marriage by combining viewpoints from Structural Functionalism, Social Exchange Theory, and Life Course Theory. The findings suggests that late marriage is a result of modern socio-economic changes, but has important ramifications for individuals, families and society that need more research.
Keywords: Late marriage, marital adjustments, career attainment.

Introduction - One significant trend in recent years has been the postponement of marriage until later in life, especially among those with higher levels of education, which is a significant change to marriage, a fundamental social institution in every region of the world for both men and women; furthermore, average age of marriage has been rising for both sexes over the last several decades. It is seen that more than half of marriages occur after age 30 in many developed nations (Carroll, 2017). Scholars and policymakers are interested in this development. There is a noticeable postponement of marriage age across various cultures due to contemporary education requirements, which runs counter to traditional expectations that favored early marriage. Various structural factors also play a role in this decision. A person's socioeconomic status and the options available to them are heavily influenced by their level of education, which in turn affects many aspects of their lives, such as when they choose to tie the knot. A decline in the number of marriages has been marked globally for decades, specifically among economically developed regions, such as Europe and the U.S. (Maharaj & Shangase, 2020).

Theoretical Framework

1. Structural-Functionalism: According to structural functionalists, marriage performs crucial roles like social integration, reproduction, emotional support, and social stability. A delayed marriage can put off starting a family and having a child, which are two of these functions.

2. The social exchange theory: According to the Social Exchange Theory, people choose for relationships in which they receive the most benefits with the least cost. Spending more time and emphasis on education and job may mean delaying marriage and having a harder time choosing a companion. Nowadays, many believe that marriage and relationships need a major commitment, increased demands from their families and spouse, and receive less in return.

3. Theory of the life cycle: The key idea behind Life Course Theory is the timing of events (Elder,1988). Marriage delays might affect future developments such as becoming a parent, developing a family, and investing for retirement. All these milestones of life are getting delayed day by day. Late marriage offers several advantages, according to social scientific circles. However, it may also be the cause of numerous issues with coupling behaviors and family stability (Carroll, 2017). According to a nationwide survey of Millennials (those between the ages of 18 and 33), late marriage is widely supported.

According to Hawkins et al. (2022), the majority of them concur that late marriage is associated with both husband and wife being more mature, more likely to be excellent partners, and more likely to accomplish their own goals

without regrets in the future. Individuals who put off getting married may benefit more in their marriages both physically and spiritually than those who get married young, but they may also experience issues with their spouses or the families of their wives. These marriages may end in divorce since it is hard for partners who have been single for a long period to live together (Ozarslan, 2020). Therefore, even if getting married later in life has numerous advantages, it also has many drawbacks.

Marriage has long been acknowledged as one of the most essential social institutions, acting not only as a form of family formation, but also as a source of emotional, social and economic support. Traditionally, marriage has been seen as the passage into adulthood in cultures and communities and has been associated with childbirth, social stability and familial lineage (Parsons & Bales, 1955). However, major social and economic changes in the previous decades have changed the traditional marriage patterns, and have led to a large increase in the age at which people tend to marry.

The tendency of late marriage has gotten more and more in the world. Higher levels of educational achievement, professional development, financial independence, urbanization and changing attitudes towards partnerships have all encouraged many people to delay marriage until later stages of life (Cherlin, 2010). In many societies today, young individuals are more interested in personal development and professional achievement before they commit to marriage. These developments suggest increased opportunity and individual freedom but have also prompted alarm among scholars about the repercussions of delayed marriage.

Marriage at a later age alters the conventional life trajectory significantly, according to sociologists. Timing of significant life events impacts adult growth and social experiences, according to Life Course Theory (Elder, 1998). Future changes including becoming a parent, starting a family, and assimilating into society may be impacted by postponing marriage. Similarly, according to Structural Functionalists, marriage serves vital societal and individual purposes, such as providing emotional support, reproducing offspring, and facilitating socialization (Parsons & Bales, 1955). Consequently, big shifts in when people tie the knot might affect more than just families and communities.

The benefits of marrying later in life include being emotionally mature, financially stable and choosing the right partner. But late marriages have its disadvantages too. Studies show that late marriage may be related to fertility constraints, reproductive health problems, mental health problems, difficulty of locating acceptable partners and smaller families (Becker, 1981; Cherlin, 2010). Furthermore, unmarried adults in societies where early marriage continues to be a societal norm may endure social pressure, stigma, and family anxiety about their marital status.

It is growing more widespread and could have dire implications, thus we need to consider delayed marriage from several theoretical perspectives. The present study reviews demographic, social and psychological literature on late marriage to identify its most important aspects. The study intends to present a comprehensive understanding of the consequences of the late marriage on the individual, family and the society through a theoretical analysis in the context of continuous evolution of the society.

A new study finds the trend toward later life marriage has widespread implications for individuals and families. The average age of first marriage is rising across the board with more and more people delaying marriage to establish themselves financially, professionally and educationally. The change has created more options for career and personal development – but experts have identified a number of issues with delaying marriage. For example, several studies suggested that declining fertility with age and shorter reproductive duration may diminish the probability of childbearing for people who marry later (Liu & Wang, 2022). According to studies, in nations where marriage is still highly anticipated, deferring marriage and having children might cause emotional anguish, peer pressure, or feelings of solitude (Noda et al., 2023). Late marriage and motherhood have raised concerns about reproductive health, family dynamics, and fertility rates in nations like India (Singh et al., 2025). Furthermore, recent research has shown that marrying later in life can have an impact on a variety of health outcomes, including emotional adjustment, long-term family planning, and social relationships (Dwivedi & Tripathi, 2025). The findings suggest that late marriage is a reflection of changing society norms and personal preferences; however, they also raise important questions that the academic community should thoroughly investigate.

Positive aspects of late marriage

1. Getting opportunities to focus on personal growth: Some people are unable to concentrate on their own development because of the increased responsibilities that come with marriage (Karamat, 2016). Marriage can cut people off from having enough time to grow into their own unique selves. Since many people now value their occupations with their personalities, developing one's personality has become more vital in today's world. In instance, due to other obligations, women who get married and have children at a young age are unable to concentrate on developing their personalities. Pregnancy can cause some women to postpone their plans. Marriage at a later age can help people develop their personalities since it forces both men and women to put off plans that have to do with their maturation (Haotanto, 2016). As a result, men and women alike prioritize their own personal development as a means of putting off marriage. Many people prioritize their career development and personal growth as a result of marrying later in life. One of the benefits of postponing marriage, therefore, is the opportunity it gives people to concentrate on themselves and their development.

2. Adjustments and Stability in Marriage: The significance of the maturity effect is highlighted by a few of the researchers. Young couples are more likely to enter into marriage with unrealistic expectations, which can lead to marital problems. Young married couples may lack confidence in themselves and their abilities and have a limited understanding of who they are (Lehrer & Chen, 2013). As a result of having more time to choose their spouse, people who choose to divert their marriages end up in more traditional unions. Married people who have been single for a while tend to be more mature in their relationships with their spouses because they are more tolerant, knowledgeable, calm under pressure, and willing (Karamat, 2016). One study found that the likelihood of divorce drops by 11% for every additional year of age at marriage, and that marrying at a later age also reduces the likelihood of divorce.Marriage can be fulfilling for both partners even in the absence of a biological child. The significance of examining the definition of marital adjustment should be prioritized before expressing the adjustment between spouses. The phrase "marital adjustment" refers to the process by which a couple and an individual can improve their relationship by changing their behavior and the way they interact with one other. The marital adjustment between the man and woman is not negatively impacted, even when there is no child and a woman cannot be a parent. Researchers have shown that couples without children are likely to react in the same way, which could lead them to romanticize their relationship. Being a parent may, therefore, limit one's ability to experience mate equivalence (Akhter & Bhat, 2018).

3. Education and Career: Because they do not place a high value on their marriage age, some people do not even consider getting married. They may focus on improving their financial situation and advancing their careers. The negative impacts of marriage on work-life balance and the impending birth of a child motivate many women to put off getting married (Karamat, 2016).

Some men, like some women, are more interested in advancing their careers than tying the knot. Marriage at a later age can open doors for people to further their education and careers. Some people put off getting married because they are focused on their careers or because they want to finish school first (Haotanto, 2016). Education has become a necessity in today's opportunities. One important reason people are putting off marriage is the rise of women in positions of power in society, particularly in the workplace and in educational institutions. In conclusion, becoming married at a later age allowed them more time to concentrate on their studies and future careers.

4. Promoting Mental Wellness: In comparison to their single or divorced counterparts, married people are more likely to experience life's general enjoyment, according to a number of comprehensive studies (Vitelli, 2017). People who go through a divorce are more likely to report mental health issues, such as depression. Canadian adults aged 18–25 were questioned as part of the longitudinal study. This investigation began in 1985 and has been ongoing ever since. Between the ages of 19 and 25, there were young adults, and between 32 and 45, there were middle-aged people. The participants gradually disclosed information about their marital status, the age of their first marriage, and the occurrence of divorce. Additionally, they provided information regarding their demographics, including the education level of their parents, gender, and the family's income at the age of 43. They were tested for happiness, depression symptoms, self-esteem, and life satisfaction. One helpful aspect of the comparison was the age gap between the individuals. Depending on whether they got married "early,""on time," or "late," participants were divided into three groups for the study. "Early" indicated the wedding was before the age of 23, "on time" meant it was between the ages of 23 and 27, and "late" meant it was after the age of 27. The men's marriage was considered "early" if it took place before the age of 26, "on time" if it took place between 27 and 30, and "late" if it took place after the age of 30. Midlife depression symptoms were least common in those who were married on time or later in life, according to the results. According to their stated happiness or self-esteem, there was no correlation with their subsequent marital conditions; however, those who reported depressive symptoms at the age of 18 were more likely to get a divorce. The researchers concluded from their analysis that early marriage may be fraught with difficulty due to the additional responsibilities that come with starting a family at a young age. That may continue to face significant challenges in fulfilling their educational or occupational aspirations. A number of factors, including increased pressure from extended family members or an unexpected pregnancy, might lead to an early marriage (Vitelli, 2017). Thus, it is reasonable to conclude that marital status influences mental health. Marrying later in life can bring more happiness than getting married young.

Negative aspects of late marriage

1. The Birth Rate Decline: Since most people agree that getting married is a must if you want to have kids, marrying at a later age undermines one of the most basic functions of families: passing the family gene pool down through generations (Eralp & Gokmen, 2020). Delaying childbearing, which impacts population increase, is one of the most significant negative repercussions of late marriage. Contrary to popular belief, a woman's fertility starts to decline in her late twenties, according to a study published in Human Reproduction (Karamat, 2016).Fertility declines and difficulties giving birth may arise as a result of women putting off marriage (Karamat, 2016).

Women nowadays typically wait more than 28 years before tying the knot for the first time. Half of all women are married for the first time when they are much older, and many of those women don't try to conceive until they are

well past the age of 30, according to the median age of first marriage. As said before, if a woman's fertility begins to decline in her twenties, she may find it more challenging to conceive in her nearly thirtys compared to her twenties. Internationally, the current generation of women is having fewer children than previous generations (McIlhaney & Sprigg, 2021). As a result, fewer people are having children, which contributes significantly to global population decline (Karamat, 2016).

2. Abnormality in Children and Difficult Pregnancy: Women who delay marriage may experience a decrease in fertility and complications during childbirth (Karamat, 2016).

These days, the average age that a woman must wait before she gets married is over 28. According to the median age of first marriage, half of all women are married at a far later age, and many of those women wait until they are well past the age of 30 before trying to conceive. It may be more difficult for a woman to conceive in her almost 30s than in her twenties if her fertility starts to diminish in her twenties, as mentioned before. Globally, today's women aren't having as many children as their parents' generation (McIlhaney & Sprigg, 2021). This has led to a dramatic drop in the world's population as fewer people choose to start a family (Karamat, 2016).

3. Conflict between the Partners: While some older couples may find marital stability through marriage at a later age, this is not always the case. This applies to everyone, not only those who tie the knot later in life. When two people with vastly different personalities, upbringings, views, preferences, and life experiences tie the knot, the inevitable friction that ensues accounts for about 70% of all marriage disputes (Reisser & Reisser, 2019). No matter how young the spouses are, these disparities will always be a source of contention. On the other hand, late-life couples have unique preferences, tastes, and life experiences that make them unique. The importance of these factors cannot be overstated, as a person's life outlook changes with age, and as a result, marital harmony might be compromised. Those who wait until later in life to tie the knot are likely to be rule-abiding and not the most sociable people. Because of this, couples often find it challenging to reach a compromise (Akhter & Bhat, 2018). The difficulty in adjusting to married life stems from this shared experience between the partners. Marriage at a later age allows people more time to grow into their selves. With their free time, they can explore, study, etc. The rules and characteristic capabilities of an individual change as they age, and they also develop several borders (Haotanto, 2016). Certain agreements between spouses can be obstructed by these boundaries. That is why some elderly partners would rather get a divorce than try to work things out with their spouse.

4. Separation of Generations: Parents and Children: The potential generational divide that results from marriages that take place too late is bad for families and communities (Akhter & Bhat, 2018). When people of different ages don't interact with one another, it can be frustrating; conversely, it can be a beneficial cultural division that helps people grow into their own unique identities (Adcox, 2021). Because the community's operations throughout the youth of both generations colored their beliefs about the world, this generational divide causes a lack of contact and arrangement between the two (Nagaraj, 2019). This generation divide manifests itself in late marriage and the numerous arguments that ensue between parents and children. Even though they share a common language, members of various generations may use it differently (Akhter & Bhat, 2018). Additionally, parents' worldviews make it hard for them to tolerate their children's mistakes, which can lead to a breakdown in communication and understanding. Couples who have passed away and their children just do not have enough time to be together. For instance, Nagaraj (2019) notes that older parents may find it difficult to play with their children due to fatigue.

Discussion: All of the benefits and drawbacks have been discussed up to this point, and the primary reasons why people choose to get married later in life will be discussed in subsequent paragraphs. Within this section, we will examine the pieces of information in a concise manner. First and foremost, in the twenty-first century, young people are more concerned with the decisions they make regarding their education and careers because they want to be in a position where they are financially secure. The practice of cohabitation has also become increasingly common among people. Another reason for delaying marriage is because this is a consideration. Due to the fact that, when we examine the literature, we come to the realization that the drawbacks are more significant than the advantages, late marriage has a greater number of disadvantages than advantages. The majority of the drawbacks are almost always connected to health concerns. A few examples of the challenges that spouses may confront include the death of a baby, difficult pregnancy, the possibility of HIV infection, and abnormalities in children. Aside from these factors, the drop in birth rates is another factor that contributes to the slowdown in population growth. Late marriage is another factor. On the other hand, the generation gap is another crucial issue because there are usually problems that occur when there is an excessive age gap between the parents and the children. It is possible that these disagreements will lead to insufficient communication within the family. Conversely, the advantages of getting married later in life do not appear to be more significant than the disadvantages of getting married later in life. One of the benefits of being married later in life is the opportunity for personal development; nevertheless, individuals who are already married have the opportunity to grow as individuals.

Many married couples choose to continue their education, career choices, and personal development together because they believe that this is the best way for

them to make progress. However, because these couples accept each other's individuality, they do not have to be together all the time. Because of this, having time for one's own personal development is not a sufficient advantage. A further advantage for individuals who are not married is the availability of educational and professional development options. Because of the chance of becoming pregnant while they are married, women who wish to continue their education are anxious about the possibility of being pregnant. In the same way that women do, men face the same challenges since they are required to work when they are married. As a result, they desire to be financially independent. The stability of a marriage is a significant benefit; yet, there is no evidence to support this assertion, taking into consideration that individuals who get married later in life may also experience problems. Therefore, after weighing the benefits and drawbacks of getting married later in life, we have come to the conclusion that the negatives of getting married later are by far more significant than the benefits.

Conclusion: To sum up, marriage is still an important institution since it spreads the building blocks of a family, which is the first social unit (Karamat, 2016). As a result of social shifts toward permitting sexual relations outside of marriage, differences in the value placed on women's and men's employment, and other factors, late marriage is becoming more common in industrialized nations. However, they are less interested in starting a family or getting married at a young age due to the increased job opportunities for both sexes. A small number of paradoxes discourage young adults from considering marriage. An important reason why more and more people are choosing not to get married is the rise in cohabitation, as already indicated.

On the other hand, rather of contributing to population expansion, late marriage becomes a big issue. Beyond this, the timing of a woman's pregnancies and subsequent births is impacted by her marriage at a later age. Personal development, financial autonomy, and other chances are among the benefits of marrying later in life. People and society should not disregard any pros and cons. Due to population growth and other factors, some communities do not encourage late marriage, while others do. Bringing up the topic of late marriage in this paper primarily serves to provide readers with some background on the subject. Getting used to living alone, adjusting to premarital sex and living with someone else, finding the perfect person, advancing in one's job, and education are all reasons why many people put off getting married these days. Although they only perceive benefits while they continue to put off getting married, they soon discover that there are drawbacks to this decision as well. This paper aims to highlight both the advantages and downsides for that reason.

References:-

1. Akhter, R., & Bhat, M. R. (2018). Late marriage consequences and concerns among women of Kashmir Valley. *International Journal on Arts, Management and Humanities, 7*, 1–9.
2. Becker, G. S. (1981). *A treatise on the family*. Harvard University Press.
3. Carroll, J. (2017, August). *Delaying marriage: The trends and the consequences*. *Ensign*, 24–27.
4. Cherlin, A. J. (2010). Demographic trends in the United States: A review of research in the 2000s. *Journal of Marriage and Family, 72*(3), 403–419. https://doi.org/10.1111/j.1741-3737.2010.00710.x
5. Dwivedi, M., & Tripathi, D. (2025). The multisystem health consequences of delayed marriage: A gender-based analysis of cardiovascular, metabolic, reproductive, neuroendocrine, and psychosocial outcomes. *Southeast Asian Journal of Health Professional, 8*(2), 24–34.
6. Elder, G. H., Jr. (1998). The life course as developmental theory. *Child Development, 69*(1), 1–12. https://doi.org/10.1111/j.1467-8624.1998.tb06128.x
7. Eralp, A., & Gokmen, Þ. (2020). Ortalama evlilik yaþýnýn yükselmesini etkileyen faktörler ve cinsiyete göre farklýlýklar. *Optimum: Journal of Economics and Management Sciences, 7*(2), 395–411. https://doi.org/10.17541/optimum.698063
8. Grant, M. J., & Soler-Hampejsek, E. (2014). HIV risk perceptions, the transition to marriage, and divorce in Southern Malawi. *Studies in Family Planning, 45*(3), 315–337. https://doi.org/10.1111/j.1728-4465.2014.00394.x
9. Haotanto, A. V. (2016). *Marrying late: Pros & cons—Why it is no one else's business*. Vulcan Post.
10. Hawkins, A. J., Carroll, J. S., Jones, E. M., & James, S. L. (2022). *Capstones vs. cornerstones: Is marrying later always better?State of Our Unions 2022*. National Marriage Project, University of Virginia; Wheatley Institution; BYU School of Family Life.
11. Karamat, K. (2016). Perceptions on implications of delayed marriage: A case study of married adults in Kuala Lumpur. *International Journal of Social Science and Humanity, 6*(8), 572–578. https://doi.org/10.7763/IJSSH.2016.V6.713
12. Lehrer, E. L., & Chen, Y. (2013). Delayed entry into first marriage and marital stability: Further evidence on the Becker–Landes–Michael hypothesis. *Demographic Research, 29*, 521–542. https://doi.org/10.4054/DemRes.2013.29.20
13. Liu, H., & Wang, X. (2022). The timing of first marriage and subsequent life outcomes: Evidence from a natural experiment. *Journal of Comparative Economics, 50*(3), 713–731.
14. Maharaj, P., & Shangase, T. (2020). Reasons for delaying marriage: Attitudes of young, educated women in South Africa. *Journal of Comparative Family Studies, 51*(1), 3–17. https://doi.org/10.3138/jcfs.51.1.002

15. McIlhaney, J. S., & Sprigg, P. (2021). *Fertility rates, delayed marriage, and infertility*. Institute for Family Studies.
16. Nagaraj, V. (2019, September 27). *6 tips to fill the generation gap between parent and child*. FirstCry Parenting.
17. Noda, T., et al. (2023). Married women's decision to delay childbearing, and loneliness, severe psychological distress, and suicidal ideation under crisis: Online survey data analysis from 2020 to 2021. *BMC Public Health, 23*, 1642.
18. Ozarslan, S. (2020). Evlilik yaþý ve içerdigi sorunlar. *Bartýn Universitesi Islami Ilimler Fakultesi Dergisi, 14*, 249–259.
19. Parsons, T., & Bales, R. F. (1955). *Family, socialization and interaction process*. Free Press.
20. Reisser, T. K., & Reisser, P. C. (2019). *When you and your spouse can't agree*. Focus on the Family.
21. Shirasuna, K., & Iwata, H. (2017). Effect of aging on the female reproductive function. *Contraception and Reproductive Medicine, 2*, Article 23. https://doi.org/10.1186/s40834-017-0050-9
22. Singh, M., Shekhar, C., Gupta, J., & Barik, S. (2025). Exploring the shifting landscape of delayed motherhood in India: A comprehensive analysis using joinpoint and age-period-cohort analysis. *BMC Women's Health, 25*, 563.
23. University of Rochester Medical Center. (2021). *Risk of pregnancy over age 30*. https://www.urmc.rochester.edu/encyclopedia/content.aspx?contenttypeid=90&contentid=P02481
24. Vitelli, R. (2017). *What is the ideal age for getting married? New research suggests that late can be a good thing for many people*. *Psychology Today*.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

पर्यावरणीय परिवर्तनों का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मीनाक्षी तिवारी*

* अर्थशास्त्र विभाग, बीसीएस शासकीय पीजी कॉलेज, धमतरी (छ.ग.) भारत

शोध सारांश – वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट विश्व की सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का ह्रास, प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन न केवल पर्यावरणीय संतुलन को प्रभावित कर रहे हैं बल्कि इनके व्यापक सामाजिक एवं आर्थिक परिणाम भी सामने आ रहे हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य पर्यावरणीय परिवर्तनों के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादन, स्वास्थ्य, रोजगार, आय वितरण, गरीबी तथा मानव विकास को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। साथ ही जैव विविधता के क्षरण से खाद्य सुरक्षा एवं आजीविका पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शोध-पत्र में पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं।

शब्द कुंजी –पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, सामाजिक प्रभाव, आर्थिक विकास, जैव विविधता, सतत विकास।

प्रस्तावना – मानव सभ्यता का विकास प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित रहा है। औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में वृद्धि, समुद्र स्तर में बढ़ोतरी, जैव विविधता का ह्रास तथा चरम मौसमी घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि देखी जा रही है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार ग्रीनहाउस गैसों के निरंतर बढ़ते उत्सर्जन ने वैश्विक तापमान को औद्योगिक क्रांति पूर्व स्तर की तुलना में लगभग 1-5℃ तक बढ़ा दिया है तथा यदि वर्तमान प्रवृत्तियाँ जारी रहीं तो इस शताब्दी के अंत तक तापमान में 2-5℃ से 4-6℃ तक वृद्धि संभव है। इस परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय परिवर्तनों के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रमुख कारणों का अध्ययन करना।
2. सामाजिक क्षेत्र पर इनके प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. आर्थिक गतिविधियों पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. सतत विकास हेतु नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति– यह अध्ययन मुख्यत: द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन हेतु विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, शोध-पत्रों तथा सरकारी प्रकाशनों से प्राप्त जानकारी का उपयोग किया गया है।

पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रमुख कारण– पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।

1. जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग
2. औद्योगिक उत्सर्जन
3. वनों की कटाई
4. कृषि क्षेत्र से मीथेन उत्सर्जन
5. अनियंत्रित शहरीकरण
6. प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन

इन कारणों से वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन तथा अन्य ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे वैश्विक तापमान बढ़ता है।

पर्यावरणीय परिवर्तन के सामाजिक प्रभाव

1. **स्वास्थ्य पर प्रभाव –** जलवायु परिवर्तन के कारण हीट वेव, बाढ़, सूखा एवं संक्रामक रोगों की घटनाओं में वृद्धि हुई है। बढ़ते तापमान से मृत्यु दर तथा बीमारी की घटनाएँ बढ़ती हैं, विशेषकर वृद्ध एवं बच्चों में।
2. **खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव –** अनियमित वर्षा, सूखा तथा बाढ़ कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं। परिणामस्वरूप खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि होती है और गरीब वर्ग सबसे अधिक प्रभावित होता है।
3. **विस्थापन एवं प्रवसन –** समुद्र स्तर में वृद्धि, सूखा तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण लोगों का बड़े पैमाने पर पलायन हो रहा है। इससे शहरी क्षेत्रों पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न होता है।
4. **सामाजिक असमानता –** जलवायु परिवर्तन का प्रभाव समाज के कमजोर वर्गों पर अधिक पड़ता है। इससे आय एवं अवसरों की असमानता बढ़ती है।

पर्यावरणीय परिवर्तन के आर्थिक प्रभाव

कृषि क्षेत्र – भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव कृषि पर पड़ता है। अनियमित मानसून, जल संकट तथा भूमि क्षरण के कारण उत्पादन में कमी आती है।

रोजगार – कृषि, मत्स्य पालन तथा वानिकी जैसे क्षेत्रों में रोजगार के अवसर घटते हैं। इससे ग्रामीण बेरोजगारी में वृद्धि होती है।

आधारभूत संरचना – बाढ़, चक्रवात एवं अन्य प्राकृतिक आपदाएँ सड़क,

पुल, बिजली तथा संचार अवसंरचना को नुकसान पहुँचाती हैं जिससे आर्थिक गतिविधियाँ बाधित होती हैं।

4. सकल घरेलू उत्पाद– UNEP के अनुसार यदि जलवायु परिवर्तन की वर्तमान गति जारी रहती है तो 2100 तक वैश्विक GDP में लगभग 22% तक कमी आ सकती है।

जैव विविधता एवं आर्थिक विकास – जैव विविधता पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं का आधार है। यह खाद्य सुरक्षा, औषधीय संसाधनों, जल संरक्षण तथा कृषि उत्पादकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैव विविधता के ह्रास से पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ता है तथा दीर्घकालिक आर्थिक विकास प्रभावित होता है।

सारणी: पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रमुख सामाजिक–आर्थिक प्रभाव

पर्यावरणीय समस्या	सामाजिक प्रभाव	आर्थिक प्रभाव
तापमान वृद्धि	स्वास्थ्य समस्याएँ	श्रम उत्पादकता में कमी
सूखा	खाद्य असुरक्षा	कृषि उत्पादन में गिरावट
बाढ़	विस्थापन	अवसंरचना क्षति
जैव विविधता ह्रास	जीवन गुणवत्ता में कमी	कृषि एवं पर्यटन पर प्रभाव
समुद्र स्तर वृद्धि	तटीय आबादी का पलायन	संपत्ति एवं निवेश हानि

नीतिगत सुझाव:

1. नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा दिया जाए।
2. वनीकरण एवं पुनर्वनीकरण कार्यक्रमों का विस्तार किया जाए।
3. जल संरक्षण तकनीकों को अपनाया जाए।
4. सतत कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित किया जाए।
5. जलवायु अनुकूल अवसंरचना विकसित की जाए।
6. पर्यावरण शिक्षा एवं जन–जागरूकता बढ़ाई जाए।
7. कार्बन उत्सर्जन नियंत्रण हेतु प्रभावी नीतियाँ लागू की जाएँ।

निष्कर्ष – पर्यावरणीय परिवर्तन केवल प्राकृतिक समस्या नहीं बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक चुनौती भी है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का क्षरण तथा प्रदूषण मानव स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार एवं आर्थिक विकास को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं। सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के मध्य संतुलन स्थापित करना आवश्यक है। यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो भविष्य में सामाजिक असमानता, गरीबी तथा आर्थिक अस्थिरता और अधिक बढ़ सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Drishti IAS. जलवायु परिवर्तन: एक वैश्विक चुनौती।
2. European Commission Climate Action – Causes of Climate Change.
3. European Commission Climate Action – Consequences of Climate Change.
4. UNEP. The Climate Crisis Explained in Seven Graphs.
5. Springer Nature. Environmental and Socio-Economic Impacts of Climate Change.
6. DD News. International Day for Biological Diversity.
7. United Nations Environment Programme (UNEP), Global Environment Outlook Reports.
8. IPCC Assessment Reports.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

योग अभ्यास का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति पर प्रभाव

जसवंत मेनारिया* अल्पना सुखवाल**

* सहायक आचार्य, पेसिफिक एकेडमी ऑफ हॉयर एजुकेशन एंड रिसर्च युनिवर्सिटी, उदयपुर (राज.) भारत
**शोधार्थी, पेसिफिक एकेडमी ऑफ हॉयर एजुकेशन एंड रिसर्च युनिवर्सिटी, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – विद्यार्थियों पर अच्छा पढ़ने और उत्तम प्रदर्शन करने का काफी दबाव रहता है। इसके लिए वे सतत प्रयास करते हैं, विविध पुस्तकें पढ़ते हैं। उच्च स्तर पर महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे इंजीनियरिंग तथा फार्मेसी के विद्यार्थियों पर एक विशेष अध्ययन किया गया, जिसके अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया कि इन विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति पर तीन माह के नियमित योग अभ्यास का क्या प्रभाव पड़ता है।विद्यार्थी आजकल पुस्तक तो बहुत पढ़ते हैं, किंतु उन्हें आत्मसात करने में उन्हें काफी परेशानी होती है। जैसे ही वे दूसरा विषय आरंभ करते हैं, पहला विषय भूलने लगते हैं। परीक्षा में कई बार उनके अंक तो अच्छे आ जाते हैं, किंतु परीक्षा के कुछ दिन उपरांत हुआ याद किया हुआ सभी कुछ भूल जाते हैं। यह बहुत ही चिंताजनक समस्या है।योग में कुछ प्रयासों के द्वारा इस समस्या का निदान कुछ हद तक संभव है अथवा नहीं, यही जानने का प्रयास शोध के द्वारा किया गया। शोध परिणाम दर्शाते हैं कि विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति में सार्थक रूप से बढ़ोतरी हुई, यह योग अभ्यास की उपादेयता को प्रमाणित करता है। साथ ही यह दर्शाता है कि आधुनिक तकनीकी शिक्षा के लिए भी विद्यार्थियों को योग का अभ्यास करना चाहिए, जिससे कि वे सहज रूप से अपनी क्षमता अनुसार ज्ञान की बातों को याद रख सकें अन्यथा विस्मृति होने की संभावनाएँ प्रबल रहती हैं।
शब्द कुंजी – योगअभ्यास, स्मरण शक्ति, तकनीकी शिक्षा।

प्रस्तावना – योग एक ऐसी प्रणाली है, जिसके माध्यम से पूरे शरीर को लयबद्ध किया जाता है। श्वसन तंत्र, तंत्रिका तंत्र, स्नायु तंत्र तथा पाचन तंत्र को एक साथ साधने का यह एक अद्वितीय तरीका है। सदियों से भारत में योग की परंपरा रही है। उसके उपरांत भी कई बार इसकी वैज्ञानिक और प्रामाणिक उपादेयता पर शक किया जाता है।आधुनिक जीवन शैली में, विशेषकर उच्च शिक्षित वर्ग के द्वारा, इसे संदेह की दृष्टि से देखा जाता है और इसके योगदान पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया जाता है।

इस शोध कार्य के द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया कि शीतली, भ्रामरी,भस्त्रिका तथा अनुलोम विलोम प्राणायाम के नियमित अभ्यास से उच्च शिक्षा अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति पर क्या और कितना प्रभाव पड़ता है। यह प्रमाणिकता के साथ वैज्ञानिक रीति से मापा गया, जिससे कि परिणाम काल्पनिक या अनुमानित न होकर सटीक हों।

पूर्ववर्ती शोध कार्य– थुपकुला लिंगा मूर्ति (2025)योग के द्वारा व्यक्ति में समायोजन क्षमता बढ़ती है उसमें विवेकशीलता की वृद्धि होती है। वह विभिन्न शैक्षणिक तथा खेलकूद से संबंधित गतिविधियों में बेहतर तरीके से भाग लेने के लिए तैयार होता है। योग के द्वारा मूलभूत ज्ञान प्रदान किया जाता है जो की जीवन में कार्य क्षमता बढ़ाने तथा आनंद लेना सिखाता है। रंजना देवी और मुदित राठौर (2018) कॉलेज में डिग्री अर्जितकरना ही काफी नहीं है। भौतिक और भावनात्मक रूप से भी विकास होना बहुत ही जरूरी है। विद्यार्थियों में यह विकास तभी संभव है जबकि वे चिंतासे ऊपर उठकर आत्मनिरीक्षण करें तथा आत्म विश्वास बढ़े। उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास योग के द्वारा संभव है जो कि उन्हें समेकित रूप से तैयार करता है।

रुचि दोषी और डॉ. अनुराग मेहता (2017) तकनीकी उन्नयन के साथ ही क्लाउड पर विभिन्न सूचनाओं का संकलन किया जाने लगा है। विद्यार्थियों के द्वारा भी इसका उपयोग किया जा रहा है किंतु आवश्यकता इस बात की है कि तकनीकी का विवेकपूर्ण उपयोग किया जावे अन्यथा यह स्मरण शक्ति के हास का भी कारण बन सकता है। विद्यार्थियों को विभिन्न तकनीकी के साथ–साथ अपनी विवेकशीलता को भी बनाए रखना जरूरी है तभी वह अपनी क्षमता के अनुसार उपलब्धियां अर्जित कर सकते हैं।

एल.ए. कॉनबॉय, और अन्य (2013)योग अभ्यास पर किए गए शोध कार्यों की भी कई सीमाएं देखने को मिली है। इसका कारण बहुत ही छोटे आकार के नमूने पर अध्ययन करना तथा सांख्यिकीय स्पष्टता नहीं होना प्रमुख है किंतु फिर भी अधिकांश शोध कार्य इस ओर इशारा करते हैं कि लगभग 12 सप्ताह के योग कार्यक्रम से छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है जिससे कि उनके तनाव और अनिद्रा में कमी आती है तथा शैक्षणिक प्रदर्शन सुधरता है।

अमित कौट्सऔरनीलम शर्मा (2009) एक व्यवस्थित शोध अध्ययन किया गया जिसके अंतर्गत 800 किशोर छात्रों को 7 सप्ताह तक योग आसन, प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास करवाया गया। इससे यह देखने को मिला कि योगाभ्यास करने वाले इन छात्रों के तनाव में काफी कमी आई जिसका सुपरिणाम उनके शैक्षणिक प्रदर्शन में देखा गया। विद्यार्थियों की ग्रहणशीलता में सार्थक सुधार आया।

वैलेरैंड, आर. जे., और अन्य (1992) शोध से यह स्पष्ट हुआ कि विद्यार्थियों के शैक्षणिक स्तर में सुधार लाने के लिए उन्हें प्रेरित करना बहुत जरूरी है और प्रेरणा के स्तर को ऊंचा बनाए रखने के लिए तथा उनके प्रदर्शन

को निखारने के लिए उन्हें तनाव मुक्त वातावरण देना बेहद आवश्यक है। खेलकूद तथा योग के माध्यम से इस प्रकार का वातावरण सृजित करना करने में सहायता मिलती है।

शोध परिकल्पना:

1. योग अभ्यास का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की पहचान स्मरण शक्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. योग अभ्यास का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की कार्यशील स्मरण शक्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध कार्य का विश्लेषण– उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे इंजीनियरिंग तथा फार्मेसी संकाय में अध्ययनरत 20–20 विद्यार्थियों का यादृछिक रूप से चयन किया गया तथा उन्हें योग का तीन माह तक अभ्यास करवाया गया जिसके अंतर्गत शीतली प्राणायाम,भ्रामरी प्राणायाम,भस्त्रिका प्राणायाम तथा अनुलोम विलोम प्राणायाम करवाया गया।

चार्ट 1

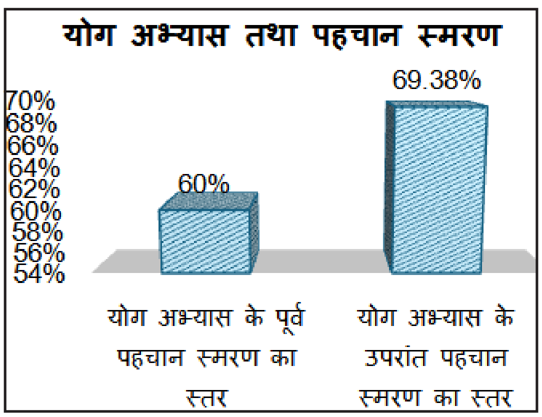

इस अभ्यास करवाने से पूर्व इन चयनित विद्यार्थियों की पहचान स्मरण शक्ति को मापने हेतु 20 प्रश्नों पर आधारित एक प्रश्नावली का प्रयोग किया गया जिसमें प्रत्येक प्रश्न के लिए तीन विकल्प दिए गए जिसके अंतर्गत बिल्कुल भी पहचान नहीं कर पाने पर शून्य अंक अंश: पहचान करने पर एक अंक तथा पूर्णतया पहचान कर लेने पर दो अंक दिए गए। इस प्रकार शून्य से बीस अंकों पर आधारित इस मापनी का प्रयोग करते हुए पहचान स्मरण शक्ति को मापा गया।

योग अभ्यास करने के उपरांत 3माह पश्चात पुन: इस मापनी का प्रयोग करते हुए विद्यार्थियों की पहचानने की स्मरण शक्ति को मापा गया। शोध के आंकड़े दर्शाते हैं कि योग अभ्यास के पूर्व विद्यार्थियों की औसत पहचान की स्मरण शक्ति 50% थी जबकि तीन माह योग अभ्यास के उपरांत यह बढ़कर 69.38% प्रतिशत हो गई।

तालिका 1– योग अभ्यास का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की पहचान स्मरण शक्ति पर प्रभाव सार्थकता

पहचान स्मरण का स्तर	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी	पी
योग अभ्यास के पूर्व	40	12	2.5	11.95	0.001
योग अभ्यास के उपरांत	40	13.88	2		

युग्मक टी परीक्षण बताता है कि टी का आकलित मान 11.95 है जो की तालिका मान 1.96से कहीं अधिक है इस आधार पर कहा जा सकता है कि योग का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की पहचान स्मरण शक्ति बढ़ाने में सार्थक योगदान होता है एवं इस आधार पर पहली परिकल्पना को निरस्त एवं अस्वीकार किया गया।

योग अभ्यास करवाने से पूर्व इन चयनित विद्यार्थियों की कार्यशील स्मरण शक्ति को मापने हेतु 20 प्रश्नों पर आधारित एक प्रश्नावली का प्रयोग किया गया जिसमें प्रत्येक प्रश्न के लिए तीन विकल्प दिए गए जिसके अंतर्गत बिल्कुल भी पहचान नहीं कर पाने पर शून्य अंक अंश: पहचान करने पर एक अंक तथा पूर्णतया पहचान कर लेने पर दो अंक दिए गए। इस प्रकार शून्य से बीस अंकों पर आधारित इस मापनी का प्रयोग करते हुए कार्यशील स्मरण शक्ति को मापा गया।

योग अभ्यास करने के उपरांत 3 माह पश्चात पुन: इस मापनी का प्रयोग करते हुए विद्यार्थियों की कार्यशील स्मरण शक्ति को मापा गया। शोध के आंकड़े दर्शाते हैं कि योग अभ्यास के पूर्व विद्यार्थियों की औसत कार्यशील स्मरण शक्ति 54%थी जबकि तीन माह योग अभ्यास के उपरांत यह बढ़कर 63.88% प्रतिशत हो गई।

चार्ट 2

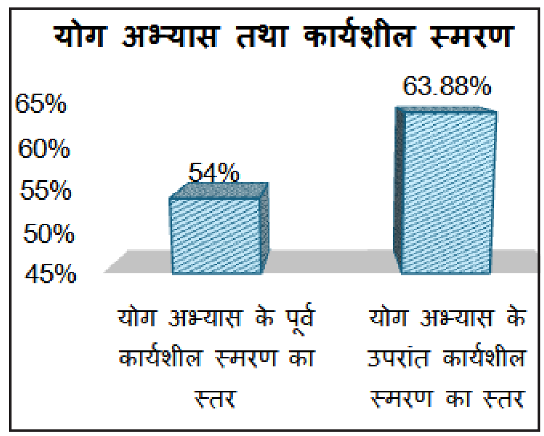

तालिका 2– योग अभ्यास का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की कार्यशील स्मरण शक्ति परप्रभाव सार्थकता

कार्यशील स्मरण का स्तर	संख्या	माध्य	मानक विचलन	टी	पी
योग अभ्यास के पूर्व	40	10.80	1.83	14.02	0.001
योग अभ्यास के उपरांत	40	12.18	1.80		

युग्मक टी परीक्षण बताता है कि टी का आकलित मान 14.02 है जो की तालिका मान 1.96 से कहीं अधिक है इस आधार पर कहा जा सकता है कि योग का उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे विद्यार्थियों की कार्यशील स्मरण शक्ति बढ़ाने में सार्थक योगदान होता है एवं इस आधार पर दूसरी परिकल्पना को निरस्त एवं अस्वीकार किया गया।

शोध निष्कर्ष तथा अनुशंसाएँ– योग अभ्यास का विद्यार्थियों के द्वारा याद करने के उपरांत कुछ भी पुन: पहचानने की शक्ति बढ़ाने में सार्थक योगदान रहता है अत: नियमितयोग अभ्यास उच्च तकनीकी शिक्षा अर्जित कर रहे इंजीनियरिंग व फार्मेसी के विद्यार्थियों को अवश्य ही करना चाहिए। इसके लिए महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में समुचित प्रयास किए जाने चाहिए।

जहां तक कार्यशील स्मरण शक्ति का प्रश्न है तो विद्यार्थियों द्वारा किसी चीज को समझ लेने के उपरांत उसे पुन: सही रूप से जहां भी आवश्यकता

हो उसके अनुसार क्रियान्वित करने की स्मृति रखना और उसे सही रूप से निष्पादित करना बहुत ही जरूरी है। इस क्षमता और योग्यता के बारे में भी शोध से यह प्रमाणित हुआ है कि योग से इसमें सार्थक वृद्धि होती है। अतः कार्यशील स्मरण शक्ति में वृद्धि के लिए भी इंजीनियरिंग व फार्मेसी के विद्यार्थियों को योग का सरल अभ्यास करवाना चाहिए। शीतली, भ्रामरी, भस्त्रिका और अनुलोम विलोम प्राणायाम जो की बेहद सहज रूप से करवाए जा सकते हैं जिसका की कोई खर्च भी नहीं आता, इन्हें करवाने में विलंब नहीं करना श्रेष्ठ है और यही विद्यार्थियों के दीर्घकालिक हित में है। विश्वविद्यालयों को इसके लिए संबद्ध महाविद्यालयों को भी निर्देशित अवश्य किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. थुपकुला लिंगा मूर्ति (2025) माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में योग अभ्यास का शैक्षणिक प्रदर्शन पर प्रभाव। EPRA इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड डेवलपमेंट (IJRD), 10(7), पृ. 1-4.
2. रंजना देवी और मुदित राठौर (2018) शैक्षिक उपलब्धि पर योग अभ्यासों का प्रभाव: समीक्षाओं का एक संक्षिप्त सारांश, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ योगिक, ह्यूमन मूवमेंट एंड स्पोर्ट्स साइंसेज, वॉल्यूम 3(2), पृ. 369-373।
3. रुचि दोषी और डॉ. अनुराग मेहता (2017) क्लाउड लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम (सीएलएमएस) को अपनाकर उच्च शिक्षा को रूपांतरित करने का तरीका, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ टेक्नोलॉजी रिसर्च एंड मैनेजमेंट,खंड 4, संख्या 9, पृष्ठ 1-10।
4. एल.ए. कॉनबॉय, जे.जे. नोगल, जे.एल. फ्रे, आर.एस. कुदेसिया, और एस.बी.एस. खालसा (2013) 'हाई स्कूल योग कार्यक्रम का गुणात्मक मूल्यांकन: व्यवहार्यता और कथित लाभ', एक्सप्लोर, खंड 9, संख्या 3, पृष्ठ 171-180।
5. अमित कौट्स, नीलम शर्मा (2009) तनाव के संदर्भ में योग का शैक्षणिक प्रदर्शन पर प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ योग, खंड 2(1), जनवरी-जून, पृष्ठ 39-43।
6. वैलेरैंड, आर. जे., पेलेटियर, एल. जी., ब्लेस, एम. आर., ब्रियर, एन. एम., सेनेकल, सी., और वैलियर्स, ई. एफ. (1992) अकादमिक प्रेरणा मापनीरू शिक्षा में आंतरिक प्रेरणा, बाह्य प्रेरणा तथा अमोटिवेशन (प्रेरणा की कमी) को मापने का एक उपकरण। एजुकेशनल एंड साइकोलॉजिकल मेजरमेंट, 52(4), पृ. 1003-1017।

****

डिजिटल युग के वैवाहिक सम्बंधों में संवादहीनता और अलगाव : मोहन राकेश के सन्दर्भ में

गीता कुमारी* डॉ.(प्रो.) अनुपमा सक्सेना**

* शोधार्थी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.) भारत
** प्राचार्य, खंडेला महाविद्यालय, सीकर (राज.) भारत

शोध सारांश – यह शोध डिजिटल युग में स्त्री–पुरुष और उनके वैवाहिक सम्बंधों पर दृष्टि डालता है। इसमें इस विषय पर अध्ययन किया जाएगा कि किस प्रकार डिजिटल युग के सम्बंधों में संवादहीनता और अलगाव स्त्री–पुरुष के मध्य खाई उत्पन्न कर रहे है। वर्तमान युग में विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, पीढ़ीदर विचारगत भिन्नता, बेरोजगार युवा पीढ़ी,पश्चिमीकरण, उपभोक्तावादी मान्यताएँ ,आकर्षक और चकाचौंध रिश्तें इत्यादि कारण स्त्री– पुरुष सम्बंधों में अलगाव और खालीपन भरने में अपने–अपने स्तर पर योगदान दे रहे है।भारतीय विवाह संस्था सामाजिक ढांचे को संतुलित करने के लिए मजबूत आधार रही है। रिश्तों की बुनियाद इस संस्था के समाजीकरण पर ही निर्भर रही है लेकिन वर्तमान में इस विवाह संस्था पर कहीं न कहीं प्रश्नचिन्ह लग रहे है। आज के दौर में सोशल मीडिया के माध्यम से वैवाहिक रिश्तें बन रहे है और बिगड़ रहे है। जिससे दो लोगों के मध्य संवाद अंतराल और अलगाव भी बढ़ रहा है। चूंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है और समाज में घटित घटनाएँ साहित्य का हिस्सा वैसे ही बनती है जैसे समाज में वह मौजूद होती है इसलिए साहित्य का प्रभाव समाज के प्रत्येक पक्ष पर पड़ता है। हिंदी साहित्य का प्रारंभिक आधार आदर्शवादी पक्ष को केंद्र में रख कर आगे बढ़ा लेकिन समयानुसार उसी साहित्य ने आदर्शवादी पक्ष में कई कमियां उजागर की और समाज के यथार्थवादी पक्ष को पाठक के समक्ष लाना उचित समझा। इस आदर्शवादी और यथार्थवादी पक्ष का सबसे ज्यादा प्रभाव स्त्री–पुरुष सम्बंधों के वैवाहिक जीवन पर पर पड़ा।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य में आधुनिक मानव के सम्बंधों की सूक्ष्मता उभर कर सामने आती है।यह सूक्ष्मता कथाकार मोहन राकेश के साहित्य में पाठक के समक्ष आती है। मोहन राकेश के साहित्य में स्त्री हो या पुरुष सभी पूर्ण की छटपटाहट हेतु नजर आते है। इनके साहित्य में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की विविध मनोवैज्ञानिक स्थितियां चित्रित हुई हैं। इनके पात्र एक रिक्तता का अनुभव करते है और पूर्ण प्राप्ति की ओर देखते है, जो कहीं न कही वर्तमान डिजिटल युग में भी वही रिक्तता दृष्टिगत होती है। मोहन राकेश के पात्रों के मध्य संवाद–अंतराल और अलगाव अत्यधिक है वहीं 21वी सदी के तीसरे दशक में आधुनिक रिश्तों की बुनवाट मोहन राकेश के कथा साहित्य के पात्रों के समान ही नजर आ रही है क्योंकि यहां भी संवाद–अंतराल और अलगाव अत्यधिक है। जिस प्रकार से आज डिजिटल युग में रिश्तें भावनात्मक कम और सांकेतिक ज्यादा हो गए है, वहीं राकेश जी के समकालीन साहित्य में भी रिश्तें भावनात्मक होते हुए भी सांकेतिक ही नजर आते हैं। एक तरफ स्त्री पात्र घर से बाहर निकलने और आत्मनिर्भर बनने की दौड़ में थी वही पुरुष उसी दौड़ में रिश्तों के बुनवाट की नई परिभाषा देने में लगे हुए थे। इस प्रकार उस समय के वैवाहिक जीवन में जो अलगाव था वो कहीं न कहीं आज के डिजिटल युग ने ओर ज्यादा बढ़ावा देने का कार्य किया है। प्रस्तुत शोध में वर्तमान डिजिटल युग के वैवाहिक सम्बन्धों को मोहन राकेश के साहित्य के संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होगा कि मोहन राकेश द्वारा चित्रित समस्याएँ आज के डिजिटल युग में ओर भी अधिक प्रासंगिक हो गई हैं।

शब्द कुंजी – डिजिटल, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, आत्मनिर्भरता, समस्याएँ, रिक्तता, भावनात्मक दूरी, अलगाव, संवादहीनता, वैवाहिक विघटन, पूर्ण–अपूर्ण, संस्कार, आदर्शवादी–यथार्थवादी, लॉन्ग डिस्टेंस, वर्क फ्रॉम होम।

प्रस्तावना – भारतीय समाज में विवाह संस्था सामाजीकरण की महत्वपूर्ण आधार रही है। यह न केवल सामाजिक बल्कि भावनात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक सम्बंधों की भी आधार रही है। प्राचीन भारत अर्थात् पूर्व वैदिक,वैदिक, मध्यकालीन और आधुनिक काल में स्त्री–पुरुष सम्बंधों ने सृष्टि के सृजनात्मकता को नया आयाम दिया। भारतीय समाज में विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, बल्कि एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक और नैतिक संस्था थी। इसका मुख्य उद्देश्य धर्म की रक्षा, परिवार की निरंतरता और पितृ ऋण से मुक्ति प्राप्त करना था। इसे सोलह संस्कारों में से एक प्रमुख संस्कार माना गया है। यह संस्कार अपने कर्तव्यों और अधिकारों का चक्र गतिमान रखते हुए नई पीढ़ी को जिम्मेदारी देने का कार्य करता था।

समय के साथ संस्कारों में विचारगत भिन्नता, आधुनिकीकरण, शहरीकरण, डिजिटलीकरण के कारण परिवर्तन शुरू हुए और समाज का वैवाहिक ढांचा बदलने लगा।हम देखते है कि ये बदलता हुआ ढांचा समाज, व्यक्ति और अन्य संस्थाओं के लिए एक चुनौती भरा रहा है। विवाह कभी परिवार और समाज की नींव हुआ करता था लेकिन वर्तमान डिजिटल युग में जीवनसाथी चुनने के बदलते मापदंड, विवाह की उम्र में बढ़ोतरी, महिला सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता, एकल परिवार का प्रचलन,लिव–इन रिलेशनशिप,तलाक और पुनर्विवाह के प्रति बदलता दृष्टिकोण इत्यादि कारण है जो स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में बदलाव ला रहे हैं। रिश्तों के प्रति बढ़ता अविश्वास, अकेलापन, घुटन, हिंसा आदि विवाह की नींव को कमजोर कर

रहे हैं।

जब बात साहित्य की होती है तो साहित्य यानी स-हित की भावना से परिपूर्ण,जहाँ भावना को तर्क से ज्यादा महत्व दिया जाता है।जहाँ रचनात्मकता और कलात्मकता मनुष्य की संवेदनाओं पर आधारित होती है। हिन्दी साहित्य के गद्य और पद्य दोनों पक्षों में मनुष्य की संवेदनाओं और उनके सम्बंधों को स्थान दिया गया लेकिन पाठक के मन पर गद्य पक्ष ने सबसे ज्यादा प्रभाव डाला य क्योंकि गद्य में कहानी, उपन्यास,नाटक, आत्मकथा इत्यादि लिखें गए जो पाठक आसानी से समझ पाया और मनुष्य ने एक पात्र के रूप में उस गद्य या कथा साहित्य में अपने आपको पाया। हिंदी साहित्य में मानवीय सम्बंधों का व्यापक चित्रण प्रेमचंद के साहित्य से शुरू होता है जो आदर्शवादी होते हुए आदर्शोन्मुख यथार्थवादी और फिर समकालीन साहित्य में या नवलेखन दौर में यथार्थवादी,व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी बन कर उभरता है।

प्रेमचंद ने 'बड़े घर के बेटी' से लेकर 'पूस की एक रात' और 'कफन' तक मानवीय सम्बंधों को और विशेष रूप से वैवाहिक सम्बंधों की स्थिति को जिस प्रकार प्रकट किया है वो वर्तमान समाज में भी अपना स्थान रखती है। आज हम चांद तक जा रहे है, डिजिटलीकरण में मनुष्य का कार्य रोबोट कर रहे है लेकिन सम्बंधों का गणित आज भी वही है। आज भी प्रेमचंद की कहानी 'बड़े घर की बेटी' में जिस प्रकार रिश्तों की बुनावट है वो हर घर में मौजूद मिलेगी, आज भी 'कफन' कहानी की तरह आर्थिक तंगी परिवार के अस्वास्थ्य का कारण बनती है। आज भी 'गोदान' उपन्यास की तरह किसान परिवार मजदूर बनने पर मजबूर है। लेकिन प्रेमचंद और प्रेमचंदयुगीन साहित्य में ये समस्या आदर्शवादी रूप में विद्यमान है जहां सम्बंधों को बचाने का प्रयत्न किया जाता है।

यह समस्या नवलेखन काल में विशेष रूप से मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर के साहित्य में मुखर से उभरकर सामने आती है। इन्होंने मानवीय सम्बंधों में जो समस्या है उसे यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। नवलेखन का दौर समाज में आदर्श प्रस्तुत न करके व्यक्ति और उसके सम्बंधों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। इस दौर में व्यक्ति के अस्तित्व को महत्व दिया गया है न कि सामाजिक, आर्थिक और नैतिक धारणाओं को। राजेंद्र यादव ने इस पर अपनी टिप्पणी की है कि षविवाह यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता को समाप्त कर दे, तो वह केवल सामाजिक अनुबंध रह जाता है, प्रेम नहीं।ष इसके अतिरिक्त कमलेश्वर कहते है कि षरिश्ते केवल सामाजिक व्यवस्था से नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं से जीवित रहते हैं। वही मन्नू भंडारी और प्रभा खेतान ने भी इस विषय पर अपने-अपने विचार प्रकट किये है। मन्नू भंडारी के शब्दों में 'पति-पत्नी का संबंध विश्वास और संवाद पर टिका होता हैय इसके अभाव में परिवार बिखर जाता है।' वही प्रभा खेतान का संपूर्ण साहित्य स्त्री स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता पर लिखा गया है। वो लिखती है कि षस्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता उसके आत्मसम्मान की पहली शर्त है। इस प्रकार हम पाते है कि मोहन राकेश के समकालीन लेखकों ने भी स्त्री-पुरुष सम्बंधों और वैवाहिक सम्बंधों में उत्पन्न संवादहीनता और अलगाव को सूक्ष्म तरीके से पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। यही समस्या वर्तमान डिजिटल युग का हिस्सा जो कि दूसरों तरीकों में आज भी विद्यमान है। सोशल मीडिया का बढ़ता हस्तक्षेप और दुरूपयोग रिश्तों की खाई को गहरा करता था रहा है।

मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के पात्रों में संवादहीनता और अलगाव स्त्री-पुरुष संबंधों की समस्या के रूप में उभरकर सामने आता हैं। यह नाटक आधुनिक जीवन में प्रेम, महत्वाकांक्षा और मानवीय संबंधों के द्वंद्व को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है। कालिदास और मल्लिका एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, लेकिन समय के साथ उनके बीच संवाद समाप्त होने लगता है। कालिदास उज्जयिनी जाकर राजाश्रय स्वीकार कर लेते हैं। इसके बाद वे मल्लिका से अपने मन की बात खुलकर नहीं कहते और न ही उसके जीवन की परिस्थितियों को समझने का प्रयास करते हैं। यही संवादहीनता अंततः उनके संबंध को तोड़ देती है। कालिदास मल्लिका से कहते है कि -'मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें तुम सदा उपस्थित रही हो।' यह कथन बताता है कि कालिदास के मन में मल्लिका का स्थान बना रहता है, परंतु उन्होंने यह बात समय रहते उससे साझा नहीं की। उनके बीच भावनात्मक संवाद का अभाव संबंधों में दूरी पैदा करता है। कालिदास की महत्वाकांक्षा उन्हें मल्लिका से दूर ले जाती है। दूसरी ओर मल्लिका परिस्थितियों के कारण एकाकी जीवन जीने को विवश हो जाती है। वर्षों बाद जब कालिदास लौटते हैं, तब तक दोनों के जीवन की दिशा बदल चुकी होती है, जहाँ मल्लिका कालिदास से कहती है कि -

'तुम वह नहीं रहे, जिसे मैं जानती थी।'

यह कथन स्पष्ट करता है कि समय और परिस्थितियों ने दोनों के बीच गहरा मानसिक और भावनात्मक अलगाव पैदा कर दिया है। इस प्रकार हम देखते है कि मोहन राकेश के साहित्य और समाज की समस्याऐं वर्तमान डिजिटल युग में अलग रूप में ज्यों की त्यों मौजूद है। आज के डिजिटल युग में विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म से सामाजिक दूरी कम लेकिन भावनात्मक दूरी में अलगाव आ गया है। ऑरकुट ऐप से लेकर इंस्टग्राम तक दुनिया ने मानवीय सम्बंधों में संवेदनाओं को कम कर दिया। आज की वर्तमान पीढ़ी ने रील्स के इर्द-गिर्द अपनी ऐसी दुनिया बना दी है जो लोगों के मध्य संवाद और अलगाव की खाई उत्पन्न कर रही है। आज की युवा पीढ़ी के पास अपने परिवार तक के लिए समय नहीं रहा है। सोशल मीडिया पर बनते रिश्तें अविश्वास और छल की नींव पर होते है क्योंकि बिना जाने बिना समझे और बिना भौतिक उपस्थिति के रिश्तों में अलगाव पहले से ही मौजूद होता है,जो विवाह के बाद वो और बढ़ जाता है। एक व्यक्ति से बिना संवाद किए अपना जीवन साथी चुनना वर्तमान डिजिटल समाज की भयावह घटना होती जा रही है। जिस प्रकार आए दिन तलाक के मामले या एक-दूसरे से अलग रहने के मामले सुनने को मिलते है उससे आभास होता है कि दाम्पत्य जीवन आज भी संवाद अंतराल के कारण कितनी दूरी बना रहा है।

इसी प्रकार मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' वैवाहिक जीवन की नीरसता और अधूरे रिश्तों कि इच्छा को हमारे समक्ष लाता है जिसका मुख्य कारण सावित्री के द्वारा एक पूर्ण पुरुष की चाह है।

नाटक की मुख्य पात्र सावित्री जिस पुरुष के संपर्क में आती है, उस पुरुष को अपूर्ण ही पाती है। महेन्द्रनाथ और सावित्री के मध्य अलगाव, सावित्री और उसके बच्चों के मध्य संवाद अंतराल, बड़ी लड़की और मनोज के बीच अलगाव ये बताता है कि तात्कालीन पारिवारिक स्थिति को राकेश जी ने बहुत ही सूक्ष्म तरीके से प्रस्तुत किया है। जब बड़ी लड़की घर आती है और कहती है कि 'दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, उतना ही ज्यादा एक-दूसरे से अजनबी महसूस करने लगते हैं।' ये कथन बताता है कि किस प्रकार दाम्पत्य जीवन में संवादहीनता और अलगाव भावनात्मकता को शून्य कर देता है। सावित्री और महेंद्रनाथ के आरोप व कटाक्ष वैवाहिक जीवन में घुटन-सी घोल देते है जहाँ सावित्री कहती है कि 'तुमने मुझे कभी कुछ नहीं

दिया।' वहीं महेंद्रनाथ कहते है कि 'मैं इस घर में सिर्फ एक रबर-स्टैंप हूँ।' एक दाम्पत्य जीवन में कितनी भावनात्मक नीरसता है ये इन दोनों कथनों से संपूर्ण नाटक का भाव पाठक के समक्ष आता है। वर्तमान डिजिटल युग के स्त्री-पुरुष के मध्य जो अपूर्णता है वो मोहन राकेश के साहित्य में मुखर रूप से विद्यमान है। वर्तमान में सावित्री की तरह हर कोई पूर्णता की प्राप्ति करना चाहता है चाहे पूर्णता सामाजिक, आर्थिक, नैतिक या फिर भौतिक हो।

वर्तमान सोशल मीडिया ने व्यक्ति के सोचने की क्षमता को इतना कमजोर कर दिया है कि महेंद्रनाथ की तरह वह अपने पारिवारिक जीवन से विमुख रहता है जिससे सम्बंधों में अलगाव मानसिक स्तर तक हो गया है।

इस प्रकार मोहन राकेश के अन्य उपन्यास जैसे-'एक और जिदंगी' में दांपत्य जीवन की विडंबना,'न आने वाला कल' में पति-पत्नी के बीच भावनात्मक दूरी और 'अंतराल' में पति-पत्नी के मध्य रिक्त कोष्ठ की समस्या उभरकर सामने आती है। मोहन राकेश के कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष वैवाहिक संबंधों की सबसे बड़ी त्रासदी संवादहीनता और अलगाव है। उनके पात्र एक ही घर में रहते हुए भी मानसिक, भावनात्मक और वैचारिक स्तर पर एक-दूसरे से कटे हुए दिखाई देते हैं। यह संवादहीनता केवल शब्दों की कमी नहीं, बल्कि विश्वास, आत्मीयता और संवेदनात्मक जुड़ाव के टूटने का संकेत भी है।मोहन राकेश के कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष अपने मन की बात एक-दूसरे से साझा नहीं कर पाते। वे साथ रहते हैं, लेकिन एक-दूसरे की भावनाओं को समझने में असफल रहते हैं।उनके एक उपन्यास का कथन है कि -

'हम दोनों साथ रहते हुए भी जैसे बहुत दूर हो गए थे।'

यह कथन उनके संबंधों में संवाद के अभाव और मानसिक दूरी को व्यक्त करता है। पति-पत्नी की विचार, अपेक्षाएँ और जीवन-दृष्टि अलग-अलग हो जाती हैं। वे एक-दूसरे को समझने के बजाय स्वयं में सिमट जाते हैं। जैसे 'अँधेरे बंद कमरेय में पति-पत्नी के संबंधों में असंतोष, अकेलापन और मानसिक दूरी स्पष्ट दिखाई देती है। मोहन राकेश के पात्र अपने व्यक्तिगत संघर्षों और इच्छाओं में इतने उलझे रहते हैं कि दाम्पत्य संबंधों को समय और संवेदना नहीं दे पाते। इससे संवाद धीरे-धीरे समाप्त हो जाते है। आधुनिक शहरी जीवन, महत्वाकांक्षा और व्यक्तिवाद के कारण पति-पत्नी के बीच निकटता कम होती जाती है। साथ रहने के बावजूद वे भावनात्मक रूप में अकेले रहते हैं। संवादहीनता अंततः अविश्वास, तनाव और अलगाव को जन्म देती है। कई बार यह स्थिति वैवाहिक संबंधों के टूटने या केवल औपचारिक रूप से बने रहने तक पहुँच जाती है। मोहन राकेश के कथा साहित्य में वैवाहिक संबंध प्रेम और विश्वास के बजाय अकेलेपन, असंतोष, संवादहीनता और मानसिक अलगाव से ग्रस्त दिखाई देते हैं। उनका साहित्य यह संकेत देता है कि जब पति-पत्नी के बीच खुला संवाद समाप्त हो जाता है, तब संबंध केवल सामाजिक संस्था बनकर रह जाता है और उसकी आत्मीयता समाप्त होने लगती है।

'अंतराल' में पति पत्नी के मध्य एक रिक्त कोष्ठ है और ये रिक्त कोष्ठ की मांग ही उन्हें इस संबंध की स्वाभाविकता को स्वीकार नहीं करने देती है। इस उपन्यास के संवाद में हमें दो लोगों के मध्य संवाद होते हुए भी एक खालीपन सा दिखता है, 'श्यामा की आंखों में कुछ था...' एक तरह का अपनापा और उसमें मिलीं हुई उदास-सी उत्सुकता। इसके अतिरिक्त उस वातावरण में कुछ था... चारों ओर का खुलापन,भीगापन और शाम का गहराता रंग। वह बाँहें पीछे रखें लता के बारे में सभी कुछ श्यामा को बताने लगा था...कि उस दुबली-सी लड़की को केंद्र में रखकर कैसे उसने आगे के जीवन की कल्पना का ताना-बाना बुना था। 'आकर्षण' से हटकर एक और आकर्षण होता है, व्यक्तित्व का चुंबक आकर्षण, जो शारीरिक आकर्षण से कई अधिक मन को खींचता है। उस आकर्षण का अनुभव मुझे पहली बार उसी को लेकर हुआ था।' इस प्रकार हम पाते हैं कि वर्तमान डिजिटल युग में भी रिश्तें श्यामा और कुमार की तरह उलझनों के शिकार बने हुए हैं। इन रिश्तों में परिवार की इज्जत और समाज का हस्तक्षेप इस प्रकार गूंथा हुआ होता है कि कुछ सम्बंध डोर की भांति उलझकर रह जाते है।कई बार व्यक्ति पारिवारिक और सामाजिक संस्था से इतना बेबस होकर अनचाहे रूप से अपना जीवन किसी अन्य व्यक्ति के साथ जीता है जिससे मानसिक अलगाव और संवादहीनता पहले से तय हो जाती है। यह स्थिति वर्तमान डिजिटल युग में है जहाँ आज भी समाज और परिवार का हस्तक्षेप उतना ही है जो रिक्त कोष्ठ को पहले से तय करके रखते है। वर्तमान युग जो चांद पर पहुंच रहा है, महिलाओं की आत्मनिर्भरता सिद्ध कर रहा है और रोबोटिक्स और कृत्रिम बुद्धिमता से विज्ञान और समाज चला रहा है लेकिन सम्बंधों के अलगाव को भर पाने में सिद्ध साबित नहीं कर पा रहा है।

इसी प्रकार मोहन राकेश के समकालीन साहित्यिक विवेचन को अगर हम देखें तो हम पाते हैं कि उनके समकालीन लेखकों ने भी स्त्री-पुरुष वैवाहिक सम्बंधों की समस्याओं को अति सूक्ष्म रूप से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से महिला लेखिकाओं के साथ-साथ पुरुष लेखकों ने भी इस समस्या को बिना किसी झिझक के लिखा है। राजेंद्र यादव के उपन्यासों और उनकी 'एक दुनिया समानान्तर' कहानी संग्रह में ऐसी बहुत सी कहानियाँ हैं जो वैवाहिक सम्बंधों पर प्रकाश डालती है। उनका उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' जो मन्नू भंडारी के साथ मिलकर लिखा गया। इसमें स्त्री-पुरुष संबंधों की विडंबना और आधुनिक जीवन की भावनात्मक शून्यता को प्रस्तुत किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि प्रेम और विवाह केवल सामाजिक संस्थाएँ नहीं हैं, बल्कि इनके सफल होने के लिए पारस्परिक विश्वास, संवाद और संवेदनशीलता आवश्यक है। उपन्यास की पात्र अमला कैलाश के बारे में सोचती है कि 'नहीं जानती आज जो कुछ हुआ है उसे लेकर क्या लिखूं, किन शब्दों में लिखूं?यह भी नहीं जानती कि जो कुछ हुआ वह मेरे लिए अच्छा हुआ या बुरा बस इतना जानती हूं कि आज का दिन साधारण दिनों से बहुत भिन्न गुजरा और आज का झगड़ा साधारण झगड़ों की तरह समाप्त नहीं होगा। मन बार-बार कहता है कि आज से मेरी और कैलाश की मित्रता का अध्याय सदा के लिए समाप्त हो गया। मन लाख कहें, पर फिर भी एक विश्वास नहीं होता कि कितने वर्षों की मैत्री,घनिष्ठ मैत्री आधे घंटे की बात में समाप्त हो जाएगी....सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। पर क्या सचमुच ही यह जो अघट घट गया, यह केवल आधे घंटे की बात का परिणाम है?'

इसी प्रकार मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' में शकुन और अजय का तलाक बंटी को इस प्रकार झकझोर देता है कि बाल- मनोवैज्ञानिक मन समझ ही नहीं पाता है। अलगाव और बिना संवाद और समझ से बने रिश्तें स्वयं के साथ-साथ बच्चों के बाल मन को भी अत्यधिक प्रभावित करते हैं। वहीं अज्ञेय का उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' आधुनिक हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी उपन्यास है। इसकी मुख्य विषयवस्तु मनुष्य के अकेलेपन, अजनबीपन, अस्तित्व-संकट, स्त्री-पुरुष संबंधों और जीवन-मृत्यु के बोध पर केंद्रित है। इसमें पात्रों के

मध्य संवाद किस प्रकार अजनबीपन दिखाते है कि उसकी एक झलक इस कथन में है कि 'मेरी बीमारी की बात बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं है- मैं जानती हूं कि मैं बीमार हूं। मैं क्या जानबूझकर हुई हूं, या कि तुम्हें सताने के लिए बीमार हुई हूं। और स्वतंत्रता-कौन स्वतंत्र है? कौन चुन सकता है कि वह कैसे रहेगा,या नहीं रहेगा? मैं क्या स्वतंत्र हूं कि बीमार ना रहूं- या की अब बीमार हूं तो क्या इतनी भी स्वतंत्र हो कि मर जाऊं? मैंने चाहा था की अंतिम दिनों में कोई मेरे पास ना हो। लेकिन वह भी क्या मैं सुन सकी? तुम क्या समझती हो कि इससे मुझे तकलीफ नहीं होती कि जो मैं अपनों को भी नहीं दिखाना चाहती उसे देखने के लिए-भगवान ने एक-एक अजनबी भेज दिया?' इस प्रकार अजनबीपन और अलगाव की ये समस्या वर्तमान डिजिटल युग में कितनी भयावह हो चुकी है कि परिवार तक के सम्बंध मन में गांठ से लगने लगते है। लोगों में सोशल मीडिया की वजह से बातचीत की दूरी घटी है, लेकिन भावनात्मक अलगाव, मानसिक दूरी और अजनबीपन ज्यों का त्यों है।

अब हम वर्तमान डिजिटल युग के वैवाहिक सम्बंधों की तुलना मोहन राकेश के साहित्य से करें तो हम निम्न बिंदुओं पर पहुँचते हैं। दोनों युग अपने समय के वैवाहिक सम्बंधों की उदासीनता को उभारते हैं। एक तरफ बातचीत का माध्यम आमने-सामने बैठकर है पर मन से अलगाव है। दुसरी तरफ वर्तमान डिजिटल युग में बातचीत के माध्यम विस्तृत है लेकिन यह विस्तृत रूप व्यक्ति को और ज्यादा विकल्प देता है जिससे रिश्तों में अजनबीपन और संवाद व्यवस्थित रूप से नहीं हो पाता है। एक दूसरे की कमियाँ , सोशल मीडिया की देखा देखी जिदंगी जीने की लालसा, चकाचौंध भरी इच्छाएँ पूर्ण करने की आस, पश्चिमीकरण का प्रभाव इत्यादि है जो आज भी अलगाव को बढ़ावा दे रहा है। वर्तमान युग की युवा पीढ़ी ऑनलाइन व्यस्तता से इतना बेबस है कि वैवाहिक सम्बंध 'वर्क फ्रॉम होम' के इर्द-गिर्दधंसता-सा नजर आ रहा है। संवाद के बहुत माध्यम है, एक-दूसरे से बहुत कम समय की दूरी तय करके मिलने के बहुत साधन है लेकिन लॉन्ग डिस्टेंस भी रिश्तों में अलगाव बना रहा है। सोशल मीडिया के बावजूद बातचीत में कमी यह दर्शाता है कि वर्तमान युवा पीढ़ी विवाह से कितना खौफ रखता है। आज विवाह की उम्र का एक स्तर से ज्यादा बढ़ जाना भी बहुत बड़ी समस्या हो गई है क्योंकि एक समय के बाद प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता, खुलापन, समझदारी, आत्मसम्मान की चाह रखता है जो वर्तमान युवा पीढ़ी में अक्सर कम देखने को मिलती है। एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री Anthony Giddens अपनी पुस्तक 'The Transformation of Intimacy' में लिखते है कि 'आधुनिक संबंध तभी तक टिकते हैं जब तक दोनों पक्षों को उनसे संतुष्टि मिलती रहती है।' इसी संदर्भ में Sherry Turkle का एक कथन है कि - 'हम पहले से अधिक जुड़े हुए हैं, लेकिन पहले से अधिक अकेले भी हैं।' वर्तमान युवा पीढ़ी अपने स्तर पर एक उम्र अकेले बिता देती है और जीना सीख लेती है, इसलिए बाद का जीवन उसका आदतन हो जाता है। इस क्रम में अगर अकेले जिये हुए व्यक्ति का मजबूरन विवाह किया जाता है तो ऐसे संबंध वैवाहिक अलगाव और विघटन को जन्म देते है। वर्तमान युग के प्रेम और विवाह मात्र सामाजिक स्तर पर रहे है, जहाँ व्यक्तिगत भावनाएँ दब-सी जाती है। कुछ वैवाहिक सम्बंध प्रतिष्ठा, दहेज, वंशवृद्धि, किसी व्यक्ति की उपलब्धता एवं आदि के विचार तक सीमित है जो प्रेम न होने पर भी अपनी भविष्य की सुरक्षा हेतु बनाए जाते है। इस प्रकार वर्तमान डिजिटल युग के युवा, उनके रिश्तें, उनमें पनपी भावनाएं उसी प्रकार अलगाव और संवाद अंतराल रखती है जैसे मोहन राकेश के कथा साहित्य में भी बीज रूप में मौजूद थी। फर्क बस इतना है कि आज सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण पाठक के समक्ष अत्यधिक मामलें इस सन्दर्भ में आ रहें हैं। इनमें मात्रात्मक भेद हो सकता है लेकिन गुणात्मक नहीं। इस प्रकार डिजिटल युग में सोशल मीडिया के प्रभाव में अलगाव और विघटन ने वैवाहिक जीवन को बहुत सूक्ष्म रूप से प्रभावित किया है।

मोहन राकेश के स्वयं का जीवन भी इन्हीं कठिनाइयों से गुजरा है जिससे इन्होंने इस मुद्दे को बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया है। इनकी निजी जिदंगी में ऐसे ही अलगाव की समस्या से ग्रसित रही। उनके दो विवाह असफल और तीसरा विवाह जीवन के अंतिम 9 सालों तक सफल रहा। यही समस्या राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी की निजी जीवन में रही कि प्रेम विवाह होने के बावजूद एक समय के बाद उनका तलाक होता है।

इस प्रकार कई बार लेखक जो जीता है उसे बहुत ही सूक्ष्मता से अपने साहित्य में पिरोता ताकि पीढ़ी दर पीढ़ी उस समाज से तुलना आसानी से की जा सके। वर्तमान युग में पीढी की बढ़ती तुलना ने भी एक नई बहस को जन्म दिया है। आज पीढ़ी के मध्य शाब्दिक अंतराल भी आ गया है जहां मिलेनियल और जेन-जी शब्द अपने-अपने स्तर पर बहुत प्रचलन में है। सन् 1988 से 1997 तक की पीढ़ी मिलेनियल और सन् 1998 से 2010 की पीढ़ी जेन-जी कहलाती है। इनके मध्य विचारों की भिन्नता, विवाह को लेकर इनके ख्याल, शारीरिक नजदीकीयों को लेकर विचार सबमें भिन्नता यह दर्शाती है कि आने वाली पीढ़ी को सोशल मीडिया ने कितना व्यस्त और प्रभावित कर दिया है। किस प्रकार इंस्टाग्राम की रिल्स और फेसबुक की पोस्ट इनके दिनचर्या का इतना बड़ा हिस्सा बन गया है कि एक कमरे का कोना इनका अपना होना माना जाने लगा है । अंत: वर्तमान डिजिटल व्यस्तता ने विवाह के साथ-साथ मन की स्थिति में भी अलगाव पैदा कर दिया है।

निष्कर्ष - डिजिटल युग ने संचार के साधनों को व्यापक बनाया है, किन्तु वैवाहिक संबंधों में भावनात्मक संवाद को सुदृढ़ करने में यह सदैव सफल नहीं रहा है। तकनीकी निकटता के बावजूद पति-पत्नी के मध्य मानसिक दूरी और संवादहीनता की समस्या बढ़ती दिखाई देती है। मोहन राकेश के कथा साहित्य में चित्रित दांपत्य संबंधों की जटिलताएँ आज के समय में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। उनके पात्र जिस अकेलेपन, असंतोष और भावनात्मक रिक्तता का अनुभव करते हैं, वही स्थिति आज डिजिटल युग के अनेक वैवाहिक संबंधों में दिखाई देती है। आज भी वो भावनात्मक दूरी रिश्तों में कड़वापन घोलती है जहां शारीरिक नजदीकी होने के बावजूद मानसिक नहीं है। आज अपनी पसंद, समझदारी युक्त तथा लिव-इन रिलेशनशिप वाले रिश्ते भी मन को संतुष नहीं कर पा रहे है। प्रत्येक व्यक्ति की एक इच्छा होती है कि उसका साथी साथ रहने से परे उसको समझ सके एक-दूसरे की आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थितियों को समझ सके ,लेकिन परिवारिक असंतोष और स्वयं की आदतें एक-दूसरे के रिश्तों को अलगाव के कगार पर ला रहे हैं । इस प्रकार मोहन राकेश का साहित्य समकालीन वैवाहिक जीवन की समस्याओं को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध होता है। उस साहित्य के आधार पर इस शोध को प्रमुखता से वर्तमान युग की वैवाहिक संबंधों को आंका गया है जो दो युग की एक कहानी पाठक के सामने रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

प्राथमिक स्रोत:-

1. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, राजपाल एंड सन्स , कश्मीरी गेट , दिल्ली–6
2. अंधेरे बंद कमरे – मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. , 1–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली
3. न आने वाला कल – मोहन राकेश, राजपाल एंड सन्स , कश्मीरी गेट, दिल्ली–6
4. एक और जिंदगी – मोहन राकेश, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट , दिल्ली–6
5. अंतराल – मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली
6. आधे–अधूरे – मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी –17 , जगतपुरी, दिल्ली
7. मोहन राकेश की डायरी – राजपाल एंड सन्स , कश्मीरी गेट , दिल्ली–6
8. एक इंच मुस्कान राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी, राजपाल एंड सन्स , कश्मीरी गेट , दिल्ली–6
9. आपका बंटी – मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी –17 , जगतपुरी, दिल्ली
10. अज्ञेय – अपने–अपने अजनबी, वाणी प्रकाशन ग्रुप, दरियागंज ,नई दिल्ली
11. मोहन राकेश : संपूर्ण कहानियाँ

द्वितीयक स्रोत:-

1. मोहन राकेश: ' व्यक्तित्व और कृतित्व' – डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
2. नामवर सिंह – कहानी : नई कहानी
3. रामदरश मिश्र – हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान
4. डॉ.नागेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास
5. मधुरेश – नई कहानी का विकास
6. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास
7. Anthony Giddens – The Transformation of Intimacy.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

शहीद करतार सिंह सराभा: गदर आंदोलन के महानायक और भगत सिंह के वैचारिक गुरु

डॉ. अमित कुमार ताम्रकार*

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) PMCoE स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – यह शोध पत्र बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक में भारत और विदेशों (विशेषकर उत्तरी अमेरिका) में पनपे क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के संदर्भ में शहीद करतार सिंह सराभा के जीवन और उनके युगांतरकारी योगदान का मूल्यांकन करता है।बीसवीं सदी के आरंभिक दशक में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने एक नई करवट ली, जहाँ सशस्त्र क्रांति के माध्यम से ब्रिटिश हुकूमत को उखाड़ फेंकने का संकल्प लिया गया। इस क्रांतिकारी चेतना को वैश्विक धरातल पर संगठित करने का श्रेय श्गदर आंदोलनश् को जाता है। इस आंदोलन के सबसे जाज्वल्यमान नक्षत्र करतार सिंह सराभा थे। सराभा ने न केवल 'गदर' पत्रिका के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता के क्रूर स्वरूप को उजागर किया, बल्कि प्रथम विश्व युद्ध की परिस्थितियों का लाभ उठाकर भारत में एक व्यापक सैन्य विद्रोह (1915 ई.) की रूपरेखा तैयार की। इस पत्र में उनके प्रारंभिक जीवन, वैचारिक रूपांतरण, संगठनात्मक कौशल, लाहौर षड्यंत्र केस और उनकी शहादत के दूरगामी राजनैतिक व सामाजिक प्रभावों जैसे भगत सिंह की क्रांतिकारी चेतना के निर्माण का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। 24 मई 1896 को लुधियाना के सराभा गाँव में जन्मे इस युवा ने मात्र 19 वर्ष की आयु में 16 नवंबर 1915 को लाहौर सेंट्रल जेल में हंसते-हंसते फांसी के फंदे को चूम लिया। खुदीराम बोस के बाद वे भारत के सबसे कम उम्र के शहीदों में से एक हैं। उनका जीवन-वृत्त लघु अवश्य था, परंतु उसका ऐतिहासिक प्रभाव अत्यंत व्यापक और दूरगामी रहा।

शब्द कुंजी –करतार सिंह सराभा, गदर आंदोलन, गदर पत्रिका, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद, लाहौर षड्यंत्र केस, निर्भीक राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना – मात्र 19 वर्ष की आयु में, जब युवा अपने करियर के बारे में सोचते हैं, सराभा ने एक अंतरराष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया और हंसते-हंसते फांसी के फंदे को चूम लिया।करतार सिंह सराभा और उनके साथी लाला हरदयाल ने गदर आंदोलन को पूरी तरह धार्मिक संकीर्णता से मुक्त रखा था। सराभा का मानना था कि देशभक्ति का कोई एक धर्म नहीं होताय उनका धर्म केवल 'आजादी' था।सराभा उन शुरुआती युवा नेताओं में से थे जिन्होंने यह समझा कि भारत की आजादी की लड़ाई को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लड़ना होगा। उन्होंने अमेरिका और कनाडा में रह रहे प्रवासी भारतीयों को जिस तरह संगठित किया, वह उनके उच्च बौद्धिक स्तर को दर्शाता है।करतार सिंह सराभा की सबसे बड़ी ताकत ब्रिटिश भारतीय सेना के भीतर पैठ बनाना था। सराभा ने केवल आम जनता को नहीं, बल्कि पंजाब और उत्तर भारत की सैन्य छावनियों में जाकर भारतीय सिपाहियों को यह अहसास कराया कि वे औपनिवेशिक सत्ता के औजार बने हुए हैं।

सराभा ने पंजाब के ग्रामीण अंचलों (किसानों) और छावनियों (सैनिकों) के बीच एक मजबूत कड़ी का काम किया। वे स्वयं एक किसान परिवार से थे, इसलिए पंजाब के देहाती इलाकों में उनकी स्वीकार्यता बहुत अधिक थी।सराभा ने जिस तरह 'गदर' पत्रिका के माध्यम से वैचारिक साहित्य को सुदूर गांवों तक पहुँचाया, उसने पंजाब में अंग्रेजी शासन के प्रति जो वैचारिक विरोध पैदा किया, वह गदर आंदोलन के भौतिक रूप से असफल होने के बाद भी कई दशकों तक जीवित रहा।

'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस (1915)' भारत के क्रांतिकारी इतिहास में एक टर्निंग पॉइंट के रूप में स्थापित हुआ। इस मुकदमे में करतार सिंह सराभा मुख्य धुरी थे।सराभा द्वारा अदालत में जज के सामने बिना किसी भय के दोष स्वीकार करना और अपनी सजा को कम करने के किसी भी प्रयास को ठुकरा देना, आने वाली क्रांतिकारी पीढ़ी (विशेषकर भगत सिंह की पीढ़ी) के लिए एक नैतिक आदर्श बन गया। इसने क्रांतिकारियों को जनता की नजरों में 'सहानुभूति का पात्र' नहीं, बल्कि 'नायक' बना दिया। करतार सिंह सराभा एक ऐसे 'प्रेरणापुंज' के रूप में प्रकट हुए जिन्होंने भारतीय युवाओं में राष्ट्रीयता की भावना को चरम पर पहुँचाया।

सरदार भगत सिंह के राजनीतिक और नैतिक गुरु करतार सिंह सराभा थे, और सराभा की शहादत ने ही भारत में 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (HSRA)' की स्थापना की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की थी।आधुनिक इतिहासकार करतार सिंह सराभा को केवल एक 'रोमांचकारी या उग्र विद्रोही' नहीं मानते। वे उन्हें एक दूरदर्शी रणनीतिकार, प्रखर संपादक और असाधारण धर्मनिरपेक्ष नेता के रूप में देखते हैं, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को अंतरराष्ट्रीय आयाम दिया और राष्ट्रवाद को एक नई, समझौताहीन परिभाषा प्रदान की।

प्रारंभिक जीवन, शिक्षा और वैचारिक रूपांतरण– करतार सिंह सराभा का जन्म लुधियाना के सराभा गांव में एक संभ्रांत और उच्च जमींदार जाट परिवार में 'सदन सिंह ग्रेवाल' के वंशज और माता साहिब कौर व पिता मंगल सिंह के घर हुआ था। उनके जन्म के कुछ समय बाद ही पिता मंगल सिंह का असमय देहांत हो गया, जिसके कारण उनका पालन-पोषण उनके

दादा बदन सिंहऔर उनके चाचाओं की देखरेख में हुआ।करतार सिंह सराभा बचपन से ही अत्यधिक महत्वाकांक्षी थे और कम समय में अधिक काम करना चाहते थे। उन्होंने मालवा खालसा हाई स्कूल (लुधियाना) से 7वीं कक्षा पास करने के बाद प्रमाण पत्र में हेरफेर कर उसे 9वीं कक्षा का बना लिया और आर्य स्कूल में दाखिला ले लिया। पकड़े जाने पर उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया।इसके बाद उनके दादा ने उन्हें उड़ीसा में उनके पुलिस अधिकारी चाचा बख्शीश सिंह के पास भेज दिया, जहाँ उन्होंने रेवनशॉ कॉलेज में दाखिला लिया। उड़ीसा (तत्कालीन बंगाल प्रांत) के राजनीतिक और राष्ट्रवादी माहौल तथा आधुनिक अंग्रेजी पुस्तकों के अध्ययन ने उनमें देशप्रेम की भावना जगाई।कटक में शिक्षा ग्रहण करने के दौरान युवा करतार सिंह पर बंगाल के तत्कालीन उग्र राष्ट्रवादी और क्रांतिकारी विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय बंगाल अनुशीलन समिति और युगांतर जैसी संस्थाओं के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियों का मुख्य गढ़ बन चुका था। परंतु ब्रिटिश सरकार बंगाल में किसी भी प्रकार की औपनिवेशिक विरोधी गतिविधि में संलिप्त व्यक्तियों पर अत्यंत क्रूर और कठोर कानूनी कार्यवाही कर रही थी। इस दमनकारी माहौल को देखते हुए करतार सिंह ने भारत छोड़कर अमेरिका जाने की योजना बनाई और एक छात्र के रूप में वर्ष 1911 में उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका रवाना हुए और 1 फरवरी 1913 को वहाँ पहुंचे। आव्रजन अधिकारी द्वारा रोके जाने पर उन्होंने अत्यंत तर्कपूर्ण उत्तर दिया कि यदि उन्हें पढ़ने से रोका गया, तो यह मानवता और दुनिया की तरक्की का नुकसान होगा। इस किशोर उम्र के तर्क से प्रभावित होकर अधिकारी ने उन्हें प्रवेश की अनुमति दी।

अमेरिका-प्रवास और वैचारिक चेतना का उदय- करतार सिंह सराभा ने अमेरिका के प्रतिष्ठित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कलेमें रसायन विज्ञान के छात्र के रूप में प्रवेश लिया। यद्यपि वे पढ़ाई के उद्देश्य से वहां गए थे, परंतु बंगाल में रोपे गए राष्ट्र प्रेम के बीज उनकी चेतना में जीवित थे।उन दिनों अमेरिका और कनाडा में भारतीय प्रवासियों (विशेषकर श्रमिक वर्ग) को भयंकर नस्लीय भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और कानूनी कड़ेपन का सामना करना पड़ता था। अमेरिकी गोरे प्रवासियों को हेय दृष्टि से देखते थे और उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता था। बर्कले विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए सराभा ने महसूस किया कि इस अपमान और भेदभाव का मूल कारण भारतीयों की व्यक्तिगत अक्षमता नहीं, बल्कि उनका 'एक गुलाम देश का नागरिक होना' है। इस अहसास ने उनके भीतर औपनिवेशिक शासन के प्रति आक्रोश को तीव्र कर दिया।अमेरिकी स्वतंत्रता दिवस पर लोगों का उत्साह देखकर उनके मन में भी भारत को स्वतंत्र कराने और अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने की तीव्र इच्छा जागृत हुई।

गदर पार्टी में भूमिका और संगठन कुशलता- उत्तरी अमेरिका में बसे भारतीय प्रवासियों ने समझ लिया था कि जब तक भारत स्वतंत्र नहीं होगा, तब तक विश्व में उन्हें कहीं भी सम्मान नहीं मिल सकता। इस चेतना के फलस्वरूप प्रवासी भारतीयों ने स्वयं को संगठित करना आरंभ किया। वे अपनी सभाओं में ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा भारतीय जनता के आर्थिक शोषण और सरकार के स्वेच्छाचारी स्वरूप को उजागर करने लगे।

इस वैचारिक पृष्ठभूमि में सन 1913 ई. में अमेरिका में 'हिन्दुस्तान गदर पार्टी' (शुरुआत में पैसिफिक कोस्ट हिंदुस्तान एसोसिएशन) की स्थापना हुई। इस आंदोलन को प्रारंभ से ही अत्यंत सुयोग्य और उच्च शिक्षित प्रवासियों का नेतृत्व प्राप्त हुआ, जिनमें प्रमुख थेरूलाला हरदयाल (मुख्य विचारक और मार्गदर्शक)बाबा सोहन सिंह भाकना (अध्यक्ष)पंडित काशीराम इत्यादि।बर्कले विश्वविद्यालय के पंजाबी छात्रावास में रहते हुए करतार सिंह सराभा लाला हरदयाल, भाई परमानंद और ज्वाला सिंह ठट्ठीआ, बाबा सोहन सिंह भाकना जैसे क्रांतिकारियों के संपर्क में आए।लाला हरदयाल सेहुई उनकी भेंटशीघ्र ही एक गहरी वैचारिक और व्यक्तिगत निकटता में बदल गई।अप्रैल 1913 में आस्टोरिया (ओरगन) में लाला हरदयाल द्वारा बुलाई गई सभा में, जब गदर पार्टी के लिए स्वयंसेवकों का आह्वान किया गया, तब करतार सिंह सराभा भर्ती होने वाले सबसे पहले स्वयंसेवक बने। इसी सभा में उन्होंने संकल्प लिया कि वे स्वयं को प्रशंसा का पात्र तभी मानेंगे जब देश को आजाद करा लेंगे।अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता, सांगठनिक क्षमता और निष्ठा के बल पर वे शीघ्र ही गदर पार्टी के मुख्य स्तंभ बन गए।

गदर आंदोलन: करतार सिंह सराभा उस ऐतिहासिक संगठन (हिंदी एसोसिएशन ऑफ द पैसिफिक कोस्ट/गदर पार्टी) के सक्रिय अंग बने, जिसका मुख्य उद्देश्य सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्त कराना और समानता, न्याय व धर्मनिरपेक्षता पर आधारित एक राष्ट्रीय सरकार का गठन करना था।उन्होंने सनफ्रांसिस्को के 'युगान्तर आश्रम' से निकलने वाली 'गदर पत्रिका' की पृष्ठभूमि तैयार करने और पार्टी के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।'गदर' अखबार के सम्पादन में करतार सिंह सराभा की प्रमुख भूमिका थी।1 नवंबर 1913 ई0 को उर्दू में प्रकाशित हुए गदर पार्टी के मुखपत्र 'गदर' (जो अंग्रेजी, उर्दू, हिंदी और पंजाबी में प्रकाशित होता था) के संपादन और मुद्रण का कार्य अपने हाथों में लिया। वे रात-रात भर हाथ से मशीन चलाकर इसे छापते थे।'गदर' पत्रपार्टी का आधार था जिसके सिरे पर 'अंग्रेजी राज का दुश्मन' शब्द लिखे होते थे। पत्र 'गदर' ने एक विज्ञापन छापा: 'भारत में विद्रोह फैलाने के लिए बहादुर सिपाहियों की आवश्यकता है। तनख्वाह- मौत (इनाम- शहादतः पेंशन- आजादी) लड़ाई का मैदान भारत है।' इस पत्रिका ने वैश्विक स्तर पर रह रहे भारतीयों और ब्रिटिश सेना में कार्यरत भारतीय सैनिकों में राष्ट्रवाद की ज्वाला धधकाई। वे इस पत्रिका के प्रकाशन में लगातार सहयोग करते रहे।सैन फ्रांसिस्को के 'युगांतर आश्रम' में जो झंडा फहराया गया था, उसका डिजाइन करतार सिंह सराभा ने ही तैयार किया था। यह झंडा स्वतंत्रता, बंधुत्व और समानता का प्रतीक था।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध वैश्विक जनमत तैयार करने और सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से गदर पार्टी ने सैन फ्रांसिस्को के अतिरिक्त जर्मनी, जापान और अफगानिस्तान में भी अपने कार्यालय स्थापित किए। गदर पार्टी का मानना था कि केवल भाषणों या लेखों से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती इसके लिए सशस्त्र क्रांति अपरिहार्य है। पार्टी ने अपने युवा छात्र सदस्यों को सैन्य प्रशिक्षण देने का निर्णय लिया। करतार सिंह सराभा ने इस दिशा में विशेष रुचि दिखाई और न्यूयॉर्क जाकर हवाई जहाज और पैराशूट बनाने तथा उन्हें संचालित करने का तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त किया, ताकि भविष्य में युद्ध के दौरान इसका रणनीतिक उपयोग किया जा सके।जो उनके दूरदर्शी सैन्य दृष्टिकोण को दर्शाती है।

प्रथम विश्व युद्ध, भारत वापसी (1914 ई.)और 21 फरवरी 1915 की सैन्य क्रांति की योजना- अगस्त 1914 ई. में यूरोप में प्रथम विश्व युद्ध की रणभेरी बज उठी, जब इंग्लैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध शीघ्र ही एशिया और अफ्रीका के औपनिवेशिक क्षेत्रों तक

फैल गया।गदर पार्टी के नीति-निर्धारकों ने इस वैश्विक संकट को भारत की स्वतंत्रता के लिए एक 'स्वर्णिम अवसर' के रूप में देखा।'कामागाटा मारू' जहाज के घटनाक्रम और अन्य माध्यमों से हजारों प्रवासी भारतीय देश को आजाद कराने के संकल्प के साथ भारत लौटना चाहते थे। इसके पीछे मुख्य रणनीतिक कारण यह था कि युद्ध के कारण भारत में तैनात ब्रिटिश सेना के बहुसंख्यक ब्रिटिश और भारतीय सैनिकों को मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ने के लिए यूरोपीय और मध्य-पूर्वी मोर्चों पर भेज दिया गया था। भारत के भीतर सैन्य उपस्थिति न्यूनतम थी।गदर पार्टी ने नारा दिया: 'ब्रिटेन की विपत्ति, भारत का अवसर है।' पार्टी के आह्वान पर अमेरिका और कनाडा से सैकड़ों गदर क्रांतिकारी छोटे-छोटे जत्थों में भारत की ओर रवाना होने लगे। करतार सिंह सराभा भी अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के तीव्र संकल्प के साथ गदर पार्टी के 'अग्रगामी जत्थे' में शामिल हुए और कोलंबो (श्रीलंका) के रास्ते होते हुए भारत पहुंचे।

योजना की रूपरेखा- भारत आकर करतार सिंह सराभा ने रासबिहारी बोस, शचींद्रनाथ सान्याल, पंडित परमानंद और विष्णु गणेश पिंगले के साथ मिलकर कपूरथला के एक मंदिर में ऐतिहासिक सैन्य विद्रोह की रूपरेखा तैयार की।यह योजना ठीक 1857 की क्रांति की तर्ज पर बनाई गई थी। धन के आभाव के कारण राजनैतिक डकेतियों की स्वीकृति दी गई।सराभा केवल योजनाकार नहीं थे, बल्कि वे स्वयं अग्रिम पंक्ति में रहकर साहनेवाल और मन्सूराजैसी साहसिक डकैतियों में शामिल हुए।

सराभा ने अपनी जान जोखिम में डालकर उत्तर भारत की विभिन्न ब्रिटिश-भारतीय सैन्य छावनियों का दौरा किया। उन्होंने वहां तैनात भारतीय सैनिकों से संपर्क कर उन्हें याद दिलाया कि वे अपनी ही मातृभूमि को गुलाम बनाए रखने के लिए अंग्रेजों के औजार न बनें। मेरठ, लाहौर, फिरोजपुर और अंबाला छावनियों के अनेक भारतीय सैनिक और अधिकारी इस विद्रोह में शामिल होने के लिए तैयार हो गए।

रासबिहारी बोस और करतार सिंह सराभा ने गहन विचार-विमर्श के बाद 21 फरवरी 1915 ई. को पूरे उत्तर भारत में एक साथ ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सैन्य विद्रोह (गदर) की तिथि निश्चित की। योजना के अनुसार, भारतीय सैनिक छावनियों में ब्रिटिश अधिकारियों को बंदी बनाकर शस्त्रागारों पर कब्जा करने वाले थे।लगभग 26000 भारतीय सैनिक इस तख्तापलट की योजना में क्रांतिकारियों का साथ देने को तैयार हो चुके थे।

इतने बड़े पैमाने पर बनाई गई गुप्त योजना की असफलता का कारण एक बार फिर आंतरिक विश्वासघात बना। गदर पार्टी में पुलिस का एक जासूस कृपाल सिंह शामिल हो चुका था, जो अंदरूनी बैठकों की सारी जानकारी सीक्रेट सर्विस को दे रहा था।जब क्रांतिकारियों को आभास हुआ कि कृपाल सिंह ने 21 फरवरी की योजना पुलिस तक पहुंचा दी है, तो उन्होंने त्वरित निर्णय लेते हुए विद्रोह की तिथि दो दिन पूर्व अर्थात 19 फरवरी 1915 ई. निश्चित कर दी। दुर्भाग्यवश, मुस्तैद कृपाल सिंह ने इस बदले हुए समय की सूचना भी तुरंत औपनिवेशिक अधिकारियों को दे दी।

विद्रोह का दमन- 19 फरवरी 1915 के पहले ही औपनिवेशिक कुशासन ने सभी संदिग्ध भारतीय रेजिमेंट्स और बागी सैनिकों को छावनियों से निष्कासित कर दिया और उनके हथियारों को जब्त कर लिया। इस प्रकार, भारतीय इतिहास का यह अत्यंत सुनियोजित और व्यापक सैन्य विद्रोह शुरू होने से पहले ही कुचल दिया गया। इसके तुरंत बाद पूरे पंजाब और संयुक्त प्रांत (यूनाइटेड प्रोविंस) में गदर क्रांतिकारियों और उनके समर्थकों की बड़े पैमाने पर धरपकड़ शुरू हो गई।रासबिहारी बोस बनारस और कलकत्ता होते हुए 'ठाकुर सिंह' के छद्म नाम से पीकिंग (चीन) और अंततः जापान सुरक्षित पहुंच गए। (कालांतर में उन्होंने जापान में रहकर ही द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 'आजाद हिंद फौज' के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई)।करतार सिंह सराभा भी अपने दो साथियों के साथ उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत से होते हुए अफगानिस्तान की सीमा तक पहुंच गए थे। वे चाहते तो सुरक्षित देश से बाहर जा सकते थे। परंतु सीमा पर पहुंचकर सराभा की अंतर्रात्मा कचोट उठी। उन्होंने अपने साथियों से कहा कि इस तरह पीठ दिखाकर भागने से बेहतर है कि एक बार फिर पंजाब लौटकर विद्रोह का प्रयास किया जाए।वे वापस पंजाब की ओर लौटे और सरगोधा (अब पाकिस्तान में) में 'जगत सिंह' नामक व्यक्ति के माध्यम से कुछ सैनिकों 2 से मिलने पहुंचे। परंतु तब तक परिस्थितियां पूरी तरह बदल चुकी थीं और चारों ओर मुखबिरों का जाल था। सरगोधा में ब्रिटिश भक्त सैनिकों ने ही उन्हें पहचान लिया और उन्हें पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया।

न्यायिक ढोंग और निर्भीक राष्ट्रवाद- लाहौर सैन्य षड्यंत्र केस के तहत सराभा और उनके साथियों पर ब्रिटिश हुकूमत का तख्ता पलटने का मुकदमा चलाया गया। अदालत के भीतर सराभा का आचरण एक अभियुक्त का नहीं, बल्कि एक विजेता का था।जब सराभा ने अदालत में पूरी योजना का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए देश की स्वतंत्रता के लिए हथियार उठाने की बात कबूली, तो अंग्रेज मैजिस्ट्रेट/जज उनकी कम उम्र और आकर्षण से प्रभावित होकर अचंभित रह गया। जज ने उन्हें अपना बयान बदलने और माफी मांगने का अवसर दिया ताकि उनकी सजा कम की जा सके। परंतु सराभा ने दो टूक शब्दों में इनकार कर दिया और मदनलाल ढींगरा के ऐतिहासिक वक्तव्य को दोहराते हुए ब्रिटिश राज को हिंसा पर आधारित बताया।अंततः जज को अपने फैसले में लिखना पड़ा कि 'यह 61 अभियुक्तों में सबसे महत्वपूर्ण और खतरनाक व्यक्ति है।' जब उन्हें मौत की सजा सुनाई गई, तो उन्होंने अदालत को हंसते हुए 'धन्यवाद' (जींदो) कहा।

मृत्यु पर विजय- करतार सिंह सराभा के दादाजी उनसे लाहौर जेल में मिलने आए। उन्होंने कहा, 'करतार, हमें तो यह भी यकीन नहीं है कि तुम्हारी मृत्यु से देश को कोई लाभ होगा। तुम अपना जीवन क्यों बर्बाद कर रहे हो?' जवाब में, करतार सिंह ने अपने दादाजी को उन रिश्तेदारों की याद दिलाई जो हैजा, प्लेग या अन्य बीमारियों से मर गए थे। 'तो क्या आप चाहते हैं कि आपका पोता किसी बीमारी से मरे? क्या यह मृत्यु उससे हजार गुना बेहतर नहीं है?'उन्होंने सवाल किया, जिससे दादाजी अवाक रह गए।

16 नवंबर 1915 को फांसी के तख्ते पर चढ़ने से ठीक पहले उनका वजन 10 पौंड बढ़ गया था, जो इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने का उनका आनंद मृत्यु के भय से कहीं बड़ा था। उनके अंतिम शब्द थे: 'मैं फांसी को बेहतर मानता हूँ, ताकि पुनः जन्म लेकर फिर फांसी पर लटकाया जाऊँ और यह क्रम तब तक चलता रहे, जब तक भारत स्वतंत्र न हो जाए।' जब लाहौर सेंट्रल जेल में करतार सिंह सराभा को फांसी के फंदे की ओर ले जाया जा रहा था, तब उनके साथी जेल की कोठरियों से आदरपूर्वक ओजस्वी गीत गा रहे थे:

'फख्र है भारत को एक करतार जू जाता है आज।
जगत और पिंगले को भी तू साथ ले जाता है आज।।'

करतार सिंह सराभा का चरित्र: मानवीय एवं नैतिक मूल्य- एक क्रांतिकारी के रूप में सराभा जितने आक्रामक थे, एक मानव के रूप में उतने

ही उच्च चरित्र के धनी और संवेदनशील थे।क्रांति के लिए धन जुटाने (डकैती) के दौरान जब उनके एक साथी ने एक महिला के साथ दुर्व्यवहार किया, तो सराभा ने तुरंत अपनी पिस्तौल साथी पर तान दी और उसे महिला के पैर छूकर माफी मांगने पर विवश किया। जब उस घर की वृद्ध माता ने उनसे इस मार्ग को चुनने का कारण पूछा, तो सराभा की आँखों में आंसू आ गए और उन्होंने कहा, 'माँ, यह मैं अपने लिए नहीं, देश की आजादी के लिए कर रहा हूँ।' यह घटना उनके चरित्र की पवित्रता और क्रांतिकारी शुचिता को रेखांकित करती है।

वैचारिक विरासत और भगत सिंह पर प्रभाव– करतार सिंह सराभा केवल एक सैनिक नहीं थे, बल्कि एक 'समाजवादी क्रांतिकारी' थे। उनका सबसे गहरा और अमिट प्रभाव अमर शहीद सरदार भगत सिंह पर पड़ा।जितेंद्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'अमर शहीद' के अनुसार, भगत सिंह सराभा को अपना सर्वोच्च आदर्श और गुरु मानते थे। वे हमेशा अपनी जेब में करतार सिंह सराभा की एक तस्वीर रखते थे।भगत सिंह हर साल 16 नवंबर को लाहौर के ब्रेडला हॉल में सराभा का शहीदी दिवस बड़े पैमाने पर मनाते थे, जहाँ दुर्गा भाभी ने अपनी उंगली काटकर सराभा के चित्र पर रक्त का तिलक लगाया था।भगत सिंह ने अपने लेख 'बागी करतारसिंह' में सराभा को 'रणचंडी का परम भक्त' और 'विप्लव यज्ञ का पुरोहित' कहा है। वास्तव में, गदर आंदोलन का यही वैचारिक और रणनीतिक विकास आगे चलकर 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' के रूप में फला-फूला।

निष्कर्ष – करतार सिंह सराभा का जीवनवृत्ता मात्र 19 वर्षों का एक संक्षिप्त कालखंड है, परंतु इसकी भव्यता और ऐतिहासिक महत्ता सदियों पर भारी है। वे एक संवेदनशील कवि भी थे, जिनकी कविता की पंक्तियाँ आज भी गूंजती हैं:

'जो कोई पढ़े कि कौन हो तुम, तो कह दो बागी ये नाम अपना।
जुल्म मिटाना हमारा पेशा, गदर का करना ये काम अपना।।'

सराभा केवल राष्ट्रवादी नहीं थे, वे मूलत: एक 'समाजवादी' भी थे, जो वर्गहीन और शोषणमुक्त समाज की कल्पना करते थे।करतार सिंह सराभा का जीवन-वृत्त आधुनिक भारतीय इतिहास के उन स्वर्णिम पृष्ठों में से है, जो यह सिद्ध करते हैं कि राष्ट्रभक्ति उम्र की मोहताज नहीं होती। मात्र 19 वर्ष की आयु में उन्होंने जो सांगठनिक क्षमता, अंतरराष्ट्रीय प्रतिरोधी नेटवर्क और वैचारिक परिपक्वता दिखाई, वह समकालीन विश्व इतिहास में विरले है। यह भारतीय इतिहास की विडंबना रही कि इस महान राष्ट्रनायक को इतिहास की मुख्यधारा की पुस्तकों में वह स्थान नहीं मिल सका जिसके वे हकदार थे। सराभा आज के समाज और युवा पीढ़ी के लिए एक मार्गदर्शक हैं, जो आरामपसंद राजनीति और सतही राष्ट्रवाद के दौर में वास्तविक आत्मोत्सर्ग और वैचारिक प्रतिबद्धता की मांग करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रेस सूचना ब्यूरो, शहीद करतार सिंह सराभा, भारत सरकार, विशेष सेवा एवं फीचर, स्वतंत्रता के नायकों का संघर्ष- 7, वर्ष 2016.
2. माहौर, डॉ. भगवानदास, काकोरी शहीद स्मृति, काकोरी शहीद अर्धशताब्दी समारोह समिति, लखनऊ, 1977.
3. 'सरल' श्रीकृष्ण, क्रांतिकारी कोश (तृतीय खंड), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2012.
4. व्यास, लल्लन प्रसाद, भारत के महान क्रांतिकारी, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ, 1966.
5. चंद्र विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, प्रकाशक ओरिएंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली वर्ष 2016.
6. सरकार सुमित, आधुनिक भारत (1885 -1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2005.
7. शुक्ल, आर.एल., आधुनिक भारत का इतिहास (स्वतंत्रता-प्राप्ति और देश-विभाजन तक) हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, वर्ष 2006.
8. चन्द्र बिपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, क. न. पनिकर, महाजन सुचेता, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली वर्ष 2005.
9. दुबे, सत्यनारायण, इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, इंदौर।
10. निगम, नंदकिशोर, बलिदान (चंद्रशेखर आजाद की रोमांचकारी जीवनी), नया हिंदुस्तान प्रेस, चांदनी चौक, दिल्ली।
11. खुल्लर, के. के., आजादी की मशालें, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
12. सान्याल, जितेंद्रनाथ, अमर शहीद सरदार भगत सिंह।
13. सिंह, गुरमीत, गदर पार्टी के गठन से प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस तक: करतार सिंह सराभा के विशेष संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन, शोध प्रबंध,अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश वर्ष 2022.

****

Rights of Trees and Forests: A Commerce Perspective on Natural Capital, Environmental Governance, and Global Biodiversity Goals

Anant Kumar Garg*

***Independent Researcher, UGC NET Qualified, Chartered Accountancy Articleship Trainee under ICAI, INDIA**

Abstract - Biodiversity constitutes a critical form of natural capital that underpins ecological stability, economic productivity, and long-term commercial sustainability. The World Economic Forum (2020) estimates that over US$44 trillion of global GDP is moderately or highly dependent on nature, underscoring the economic significance of biodiversity. In India, ecosystem services—including pollination, carbon sequestration, and non-timber forest products—generate substantial value for agriculture, forestry, trade, and rural livelihoods. Despite their economic importance, these services remain largely excluded from national accounting systems, corporate reporting, and measures of trade competitiveness.

This paper develops a commerce-based multidisciplinary framework to examine the rights of trees and forests through the lenses of natural capital accounting, corporate governance (CSR and ESG), trade competitiveness, environmental law, and social justice. The study adopts a qualitative, policy-oriented research design based on secondary data drawn from constitutional provisions, biodiversity legislation, corporate disclosure frameworks, ecosystem valuation studies, and reports published by the World Bank, UNEP, IPBES, IUCN, WWF, and the Dasgupta Review.

The analysis identifies three interrelated challenges in India's biodiversity governance: an implementation deficit, reflected in limited institutional and corporate enforcement despite progressive judicial interventions; an integration gap, arising from the inadequate incorporation of biodiversity into GDP estimation, CSR strategies, ESG reporting, and business decision-making; and an alignment gap, characterized by insufficient policy convergence with international biodiversity commitments, including the Sustainable Development Goals and the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework (2022–2030).

The paper recommends integrating biodiversity into Green GDP and natural capital accounting frameworks, strengthening biodiversity-linked CSR investments and ESG disclosure standards, promoting community-based forest commerce under the Forest Rights Act, 2006, and aligning trade and development policies with global biodiversity commitments. By positioning biodiversity as productive natural capital rather than merely an environmental or legal concern, the study demonstrates that conserving trees and forests is fundamental to economic resilience, commercial competitiveness, human well-being, and sustainable development.

Keywords: Biodiversity governance; natural capital accounting; corporate social responsibility (CSR); environmental, social and governance (ESG); rights of nature; Green GDP; Sustainable Development Goals (SDGs); Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework (GBF 2022–2030); India.

Introduction - Biodiversity constitutes the foundation of ecological stability, economic productivity, and sustainable development. Beyond its ecological significance, biodiversity represents productive natural capital that supports agriculture, forestry, trade, tourism, ecosystem services, and long-term commercial resilience. According to the World Economic Forum (2020), more than US$44 trillion of global GDP is moderately or highly dependent on nature, highlighting the close relationship between biodiversity conservation and economic prosperity. However, accelerating habitat loss, climate change, pollution, and unsustainable resource use have placed global biodiversity under unprecedented pressure. The Intergovernmental Science-Policy Platform on Biodiversity and Ecosystem Services (IPBES, 2019) estimates that nearly one million species are threatened with extinction, while the *WWF Living Planet Report* (2022) documents a substantial decline in monitored wildlife populations worldwide. These trends demonstrate that biodiversity loss has become not only an environmental concern but also an economic and developmental challenge.

India occupies a unique position within global biodiversity governance as one of the world's seventeen megadiverse countries, supporting nearly 7–8% of recorded species despite accounting for only 2.4% of the global land area. The *India State of Forest Report* (FSI, 2023) estimates

forest cover at 21.71% of the country's geographical area, although forest quality and ecological integrity remain uneven. India's forests generate valuable ecosystem services, including carbon sequestration, watershed protection, pollination, biodiversity conservation, and livelihood support for millions of people. Nevertheless, these ecosystem services continue to receive limited recognition within conventional measures of economic performance, public finance, and corporate decision-making.

The growing recognition of biodiversity as productive natural capital has expanded the relevance of commerce in environmental governance. The Dasgupta Review (2021) argues that sustainable economic development depends upon incorporating the value of nature into national accounting systems and policy decisions. Similarly, Corporate Social Responsibility (CSR), Environmental, Social and Governance (ESG) reporting, sustainability accounting, and Green GDP have emerged as important mechanisms for integrating biodiversity into business strategy and public policy. Despite these developments, biodiversity remains inadequately reflected in economic planning and corporate governance, limiting the effectiveness of conservation efforts and sustainable development initiatives.

India has established a comprehensive constitutional and legal framework for biodiversity conservation. Article 48A directs the State to protect and improve the environment, while Article 51A(g) places a fundamental duty upon citizens to safeguard forests, wildlife, and the natural environment. Landmark judicial decisions, including *T.N. Godavarman Thirumulpad v. Union of India* and *Mohd. Salim v. State of Uttarakhand* (2017), have further strengthened environmental jurisprudence. These constitutional provisions are complemented by legislation such as the Wildlife (Protection) Act, 1972, the Environment (Protection) Act, 1986, the Biological Diversity Act, 2002, and the Forest Rights Act, 2006. However, institutional fragmentation, uneven implementation, and limited integration of biodiversity into economic policy continue to constrain effective biodiversity governance.

Although biodiversity has been widely studied from ecological, legal, and policy perspectives, comparatively limited attention has been devoted to examining it through a commerce-oriented multidisciplinary framework that integrates natural capital accounting, corporate governance, constitutional principles, environmental rights and duties, and global biodiversity commitments. Addressing this gap, the present study analyses the rights of trees and forests through the lens of commerce and sustainable development. It argues that biodiversity conservation should be understood not merely as an environmental obligation but as a strategic investment in natural capital that supports economic resilience, responsible business practices, social well-being, and the achievement of national and global sustainability goals.

Review of Literature

Legal and Judicial Perspectives: The recognition of legal rights for nature has emerged as an important development in environmental jurisprudence. Stone (2010) argued that natural entities such as trees, forests, and rivers should possess legal standing, laying the intellectual foundation for the Rights of Nature movement. In India, judicial interventions such as *T.N. Godavarman Thirumulpad v. Union of India* and *Mohd. Salim v. State of Uttarakhand* (2017) expanded environmental protection through constitutional interpretation. Internationally, Ecuador, Bolivia, and New Zealand have recognized legal rights for nature through constitutional or statutory mechanisms, demonstrating that effective implementation depends upon institutional governance and community participation (Boyd, 2017; Cullinan, 2011). From a commerce perspective, secure legal protection of biodiversity provides an institutional foundation for sustainable resource governance, responsible investment, and long-term economic resilience.

Economic and Commercial Perspectives: Recent literature increasingly recognizes biodiversity as productive natural capital essential for sustainable economic development. The Dasgupta Review (2021), the World Bank (2021), and the TEEB initiative emphasize that ecosystem services generate substantial economic value but remain inadequately reflected in GDP and national accounting systems. International frameworks such as the System of Environmental-Economic Accounting (SEEA) further support integrating environmental assets into economic planning. In India, studies by FSI (2023), CSE (2019), Gadgil and Guha (1995), and Kashwan (2020) highlight the relationship between biodiversity, governance, and sustainable development. Emerging corporate mechanisms such as CSR, ESG reporting, sustainability accounting, and responsible investment provide opportunities to incorporate biodiversity into business strategy, although practical integration remains limited. Recent commerce-oriented research has also emphasized the economic valuation of forest biodiversity by linking ecosystem services with human health, sustainable development, and the Sustainable Development Goals, thereby strengthening the application of natural capital accounting within biodiversity governance (Garg, 2025).

Human Rights and Duties: Internationally, biodiversity conservation has increasingly been recognized as a human rights issue. The UN Human Rights Council Resolution 48/13 (2021) recognized the right to a clean, healthy, and sustainable environment, while SDG 15 emphasizes biodiversity conservation. In India, Article 21 and Article 51A(g) together establish a constitutional framework that combines environmental rights with civic responsibilities. Ethical frameworks such as the Earth Charter (2000), together with scholars including Nash (1989) and Cullinan (2011), argue that environmental stewardship extends

beyond legal compliance to moral responsibility. From a commerce perspective, these principles increasingly influence corporate governance, ESG performance, responsible supply chains, and stakeholder accountability.

Social Welfare and Community Empowerment: Biodiversity conservation contributes significantly to social welfare, livelihood security, and inclusive development. Shiva (1988) demonstrated the close relationship between ecological degradation, gender justice, and community empowerment, while the Chipko Movement highlighted the importance of local participation in forest conservation. Gadgil and Guha (1992, 1995) linked ecological inequality with socio-economic disparities, and the Forest Rights Act (2006) strengthened community participation in forest governance. CSE (2019) further documents how community-based conservation improves both biodiversity outcomes and rural livelihoods. However, relatively little research has examined biodiversity as a driver of inclusive economic development within a commerce-oriented framework.

Global Frameworks and Comparative Experiences : International biodiversity governance has evolved through a series of influential treaties, scientific assessments, and policy frameworks that increasingly recognize biodiversity as both an ecological necessity and an economic asset. The Convention on Biological Diversity (CBD, 1992) established the first comprehensive global framework for biodiversity conservation, sustainable use, and equitable benefit-sharing. More recently, the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework (2022–2030) reaffirmed global commitments by establishing measurable targets, including the conservation of at least 30% of terrestrial and marine ecosystems by 2030.

Scientific assessments have significantly strengthened the evidence base supporting biodiversity policy. The Intergovernmental Science-Policy Platform on Biodiversity and Ecosystem Services Global Assessment Report (2019) documents accelerating biodiversity loss and its implications for ecosystem services, while the Intergovernmental Panel on Climate Change Sixth Assessment Report (2022) emphasizes the interdependence of climate change and biodiversity conservation. Similarly, the World Wide Fund for Nature Living Planet Report (2022) and the International Union for Conservation of Nature Red List (2023) provide internationally recognized indicators for assessing biodiversity trends and conservation priorities.

The scholarly literature has also advanced the Rights of Nature discourse through influential contributions by Stone (2010), Nash (1989), Cullinan (2011), and Boyd (2017). Comparative experiences from Ecuador, Bolivia, and New Zealand demonstrate that legal personhood for ecosystems can be effectively implemented when supported by robust governance institutions, clearly defined guardianship structures, and community participation.

From a commerce perspective, these global frameworks increasingly emphasize natural capital accounting, sustainable finance, ESG reporting, biodiversity disclosure, and responsible investment as essential components of long-term economic resilience. Recent commerce-oriented scholarship has further emphasized integrating biodiversity conservation with forest finance, public policy, and sustainable development through multidisciplinary frameworks that connect ecological sustainability, human health, and economic resilience (Garg, 2026)**.** Nevertheless, Indian scholarship has only partially examined these emerging international developments. Although scholars such as Ghosh (2021) and Nakazora (2023) discuss India's evolving environmental jurisprudence, relatively limited research has systematically compared India's biodiversity governance with contemporary global policy frameworks while examining their implications for commerce, corporate governance, and sustainable economic development. This comparative gap provides an important justification for the present study.

Synthesis of Literature and Research Gaps: The literature demonstrates substantial progress in understanding biodiversity from legal, ecological, economic, and governance perspectives. Legal scholarship has strengthened environmental jurisprudence, ecological economics has established biodiversity as productive natural capital, and international frameworks have reinforced global commitments to conservation. Nevertheless, existing research remains fragmented across disciplines.

Five key research gaps emerge. First, biodiversity governance has received limited interdisciplinary analysis integrating law, commerce, and environmental governance. Second, ecosystem services remain inadequately incorporated into national accounting, Green GDP, CSR, ESG reporting, and corporate decision-making. Third, institutional implementation continues to lag behind legal recognition. Fourth, the contribution of biodiversity to community empowerment and inclusive development remains underexplored in commerce research. Finally, relatively few studies systematically compare India's biodiversity governance with contemporary global frameworks while examining implications for sustainable commerce and economic policy.

Accordingly, this study adopts a commerce-based multidisciplinary perspective that integrates environmental law, natural capital accounting, corporate governance, biodiversity economics, community participation, and international biodiversity commitments to better understand the rights of trees and forests.

Research Gaps, Research Questions, and Objectives

Research Gaps: The literature demonstrates substantial progress in environmental law, biodiversity conservation, ecological economics, and global governance. However, several important gaps remain.

First, biodiversity research in India remains largely

fragmented across legal, ecological, economic, and policy disciplines, with limited integration from a commerce perspective. Second, although natural capital accounting and ecosystem valuation have advanced considerably (Dasgupta, 2021; World Bank, 2021; TEEB, 2010), biodiversity continues to receive inadequate recognition within national accounting, Green GDP, CSR, ESG reporting, and corporate decision-making. Third, existing studies devote relatively little attention to integrating constitutional rights, environmental duties, community participation, and corporate governance within a unified biodiversity governance framework. Finally, limited comparative research examines India's biodiversity governance alongside emerging international frameworks such as the CBD, Sustainable Development Goals (SDGs), and the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework (2022–2030).

These gaps justify the need for a commerce-based multidisciplinary analysis integrating environmental law, natural capital accounting, corporate governance, biodiversity economics, and global sustainability commitments.

Research Questions:

1. The study seeks to address the following questions:
2. How are the rights of trees and forests recognized within India's constitutional, legal, and judicial framework, and how do these compare with selected international experiences?
3. How can biodiversity and ecosystem services be integrated into natural capital accounting, Green GDP, CSR, ESG reporting, and sustainable economic policy?
4. How can constitutional principles, corporate governance, and community participation strengthen biodiversity governance and sustainable development?
5. How can India's biodiversity governance be better aligned with international frameworks such as the CBD, SDGs, and the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework?

Research Objectives: The objectives of the study are:

1. To examine the recognition of the rights of trees and forests within India's constitutional and legal framework and compare selected international experiences.
2. To evaluate biodiversity as productive natural capital and examine the role of natural capital accounting, Green GDP, CSR, and ESG in biodiversity governance.
3. To analyse the contribution of constitutional principles, corporate governance, and community participation to effective biodiversity governance.
4. To assess India's biodiversity governance in relation to major international biodiversity frameworks and identify opportunities for strengthening sustainable commerce and environmental policy.

Justification of the Study: This study adopts a commerce-oriented multidisciplinary perspective to examine biodiversity as productive natural capital linking environmental governance, corporate responsibility, constitutional principles, and sustainable development. By integrating legal, economic, governance, and policy perspectives, the study contributes to the growing discourse on biodiversity as a strategic economic asset while offering policy insights for strengthening sustainable commerce and biodiversity governance in India.

Scope, Limitations, and Significance

Scope: The study examines the rights of trees and forests through a commerce-based multidisciplinary perspective that integrates environmental law, natural capital accounting, corporate governance, constitutional principles, community participation, and global biodiversity governance. It positions biodiversity as productive natural capital that supports ecological sustainability, economic resilience, and long-term commercial development.

The analysis focuses primarily on India while drawing selected comparative insights from Ecuador, Bolivia, New Zealand, and Colombia. It covers major legal, policy, and institutional developments between 2000 and 2025, including the Biological Diversity Act (2002), the Forest Rights Act (2006), the Sustainable Development Goals (2015), and the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework (2022–2030). Methodologically, the study adopts a qualitative, doctrinal, comparative, and policy-oriented approach based on constitutional provisions, legislation, judicial decisions, policy reports, and scholarly literature.

Limitations: The study relies exclusively on secondary sources and therefore does not include primary field surveys or quantitative ecological analysis. Comparative discussion is limited to selected international experiences that are particularly relevant to biodiversity governance. The analysis focuses primarily on terrestrial biodiversity, especially forests and trees, and does not examine marine ecosystems in detail. While institutional and governance issues are discussed, the study does not propose state-specific implementation models, instead emphasizing broader national policy implications.

Significance: The study contributes to the growing literature on biodiversity governance by examining the rights of trees and forests through a commerce-oriented multidisciplinary perspective. It extends existing scholarship by integrating environmental law, natural capital accounting, corporate governance, CSR, ESG, constitutional principles, and sustainable development within a single analytical framework.

From a commerce perspective, the study highlights biodiversity as productive natural capital that underpins agriculture, forestry, trade, tourism, sustainable investment, and long-term economic resilience. It demonstrates the relevance of biodiversity valuation for Green GDP, sustainability accounting, responsible business practices, and public policy.

The study also offers policy relevance by identifying

opportunities to strengthen biodiversity governance through improved institutional coordination, natural capital accounting, community participation, and alignment with international biodiversity commitments. By linking environmental conservation with economic development and sustainable commerce, it provides useful insights for policymakers, businesses, researchers, and civil society.

Conclusion: Although the study is limited to secondary evidence and selected comparative experiences, it provides a comprehensive commerce-based analysis of biodiversity governance. By integrating legal, economic, institutional, and policy perspectives, it demonstrates that biodiversity conservation should be understood not only as an environmental responsibility but also as a strategic component of sustainable commerce, economic resilience, and long-term development. The study therefore contributes to both academic scholarship and evidence-informed policymaking while providing a foundation for future empirical and interdisciplinary research.

Methodology: This study adopts a **qualitative, doctrinal, comparative, and policy-oriented** research design to examine the rights of trees and forests from a commerce-based multidisciplinary perspective. Rather than generating primary ecological or quantitative data, the study analyses biodiversity governance through legal, economic, institutional, and policy frameworks.

The research relies exclusively on **secondary sources**, including constitutional provisions, environmental legislation, judicial decisions, government reports, international agreements, and peer-reviewed scholarly literature. Key legal sources include the Constitution of India, the Wildlife (Protection) Act, 1972, the Environment (Protection) Act, 1986, the Biological Diversity Act, 2002, the Forest Rights Act, 2006, and landmark judicial decisions such as *T.N. Godavarman Thirumulpad v. Union of India* and *Mohd. Salim v. State of Uttarakhand*. Government reports from the Forest Survey of India (FSI), Ministry of Environment, Forest and Climate Change (MoEFCC), NITI Aayog, and the Centre for Science and Environment (CSE), together with international frameworks including the Convention on Biological Diversity (CBD), the Sustainable Development Goals (SDGs), the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework, IPBES, UNEP, WWF, IUCN, the World Bank, and the Dasgupta Review, provide the principal documentary evidence.

The analysis is organized around five interrelated themes: **(i)** legal and constitutional frameworks, **(ii)** natural capital accounting and commerce, **(iii)** environmental rights and constitutional duties, **(iv)** community participation and social welfare, and **(v)** international biodiversity governance. This thematic approach facilitates a comparative evaluation of biodiversity governance while highlighting its implications for sustainable commerce, corporate governance, and public policy.

The qualitative and secondary-data approach is appropriate because the study seeks to analyse legal, institutional, and governance issues rather than ecological conditions. Although the exclusive use of secondary sources limits empirical validation, the study enhances reliability through the triangulation of legislation, judicial decisions, government publications, international reports, and scholarly literature. As no human participants or field investigations were involved, formal ethical approval was not required. The study nevertheless adheres to accepted standards of academic integrity through accurate interpretation, proper attribution, and APA (7th edition) referencing.

Secondary Evidence and Interpretation

Overview of Secondary Evidence: This section analyses secondary evidence obtained from authoritative national and international sources to examine biodiversity trends, ecosystem valuation, governance challenges, and India's position within the global biodiversity framework. As the study adopts a qualitative, doctrinal, and policy-oriented research design, the evidence presented is intended to support thematic interpretation rather than statistical hypothesis testing. The selected tables and figures are derived from internationally recognized databases and government reports, including the IUCN Red List, the World Wide Fund for Nature (WWF), the Forest Survey of India (FSI), the World Bank, and the Dasgupta Review.

Table 1. Threatened Species in India, 2023 (IUCN Red List)

Category	Number of Species (India)	Global Context (%)
Mammals	96	6.2% of global
Birds	82	7.5% of global
Reptiles	53	4.8% of global
Amphibians	74	9.1% of global
Plants	387	8.4% of global
Total	**1,212**	—

Source: IUCN Red List of Threatened Species (2023).

Interpretation: The IUCN Red List (2023) records **1,212 threatened species** in India, illustrating the country's dual status as both a global biodiversity hotspot and a region facing increasing ecological pressure. Amphibians are particularly vulnerable, representing **9.1% of the world's threatened amphibian species**, reflecting growing stress on forest and freshwater ecosystems. The large number of threatened plant species further highlights the importance of protecting forest ecosystems that sustain biodiversity, ecosystem services, and rural livelihoods. From a commerce perspective, continued biodiversity loss threatens productive natural capital that underpins agriculture, forestry, ecotourism, medicinal resources, and numerous nature-dependent economic activities.

Table 2. Forest Quality Distribution in India, 2023

Category	Area (sq km)	% of Total Forest Area
Very Dense Forest	99,779	12.37%
Moderately Dense Forest	308,502	38.40%
Open Forest	304,499	37.89%
Plantation / Other Forest	89,500+	11.34%

Source: Forest Survey of India (2023).

Interpretation: Although India's overall forest cover has remained relatively stable, the distribution of forest quality presents a more nuanced picture. Very dense forests constitute only a small proportion of total forest area, while open forests and plantation forests account for a considerable share. This suggests that increases in overall forest cover should not automatically be interpreted as improvements in biodiversity. Forest quality, species composition, and ecological integrity remain equally important indicators for assessing biodiversity conservation. These findings reinforce the need for policies that prioritize ecosystem quality alongside quantitative forest expansion.

Synthesis of Evidence and Interpretation: The secondary evidence reveals several important patterns relevant to biodiversity governance and sustainable commerce.

First, despite India's strong constitutional framework and extensive environmental legislation, biodiversity conservation continues to face significant institutional and governance challenges. The available evidence indicates that legal recognition alone is insufficient unless accompanied by effective implementation, institutional coordination, and community participation.

Second, biodiversity represents substantial economic value through ecosystem services such as carbon sequestration, pollination, watershed protection, forest products, and climate regulation. Nevertheless, these contributions remain inadequately reflected in national accounting systems, Green GDP estimation, public policy, corporate reporting, and investment decisions. From a commerce perspective, this underscores the importance of integrating natural capital accounting, biodiversity valuation, Corporate Social Responsibility (CSR), and Environmental, Social and Governance (ESG) frameworks into economic planning and business strategy.

Third, comparative international evidence suggests that countries combining legal recognition with effective governance institutions, community participation, and policy integration have achieved stronger biodiversity outcomes. India's constitutional framework and environmental legislation provide a strong foundation; however, greater policy coherence and closer alignment with international biodiversity commitments can further strengthen conservation efforts and sustainable development.

Overall, the evidence demonstrates that biodiversity should be recognized as productive natural capital that supports ecological stability, economic resilience, commercial sustainability, and human well-being. Strengthening biodiversity governance therefore requires coordinated legal, institutional, economic, and policy interventions capable of integrating environmental conservation with sustainable commerce and long-term national development.

Findings and Discussion

Overview of Findings: The analysis indicates that India possesses a comprehensive constitutional framework, progressive environmental legislation, and an active judiciary committed to biodiversity conservation. However, the effective protection of trees and forests continues to be constrained by institutional, economic, and policy challenges. The findings highlight the need to strengthen biodiversity governance through greater integration of legal frameworks, natural capital accounting, corporate governance, community participation, and international policy commitments.

Institutional and Governance Challenges: The study finds that India has made significant progress in recognizing environmental rights through constitutional provisions and judicial decisions, particularly *T.N. Godavarman Thirumulpad v. Union of India* and *Mohd. Salim v. State of Uttarakhand* (2017). Nevertheless, legal recognition has not always been supported by effective institutional arrangements, administrative coordination, or statutory implementation.

Comparative experiences from New Zealand, Ecuador, and Colombia demonstrate that successful biodiversity governance depends upon clearly defined governance institutions, community participation, and long-term policy commitment rather than legal recognition alone. These experiences suggest that strengthening institutional capacity remains essential for improving biodiversity governance in India.

Biodiversity as Productive Natural Capital: The analysis demonstrates that biodiversity remains insufficiently integrated into economic planning despite growing international recognition of its economic value. The Dasgupta Review (2021), the World Bank (2021), and TEEB emphasize that ecosystem services contribute significantly to economic production but remain inadequately reflected in national accounting systems, Green GDP, and corporate reporting.

Although India's forest cover has remained relatively stable, changes in forest quality indicate that quantitative expansion alone does not ensure ecological sustainability. From a commerce perspective, integrating biodiversity valuation, natural capital accounting, CSR, and ESG reporting into business strategy and public policy would strengthen sustainable economic development and long-term commercial resilience.

Global Governance and Policy Alignment: The study further finds that India's biodiversity governance is broadly consistent with international environmental commitments but would benefit from stronger policy integration. Global frameworks such as the Convention on Biological Diversity,

the Sustainable Development Goals, and the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework provide important guidance for biodiversity conservation and sustainable development.

Comparative evidence suggests that countries combining legal protection with institutional accountability, community participation, and economic incentives have achieved more effective biodiversity outcomes. Strengthening policy coherence between national biodiversity initiatives and international commitments would enhance India's environmental governance and global leadership.

Discussion: The findings demonstrate that biodiversity governance should be understood as an integrated legal, economic, institutional, and social process. From a commerce perspective, biodiversity represents productive natural capital supporting agriculture, forestry, trade, tourism, sustainable investment, and long-term economic resilience. Consequently, biodiversity conservation should be incorporated more systematically into natural capital accounting, Green GDP, CSR, ESG reporting, and broader development planning.

The analysis also highlights the importance of linking constitutional rights with environmental duties, strengthening community participation, and integrating biodiversity conservation with climate action and sustainable development strategies. Comparative international experiences reinforce that effective biodiversity governance depends not only on legal recognition but also on institutional effectiveness, public participation, and policy coordination.

Overall, the study demonstrates that protecting trees and forests extends beyond environmental conservation to become an essential component of sustainable commerce, responsible governance, and inclusive development. Strengthening the integration of legal institutions, economic valuation, corporate responsibility, community participation, and international biodiversity commitments can significantly improve biodiversity governance while supporting India's long-term sustainable development objectives.

Conclusion and Policy Recommendations

Conclusion: This study examined the rights of trees and forests through a commerce-based multidisciplinary perspective integrating environmental law, natural capital accounting, corporate governance, constitutional principles, and global biodiversity governance. The analysis indicates that India possesses a strong constitutional and legislative framework for biodiversity conservation, supported by progressive judicial interventions. However, institutional coordination, economic integration, and policy implementation remain key challenges.

From a commerce perspective, biodiversity should be recognized as productive natural capital that supports agriculture, forestry, trade, tourism, ecosystem services, and long-term economic resilience. Although forest cover has remained relatively stable, evidence relating to forest quality, threatened species, and ecosystem degradation demonstrates that biodiversity conservation requires greater emphasis on ecological quality rather than quantitative indicators alone. Similarly, the limited incorporation of ecosystem services into national accounting, Green GDP, CSR, ESG reporting, and corporate decision-making highlights the need for stronger integration between biodiversity and economic policy.

Comparative experiences from New Zealand, Ecuador, and Colombia further demonstrate that effective biodiversity governance depends not only on legal recognition but also on institutional accountability, community participation, and policy coherence. Overall, the study concludes that biodiversity conservation should be viewed as an essential component of sustainable commerce, responsible governance, and long-term economic development rather than solely as an environmental obligation.

Policy Recommendations: The study proposes the following recommendations:

Strengthen institutional governance by improving coordination among government agencies, strengthening Biodiversity Management Committees, and supporting effective implementation of environmental legislation.

Integrate biodiversity into economic policy through natural capital accounting, Green GDP, biodiversity valuation, CSR, ESG reporting, and sustainability accounting.

Promote constitutional environmental stewardship by strengthening awareness of environmental rights and duties and encouraging responsible environmental practices among public institutions, businesses, and citizens.

Enhance community participation by supporting implementation of the Forest Rights Act, recognizing indigenous and local knowledge, promoting women-led conservation initiatives, and linking biodiversity conservation with livelihood security and rural development.

Strengthen international policy alignment by integrating national biodiversity strategies with the Convention on Biological Diversity, the Sustainable Development Goals, and the Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework while promoting India's experience in biodiversity governance within international forums.

Final Remarks: Protecting trees and forests is simultaneously a constitutional responsibility, an economic necessity, and a prerequisite for sustainable development. As one of the world's megadiverse countries, India possesses strong legal foundations, rich community conservation traditions, and significant opportunities to integrate biodiversity into commerce and public policy. By recognizing biodiversity as productive natural capital and strengthening institutional coordination, corporate responsibility, community participation, and international cooperation, India can enhance biodiversity governance

while promoting sustainable commerce, ecological resilience, and long-term economic prosperity.

References:-

1. Agarwal, A., & Narain, S. (Eds.). (1991). *State of India's environment: A citizen's report*. Centre for Science and Environment.
2. Boyd, D. R. (2017). *The rights of nature: A legal revolution that could save the world*. ECW Press.
3. Centre for Science and Environment. (2019). *State of India's environment 2019: A citizen's report*. Centre for Science and Environment.
4. Convention on Biological Diversity. (1992). *Convention on Biological Diversity*. Secretariat of the Convention on Biological Diversity.
5. Convention on Biological Diversity. (2022). *Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework*. Secretariat of the Convention on Biological Diversity.
6. Costanza, R., d'Arge, R., de Groot, R., Farber, S., Grasso, M., Hannon, B., Limburg, K., Naeem, S., O'Neill, R. V., Paruelo, J., Raskin, R. G., Sutton, P., & van den Belt, M. (1997). The value of the world's ecosystem services and natural capital. *Nature, 387*(6630), 253–260.
7. Cullinan, C. (2011). *Wild law: A manifesto for Earth justice* (2nd ed.). Chelsea Green Publishing.
8. Dasgupta, P. (2021). *The economics of biodiversity: The Dasgupta Review*. HM Treasury.
9. Divan, S., & Rosencranz, A. (2001). *Environmental law and policy in India: Cases, materials and statutes* (2nd ed.). Oxford University Press.
10. Earth Charter International. (2000). *Earth Charter*.
11. Ecuador. (2008). *Constitution of the Republic of Ecuador*.
12. Forest Survey of India. (2023). *India state of forest report 2023*. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India.
13. Gadgil, M., & Guha, R. (1992). *This fissured land: An ecological history of India*. Oxford University Press.
14. Gadgil, M., & Guha, R. (1995). *Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India*. Routledge.
15. Garg, A. K. (2025). *Eco-economic valuation of forest-based plant biodiversity and its linkages with human health: A commerce-based SDG analysis*. *Naveen Shodh Sansar, 1*(LI), 18–20.
16. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2022). *Climate change 2022: Impacts, adaptation and vulnerability*. Cambridge University Press.
17. Intergovernmental Science-Policy Platform on Biodiversity and Ecosystem Services. (2019). *Global assessment report on biodiversity and ecosystem services*. IPBES Secretariat.
18. International Union for Conservation of Nature. (2023). *The IUCN Red List of Threatened Species* (Version 2023).
19. Kashwan, P. (2020). *Democracy in the woods: Environmental conservation and social justice in India, Tanzania, and Mexico*. Oxford University Press.
20. Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2023). *National biodiversity action plan*. Government of India.
21. NABARD. (2021). *Natural resource management and ecosystem services in India*. NABARD.
22. Nash, R. F. (1989). *The rights of nature: A history of environmental ethics.* University of Wisconsin Press.
23. NITI Aayog. (2023). *SDG India Index and Dashboard 2023–24*. Government of India.
24. Shiva, V. (1988). *Staying alive: Women, ecology and development*. Zed Books.
25. Stone, C. D. (2010). *Should trees have standing? Law, morality, and the environment* (3rd ed.). Oxford University Press.
26. The Economics of Ecosystems and Biodiversity. (2010). *The economics of ecosystems and biodiversity: Ecological and economic foundations*. Earthscan.
27. United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development*.
28. United Nations Environment Programme. (2023). *Global Environment Outlook 7 (GEO-7)*. United Nations Environment Programme.
29. United Nations General Assembly. (2022). *Resolution 76/300: The human right to a clean, healthy and sustainable environment*.
30. United Nations Human Rights Council. (2021). *Resolution 48/13: The human right to a clean, healthy and sustainable environment*.
31. World Bank. (2021). *The changing wealth of nations 2021: Managing assets for the future*. World Bank.
32. World Wide Fund for Nature. (2022). *Living Planet Report 2022: Building a nature-positive society*. WWF International.

Constitution, Legislation and Case Law:

1. *Constitution of India*. (1950).
2. *Biological Diversity Act, 2002* (Act No. 18 of 2003).
3. *Environment (Protection) Act, 1986* (Act No. 29 of 1986).
4. *The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006* (Act No. 2 of 2007).
5. *Wild Life (Protection) Act, 1972* (Act No. 53 of 1972).
6. *Mohd. Salim v. State of Uttarakhand*, Writ Petition (PIL) No. 126 of 2014, High Court of Uttarakhand (2017).
7. *T.N. Godavarman Thirumulpad v. Union of India*, Writ Petition (Civil) No. 202 of 1995, Supreme Court of India.
8. References
9. Agarwal, A., & Narain, S. (Eds.). (1991). *State of India's environment: A citizen's report*. Centre for Science and Environment.
10. Boyd, D. R. (2017). *The rights of nature: A legal revolution that could save the world*. ECW Press.

11. Centre for Science and Environment. (2019). *State of India's environment 2019: A citizen's report*. Centre for Science and Environment.
12. Convention on Biological Diversity. (1992). *Convention on Biological Diversity*. Secretariat of the Convention on Biological Diversity.
13. Convention on Biological Diversity. (2022). *Kunming–Montreal Global Biodiversity Framework*. Secretariat of the Convention on Biological Diversity.
14. Costanza, R., d'Arge, R., de Groot, R., Farber, S., Grasso, M., Hannon, B., Limburg, K., Naeem, S., O'Neill, R. V., Paruelo, J., Raskin, R. G., Sutton, P., & van den Belt, M. (1997). The value of the world's ecosystem services and natural capital. *Nature, 387*(6630), 253–260.
15. Cullinan, C. (2011). *Wild law: A manifesto for Earth justice* (2nd ed.). Chelsea Green Publishing.
16. Dasgupta, P. (2021). *The economics of biodiversity: The Dasgupta Review*. HM Treasury.
17. Divan, S., & Rosencranz, A. (2001). *Environmental law and policy in India: Cases, materials and statutes* (2nd ed.). Oxford University Press.
18. Earth Charter International. (2000). *Earth Charter*.
19. Ecuador. (2008). *Constitution of the Republic of Ecuador*.
20. Forest Survey of India. (2023). *India state of forest report 2023*. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, Government of India.
21. Gadgil, M., & Guha, R. (1992). *This fissured land: An ecological history of India*. Oxford University Press.
22. Gadgil, M., & Guha, R. (1995). *Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India*. Routledge.
23. Garg, A. K. (2025). *Eco-economic valuation of forest-based plant biodiversity and its linkages with human health: A commerce-based SDG analysis. NSS Research Journal, 1*(LI). ISSN: 2394-3793.
24. Garg, A. K. (2026). *Biodiversity, human health and forest finance: An integrated policy framework for sustainable development. NSS Research Journal, 1*(LIII). ISSN: 2394-3793.
25. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2022). *Climate change 2022: Impacts, adaptation and vulnerability*. Cambridge University Press.
26. Intergovernmental Science-Policy Platform on Biodiversity and Ecosystem Services. (2019). *Global assessment report on biodiversity and ecosystem services*. IPBES Secretariat.
27. International Union for Conservation of Nature. (2023). *The IUCN Red List of Threatened Species* (Version 2023).
28. Kashwan, P. (2020). *Democracy in the woods: Environmental conservation and social justice in India, Tanzania, and Mexico*. Oxford University Press.
29. Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2023). *National biodiversity action plan*. Government of India.
30. NABARD. (2021). *Natural resource management and ecosystem services in India*. NABARD.
31. Nash, R. F. (1989). *The rights of nature: A history of environmental ethics*. University of Wisconsin Press.
32. NITI Aayog. (2023). *SDG India Index and Dashboard 2023–24*. Government of India.
33. Shiva, V. (1988). *Staying alive: Women, ecology and development*. Zed Books.
34. Stone, C. D. (2010). *Should trees have standing? Law, morality, and the environment* (3rd ed.). Oxford University Press.
35. The Economics of Ecosystems and Biodiversity. (2010). *The economics of ecosystems and biodiversity: Ecological and economic foundations*. Earthscan.
36. United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development*.
37. United Nations Environment Programme. (2023). *Global Environment Outlook 7 (GEO-7)*. United Nations Environment Programme.
38. United Nations General Assembly. (2022). *Resolution 76/300: The human right to a clean, healthy and sustainable environment.*
39. United Nations Human Rights Council. (2021). *Resolution 48/13: The human right to a clean, healthy and sustainable environment.*
40. World Bank. (2021). *The changing wealth of nations 2021: Managing assets for the future*. World Bank.
41. World Wide Fund for Nature. (2022). *Living Planet Report 2022: Building a nature-positive society*. WWF International.
42. Constitution, Legislation and Case Law
43. *Constitution of India*. (1950).
44. *Biological Diversity Act, 2002* (Act No. 18 of 2003).
45. *Environment (Protection) Act, 1986* (Act No. 29 of 1986).
46. *The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006* (Act No. 2 of 2007).
47. *Wild Life (Protection) Act, 1972* (Act No. 53 of 1972).
48. *Mohd. Salim v. State of Uttarakhand*, Writ Petition (PIL) No. 126 of 2014, High Court of Uttarakhand (2017).
49. *T.N. Godavarman Thirumulpad v. Union of India*, Writ Petition (Civil) No. 202 of 1995, Supreme Court of India.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

सवरा (सौरा) जनजाति में विजय दिवस : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष सन्दर्भ में

छन्नू कुमार मेरावी*   डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक**

* शोधार्थी, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययनशाला, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारत
** शोध निर्देशक, प्राध्यापक समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययनशाला, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारत

शोध सारांश – सवरा जनजाति छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियो मे से एक है। छत्तीसगढ़ के संदर्भ में सवरा जनजाति विशेष रूप से कबीरधाम,महासमुंद बिलासपुर, लोरमी, बेमेतरा, सारंगढ़ बिलाईगढ़, जांजगीरचाम्पा, सक्ती, रायगढ़, जशपुरसरगुजा, धमतरी, जगदलपुर, गरियाबंद, बीजापुर, दंतेवाड़ा, कोंडागांव, दुर्ग, रायपुर, बलौदाबाजार, राजनांदगाव आदि जिलों में निवास करती है।

सवरा जनजाति शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रो मे निवासरत हैं। आज सवरा समाज जिस आरक्षण का लाभ ले रहे हैं उसकी मुख्य आधार 'रास्ता रोको जन आन्दोलन' है, यह आन्दोलन सवरा जनजाति को आरक्षण से वंचित करने के कारण हुआ था। प्रारंभ मे सवरा समाज की पुराने रिकार्ड जैसे मिशल बंदोबस्त और दाखिल खारिज पंजी मे सौंरा, सौरा, संवरा, सवारा और सउरीन आदि लिखा गया था। इस तरह राजपत्र एवं वर्ष 1950 पूर्व अभिलेखों मे अक्षर समानता न होने के कारण शासन के संवैधानिक अधिकार से वंचित कर दिए गए जिसके कारण सवरा समाज ने 1 नवम्बर 2017 को अपने संवैधानिक अधिकार पाने के लिए रास्ता रोको जन आन्दोलन किये जिसके परिणाम स्वरुप वर्ष 2002-03 छत्तीसगढ़ राजपत्र मे अनुसूचित जनजाति वर्ग के कुल 43 जनजाति को मान्यता दिया गया जिसमे क्रमांक 41 मे सवर,सवरा अंकित था। उसी दिन से सवरा समाज द्वारा 1 नवम्बर को प्रतिवर्ष विजय दिवस के रूप मे मनाया जाता हैं। यह विजय दिवस समाज को अपने संवैधानिक अधिकार के प्रति जागरूकता का याद दिलाता हैं।
शब्द कुंजी– सवरा जनजाति, विजय दिवस, रास्ता रोको जन आन्दोलन, समाजशास्त्रीय विश्लेषण, छ.ग.।

प्रस्तावना

सवरा जनजाति का ऐतिहासिक परिचय– सवरा जनजाति भारत की प्राचीन आदिवासी जनजातियों में से एक मानी जाती है। इनका मुख्य निवास छत्तीसगढ़, ओडिशा और आंध्र प्रदेश के वन एवं पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। छत्तीसगढ़ के संदर्भ में सवरा जनजाति विशेष रूप से कबीरधाम,महासमुंद बिलासपुर,लोरमी,बेमेतरा,सारंगढ़ बिलाईगढ़, जांजगीर चाम्पा, सक्ती, रायगढ़, जशपुरसरगुजा, धमतरी, जगदलपुर, गरियाबंद, बीजापुर, दंतेवाड़ा, कोंडागांव, दुर्ग, रायपुर, बलौदाबाजार, राजनांदगाव आदि जिलों में निवास करती है।

सवरा जनजाति को भारतीय उपमहाद्वीप की अत्यंत प्राचीन जनजातियों में गिना जाता है। कई इतिहासकार इन्हें द्रविड़ अथवा ऑस्ट्रो-एशियाटिक समूह से जोड़ते हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, रामायण और महाभारत में भी 'शबर' अथवा 'सवरा' नाम का उल्लेख मिलता है।

सवरा जनजाति प्रकृति पूजक होती है। वे पहाड़, नदी, जंगल, सूर्य,जिव जंतुओं और पूर्वजों की पूजा करते हैं। इनके प्रमुख देवी-देवताओं में ग्राम देवता और प्रकृति शक्तियाँ शामिल हैं। सवरा जनजाति में विभिन्न गोत्र पाए जाते हैं, जैसे नाग, बाघ, भैंसा वन गोला,गिरेलफुल,लोमड़ी आदि इस प्रकार इस जनजाति में कुल 80 गोत्र पाए जाते है। विवाह सामान्यत: गोत्र के बाहर किया जाता है।

परंपरागत रूप से सवरा जनजाति-झूम कृषि (स्थानांतरित खेती) वनोपज संग्रह शिकार पशुपालन पर निर्भर रही है। वर्तमान समय में कई सवरा परिवार स्थायी कृषि और मजदूरी से भी जुड़े हैं।सवरा जनजाति छत्तीसगढ़ की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण भाग है। इनका इतिहास प्रकृति, परंपरा और सामुदायिक जीवन से जुड़ा हुआ है। आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद यह जनजाति अपनी सांस्कृतिक पहचान, लोककला और पारंपरिक जीवन मूल्यों को आज भी संरक्षित किए हुए है।

शोध साहित्य की समीक्षा –अध्ययन विषय का प्रस्तुतीकरण करने के लिए शोध साहित्य का उल्लेख किया जा रहा है जो इस प्रकार है-

सबर कुमार भुबन (2023)ओडिशा के रायगड़ा जिले की दो ग्राम पंचायतों - सगड़ा और पुट्टासिंग - में किए गए गहन क्षेत्र सर्वेक्षणों के माध्यम से पहाड़ी सवरा जनजाति की उत्पत्ति, संस्कृति और रिश्तेदारी संरचना का अध्ययन किया गया है। पहाड़ी, जिन्हें लोकप्रिय रूप से लांजियासवरा के नाम से जाना जाता है, दक्षिण ओडिशा के पूर्वी घाट क्षेत्रों की वन-आच्छादित ऊँची पहाड़ियों में निवास करते हैं। पहाड़ी सवरा जनजाति की नस्लीय समानता प्रोटो-ऑस्ट्रलॉइड समूह से है, जबकि भाषाई समानता ऑस्ट्रो-एशियाई मुंडारी समूह से है। यह अध्ययन सवरा जनजाति की शारीरिक विशेषताओं, पहनावे और आभूषणों के पैटर्न, कला और शिल्प को दर्शाता है। अध्ययन से जनजाति की पूर्वजों की पूजा में गहरी आस्था और शमन/शमनी की भूमिका का पता चलता है, जो देवता और बीमार व्यक्ति के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हैं और सभी प्रकार के अनुष्ठानों में देवी-देवताओं के दूत के रूप में भी कार्य करते हैं। सवरा जनजाति की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से एक यह है कि यह गोत्रहीन है और इसका

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

कोई टोटेम नहीं है। इस जनजाति में केवल बिरिंदा नामक वंश परंपराएँ हैं, जो घनिष्ठ समूह के लिए एक स्थानीय शब्द है और साओरा जनजाति के समूह के नाम के रूप में सबसे उपयुक्त है। पितृवंश, जो साओरा जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत का सार है, को 'खेजा' कहा जाता है, जिसे 'पुंजा' या 'शीशा' के नाम से भी जाना जाता है। बिरिंदा के बाद, दूसरा महत्वपूर्ण रिश्तेदार वर्ग 'कुलम' है, जो सवरा जनजाति में वैवाहिक रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त विशिष्ट शब्द है। सवरा समाज की तीसरी महत्वपूर्ण संरचना, अनसीर या अंतेरा, एक स्वदेशी श्रम सहकारी समिति है और सवरा जनजाति की आवश्यकताओं के अनुसार गठित की जाती है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि सवरा जनजाति, समय के साथ बदलती आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित होने के बावजूद, अपनी पारंपरिक संस्कृति को बनाए रखती है।

प्रधान अशोक एवं मंजुला गुहा (2000) यह शोधपत्र छत्तीसगढ़ की सवरा जनजाति की महिलाओं में मासिक धर्म की शुरुआत की आयु, रजोनिवृत्ति की आयु और प्रजनन आयु पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है। छत्तीसगढ़ के 21 गांवों की सावरा महिलाओं में इन जनसांख्यिकीय विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। मासिक धर्म की शुरुआत की आयु के अध्ययन के लिए 622 महिलाओं और रजोनिवृत्ति की आयु के अध्ययन के लिए 121 महिलाओं से डेटा एकत्र किया गया था। मासिक धर्म की शुरुआत की औसत आयु 12.96±0.049 वर्ष और रजोनिवृत्ति की औसत आयु 45.22±0.101 वर्ष अनुमानित की गई है। प्रजनन आयु की औसत अवधि 32.48±0.13 वर्ष आंकी गई है। वर्तमान आंकड़ों की तुलना कुछ भारतीय जनसंख्या से की गई है।

सरज गनाना (2019) सवरा जनजाति मुख्य रूप से दक्षिणी ओडिशा और उत्तारी तटीय आंध्र प्रदेश में पाई जाती है।2011 की जनगणना के अनुसार, सावर जनजाति, जिनकी संख्या 1,37,613 (5.23%) है, राज्य की सबसे अधिक आबादी वाली जनजातियों में से एक है।वे ओडिशा के रायगड़ा जिले और कोरापुर और गजपति जिलों के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में भी एक प्रमुख जनजातीय समुदाय हैं।आंध्र प्रदेश में वे मुख्य रूप से श्रीकाकुलम, विजयनगरम और विशाखापत्तनम जिलों की सुरम्य पालकोंडा पहाड़ी श्रृंखलाओं (पूर्वी घाटों का हिस्सा) में पाए जाते हैं।

बी.व्ही शर्मा (2018) यह शोधपत्र उन परिस्थितियों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है जिनके अंतर्गत भारत के पूर्वी घाट में निवास करने वाली और राज्य द्वारा विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PvTG) के रूप में मान्यता प्राप्त सवरा जनजाति में परिवार, विवाह और रिश्तेदारी की संस्थाओं में परिवर्तन हुए हैं। सवारा जनजाति, जो नाम वाले वंशों या कुलों के अभाव के लिए जानी जाती है, ने पड़ोसी जटापु समुदाय के वंश पैटर्न को अपना लिया है और इसे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन माना जाता है। इस परिवर्तन पर जनजाति के भाषा और आर्थिक एकीकरण के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि विवाह योग्य और विवाह अयोग्य रिश्तेदारों की पहचान करने वाली रिश्तेदारी शब्दावली परिवर्तित परिदृश्य में पर्याप्त नहीं थी और इसलिए नाम वाले वंशों को अपनाना आवश्यक हो गया। विवाह पैटर्न में परिवर्तन के संबंध में, यह शोधपत्र विशेष रूप से पुरुषों और महिलाओं के बीच क्रमिक एकविवाह के बढ़ते चलन के प्रश्न पर चर्चा करता है और अब इसे बहुविवाह के विरुद्ध महिलाओं के विरोध के रूप में देखा जाता है। समाज जिन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है, उनमें होने वाले परिवर्तन,विशेष रूप से परिवार, विवाह और रिश्तेदारी के पहलुओं में,पकड़ना कठिन है

टी. मधु सुधाना राव (2017) प्रस्तुत अध्ययन भारत की सवरा जनजाति (प्राइवेट ग्रुप) की संस्कृति और समाज के विभिन्न पहलुओं पर नृवंशविज्ञान विश्लेषण का अध्ययन करने का एक प्रयास है।सवरा शब्द के दो अर्थ प्रतीत होते हैं,एक जो कुल्हाड़ी के लिए सिथियन शब्द सागरी से लिया गया है,और दूसरा शव ढोने के लिए इस्तेमाल होने वाले संस्कृत शब्द सबा रोये से।ये दोनों ही अर्थ उनके कंधे पर कुल्हाड़ी रखने की आदत और शिकार करने तथा शिकार से प्राप्त वस्तुओं पर जीवन यापन करने के उनके आदिम व्यवसाय से मेल खाते हैं।सवारा भारत की सबसे आदिम जनजातियों में से एक हैं।लगभग 8.6 लाख की संख्या वाली सवारा जनजाति देश की सबसे अधिक आबादी वाली जनजातियों में से एक है।ओडिशा में इनकी संख्या 5.34 लाख है औरये 13 जिलों में वितरित हैं।

हिल साओरा का नस्लीय रिश्ता प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड ग्रुप से है, जबकि भाषा का रिश्ता ऑस्ट्रो-एशियाटिक मुंडारी ग्रुप से जुड़ा है। साओरा जनजाति की एक कल्चरल ग्रुप के तौर पर अपनी खासियतें हैं और वे पीढ़ियों तक एक साथ सोशल नेटवर्क बनाने की सोच रखते हैं। उन्हें जो परंपराएं विरासत में मिली हैं और सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांतों को बनाए रखने में उनकी जो खासियत है, वह ('साओरा') जनजाति के आर्थिक और राजनीतिक संगठनों में दिखती है। हालांकि साओरा का रिश्ता दूसरी उड़ीसा जनजातियों की तरह पितृवंशीय है, लेकिन दूसरों की तरह इसमें कबीले के संगठन का कोई सिस्टम नहीं है। साओरा के सिर्फ बिरिंडा नाम के वंश हैं, जो करीबी ग्रुप (खेजा) के लिए एक लोकल मतलब है और साओरा जनजाति के टाइटल ग्रुप के तौर पर सबसे अच्छा काम करता है। पितृवंश, जो 'साओरा' जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत का सार है, उसे 'खेजा' कहा जाता है, जिसे वैकल्पिक रूप से ष्पुंजाष या 'शिशा' के रूप में जाना जाता है। दूसरी महत्वपूर्ण रिश्तेदार श्रेणी 'कुलम' है, जो ष्साओराष का विशिष्ट शब्द है जिसका उपयोग सगे रिश्तेदारों के लिए किया जाता है। साओरा समाज की तीसरी महत्वपूर्ण संरचना अंसेर या अंतरा स्वदेशी प्रकृति का श्रम सहकारी है। वर्षो के अभाव (आर्थिक) ने उन्हें बदलने और ईसाई धर्म को अपनाने, मजदूर के रूप में अन्य राज्यों में पलायन जैसे कुछ विकल्प खोजने के लिए मजबूर किया। हालाँकि, 'साओरा' अभी भी समाज की अपनी पारंपरिक संरचना को बनाए हुए हैं।

उद्देश्य - (सवरा सौरा) जनजाति की विजय दिवस का अध्ययन करना।

शोध प्रारूप - विवरणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध प्रारूप।

अध्ययन पद्धति - प्रस्तुत शोध पत्र अनुभव जन्य तथ्यों पर आधारित हैं। यह शोध पत्र छत्तीसगढ़ के सवरा जनजाति पर केन्द्रित हैं। ये जनजाति मुख्य रूप से महासमुंद,कबीरधाम,बिलासपुर और बेमेतरा जिले मे निवास करते हैं। इस अध्ययन मे महासमुंद और कबीरधाम जिले से 822 परिवार का 50 प्रतिशत अर्थात 411 परिवार का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णत: गुणात्मक शोध पर केन्द्रित है जिसके अन्तर्गत सवरा जनजाति मे प्रचलित मान्यताओ का समाजशास्त्रीय एवं नृजातीय प्रस्तुतीकरण किया गया है।

सवरा(सौरा) जनजातिमें विजय दिवस की मान्यताएं - 1 नवम्बर सन 2000 को मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ अलग राज्य हुआ, वर्ष 2002-03 छत्तीसगढ़ राजपत्र अनुसुचित जनजाति वर्ग कुल 43 अंकित हुआ जिसमें

क्रमांक 41 में सवर-सवरा अंकित था। हमारे पूर्व 1950 के पूर्व अभिलेख मिशल बंदोबस्त, दाखिल खारिज पंजी में सौंरा, सौरा संवरा सहरा सवारा सऊरिन लिखा हुआ है। राजपत्र एवं वर्ष 1950 के पूर्व के अभिलेखों में अक्षर समानता न होने के कारण सवरा समाज को अनुसुचित जनजाति से जाति प्रमाण पत्रजारी नही किया गया एवं शासन के संवैधानिक अधिकार से वंचित कर दिया। सवरा जनजाति समुदाय द्वारा नायब तहसीलदार से लेकर राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार तक विधि अनुसार आवेदन प्रस्तुत किये किन्तु कहीं भी सुनवाई नहीं हुई इस कारण हम सवरा समाज क्षुब्द होकर एवमं विवश होकर 01 नवम्बर 2017को राज्य उत्सव को वहिष्कार करते हुये समाज के छात्र, छात्रा युवक युवती,वृद्ध एवमं बच्चे मिलकर 60000-70,000 व्यक्ति उपस्थित होकर जान को जोखिम में रखकर एक बहुत बड़ा रास्ता रोको जन आंदोलन किये जिसमे विपक्ष में रहकर माननीय भूपेश बघेल जीने आन्दोलन में पहुँचकर सवरा समाज के मांग को समर्थन दिया। आंदोलन की जानकारी राज्य सरकार केन्द्र सरकार को भी हो गया तब डॉ रमन सिंह की सरकार दिनांक 30/12/2017 को सवरा जाति के अलावा 22 अनुसुचित जनजाति तथा 05 अनुसुचित जाति को मात्रात्मक त्रुटि, शब्द विभेद, लेखन त्रुटि माना और इन जाति वर्ग के व्यक्तियोको पूर्व अभिलेख 1950 के पूर्व में अंकित वही जाति हैं जो मात्रात्मक त्रुटि लेखन त्रुटि माना और इन्हें राजपत्र में अंकित अनुसार जाति प्रमाण पत्रजारी करते तथा संवैधानिक अधिकार आदेश दिया, इस कारण सवर,सवरा समाज वर्ष 1 नवम्बर 2017 से 1 नवम्बर को यादगार विजय दिवस के नाम से मनाते आ रहे हैं। 1 नवम्बर 2025 को हमारी सवरा समाज द्वारा 5000 हजार के संख्या में महिला पुरुष युवक युवती वृद्ध उपस्थित होकर सरायपाली के एम.एच. 53 से लगे माँ घंटेश्वरी मंदिर मे उपस्थित होकर मां घंटेश्वरी माता को हमारे बैगा पुजारियों द्वारा नियमित पुजा कर, करमा नृत्य बाजे गाजे के साथ शांति रैली निकाल कर नई मण्डी सरायपाली प्रागण मे पहुंच कर,माँ शबरी की पुजा आराधना कर माँ शबरी के प्रसाद ग्रहण कर सभा हुआ। सभा में अतिथियों को पीली अक्षत चांवल एव नव वस्त्र से परिधान किया गया जिसमे समाज के प्रमुखों ने समाज को एकत्रित संकलित एवं संगठीत रहने को कहकर बिजय दिवस केसाथ दिपावली मिलन की शुभकामना देते हुव कार्यक्रम का समापन हुआ।

निष्कर्ष - विजय दिवस शब्द जैसे की नाम से ही किसी का जीत को दर्शाता है वैसे ही ये 1 नवम्बर सवरा जनजाति की वीरगाथा का परिचय देता है यह एक इस जनजाति की मुख्य समस्या का समाधान करता है पूर्व मे ये जनजाति आरक्षण से वंचित था और वंचित होने का मुख्य कारण शासकीय दस्तावेजों मे शब्द त्रुटि, लेखन त्रुटि ठस जिसके कारण 1950 के पूर्व अभिलेखों मे अक्षर समानता नहीं था जिस कारण से इस जनजाति को आरक्षण से वंचित कर दिया गया था जिसके कारण यह समाज आरक्षण से मिलाने वाले सरे सुविधा का लाभ नहीं ले पा रहा था जिसके कारण इस समाज ने सभी लोगो को एकत्रित करके संगठित किया और उसके बाद फिर 1 नवम्बर वर्ष 2017 एक बहुत बड़ा रास्ता रोकों जन आन्दोलन किये जिसके परिणाम स्वरुप राज्य सरकार और केंद्र सरकार तक इनके समस्या पंहुचा और इसका समाधान करते हुए राज्य सरकार सवरा जनजाति के आलावा 22 अनुसूचित जनजाति एवं 05 अनुसूचित जाति को लेखन त्रुटि और मात्रात्मक त्रुटि माना और इन्हे राजपत्र मे अंकित अनुसार जाति प्रमाण पत्र जारी का संवैधानिक अधिकार दिया गया इस कारण से सवर सवरा समाज 1 नवम्बर 2017 से लेकर आज तक प्रतिवर्ष 1 नवम्बर को विजय दिवस के रूप मे मानते आ रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Sabar Kumar Bhuban (2023) A Case Study on the Marriage System of the Saura Tribe of Rayagada District of Odisha International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR) E-ISSN: 2582-2160 Website: www.ijfmr.com Email: editor@ijfmr.com Pp 1-6
2. A Pradhan, M Guha (2000)Reproductive Age Span Among The SawaraTribal Temates Of Chhattisgarh- Journal of Ravishankar University, - jru-b.com Pp1-10
3. SRAJ GNANA (2019)Empowerment of Savara Tribal Women among the Marginalized communities of India: An Ethnographic profileIJMSSSR VOLUME 1 Pp 1-2
4. BV Sharma (2018) The Context of Changes in Family, Marriage and Kinship among the Savara of Andhra Pradesh - The Eastern Anthropolgist,academia.edu Pp 242-243
5. T Madhu Sudhanarao (2017)Ethnography of EasternGhat Savara Primitive Tribal Group of India Imperial Journal of Interdisciplinary researchgate.n Pp 559-560
6. Dr. Meera Swain Origin, Culture And Kinship Structure Of Hill SaoraSwainhttp://etribaltribune.com/ pp 1

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

जैसा खाए अन्न वैसा हो मन व्यक्तिगत पोषण की शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में भूमिका

डॉ. कपिला बाला पांचाल*

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शा. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारतीय भोजन परम्परा का बहुत रूचिकर इतिहास रहा है। प्रत्येक साम्राज्य के समूह में रसोईयों द्वारा संचालित एक शाही दरबार था जिनमें कई प्रकार के व्यंजनों में नवचार किए जाते थे:

सिंधु घाटी के लोग दालें और अनाज खाते थे। मांसाहारी भोजन को पकाने में ग्रिलिंग को प्राथमिकता दी जाती थी! जैसे आधुनिक युग में टिक्का। खाद्य संस्कृति में चार पैटर्न थे– प्रागैतिहासिक, वैदिक, मुगल और यूरोपीय। पनीर भारत में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया था।

जैसा खाए अन्न वैसा हो मन जैसा पिए पानी वैसी हो बानी।

प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार हम जो भोजन ग्रहण करते है वह न केवल हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है बल्कि हमारी मानसिक स्थिति और दुनिया के साथ हमारे व्यवहार को भी प्रभावित करता है। भगवद्गीता में भोजन को उसके पोषण मूल्य के आधार पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

सात्विक, राजसिक और मानसिक

सात्विक भोजन – सात्विक भोजन के शुद्धिकरण और शांतिदायक प्रभाव सर्वविदित है।

'सात्विक' भोजन हमेशा खाने के ठीक पहले तैयार किया जाता है हमेशा यह ताजा सरल रसदार आसानी से पचने वाला पौष्टिक चिकना और स्वादिष्ट होता है खाने वाले को भी शांतिपूर्ण और स्वस्थ महसूस कराता है। मानसिक जीवन शक्ति (Mental vital energy) को बढाता है भावनात्मक स्थिरता बनाए रखना है और स्पष्ट विचार प्रक्रियाओं को सुगम बनाता है।

राजसिक भोजन – शरीर और मन दोनों को स्फूर्ति प्रदान करने के लिए जाता है। अतिसक्रिता, बेचौनी, क्रोध चिडचिडापन और नींद न आने जैसी समस्याएं इन खाद्य पदार्थों के अधिक सेवन से जुडी हुई है राजसिक भोजन में स्वाद की चरम सीमा होती है चाहे वह खट्टा, तीखा, मीठा या सूखा हो यह बहुत अधिक वसा जैसे तेल या घी से तैयार किया जाता है। इसके सेवन से व्यक्ति बहुत अधिक भावुक तनाव युक्त और कई बीमारियों से ग्रसित हो जाता है।

मांस, अण्डे, मछली, दालें, हींग, मिर्च, तेज मसाले, लहसुन, प्याज आदि पदार्थ राजसिक की श्रेणी में आते है।

राजसिक आहार उन लोगों के लिए लाभदायक है जो अपने दैनिक जीवन में संयमित आक्रामकता को महत्व देते है जैसे सेना में सेवा देने वाले, व्यवसाय, राजनीति और खिलाडी।

तामसिक भोजन – तामसिक आहार में ऐसे खाद्य पदार्थ शामिल है जो मानसिक सुस्ती, उलझी हुई सोच और दिशा निर्देशन की हानि का कारण बनते है। ये वो भोजन है जो अधिक पके दम, किए हुए प्रसंस्कृत किए हुए, बार–बार पकाए, गर्म किए गए, बहुत अधिक चिकने भारी और जिनमें कृत्रिम परिरक्षक होते हैं। आम धारणा है कि तामसिक भोजन मांस मछली, शराब, लहसुन, प्याज तंबाकू आदि है। इनकी अधिकता भी तामसिक है।

पेस्ट्री, पिज्जा, बर्गर, चॉकलेट, शीतल पेय, तंदूरी रोटी, रूमाली रोटी, डिब्बाबंद और जमे हुए खाद्य पदार्थ अत्यधिक चाय, कॉफी जैसे केचप नूडल्स चिप्स अचार आदि इस श्रेणी में शामिल है।

आयुर्वेद का मूलभूत आहार – स्वास्थ्य की आयुर्वेदिक अवधारणा शरीर में रोग की अनुपस्थिति के विशिष्ट प्रतिमान से आंकी जाती है आचार्य सुश्रुत के अनुसार शारीरिक स्वास्थ्य में पर्यावरणीय मानसिक स्थिरता, आध्यात्मिक कल्याण, सामाजिक कल्याण, आहार और जीवनशैली की आदतें दैनिक जीवन के रूझान और जीवनशैली में नौसमी बदलाव के साथ ही विशिष्ट बीमारी का इलाज और प्रबंधन शामिल है।

आयुर्वेद के अनुसार हम सभी अपने पर्यावरण का एक सूक्ष्म जगत हैं, जो पांच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से मिलकर बना है, मानव शरीर में इन 5 तत्वों को तीन जैव उर्जावाद द्रव्यों जिन्हे दोष कहा गया है में बांटा गया है।

इन दोषों को कफ (पृथ्वी और जल), पित्त (अग्नि और जल) और वात (वायु और आकाश) कहा जाता है। सभी तीनों दोष व्यक्ति में मौजूद होते है और समस्त कार्यो में अपना योगदान देते है। माता पिता के आनुवांशिक लक्षणों का भी इन पर प्रभाव पडता है तो जन्म के समय बनता है।

आयुर्वेद मे स्वास्थ्य के लिए स्वम देखभाल को महत्वपूर्ण कहा गया है कई बीमारियों का कारण खराब पाचन तंत्र (अग्नि) को भी माना गया है जो पारंपरिक पश्चिमी विचारधारा से भिन्न है। समय के साथ बीमारी किस प्रकार विकसित होती है इस प्रक्रिया में छ: चरण होते है–

1. संचयन (Accumulation)– तीन मुख्य दोष स्थलों में से किसी एक में स्थानीकृत होने पर विचलित होता है पेट (कफ) छोटी आंत (पित्त), बडी आंत (वात)
2. वृद्धि, (Aggravation) उचित देखभाल के अभाव में बडी आंत में विकार जमा हो जाते है।
3. अतिप्रवाह, (overflow) असंतुलित दोष रक्त संचार के माध्यम से

पूरे शरीर में फैल जाते है।

4. गति और स्थानीयकरण (**Moving and Location**) ये दोष कमजोर अंगों व उतकों के साथ गतिशील होकर रोग स्पष्ट होने तक निष्क्रिय रूप् में जाकर जमा रहते है।
5. अभिव्यक्ति (**Manifestation**) – बीमारी के प्रारंभिक लक्षण जांचों के द्वारा पता चलते है। जैसे मधुमेह, कैंसर, डिप्रेशन आदि
6. कॉनिक, जटिलताएं (**Chronic complications & distinction**) और इस प्रकार रोग एक गंभीर रूप ले लेता है।

आयुर्वेद, मनोविज्ञान और अव

Entric nervous system (ENS)आंतरिक तंत्रिका तंत्र जिसे आमतौर पर दूसरा मस्तिष्क माना जाता है। GI प्रणाली में स्थित न्यूरॉन्स का एक संग्रह है और लगभग 100 मिलियन न्यूरॉन्स और 30 से अधिक विभिन्न न्यूरोट्रांसमीटर्स घर है। आधुनिक युग में सिरेटोनिने की दवाईयां दी जाती है जो डिप्रेशन रोधक होती है। शरीर का अधिकांश सिरेटोनिन GI Track के भीतर पाया जाता है और मुख्य रूप से आहार, व्यायाम, प्रकाश के संपर्क और सकारात्मक भावनाओं द्वारा निर्मित होता है।

उच्च कैलोरी सेवन से औद्योगिक देशों में हदय रोग, टाइप–टू–मधुमेह और मोटापे की ज्यादा समस्या है।

अमा यानि (आयुर्वेद के अनुसार शरीर मे विषाक्त कार्यो की जड)– आयुर्वेद प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति हमें सिखाती है कि स्वास्थ्य का अर्थ केवल बीमारियों से मुक्ति ही नही बल्कि शरीर, मन और आत्मा में संतुलन बनाए रखना भी है।

अमा आयुर्वेद की अवधारणा है जिसे अक्सर पाचन और चयापचय (अग्नि) के कमजोर होने पर बनने वाली अग्नि, अवशेषों के रूप में वर्णित किया जाता है। समय बीतने के साथ यह शरीर की नाडीयों को बाधित कर देता है और दोषों के संतुलन को बिगाड देता है और ओजस (शक्ति और लचीलेपन से जुडा महत्वपूर्ण तत्व) को कम कर देता है इससे शरीर रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है जिसे हम (Low Immunity) रोग प्रतिरोधक शक्ति कम होना कहते है। इससे चिडचिडापन मनोदशा में उतार चढाव और ध्यान केंन्द्रित करने में कठिनाई भी होती है। त्वचा और जोडों में तकलीफ होने का भी यही कारक होता है।

योग, प्रणायम, नियमित सैर, जैसी जीवनशैली की आदतें रक्त संचार और पाचन को बेहतर बनाती है। त्रिफला, त्रिकटु और गिलोय के सेवन जैसे महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक उपचार प्रात: गरम पानी का सेवन, पंचकर्म आदि के द्वारा स्वास्थ्य को उत्ताम बनाया जा सकता है।

(आयुर्वेद में अमा विषाक्त पदार्थो की जड को समझना) यद्यपि कई आहार कार्बन डाई ऑक्साइड और जल में उपापचयित होकर जीवन के लिए उर्जा उत्पन्न करते है पर हमारे दैनिक आहार में कुछ रसायन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीन अभिव्यक्ति (Gene Expression) को बदल देते है। न्यूट्रीजिनोमिक्स एक प्रणाली जैविक विज्ञान है जिसे पांच प्रमुख सिद्धांतो द्वारा समझा जा सकता है।

1. कुछ व्यक्तियों में और कुछ स्थितियों में अनुचित आहार दीर्घकालिक रोगों के लिए जोखिम से भरा हुआ है।
2. सामान्य आहार रसायन (General Food Chemical) जिन अभिव्यक्ति या जीनोम संरचना को बदल लेते है।
3. स्वास्थ्य पर आहार का आनुवांशिक प्रभाव पडता है। जैसे किसी विशेष प्रकार के भोज्य पदार्थ से एलर्जी या अपच।
4. कुछ जीन या उनके सामान्य रूप आहार द्वारा नियंत्रित होते है जो दीर्घकालिक रोगों में भूमिका निभाते है।
5. प्रति व्यक्ति पोषण आवश्यकताओं में फेरबदल करके उसके जीन संरचना के अनुसार आहार प्राथमिकताएं बनाई जा सकती है जिससे वह कई गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं जैसे मधुमेह मोटापा आदि से अपने आप को सुरक्षित रख सके। इसे (Genotype diet) कहा जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Journal of ayurveda and integrative medicine vol. 10 issue 1 january march 2019 page 59-66 (A Cross comparsion between ayurvedic etiology of major depressive disorder and bidirectional effect of gut dysregulation.
2. S. pole et al (2006) ayurvedic medicine the principle of traditional practice Edinburg: charchil Livingstone psychology international (2016) APA participates in the national academy of psychologists silver jubilee conference in Allahabad Psychol int news 27 (1)
3. S.K. srikanthamurthy (2004) Illustrated susiruta samohita : text English translation notes, appendices and index.
4. V.lad and R.E. Svoboda et al (2002) textbook of ayurveda valume 1 fundamental principles of ayurveda
5. V.D. lad (2006) text book of ayurveda vol.2 A complete guide to clinical assessment ayurvedic press abuquerque NM
6. D.A. Mrazek J.C. mornberger at al (1996-2013) A Review of the clinical economic and socital burden of treatment resistant dipression PS psychitr sery 65 (8) 2014 PP 977-987
7. M lyte pryan (2014) microbore endocrinal the microbiota gut brain axis in health and disease springer verlog newyork ny united states
8. Dr. DY patil ayurvedic college and research centre pune NIRF 2024
9. Jim kaplit Ann. N.Y. acead sci 1035 64-79 (2005) new York academy of sciences doi 10.1196 annals 1323.011

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054, April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Graph Theory: From Euler's Foundations to Modern-Day Applications

Dr. Meenakshi Salviya (Rawal)*

*Assistant Professor (Mathematics) PMCoE Maharaja Bhoj Govt. P. G. College, Dhar (M.P.) INDIA

Abstract - The study reviews modern developments along with prospective research avenues because graph theory continues its essential role in solving practical situations.

Introduction - Graph theory is a dynamic and evolving branch of mathematics that focuses on the study of relationships and connections between objects. Its origin can be traced back to simple puzzles, particularly those involving the connection of land areas by bridges. Although these early problems appeared trivial and recreational, they played a crucial role in stimulating mathematical curiosity and creativity. As noted by researchers like Norman L. Biggs, the beginning of graph theory were humble, often arising from puzzles designed to test ingenuity rather than to develop deep mathematical ideas. However, despite this simplicity, such Problems attracted the attention of mathematicians and gradually transformed into a subject rich in theoretical depth and complexity. Overtime, graph theory has developed into an exciting field with wide-ranging applications. It helps in understanding real-world networks such as brain networks, communication systems, and epidemiological structures.

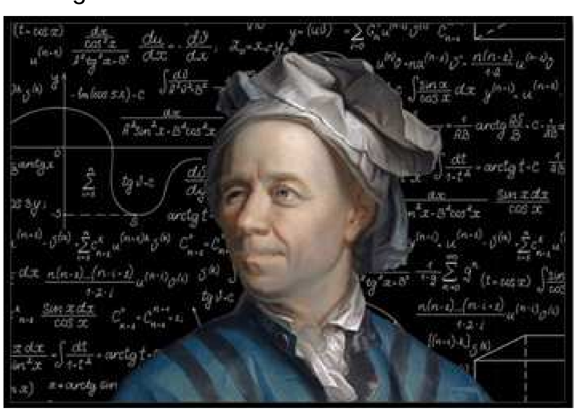

The subject has expanded both theoretically and algorithmically, influencing various disciplines beyond mathematics. One of the most significant modern developments is the application of graph theory in biology. Researchers, including Martin Nowak at Harvard University, have explored how network structures affect evolutionary dynamics and the process of natural selection, originally proposed by Charles Darwin. This has led to the emergence of a new interdisciplinary field known as 'Evolutionary Graph Theory', which combines graph theory, probability and mathematical biology. Thus, from its modest beginnings in simple puzzles, graph theory has grown into a powerful and essential tool for analyzing complex systems across multiple domains.

The Origin of Graph Theory

Leonhard Euler: The Swiss mathematician Leonhard Euler (1707-1783), popularly known as the 'Analysis Incarnate', was undoubtedly a great genius who has contributed to many different, seemingly unrelated fields such as the theory of music, ship designs, complex analysis, number theory and so on. On 26 August 1735, he presented a paper titled 'solutio problematis and geometriam situs pertinentis' (on the solution to a problem in the geometry of position) at the St. Petersburg Academy. It was actually a simple looking puzzle set in the old Prussian city of Königsberg (called Kaliningrad (Russia) since 1946) and set on both sides of the Pregel river, the islands Kneiphof and Lomse. These two islands and the two mainland areas were connected to each other by seven bridges. The problem which later came to be known as the celebrated 'Königsberg Bridge problem' (KBP) was to find a route to travel from any of the four land areas (Figure 1), travel each of the seven bridges exactly once and return to the same land area. Euler used an ingenious argument to show that such a route is not possible. In this way the year 1736 became the birth year of graph theory. In graph theoretic terminologies, the graph of the Königsberg Bridge problem is a multi graph of order 4 and size 7 which is not Eulerian. It is not Eulerian because by the Euler-Hierholzer theorem, a connected graph has an Eulerian circuit if and only if every vertex has an even degree. But it is a less known fact that Euler in his paper never used the term 'Graph'. It was the British mathematician J.J. Sylvester (1814-1897) who used the

term 'Graph' for the first time in his paper titled Chemistry and Algebra, which appeared in Nature in 1878. Thus, what began as a simple and recreational puzzle, led to the foundation of graph theory, a powerful branch of mathematics that is now widely used to analyze complex networks in science, technology, and real-world.

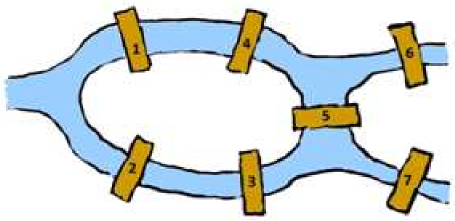

Figure 1

Some Historical Problems in Graph Theory: Here are some important historical problems in graph theory that played a key role in its development:

(1) The Four Colour Problem: The problem was first proposed on October 23, 1852, by Francis Guthrie. While coloring a map of the countries of England, Whether four colours are sufficient to colour different countries in any map, if neighbouring countries are coloured differently. This was the origin of the much celebrated 'four-colour problem' (Four colour conjecture - 4CC). The Four colour conjecture (4CC), states: Four colours are sufficient to colour the different regions of any map drawn in the plane or on a sphere so that no two regions with a common boundary line are coloured with the same colour. Francis Guthrie's brother, Frederick, shared this observation with his professor, Augustus De Morgan. De Morgan was intrigued and wrote to the famous mathematician Sir William Rowan Hamilton about it. Interestingly, the text notes that De Morgan was born in Madurai, Tamil Nadu. In 1878, another celebrated British mathematician Arthur Cayley (1821–1895) publicised this problem in a meeting of the London Mathematical Society. A proof was given by the London-based barrister Alfred Kempe (1849–1922) in 1879, which remained as a proof for about eleven years. In 1890, a student at Oxford University, Percy Heawood (1861–1955), found an error in Kempe's argument and proved, essentially using the 'Kempe chains' argument, the "Five Colour Theorem: Every map can be coloured with five colours." However, reducing the number from five to four took more than eighty years. Many attempts to solve the four colour problem through various, different means, spanning about 120 year enriched not only the field of graph theory and in particular the theory of graph colouring but the whole of mathematics.

2. Chess Board problems: Chess Board problems occupy a central position in discrete mathematics, offering a rich interplay between combinatorial structures and algorithmic reasoning. Earliest such problem involving the movement of knights dates back to Guarini in 1512. A typical and well-known problem was, what is the minimum number of queens that can be placed on an n x n chess board 'dominating' the board, i.e., such that each square is either occupied by a queen or attacked by a queen? For the standard 8 x 8 chess board: it is known that this number is 5. But it is quite surprising that there are 4860 different ways that these five queens can be arranged to dominate the board. The Norwegian mathematician Øystein Ore (1899-1968) converted these problems to graph theoretic ones and initiated the study of 'Domination theory in graphs'. Determining domination numbers for various chessboard graphs remains an active area of research, involving combinatorial optimization and probabilistic methods. One of the most studied problems is the knight's tour, which seeks a sequence of moves that visits every vertex exactly once. In graph-theoretic terms, this corresponds to finding a Hamiltonian path (or cycle) in the knight graph. The 'Hamiltonian problem' named after the legendary Irish mathematician William Rowan Hamilton (1805-1865). In 1857 Hamilton invented the 'Icosian game' - to find such a cycle along the edges of a dodecahedron. He had to commercialise this game for his earnings.

3. Chemical graph theory : Chemical graph theory is a branch of mathematics that applies graph theory to the study of chemical compounds. In this approach, molecules are represented as graphs, where atoms are treated as vertices and chemical bonds as edges. In graph theory, a connected graph without cycle is called a tree. Many organic molecules, specially alkanes (saturated hydrocarbons) can be represented as tree structures because they contain only single bonds Methane, ethane, propane, etc. are some examples and they have the general chemical formula C_nH_{2n+2} . Since its planar representation is a connected graph with 3n+2 vertices and 3n+1 edges, it is a tree. An important result in this field is given by Arthur Cayley in 1889. It states that the number of labelled trees on n verticles n^{n-2}. This formula is very useful in counting possible molecular structures (isomers) of compounds. Even before the introduction of the term 'graph', Cayley considered 'diagrams' made of points labelled by atoms and connected by links into an assemblage. Such earlier studies have now ushered a new branch called chemical graph theory. It provides a powerful link between mathematics and chemistry. By representing molecules as graphs, it allows scientists to analyze complex chemical structures using mathematical tools, making it an essential area in both theoretical and applied research.

Spectral Graph Theory: Spectral Graph Theory is an important branch of mathematics that connects graph theory with linear algebra. It studies graph theory with linear algebra using matrices such as the adjacency matrix and the laplacian matrix. The eigen values of these matrices, known as the spectrum of the graph, provide deep insights into the structure and properties of graphs. In chemistry, especially in mathematical chemistry, graphs are used to represent molecules. Atoms are treated as vertices and

chemical bonds as edges. These descriptors help in understanding Chemical properties, reactivity, stability of molecules. One of the earliest approaches came from molecular orbital theory introduced by Erich Hückel in the 1930s. Later this idea was extended using graph theory by Ivan Gutman and others. The Wiener Index, Introduced by Harry Wiener in 1947, it is one of the oldest topological indices. It is defined as the sum of shortest path distances between all pairs of vertices in a graph. The Hosoya Index, Introduced by Haruo Hosoya in 1971, it counts the number of matchings in a graph.

Applications of Graph Theory:

(1) Biology and Medical Research: Neural networks used to model brain connectivity, epidemiology helps in studying disease spread using graph-based simulations, Genomics DNA sequencing and protein interaction networks use graph theory.

(**2) Computer Science and Technology:** Graph theory is widely used in computer science & technology to model and solve real-world problems. It helps in designing efficient computer networks for routing data, analyzing large datasets in data mining and allocating frequencies in mobile networks using graph colouring. In web design, it structures websites as interconnected graphs, while in language processing, it aids in syntax analysis through parse trees. Additionally, graph theory is applied in error detection and correction during code decoding and in optimizing electronic chip design by improving circuit connections.

(3) Physics and Chemistry: Chemistry graphs serve the purpose of modeling chemical compounds. In statistical biochemistry, certain sequences of cell samples can be eliminated to resolve conflicts between two sequences. Graph theory has a significant impact on physics & chemistry. Chart theory is employed to study molecules. The three dimensional arrangement of intricate artificial atomic systems can be quantitatively assessed by gathering statistics on graph theoretical characteristics concerning atom topology.

(4) Daily life: Graph theory helps in designing circuit connections such as series and parallel networks. It is useful for analyzing social relationships, understanding how information or rumors spread, and studying influence among individuals. It is also applied in cyber security to detect fraud and identify weak points in networks. It is used in transportation, GPS system, route optimization, and traffic management. Social media platforms also use graph theory to analyze user connections and suggest friends.

Conclusion: Graph theory is an extraordinary mathematical tool with extensive applications across various domains, including social networks, physics, biology, cyber security, computer science, and transportation. Its ability to model complex networks—ranging from communication systems to platforms like Facebook —makes it an essential tool for analyzing real-world problems. Thus graph theory has evolved from a theoretical curiosity into a powerful and indispensable framework for understanding connectivity, structure, and relationships in both natural and artificial systems.

References:-

1. Biggs, N. (1993), Algebraic Graph Theory, Second edition, Cambridge University Press.
2. Behzad M. and Chartrand G. (1971), Introduction to the Theory of Graphs.
3. John J. Watkins, (2004), Across the Board: The Mathematics of Chessboard Problems, Princeton University Press.
4. Thomas L. Saaty, Paul C. Kainen, (1977), The Four-Color Problem, Assaults and Conquest, McGraw-Hill International Book Company.
5. Vijayakumar Ambut (2022), Graph Theory: 1736-1936 and Beyond – Part I, The Mathematics Consortium.
6. Pushpa Nand Dhananjaymurthy B. V. (2023), Applications of Graph Theory in Biology and Construction, Int. J. of Math. Comput. Res. Vol. 11.
7. Kumar S. and Yadav R.B.S. (2016), Application of Graph Theory in Network Analysis, Int. J. Math. Trends Technol. Vol. 31.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Cultural Integration of Afghan Refugees in India

Mohammad Ali Irfan* Dr. Virendra Singh**

*Ph.D. Scholar (Sociology) Faculty of Arts, The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara (Gujarat) INDIA

** Assistant Professor & Head (Sociology) Faculty of Arts, The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara (Gujarat) INDIA

Abstract: This paper studies the cultural integration of the refugees of Afghanistan in India, which focuses on the way of their dealing with identity, adaptation and belonging through everyday practices. Through primary data collection from 203 refugees who are living in Delhi, the research finds out four important indicator of cultural Integration that includes language learning, clothing, food and marriage norms within the social and cultural context of the host society. Structured questionnaire and descriptive statistical analysis through SPSS is used to apply Ager and Strang's (2008) Indicator of Integration framework to assess the identity continuation, social connection and cultural facilitators of the refugees. Findings show that language acquisition has a key role in access to work, communication and social participation. Although there is challenges of language for elders and those how come from limited educational backgrounds, most of the respondents are talking about their fluency and proficiency in Hindi and English. Clothing acts as a symbol for cultural preservation and also strategic adaptation, where refugees are wearing both Indian and Afghanistan's style to keep the balance and acceptance. Through food they show their cultural flexibility in which they keep their traditions as well as change the recipes with Indian taste and share food with Indian neighbors. Marriage norms underlines a concern between openness and endogamy among the families which shows some changes in social values due to long period of displacement. Generally, the study highlights that cultural integration of the refugees of Afghanistan in India is neither a complete assimilation nor totally exclusion. It is a dynamic process which they form based on the opportunity and structure of the host society. This study provides a meaningful overview about the refugee integration in South, and underscores the everyday practice as an important pathway to cultural preservation and social inclusion.

Keywords: Afghanistan,refugee, cultural integration, identity, language, food, clothes, marriage.

Introduction - One of today's global order's characteristics is refugee movement and forced displacement that changes cultures, societies and policies across regions (Castles, de Haas, & Miller, 2014). Among displaced groups, the adaptation process for refugees are more complex as they try to find safety, while at the same time deal with cultural maintenance and social belonging in the new society. Cultural integration, especially through language acquisition, everyday practices and social interactionplays a key role in determining refugees' long-term well-being and participation in host communities (Ager & Strang, 2008). In the context of South Asia, India is an important destination for refugees from Afghanistan since a very long time back; however, it remained understudied. Thus, examining the cultural integration of Afghan refugees is necessary and timely.

Afghanistan's citizens are experiencing displacement due to several decades of war, political instability, intervention of foreign countries, and of course change of regime that took place once again in 2021 with return of Taliban to power. Because of these reasons, constant waves of the country's citizens are seeking refuge for protection in neighboring and distant countries, including India (UNHCR, 2023). Although India is a signatory to the 1951 Refugee Convention like many Western countries, it has hosted various groups of refugees under ad hoc humanitarian arrangements (Bose, 2020). Refugees from Afghanistan, especially those who are living in Delhi, has a special socio-legal status, which often rely on informal network, community solidarity and cultural resources to handle their daily life. In this context, cultural integration is mostly about daily practices of life, adaptation and negotiation, and less about formal policy framework.

According to Berry, cultural integration refers to the vibrant process of refugee's engagement with cultural values and norms of the host society while at the same time maintaining their original cultural identity (Berry, 1997). Contemporary scholars emphasizing that unlike assimilation, integration is a two-way and multi-faceted

process that makes it possible to preserve cultural identity alongside adapting the new culture (Penninx & Garcés-Mascareñas, 2016). Cultural integration for refugee communities embeds in the daily practices of life like language use, food, clothing and the norms among families, which form the feelings of acceptance, belonging and inclusion.

The key elements of integration is language, which enables the refugees to have access to work, education, health services and social networks (Ager & Strang, 2008). Being proficient in host country's language, promotes level of communication with local population, facilitates public participation, and reduces social isolation. In countries like India which multi-languages like Hindi, English and other regional languages are spoken, language acquisition can be considered both as opportunities and challenges for Afghanistan's refugees. While learning English may ease communication for some, limited access to formal language instruction and differences in the structure of languages may be a challenge for effective integration (Bloch, 2008). The perception of language acquisition among refugees as a means of empowerment or source of stress, impact their integration seriously.

Another important element of cultural integration is clothing. It is expressed through visible practices of daily life and functions not only as an identity marker but also as a site of negotiation between social adaptation and cultural preservation (Entwistle, 2015). For the refugees of Afghanistan, traditional dress functions as an important sign of resistance to cultural erasure and preserving their own culture. Also wearing traditional attire in public spaces attract unwanted attention, stereotyping or discrimination that influence their decision on adapting to the clothing style of the host society. These choices show a bigger concern between achieving social acceptance within host society and preserving cultural heritage.

Food is another important aspect of cultural integration, which closely linked to identity, memory and social belonging (Counihan & Van Esterik, 2013). For Afghan refugees, preparing and consuming their traditional dishes allow them to preserve their cultural bonds and have the sense of home in a foreign land. However, having access to authentic ingredients in the local markets might be a serious challenge for them. Taking and using the Indian ingredients with Afghanistan's recipes show how they negotiate with cultural maintenance creatively in the new context. In addition to that, sharing food with the Indian neighbors can help them promote trust, intercultural understanding, better social interaction and social cohesion (Wessendorf, 2014).

Another key factor of cultural integration, especially with the diasporic communities is marriage. The practice of marriage mainly happen in cultural expectation, kinship structure and moral values, which often functions as a group identity mechanism (Kofman, 2004). Afghan refugee's preferences are endogamous marriage, arranged-marriage system and inter-community partnership for the purpose of cultural continuation. At the same time, because of spending long time in India, their idea might have changed regarding the marriage, and the idea of intercultural marriage and changes in gender roles are acceptable for them. These changes show that how the host society's culture can influence on the marriage norms and intimate social institutions of the refugees.

This paper examines the cultural integration of Afghan refugees in India with focus on four important factors: language use, clothing, food habits and marriage norms. It is based on the field survey data which studies the daily life practices of refugees rather than relying on abstract policy framework. The questionnaire based approach enables it to capture and gain first-hand information about the integration assessment, challenges and adaptation of refugees. By showing the real lived experience of refugees, this study contributes meaningfully to understand integration, which is a negotiated process, formed by structural barriers and cultural institutions.

For doing this, the paper engages with Ager and Strang's (2008) influential "Indicators of Integration" framework, particularly the domains of social connection, facilitators (language and cultural knowledge), and identity. While the framework has been widely applied in Western contexts, its application to the Indian setting gives valuable insights into how integration happens in non-signatory, Global South host countries. The findings aim to enrich sociological debates on refugee integration, diaspora adaptation and cultural resilience, while also informing policy discussions on refugee inclusion in India.

Literature Review

One of the main dimension of refugee settlement, which build everyday interactions, social belonging and long-lasting inclusion in the host society, is cultural integration. For refugees, integration is more than an economic and structural process; it is a very deep cultural process that include language acquisition, adapting to social norms, negotiating identity and preserving of cultural heritage (Berry, 1997; Ager & Strang, 2008). Afghan refugees in India forms a different diaspora community whose cultural integration unfolds in a country which is not signatory of refugee conventions. In this country which is multilingual and culturally diverse, they build a historically people to people connection between Indian and Afghanistan (Bose, 2020; Oberoi, 2022).

Mainly the existing studies on Afghan refugee and displacement has paid attention on issues like security, legal status and humanitarian protection, and a very limited work has been done on cultural integration and daily life of refugees, especially in the context of South Asian host countries (Monsutti, 2005; Chatty, 2017). This paper attempts to fill this gap by studying the language use, food, dress, and marriage norms among Afghan refugees in India, which are the key factors of cultural integration. Using the

questionnaire based approach, makes it possible to understand how refugees balance between the adaptations to Indian culture while simultaneously preserve their own cultural identity.

Conceptualizing Cultural Integration: Integration is generally considered as a dynamic and multi-directional process rather than a one-way assimilation to the host society (Castles et al., 2014). Ager and Strang's (2008) important framework recognize social connection, facilitator and foundations as key domain of integration. In this method, cultural understanding and language are the main facilitators which makes the participation in economic, civil and social life possible.

According to Berry's (1997) theory of acculturation, migrants and refugees take various strategies of integration, separation, assimilation or marginalization which that depends on their ability and desire to maintain their original culture and associate with the host society's culture as well. Thus, cultural integration does not really mean the loss of their own culture, but it is an effort to keep their culture and while at the same time adjust to the culture of the host country.

In India's context, cultural integration is built by language diversity, pluralism and informal social interaction instead of formal integration program which is led by the state (Oberoi, 2022).In this case, Afghan refugees should handle the situation and consider language proficiency and social adjustment more essential as they do not have a formal refugee status,

Language, Cultural Knowledge and Everyday Interaction: Language acquisition is considered as one of the most important indicators of refugee integration (Esser, 2006; Ager & Strang, 2008). Being proficient in the language of host society enable the refugees to have access to work, education and social networks. On the other hand not being proficient in the language of host society cause them dependency and isolation (Phillimore, 2012). For Afghan refugees in Delhi and Hyderabad, Hindi and English proficiency is satisfactory and decrease in isolation has been shown (Panjabi & Rajan, 2019). However, this language acquisition is not the same for all. Younger people can easily learn the local language and content which is produced in media, but older people attempt to speak in their own languages like Dari and Pashto for emotional continuity (Farooqui, 2020).

Based on studies, participating in language classes and the frequent use of the local language in every day settings speed up the social confidence and cultural familiarity (Kleist, 2018). At the same time, refugees often face challenges and barriers in the lack of formal guidance, age-related learning obstacles and psychological stress that make language learning difficult (UNHCR, 2013). The idea about language proficiency not only impacts functionbenefits positively, but also acceptance within the host society.

Cultural Practices, Dress and Identity Negotiation: Cultural integration involves continuous negotiation between adaptation and visibility. Dress particularly functions as a visible markers of difference and identity (Goffman, 1963). Traditional Afghan clothing allows Afghan refugees to preserve their culture and show ethnic identity, particularly in the context of diaspora (Al-Ali & Koser, 2002). But it can also face refugees to unwanted discrimination, stereotype and attention.

Studies show that migrants often select context dependent strategies and wear their traditional attire in private or community spaces, while adapt to the clothing style in public to avoid social exclusion (Anthias, 2012). Adapting the dress to the host society facilitate social acceptance and decease everyday tension, but at the same time increase the internal tension about their identity preservation.

Access to those cloths which are culturally important, further impacts the identity preservation. Limitation in availability of Afghan clothing strengthen the feelings of cultural loss and displacement in the host society, especially among older and women refugee members (Chatty, 2017). Therefore, clothes choosing are not merely aesthetic but also shows a powerful linkage to belonging, identity and cultural preservation.

Food Practices and Cultural Belonging: Food plays a crucial role in maintaining cultural memory and social connection within refugee communities (Sutton, 2001). Consumption and preparation of Afghan traditional food enable refugees to rebuild a sense of home and pass this knowledge to next generations (Longhurst et al., 2017). From another side, limited access to the authentic ingredients for making Afghan food products can weaken this cultural continuity. Because of limited access to authentic Afghan ingredients in India, refugees adapt traditional Indian recipes as an alternative (Rahimi & Sinha, 2020). This adaptation is what Bourdieu (1990) calls it "cultural improvisation" that keep cultural heritage and at the same time facilitate daily survival.

Scholars consider food sharing as a powerful tool for social bridging, promoting trust and intercultural interaction between host society and refugees (Wise, 2011). Sharing and exchanging food with Indian neighbors by Afghan refugees is usually underlined as a means of social connection and mutual understanding (Nair, 2021). At the same time, using Indian ingredients for making Afghan dishes show hybridztion of culture rather than cultural loss. This method of preparing food reflects integration among refugees while maintaining their own culture as well (Bhabha, 1994). Access and absence of Afghan cuisine in the local Indian markets significantly impact the sense of cultural belonging and emotional well-being of the refugees, especially in their daily life practices.

Marriage Norms, Family and Cultural Continuity: Marriage arrangement is one of the most important cultural institutions among refugees that functions as mechanisms

for social cohesion and preserving cultural norms (Kofman, 2004). For Afghan refugees, marriage within their own ethnic community is frequently seen, and considered this is very important for preserving cultural traditions, religious and language values.

Among the Afghan refugees, the common type of marriage is arranged marriage which shows the continuation of pre-migration norms (Monsutti, 2005). However, exposure to the host community and long period of displacement can bring gradual changes in their perception about marriage, gender role and selection of partner. Based on studies, migration often brings gradual changes in family practices rather than a complete transformation (Charsley, 2012).

Intercultural marriages may still face resistance because of concerns about the community acceptance and cultural differences, though it is increasingly seen in diaspora settings. Endogamous marriage preference among the diaspora communities imply continuous efforts for preserving cultural identity, even if they adapt to the larger social norms within the host society.

Methodology: This study uses quantitative method to examine the cultural integration of Afghan refugees in India. It main focus is on language learning, food habits, dress and marriage norms. Primary data were collected through a structured questionnaire to find out the respondents' experience and attitudes of integration in the Indian society. Places like Lajpat Nagar, Bhogal, Ashram, Tilak Nagar and Malviya Nagar in Delhi where mostly Afghan refugees are residing were selected as the research areas. The study population included those who lived in India at least for two years to make sure enough cultural exposure. Purposive sampling is used and a total number of 203 respondents were selected based on the relevance and consent, ensuring the ethical matters of the research.

The questionnaire contains a total of 21 items that include the key aspects of cultural integration like language proficiency (Hindi, English and regional languages) dressing, food habits, and perception towards inter and intra-community marriages. Responses were rated based on five-point Likert scale (Strongly Agree, Agree, Neutral, Disagree and Strongly Disagree). To make sure that the questionnaire was clear and understandable, both languages of English and Dari/Persian were used to allow respondents to choose their preferred language.

All data were collected in person and through a face to face interaction with respondents. Every participant was informed about the objectives of the study, confidentiality, anonymity and their voluntary participation in the whole process of data collection. Ethical guidelines were seriously follow during the study to consider sensitivity to percipients' refugee status and cultural dignity.

For analysing the data, the tool Statistical Package for the Social Sciences (SPSS) is used. Descriptive statics like frequencies, percentage, means and median are applied to summarize demographic information and cultural integration patterns. The analysed data underlined the adaptation trends, preservation of Afghan cultural identity and the challenges they faced in social and cultural integration. Overall, this methodology gives a precise, clear, systematic and ethical framework for studying and evaluating the cultural integration experiences of Afghan refugees in India.

Findings and Analysis: This part summarizes the key findings on the cultural integration of Afghan refugees in India based on data collected through questionnaires. It examines how refugees integrate into Indian society through indicators such as language use, clothing, cuisine and intermarriage.

Table 1: Demographic Background

No.	Variable	Category	N	%	Total
1	Gender	Male	132	65.0	203
		Female	71	35.0	
2	Age	Below 18	5	2.5	203
		19-30	96	47.3	
		31-40	61	30.0	
		41-50	31	15.3	
		51-60	10	4.9	
3	Marital Status	Single	111	54.7	203
		Married	92	45.3	
4	Religion	Muslim	197	197	203
		Sikh	2	2	
		Other	4	4	
5	Education	No Formal Education	50	24.6	203
		School Student	27	13.3	
		Under Graduate	64	31.5	
		Post Graduate	44	21.7	
		Ph.D.	7	3.4	
		Other	11	5.4	
6	Year of Residency in India	Below 5 Years	51	25.1	203
		6-10 Years	140	69.0	
		11-15 Years	9	4.4	
		Above 16 Years	3	1.5	

The respondents profile shows that 65% of participants are male and 35% female. Most are young and economically active, aged 19–30 (47.3%) or 31–40 (30%). Over half are single (54.7%), and 45.3% are married. They are predominantly Muslim with a small number of Sikh and other groups. Education levels are different, which 24.6% from no formal schooling to higher education, 31.5% undergraduate and 21.7% are postgraduates. Majority of them have lived in India for 6-10 years which indicate their long term settlement and cultural integration.

Table 2 (see in last page)

The findings from the table 2 show that language plays a key role for Afghan refugees to integrate into Indian society. Most of the respondents said about their proficiency in Hindi, English and other regional languages. It is almost three-quarters of respondents that their responses are

agree and strongly agree. This emphasizes the important function of language skills that are essential for employment, communication and social interaction. The small number of strongly disagreement indicates that language barrier exists for a minority of respondents.

More than fifty percent of the respondents had taken language classes since their arrival in India which show their effort for language adaptation. However, for those who had not taken such kind of classes, it implies unequal opportunities because of financial issues, time barriers or lack of institutional support that my cause their integration to slow down for some groups. Using the Indian languages in daily life, received the strongest positive responses that more than four-fifths said they are using regularly. It underlines that language learning in daily life has promoted interaction across ethnic lines, social inclusion and trust within the host society.

Nevertheless, for a big number of respondents learning local language is a challenge, which shows language adaptation is not very simple, particularly for adults and elderly group who are dealing with multilingual environment. The high level of proficiency and continuous obstacles for some of respondents highlights that integration is slow and gradual process that is formed by education, background and duration of staying time in India. Majority of respondents reported that language ability directly promote integration, and this is supporting the perception that language functions as connector to employment, social connection and institutional participation. Nearly all respondents agreed that successful integration requires learning local languages. Overall, it shows that Afghan refugees in India are strongly motivated toward language and social integration, though it is important to have accesses and availability in language learning programs easily.

Another indicator for studying cultural integration is clothing. For Afghan refugees in India it is a way of negotiating identity, visibility and being accepted in daily life. Clothing functions both as symbol of cultural maintenance and flexible tool of adaptation. 69.5% percent of respondents agreed that traditional Afghan clothes help them preserve their cultural identity and by this express their identity belonging in a diasporic world. A high number of 72.9% said that they feel comfortable while wear their traditional clothes in public areas, which shows the tolerant social environment in India that visible cultural differences do not cause isolation and exclusion. The small number of disagreement, reveals that self-expression of Afghan identity in public is generally accepted.

Similarly, a high number of respondents (61.1%) believe that adapting their drees to Indian design and norms facilitate integration, underlining a system of outward adjustment practice for refugees to build inclusion and social acceptance. The 28.1% percent of neutral responses shows variation across personal and situational context. Access to traditional clothing does not seem to a big problem. A number of 40.4% disagree responses show that thy face difficulty finding traditional Afghan dressing in the local market. Discrimination is not reported very prevailing. 45.3% of respondents show their disagreement about Afghan clothes that attract bias. There might be some feeling of discomfort, but clothing is not mainly the reason for exclusion. Generally, clothing functions both the roles of culture maintenance from one side and promoting adaptation on the other. Afghan refugees found the balance of keeping their cultural identity and blending it with contextual adjustment which is necessary for coexistence without a cultural loss.

Food as one another important indicator of cultural integration. It shows that Afghan refugees in India balanced between their cultural preservation and adaptation in their daily life and use the food as an identity marker from one side and as connector to integration from another. Three-fourth of the respondents reported that prepare their traditional Afghan food, which this highlights food as a key player for maintaining cultural identity, particularly when other markers are too much. Home-made food helps them keep their traditions, collective memory and a self of self-expression. At the same time, finding the Afghanistan's ingredients for most of the respondents is a big challenge. Many of them disagree that obtaining Afghan food products is difficult, which shows in the urban market they can find what need of the markets offer alternative for them. This material support by the host society helps not only cultural continuity but also lower their integration stress.

Moreover, food support social interaction. Nearly half of the participants talk about sharing Afghan food with their Indian neighbors and friends, which help them build good connection. Neutral responses by some of the respondents indicate that food sharing with neighbors and friends, depends on their social openness. But the positive impact shows food as welcoming and non-threatening way to bridge cultures. Also, it shows that because of the limited availability of Afghan cuisine in the market, their sense of belonging is not weakened. Most of the respondents show their disagreement or neutrality, which shows that belonging has its roots in home practices and community network rather than market access. It underlines the flexibility and of the refugees to maintain their identity beyond the structural barriers.

There is a very clear sign of adaptive integration is the prevalent agreement that changing Afghan recipes with Indian ingredients allows cultural heritage to thrive while adjusting to local life. This hybridization keeps traditions sustaining through strategic adaptation instead of resisting and accepting full assimilation. Overall, Afghan refugees in India kept a good balance of cultural preservation and modification for their integration. Food serves a role of collective identity symbol and at the same time as a tool for cultural negotiation and social connection.

The findings on marriage as another marker of cultural

integration shows a complex balance between preservation and adaptation among Afghan refugees in India. Most of the respondents agree with endogamous marriage and marrying to someone from their ethnic group as it help them keep their cultural identity, value and kinship connection. The scores of mean and median further confirm this collective tendency toward cultural preservation. About arranged marriage the attitude is contradictory. While many respondents support this as a community practice, the biggest number of them stay neutral, which shows they have different views, particularly the young and educated generations who are influenced by the host society's norms. This neutrality is sign of coexistence between tradition and emerging preferences that shows a transitional phase.

Views on intercultural marriage received very cautious responses. More than half of the respondents remain neutral, which implies such kind of attitude is neither accepted nor rejected, but it seems sensitive and dependent on the context. Neutrality might be a sign of ambiguity that they have fear of cultural dilution or are concerned about acceptance rather than refusal. From another side, a high number of respondents agreed that marriage expectations have changed since their living in India, and it reflects that interacting and being in touch with Indians influenced their perception about choosing partner, gender role and marriage norms. But still there is a high preference of partner selection from their own ethnic community, which underlines the importance of their shared culture and religion. At the same time, neutral responses and lower number of disagreement reflect the individual's independence in such kind of choices. Overall, marriage among Afghan refugees in India functions as a factor of cultural negotiation. No doubt that integration is not a complete assimilation, but it is a strategic and selective adaptation that core values are kept among the families, while the reinterpretation from the traditions also slowly transformed through interactions with the host society.

Discussion: The findings of the study on the Cultural Integration of Afghan Refugees in India reflects a comprehensive understanding about how Afghan refugees navigate identity, belonging and adaptation within the Indian society.

Through the key cultural factors of language, clothing, food and marriage norms the findings reflect that Afghan refugees have a keen desire for integration in the India society while at the same time maintain their own cultural identity very actively. They findings bring out that integration is not a direct process of assimilation but it is a balance between cultural preservation and adaptation that are impacted by social acceptance, individual agency and provided opportunities.

Language is one of the most important indicators that make Afghan refugees able to have meaningful connections within the host society. Majority of the respondents reported about their proficiency in Hindi, English of another local languages, which underscores the importance of language ability for work, communication and social participation. Using the Indian languages in their daily life shows that language has become a means of social trust and daily interaction for them. However, there are a few respondents who are facing language barriers, especially those who are coming up with new scripts or have limited access to learning opportunities. It reveals that while linguistic integration is becoming better, but still remains unequal process that is formed by availability to resources, level of education and staying time. The active participation of Afghan refugees in learning classes show their strong tendency for inclusion, which is suggesting language learning is not only a skill but also as a way of for opening the door of dignity, social acceptance and a sense of belonging in the host society.

Clothing as another factor of cultural expression shows a sophisticated navigation between adaptation and identity preservation. Majority of the participants talk about their traditional attire as a pride and feel comfortable in public, which show the acceptance of cultural diversity in India. This acceptance and tolerance functions as two processes. From one side, it allows the refugees to keep their cultural self-expression; on the other hand, adjusting to the social environment outwardly. In the finding more than sixty percent show agreement on adjusting their clothing style with the India design. It shows their flexibility that preserve their cultural heritage and blend with the cultural norms of the host society to adjust with the local expectations. Lower number of responses about discrimination reflect that clothing functions as tool for social connection and self-affirmation. Therefore, cultural integration is not about losing one's own culture, but about adjustment and evolvement the culture of the host society.

Food gives further insight about how Afghan refugees maintain their cultural identity through daily practices. The high number of responses in preparing traditional Afghan dishes underlines the important role of food as a vital connection to homeland, memory and cultural identity. Being able to find the Afghan ingredients without any serious challenges in Indian markets reflect that role of diaspora networks and urban infrastructure in facilitating cultural continuity. Also, food functions as social bridge which promotes the informal space for mutual respect and intercultural understanding through sharing Afghan dishes with Indian neighbors and friends. The combination of Afghan recipes with Indian ingredients highlights a creative adaptation of Afghan refugees in which they preserve their culture in a novel way. Through this culinary negotiation it can be understood that integration is not about losing their roots, but it is about evolving our culture in a new environment.

Marriage norms show the most complicated interplay of integration and adaptation. The preference for inter-ethnic group marriage demonstrate a continuing effort for

preserving cultural traditions, norms and community cohesion. However, willingness toward arranged marriages and intercultural unions shows transformation. Neutral responses show that tendencies toward intercultural marriage has interpreted cautiously. While maintaining cultural boundaries, they are increasingly exposed to diverse perspectives and transformed gender roles within Indian society. Changes in marriage expectations since their settlement in India implies a gradual transformation in family values that are influenced by cross-cultural linkages and generation shifts. Thus, marriage among Afghan refugees functions as a tool for cultural maintenance and a space where slow adaptation happens.

Overall, the discussion shows that Afghan refugees in India are active agent of integration rather than a passive receiver of change. They kept a balance between their cultural preservation and context flexibility to show that integration is successful when both belonging and self-preservation are allowed. The findings suggest that considering an appropriate social policy, especially one which provides equitable access to language learning and community support can further support this process. In the experience of Afghan refugees, integration is not loss of identity, but is rebuilding of it in the pluralistic and diverse social fabric of the host society.

Conclusion: They study on Cultural Integration of Afghan refugees in India shows integration is a complex, multifaceted and an ongoing process that find its root in daily practices instead of institutional framework. By analysing of language, clothing, food and marriage traditions, this research highlights how Afghan refugees deal with cultural preservation and adaptation in India's diverse socio-cultural society. The findings show that cultural integration among Afghan refugees is well balanced between full assimilation and rigid separation. The dynamic interaction is formed by social support, individual agency and the informal acceptance structure of the host society.

Language seems the most important and effective factor of integration. Being proficient in Hindi, English or other regional languages promotes their ability to communicate, find jobs and make social connection. While language challenges is there, especially for older category and less educated members most of them have very strong desire in learning and using local languages. They consider it crucial for their acceptance, freedom and dignity. This underscores the importance of language learning opportunities as a symbolic and practical way of inclusion.

Cultural expression through dress among Afghan refugees shows that they have an effective balance between their cultural heritage and adaptation. Most of them continue to wear their traditional attire for expressing their identity, while also taking the Indian styles to show belonging and decrease social exclusion in public spaces. Low frequency of discrimination about clothes highlights the tolerance of India's social environment and culture, where new and difference culture are accepted. This reflect that the prevailing way of integration is cultural coexistence.

The practice of food makes it further clear that Afghan refugees creatively preserve their culture while at the same time associate with the host society's culture. Preparing traditional food and sharing with Indian neighbors not only maintain cultural heritage, but also strengthens intercultural understand and social ties. Taking Afghan recipes and using India ingredients signals a hybrid cultural identity that developed without losing its roots. Adaptation of such of culinary demonstrates flexibility of refugees to redefine their identity through daily cultural practices of life.

Marriage norms show a slow movement but considerable site of transformation. Arranged marriage and endogamy are the prevalent way to preserve their faith, language and family traditions. However, staying for a long period of time in India and being exposure to Indian society, brought some flexibilities toward their attitudes, especially among younger generations. The increasing openness toward intercultural marriage and changing the roles of gender show a gradual shifts in values and indicate that how cultural preservation and change coexist within the diaspora settings.

Overall, this study sums up that the cultural integration of Afghan refugees in India is characterized by strategic adaptation, agency and negotiated belonging. Afghan refugees do not forget their cultural identity, but instead redefine in alignment to the pluralistic context of Indian culture and society. Their experiences show that integration is more successful when refugees are empowered in their adaptation and host society provide space for cultural diversity. Promoting community initiatives, language programs and intercultural dialogue can deepen the process of integration and make sure that cultural integration is a two-way process for enriching both the host society and refugees.

References:-

1. Ager, A., & Strang, A. (2008). Understanding integration: A conceptual framework. *Journal of Refugee Studies*, 21(2), 166–191.
2. Berry, J. W. (1997). Immigration, acculturation, and adaptation. *Applied Psychology*, 46(1), 5–34.
3. Bloch, A. (2008). Refugees in the UK labour market: The conflict between economic integration and policy-led labour market restriction. *Journal of Social Policy*, 37(1), 21–36.
4. Bose, P. (2020). Refugees in India: Legal frameworks and political responses. *Journal of Immigrant & Refugee Studies*, 18(4), 421–437.
5. Castles, S., de Haas, H., & Miller, M. J. (2014). *The age of migration: International population movements in the modern world* (5th ed.). Palgrave Macmillan.
6. Counihan, C., & Van Esterik, P. (2013). *Food and culture: A reader* (3rd ed.). Routledge.

7. Entwistle, J. (2015). *The fashioned body: Fashion, dress and modern social theory* (2nd ed.). Polity Press.
8. Kofman, E. (2004). Family-related migration: A critical review of European studies. *Journal of Ethnic and Migration Studies*, 30(2), 243–262.
9. Penninx, R., & Garcés-Mascareñas, B. (2016). Integration processes and policies: State of the art and lessons learned. In R. Penninx & B. Garcés-Mascareñas (Eds.), *Integration processes and policies in Europe* (pp. 1–14). Springer.
10. UNHCR. (2023). *Global trends: Forced displacement in 2022*. United Nations High Commissioner for Refugees.
11. Wessendorf, S. (2014). *Commonplace diversity: Social relations in a super-diverse context*. Palgrave Macmillan.
12. Al-Ali, N., & Koser, K. (2002). *New approaches to migration? Transnational communities and the transformation of home*. Routledge.
13. Anthias, F. (2012). Transnational mobilities, migration research and intersectionality. *Nordic Journal of Migration Research*, 2(2), 102–110.
14. Berry, J. W. (1997). Immigration, acculturation, and adaptation. *Applied Psychology*, 46(1), 5–34.
15. Bhabha, H. K. (1994). *The location of culture*. Routledge.
16. Bose, P. (2020). Refugees and the Indian state: Beyond humanitarianism. *Refugee Survey Quarterly*, 39(3), 324–345.
17. Castles, S., de Haas, H., & Miller, M. J. (2014). *The age of migration* (5th ed.). Palgrave Macmillan.
18. Chatty, D. (2017). *Displacement and dispossession in the modern Middle East*. Cambridge University Press.
19. Charsley, K. (2012). *Transnational marriage: New perspectives from Europe and beyond*. Routledge.
20. Esser, H. (2006). Migration, language and integration. *AKI Research Review*, 4.
21. Farooqui, A. (2020). *Language, memory, and identity among Afghan refugees in Delhi.* Refugee Survey Quarterly, 39(3), 451–470.
22. Goffman, E. (1963). *Stigma: Notes on the management of spoiled identity*. Prentice-Hall.
23. Hynie, M. (2018). The social determinants of refugee mental health. *Journal of Refugee Studies*, 31(3), 297–314.
24. Kleist, N. (2018). Disrupted migration projects. *Journal of Ethnic and Migration Studies*, 44(12), 2031–2048.
25. Kofman, E. (2004). Family-related migration. *Journal of Ethnic and Migration Studies*, 30(2), 243–262.
26. Longhurst, R., Johnston, L., & Ho, E. (2017). A visceral approach. *Emotion, Space and Society*, 22, 41–49.
27. Monsutti, A. (2005). *War and migration: Social networks and economic strategies of the Hazaras of Afghanistan*. Routledge.
28. Nair, S. (2021). *Culinary adaptation and cultural hybridity among urban refugees.* South Asian Diaspora, 13(1), 75–93.
29. Oberoi, P. (2022). India and refugees. *International Journal of Refugee Law*, 34(2), 289–311.
30. Panjabi, A., & Rajan, S. (2019). *Social inclusion and refugee adaptation in Delhi.* Migration and Development, 8(3), 377–392.
31. Phillimore, J. (2012). Implementing integration. *Journal of Ethnic and Migration Studies*, 38(4), 567–589.
32. Rahimi, T., & Sinha, R. (2020). *Foodways and identity among displaced Afghan communities.* Food, Culture & Society, 23(5), 583–601.
33. Sutton, D. (2001). *Remembrance of repasts*. Berg.
34. UNHCR. (2013). *A new beginning: Refugee integration in India*. UNHCR India.
35. Wise, A. (2011). Moving food. *Journal of Intercultural Studies*, 32(4), 365–381.

Indicator	Statement	Strongly Agree (%)	Agree (%)	Neutral (%)	Disagree (%)	Strongly Disagree (%)	Median	Mean
language	I am proficient in Hindi, English, or other regional languages of India.	37.4	36. 5	10.8	14.3	1.0	2.00	1
	I have attended language classes since arriving in India.	18.7	41.4	8.9	23.6	7.4	2.00	2
	I frequently use Indian languages in my daily interactions.	42.4	39.9	10.8	6.9	0.0	2.00	1
	I have faced significant challenges in learning the local language.	21.2	30.5	17.7	24.6	5.9	2.00	2
	My proficiency in the local language positively affects my ability to integrate into Indian society.	28.6	50.7	15.8	4.4	.5	2.00	2
	I believe that learning the local language is important for my integration into Indian society.	36.9	55.2	6.9	1.0	0.0	2.00	2
Clothes	Wearing traditional Afghan clothing helps me maintain my cultural identity while living in India.	33.5	36.0	20.7	8.9	1.0	2.00	2
	I feel comfortable wearing traditional Afghan attire in public spaces in India.	31.5	41.4	18.7	8.4	0.0	2.00	2
	Adapting my clothing style to Indian culture has helped me integrate better into the local community.	22.2	38.9	28.1	9.9	1.0	2.00	2
	I face challenges in accessing or purchasing traditional Afghan clothing in India.	18.7	21.7	19.2	32.0	8.4	3.00	4
	Wearing traditional Afghan clothing often attracts unwanted attention or discrimination in my current community.	7.4	17.2	30.0	31.5	13.8	3.00	4
Food	I regularly prepare traditional Afghan dishes at home as a way to preserve my cultural identity.	32.0	44.8	15.8	6.9	.5	2.00	2
	I find it challenging to access authentic Afghan ingredients or food products in India.	10.8	22.2	17.7	37.4	11.8	3.00	4
	Sharing Afghan food with Indian neighbors or friends has helped me build social connections.	21.2	33.5	29.6	12.3	3.4	2.00	2
Food	The lack of availability of Afghan cuisine in local markets impacts my sense of cultural belonging.	9.9	22.7	26.6	32.5	8.4	3.00	4
Marriage	Adapting Afghan recipes using Indian ingredients allows me to maintain my cultural heritage while adjusting to life in India.	28.1	41.9	23.2	5.4	1.5	2.00	2
	Marriage within one's ethnic group is important to preserve cultural traditions.	27.6	34.0	27.1	8.4	3.0	2.00	2
	Arranged marriages are viewed as a preferred practice within my community.	24.6	21.7	36.9	12.8	3.9	3.00	3
	Intercultural marriages are generally accepted within the Afghan diaspora community.	11.3	20.2	51.2	15.3	2.0	3.00	3
	Cultural expectations regarding marriage have changed since living in India.	13.8	38.4	33.5	11.8	2.5	2.00	2
	I prefer my life partner to be from my own community rather than from the Indian community.	33.0	28.1	24.6	9.9	4.4	2.00	1

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Dr. A.P.J. Abdul Kalam's Vision and Contributions Towards Viksit Bharat

Sumit Kumar* Richa Garima Rathi*****

*Pre Ph.D. Student (Sociology) C.C.S. University (Campus), Meerut (U.P.) INDIA
** M.A. Student (Psychology) C.C.S. University (Campus), Meerut (U.P.) INDIA
*** Ph.D Research Scholar (Sociology) C.C.S. University (Campus), Meerut (U.P.) INDIA

Abstract: Dr. A.P.J. Abdul Kalam, popularly known as the "People's President," was a distinguished scientist, visionary leader, and educationist whose ideas continue to shape India's development agenda. Self-reliance, scientific innovation, high-quality education, technological advancement, sustainable development, and youth empowerment were key components of his Vision 2020, which outlined his vision for making India a developed country. These ideas are in line with the modern vision of Viksit Bharat, which aims to use inclusive growth, innovation, and good governance to make India a developed country. In the framework of Viksit Bharat, this paper explores Dr. Kalam's vision and his numerous contributions to nation-building. It examines his contributions to bolstering India's defense and space capabilities, advancing domestic technology, fostering innovation and research, and motivating youth to take an active role in the country's growth. The study also analyzes his emphasis on value-based education, rural development through the Providing Urban Amenities in Rural Areas (PURA) model, and the importance of ethical leadership in achieving sustainable progress.
Keywords: A.P.J. Abdul Kalam, Missile Man, Viksit Bharat, Scientific Innovation, PURA, Education.

Introduction - The outstanding visionary leader, noble personality Dr.A.P.J. Abdul Kalam was born on 15 October 1931 in a place called Rameshwaram in Tamil Nadu. His full name is Abul Pakir Jainulabedien Abdul Kalam. He was a brilliant educator, scientist, motivational speaker, and former Indian president during 2002-2007, he envisioned India as a highly developed and knowledge-powerful nation. He has made an unparalleled contribution to the advancement of India's defense. He effectively oversaw the creation of the domestic guided missiles Agni and Prithivi. Dr Kalam had put in over 10 years long hard work as the project director for the development of indigenous Satellite Launch Vehicle (SLV) at ISRO that ultimately resulted in one of the greatest scientific development of indigenous Satellite Launch Vehicle (SLV). Seven universities awarded Dr. Kalam seven honorary doctorates. Wings of Fire, India 2020, Ignited Minds, Indomitable Spirit, and Transcendence: My Spiritual Experience with Promuk Swamiji are some of his well-known writings. Dr. Kalam played a crucial part in the 1998 nuclear test known as Pakhran-ll. This surprised many people because he was not trained in nuclear science education, and his background was extremely technical at both ISRO and DRDO. However, because the Pokhran campaign was perceived as a collaboration between DRDO, the armed forces, and the nuclear establishment, he became an important technology manager.

As a technologist and engineer, Kalam's true skill was developing and leading technology, which is necessary for mission-oriented programs. India is becoming self-sufficient in space research and defense because to his earnest efforts and commitment. He was named Missile Man of India for his outstanding work. For his outstanding contributions to scientific research and the modernization of defense technology in India, this remarkable individual received the Padma Bhushan in 1981, the Padma Vibhushan in 1990, and the Bharat Ratna in 1997. Between 1999 and 2001, he served as India's Principal Scientific Advisor. He became president of India on 25th July 2002. He is also referred to as the **President of the People**. He always enjoyed inspiring and interacting with students. On July 27, 2015, India lost the brilliant star. India suffered an irreversible loss when he passed away.

There are few studies assessing contribution of Dr. A.P.J. Abdul Kalam. Such as Pareek (2017) examined Kalam's vision of education as the foundation of national development. It highlights his support for skill-based education, virtual classrooms, digital learning, quality infrastructure, and teacher empowerment. He advocated producing job creators instead of job seekers and believed

education should promote creativity, self-reliance, and social progress. Kaur et al. (2018) analyzed Kalam's scientific vision and its contemporary relevance. It highlights his advocacy of scientific temper, innovation, entrepreneurship, and technological advancement for national development. The study emphasizes his belief in integrating science with spirituality and nurturing young researchers to build a prosperous, knowledge-based society. Mondal et al. (2020) focuses on Kalam's views on women's education and empowerment. He believed that educating women promotes social progress, economic development, and national prosperity. The study highlights his advocacy of higher education, vocational training, gender equality, and self-reliance, emphasizing that empowered women are essential for building a strong nation. Akhtar (2021) explored Kalam's educational philosophy, emphasizing creativity, moral leadership, research aptitude, and lifelong learning. It discusses his support for technology-enhanced education, virtual universities, and value-based teaching. The article portrays Kalam as a visionary educator who sought to develop autonomous learners capable of contributing to national growth. Hazarika et al. (2021) examined Dr. A.P.J. Abdul Kalam's educational philosophy, emphasizing creativity, innovation, moral values, and lifelong learning. It highlights his belief that education should create enlightened citizens, skilled professionals, and responsible leaders. The study stresses the importance of teachers, technology, entrepreneurship, and value-based education for national development. Tabish et al. (2023) explored Kalam's educational ideas, emphasizing scientific temper, creativity, value education, and character formation. It discusses his views on curriculum reform, research orientation, teacher–student relationships, and mother-tongue instruction. The article concludes that his educational philosophy remains relevant for creating innovative, ethical, and socially responsible citizens. Mallik (2024) discussed Kalam's vision of education as a tool for creativity, skill development, research, and moral growth. It emphasizes practical learning, technology integration, virtual education, examination reforms, and quality teaching. The study concludes that his educational ideas are essential for developing competent, ethical, and innovative citizens.

Objectives of the study: This research paper has two objectives in the following ways:

1. To examine the contributions of A. P. J. Abdul Kalam toward the vision of a developed and self-reliant India (Viksit Bharat).
2. To examine the role of Dr. Kalam in promoting education, youth empowerment, and skill development as foundations for a developed India.

Methodology of the Study : For the present research, secondary sources have been used and analyzed to study the objective, data available in the form of books, research papers, essays, and the information available at liable websites are been utilized for the research.

Contributions

In ISRO: Dr. Kalam led a team of young scientists and engineers to develop India's first indigenous launch vehicle, the SLV-III. An important turning point in India's space effort was to launch a satellite into low Earth orbit. A technical issue caused the vehicle to veer off course during the initial launch attempt on August 10, 1979. Dr. Kalam accepted responsibility for the failure and encouraged his team to grow from it. The Rohini Satellite (RS-1) was successfully launched by ISRO on July 18, 1980, from Sriharikota aboard SLV-III. India became the sixth country in the world to develop and launch its own satellite as a result of this historic event.

Dr. Kalam contributed to sounding rocket programs, which were early experiments in rocket technology. He played a key role in laying the groundwork for later developments in PSLV (Polar Satellite Launch Vehicle) and GSLV (Geosynchronous Satellite Launch Vehicle). He focused on the development of solid and liquid propulsion technologies. He led research on guidance and control systems for space missions. Dr. Kalam worked closely with ISRO pioneers like Dr. Vikram Sarabhai and Dr. Satish Dhawan. After his success at ISRO, Dr. Kalam was invited to join the Defence Research and Development Organisation (DRDO).

In DRDO: Dr. Kalam joined DRDO in 1958 as a scientist. He worked on hovercraft development early in his career. Later, he played a significant role in developing indigenous missile technology for India. As the Chief Architect of Integrated Guided Missile Development Program (IGMDP), Dr. Kalam spearheaded the development of India's ballistic missile systems.Under this program, India developed several missile systems such as Prithvi, Agni, Trishul and Nag.

Pokhran-II Nuclear Test: Dr. A.P.J. Abdul Kalam was the head of the DRDO and the defense minister's scientific adviser at the time of the May 1998 Pokhran-II nuclear test. Three nuclear bombs a sub-kiloton weapon, a fission bomb, and a thermonuclear (hydrogen) bomb were tested on May 11, 1998. Two more sub-kiloton nuclear tests were carried out on May 13, 1998. Two groups of devices were used for the test, and each group's devices were fired simultaneously. During the operation, five nuclear devices were tested.

Education and Youth Empowerment: Kalam was passionate about inspiring young minds and often interacted with students across India and the world. He launched the **"What Can I Give"** movement, encouraging youth to contribute positively to society. He believed that education was the key to national development and worked to make quality education accessible to all.

Rural Development: As part of his Providing Urban Amenities in Rural Areas (PURA) initiative, Kalam advocated for improving infrastructure, connectivity, and employment opportunities in villages. His vision aimed at

reducing the urban-rural divide and promoting sustainable development.

Healthcare and Social Welfare: Kalam worked on affordable healthcare technologies, including a low-cost coronary stent (Kalam-Raju Stent) and a lightweight caliper for polio-affected children. He supported medical research and encouraged scientific innovation to address India's health challenges.

Vision for India (India 2020): Dr. A.P.J. Abdul Kalam's **Vision 2020** was a roadmap for transforming India into a **developed nation** by the year 2020. He outlined his vision in the book *"India 2020: A Vision for the New Millennium"*, co-authored with Y.S. Rajan. The plan focused on making India a self-reliant and prosperous country through advancements in science, technology, education, and infrastructure.

Economic Growth & Self-Reliance: Targeted an annual GDP growth rate of over 10%. Emphasized reducing dependency on imports and promoting **"Made in India"** products. Encouraged industrial development and entrepreneurship

Agriculture and Rural Development: Proposed the **Providing Urban Amenities in Rural Areas (PURA)** model to boost rural infrastructure. Advocated for **modern farming techniques, irrigation projects, and organic farming** to increase agricultural productivity. Aimed to make India a **global leader in food production** and eliminate hunger.

Technological Advancements & Innovation: Promoted indigenous scientific research in fields like biotechnology, IT, and space exploration. Encouraged the use of renewable energy (solar, wind, and bio-energy) to ensure sustainability. Supported digital connectivity and e-governance for better administration.

Education and Skill Development: Emphasized universal primary education and reduction of dropout rates. Focused on technical and vocational training to equip youth with job-ready skills. Encouraged scientific temper and innovation among students.

Healthcare for All: Advocated for affordable healthcare and improved medical infrastructure. Suggested telemedicine and mobile healthcare units for remote areas. Supported research in traditional medicine and biotechnology.

Infrastructure and Urban Development: Focused on building world-class roads, railways, airports, and smart cities. Proposed 100% rural electrification and clean water supply for every village. Encouraged the construction of affordable housing.

Defense and Security: Strengthened India's nuclear and missile programs for national security. Advocated for self-reliance in defense technology through indigenous manufacturing. Emphasized cybersecurity and the modernization of armed forces.

Women Empowerment and Social Equity: Called for equal opportunities in education and employment for women. Promoted women entrepreneurship and leadership roles in governance. Aimed for an **inclusive society** with no discrimination based on caste, gender, or economic status.

Conclusion: Known as the "Missile Man of India," Dr. A.P.J. Abdul Kalam made important contributions to education, scientific, space, and defense developments in India. He was a pivotal player in India's missile development program, helping to build the Agni and Prithvi missiles, which improved the nation's defensive capabilities. He also played a significant part in the creation of the SLV-III, which launched the Rohini satellite, and contributed to India's space research at ISRO. India's status as a nuclear power was cemented in 1998 when Kalam played a key role in the country's nuclear tests at Pokhran. In addition to his scientific accomplishments, he inspired millions of people as the 11th President of India from 2002 to 2007 with his vision of an independent and advanced India. His focus on education, innovation, and youth empowerment continues to inspire generations. His **Vision 2020** laid the foundation for the idea of a developed India by emphasizing quality education, technological advancement, self-reliance, innovation, rural development, and youth empowerment. His vision inspired long-term national planning and continues to influence the **Viksit Bharat 2047** mission, which seeks to transform India into a developed, inclusive, knowledge-driven, and globally competitive nation by its centenary of independence. All these works of Dr. APJ Abdul Kalam are helping India to become developed.

References:-

1. Pareek, H. P. N. (2017). Dr. APJ Abdul Kalam's vision about education. International Journal of Research in All Subjects in Multi Languages (IJRSML), 5(4), 36–40.
2. Kaur, S., & Dash, N. (2018). Scientific thoughts of Dr. A.P.J. Abdul Kalam and its relevance in 21st century: An exploratory study. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 6(1), 1205–1212.
3. Mondal, T. A., & Manna, D. (2020). APJ Abdul Kalam's contribution to women's education. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR), 7(9), 1159–1162.
4. Akhtar, S. (2021). A study on exploring the educational thoughts and contributions of Dr. APJ Abdul Kalam. International Journal of Trend in Scientific Research and Development, 5(4), 1148–1151.
5. Hazarika, L., & Dutta, R. (2021). The Missile Man of India Dr. A.P.J. Abdul Kalam and his educational thoughts. Turkish Online Journal of Qualitative Inquiry, 12(7), 6235–6239.
6. Tabish, S. I., & Geelani, S. Z. A. (2023). Contribution of A.P.J Abdul Kalam to the theory and practice of education. International Journal of Humanities and Social Science Invention, 12(4), 6–8. https://doi.org/10.35629/

7722-12040608
7. Mallik, M. F. (2024). Educational thoughts and contribution of Dr. A.P.J. Abdul Kalam towards modern system of education in India. International Journal of Research in Academic World, 3(3), 73–77.
8. Kalam, A.P.J. A. (2002). Ignited Minds – Unleasing the Power within India, Penguin Books Ltd, New Delhi.
9. Kalam, A.P.J.A., & Tiwari, A. (1999). Wings of Fire:An Autobiography, University Press India Private Limited, Hyderabad.
10. Kalam, A.P.J.A. (1998). India 2020: A Vision for the New Millennium, Penguin Books Ltd, New Delhi.
11. Kalam, A.P.J.A., & Singh, S.P. (2011). Target 3 Billion, Penguin Books Ltd., New Delhi.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

पंचायती राज व्यवस्था में नागरिक सहभागिता की चुनौतियाँ: सामाजिक एवं आर्थिक आयामों का अध्ययन

डॉ. प्रदीप कुमार* डॉ. अरविन्द सिरोही**

* सहायक आचार्य (समाजशास्त्र) डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू, इंदौर (म.प्र.) भारत
** सहायक आचार्य (समाजशास्त्र) चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – पंचायती राज व्यवस्था भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की एक महत्वपूर्ण संस्था है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण जनता को स्थानीय शासन एवं विकास प्रक्रिया में सक्रिय रूप से सहभागी बनाना है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना तथा पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान उनके समक्ष आने वाली बाधाओं एवं चुनौतियों का अध्ययन करना है। अध्ययन मेरठ जनपद में किया गया, जहाँ से कुल 200 उत्तरदाताओं का चयन किया गया, जिनमें 96 महिलाएँ तथा 104 पुरुष सम्मिलित थे। अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध प्रारूप का उपयोग किया गया तथा प्राथमिक आँकड़ों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन प्रविधि का प्रयोग किया गया।

अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात हुआ कि उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पंचायत गतिविधियों में उनकी सहभागिता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। उच्च शिक्षा, बेहतर आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा वाले उत्तरदाता पंचायत कार्यों में अधिक सक्रिय पाए गए। इसके विपरीत निम्न आय वर्ग, कम शिक्षित तथा सामाजिक रूप से वंचित समूहों की सहभागिता अपेक्षाकृत कम रही। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि पंचायत में प्रवेश एवं प्रभावी सहभागिता के मार्ग में आर्थिक संसाधनों की कमी, चुनावी व्यय, राजनीतिक अनुभव का अभाव, प्रशासनिक जानकारी की कमी, सामाजिक पूर्वाग्रह, जातिगत भेदभाव तथा स्थानीय प्रभावशाली समूहों का दबाव प्रमुख बाधाओं के रूप में विद्यमान हैं। महिला उत्तरदाताओं को विशेष रूप से पारिवारिक प्रतिबंधों, लैंगिक असमानता तथा सीमित राजनीतिक अवसरों जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

अध्ययन निष्कर्षत: यह दर्शाता है कि पंचायतों में प्रभावी एवं समावेशी सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए राजनीतिक जागरूकता, नेतृत्व विकास, आर्थिक सशक्तिकरण तथा सामाजिक समानता को बढ़ावा देना आवश्यक है। पंचायतों में सभी वर्गों की सक्रिय भागीदारी स्थानीय लोकतंत्र को अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी एवं विकासोन्मुख बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

शब्द कुंजी – पंचायती राज, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, पंचायत सहभागिता, सामाजिक पृष्ठभूमि, आर्थिक पृष्ठभूमि, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, स्थानीय शासन, राजनीतिक सहभागिता, सामाजिक बाधाएँ।

प्रस्तावना – भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है, जहाँ लोकतंत्र की सफलता केवल संसद, विधानसभाओं अथवा प्रशासनिक संस्थाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि स्थानीय स्तर पर नागरिकों की सक्रिय सहभागिता पर भी निर्भर करती है। लोकतंत्र की वास्तविक भावना तभी साकार होती है जब आम नागरिक शासन एवं विकास की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग ले सकें। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारत में पंचायती राज व्यवस्था को स्थानीय स्वशासन की आधारभूत इकाई के रूप में विकसित किया गया। पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण जनता को अपने क्षेत्र की समस्याओं की पहचान करने, विकास योजनाओं के निर्माण में भाग लेने तथा उनके क्रियान्वयन की निगरानी करने का अवसर प्रदान करती हैं। स्थानीय शासन की यह व्यवस्था लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम है तथा ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय और जनसहभागिता को प्रोत्साहित करती है। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से शासन की शक्ति का विकेन्द्रीकरण होता है, जिससे निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्थानीय समुदाय की भूमिका सुदृढ़ होती है। इस प्रकार पंचायतें केवल प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी साधन भी हैं। (मैडिक[1], 1963)

भारत में पंचायतों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक ग्राम पंचायतें स्थानीय प्रशासन, न्याय व्यवस्था तथा सामुदायिक विकास की महत्वपूर्ण संस्थाओं के रूप में कार्य करती रही हैं। भारतीय ग्रामों को आत्मनिर्भर इकाइयों के रूप में देखा जाता था, जहाँ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का संचालन सामूहिक निर्णयों के आधार पर किया जाता था। ग्राम पंचायतें स्थानीय विवादों के समाधान, संसाधनों के प्रबंधन तथा सामाजिक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। अनेक इतिहासकारों ने भारतीय ग्राम व्यवस्था को लोकतांत्रिक परंपराओं का प्रारम्भिक स्वरूप माना है। हालांकि औपनिवेशिक शासन के दौरान पंचायतों की स्वायत्तता कमजोर हुई, फिर भी ग्रामीण समाज में उनकी सामाजिक उपयोगिता बनी रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय नीति–निर्माताओं ने पंचायतों को पुनर्जीवित करने तथा ग्रामीण विकास में उनकी भूमिका को सशक्त बनाने का प्रयास किया। (अल्तेकर[2], 1958)

स्वतंत्र भारत में ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मजबूत बनाने के उद्देश्य से विभिन्न समितियों का गठन

किया गया। वर्ष 1957 में गठित बलवंत राय मेहता समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का आधार माना तथा त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की। समिति के अनुसार ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता स्थानीय जनता की सहभागिता पर निर्भर करती है। समिति ने ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद की त्रिस्तरीय संरचना का सुझाव दिया, जिसे बाद में विभिन्न राज्यों में लागू किया गया। इस समिति की सिफारिशों ने भारतीय पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिला रखी तथा स्थानीय स्वशासन को नई दिशा प्रदान की। (बलवंत राय मेहता[3], 1957)

पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक आधार प्रदान करने की दिशा में 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 एक ऐतिहासिक उपलब्धि सिद्ध हुआ। इस संशोधन ने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान करते हुए उन्हें स्थानीय शासन की स्थायी संस्थाओं के रूप में मान्यता दी। इसके अंतर्गत पंचायतों के नियमित चुनाव, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं के लिए आरक्षण, राज्य वित्त आयोग तथा राज्य निर्वाचन आयोग जैसी व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया। इस संशोधन का प्रमुख उद्देश्य स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत बनाना तथा विकास प्रक्रिया में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना था। परिणामस्वरूप पंचायतों की भूमिका केवल विकास योजनाओं के क्रियान्वयन तक सीमित न रहकर स्थानीय शासन एवं नीति निर्माण में भी महत्वपूर्ण हो गई। (जॉर्ज मैथ्यू[4], 1994)

लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक सहभागिता को सुशासन की आधारशिला माना जाता है। पंचायतें ग्रामीण समुदायों को शासन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर प्रदान करती हैं, जिससे स्थानीय आवश्यकताओं एवं समस्याओं के अनुरूप विकास योजनाएँ तैयार की जा सकती हैं। पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण नागरिक न केवल अपने क्षेत्र के विकास में योगदान देते हैं, बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे उत्तरदायित्व, पारदर्शिता और जनभागीदारी को भी सुदृढ़ करते हैं। जब स्थानीय समुदाय निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल होता है, तब विकास योजनाओं की प्रभावशीलता एवं स्वीकार्यता दोनों में वृद्धि होती है। इस प्रकार पंचायतें लोकतंत्र को व्यवहारिक रूप प्रदान करने का कार्य करती हैं। (क्रूक एवं मैनर[5], 1998)

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना विविधताओं एवं असमानताओं से परिपूर्ण है। जाति, वर्ग, लिंग, धर्म तथा आर्थिक स्थिति जैसे कारक सामाजिक अवसरों और राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करते हैं। पंचायतों में भी इन कारकों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सामाजिक रूप से प्रभावशाली वर्गों का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत अधिक होता है, जबकि कमजोर एवं वंचित वर्गों को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्राप्त हों और वे शासन प्रक्रिया में प्रभावी रूप से भाग ले सकें। (एम. एन. श्रीनिवास,[6] 1966)

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता लोकतांत्रिक विकास का महत्वपूर्ण संकेतक मानी जाती है। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था ने लाखों महिलाओं को स्थानीय शासन में प्रवेश का अवसर प्रदान किया। इससे महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई तथा उनमें नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ। पंचायतों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी ने ग्रामीण समाज में लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। कई अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि महिला प्रतिनिधि शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा सामाजिक कल्याण से जुड़े मुद्दों को अधिक प्राथमिकता देती हैं। (बीना अग्रवाल[7], 2001)

यद्यपि महिलाओं को पंचायतों में आरक्षण प्राप्त है, फिर भी उनकी प्रभावी भागीदारी अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक बाधाओं से प्रभावित होती है। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा का निम्न स्तर, आर्थिक निर्भरता, राजनीतिक अनुभव की कमी तथा पारिवारिक प्रतिबंध महिलाओं की सक्रिय भूमिका को सीमित करते हैं। कई मामलों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पति अथवा अन्य पुरुष परिजन निर्णय लेते हैं, जिससे महिलाओं का वास्तविक राजनीतिक सशक्तिकरण बाधित होता है। इसलिए केवल आरक्षण प्रदान करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि महिलाओं को नेतृत्व प्रशिक्षण, राजनीतिक शिक्षा तथा सामाजिक समर्थन भी उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है। (निर्मला बुच[8], 2000)

पंचायतों में सहभागिता को आर्थिक स्थिति भी प्रभावित करती है। आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्तियों के पास चुनाव लड़ने, राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने तथा सामाजिक नेटवर्क विकसित करने के अधिक अवसर होते हैं। इसके विपरीत निम्न आय वर्ग के लोगों को संसाधनों की कमी, समयाभाव तथा आर्थिक असुरक्षा के कारण राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी करने में कठिनाई होती है। आर्थिक असमानता लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व को प्रभावित करती है और कमजोर वर्गों की आवाज को सीमित कर सकती है। इसलिए समावेशी लोकतंत्र के लिए आर्थिक सशक्तिकरण को भी आवश्यक माना जाता है। (बार्धन एवं मुखर्जी,[9] 2006)

वर्तमान अध्ययन पंचायतों में नागरिक सहभागिता के सामाजिक एवं आर्थिक आयामों को समझने का प्रयास करता है। अध्ययन विशेष रूप से उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि तथा पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान उनके समक्ष आने वाली बाधाओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में 200 उत्तरदाताओं, जिनमें 96 महिलाएँ एवं 104 पुरुष शामिल हैं, से प्राप्त तथ्यों के आधार पर पंचायत सहभागिता की वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन स्थानीय लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण तथा ग्रामीण विकास से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए उपयोगी निष्कर्ष प्रदान कर सकता है। (दीपा नारायण,[10] 2005)

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं में नागरिकों की सहभागिता को प्रभावित करने वाले सामाजिक एवं आर्थिक कारकों का विश्लेषण करना तथा पंचायत में प्रवेश एवं सक्रिय भागीदारी के दौरान उनके समक्ष आने वाली बाधाओं और चुनौतियों को समझना है। पंचायती राज व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र की आधारभूत इकाई है, जिसके माध्यम से ग्रामीण नागरिक स्थानीय शासन और विकास प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। यद्यपि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है तथा विभिन्न वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है, फिर भी सभी नागरिकों की सहभागिता समान रूप से सुनिश्चित नहीं हो पाती। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ व्यक्तियों की भागीदारी को प्रभावित करती हैं। इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन

के दो प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

1. उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना: किसी भी समाज में व्यक्तियों की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि उनके व्यवहार, दृष्टिकोण, अवसरों तथा निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करती है। पंचायतों में सहभागिता भी इससे अछूती नहीं है। सामाजिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत जाति, धर्म, लिंग, शिक्षा, वैवाहिक स्थिति, परिवार का प्रकार तथा सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे तत्व आते हैं, जबकि आर्थिक पृष्ठभूमि में आय, व्यवसाय, भूमि स्वामित्व, आवासीय स्थिति तथा संसाधनों की उपलब्धता को शामिल किया जाता है।

पंचायतों में प्रभावी भागीदारी के लिए केवल राजनीतिक अधिकार पर्याप्त नहीं होते, बल्कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और आर्थिक संसाधन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त, आर्थिक रूप से सक्षम तथा सामाजिक रूप से प्रभावशाली व्यक्ति पंचायत की गतिविधियों में अधिक सक्रिय दिखाई देते हैं, जबकि कमजोर एवं वंचित वर्गों के लोग अनेक सीमाओं का सामना करते हैं। इसलिए उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन पंचायत सहभागिता की प्रकृति और स्तर को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

इस उद्देश्य के अंतर्गत अध्ययन में शामिल 200 उत्तरदाताओं की सामाजिक विशेषताओं जैसे लिंग, आयु, जाति, धर्म, शिक्षा, पारिवारिक संरचना तथा वैवाहिक स्थिति का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति, आय के स्रोत, व्यवसाय, भूमि स्वामित्व तथा आर्थिक संसाधनों का भी अध्ययन किया जाएगा। यह जानकारी इस बात को समझने में सहायता करेगी कि सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ पंचायत में भागीदारी को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

सामाजिक विज्ञान के अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि सामाजिक असमानताएँ राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करती हैं। जाति व्यवस्था, वर्ग विभाजन तथा लैंगिक असमानता जैसे कारक व्यक्तियों के अवसरों और प्रतिनिधित्व को निर्धारित करते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में सामाजिक स्थिति पंचायतों में नेतृत्व और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इसलिए उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन पंचायत व्यवस्था में विद्यमान असमानताओं और अवसरों को समझने का आधार प्रदान करता है। (एम. एन. श्रीनिवास[6], 1966)

इसके अतिरिक्त आर्थिक स्थिति भी पंचायतों में सहभागिता की प्रकृति को प्रभावित करती है। आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति चुनावी प्रक्रिया में भाग लेने, प्रचार-प्रसार करने तथा सामाजिक नेटवर्क विकसित करने में अधिक सक्षम होते हैं। दूसरी ओर आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लोगों के लिए पंचायत गतिविधियों में निरंतर भागीदारी करना अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसलिए यह उद्देश्य पंचायत सहभागिता और सामाजिक-आर्थिक स्थिति के मध्य संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। (बार्धन एवं मुखर्जी,[9] 2006)

2. पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान उत्तरदाताओं के समक्ष आने वाली बाधाओं एवं चुनौतियों का अध्ययन करना: लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक को शासन प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, किंतु व्यवहारिक स्तर पर अनेक बाधाएँ और चुनौतियाँ इस भागीदारी को प्रभावित करती हैं। पंचायतों में प्रवेश तथा सक्रिय सहभागिता की प्रक्रिया भी विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होती है। इसलिए इस अध्ययन का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य उत्तरदाताओं के समक्ष आने वाली इन बाधाओं एवं चुनौतियों की पहचान करना और उनका विश्लेषण करना है।

ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक व्यक्ति पंचायतों की गतिविधियों में रुचि रखने के बावजूद विभिन्न कारणों से सक्रिय भागीदारी नहीं कर पाते। सामाजिक स्तर पर जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता, सामाजिक प्रतिष्ठा की कमी तथा रूढ़िवादी मान्यताएँ सहभागिता में बाधा उत्पन्न कर सकती हैं। विशेष रूप से महिलाओं को पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था, घरेलू उत्तरदायित्वों तथा सामाजिक नियंत्रण के कारण पंचायतों में प्रभावी भूमिका निभाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। (निर्मला बुच,[8] 2000)

आर्थिक स्तर पर सीमित आय, संसाधनों की कमी तथा चुनावी खर्च का बोझपंचायतों में प्रवेश की संभावनाओं को प्रभावित करता है। कई बार आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति चुनाव लड़ने या पंचायत की गतिविधियों में नियमित रूप से भाग लेने में असमर्थ रहते हैं। इससे लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व में असंतुलन उत्पन्न हो सकता है तथा केवल आर्थिक रूप से सशक्त वर्गों का प्रभुत्व बढ़ सकता है। (बार्धन एवं मुखर्जी,[9] 2006)

राजनीतिक स्तर पर अनुभव की कमी, प्रशासनिक प्रक्रियाओं की अपर्याप्त जानकारी, स्थानीय शक्ति समूहों का प्रभाव तथा राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भी सहभागिता में महत्वपूर्ण बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। अनेक ग्रामीण नागरिक पंचायतों के अधिकारों, कार्यों तथा योजनाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं रखते, जिसके कारण वे निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में प्रभावी योगदान नहीं दे पाते। राजनीतिक जागरूकता की कमी लोकतांत्रिक सहभागिता को सीमित कर देती है। (जॉर्ज मैथ्यू,[4] 1994)

महिलाओं के संदर्भ में पंचायत सहभागिता की चुनौतियाँ और अधिक जटिल हैं। यद्यपि आरक्षण व्यवस्था ने महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान किया है, फिर भी कई स्थानों पर वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति पुरुषों के हाथों में बनी रहती है। महिलाओं को सामाजिक स्वीकृति, नेतृत्व कौशल, राजनीतिक प्रशिक्षण तथा आत्मविश्वास से संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए पंचायतों में महिलाओं की प्रभावी सहभागिता को समझने के लिए इन बाधाओं का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। (बीना अग्रवाल,[7] 2001)

इस उद्देश्य के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान उत्तरदाताओं को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इन समस्याओं की प्रकृति क्या है तथा वे पंचायतों की प्रभावशीलता को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। अध्ययन के निष्कर्ष पंचायतों में समावेशी सहभागिता को बढ़ावा देने तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को अधिक प्रभावी बनाने हेतु उपयोगी सुझाव प्रदान करेंगे।

साहित्य समीक्षा

1. मैकिड, हेनरी (1963),[1] हेनरी मैकिड ने लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण और विकास में यह प्रतिपादित किया कि लोकतांत्रिक शासन की सफलता स्थानीय स्तर पर नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि विकेन्द्रीकरण केवल प्रशासनिक अधिकारों का हस्तांतरण नहीं है, बल्कि यह नागरिकों को निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित करने का माध्यम भी है। लेखक के अनुसार स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से विकास योजनाओं की प्रभावशीलता तभी बढ़ सकती है जब समाज के सभी वर्ग

समान रूप से भाग लें। यह अध्ययन पंचायती राज में नागरिक सहभागिता की सैद्धांतिक आधारभूमि प्रदान करता है।

2. अल्तेकर, ए. एस. (1958),[2] अल्तेकर ने प्राचीन भारत में राज्य एवं शासन व्यवस्था में प्राचीन भारतीय ग्राम प्रशासन की परंपरा का विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने बताया कि ग्राम सभाएँ स्थानीय प्रशासन, न्याय तथा सामुदायिक निर्णयों का प्रमुख केंद्र थीं। यद्यपि आधुनिक पंचायती राज की संरचना भिन्न है, फिर भी यह अध्ययन स्थानीय स्वशासन की ऐतिहासिक जड़ों को समझने में सहायक है तथा यह दर्शाता है कि नागरिक सहभागिता भारतीय परंपरा का अभिन्न अंग रही है।

3. मेहता, बलवंत राय (1957),[3] बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट भारतीय पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिला मानी जाती है। समिति ने त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली की अनुशंसा करते हुए ग्राम सभा को लोकतंत्र की मूल इकाई माना। रिपोर्ट में नागरिक सहभागिता को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता का प्रमुख आधार बताया गया। इस अध्ययन ने विकेन्द्रीकरण, जनसहभागिता तथा उत्तरदायित्व की अवधारणाओं को संस्थागत रूप प्रदान किया।

4. राव, जी. वी. के. (1985),[11] जी. वी. के. राव समिति ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में नौकरशाही के अत्यधिक प्रभुत्व की आलोचना की तथा पंचायती राज संस्थाओं को विकास प्रशासन का केंद्रीय आधार बनाने की अनुशंसा की। समिति के अनुसार स्थानीय विकास तभी प्रभावी होगा जब नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए और पंचायतों को पर्याप्त प्रशासनिक एवं वित्तीय अधिकार प्राप्त हों।

5.सिंहवी, एल. एम. (1986),[12] एल. एम. सिंहवी समिति ने ग्राम सभा को लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की आत्मा माना तथा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की अनुशंसा की। समिति ने सामाजिक उत्तरदायित्व, पारदर्शिता तथा नागरिक सहभागिता को स्थानीय स्वशासन की सफलता के लिए अनिवार्य बताया। इस रिपोर्ट ने आगे चलकर 73वें संविधान संशोधन का आधार तैयार किया।

6. डाहल, रॉबर्ट ए. (1989),[13] रॉबर्ट ए. डाहल ने लोकतंत्र और उसके आलोचक में सहभागितामूलक लोकतंत्र की अवधारणा का विस्तार किया। उन्होंने लोकतंत्र में समान राजनीतिक अवसर, सूचना तक पहुँच और निर्णय प्रक्रिया में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी को आवश्यक माना। यह सैद्धांतिक दृष्टिकोण पंचायती राज में नागरिक सहभागिता की गुणवत्ता को समझने में उपयोगी है।

7. भारत सरकार (1992),[14] भारत सरकार द्वारा पारित 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम भारतीय पंचायती राज व्यवस्था का ऐतिहासिक मील का पत्थर है। इस संशोधन के माध्यम से पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, ग्राम सभा को वैधानिक मान्यता मिली तथा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं के लिए आरक्षण सुनिश्चित किया गया। इससे नागरिक सहभागिता को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ, यद्यपि व्यवहारिक स्तर पर अनेक सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियाँ बनी रहीं।

8. मैथ्यू, जॉर्ज (1994),[4] जॉर्ज मैथ्यू ने पंचायती राजरू विधान से जनआंदोलन तक में 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज संस्थाओं के व्यावहारिक अनुभवों का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि कानूनी प्रावधानों के बावजूद सामाजिक असमानता, जातिगत वर्चस्व, राजनीतिक हस्तक्षेप तथा जागरूकता की कमी नागरिक सहभागिता में बाधा उत्पन्न करते हैं। लेखक ने ग्राम सभा की सक्रियता को लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का प्रमुख साधन माना।

9. क्रूक, रिचर्ड सी. एवं मैनर, जेम्स (1998),[5] क्रूक और मैनर ने दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन किया। उनके अनुसार विकेन्द्रीकरण तभी प्रभावी होता है जब स्थानीय संस्थाओं को वास्तविक अधिकार, संसाधन तथा प्रशासनिक स्वायत्तता प्राप्त हो। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि केवल संस्थागत सुधार पर्याप्त नहीं हैंय सामाजिक समानता और नागरिक जागरूकता भी आवश्यक है।

10. बुच, निर्मला (2000),[8] निर्मला बुच ने पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी एवं सशक्तिकरण का अध्ययन करते हुए पाया कि आरक्षण के कारण महिलाओं की राजनीतिक उपस्थिति बढ़ी है, किन्तु सामाजिक रूढ़िवादिता, शिक्षा का अभाव तथा आर्थिक निर्भरता उनकी प्रभावी सहभागिता में बाधक हैं। उन्होंने क्षमता निर्माण एवं प्रशिक्षण को महिला सशक्तिकरण का आवश्यक माध्यम बताया।

11. अग्रवाल, बीना (2001),[7] बीना अग्रवाल ने सामुदायिक संसाधन प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि केवल प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं हैय वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति भी आवश्यक है। उन्होंने लैंगिक असमानता, सामाजिक बहिष्करण तथा संसाधनों पर असमान नियंत्रण को नागरिक सहभागिता की प्रमुख चुनौतियों के रूप में चिन्हित किया।

12. नारायण, दीपा (2005),[10] दीपा नारायण ने सशक्तिकरण के बहुआयामी स्वरूप पर बल देते हुए बताया कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण परस्पर जुड़े हुए हैं। उन्होंने सहभागिता को गरीबी उन्मूलन तथा स्थानीय विकास का प्रभावी साधन माना। उनका अध्ययन नागरिक सहभागिता के सामाजिक एवं आर्थिक आयामों को समझने में विशेष रूप से उपयोगी है।

13. बर्धन, प्रदीप एवं मुखर्जी, दिलीप (2006),[9] बर्धन और मुखर्जी ने विकासशील देशों में विकेन्द्रीकरण की प्रभावशीलता का विश्लेषण करते हुए पाया कि स्थानीय निकायों की सफलता स्थानीय सामाजिक संरचना, वित्तीय संसाधनों तथा राजनीतिक उत्तरदायित्व पर निर्भर करती है। उन्होंने यह भी बताया कि गरीब एवं वंचित वर्गों की प्रभावी भागीदारी के बिना विकेन्द्रीकरण के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते।

14. द्रेज, जीन एवं सेन, अमर्त्य (2013),[15] द्रेज और सेन ने भारत में विकास एवं लोकतंत्र के संबंध का विश्लेषण करते हुए यह तर्क दिया कि लोकतांत्रिक संस्थाओं की सफलता नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर आधारित होती है। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय तथा जन-जागरूकता को स्थानीय शासन की प्रभावशीलता के लिए आवश्यक माना। उनका अध्ययन नागरिक सहभागिता और मानव विकास के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है।

15. दुबे, एस. सी. (2017),[16] एस. सी. दुबे ने भारतीय ग्राम समाज की सामाजिक संरचना का विश्लेषण करते हुए बताया कि जाति, वर्ग, परंपराएँ तथा स्थानीय शक्ति संरचना ग्रामीण समाज में नागरिक सहभागिता को प्रभावित करती हैं। उनके अनुसार ग्राम स्तर पर सामाजिक असमानताएँ पंचायतों की लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली को सीमित करती हैं।

16. यादव, के. सी. (2018),[17] के. सी. यादव ने भारत में पंचायती राज व्यवस्था के विकास, संरचना तथा कार्यप्रणाली का विस्तृत अध्ययन किया।

उन्होंने पंचायतों के समक्ष वित्तीय निर्भरता, प्रशासनिक सीमाएँ, क्षमता निर्माण की कमी तथा ग्राम सभा की निष्क्रियता जैसी समस्याओं को प्रमुख चुनौतियों के रूप में प्रस्तुत किया।

17. सिंह, योगेन्द्र (2019),[18] योगेन्द्र सिंह ने भारतीय समाज की संरचना एवं परिवर्तन का अध्ययन करते हुए सामाजिक परिवर्तन, आधुनिकीकरण तथा लोकतंत्रीकरण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि सामाजिक असमानता, जातीय विभाजन तथा आर्थिक विषमता स्थानीय लोकतंत्र में समान नागरिक सहभागिता को प्रभावित करती है।

18. कुमार, अरविन्द (2020),[19] अरविन्द कुमार ने ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज के संबंधों का अध्ययन करते हुए बताया कि पंचायतों की प्रभावशीलता स्थानीय नेतृत्व, वित्तीय संसाधनों, नागरिक जागरूकता तथा सामाजिक सहयोग पर निर्भर करती है। उन्होंने डिजिटल शासन, पारदर्शिता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को पंचायतों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक माना।

19. पंचायती राज मंत्रालय (2024),[20] पंचायती राज मंत्रालय की वार्षिक प्रतिवेदन 2023–24 में पंचायतों के डिजिटलीकरण, e-GramSwaraj, Gram Manchitra, सामाजिक लेखा परीक्षा, वित्तीय प्रबंधन तथा ग्राम सभा की सक्रियता बढ़ाने के प्रयासों का उल्लेख किया गया है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि यद्यपि तकनीकी सुधारों से पारदर्शिता बढ़ी है, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल विभाजन, सामाजिक असमानता, सीमित जागरूकता तथा क्षमता निर्माण की कमी नागरिक सहभागिता के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

अध्ययन क्षेत्र एवं शोध पद्धति– मेरठ जनपद उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है। जनगणना के अनुसार जनपद का लिंगानुपात 886 है। जनपद की कुल साक्षरता दर 72.84 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 80.74 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 63.98 प्रतिशत है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद मेरठ तीन तहसीलों मेरठ, मवाना तथा सरधना में विभाजित है। जनपद में कुल 12 विकास खण्ड हैं, जिनमें मेरठ, रजपुरा, खरखौदा, जानी, रोहटा, मवाना कलाँ, परीक्षितगढ़, माछरा, हस्तिनापुर, सरधना, दौराला तथा सरूरपुर खुर्द सम्मिलित हैं। इन 12 विकास खण्डों में वर्तमान समय में कुल 479 ग्राम पंचायतें कार्यरत हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए जनपद मेरठ को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयनित किया गया है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य पंचायत व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता तथा निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में उनकी भूमिका का विश्लेषण करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया गया। जनपद की 479 ग्राम पंचायतों में से केवल उन ग्राम पंचायतों का चयन किया गया, जिनमें वर्तमान समय में महिला ग्राम प्रधान निर्वाचित हैं। इन महिला ग्राम प्रधानों का चयन अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया।

इस अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध प्रारूप का उपयोग किया गया है। अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के माध्यम से पंचायतों में महिलाओं की वास्तविक स्थिति, उनके अनुभवों तथा निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में उनकी भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है, जबकि वर्णनात्मक शोध प्रारूप के माध्यम से महिला ग्राम प्रधानों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि तथा पंचायत संचालन से संबंधित विभिन्न पहलुओं का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन प्रविधि का प्रयोग किया गया। साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से महिला ग्राम प्रधानों से प्रत्यक्ष रूप से जानकारी प्राप्त की गई, जबकि अवलोकन प्रविधि के माध्यम से पंचायत की कार्यप्रणाली, बैठकों, निर्णय–निर्माण प्रक्रिया तथा स्थानीय परिस्थितियों का अध्ययन किया गया।

द्वितीयक आँकड़ों के लिए पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी प्रतिवेदनों, जनगणना रिपोर्टों, पंचायती राज विभाग के प्रकाशनों तथा अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों का उपयोग किया गया। इन स्रोतों से प्राप्त जानकारी ने अध्ययन की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अध्ययन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक प्राथमिक आँकड़ों का संकलन शोधकर्ता द्वारा स्वयं किया गया। एकत्रित आँकड़ों का वर्गीकरण, सारणीकरण तथा विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों की सहायता से किया गया। आँकड़ों को विभिन्न तालिकाओं एवं प्रतिशतों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया, जिससे अध्ययन के निष्कर्षों को अधिक स्पष्ट एवं वैज्ञानिक रूप से समझा जा सके। आवश्यकता पड़ने पर आँकड़ों के विश्लेषण में संगणकीय सहायता का भी उपयोग किया गया।

संकलित आँकड़ों के व्यवस्थित विश्लेषण एवं व्याख्या के उपरांत ही निष्कर्षों का निर्माण किया गया है। प्रस्तुत निष्कर्ष पंचायतों में महिलाओं की भूमिका, उनकी सहभागिता, निर्णय–निर्माण प्रक्रिया तथा उनके समक्ष उपस्थित चुनौतियों को समझने में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक आधार

संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त –संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त के अनुसार समाज विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से मिलकर बना एक संगठित तंत्र है, जिसमें प्रत्येक संस्था समाज की स्थिरता एवं संतुलन बनाए रखने का कार्य करती है। एमिल दुर्खीम (1893)[21] ने समाज को एक नैतिक व्यवस्था के रूप में देखते हुए सामाजिक एकता पर बल दिया, जबकि टालकॉट पार्सन्स (1951)[22] ने समाज को परस्पर निर्भर संस्थाओं की व्यवस्था बताया। रॉबर्ट के. मर्टन (1968)[23] ने यह स्पष्ट किया कि प्रत्येक सामाजिक संस्था के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रकार्य होते हैं। पंचायती राज व्यवस्था भी एक महत्तवपूर्ण सामाजिक संस्था है, जो स्थानीय प्रशासन, विकास तथा नागरिक सहभागिता को सुदृढ़ करती है। इसलिए यह सिद्धान्त वर्तमान अध्ययन में नागरिक सहभागिता तथा पंचायतों की कार्यप्रणाली को समझने का आधार प्रदान करता है।

संघर्ष सिद्धान्त–संघर्ष सिद्धान्त के अनुसार समाज में शक्ति, संसाधनों तथा अवसरों का असमान वितरण सामाजिक असमानता और संघर्ष को जन्म देता है। कार्ल मार्क्स (1867)[24] ने स्पष्ट किया कि समाज में आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण रखने वाला वर्ग सत्ता पर भी प्रभुत्व स्थापित करता है। इसी प्रकार राल्फ डाहरेनडॉर्फ (1959)[25] ने अधिकार एवं सत्ता के असमान वितरण को सामाजिक संघर्ष का प्रमुख कारण माना। पंचायती राज व्यवस्था में भी जाति, वर्ग, लिंग तथा आर्थिक असमानताएँ नागरिक सहभागिता को प्रभावित करती हैं, जिससे वंचित वर्गों की निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी सीमित हो जाती है। अत: यह सिद्धान्त नागरिक सहभागिता की सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियों के विश्लेषण में उपयोगी है।

प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद सिद्धान्त–प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद के

अनुसार समाज का निर्माण व्यक्तियों के बीच होने वाली सामाजिक अंत:क्रियाओं एवं संचार के माध्यम से होता है। जॉर्ज हरबर्ट मीड (1934)[26] ने बताया कि व्यक्ति सामाजिक संपर्क के माध्यम से अपने व्यवहार एवं दृष्टिकोण का निर्माण करता है। आगे हरबर्ट ब्लूमर (1969)[27] ने इस विचार को विकसित करते हुए कहा कि सामाजिक व्यवहार का आधार व्यक्ति द्वारा परिस्थितियों को दिए गए अर्थ होते हैं। पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा, बैठकों तथा सामुदायिक संवाद के माध्यम से नागरिक विचारों का आदान-प्रदान करते हैं और स्थानीय निर्णयों में भाग लेते हैं। इसलिए यह सिद्धान्त नागरिक सहभागिता में संवाद, विश्वास तथा सामाजिक संबंधों की भूमिका को स्पष्ट करता है।

सामाजिक विनिमय सिद्धान्त–सामाजिक विनिमय सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति किसी सामाजिक गतिविधि में तभी भाग लेता है, जब उसे उससे लाभ, सम्मान अथवा संतुष्टि प्राप्त होने की संभावना होती है। जॉर्ज सी. होमन्स (1961)[28] ने सामाजिक व्यवहार को पुरस्कार एवं लागत के आधार पर समझाया, जबकि पीटर ब्लाउ (1964)[29] ने सामाजिक संबंधों में पारस्परिक लाभ एवं विश्वास के महत्व पर बल दिया। पंचायती राज व्यवस्था के संदर्भ में यदि नागरिकों को विश्वास होता है कि उनकी भागीदारी से विकास कार्यों में सुधार होगा तथा उनकी समस्याओं का समाधान होगा, तो वे पंचायत की गतिविधियों में अधिक सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त नागरिक सहभागिता के व्यवहारगत पक्ष को समझने में सहायक है।

सशक्तिकरण सिद्धान्त–सशक्तिकरण सिद्धान्त का उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय लेने, संसाधनों तक पहुँच प्राप्त करने तथा अपने अधिकारों का प्रभावी उपयोग करने में सक्षम बनाना है। पाउलो फ्रेरे (1970)[30] ने शिक्षा एवं चेतना के माध्यम से वंचित वर्गों को सशक्त बनाने पर बल दिया। इसी क्रम में दीपा नारायण (2005)[31] ने सशक्तिकरण को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक भागीदारी से जोड़ा तथा इसे विकास का आधार माना। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य वंचित वर्गों को संवैधानिक अवसर प्रदान किए गए हैं। यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि शिक्षा, जागरूकता, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक समर्थन के बिना प्रभावी नागरिक सहभागिता संभव नहीं है।

सारणी 1:उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि

क्र.	चर (Variable)	श्रेणी	आवृत्ति (f)	प्रतिशत (%)
1	लिंग	पुरुष	104	52.0
		महिला	96	48.0
		कुल	200	100.0
2	आयु	18–30 वर्ष	38	19.0
		31–45 वर्ष	74	37.0
		46–60 वर्ष	58	29.0
		60 वर्ष से अधिक	30	15.0
3	वैवाहिक स्थिति	विवाहित	162	81.0
		अविवाहित	24	12.0
		विधवा/विधुर	14	7.0
4	शिक्षा	अशिक्षित	32	16.0
		प्राथमिक	48	24.0
		माध्यमिक	72	36.0
		स्नातक एवं अधिक	48	24.0
5	जाति	अनुसूचित जाति	42	21.0
		अन्य पिछड़ा वर्ग	96	48.0
		सामान्य	62	31.0
6	परिवार का प्रकार	एकल परिवार	88	44.0
		संयुक्त परिवार	112	56.0
7	मुख्य व्यवसाय	कृषि	78	39.0
		मजदूरी	52	26.0
		व्यवसाय	34	17.0
		सेवा	36	18.0
8	मासिक पारिवारिक आय	रू15,000	72	36.0
		रू15,001–30,000	68	34.0
		रू30,001–50,000	42	21.0
		रू50,000 से अधिक	18	9.0
9	भूमि स्वामित्व	भूमिहीन	44	22.0
		1 एकड़ तक	78	39.0
		1–3 एकड़	52	26.0
		3 एकड़ से अधिक	26	13.0
10	पंचायत गतिविधियों में सहभागिता	नियमित	84	42.0
		कभी–कभी	76	38.0
		बहुत कम	40	20.0

अध्ययन में कुल 200 उत्तरदाताओं को सम्मिलित किया गया, जिनमें 104 (52.0%) पुरुष तथा 96 (48.0%) महिलाएँ थीं। अधिकांश उत्तरदाता 31–45 वर्ष आयु वर्ग से संबंधित थे। शिक्षा के स्तर पर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक पाई गई। जातिगत आधार पर अन्य पिछड़ा वर्ग (48.0%) का प्रतिनिधित्व अधिक था। अधिकांश उत्तरदाता संयुक्त परिवारों से संबंधित थे तथा कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय था। आर्थिक दृष्टि से अधिकांश परिवारों की मासिक आय रू30,000 से कम पाई गई। पंचायत गतिविधियों में 42 प्रतिशत उत्तरदाता नियमित रूप से भाग लेते थे, जबकि 38 प्रतिशत कभी-कभी सहभागिता करते थे। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षा, आय तथा भूमि स्वामित्व जैसे सामाजिक-आर्थिक कारक पंचायत सहभागिता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

सारणी 2 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

सारणी 2 से स्पष्ट होता है कि पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान उत्तरदाताओं को अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सर्वाधिक 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक संसाधनों की कमी को प्रमुख बाधा बताया, जबकि 64 प्रतिशत ने चुनावी खर्च वहन करने में कठिनाई व्यक्त की। 61 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने राजनीतिक अनुभव के अभाव को महत्वपूर्ण चुनौती माना। इसके अतिरिक्त 59 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पंचायत कार्यों की जानकारी के अभाव तथा 57 प्रतिशत ने सरकारी योजनाओं एवं नियमों की अपर्याप्त जानकारी को सहभागिता में बाधक बताया। महिलाओं के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह (56%), स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव (53%) तथा पंचायत बैठकों में अपनी बात रखने में कठिनाई (48%) भी महत्वपूर्ण चुनौतियों के रूप में सामने आईं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पंचायतों में

प्रभावी एवं समावेशी सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक सशक्तिकरण, राजनीतिक प्रशिक्षण, जागरूकता कार्यक्रम तथा सामाजिक समर्थन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना तथा पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान उनके समक्ष आने वाली बाधाओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण करना था। अध्ययन में कुल 200 उत्तरदाताओं को सम्मिलित किया गया, जिनमें 96 महिलाएँ तथा 104 पुरुष शामिल थे। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि पंचायतों में सहभागिता केवल संवैधानिक अधिकारों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से भी गहराई से प्रभावित होती है।

अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश उत्तरदाता ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित थे तथा उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पंचायत गतिविधियों में उनकी भागीदारी को प्रभावित करती थी। शिक्षा, आय, व्यवसाय, भूमि स्वामित्व तथा पारिवारिक संरचना जैसे कारकों का पंचायत सहभागिता से प्रत्यक्ष संबंध पाया गया। अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित तथा आर्थिक रूप से सशक्त उत्तरदाता पंचायत की बैठकों, विकास योजनाओं एवं निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेते पाए गए। इसके विपरीत निम्न आय वर्ग तथा कम शिक्षित उत्तरदाताओं की सहभागिता अपेक्षाकृत कम देखी गई।

अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि पंचायत में प्रवेश एवं प्रभावी सहभागिता के मार्ग में अनेक बाधाएँ विद्यमान हैं। आर्थिक संसाधनों की कमी, चुनावी व्यय का दबाव, राजनीतिक अनुभव का अभाव तथा सरकारी योजनाओं एवं पंचायत कार्यप्रणाली के संबंध में अपर्याप्त जानकारी प्रमुख चुनौतियों के रूप में सामने आईं। इसके अतिरिक्त सामाजिक पूर्वाग्रह, जातिगत असमानता, स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव तथा पारिवारिक सहयोग की कमी भी पंचायत सहभागिता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक पाए गए।

महिला उत्तरदाताओं के संदर्भ में स्थिति और अधिक चुनौतीपूर्ण दिखाई दी। यद्यपि पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है, फिर भी उन्हें सामाजिक रूढ़ियों, पारिवारिक नियंत्रण, सीमित राजनीतिक अनुभव तथा निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में कम स्वीकार्यता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इससे स्पष्ट होता है कि केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि महिलाओं की वास्तविक एवं प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक एवं संस्थागत समर्थन भी आवश्यक है।

अध्ययन के निष्कर्ष यह संकेत देते हैं कि पंचायतों को अधिक प्रभावी एवं समावेशी बनाने के लिए नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता, प्रशासनिक जानकारी तथा नेतृत्व क्षमता का विकास किया जाना चाहिए। विशेष रूप से महिलाओं, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों तथा सामाजिक रूप से वंचित समूहों को प्रशिक्षण, मार्गदर्शन एवं संसाधन उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता है। इससे न केवल पंचायतों में उनकी सहभागिता बढ़ेगी, बल्कि स्थानीय लोकतंत्र भी अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी एवं जनोन्मुखी बन सकेगा।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पंचायतें ग्रामीण लोकतंत्र की महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं, किंतु उनकी प्रभावशीलता नागरिकों की सक्रिय एवं समान भागीदारी पर निर्भर करती है। सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को कम करके तथा सहभागिता में आने वाली बाधाओं को दूर करके ही पंचायती राज व्यवस्था के मूल उद्देश्य लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, सामाजिक न्याय एवं समावेशी ग्रामीण विकास को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है।प्रशिक्षण, जागरूकता कार्यक्रम तथा सामाजिक समर्थन की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मैडिक, हेनरी (1963). 'लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण और विकास' लंदन एशिया पब्लिशिंग हाउस।
2. अल्तेकर, ए. एस. (1958). 'प्राचीन भारत में राज्य एवं शासन व्यवस्था' दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास।
3. मेहता, बलवंत राय (1957). 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा अध्ययन दल की रिपोर्ट' नई दिल्ली भारत सरकार।
4. मैथ्यू, जॉर्ज (1994). 'पंचायती राज : विधान से जनआंदोलन तक' नई दिल्ली कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी।
5. क्रूक, रिचर्ड सी. एवं मैनर, जेम्स (1998). 'दक्षिण एशिया में लोकतंत्र एवं विकेन्द्रीकरण' कैम्ब्रिज कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस।
6. श्रीनिवास, एम. एन. (1966). 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन' नई दिल्ली ओरिएंट लॉन्गमैन।
7. अग्रवाल, बीना (2001). 'सामुदायिक वानिकी, सहभागिता एवं लैंगिक असमानता का अध्ययन' नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. बुच, निर्मला (2000). 'पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी एवं सशक्तिकरण का अध्ययन' नई दिल्ली महिला विकास अध्ययन केन्द्र।
9. बार्धन, प्रदीप एवं मुखर्जी, दिलीप (2006). 'विकासशील देशों में विकेन्द्रीकरण एवं स्थानीय शासन' कैम्ब्रिज एम.आई.टी. प्रेस।
10. नारायण, दीपा (2005). 'सशक्तिकरण का मापन बहुविषयक दृष्टिकोण' वाशिंगटन डी.सी. विश्व बैंक प्रकाशन।
11. राव, जी. वी. के. (1985). 'ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज पर समिति प्रतिवेदन' नई दिल्ली भारत सरकार।
12. सिंहवी, एल. एम. (1986). 'लोकतंत्र एवं विकास हेतु पंचायती राज संस्थाओं के पुनर्जीवन संबंधी समिति प्रतिवेदन' नई दिल्ली भारत सरकार।
13. डाहल, रॉबर्ट ए. (1989). 'लोकतंत्र और उसके आलोचक' न्यू हेवन येल विश्वविद्यालय प्रेस।
14. भारत सरकार (1992). 'भारतीय संविधान का 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम' नई दिल्ली भारत सरकार प्रकाशन विभाग।
15. द्रेज, जीन एवं सेन, अमर्त्य (2013). 'भारत की चुनौतियाँ एवं विकास की दिशा' नई दिल्ली पेंगुइन प्रकाशन।
16. दुबे, एस. सी. (2017). 'भारतीय ग्राम' नई दिल्ली राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
17. यादव, के. सी. (2018). 'भारत में पंचायती राज व्यवस्था' नई दिल्ली रावत पब्लिकेशन्स।
18. सिंह, योगेन्द्र (2019). 'भारतीय समाज : संरचना एवं परिवर्तन' नई दिल्ली रावत पब्लिकेशन्स।
19. कुमार, अरविन्द (2020). 'ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज' नई दिल्ली ओरिएंट ब्लैकस्वान।

20. पंचायती राज मंत्रालय (2024). 'वार्षिक प्रतिवेदन 2023–24' नई दिल्ली भारत सरकार।
21. दुर्खीम, एमिल. (1893). 'समाज में श्रम विभाजन' पेरिस फेलिक्स अल्कान।
22. पार्सन्स, टालकॉट. (1951). 'सामाजिक व्यवस्था' न्यूयॉर्क द फ्री प्रेस।
23. मर्टन, रॉबर्ट के. (1968). 'सामाजिक सिद्धान्त एवं सामाजिक संरचना' न्यूयॉर्क द फ्री प्रेस।
24. मार्क्स, कार्ल. (1867). 'दास कैपिटल (प्रथम खण्ड)' हैम्बर्ग ओटो माइसनर प्रकाशन।
25. डाहरेनडॉर्फ, राल्फ. (1959). 'औद्योगिक समाज में वर्ग और वर्ग संघर्ष' लंदन रूटलेज एंड केगन पॉल।
26. मीड, जॉर्ज हरबर्ट. (1934). 'मन, आत्म और समाज' शिकागो शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस।
27. ब्लूमर, हरबर्ट. (1969). 'प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद दृष्टिकोण और पद्धति' एंगलवुड क्लिफ्स प्रेंटिस–हॉल।
28. होमन्स, जॉर्ज सी. (1961). 'सामाजिक व्यवहाररू इसके प्रारम्भिक रूप' न्यूयॉर्क हार्कोर्ट, ब्रेस एंड वर्ल्ड।
29. ब्लाउ, पीटर एम. (1964). 'विनिमय और सामाजिक जीवन में शक्ति' न्यूयॉर्क जॉन वाइली एंड संस।
30. फ्रेरे, पाउलो. (1970). 'पीड़ितों की शिक्षाशास्त्र' न्यूयॉर्क कंटिन्यूअम पब्लिशिंग।
31. नारायण, दीपा. (2005). 'सशक्तिकरण का मापन: अंत:विषयक दृष्टिकोण' वाशिंगटन, डी.सी. विश्व बैंक।

सारणी 2: पंचायत में प्रवेश एवं सहभागिता के दौरान आने वाली प्रमुख बाधाएँ

क्र.	बाधा/चुनौती	हाँ (f)	प्रतिशत (%)	नहीं (f)	प्रतिशत (%)
1	पंचायत कार्यों की जानकारी का अभाव	118	59.0	82	41.0
2	आर्थिक संसाधनों की कमी	136	68.0	64	32.0
3	चुनावी खर्च वहन करने में कठिनाई	128	64.0	72	36.0
4	परिवार का अपर्याप्त सहयोग	92	46.0	108	54.0
5	जातिगत भेदभाव का अनुभव	84	42.0	116	58.0
6	महिलाओं के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह	112	56.0	88	44.0
7	राजनीतिक अनुभव का अभाव	122	61.0	78	39.0
8	स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव	106	53.0	94	47.0
9	पंचायत बैठकों में अपनी बात रखने में कठिनाई	96	48.0	104	52.0
10	सरकारी योजनाओं एवं नियमों की जानकारी का अभाव	114	57.0	86	43.0

****

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन

डॉ. रश्मि शर्मा* पवन कुमार सोपरा**

* प्राचार्य, राष्ट्र भारती शिक्षा महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र) सतत् शिक्षा अध्ययनशाला,सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन किया गया है। शोध शिक्षकों की व्यवसाय के प्रति पूर्ण समर्पण भावना एवं अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को व्यवसाय में समर्पित कर देने की तत्परता ही व्यावसायिक प्रतिबद्धता कहलाती है। प्रतिबद्ध व्यक्ति अपना कार्य करके संतोष का अनुभव करते है। यह अध्ययन सर्वेक्षण विधि पर आधारित है। इसमें मुख्य चर व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं जननांकीय चर विद्यालय के प्रकार, लिंग (महिला एवं पुरूष शिक्षक) संकाय(कला और विज्ञान) शोध का सीमांकन मंदसौर, नीमच, रतलाम एवं शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों तक सीमित रखा है। शोध उपकरण में मानकीकृत उपकरण डॉ. रविन्दर कौर, डॉ. सरबजीत कौर 'रानू' एवं श्रीमती सरबजीत कौर 'बरार' का उपकरण 600 महिला पुरूष शिक्षकों के न्यादर्श पर किया गया है। शोध में सांख्यिकीय प्रविधि प्रतिशत,माध्य/मध्यमान, मानक विचलन, टी परीक्षण सहसंबंध से शोध परिणाम प्राप्त किये है। विद्यालय, लिंग, संकाय के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों मे सार्थक अंतर हैं, परंतु यह सार्थक अंतर नहीं है, अत: अधिकांश शिक्षक/ शिक्षिकाओं की व्यावसायिक प्रतिबद्धता उनके कार्य के प्रति सजगता दर्शाती हैं । तथा कुछ शिक्षक/शिक्षिका अपने कार्य के प्रति सजग नहीं है, अत: कार्य कौशल को उत्साह पूर्ण बनाकर प्रतिबद्धता में सजगता को बढ़ाया जा सकता है।

प्रस्तावना – शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का विकास है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपनी शक्तियों को व्यवहार में लाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य निरंतर सीखता रहता है। सीखने की इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप उसे अनुभव प्राप्त होता है। इन अनुभवों को व्यवहार में लाने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा मनुष्य व समाज का दर्पण है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करता है और शिक्षा सभ्यता के रूप में इस संसार की उन्नति करने में सहायता करती है।

शिक्षा के मुख्य स्तर है– प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, उच्च व उच्चतर शिक्षा है। शिक्षा में इन सभी स्तरों का विशेष स्थान है। शिक्षा का प्रथम पायदान प्राथमिक स्तर व द्वितीय पायदान उच्च प्राथमिक स्तर है। बालक प्राथमिक स्तर पर आधारभूत ज्ञान प्राप्त करके उच्च प्राथमिक स्तर में प्रवेश करता है। शिक्षा एक विकासशील प्रक्रिया है जो अनवरत एवं हर जगह चलती है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक कुछ ना कुछ अवश्य सीखता है। इस प्रकार शिक्षा परस्पर सीखने–सिखाने की सतत् एवं अनवरत प्रक्रिया है एवं इसका मुख्य उद्देश्य जीवन का सर्वांगीण विकास करना है। शिक्षा कोई पदार्थ नहीं है एवं शिक्षा स्थिर भी नहीं यह एक गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की कुंजी है। शिक्षा के प्रकाश से व्यक्ति के सभी प्रकार के संदेह दूर हो जाते हैं । शिक्षा व्यक्ति की बुद्धि विवेक और कुशलता में वृद्धि करती है तथा जीवन को समझने की क्षमता प्रदान करती है।

यह अनुभव किया जा रहा है कि अगर शिक्षक में व्यवसायिक योग्यता है एवं वह प्रतिबद्ध है तथा उसे शैक्षिक संस्थान और समाज में कार्य करने की शक्ति एवं आज्ञा प्रदान की जाती है तो एक ऐसी श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया प्रारम्भ की जा सकती है जिसके द्वारा अधिक से अधिक विद्यार्थियों के विकास में उच्च कोटि का अधिगम बहुत ही प्रभावशाली ढंग से देखा जा सकता है इस प्रकार शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन में शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षकों की प्रतिबद्धता एक अलग प्रकार की होती है यद्यपि वह एक व्यावसायिक व्यक्ति होता है किन्तु डाक्टरों एवं वकीलों की भांति वह स्वतन्त्र परिस्थितियों में कार्य नहीं कर सकता अपनी कक्षा में स्वामित्व तथा उस पर पूर्ण नियंत्रण होते हुए भी उसे आस–पास के वातावरण एवं सम्पूर्ण समाज पर निर्भर होना पड़ता है। इसलिए उसमें धर्मात्मा की लगन, अभिभावक की चिन्ता एवं एक सुधारक का समर्पण आवश्यक है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर ज्ञात करना।
2. विद्यालय के प्रकार के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन करना।
3. लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन करना।
4. संकाय के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन करना।

परिकल्पना–प्रस्तुत शोध हेतु शुन्यपरिकल्पनाओं का निर्माण किया गया

1. विद्यालय के प्रकार के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय

के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. लिंग के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. संकाय के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन के चर

मुख्य चर –व्यावसायिक प्रतिबद्धता

जननांकीय चर

1. विद्यालय के प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के शिक्षक)
2. लिंग (महिला एवं पुरूष शिक्षक)
3. संकाय (कला और विज्ञान)

शोध सीमांकन:

1. प्रस्तुत शोध कार्य कों मध्यप्रदेश के रतलाम, मंदसौर एवं नीमच जिले तक सीमित रखा गया।
2. प्रस्तुत शोध कार्य केवल माध्यमिक शिक्षा मण्डल भोपाल द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालयों तक सीमित रखा गया।
3. शोध कों शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों तक ही सीमित रखा गया।
4. प्रस्तुत शोध कों कला एवं विज्ञान संकाय के शिक्षकों तक ही सीमित रखा गया।
5. प्रस्तुत शोध महिला शिक्षक एवं पुरूष शिक्षकों तक ही सीमित रखा गया।

शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया

शोध विधि – प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने अपने अनुसंधान हेतु सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया है।

शोध उपकरण – प्रयुक्त शोध में व्यावसायिक प्रतिबद्धता के मापन हेतु मानकीकृत उपकरण को लिया गया है जो निम्न है

01	**व्यावसायिक प्रतिबद्धता**	डॉ0 रविन्दर कौर, डॉ0 सरबजीत कौर 'रानू' एवं श्रीमती सरवजीत कौर 'बरार'	प्रामाणिक

शोध जनसंख्या – मंदसौर जिले के लगभग 85 शासकीय विद्यालय एवं 99 अशासकीय विद्यालय, रतलाम जिले के लगभग 92 शासकीय विद्यालय एवं 92 अशासकीय विद्यालय एवं नीमच जिले के लगभग 68 शासकीय विद्यालय एवं 61 अशासकीय विद्यालयों को जनसंख्या के रूप में लिया गया। इनमें अध्यापनरत उच्चतर माध्यमिक स्तर के महिला एवं पुरूष शिक्षकों को लिया गया। इनको भी लिंगगत भिन्नता के आधार पर दो वर्गो–पुरूष शिक्षक एवं महिला शिक्षक के रूप में वर्गीकृत किया गया एवं संकाय के आधार पर दो वर्गो कला एवं विज्ञान के रूप में वर्गीकृत किया गया।

शोध न्यादर्श – प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण शोध है। प्रस्तुत अनुसंधान समस्या के शोध के लिए रतलाम, मंदसौर एवं नीमच जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया।

प्रत्येक जिले से 10 शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय एवं 10 अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के महिला एवं पुरूष शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में लिया गया। प्रत्येक विद्यालय से 05 महिला शिक्षक एवं 05 पुरूष शिक्षकों को यादृच्छिक विधि द्वारा चयनित किया गया। इस प्रकार कुल 600 (प्रत्येक जिले से 200- 200-200) शिक्षकों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधियां– प्रस्तुत शोधकार्य हेतु प्राप्त प्रदत्तों का सारणीयन कर निम्नांकित सांख्यिकीय प्रविधि का उपयोग किया गया।

1. प्रतिशत 2. माध्य/ मध्यमान 3. मानक विचलन
4. टी–परीक्षण 5. सहसंबंध (Corelation)

शोध परिणाम – इस शोध में सांख्यिकीय विधि,प्रतिशत,माध्य/ मध्यमान,मानक विचलन,टी- परीक्षण एवं सहसंबध का उपयोग कर परिणामों को प्राप्त किया गया है जो इस प्रकार है–

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का स्तर पर अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि शिक्षक शिक्षिकाओं की राय के अनुसार अधिकांश 63 प्रतिशत शिक्षक शिक्षिकाओं की व्यावसायिक प्रतिबद्धता उच्च पाई गई 35 प्रतिशत की मध्यम तथा 02 प्रतिशत शिक्षक /शिक्षिकाओं की व्यावसायिक प्रतिबद्धता निम्न पाई गई।

परिकल्पना के आधार पर :

1. विद्यालय के प्रकार के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अंतर नहीं हैं। निरस्त की जाती है, की जाँच में अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का मध्यमान शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों से अधिक है। दोनो में सार्थक अंतर है, परंतु यह अतंर सार्थक नहीं है। अत: यह परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है।

2. लिंग (पुरूष/ महिला) के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अंतर नहीं हैं। निरस्त की जाती है, की जाँच में अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का मध्यमान शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों से अधिक है। दोनो में सार्थक अंतर है, परंतु यह अतंर सार्थक नहीं है। अत: यह परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है।

3. संकाय के आधार पर उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता में कोई सार्थक अंतर नहीं हैं। निरस्त की जाती है, की जाँच में अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का मध्यमान शासकीय विद्यालयों के शिक्षकों से अधिक है। दोनो में सार्थक अंतर है, परंतु यह अतंर सार्थक नहीं है। अत: यह परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है।

अध्यापक व्यावसायिक प्रतिबद्धता को पांच भागों में विभक्त किया गया

(अ) अधिगमकर्ता के प्रति व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

1. सकारात्मक दृष्टीकोंण :–विद्यार्थियों में सकारात्मक दृष्टीकोण विकसित करने के प्रयास पर 48 प्रतिशत शिक्षक 'पूर्णत: सहमत',22 प्रतिशत 'सहमत', 01 प्रतिशत 'अनिश्चित', 09 प्रतिशत 'असहमत', एवं 20 प्रतिशत 'पूर्णत: असहमत', पाए गए। अत: अधिकांश(48 प्रतिशत) शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की राय 'पूर्णत: सहमत' के पक्ष में पाई गई। अर्थात् शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की राय में समानता पाई गई।

2. विद्यार्थियों की अनुपस्थिति :–शिक्षण को रूचिकर बनाकर अनुपस्थिति की समस्या को हल करने पर 69 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ 'पूर्णत: सहमत', और 21 प्रतिशत 'सहमत' एवं इसके विपरित 03 प्रतिशत 'अनिश्चत' ,10 प्रतिशत 'असहमत', और 07 प्रतिशत 'पूर्णत असहमत' रहे।

3. **समान ध्यान देना :** सभी विद्यार्थियों पर समान ध्यान देना असंभव है के कथन पर 51 प्रतिशत शिक्षक एव शिक्षिकाएँ 'पूर्णत: सहमत' और 21 प्रतिशत 'सहमत', जबकि 11 प्रतिशत 'असहमत' और 09 प्रतिशत 'पूर्णत: असहमत' पाए गए।

4. **मनोवैज्ञानिक समस्याएँ :** विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक समस्याओं से सरोकार न होने के नकारात्मक कथन पर 38 प्रतिशत शिक्षक एव शिक्षिकाएँ 'पूर्णत: सहमत' और 19 प्रतिशत ने 'सहमत' एवं वही 12 प्रतिशत 'असहमत' और 25 प्रतिशत 'पूर्णत: असहमत' थे।

5. **सर्वागीण कथन :** विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास के लिए कर्तव्य-बद्ध होने पर 78 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ 'पूर्णत: सहमत'और 34 प्रतिशत 'असहमत' पाए गए, जो कि शिक्षकों की भारी निष्ठा को दर्शाता है।

6. **प्रखर विद्यार्थियों पर ध्यान :** प्रखर विद्यार्थियों पर सबसे कम ध्यान देने की बात पर 42 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ 'पूर्णत: सहमत' और 34 प्रतिशत 'सहमत' पाए गए।

7. **शिक्षण पूर्व नियोजन :** पूर्व तैयारी की आवश्यकता न होने की बात पर 40 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ 'पूर्णत: सहमत' और 20 प्रतिशत 'सहमत' पाए गए।

8. **गृह कार्य और योग्यता :**गृह कार्य देते समय योग्यताओं पर ध्यान न देने के संदर्भ में अधिकांश 35 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ 'असहमत' पाए गए।

9. **विद्यार्थियों को अनदेखा करना :** उत्तर ने दे पाने पर विद्यार्थी को अनदेखा करने के कथन से अधिकांश 52 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं द्वारा 'असहमती' प्रदान की गई।

(ब) समाज के प्रति व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

1. **अच्छे नागरिक निर्माण : '**विद्यार्थियों अच्छे नागरिक तभी बन सकते है जब अध्यापक अच्छे हो' इस कथन पर शिक्षक एव शिक्षिकाओं की 89 प्रतिशत 'पूर्णत: सहमती' पाई गई।

2. **सामाजिक दृष्टिकोण :** समाज के दृष्टिकोण के प्रति संवेदनशीलता पर 60 प्रतिशत 'पूर्णत: सहमत' और 20 प्रतिशत 'सहमती' प्राप्त हुई।

3. **सामाजिक गतिविधियाँ :** सामाजिक गतिविधियों के लिए प्रोत्साहित करना जिम्मेदारी न मानने के कथन पर 57 प्रतिशत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की 'पूर्णत सहमत' पाई गई।

4. **सामाजिक समस्याओं पर चर्चा :** सामाजिक समस्याओं पर चर्चा करने को समय की बबार्दी मानने पर 72 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की राय 'पूर्णत: सहमत' के पक्ष मे रही।

5. **जाति या धर्म पर भेदभाव :** 'मै जाति या धर्म के आधार पर भेद-भाव नहीं करता' के मानवीय और संवैधानिक मूल्य पर 82 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

6. **आस- पड़ोस की घटनाएँ :** आस - पड़ोस की घटनाओं के प्रति सचेत रहने पर 52 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

7. **सामाजिक परिवर्तन के माध्यम :** अध्यापक को सामजिक परिवर्तन का माध्यम मानने पर 78 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

8. **सामाजिक उत्थान :** सामाजिक उत्थान को केवल सामाजिक कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारी मानने पर अधिकांश 60 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'सहमत' पाए गए।

9. **शिक्षक बनाम अन्य व्यवसाय :** अन्य व्यवसायों को समाज के लिए अधिक महत्वपूर्ण मानने पर 52 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

(स) स्वयं के व्यवसाय के प्रति व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

1. **व्यावसायिक कार्यो को प्राथमिकता :** अपने कार्यो को हार्दिक प्राथमिकता देने के पक्ष मे 48 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

2. **प्रारंभिक अवस्था में रूचि :** शिक्षण व्यवसाय केवल शुरूआत में रूचिकर लगने की बात पर 36 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

3. **व्यवसाय की आलोचना पर तनाव :** व्यवसाय को बुरा भला कहे जाने पर 60 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' होकर तनावग्रस्त होने की बात स्वीकार की गई।

4. **अवकाश काल में कार्य :** छुट्टी के दिनों में कार्य के लिए तत्पर रहने पर 57 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

5. **कार्य अति भार :** नौकरी को थकान भरी मानने के संदर्भ में अधिकांश 52 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'असहमत' पाए गए।

6. **संसाधनों का अभाव :** आवश्यक संसाधनों के बिना कार्य करना नापसंद होने पर 52 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

7. **अधिक वेतन पर व्यवसाय परिवर्तन :** अधिक वेतन मिलने पर व्यवसाय बदलने में संकोच ने होने की बात पर 52 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

8. **लाभ की अपेक्षा हानियाँ :** इस नकारात्मक सोच से अधिकांश 54 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'असहमत' पाए गए।

9. **कर्तव्यबद्ध रहने मे कठिनाई :** वर्तमान परिस्थितियों में कर्तव्यबद्ध रहने को कठिन मानने पर अधिकाश 57 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'असहमत' पाए गए।

(द) उत्कृष्टता प्राप्त करने के प्रति व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

1. **सेमीनार/सभाओं में भागीदारी :** इसे समय की बबार्दी मानने से अधिकांश 56 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'असहमत' पाए गए।

2. **उत्कृष्टता एक निरंतर यात्रा :** उत्कृष्टता की प्राप्ति को कभी न समाप्त होने वाली यात्रा मानने पर 62 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

3. **निरंतर सीखने की आवश्यकता :** शिक्षण में निरंतर सीखने की अनिवार्यता पर 89 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

4. **शैक्षणिक पत्र-पत्रिकाएँ :** पढ़ने के लिए समय न बचने की समस्या पर 42 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

5. **तौर तरीकों में कमी का अनुभव :** अपने तौर तरीकों में कोई कमी न महसूस न होने पर 38 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

6. **पुरातन बनाम आधुनिक पद्धतियों :** पुरानी पद्धतियों को बेहतर मानने न होने पर 26 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत'

एवं 25 प्रतिशत 'सहमत' पाए गए।

7. **शिक्षण और आलस्य :** शिक्षण व्यवसाय लोगों को आलसी बनाता है, इस बात से अधिकांश 58प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'असहमत' पाए गए।

8. **कमियों के प्रति समालोचनात्मक सचेत :** अपनी कमियों के प्रतिसजग रहने पर 36 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

9. **उत्कृष्टता का सीमित क्षेत्र :** शिक्षण में उत्कृष्टता का क्षेत्र सीमित होने के विचार पर 56 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

(ज) मानवीय मूल्यों के प्रति व्यावसायिक प्रतिबद्धता :

1. **नैतिक मूल्यों पर मुखरता:** दूसरों की उपस्थिति में भी नैतिक मूल्यों पर विचार मुखरता से रखने पर 36 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

2. **ट्यूशनप्रथा :** जीवन स्तर सुधारने के लिए ट्यूशन लेने से परहेज ने होने पर 39 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' एवं 33 प्रतिशत 'असहमत' पाए गए।

3. **नैतिक विद्यार्थियों की प्रशंसा:** नैतिक मूल्यों का पालन करने वाले विद्यार्थियों की प्रशंसा करने पर 44 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

4. **अभद्र भाषा पर रोष :** लोगों द्वारा अभद्र भाषा के प्रयोग पर रोष प्रकट करने के संबंध में 88 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

5. **आदर्श बनने की प्रतिबद्धता :** विद्यार्थियों के लिए आदर्श बनने की कर्तव्यबद्धता पर 87 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

6. **ईमानदारी का स्तर :** किसी भी परिस्थिति में ईमानदारी बनाए रखने के उच्च मूल्य पर 88 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

7. **राष्ट्र के नैतिक मानक :** अध्यापक द्वारा राष्ट्र के नैतिक मानक कदाचित ही निर्धारित होने के कथन पर 33 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने ' असहमत' पाए गए।

8. **विद्यार्थियों के अभद्र व्यवहार पर शर्म :** छात्रों के गलत व्यवहार पर स्वयं शर्म महसूस करने के संदर्भ में अधिकांश 28 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने ' असहमत' पाए गए।

9. **व्यावसायिक अवमूल्यों का पालन :** व्यावसायिक आचार संहिता का पालन करने पर समाज में आदर मिलने के विश्वास पर 80 प्रतिशत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं ने 'पूर्णत: सहमत' पाए गए।

शैक्षिक निहितार्थ – उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता शिक्षण–अधिगम की गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है, अत: शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नवीन शिक्षण विधियों, कक्षा प्रबंधन कौशल, सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग तथा विद्यार्थी–केंद्रित शिक्षण पर विशेष बल दिया जाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह निहितार्थ उभरता है कि यदि शिक्षकों को अनुकूल कार्य वातावरण, पर्याप्त शैक्षिक संसाधन तथा प्रशासनिक सहयोग प्राप्त हो, तो उनकी प्रतिबद्धता में वृद्धि होती है और शिक्षण संबंधी समस्याएँ स्वत: कम होती हैं।

शिक्षकों के लिये:

1 व्यावसायिक प्रतिबद्धता के अंतर्गत शिक्षकों को अपने पेशे के प्रति निष्ठा, उत्तरदायित्व–बोध तथा नैतिक मूल्यों का पालन करना आवश्यक है।

2. नवीन शिक्षण विधियों, गतिविधि–आधारित शिक्षण तथा सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार संभव है।

सुझाव :

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन छोटे न्यादर्श पर किया है अत: बड़े न्यादर्श पर भी किया जा सकता था।
2. शिक्षकों के कार्य कौशल विकास में प्रतिबद्धता अपने आप में जटिल समस्याओं को हल करने में सहायक होती है अत: कला एवं विज्ञान के शिक्षक विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हुए परिक्षा परिणाम उच्च देते है।
3. व्यावसायिक प्रतिबद्धता में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के अतिरिक्त अन्य तकनिकी शिक्षा एवं स्वास्थ्य शिक्षा में भी शिक्षकों का योगदान महत्वपुर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कुलश्रेष्ठ, एम. पी. (2005), शिक्षा मनोविज्ञान आर. लाल बुक डिपो मेरठ।
2. भटनागर, ए. बी. एवं भटनागर, मीनाक्षी (2005); 'मापन में सांख्यिकी'; विनय रखेजा, मेरठ।
3. कौल लोकेश (2005), शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, मेरठ, आर. लाल. बुक डिपो।
4. शर्मा, आर. ए (2006)., शिक्षा अनुसंधान आर.लाल बुक डिपो मेरठ।
5. मीणा, ललिता कुमारी (2012), 'माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता पर बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन', पीएचडी शिक्षाशास्त्र रिजनल इस्टीटयूट ऑफ एजुकेशन, मैसूर।
6. राज तिलक (2012), 'माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का अध्ययन'।
7. अर्चना (2020), 'शिक्षण प्रभावोत्पादकता एवं कक्षा–कक्ष अशाब्दिक सम्प्रेषण के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन',अनपब्लिशड डॉक्टोरल थिसिस, भोपाल यूनिवर्सिटी।
8. गंगवार (2020), 'वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण प्रभावशीलता का शिक्षण अभिवृत्ति एवं दायित्वबोध के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन', अप्रकाशित लघु शोध अध्ययन भुवनेश्वर विश्वविद्यालय।

****

The Role of Circular Business Models in Promoting Green Economic Growth in India : A Commerce Perspective

Dr. Anjana Gorani*

***Assistant Professor, R.P.L. Maheshwari College, Indore (M.P.) INDIA**

Abstract: The increasing pressure on natural resources, rapid industrialization, and environmental degradation have compelled economies to shift from the traditional linear model of production and consumption to a more sustainable circular economy. Circular Business Models (**CBMs**) focus on minimizing waste by promoting the reuse, repair, refurbishment, remanufacturing, and recycling of products and materials. In India, the adoption of circular business models has gained momentum due to supportive government initiatives, growing environmental awareness, and corporate sustainability commitments. This paper examines the role of circular business models in promoting green economic growth from a commerce perspective. It explores how businesses create economic value while reducing environmental impacts through resource efficiency and sustainable production practices. The study also discusses India's policy initiatives, corporate examples, challenges, and opportunities associated with the transition towards a circular economy. The paper concludes that circular business models can significantly contribute to sustainable economic development by improving competitiveness, generating employment, reducing production costs, and fostering responsible consumption.

Keywords: Circular Economy, Circular Business Models, Green Growth, Sustainability, Commerce, India.

Introduction - Economic development has traditionally followed a linear model of "take, make, use, and dispose," which relies heavily on extracting natural resources and generating large amounts of waste. While this model has contributed to industrial growth, it has also resulted in resource depletion, pollution, and climate change. As environmental concerns continue to grow, businesses are increasingly adopting sustainable practices that balance profitability with environmental responsibility.

A circular economy offers an alternative approach by keeping products, materials, and resources in use for as long as possible through reuse, repair, recycling, and remanufacturing. Circular Business Models (CBMs) enable firms to implement these principles while creating economic value. Unlike conventional business models that focus primarily on product sales, CBMs emphasize resource efficiency, product life extension, and waste reduction.

For India, which is one of the world's fastest-growing economies, adopting circular business models presents an opportunity to achieve economic growth without placing excessive pressure on natural resources. From a commerce perspective, CBMs not only improve environmental sustainability but also enhance operational efficiency, reduce costs, create new markets, and generate employment opportunities.

Research Objective: The study aims to:

1. Examine the concept of Circular Business Models.
2. Analyse the role of CBMs in promoting green economic growth in India.
3. Evaluate the importance of CBMs from a commerce perspective.
4. Identify the challenges and opportunities associated with implementing circular business models.
5. Suggest measures to strengthen the adoption of circular business practices in India.

Circular Business Models and Green Economic Growth: Circular Business Models are business strategies designed to maximize the value of products and materials by extending their lifecycle. Instead of treating waste as an inevitable outcome of production, CBMs view waste as a valuable resource that can be reused within the production cycle.

Common circular business models include:

1. Product life extension through repair and refurbishment.
2. Product-as-a-Service (leasing instead of ownership).
3. Recycling and remanufacturing.
4. Resource recovery from industrial waste.
5. Sharing platforms that maximize product utilization.

Green economic growth refers to economic development that promotes environmental sustainability while ensuring social welfare and efficient resource

utilization. Circular business models support green growth by reducing resource extraction, minimizing waste generation, lowering carbon emissions, and encouraging innovation.

Circular Business Models from a Commerce Perspective: From the perspective of commerce and business management, circular business models provide several economic advantages.

1. First, they reduce production costs by minimizing raw material consumption and promoting efficient resource utilization. Recycled materials often cost less than newly extracted resources, allowing firms to improve profitability.
2. Second, CBMs create new revenue streams. Businesses can generate income through repair services, recycling operations, remanufacturing activities, product leasing, and resale of refurbished goods.
3. Third, circular practices enhance supply chain resilience. By reducing dependence on imported raw materials and utilizing locally available recyclable resources, businesses become less vulnerable to price fluctuations and supply disruptions.
4. Fourth, consumers increasingly prefer environmentally responsible brands. Companies adopting circular practices improve their corporate image, strengthen customer loyalty, and gain a competitive advantage in domestic and international markets.
5. Finally, circular business models encourage innovation by promoting eco-design, sustainable packaging, and resource-efficient technologies. Such innovation enhances long-term business sustainability while contributing to national economic development.

Circular Economy Initiatives in India: India has recognized the importance of transitioning towards a circular economy. Various government initiatives encourage sustainable production and responsible consumption.

The **National Resource Efficiency Policy** aims to improve resource productivity and reduce waste across industries. The **Extended Producer Responsibility (EPR)** framework requires producers of electronic waste, plastic waste, batteries, and tyres to take responsibility for collecting and recycling products after their use.

The Government has also launched **Mission LiFE (Lifestyle for Environment)** to encourage sustainable consumer behaviour and promote environmentally responsible lifestyles.

In addition, the **Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR)** framework introduced by the Securities and Exchange Board of India (SEBI) requires large listed companies to disclose their environmental, social, and governance (ESG) performance, encouraging businesses to adopt sustainable practices.

These initiatives demonstrate India's commitment to integrating sustainability into economic development and commercial activities.

Indian Business Examples: Several Indian companies have successfully adopted circular business models.

1. Tata Steel utilizes industrial waste such as slag for cement manufacturing and road construction, reducing waste disposal while generating additional revenue.

2. ITC Limited has implemented sustainable packaging, waste recycling, and renewable energy initiatives, making several of its manufacturing units water-positive and carbon-positive.

3. Mahindra & Mahindra promotes remanufacturing of automobile components, extending product life while reducing manufacturing costs and environmental impacts.

4. Attero Recycling, an Indian clean-technology company, specializes in recycling electronic waste and recovering valuable metals such as lithium, cobalt, and gold. Its business model demonstrates how waste can become an economically valuable resource.

These examples show that circular business models can help achieve environmental sustainability and commercial success.

Challenges in Implementing Circular Business Models: Despite their benefits, the adoption of circular business models in India faces several challenges.

1. Many businesses, particularly small and medium enterprises (SMEs), lack awareness regarding circular economy principles. High initial investment requirements for recycling infrastructure and clean technologies discourage adoption.
2. India also faces inadequate waste segregation and collection systems, reducing the availability of quality recyclable materials. Consumer preference for low-cost new products over refurbished goods further limits market demand.
3. Additionally, fragmented regulatory implementation and limited collaboration among industries, government agencies, and consumers slow the transition toward a circular economy.

Addressing these challenges requires coordinated efforts from policymakers, businesses, educational institutions, and civil society.

Recommendations: To accelerate the adoption of circular business models in India, the following measures are recommended:

1. The government should provide tax incentives, subsidies, and low-interest financing for businesses investing in circular technologies.
2. Awareness programmes should educate businesses and consumers about the economic and environmental benefits of circular practices.
3. Educational institutions should incorporate circular economy and sustainability into commerce and management curricula.
4. Public-private partnerships should strengthen waste collection, recycling infrastructure, and reverse logistics

systems.

5. Companies should integrate circular principles into product design, supply chain management, and ESG reporting.
6. Digital technologies such as Artificial Intelligence (AI), the Internet of Things (IoT), and blockchain should be used to improve resource tracking, waste management, and supply chain transparency.

Conclusion: Circular Business Models have emerged as an effective strategy for achieving green economic growth while maintaining business profitability. From a commerce perspective, these models enable firms to reduce production costs, improve operational efficiency, create new business opportunities, and enhance competitiveness through sustainable innovation.

India's growing policy support, increasing corporate sustainability initiatives, and expanding consumer awareness provide a favourable environment for the adoption of circular business practices. Nevertheless, challenges relating to infrastructure, awareness, investment, and regulatory implementation continue to hinder widespread adoption.

A collaborative approach involving government, industry, academia, and consumers is essential for building a robust circular economy. By integrating circular business models into mainstream commercial activities, India can achieve inclusive economic growth while protecting the environment and ensuring sustainable development for future generations.

References:-

1. Bocken, N. M. P., de Pauw, I., Bakker, C., & van der Grinten, B. (2016). *Product design and business model strategies for a circular economy*. Journal of Industrial and Production Engineering, 33(5), 308–320.
2. Ellen MacArthur Foundation. (2015). *Towards the Circular Economy: Economic and Business Rationale for an Accelerated Transition*.
3. Geissdoerfer, M., Savaget, P., Bocken, N. M. P., & Hultink, E. J. (2017). *The Circular Economy – A New Sustainability Paradigm?* Journal of Cleaner Production, 143, 757–768.
4. Ghisellini, P., Cialani, C., &Ulgiati, S. (2016). *A Review on Circular Economy: The Expected Transition to a Balanced Interplay of Environmental and Economic Systems*. Journal of Cleaner Production, 114, 11–32.
5. Kirchherr, J., Reike, D., &Hekkert, M. (2017). *Conceptualizing the Circular Economy: An Analysis of 114 Definitions*. Resources, Conservation and Recycling, 127, 221–232.
6. NITI Aayog. (2021). *Resource Efficiency and Circular Economy in India*.
7. Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2022). *Extended Producer Responsibility Guidelines*.
8. SEBI. (2021). *Business Responsibility and Sustainability Reporting (BRSR) Framework*.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

शीलांमाऊ का जमर : सत्य और स्वाभिमान की अमर गाथा

अशोक दान*

* शोधार्थी (इतिहास) ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.) भारत

प्रस्तावना – चारण परंपरा में सत्य और स्वमान (स्वाभिमान) की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने का इतिहास बहुत पुराना रहा है। जब जब धर्म और सत्य पर संकट आया, इस समाज ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। ऐसी ही एक ओजस्वी गाथा जैसलमेर रियासत के झणकली गाँव की है, जहाँ शीलांमाऊ ने अपनी जागीर और स्वाभिमान के लिए जमर (अग्नि स्नान) किया।

विवाद की जड:ढाकणिया की जमीन – झणकली (जैसलमेर) के भाढावतचारणों को ढाकणिया गाँव में एक 'खड़ीन' (खेती योग्य भूमि) जागीर में मिली हुई थी। लेकिन जैसलमेर के तत्कालीन हाकम (प्रशासक) और मेहता दीवान की कुदृष्टि उस जमीन पर थी। उन्होंने उस जमीन का पट्टा 'खोखर' मुसलमानों के नाम कर दिया। यह खबर जब झणकली पहुंची तो चारणों के स्वाभिमान को ठेस लगी। उन्होंने साफ कहा, 'ढाकणिया में जैसलमेर की एक इंच भी जमीन नहीं है'। पर 'गुणचोर' (एहसान फरामोश) खोखर अपनी हठ पर अड़े रहे। उन्होंने कहा कि हम वर्षो से यह खड़ीन खड़ रहे हैं, यह हमारा है। चारणों ने समझाया कि हमने तुम्हें पेट भरने को जमीन दी और तुम मालिक बन कर बैठ गए? लेकिन सत्ता के नशे में चूर हाकम और लालची खोखर नहीं माने।

जमर का निर्णय और शीला माऊ का रौद्र रूप – अन्याय को सिर पर खड़ा देख झनकली के चारणों ने तय किया कि अब 'जमर' या 'तेलिया' (आत्मदाह/त्रागा) के अलावा कोई चारा नहीं है। पर सवाल था कि जमर करेगा कौन? अंत में निर्णय हुआ कि भाडली में बैठीं जोगराज जी की विधवा शीलांमाऊ से सलाह ली जाए। उनके पुत्र सारंगधर जी को भाडली भेजा गया। बेटे ने जाकर माँ को पूरी व्यथा सुनाई कि कैसे खोखर जमीन दबा रहे हैं और समाज संकट में है। यह सुनते ही शीलांमाऊ का रूप बदल गया। वे तमतमा उठीं और बोलीं-'दीकरा ! तेरे पिता का स्वर्गवास हुआ है मैं तो अभी जिंदा हूँ ना जमीन के लिए जमर मैं करूंगी'। उनकी आंखों में अंगारे देख भाटी महिलाओं ने रोकना चाहा, पर शीलां ने कहा, 'मुझे अब किसी के साथ की जरूरत नहीं, मुझे तो नौ-लाख (शक्तियों) का बुलावा आ गया है'।

ढाकणिया में अग्नि परीक्षा – शीलांमाऊ सीधे ढाकणिया पहुंचीं और ललकारा 'अरे खोखरों ! खज (हक का) खाने से पेट भरता है, अखज (हराम) का खाने से नहीं'। खोखरों ने उपहास उड़ाते हुए कहा कि हम गीदड़ भभकियों से नहीं डरते। यह सुनते ही माउ ने जमर की तैयारी का आदेश दिया। गोमजी नामक एक व्यक्ति ने शंका जताई कि 'जीते जी जलना आसान नहीं है माऊ'। इस पर शीलांमाऊ ने अपनी सत्यता का प्रमाण (परचा) दिया। उन्होंने खौलते हुए घी की कड़ाही में नंगे हाथ डालकर 'सीरा' (हलवा) बनाया और सबको जिमाया। उनकी हथेली ऐसे चल रही थी मानो ठंडे पानी में हो। फिर भी जब गोमजी ने संदेह किया, तो माऊ ने कटार निकाली और अपने दोनों स्तन काटकर अग्नि को समर्पित कर दिए

दोहा:

थण काट होमिया अगन, आपरा निज हथाळ। भरैथाळ में, देख
अनोपदानजीबीठू ।।

भावार्थ: उन्होंने अपने हाथों से अपने शरीर के अंग काटकर अग्नि देव को भोग लगा दिया, यह दृश्य देख सबकी रूह कांप गई। गोमजी चरणों में गिरकर माफी मांगने लगा।

देव योग और हाकम का विनाश– चिता सजाई गई। हाकम ने अपने सिपाहियों को चिता बिखेरने का आदेश दिया, लेकिन चिता के पास जाते ही सिपाही माउ के तेज से मूर्छित होकर गिर पड़े। फिर हाकम ने मेहर मुसलमानों को हुक्म दिया लेकिन उन्होंने साफ मना कर दिया कि 'हम जतियों सतियों के तेज से लड़ नहीं सकते, हम यह नीच कर्म नहीं करेंगे'। जैसे ही शीलांमाऊ चिता पर बैठीं, बिना माचिस के ही अग्नि स्वत: प्रज्वलित हो गई। यह सत्य का चमत्कार था। तिथि: विक्रम संवत 1920, कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी।

श्राप और परिणाम– माऊ तो ज्योति में विलीन हो गई, लेकिन उनके कोप की आग ने जैसलमेर को जला दिया। जो 'लाय' (आग) लगी, उसने हाकम, मेहता और खोखरों के वंश को नहीं छोड़ा। हाकम का बेटा उसी दिन कुएं में गिरकर मरा, और मेहता भी नहीं बचा। सबसे बड़ा वज्रपात जैसलमेर राजघराने पर हुआ। महारावलरणजीत सिंह का इकलौता बेटा लालसिंह उसी रात पलंग से गिरकर मर गया और राजा रणजीत सिंह निर्वंश ही सिधार गए।

छंद:

शीलां सुख करणी आयांसरणी, दे धन धरणी दुख हरणी।
खोखर सब खाया दुष्ट दबाया, गांमझिणकलीजस गाया।।
भावार्थ:शीलांमाऊ शरण में आए लोगों का दुख हरने वाली देवी बनीं।
दुष्ट खोखरों का नाश हुआ और झणकली गांव का यश अमर हो गया।

आज भी शीलांमाऊ देवी रूप में पूजी जाती हैं और उस दिन चारणों ने वह 600 बीघा जमीन गायों के लिए 'गोचर' (पुण्यार्थ) छोड़ दी, जहां आज भी गाएं चरती हैं। यह घटना सिखाती है कि 'प्राणादपिप्रत्ययोरक्षितव्य' प्राण देकर भी विश्वास और सत्य की रक्षा करनी चाहिए।

श्री सीलां माँ रो छंद

रचना,कविराजस्व श्री भंवरदान जी विठू (मधुकर)झणकली

साल अठ दस सत अठसमे मास घटा प्रिय मात।
दनुज गुरु दीप्त चहुदसउदेभयाअखियात। 1
पात हंस पी धर भूत पत गढ़ सरवर सुत गाम।
शुभ मुहूर्त सज द्विज सुत निरख्योसीलां नाम। 2
धन रतनु धन माड़ धर धन धन कोड़ा धाम।
धन शंकर तुझ धीवड़ीनवखण्डराखण नाम ।।3
विठू घर तोरण वांदयो मात वधारण मान।
जगत सुचावोझणकलीसांसणगामसुथान । 4
(छंद त्रिभंगी 18जोड़14तीन वृत्यनुप्रास)
शंकर घर स्याणी कन्या कहाणी वेद वखाणीब्रह्माणी
विमल सुरवाणी व्योम वचाणीऊमा निज धर उतराणी।
इल पर आखाणी जगत सुजाणी घर जोगराजतणी धरणी।
सीलां सुख करणी आयांशरणी दे धन धरणी दु:ख हरणी माँ दे धन धरणी दु:ख हरणी। 1
धोखो नृप धारे बुरी विचारे लश्कर सारे ललकारे।
मोहता मणकारे तुरंग तैयारे हे संग खोखरहथियारे।
पूगाइणपारेसीम सहारे ध्वंश करण सांसण धरणी।
सीलां सुख करणी...2
चारण चळचळीयासामसुजळीयाकाळावासंगकळकलियां।
डगमगडोकरिया कसे कटरियाढिबढाकणियेआढलिया।
वेरीदळअळीयासामांवलियाउमेद गलिया अणिअरणी।
सीलां सुख करणी...3
साहलांसुण सारंग पड़ी पुकारंगजमरधारंगजणवारंग।
सीलां सत सारंग चिता प्रसारँग वचन उचारंग वृत्त धारंग।
मेटा अरि मारंग साज सवारंगजैजैकारंगजै करणी ।
सीलां सुख करणी...4
खोखर सब खाया दुष्ट दबाया गाँव झणकलीजस गाया।
रणजीतरूळाया गर्व गळाया गढ़ सूना कर गणणाया।
चारण हरषाया परचा पाया वंश वधायाजसवरणी।
सीलां सुख करणी ...5
समरेजस गावे अवर सुणावे परम सरग सा सुख पावे।
अन्न धन्नउपजावेविदयावधावे उमर अंग रति आवे।
भोजन मन भावे भूत भजावेअणदउपावेअवतरणी।
सीलां सुख करणी...6
सीता खुद सैणीगवरसिवाणी कमला करनल महाकाली।
विरवड़ धन वाली वीसभुजालीहिंगळ ज्वाला हाथाली।
विरदालीवांकल दुर्गा देवलदेंमांलाछलदिवतरणी।
सीलां सुख करणी ...7

छप्पय

धीणो धर धन धान मान दहे मातेश्वरी।
भीरकरे भय भांज समरयांवेळा साँझ री।
चारण वर्ण चकार भरी सभा मोभूपरी।
भणे जात त्रिभंग संग रहे नित शंकरी।
विठूआं वंश वाहरुवणेसिह चढ़े कारज सरे।
कर जोड़ अर्ज भँवरूकरे धन्य कवि जो इष्ट धरे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. के सी श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो इलाहाबाद, 2009-10
2. सौरभ चौबे, प्राचीन भारत, यूनिवर्सलबुक्स 2020
3. उपिंद्र सिंह, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन।
4. हरिश्चंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत भाग 1, पृष्ट संख्या 54 हिंदी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय नई दिल्ली 2006
5. मोहनलाल जिज्ञासु, चारण साहित्य का इतिहास, जैन प्रकाशन, जोधपुर।
6. भंवरसिंह सामौर, राजस्थानी शक्ति काव्य, साहित्य एकेडमी, नई दिल्ली।
7. मोहन दान, शोध पत्र, जमर: चारण जाति की स्त्रियों में प्रतिकार की परम्परा, Ansh - Journal of History.
8. नाहर सिंह जसोल, चारणांरीबातां पुस्तक।
9. गिरधर दान दासोड़ी , लेख charan.org
10. जमर विषय पर, मोहन दान जी झीबाझाँफली से हुई वार्ता, 3-4-2024
11. बोड़ानातंवर विषय पर, मुल्तान सिंह तंवरबिशाला, से हुई वार्ता, 3-4-2024
12. श्री शिला माता मंदिर की यात्रा और, 7-3-2024
13. 13 वीठू परिवार झणकली से शीला माँ जमर विषय पर, वार्ता 1-4-2026
14. दीप सिंह भाटी, शिला माता का जमर, डिंगलर सावल यूट्यूब।
15. भंवर दान जी के साहित्य की प्राप्ति, जयपाल बारहठ झनकली से।
16. charan.org,charan Shakti
17. डॉक्टर गोपाल दान देथा मौसेरी से शीला माँ जमर पर चर्चा

****

किशोरावस्था की समस्याएं व समाधान

डॉ. बबीता*

* सहायक आचार्य (समाजशास्त्र)श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर (राज.) भारत

शोध सारांश – किशोरावस्था मनुष्य के जीवन के विकास क्रम में बचपन से वयस्क जीवन के मध्य की अवस्था है। इस अवस्था में किशोर तीव्र गति से शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व संज्ञानात्मक विकास का अनुभव करता है। यह मनुष्य के जीवन में परेशानी, तनाव, तूफान व सघंर्ष की अवस्था है। यह अदृश्य यौन लक्षणों से प्रजनन परिपक्वता के स्वरूप द्वारा परिवर्तन एवं विकास की अवस्था है, जो कि संम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक तथा भावनात्मक व सापेक्ष रूप से स्वतंत्रता का परिवर्तन काल है। परिवर्तन की इस अवस्था के दौरान किशोर वर्ग कई प्रकार के जटिल मुद्दों, लैंगिक भेदभाव, बाल विवाह, गर्भ धारण, प्रजनन व प्रसव के दौरान अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव करते हैं। तथा प्रजनन व यौन स्वास्थ्य की समस्याओं को बढावा देते हैं। किशोरियों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक कुपोषण है।

शब्द कुंजी –किशोरावस्था, स्वास्थ्य, कुपोषण, किशोरियां, प्रजनन मूलक, संज्ञानात्मक विकास।

प्रस्तावना –संसार महिला एवं पुरूष के संयोजन से चलने वाली एक व्यवस्था है। जिसमें महिलाओं का स्थान एक प्रजनन मूलक परिवार की स्थापना करने में पुरूषों से और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रत्येक महिला को जीवन यापन करने, दैनिक कार्य करने, उच्च स्वास्थ्य, स्वस्थ समाज एवं सुरक्षित मातृत्व हेतु सन्तुलित आहार की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण विश्व में महिलाऐं सर्वाधिक कुपोषण की शिकार होती हैं। यह कुपोषण इनमें मात्र एक दिन की परिणति नहीं है वरन् बाल्यकाल और प्रमुखत: किशोरावस्था से देखने को मिलता है।शाब्दिक दृष्टि से देखा जाए तो किशोरावस्था शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द Adolescence का हिंदी रूपान्तरण है। एडोलसेंट शब्द लेटिन भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ हैं बढना या विकसित होना है। यह मनुष्य के जीवन का बसंत काल माना जाता है। यह 10 से 19 वर्ष की आयु के मध्य रहता है। यह काल सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों के विकास का महत्वपूर्ण समय है। जिसमें अनेक शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक परिवर्तन होते है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'किशोरावस्था 10 से 19 वर्ष की आयु में बचपन व वयस्कता के मध्य की अवस्था है। यह मानव के विकास का अनुठा चरण है। जब एक अच्छे स्वास्थ्य की नींव रखी जाती है इस समय किशोर तीव्र गति से शारीरिक मनोवैज्ञानिक व संज्ञानात्मक विकास का अनुभव करते है। इस दौरान वे कैसा महसूस करते हैं एवं किस प्रकार से सोचते हैं।'[1]

किशोरावस्था मनुष्य के जीवन के विकास क्रम में बचपन से वयस्क जीवन के मध्य की अवस्था है। इस अवस्था में किशोर तीव्र गति से शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व संज्ञानात्मक विकास का अनुभव करता है। यह मनुष्य के जीवन में परेशानी, तनाव, तूफान व सघंर्ष की अवस्था है। यह अदृश्य यौन लक्षणों से प्रजनन परिपक्वता के स्वरूप द्वारा परिवर्तन एवं विकास की अवस्था है, जो कि संम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक तथा भावनात्मक व सापेक्ष रूप से स्वतंत्रता का परिवर्तन काल है। परिवर्तन की इस अवस्था के दौरान किशोर वर्ग कई प्रकार के जटिल मुद्दों, लैंगिक भेदभाव, बाल विवाह, गर्भ धारण, प्रजनन व प्रसव के दौरान अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव करते हैं तथा प्रजनन व यौन स्वास्थ्य की समस्याओं को बढावा देते हैं। किशोरावस्था को जीवन के एक स्वस्थ चरण के रूप में माना जाता है। इसके उपरान्त भी इस अवस्था में मृत्यु, बीमारी, चोट व हिंसा, कुपोषण तथा मादक पदार्थों का उपयोग आदि अनेक कारक किशोरावस्था को नुकसान पहुंचाते हैं। इनमें से अधिकतर कारक रोकथाम योग्य हैं। इस अवस्था में किशोर अपने भोजन, आहार–व्यवहार, शारीरिक गतिविधियां, मादक पदार्थों का दुरूपयोग तथा यौन व्यवहार से संबंधित अनेक गतिविधियों सम्बन्धित व्यवहार प्रतिमान की स्थापना करते हैं। किशोरावस्था भविष्य की नेतृत्वकर्ता है। यह अवस्था मनुष्य की रचनात्मकताओं, महत्वकांक्षाओं, इच्छाओं, जिज्ञासाओं तथा उत्सुकताओं आदि को प्रफुल्लित करने व उनके उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में सहायक हैं। युनिसेफ के अनुसार 'विश्व में लगभग 1.2 बिलियन किशोर आबादी है विश्व में हर 6 व्यक्तियों में से एक किशोर है, जो कि (10 वर्ष से 19 वर्ष) की आयु वर्ग के मध्य का है।'[2]

भारत दुनिया में सबसे बडी किशोर आबादी वाला देश है। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार 'लगभग 253 मिलियन जो देश की कुल आबादी का 21% है, भारत में हर पांचवा व्यक्ति किशोर है'[3] भारत में किशोरों की यह जनसंख्या कई देशों कुल जनसंख्या से अधिक है तथा कुछ राष्ट्रों की कुल जनसंख्या के यथा जापान, जर्मनी और स्पेन आदि की संयुक्त जनसंख्या के बराबर है। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार 'किशोर राजस्थान की कुल आबादी का 22.89 प्रतिशत है।'[4] इसका लगभग आधा भाग किशोरियों का है। किशोरावस्था जो संक्रमण काल है, में इन्हें इस काल में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

किशोरियों के स्वास्थ्य के शारीरिक आयाम–मनुष्य यदि अपने जीवन को अर्थ प्रदान करना चाहता है तो उसे स्वास्थ्य की दृष्टि से अपने–आपको

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक रूप से व्यवस्थित करना होता है। परन्तु यह एक विडम्बना ही है कि मनुष्य बहुत अधिक धन को अर्जित करता है परन्तु सबसे कम अपने स्वास्थ्य पर ही खर्च करता है। इस भाग दौड़ के जीवन में अपने स्वास्थ्य पर कम से कम ध्यान दे पाता है। इस दृष्टि से किशोरियां भी पिछे नहीं हैं वे भी अपने स्वस्थ्य पर कम से कम ध्यान दे पाती हैं और वे शारीरिक दृष्टि से कमजोर रह जाती है। यही वह काल होता है जिसमें उनका सर्वाधिक विकास होता है परन्तु इनका उचित विकास नहीं हो पाता है। यह निम्न समस्याओं से रूबरू होती हैं।

किशोरावस्था के दौरान किशोरियों के शारीरिक विकास के साथ उनके मनोभावों में परिवर्तन होता है। सभी किशोरियों में ये परिवर्तन एक साथ न आकर अलग-अलग समय में आते है। कुछ किशोरियों में ये 12 वर्ष की आयु में तो कुछ में इस आयु के पूर्व या पश्चात आते है।यह एक ऐसा समय होता है जब किशोरियों के शरीर में बहुत सारे बदलाव यथा शारीरिक, मानसिक वैचारिक जैसे अनेक बदलाव देखने को मिलते हैं वहीं दूसरी ओर नये दोस्त बनाना, विभिन्न गतिविधियों में रूचि बढना, बडी कक्षाओं में जाना आदि एक साथ हो रहे होते हैं । इसी समय माता-पिता, शिक्षक व नातेदार आदि द्वारा भी किशोरियों को छोटी बच्चियां नहीं समझ कर उन्हें जिम्मेदारी वाले कार्य सौंपते है। इस दौरान लडकियों की समझ में भी वृद्धि होने लगती है। तथा किशोरियों को सब कुछ नया सा लगने लगता है। इस समय किशोरियों को अपने शरीर, विकास और आस-पास वातारण से जुडे कई मुद्दों के बारे में भी जानकारी की आवश्यकता होती है। अत: लडकियों की इस बढती उम्र के दौरान, उनके लिए जरूरी एवं महत्वपूर्ण माने जाने वाले मुद्दों के बारे में शोधकर्त्ता अपना अध्न करना चाहता है।

किशोरियों में शारीरिक परिवर्तन -किशोरियों में शारीरिक बदलाव एक बडी चुनौती है। इस समय शरीर बचपन से अलग, ज्यादा विकसित होने लगता हैं। इस समय मानव शरीर में यौवन शुरू होता है। लडकियों की उम्र बढने के साथ इनके शरीर में यौन अंग बडे होने लगते है तथा हार्मोन का उत्पादन शुरू हो जाता है। मासिक धर्म शुरू हो जाता है। शारीरिक बदलाव के साथ-साथ आस-पास के माहौल में भी परिवर्तन आने लगता है। तथा किशोरियों पर पांबदी लगा दी जाती है। क्योंकि जैसे-जैसे लडकियों की उम्र बढती जाती है। माता-पिता व शिक्षक उनकी सुरक्षा के बारे में चिंतित होने लगते हैं। बढती हुई उम्र में एक बडा बदलाव मासिक धर्म का शुरू होना है। अधिकतर लडकियों को ये पता नहीं होता है। कि उनके शरीर को क्या हो गया है। क्योंकि इस बारे में किसी नें उन्हे कुछ नही बताया। लडकियां मासिक धर्म शुरू होने से डर सकती हैं या रोमांचित भी हो सकती हैं।

शरीर की देखभाल - किशोरावस्था में शरीर की अच्छी तरह देखभाल की आवश्यकता होती है। जैसे किशोर के शरीर में अधिक पसीना आना जिस कारण से शरीर को नियमित रूप से देखभाल व शरीर को साफ करने की आवश्यकता होती है।

माता-पिता की सलाह - किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का एक ऐसा समय है जहां किशोर माता-पिता के सन्दर्भ में संक्रमण काल के दौर से गुजरता है। माता-पिता द्वारा दी जाने वाली सलाह को किशोर सहस्र स्वीकार कर ले आवश्यक नहीं है। इस रूप में माता-पिता व किशोर दोनों के सामने अनेक समस्याऐं आती है। जिसके कारण किशोर तनावपूर्ण जीवन यापन करने को मजबूर हो जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या - किशोरावस्था में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती है जो कि आचरण, विकार, चिंता, अवसाद के साथ यौन व्यवहार में भी परिवर्तन का कारक हो सकते है। इसलिए सामाजिक कौशल व आत्मविश्वास के द्वारा मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ किया जा सकता है। इसके साथ ही किशोरावस्था में कुपोषण की समस्या, हिंसा, मादक पदार्थों का सेवन, यौन व प्रजनन स्वास्थ्य की समस्या।

किशोरावस्था में कुपोषण- कुपोषण का अर्थ है उचित पोषण का अभाव अर्थात् भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों का अभाव जो कि सम्पूर्ण विकास को प्रभावित करते है। जिनके अभाव में शरीर अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाता है। कुपोषण चाहे किसी भी प्रकार का हो, यह हमेशा हानिकारक होता है। इसका शिकार व्यक्ति किसी भी आयु में हो सकता है परन्तु इससे सर्वाधिक प्रभावित महिलाऐं, बच्चे और किशोर आयु समूह होता हैं। किशोर आयु समूह में भी किशोरियां अधिक प्रभावित होती हैं क्योंकि किशोरियों में इस समय मासिक धर्म की शुरूआत होती है, हार्मोनल बदलाव आते है,द्वितीयक शारीरिक लक्षणों का विकास होता है। जिसके कारण किशोरियों को अत्यधिक मात्रा में पोषक तत्वों से युक्त संतुलित आहार की आवश्यकता होती है परन्तु समाज में महिलाओं को दोयम दर्जा प्राप्त है अत: किशोरियों का कुपोषित होना पूरे समाज के लिय दुष्प्रभावकारी है क्योंकि किशोरियां आने वाले कुछ वर्षो में गर्भधारण करती है, बच्चे को जन्म देती है। 'संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 23.3 प्रतिशत महिलाओं की शादी 18 वर्ष की आयु से पहले हो जाती है। जिसके कारण भारत में इन विवाहित किशोरियों में प्रति एक हजार महिलाओं में से 43 महिलाऐं बच्चों को जन्म देती है।'[5]

नेशनल फेमिली हेल्थ-5 के आकडों के अनुसार 2021 में किशोरियों के गर्भधारण में 01 प्रतिशत गर्भधारण में गिरावट आयी है। जो दर्शाता है कि किशोरियों के सशक्तिकरण के कारण सम्भव हुआ है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष के अनुसार इन अवाछित गर्भधारण के पीछे जिम्मेदार कारकों में-

1. इन्टरनेट पर उपलब्ध अश्लील सामग्री
2. ए श्रेणी की वेब सीरिज
3. बलात्कार की घटनाएं
4. सोशल मिडिया

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में 13 प्रतिशत किशोरियां गर्भवती होती हैं साथ ही 20 वर्ष की उम्र में 40 प्रतिशत किशोरियां दूसरी बार गर्भवती होती है। जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पडता है। जिससे उनके शरीर में खून की कमी होती है। भारत में एन.एफ.एच.एस.रिपोर्ट-3 के आंकडों के अनुसार 56 प्रतिशत तक किशोरियां एनिमिया से ग्रसित है। इनमें से 1/3 प्रतिशत किशोरियां मध्यम अवस्था तीव्र अवस्था में के एनिमिया की शिकार है। किशोरियों मे बडी संख्या में कुपोषण का कारण भोजन की कमी है। जिसके कारण वे जल्दी ही बीमारियों कि शिकार हो जाती है। साथ ही लगभग आधी किशोरियों का वजन उनकी उम्र व उंचाई के अनुपात में कम है साथ ही हम देखते है कि कुछ किशोरियों में मोटापा भी देखने को मिलता है जिसका कारण जंक-फूड है।

किशोरावस्था एवं मानसिक स्वास्थ्य-किसी भी मनुष्य के लिए न केवल शारीरिक स्वास्थ्य महत्वपूर्ण माना जाता है बल्कि मानसिक स्वास्थ्य भी उतना ही महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। चूंकि किशोरावस्था बचपन व युवावस्था के मध्य संक्रमण

काल है इस काल में किशोरियां तीव्र गति से वृद्धि होती है एवं साथ ही हार्मोनल परिवर्तन होता है। इस अवस्था में किशोर पढाई के अत्यधिक दबाव व तनाव के कारण अवसाद में आ जाते है। जिससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किशोरियां अधिक संवेदनशील होने के कारण जल्दी तनाव में आ जाती हैं। हाल ही में आई कैम्ब्रिज-ऑक्सफोर्ड एवं नीदरलैण्ड यूनिवर्सिटी की संयुक्त अध्ययन में पाया गया कि किशोरियों पर सोशल मीडिया का प्रभाव जल्दी पड़ता है। वर्तमान में सोशल मीडिया युवाओं पर अत्यधिक प्रभाव डाल रहा है जिसके कारण उनकी मानसिक स्थिति परिवर्तित हो रही है। मानसिक स्थिति के प्रभाव के कारण उनके व्यवहार में प्रभाव परिलक्षित होते हैं जैसे तनाव,अवसाद याद्दाश्त का कम होना, आदतों में बदलाव हो रहे है। इस अध्ययन के अनुसार जो किशोर- किशोरी सोशल मीडिया पर नियमित 3 घण्टे बिताते है। वयस्क होने पर वे ज्यादा असंतुष्ट नजर आते हैं।

सोशल मीडिया का 11 वर्ष की किशोरियों व 14 वर्ष के किशोरों पर सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव पड़ता है। क्योंकि किशोरियां अधिक संवेदनशील होती है। इसलिए नकारात्मक प्र भाव अधिक पड़ता है.वे नकारात्मक शब्दों जैसे- LOSER, HATE YOU, DISLIKE आदि का प्रयोग अधिक करते है। इन नकारात्मक शब्दों को जल्दी से भुला नहीं पाती हैं। जिसका प्रभाव उनके सम्पूर्ण स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिसमें मुख्य रूप से निंद में कमी, एकाग्रता में कमी, चिड़चिड़ापन, तनाव आदि रोग बढने की संभावना होती है। इसके साथ ही किशोरों में एकांकी प्रव्रत्ति के कारण वे अपना अधिकतर समय सोशल मीडिया पर अधिक व्यतीत करते है। जिससे अवांछित घटनाओं की दर बढ जाती है। जिसमें मुख्य रूप से मोंबाईल गेम, चेटिंग अपराधिक प्रवृत्तियां बढ रही है। वर्तमान में कोविड-19 के कारण सम्पूर्ण प्रकार की गतिविधियां ऑन-लाईन संचालित होने से किशोरों में इसका ओर प्रभाव बढ गया है जिसके कारण किशोर एक पल भी इससे दूर नहीं होना चाहते है।

सतिया,जय के अनुसार 'किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए चुनौतियां: क्या आवश्यक है ?'[6] लेखक जय सतिया ने इंडियन जर्नल ऑफ कम्यूनिटि मेडिसिन पत्रिका के संपादकीय में लेख किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए चुनौतियां: क्या आवश्यक है ? पर प्रकाश डाला है। इसमें किशोरावस्था की चुनौतियों को बताया गया है जिसमें उभरते हुए किशोर स्वास्थ्य के मुद्दे यथा- ग्रीवा केंसर, शरीर की छवि, सिगरेट, मदिरा-पान, जंकफूड, भारी स्कूल बैग आदि, जिसमें 10 से 19 वर्ष के किशोरों में होने वाले मृत्यु का दुसरा बड़ा कारण HIV / AIDS व एड्स से जुडे कारणों को माना गया है। 2005 से 2016 के बीच किशोरावस्था में एचआईवी के मामलों में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। साथ ही एड्स से संबंधित बीमारियों के कारण मरने वाले किशोरों की संख्या में 2000 से 2015 के बीच तिगुनी वृद्धि हुई है। यह किशोर वर्ग एक मात्र ऐसा समूह है जिसमें एड्स से जुडे मामलों में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज की गई है। साथ ही किशोर गर्भधारण से मातृ मृत्यु दर और रूग्णता का खतरा भी अधिक रहता है। वैश्विक स्तर पर किशोर जन्म दर 1990 में प्रति 1000 जन्म में से 65 जन्म है। जो 2015 में प्रति 1000 जन्म में से 45 जन्म है। जो 20 अंकों के सुधार को दर्शाता है। विश्व में हर वर्ष 2.5 मिलियन किशोरियां मां बनती है। यह गर्भावस्था एवं प्रसव से जुडी जटिलताऐं किशोरियों की मृत्यु का एक प्रमुख कारण है एवं मादक पदार्थो का सेवन किशोरावस्था की एक प्रमुख समस्या बनकर उभरा है। साथ ही वर्तमान समय में किशोरों में चोट/दुर्घटना में मृत्यु भी अधिक है। अत: किशोर केन्द्रित कार्यक्रम एवं नितियों के निर्माण पर अधिक निवेश करना चाहिए। इसके लिए भी भारत में अनेक कार्यक्रम बनाये गये है। जैसे जनसंख्या और विकास, प्रजनन एवं यौन स्वास्थ्य कार्यक्रम 1997, परिवार कल्याण कार्यक्रम, किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन 2005 साथ ही 2013 में किशोर कार्यक्रम एवं स्वास्थ्य कार्यक्रम को सम्मिलित करते हुए राष्ट्रीय किशोर कार्यक्रम को लागू किया गया है। जिसमें किशोर स्वास्थ्य प्राथमिकताओं के अंतर्गत पोषण, यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, लिंग आधारित हिंसा, मादक द्रव्यों का सेवन आदि शामिल है। इस प्रयोजन के लिए किशोर स्वास्थ्य क्लिनिक बनाये गये है। जहां पर प्रजनन स्वास्थ्य की जानकारी एवं परामर्श प्रदान की जाती है। मासिक धर्म संबंधी स्वच्छता सेवाएं, स्कूली स्वास्थ्य के माध्यम से सेनैट्री नेपकिन और निवारक स्वास्थ्य जांच आदि शामिल है। इन सब में एक विशिष्ट लक्ष्य किशोरों मे खून की कमी को कम करने का रखा गया। इन सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिलाओं में औसत शादी की उम्र 16.6 से बढकर 19.4 वर्ष हो गई है। जो किशोरियों की स्थिति में सुधार को दर्शाता है।

इन सभी कार्यक्रमों एवं नीतियों के बावजूद भी किशोरियों में पोषण की स्थिति लगभग अपरिवर्तित रही है। किशोरियों में बॉडी मॉस इंडेक्स 1998-99 में 38.8 प्रतिशत से बढ कर 2015-16 में 41.9 प्रतिशत हो गया है। वहीं एनिमिया 15-19 आयु वर्ग की किशोरियों में 1998-99 में 56 प्रतिशत से बढ कर 59.1 प्रतिशत हो गया। अन्य स्वास्थ्य समस्याओं जैसे तम्बाकु पदार्थों का सेवन लड़को में 2005-06 में 28.6 प्रतिशत एवं लड़कियों में 3.5 प्रतिशत था। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम 2014 में शुरू किया गया। जिसमे किशोरों के 7 घटकों को शामिल किया गया है। जिसमें समुदाय आधारित स्वास्थ्य संवर्धन और निवारक, नैदानिक को मजबूत करने के साथ-साथ रोकथाम और स्वास्थ्य सुविधाओं के स्तर पर उपचारात्मक सेवायें प्रदान करना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट, 1948
2. UNICEF (2011) Opportunity in Crisis: Preventing HIV from Early Adolescence to Young ADULTHOOD. United Nation's Children's Fund (UNICEF), UNICEF, New York, 1-68.
3. Progress for children: A Report card on adolescent socio demographic profile of adolescents :November 10April 2012, UNICEF, page 6 (internet)avalable from :http://www.unicef org/publication /files /progress -for -children —No-10-EN-04232012pdf.
4. CENSUS India, 2011
5. UNICEF June,2020, STRATEGY FOR ENDING VIOLENCE AGAINST CHILDREN 4
6. UNFPA Report
7. Satia J. (2018). Challenges for Adolescent Health Programs: What is Needed?. *Indian journal of community medicine : official publication of Indian Association of Preventive & Social Medicine*, *43*(Suppl 1), S1–S5. https://doi.org/10.4103/ijcm.IJCM_331_18

****

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दिवाकर पारीक*

* एमए, नेट (राजनीति विज्ञान) डी 133, आजाद नगर, भीलवाड़ा (राज.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय जनसंघ के प्रमुख वैचारिक चिंतक पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य उन मूल सिद्धांतों का परीक्षण करना है जिनके माध्यम से उन्होंने भारतीय राजनीति, समाज एवं अर्थव्यवस्था के लिए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद, विराट पुरुष, स्वदेशी, अंत्योदय, विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था तथा कृषि संबंधी विचारों का विवेचन किया गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनका चिंतन राष्ट्रहित, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन तथा समाज के अंतिम व्यक्ति के कल्याण पर आधारित विकास-दृष्टि का प्रतिपादन करता है।

शब्द कुंजी – एकात्म मानववाद, अंत्योदय, स्वदेशी, सामाजिक समरसता, अखंड भारत, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना – भारतीय राजनीतिक चिंतन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे भारतीय जनसंघ के वैचारिक वास्तुकार थे, जिसे वर्तमान भारतीय जनता पार्टी का पूर्ववर्ती राजनीतिक संगठन माना जाता है। उन्होंने संगठन को केवल राजनीतिक दिशा ही नहीं दी बल्कि ऐसी वैचारिक आधारभूमि भी विकसित की जिसने भारतीय राजनीति में उसे विशिष्ट पहचान प्रदान की। उनका चिंतन राजनीति तक सीमित न रहकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों को भी समान रूप से प्रभावित करता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक कुशल संगठनकर्ता, राजनेता एवं मौलिक चिंतक थे। उन्होंने भारतीय समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं एवं वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किए जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विकास की दिशा प्रस्तुत करते हैं। उनका मत था कि किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक व्यवस्था तभी स्थायी हो सकती है जब उसका आधार उसकी सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक परंपराओं एवं नैतिक मूल्यों से जुड़ा हो। इसी कारण उन्होंने राष्ट्र, समाज एवं व्यक्ति के मध्य संतुलित संबंधों पर विशेष बल दिया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में सक्रिय रहते हुए उन्हें भारतीय समाज की संरचना, चुनौतियों एवं सांस्कृतिक विरासत को निकट से समझने का अवसर मिला। इस अनुभव ने उनके राजनीतिक एवं आर्थिक चिंतन को व्यावहारिक आधार प्रदान किया। उनका विश्वास था कि भारत की समस्याओं का समाधान विदेशी विचारधाराओं की नकल में नहीं बल्कि भारतीय जीवन-दृष्टि एवं सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप नीतियों के निर्माण में निहित है।

इसी दृष्टि से उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, स्वदेशी, अंत्योदय तथा विकेंद्रीकृत आर्थिक व्यवस्था जैसी अवधारणाओं के माध्यम से भारतीय विकास चिंतन को नई दिशा देने का प्रयास किया। इन सिद्धांतों में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक समरसता एवं राष्ट्रीय एकता को परस्पर पूरक माना गया है। प्रस्तुत शोध पत्र उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन के प्रमुख आयामों का विश्लेषण करते हुए उनके चिंतन की वैचारिक संरचना तथा समकालीन प्रासंगिकता का अध्ययन करता है।

राजनीतिक नैतिकता, गुटबाजी एवं मतदाता का कर्तव्य– पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राजनीति में बढ़ती गुटबाजी और नैतिक अवनति को लोकतंत्र के लिए गंभीर चुनौती माना। उनके अनुसार जब राजनीतिक दलों में संगठनात्मक हितों की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थ प्रमुख हो जाता है, तब गुटबाजी जन्म लेती है। यह केवल मतभेद का परिणाम नहीं बल्कि अहंकार एवं विकृत मानसिकता की सामाजिक अभिव्यक्ति है, जो संगठन की एकता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों दोनों को कमजोर करती है।

चुनावी राजनीति के संदर्भ में उन्होंने नैतिक उत्तरदायित्व को सर्वोपरि माना। उनका स्पष्ट मत था कि किसी प्रतिष्ठित राजनीतिक दल से जुड़े होने मात्र से कोई प्रत्याशी मत पाने का अधिकारी नहीं हो जाता। यदि उसका चरित्र, आचरण अथवा सार्वजनिक जीवन मतदाताओं की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं है, तो केवल दलगत निष्ठा के आधार पर उसका समर्थन उचित नहीं कहा जा सकता।

उन्होंने प्रत्याशी चयन की प्रक्रिया पर भी प्रश्न उठाते हुए कहा कि यदि पार्टी नेतृत्व पक्षपातपूर्ण या अनुचित निर्णय लेता है, तो उसे सुधारने का दायित्व जागरूक मतदाता का है। इस प्रकार उन्होंने मतदाता को केवल मतदान करने वाला नागरिक नहीं बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था का सक्रिय संरक्षक माना।

उपाध्याय जी ने उन राजनीतिक दलों की भी आलोचना की जो राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का साधन समझते हैं। उनके अनुसार ऐसे दल चुनाव को 'घुड़दौड़' की तरह देखते हैं और केवल संभावित विजेता के

साथ खड़े होने का प्रयास करते हैं। उन्होंने इस प्रवृत्ति को लोकतांत्रिक आदर्शों के विपरीत बताते हुए सिद्धांतनिष्ठ राजनीति की आवश्यकता पर बल दिया।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, अखंड भारत एवं सर्वोपरि राष्ट्रहित– पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक चिंतन का केंद्रीय आधार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लिखे गए उनके लेख 'अखंड भारत: उद्देश्य और साधन' में राष्ट्र की एकता, सांस्कृतिक निरंतरता एवं राष्ट्रीय चेतना संबंधी उनके विचार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते हैं। उनका विश्वास था कि भारत की राष्ट्रीय पहचान उसकी सांस्कृतिक परंपरा से निर्मित हुई है और राष्ट्रीय एकता का आधार भी यही सांस्कृतिक विरासत है।

उनके अनुसार भारत में रहने वाले प्रत्येक समुदाय को, चाहे वह मुस्लिम हो या ईसाई, 'इस देश में हिंदू संस्कृति की स्थायी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के साथ खुद को पहचानना चाहिए' । इस विचार के माध्यम से उन्होंने सांस्कृतिक आधार पर राष्ट्रीय एकात्मता को राष्ट्र की स्थिरता एवं अखंडता के लिए आवश्यक माना।

सामाजिक संगठन के संदर्भ में उन्होंने वर्ग–संघर्ष के स्थान पर समन्वय, सहयोग एवं सामाजिक समरसता पर बल दिया। उनके विचार में समाज की स्थायी प्रगति संघर्ष से नहीं बल्कि पारस्परिक विश्वास, सहभागिता एवं संतुलित सामाजिक व्यवस्था से संभव है।

उनके समग्र राजनीतिक चिंतन में राष्ट्रहित सर्वोच्च स्थान रखता है। उनका मत था कि प्रत्येक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक निर्णय का मूल्यांकन राष्ट्र के व्यापक हित को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसी कारण उनका दर्शन राष्ट्र की एकता, अखंडता एवं संप्रभुता को सुदृढ़ करने की प्रेरणा देता है तथा राष्ट्रहित को व्यक्तिगत एवं दलगत हितों से ऊपर स्थापित करता है।

एकात्म मानववाद एवं 'विराट पुरुष' की संकल्पना– पंडित दीनदयाल उपाध्याय के समग्र दर्शन का मूल आधार 'एकात्म मानववाद' है, जिसमें 'विराट पुरुष' अथवा समग्र समाज की अवधारणा को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। उनके अनुसार समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं बल्कि एक जीवंत एवं एकीकृत इकाई है, जिसकी तुलना 'विराट पुरुष' से की जा सकती है। इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग एवं समुदाय का अपना विशिष्ट स्थान और महत्व है तथा सभी मिलकर समाज की समग्र संरचना का निर्माण करते हैं। उनका मत था कि यदि समाज का कोई भी वर्ग, समुदाय अथवा व्यक्ति उपेक्षा, अभाव या पीड़ा का जीवन जीने के लिए विवश हो, तो उसका प्रभाव केवल उसी तक सीमित नहीं रहता बल्कि संपूर्ण समाज पर पड़ता है। समाज रूपी 'विराट पुरुष' का कोई भी अंग दुर्बल होने पर उसकी समग्र शक्ति एवं संतुलन प्रभावित होता है।

उपाध्याय जी के अनुसार वास्तविक एकात्मता तभी संभव है जब व्यक्ति स्वयं को समाज की व्यापक समष्टि का अभिन्न अंग माने। यदि कोई व्यक्ति या सामाजिक घटक इस समग्र व्यवस्था से पृथक हो जाता है, तो सामाजिक संतुलन एवं एकात्मता दोनों कमजोर पड़ने लगते हैं।

इसी आधार पर उन्होंने नीति–निर्माताओं एवं समाज का नेतृत्व करने वालों के लिए 'अंत्योदय' की भावना को अनिवार्य माना। उनके अनुसार विकास की प्रत्येक योजना का केंद्र समाज का अंतिम व्यक्ति होना चाहिए। तभी समाज रूपी 'विराट पुरुष' का प्रत्येक अंग सुरक्षित, सम्मानित एवं सक्रिय रह सकेगा। इस प्रकार एकात्म मानववाद, विराट पुरुष और अंत्योदय उनके चिंतन के परस्पर पूरक सिद्धांत हैं, जो समावेशी एवं संतुलित समाज की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं।

अंत्योदय की संकल्पना एवं इसका व्यावहारिक स्वरूप– पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक एवं आर्थिक चिंतन में 'अंत्योदय' को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। यह केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं थी, बल्कि उनके व्यक्तिगत अनुभवों एवं सामाजिक संवेदनशीलता से भी जुड़ी थी। प्रारंभिक जीवन में गरीबी एवं अभाव का अनुभव करने के कारण वे समाज के वंचित एवं कमजोर वर्गों की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे।

उनके अनुसार अंत्योदय का अर्थ उन लोगों का उत्थान है जो आर्थिक, सामाजिक अथवा अन्य कारणों से विकास की मुख्यधारा से वंचित रह गए हैं। उनका विश्वास था कि किसी समाज की प्रगति का वास्तविक आकलन उसके सबसे समृद्ध वर्ग से नहीं बल्कि सबसे अधिक वंचित व्यक्ति की स्थिति से किया जाना चाहिए।

गांधी जी एवं विनोबा भावे द्वारा प्रयुक्त 'सर्वोदय' की अवधारणा का उल्लेख करते हुए उन्होंने 'अंत्योदय' पर विशेष बल दिया। उनका मत था कि विकास की प्रक्रिया समाज के अंतिम व्यक्ति से आरंभ होनी चाहिए। इसलिए आर्थिक योजनाओं की सफलता का मूल्यांकन उन लोगों से किया जाना चाहिए जो विकास की सीढ़ी के सबसे निचले स्तर पर हैं।

अपने विचार को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने कंबल वितरण का उदाहरण दिया। उनके अनुसार यदि किसी व्यक्ति के पास बारह कंबल हों, तो उनका वितरण समान रूप से नहीं बल्कि आवश्यकता के आधार पर होना चाहिए। खुले आकाश के नीचे रहने वाले व्यक्ति को छह कंबल, पेड़ के नीचे रहने वाले को तीन, झोपड़ी में रहने वाले को दो तथा जिसके पास पहले से दो कंबल हों उसे केवल एक कंबल मिलना चाहिए। इस उदाहरण के माध्यम से उन्होंने स्पष्ट किया कि संसाधनों का न्यायसंगत वितरण समानता नहीं बल्कि आवश्यकता के आधार पर होना चाहिए।

इसी प्रकार बल्ब का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि जहाँ पहले से 25 वाट का बल्ब जल रहा हो वहाँ 100 वाट का बल्ब लगाना उचित नहीं है। इसके बजाय 25 वाट का बल्ब उस स्थान पर लगाया जाना अधिक उपयोगी होगा जहाँ पूर्ण अंधकार हो। इस उदाहरण से उन्होंने विकास योजनाओं में प्राथमिकताओं के निर्धारण तथा संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग का समर्थन किया।

उनके अनुसार समाज के पीड़ित एवं उपेक्षित वर्गों के जीवन में आशा, सम्मान एवं आत्मविश्वास का संचार करना ही अंत्योदय की वास्तविक भावना है। वे अश्रुपूरित आँखों से आंसू पोंछने और मुरझाए चेहरों पर मुस्कुराहट लौटाने को 'अंत्योदय' की पहली सीढ़ी मानते थे। इससे स्पष्ट होता है कि उनके लिए अंत्योदय केवल आर्थिक सहायता का कार्यक्रम नहीं बल्कि मानवीय संवेदना एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित व्यापक विकास–दृष्टि थी।

आर्थिक नियोजन एवं विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था– पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन भारतीय समाज की आवश्यकताओं एवं वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित था। उनका मानना था कि भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक योजनाएँ केवल प्रशासनिक स्तर पर तैयार नहीं की जानी चाहिए, बल्कि उनमें समाज की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए। उनके अनुसार देश की बड़ी आबादी गरीबी, अशिक्षा तथा परंपरागत जीवन–व्यवस्था से प्रभावित है। इसलिए विकास योजनाएँ तभी प्रभावी होंगी जब उनका निर्माण जनसहभागिता एवं स्थानीय

आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाए।

उन्होंने ऊपर से नीचे थोपे गए विकास मॉडल की अपेक्षा नीचे से ऊपर विकसित होने वाली योजना प्रणाली का समर्थन किया। उनका मत था कि स्थानीय समाज की भागीदारी से तैयार योजनाएँ अधिक व्यावहारिक, उत्तरदायी तथा स्थायी सिद्ध होती हैं।

उपाध्याय जी ने विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था तथा स्वावलंबी क्षेत्रों के विकास पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार आर्थिक शक्ति का अत्यधिक केंद्रीकरण व्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक संतुलन तथा स्थानीय विकास के लिए बाधक बनता है। इसके विपरीत विकेंद्रीकृत व्यवस्था प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकताओं, संसाधनों एवं विशिष्टताओं के अनुरूप विकास का अवसर प्रदान करती है तथा मानवीय गरिमा एवं आत्मनिर्भरता को भी सुदृढ़ करती है।

अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने स्वामी विवेकानन्द का उल्लेख करते हुए कहा कि भारत की प्रमुख समस्या संसाधनों का अभाव नहीं बल्कि श्सामर्थ्य की कमीश है। इसलिए राष्ट्र के विकास का पहला लक्ष्य समाज की आंतरिक क्षमता, आत्मविश्वास तथा कार्यकुशलता का विकास होना चाहिए। उनका विश्वास था कि सक्षम समाज ही आत्मनिर्भर एवं समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

स्वदेशी : आर्थिक नीति से आगे राष्ट्रीय स्वाभिमान का विचार– पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने स्वदेशी को केवल आर्थिक नीति के रूप में नहीं देखा। उनके अनुसार स्वदेशी का अर्थ विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार या केवल देश में निर्मित उत्पादों का उपयोग भर नहीं है। यह राष्ट्र के आत्मसम्मान, सांस्कृतिक चेतना तथा आर्थिक स्वावलंबन से जुड़ी व्यापक अवधारणा है।

उन्होंने स्पष्ट किया कि स्वदेशी का वास्तविक उद्देश्य ऐसी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना है जो भारतीय परिस्थितियों, संसाधनों तथा सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप हो। इसलिए स्वदेशी केवल उपभोग की नीति नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा आत्मनिर्भरता की अभिव्यक्ति भी है।

उनके विचार में स्वदेशाभिमान और आर्थिक विकास परस्पर पूरक हैं। जब कोई राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं की क्षमता, उत्पादन एवं संसाधनों पर विश्वास करता है, तभी उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय आत्मविश्वास दोनों सुदृढ़ होते हैं। इस दृष्टि से स्वदेशी उनके समग्र राष्ट्रवादी एवं आर्थिक चिंतन का महत्वपूर्ण आधार है।

कृषि नीति एवं किसान कल्याण– पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की। उनका मत था कि भारत की आर्थिक संरचना का आधार कृषि है, इसलिए विकास नीतियों में कृषि एवं किसान दोनों को केंद्र में रखा जाना चाहिए। 29 जनवरी 1962 को प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने लिखा कि देश की लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या की आय का प्रमुख स्रोत कृषि है तथा राष्ट्रीय आय का लगभग आधा भाग इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। इसलिए कृषि की उपेक्षा राष्ट्रीय विकास के लिए हानिकारक सिद्ध होगी।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि केवल औद्योगीकरण पर बल देकर कृषि की अनदेखी करना दीर्घकाल में उद्योगों के लिए भी लाभकारी नहीं होगा। उनके अनुसार जब किसानों की आय एवं क्रयशक्ति बढ़ेगी तभी औद्योगिक उत्पादों के लिए व्यापक एवं स्थायी बाजार विकसित हो सकेगा। कृषि सुधार के संबंध में उन्होंने अनेक व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किए। सबसे पहले उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप मध्यम आकार के खेतों का समर्थन किया। उनका मत था कि अमेरिका जैसे बड़े कृषि फार्म भारत के लिए उपयुक्त नहीं हैं। उन्होंने लगभग पाँच एकड़ सिंचित भूमि को एक व्यवहार्य आर्थिक इकाई माना।

किसानों के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी व्यवस्था का समर्थन करते हुए सुझाव दिया कि सरकार को बुवाई से पूर्व ही कृषि उत्पादों का न्यूनतम मूल्य घोषित कर देना चाहिए ताकि किसान अपनी लागत निकालने के साथ उचित लाभ भी प्राप्त कर सके।

उन्होंने कोऑपरेटिव फार्मिंग का भी विरोध किया। उनके अनुसार यह व्यवस्था न तो लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप है और न ही प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध होती है।

समग्रत: उनकी कृषि नीति का उद्देश्य किसान की आर्थिक सुरक्षा, कृषि की उत्पादकता, ग्रामीण स्वावलंबन तथा राष्ट्रीय आर्थिक विकास के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करना था।

निष्कर्ष – पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चिंतन भारतीय संस्कृति, सामाजिक समरसता एवं आत्मनिर्भर विकास की व्यापक अवधारणा पर आधारित है। उनका दर्शन केवल सैद्धांतिक विमर्श तक सीमित नहीं रहा, बल्कि राष्ट्र के समग्र विकास के लिए व्यावहारिक दिशा भी प्रदान करता है। उन्होंने राजनीति को नैतिक मूल्यों से, अर्थव्यवस्था को मानवीय आवश्यकताओं से तथा सामाजिक व्यवस्था को सांस्कृतिक आधार से जोड़ते हुए भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विकास का वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

उनके राजनीतिक विचार लोकतांत्रिक नैतिकता, उत्तरदायी मतदाता तथा राष्ट्रहित की सर्वोच्चता पर आधारित हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि स्वस्थ लोकतंत्र केवल सशक्त संस्थाओं से नहीं बल्कि सिद्धांतनिष्ठ राजनीति, जागरूक नागरिकों तथा नैतिक सार्वजनिक जीवन से निर्मित होता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की उनकी अवधारणा राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समन्वय तथा सांस्कृतिक निरंतरता को राष्ट्र की स्थिरता का आधार मानती है।

एकात्म मानववाद एवं 'विराट पुरुष' की संकल्पना के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति और समाज के संबंध को समग्र दृष्टि से स्पष्ट किया। उनके अनुसार समाज के अंतिम व्यक्ति का उत्थान ही वास्तविक विकास का मापदंड है। इसी विचार को उन्होंने 'अंत्योदय' के सिद्धांत में मूर्त रूप दिया, जिसमें संसाधनों के न्यायसंगत वितरण तथा वंचित वर्गों के कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है।

आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था, जनभागीदारी एवं स्वावलंबन का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि विकास तभी स्थायी हो सकता है जब योजनाएँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हों तथा समाज की सक्रिय भागीदारी से संचालित हों। इसी प्रकार उन्होंने स्वदेशी को केवल आर्थिक नीति नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं आत्मनिर्भरता का आधार माना।

कृषि संबंधी उनके विचार भारतीय अर्थव्यवस्था में किसान की केंद्रीय भूमिका को रेखांकित करते हैं। उन्होंने कृषि को राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकता मानते हुए किसानों के लिए लाभकारी मूल्य, मध्यम आकार के खेत तथा व्यावहारिक कृषि नीतियों का समर्थन किया। उनका मत था कि कृषि और उद्योग परस्पर पूरक हैं तथा कृषि की समृद्धि के बिना संतुलित आर्थिक

विकास संभव नहीं है।

समग्रत: पंडित दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन भारतीय राजनीतिक विचारधारा में एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। राष्ट्रहित, सामाजिक समरसता, अंत्योदय, स्वदेशी तथा आत्मनिर्भर विकास से संबंधित उनके सिद्धांत आज भी नीति–निर्माण एवं समकालीन राजनीतिक विमर्श में प्रासंगिक बने हुए हैं। इसलिए उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन का अध्ययन आधुनिक भारत की वैचारिक दिशा तथा विकास संबंधी चुनौतियों को समझने की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गुलेरिया, चेतन सिंह. (2023). 'दीनदयाल उपाध्याय की अन्त्योदय संकल्पना'– International Journal of Education] Modern Management] Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)5(2-II), 83–89
2. तिवारी, विवेकानन्द. (2023). 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय: कृतित्व, व्यक्तित्व तथा विरासत' कृष्ण कुमार मित्तल प्रकाशन।
3. कमल, के. एल. (2024). 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
4. सिंह, वीना. (2020). 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार और दर्शन' सांस्कृतिक और सामाजिक अनुसंधान, 1(2), 33–35.
5. सिंह, जितेन्द्र. ।शर्मा, मीनाक्षी. (2025). 'समकालीन भारतीय राजनीति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता' शोध मंथन, 16 (विशेषांक), 65–69.
6. कुमार, अनिल. (2025). दीनदयाल उपाध्याय के 'दार्शनिक विचार– चिति व विराट की वर्तमान संदर्भ में महत्ता' International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT) 13(8) h673–h677.

****

कौशल विकास एवं आर्थिक विकास

सरोज कुशवाहा* डॉ. दीपक नेमा**

* शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं प्राचार्य (वाणिज्य) श्रीरामाकृष्णा कालेज आंफ कामर्स एवं साइंस, भरहुत नगर, सतना (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – कौशल विकास वर्तमान समय में आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार बन चुका है। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति उसके मानव संसाधनों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यदि युवाओं को उचित शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक दक्षता प्रदान की जाए, तो वे रोजगार प्राप्त करने के साथ-साथ देश की उत्पादकता में भी वृद्धि कर सकते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी तथा गरीबी जैसी समस्याओं को दूर करने के लिए कौशल विकास अत्यंत आवश्यक है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य कौशल विकास और आर्थिक विकास के मध्य संबंध का अध्ययन करना है। अध्ययन में यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार कौशल विकास रोजगार सृजन, औद्योगिक विकास तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि में सहायक होता है। शोध के लिए द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है, जिनमें विभिन्न सरकारी रिपोर्ट, शोध पत्र तथा इंटरनेट स्रोत सम्मिलित हैं।

अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि कौशल विकास कार्यक्रम युवाओं की रोजगार क्षमता को बढ़ाते हैं तथा आर्थिक विकास को गति प्रदान करते हैं। इसलिए सरकार तथा निजी संस्थानों को कौशल विकास कार्यक्रमों का विस्तार करना चाहिए ताकि भारत को आत्मनिर्भर एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सके।

शब्द कुंजी – कौशल विकास, आर्थिक विकास, रोजगार, मानव संसाधन, कौशल भारत।

प्रस्तावना – वर्तमान समय में किसी भी राष्ट्र के विकास का आधार उसकी मानव शक्ति मानी जाती है। यदि देश की जनसंख्या शिक्षित, प्रशिक्षित और कुशल हो, तो वह आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। आर्थिक विकास केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें रोजगार, जीवन स्तर, सामाजिक सुरक्षा तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि भी सम्मिलित होती है।

भारत विश्व की सबसे युवा जनसंख्या वाले देशों में से एक है। यहाँ बड़ी संख्या में युवा कार्यशील आयु वर्ग में आते हैं, लेकिन उनमें आवश्यक तकनीकी और व्यावसायिक कौशल की कमी पाई जाती है। इसी कारण बेरोजगारी और अल्परोजगार जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु कौशल विकास अत्यंत आवश्यक है।

कौशल विकास का अर्थ व्यक्तियों को किसी विशेष कार्य को कुशलतापूर्वक करने हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना है। यह प्रशिक्षण तकनीकी, औद्योगिक, व्यावसायिक तथा प्रबंधकीय हो सकता है। वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी, कृषि, स्वास्थ्य, निर्माण तथा सेवा क्षेत्र में कुशल श्रमिकों की मांग तेजी से बढ़रही है।

भारत सरकार ने युवाओं को प्रशिक्षित करने के लिए अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं, जैसे प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY),कौशल भारत अभियान (Skill India Mission), तथा राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (NSDC)। इन योजनाओं का उद्देश्य युवाओं को रोजगार योग्य बनाना तथा उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुसार प्रशिक्षित मानव शक्ति तैयार करना है।

अध्ययन के उद्देश्य – इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. कौशल विकास की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. आर्थिक विकास में कौशल विकास की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. रोजगार सृजन में कौशल विकास के योगदान को समझना।
4. सरकारी योजनाओं के प्रभाव का अध्ययन करना।
5. कौशल विकास से संबंधित समस्याओं एवं चुनौतियों की पहचान करना।

अनुसंधान क्रियाविधि – यह शोध द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। अध्ययन हेतु निम्न स्रोतों का उपयोग किया गया है:

1. सरकारी रिपोर्ट एवं दस्तावेज
2. शोध पत्र एवं जर्नल
3. पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं
4. इंटरनेट स्रोत एवं वेबसाइट
5. आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट

इस शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। प्राप्त आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करके निष्कर्ष निकाले गए हैं।

कौशल विकास की अवधारणा – कौशल विकास का अर्थ किसी व्यक्ति की कार्य क्षमता, दक्षता तथा उत्पादकता को बढ़ाना है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को रोजगार योग्य बनाती है तथा उसकी आय में वृद्धि करती है।

कौशल विकास को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. तकनीकी कौशल– इसमें मशीन संचालन, कंप्यूटर शिक्षा, इंजीनियरिंग तथा तकनीकी ज्ञान शामिल हैं।

2. व्यावसायिक कौशल – सिलाई, बढ़ईगीरी, इलेक्ट्रिशियन कार्य, प्लंबिंग आदि कार्य व्यावसायिक कौशल के अंतर्गत आते हैं।

3. सॉफ्ट स्किल्स– संचार क्षमता, नेतृत्व क्षमता, समय प्रबंधन तथा टीमवर्क जैसे गुण सॉफ्ट स्किल्स कहलाते हैं।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में केवल शैक्षणिक डिग्री पर्याप्त नहीं है, बल्कि व्यावहारिक कौशल भी आवश्यक हैं।

आर्थिक विकास में कौशल विकास की भूमिका

1. रोजगार सृजन– कौशल विकास युवाओं को रोजगार योग्य बनाता है। प्रशिक्षित व्यक्ति उद्योगों में आसानी से रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। इससे बेरोजगारी की समस्या कम होती है।

2. उत्पादकता में वृद्धि– कुशल श्रमिक कम समय में अधिक एवं बेहतर उत्पादन करते हैं। इससे उद्योगों की कार्यक्षमता बढ़ती है।

3. औद्योगिक विकास– उद्योगों को प्रशिक्षित श्रमिकों की आवश्यकता होती है। कौशल विकास उद्योगों को आवश्यक मानव शक्ति उपलब्ध कराता है।

4. गरीबी उन्मूलन– जब लोगों को रोजगार और उचित आय प्राप्त होती है, तो गरीबी में कमी आती है और जीवन स्तर बेहतर होता है।

5. आत्मनिर्भरता को बढ़ावा– कौशल विकास युवाओं को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करता है, जिससे वे स्वयं का व्यवसाय प्रारंभ कर सकते हैं।

6. विदेशी निवेश को प्रोत्साहन – जब किसी देश में कुशल श्रमिक उपलब्ध होते हैं, तो विदेशी कंपनियाँ निवेश करने के लिए आकर्षित होती हैं।

कौशल विकास के लिए सरकारी पहल

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) – यह योजना 2015 में प्रारंभ की गई थी। इसका उद्देश्य युवाओं को उद्योग आधारित प्रशिक्षण प्रदान करना है।

कौशल भारत अभियान (Skill India Mission) – इस मिशन का उद्देश्य भारत को 'Skilled India' बनाना है।

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (NSDC) – यह संस्था कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा देती है तथा युवाओं को उद्योग आधारित शिक्षा उपलब्ध कराती है।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना – इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण देकर रोजगार उपलब्ध कराना है।

साहित्य समीक्षा – विभिन्न विद्वानों एवं शोधकर्ताओं ने कौशल विकास और आर्थिक विकास के संबंध पर अध्ययन किया है।

1. अमर्त्य सेन के अनुसार मानव संसाधन का विकास आर्थिक प्रगति का आधार है।
2. एडम स्मिथ ने श्रम विभाजन एवं कौशल को उत्पादन वृद्धि का प्रमुख कारण माना।
3. NSDC रिपोर्ट के अनुसार प्रशिक्षित युवाओं की रोजगार क्षमता अधिक होती है।
4. विश्व बैंक की रिपोर्ट में बताया गया कि विकासशील देशों में कौशल विकास गरीबी कम करने का प्रभावी साधन है।
5. कई शोध अध्ययनों में यह पाया गया कि तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

कौशल विकास में चुनौतियाँ– भारत में कौशल विकास के क्षेत्र में अनेक समस्याएँ हैं:

1. प्रशिक्षण संस्थानों की कमी।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता का अभाव।
3. आधुनिक तकनीक की कमी।
4. प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी।
5. उद्योगों एवं प्रशिक्षण संस्थानों के बीच समन्वय की कमी।
6. वित्तीय संसाधनों की कमी।

इन समस्याओं के कारण कौशल विकास कार्यक्रमों का अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता।

सुझाव:

1. ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए जाएँ।
2. उद्योगों के सहयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।
3. आधुनिक तकनीकी शिक्षा को बढावा दिया जाए।
4. युवाओं को स्वरोजगार हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जाए।
5. महिलाओं के लिए विशेष कौशल विकास कार्यक्रम चलाए जाएँ।
6. डिजिटल शिक्षा एवं ऑनलाइन प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया जाए।

निष्कर्ष – अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कौशल विकास आर्थिक विकास का प्रमुख आधार है। यह न केवल रोजगार सृजन में सहायक है बल्कि उत्पादकता, औद्योगिक विकास एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत जैसे विकासशील देश में युवाओं की बड़ी जनसंख्या को यदि उचित प्रशिक्षण एवं कौशल प्रदान किया जाए, तो देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है।

सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ युवाओं को रोजगार योग्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, लेकिन इन योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता है। यदि कौशल विकास कार्यक्रमों को सही दिशा एवं पर्याप्त संसाधन प्रदान किए जाएँ, तो भारत आत्मनिर्भर एवं विकसित राष्ट्र बनने की दिशा में तेजी से आगे बढ़सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship, Government of India.
2. National Skill Development Corporation (NSDC) Reports.
3. Economic Survey of India.
4. Amartya Sen – Development as Freedom.
5. Adam Smith – Wealth of Nations.
6. World Bank Skill Development Reports.
7. Skill India Mission Documents.
8. Various Research Journals and Articles.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

युद्धों के लिए मेवाड़ का ऐतिहासिक महत्व : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. नरेंद्र सिंह राणावत*

* सहायक आचार्य (इतिहास) सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – मेवाड़ भारतीय इतिहास का एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिसने प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल तक अपनी सामरिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक विशेषताओं के कारण विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। अरावली पर्वतमाला, दुर्गम घाटियाँ, सुदृढ़ दुर्ग, खनिज संपदा तथा स्वतंत्रता–प्रिय शासकों ने मेवाड़ को युद्धों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र बनाया। विशेष रूप से महाराणा कुम्भा, राणा सांगा तथा महाराणा प्रताप के काल में मेवाड़ विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रमुख केन्द्र रहा। प्रस्तुत शोध आलेख में युद्धों की दृष्टि से मेवाड़ के ऐतिहासिक महत्व का विश्लेषण प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के आधार पर किया गया है।

शब्द कुंजी – मेवाड़, युद्ध, सामरिक महत्व, अरावली, चित्तौड़गढ़, कुंभलगढ़, महाराणा प्रताप, हल्दीघाटी।

प्रस्तावना – राजस्थान का मेवाड़ क्षेत्र भारतीय इतिहास में वीरता, स्वाधीनता और सैन्य संगठन का प्रतीक माना जाता है। इसकी भौगोलिक स्थिति तथा प्राकृतिक संरचना ने इसे उत्तर भारत, गुजरात तथा मालवा के मध्य एक महत्वपूर्ण सामरिक क्षेत्र बना दिया। यही कारण था कि दिल्ली सल्तनत, गुजरात सल्तनत तथा मुगल शासकों ने समय–समय पर मेवाड़ को अपने अधीन करने का प्रयास किया, किन्तु मेवाड़ ने सदैव सशक्त प्रतिरोध प्रस्तुत किया।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. युद्धों की दृष्टि से मेवाड़ के सामरिक महत्व का अध्ययन करना।
2. मेवाड़ की भौगोलिक संरचना एवं प्राकृतिक संसाधनों का सैन्य दृष्टि से विश्लेषण करना।
3. मेवाड़ के दुर्गों एवं पर्वतीय मार्गों की रक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना।
4. महाराणा प्रताप एवं अन्य मेवाड़ी शासकों की सैन्य रणनीतियों का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति– यह अध्ययन ऐतिहासिक शोध पद्धति पर आधारित है। इसमें अभिलेखों, समकालीन ग्रंथों, फारसी स्रोतों, पुरातात्विक साक्ष्यों तथा आधुनिक इतिहासकारों के शोध का विश्लेषण किया गया है।

युद्धों के लिए मेवाड़ का ऐतिहासिक महत्व

1. सामरिक भौगोलिक स्थिति– मेवाड़ उत्तर भारत को गुजरात तथा पश्चिमी भारत से जोड़ने वाले प्रमुख मार्गों पर स्थित था। दिल्ली से गुजरात जाने वाले व्यापारिक एवं सैन्य मार्ग इस क्षेत्र से होकर गुजरते थे। इस कारण जो शक्ति मेवाड़ पर नियंत्रण स्थापित करती, वह उत्तर–पश्चिम भारत के महत्वपूर्ण मार्गों पर प्रभाव स्थापित कर सकती थी।

2. अरावली पर्वतमाला का योगदान – अरावली विश्व की प्राचीनतम पर्वत श्रेणियों में से एक है। इसकी ऊँची पर्वतमालाएँ, संकरी घाटियाँ और घने वन मेवाड़ को प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करते थे। हल्दीघाटी, देवर तथा दिवेर जैसे दर्रों में बड़ी सेना का संचालन कठिन था, जिससे छोटी मेवाड़ी सेना भी प्रभावी प्रतिरोध कर सकती थी।

महाराणा प्रताप ने अरावली की प्राकृतिक संरचना का उपयोग छापामार (Guerrilla Warfare) युद्ध के लिए किया। इससे मुगल सेना को रसद, संचार एवं सैन्य संचालन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

3. दुर्गों का सामरिक महत्व– मेवाड़ के दुर्ग केवल निवास स्थान नहीं थे, बल्कि युद्धकालीन रक्षा केन्द्र थे।

(क) चित्तौड़गढ़ दुर्ग

भारत का सबसे विशाल पहाड़ी दुर्ग।
दिल्ली एवं गुजरात से आने वाले आक्रमणों को रोकने का प्रमुख केन्द्र।
1303, 1535 तथा 1568 ई. के प्रसिद्ध घेराव इसकी सामरिक महत्ता को सिद्ध करते हैं।

(ख) कुंभलगढ़ दुर्ग

अरावली पर्वतमाला में स्थित।
लगभग 36 किमी लंबी प्राचीर।
महाराणा प्रताप का जन्मस्थान।
संकट के समय मेवाड़ की वैकल्पिक राजधानी।

(ग) गोगुंदा एवं चावण्ड– हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात महाराणा प्रताप ने चावण्ड को राजधानी बनाया तथा पर्वतीय क्षेत्रों से मुगलों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा।

4. प्राकृतिक संसाधन एवं खनिज– मेवाड़ प्राचीन काल से ताँबा, सीसा, चाँदी तथा जस्ता के लिए प्रसिद्ध रहा है। जावर तथा दरीबा की खदानें युद्ध सामग्री एवं आर्थिक संसाधनों का महत्वपूर्ण आधार थी। इन खनिजों से शस्त्र निर्माण तथा राज्य की आर्थिक शक्ति को बल मिलता था।

5. गुरिल्ला युद्ध प्रणाली– महाराणा प्रताप ने परम्परागत युद्ध के साथ–साथ गुरिल्ला युद्ध प्रणाली अपनाई। छोटी टुकड़ियाँ पर्वतीय मार्गों से निकलकर मुगल सेना पर अचानक आक्रमण करती थी और पुन: जंगलों में लौट जाती थी। इस रणनीति ने विशाल मुगल सेना की प्रभावशीलता को

कम कर दिया।

6. स्थानीय जनजातियों का योगदान– भील समुदाय ने मेवाड़ की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने:

दुर्गम मार्गों की जानकारी दी,

गुप्तचर कार्य किया,

रसद उपलब्ध कराई,

छापामार युद्ध में सहयोग दिया।

इस सहयोग के कारण मुगल सेना मेवाड़ के पर्वतीय क्षेत्रों में स्थायी नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकी।

7. स्वतंत्रता की परम्परा– मेवाड़ के शासकों ने विदेशी अधीनता स्वीकार करने के स्थान पर संघर्ष का मार्ग चुना। राणा सांगा तथा महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास में राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता के प्रतीक माने जाते हैं। मेवाड़ का संघर्ष केवल क्षेत्रीय नहीं बल्कि राजनीतिक स्वतंत्रता का संघर्ष था।

निष्कर्ष– युद्धों की दृष्टि से मेवाड़ का महत्व उसकी भौगोलिक स्थिति, अरावली पर्वतमाला, दुर्ग प्रणाली, खनिज संसाधनों, स्थानीय जनजातीय सहयोग तथा स्वतंत्रता–प्रिय शासकों के कारण अत्यंत विशिष्ट था। यही कारण है कि अनेक शक्तिशाली साम्राज्यों के निरंतर प्रयासों के बावजूद मेवाड़ लंबे समय तक स्वतंत्रता एवं प्रतिरोध का केन्द्र बना रहा। मध्यकालीन भारतीय सैन्य इतिहास में मेवाड़ का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. श्यामलदास. वीर विनोद, भाग–1. उदयपुर: राजस्थानी ग्रंथागार (पुनर्मुद्रित संस्करण), 1996, पृ. 184–235.
2. श्यामलदास. वीर विनोद, भाग–2. उदयपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, 1996, पृ. 512ह578.
3. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1. अजमेर: वैदिक यंत्रालय, 1928, पृ. 298–325.
4. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2. अजमेर: वैदिक यंत्रालय, 1931, पृ. 120–168.
5. सोमानी, रामवल्लभ. History of Mewar: From Earliest Times to 1751 A.D. जयपुर: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, 1976, चच. 182–246.
6. टॉड, जेम्स. Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. I. London: Smith, Elder & Co., 1829 (भारतीय पुनर्मुद्रण),pp.. 236–289.
7. टॉड, जेम्स.Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. II. London: Smith, Elder & Co., 1832 (भारतीय पुनर्मुद्रण), चच. 590–635.
8. अबुल फजल. अकबरनामा, खंड–3 (अनुवाद: एच. बेवरिज). New Delhi: Low Price Publications (Reprint), pp. 112–132.
9. अबुल फजल. आईन–ए–अकबरी, खंड–1 (अनुवाद: एच. ब्लॉचमैन). New Delhi: Low Price Publications, pp. 301–320.
10. चन्द्र, सतीश. मध्यकालीन भारत (Medieval India), भाग–II. नई दिल्ली: हर–आनन्द पब्लिकेशन्स, 2005, पृ. 108–120.
11. हबीब, इरफान. The Agrarian System of Mughal India (1556–1707). New Delhi: Oxford University Press, 1999, pp. 65–92.
12. हूजा, रीमा. A History of Rajasthan. New Delhi: Rupa Publications, 2006, pp. 453–472.
13. हूजा, रीमा. Maharana Pratap: The Invincible Warrior. New Delhi: Penguin Random House India, 2018, pp. 84–132.
14. खान, इक्तिदार आलम. Gunpowder and Firearms: Warfare in Medieval India. New Delhi: Oxford University Press, 2004, pp. 15–58.
15. रावत, गोपीनाथ शर्मा. राजस्थान का इतिहास. जयपुररू राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2008, पृ. 198–235.
16. शर्मा, दशरथ.Rajasthan Through the Ages, Vol. I जयपुर: Rajasthan State Archives, pp. 312–347.
17. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI). चित्तौड़गढ़ दुर्ग: संरक्षण एवं इतिहास. नई दिल्ली: Archaeological Survey of India, 2013, पृ. 25–58.
18. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI). कुंभलगढ़ दुर्ग: ऐतिहासिक एवं स्थापत्य अध्ययन. नई दिल्ली: Archaeological Survey of India, 2015, पृ. 41–72.
19. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर. मेवाड़ संबंधी अभिलेख, संकलन–I, पृ. 45–98.
20. शर्मा, गोपीनाथ. Mewar and the Mughal Emperors उदयपुर: Mewar Research Institute, 1970, pp. 56–118.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

हिन्दी उपन्यासों में पुरुष संवेदना

सुनीता मीना*

* शोधार्थी (हिंदी) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – प्रकृति की सुन्दरता नैसर्गिक रूप से दो विपरीत ध्रुवों पर आश्रित रहती है, वह दोनों धुरियाँ नर और नारी है जो जीवन के नवाचार से सम्बंधित है। हिंदी साहित्य का लेखन कभी भी एक ओर झुका हुआ नहीं रहा है। हिंदी साहित्य ने भी लगातार इस क्रम को संतुलित रखा है। जैसे-जैसे नवीनता का प्रादुर्भाव हुआ है वैसे ही हिंदी जगत ने अपनी कलम को भी उसी ओर ढाला है। परिवर्तन,विकास, क्रांति ये प्रकृति के शाश्वत नियम हैं। हर युग में क्रांतियाँ और आंदोलन हुए हैं, आज भी हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। जिसके फलस्वरूप व्यवस्था में परिवर्तन होता है और निरंतर विकास का मार्ग प्रशस्त होता रहा है। हिंदी साहित्य में स्त्री संवेदना पर विपुल कार्य हुआ है, परंतु पुरुष संवेदना के स्तर पर गंभीर, सुसंगत एवं व्यवस्थित अध्ययन की कमी रही है। पितृसत्ता के भीतर भी पुरुष किस प्रकार मानसिक द्वंद्व, सामाजिक दबाव और भावनात्मक कुंठाओं से ग्रस्त होता है यह पक्ष साहित्यिक विश्लेषण के लिए अपेक्षित है। यह शोध साहित्य में पुरुष की छवि को एक नई दृष्टि देने का प्रयास करेगा।
शब्द कुंजी – संवेदना, मानसिक द्वंद्व, सामाजिक दबाव, समाज,परिवार, जीवन आकांक्षा।

प्रस्तावना – वर्तमान समय वैश्विकरण के चलते पैराडिम शिफ्ट हुआ है। और इस स्त्रीवादी मानसिकता ने पुरुष की उपलब्धियों पर सवाल खड़ा कर, उसे डुबाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। समाज में बराबरी का दर्जा प्रदान करने के लिए पुरुष ने अपने से कभी भी इसका विरोध नहीं किया। लेकिन इस बराबरी की लड़ाई में पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता और स्त्रीवर्चस्ववादी मानसिकता ने पुरूष को अपनी चली आयी परंपरा में वस्तुनिष्ठ बना दिया है जानबूझ कर पुरुष को कहीं न कहीं अतिवाद की ओर धकेला जा रहा है। इसलिए वर्तमान समय में पुरुष की संवेदनाओं उसकी जीवन आकांक्षाओं और मूल्यों की ओर ध्यान जाना आवश्यक है। जहाँ पुरुष संवेदना मानव मन के भीतर की आंतरिक चेतना है वहाँ स्त्री अपने बराबरी और अपनी इच्छाओं की पूर्ति करती नजर आयी हैं उसी तरह क्या पुरुष भी अपने जीवन में स्वयं के बारे में सोच सकता है इस पर विचार करना जरूरी है। साथ ही समकालीन विमर्श के साहित्य में पुरुष के जीवन का चिन्हांकन करना भी आवश्यक हो जाता है। इस विषय पर मैनेजर पाण्डेय लिखते है कि 'हिन्दी कथा साहित्य में विशेषकर उपन्यास में व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ उपस्थित होता है उपन्यास में व्यक्ति की वैयक्तिकता जिन सामाजिक संदर्भों के साथ से बनती है उनसे व्यक्ति के संबंधों की जटिलता का बोध उपन्यास में व्यक्त होता है।'[1] इसलिए पुरुष संवेदना के विचार समाज,परिवार और सार्वजनिक जीवन में योगदान का आकलन करना जरूरी हो जाता है

मानवीय संवेदना शब्द का सामान्य अर्थ मानव के प्रति सहानुभूति है। अंग्रेजी में इसे सिम्पथी कह सकते हैं। सहानुभूति मानव मन का उदात्त भाव है क्योंकि वह परात्मभाव से युक्त होने के कारण सुख-दुख की अनुभूति कराता है। मनोविज्ञान शास्त्र में संवेदना का अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव होता है और वहाँ इसे सेंसेसन के रूप में ग्रहण करते हैं। उत्तोजक वस्तु संवेदना का मूल आधार है। 'कामायनी' महाकाव्य के आशासर्ग की निम्न पंक्तियों में भी मानवीय संवेदना के भाव प्रकट होते है जैसे कि

'मनु का मन या विकल हो उठा, संवेदन से खाकर चोट।
संवेदन जीवन जगती को, जो कटुता से देता घोट ।।'[2]

अत: मानव मन की भीतर की व्याकुलता ही संवेदना को प्रकट करता है,आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानवीय संवेदना पर लिखा है कि 'संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है.... मतलब यह कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना ही संवेदना है।'[3] किन्तु इसी संदर्भ में डॉ.द्वारिका प्रसाद नेमानवीय संवेदना पर विचार करते लिखा है कि 'संवेदना का अर्थ सुख-दुख मिश्रित अनुभूति के अर्थ में ग्रहण किया है। उनके अनुसार सुख दुखात्मक अनुभूति ही संवेदना है। उसमें भी दुखानुभूति से इसका गहरा सम्बन्ध है क्योंकि जब किसी प्रकार का अभाव हमारे जीवन में उत्पन्न होता हैतब उसकी दुखानुभूति सर्वप्रथम हमें बैचेन एवं व्यथित कर देती है और हमारे हृदय में संघर्ष उठ खड़ा होता है।'[4] हिंदी उपन्यासों में पुरुष का चरित्र केवल कथा का वाहक नहीं वह समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विचारधारों का केंद्र भी रहा है। समाज में पुरुष की सैद्धांतिक भूमिका को हिन्दी उपन्यासों के भीतर उपजे विचारों को केन्द्रित करते हुए पुरुष संवेदना के आधार पर हिन्दी उपन्यास का सैद्धांतिक ढांचा तीन प्रमुख सिद्धांत पर विभक्त कर सकते है जों समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण और अस्तित्ववादी दृष्टिकोण पर आधारित है जिससे पुरुष संवेदना को विभिन्न स्तरों पर समझा जा सकता है।जिससे साहित्य समाज में पुरुष चरित्र के बदलते रूप, उसके सामाजिक और मानसिक संरचना में होने वाले परिवर्तन का विश्लेषण किया जाएगा

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने पर प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास समाजशास्त्रियों की दृष्टि जैसे एमिल दुर्खीम, मार्क्स और मैक्स

वेबर के अनुसार व्यक्ति की भूमिका सामाजिक ढाँचे, आर्थिक शक्तियों और वर्गीय संबंधों से निर्धारित होती है। गोदान में पुरुष पात्र होरी वही सामाजिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है जिसे समाज परंपरा, नैतिकता और आर्थिक शोषण के माध्यम से नियंत्रित करता है। जैसे 'गोदान' उपन्यास में होरी कहता है कि 'खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो ! उनकी जान को भी सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुँचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुश करो। तारीख पर मालगुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियाँ-घुड़कियाँ ही तो मिलकर रह जाती हैं।'[5] इस तरह पुरुष पात्र होरी अपने जमीदार के प्रति चिंता करना वर्गीय संबंधो का निर्धारण है जहाँ स्वयं शोषित है साथ ही होरी की परिवारविषयक धारणा भी सामाजिक परम्परागत है। और साथ ही वह सामाजिक संबंधो से चिपके रहना भी चाहता है, चाहे पंचायत के निर्णय को ठुकरा सकता था। पर बिरादरी से बहिष्कृत होकर जीना होरी के लिए सम्भव नहीं है। अत: वह धनिया के विरोध करने पर भी पंचायत के द्वारा लगाया हुआ दंड भरता है। उसकी धारणा है कि 'हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। नक्कू बन कर जीने से तो गले में फाँसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जाएँ तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगाएगी। बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे।'[6] इस तरह होरी धर्म के नाम पर बिना हिचक शोषण का शिकार बनता है। इस संदर्भ में गोपाल रॉय लिखते है कि 'होरी की मिथ्या मर्यादा-भावना भी उसे पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करती है। प्रेमचन्द यह मानते प्रतीत होते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में निर्धन व्यक्ति, किसान और मजदूर की कोई मर्यादा नहीं होती। होरी की यही स्थिति है। दारोगा, पटवारी, कारिन्दा और साहूकार सब उसका अपमान करते हैं, झिड़कते हैं और खरी-खोटी सुनाते हैं। फिर भी होरी अपने को 'मरजाद' वाला आदमी समझता है'[7] इस तरह पुरुष पात्र होरी की जीवनस्थितियाँ वर्ग-शोषण, भूमि-अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढाँचों का परिणाम हैं। यहाँपुरुष की स्थिति समाज से निर्देशित भूमिका पर आधारित है जिसमेकर्तव्य और सम्मान के बोझ को प्रस्तुत करता है। वेबर के सामाजिक प्रतिष्ठा सिद्धांत के अनुसार 'पुरुष की पहचान उसकी सामाजिक छवि और सामुदायिक अपेक्षाओं से बनती है जो होरी के चरित्र में स्पष्ट है। इसलिए गोदान में पुरुष की भूमिका कर्तव्य, सामाजिक संरचना, पितृसत्ता और आर्थिक संघर्ष पर आधारित है।'[8] जिसके परिणामस्वरूप, पुरुष मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक दबावों का सामना करते हुए भी उन्हें व्यक्त नहीं कर पाता। इस तरह सामाजिक दृष्टिकोण से 'गोदान' उपन्यास में पुरुष-संवेदना भारतीय ग्रामीण समाज की व्यवस्था, विडंबनाओं के बीच पुरुष-संवेदना की बहुस्तरीय अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास का पुरुष केवल सत्ताधारी नहीं, वह आर्थिक शोषण, सामाजिक दबाव, नैतिक द्वंद्व और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के बीच पीड़ित मनुष्य भी है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार हिंदी कथा साहित्य में पुरुष संवेदना विविध आयामों से विकसित होती हुई भावभूमि रही है। अब तक पुरुष पात्रों को अक्सर शक्ति, नियंत्रण, दायित्व, परंपरा और वर्चस्व के प्रतीक के रूप में देखा जाता रहा, किंतु मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अंतर्गत पुरुष संवेदना एक मानवीय, आंतरिक और भावनात्मक संरचना के रूप में उभरती है। यह विश्लेषण पुरुष के बाह्य व्यवहार नहीं, वह उसके भीतर की भावनात्मक टूटन,अकेलापन,अपेक्षा,संघर्ष,असुरक्षाऔर आत्मपरक संवेदनाओं को समझने का प्रयास करता है।डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का तात्पर्य उन उपन्यासों से हैं जो मूलत: मनोविश्लेषण पर आधारित हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से इतर जो सामाजिक उपन्यास हैं उनके पात्रों की एक चुनी हुई विशेषताएँ होती हैं। हम उनके बारे में इतने विश्वस्त होते हैं कि कह सकते हैं कि अमुक स्थिति में अमुक काम करेंगे या अमुक बात कहेंगे। किंतु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य पात्रों की मनोवैज्ञानिक शोध करना है। मनुष्य वास्तव में कैसा है, इसका पता लगाना ही उन उपन्यासों का कार्य होता है। सक्रिय जीवन ही केवल जीवन नहीं है, बल्कि वह बहुत महत्वपूर्ण जीवन भी नहीं है, वास्तविक जीवन तो विचारों और अनुभूतियों का आंतरिक जीवन ही है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इसी आंतरिक जीवन को प्रधानता देते हैं।'[9] इस प्रकार मनोविज्ञान विशेषत: फ्रायड, जुंग, तथा ऐड्लर की अवधारणाएँ से प्रभावित है पुरुष संवेदना के विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।हिंदी कथाकारों ने जैसे जेनेन्द्र,इलाचन्द्र जोशी,अज्ञेय के उपन्यासों में पुरुष पात्रों के मनोवैज्ञानिक संघर्षों को उभारा हैमनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से अज्ञेय का शेखर: एक जीवनी फ्रायड और जुंग के मनोविश्लेषण सिद्धांत मानव व्यवहार के अवचेतन आवेगों, अपराधबोध, दमन और आत्मसंघर्ष पर आधारित हैं। जैसे कि 'अपनी ही अशान्तचित्तता, अस्थिरता शेखर के लिए असह्य होने लगी। उसे लगने लगा, वह कुछ चाहता है, लेकिन क्या चाहता है, यह नहीं जान पाया और इसी को जानने के लिए वह अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करने लगा, अनेक रास्तों पर एक साथ ही भटकने लगा...'[10] इस तरह 'शेखररू एक जीवनी' में पुरुष की भूमिका सामाजिक ढाँचे से हटकर आंतरिक यात्रा, द्वंद्व और आत्मस्वीकृति की खोज में परिवर्तित होती है।शेखर की मनोदशा फ्रॉयड के 'ईड,ईगो,सुपर ईगो' संघर्ष का जीवंत उदाहरण हैकि 'दूर से देखा जाए, तो मानवता का सारा विकास ही कम-से-कम अभी तक यही है। मानवता कुछ चाहती है, लेकिन जानती नहीं कि क्या और उसे जानने की खोज में' अनेक रास्तों पर एक साथ ही भटक रही है... मानो सारी मानवता, अपने जीवन की गति में किसी दीर्घ वय: सन्धि पर खडी है और अपने से उलझ रही है, उसका यौवन, उसके कृतित्व के दिन अभी आगे हैं।'[11] यह कथन पुरुष की भूमिका को सामाजिक ढाँचे से बाहर निकालकर स्वतंत्र चेतना, व्यक्तिगत अर्थ और आत्मअन्वेषण तक ले जाता है।शेखर सोचता है कि 'उसने देखा, समझ लिया कि कोई किसी का नहीं है, यानी इतना नहीं है कि उसका स्वामी-निर्देशक, भाग्य-विधायक बन सके। कोई ऐसा नहीं है जिस पर निर्भर किया जा सके, जिसे प्रत्येक बात में पूर्ण, अचूक माना जा सके। यदि किसी का कोई है, तो उसकी अपनी बुद्धि, मनुष्य को उसी के सहारे चलना है, उसी के सहारे जीना है, ऐसे स्थान अवश्य हैं, जहाँ बुद्धि जवाब दे जाती है, लेकिन इसमें वह ईमानदारी है, जो बात नहीं जानती, वहाँ पर चुप रहती है, गलत उत्तर नहीं देती।'[12] इस तरह पुरुष संवेदना का पारंपरिक नायक की छवि से हटकर अधिक मानवीय, भावनात्मक और टूटे हुए रूप में उभरती है।पुरुष भोगवादी नहीं, भावुक भी हैवह कर्त्ता ही नहीं, पीड़ित भी है,वह पितृसत्ता का वाहक होने के साथ-साथ उसका शिकार भी है अत: मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के दृष्टिकोण से हिंदी उपन्यास साहित्य में पुरुष संवेदना को मानव मनोविज्ञान के उस हिस्से को सामने लाती है जिसे सामाजिक व्यवस्था ने लंबे समय तक छिपाए रखा। यहाँ पुरुष न तो केवल शक्ति का प्रतीक है और न ही मात्र संवेगहीन अस्तित्व के बजाय वह भी

उतना ही भावनात्मक, असुरक्षित और संवेदनशील है जितना समाज ने कभी स्वीकार नहीं किया।

अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के अनुसार हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववाद ने व्यक्ति को समाज, परंपरा और दैवी सत्ता से मुक्त करते हुए उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, चुनाव और नैतिक दुविधाओं पर बल दिया है। हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववादी पुरुष-पात्र किस प्रकार आत्मसंघर्ष, अपराध-बोध, अकेलेपन, प्रेम-विरोध, और अर्थ-संकट के माध्यम से अपनी संवेदना रचते हैं। उपन्यासों में पुरुष-संवेदना नायकत्व का दावा करती है न सामाजिक पुरुषत्व का, अपितु वह सबसे पहले मानवीय अपूर्णता को पहचानती है।समाज में सुधार और यथार्थवादी युगीन समस्याओं से हटकर व्यक्ति के भीतरी अनुभव, अकेलेपन और अर्थसंकट को केन्द्रीय स्थान मिला। इस परिवर्तन के पीछे यूरोपीय अस्तित्ववादी दर्शन की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष छाप मानी जाती है। अस्तित्ववाद, जैसा कि जाँ-पॉल सार्त्र केइस विचार से शुरू होता है कि 'मनुष्य पहले अस्तित्व में आता है, बाद में अपना सार स्वयं गढ़ता है'[13] हिन्दी में अज्ञेय,निर्मल वर्मा और कमलेश्वर ऐसे उपन्यासकार हैं जिनके यहाँ पुरुष पात्र न तो पारंपरिक नायक हैं और न ही केवल समाजसुधारक वे अकेले, अपराधबोध से भरे, प्रेम और इतिहास दोनों के सामने असहाय और अपने निर्णयों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी उठाने को विवश व्यक्ति हैं। यही वह क्षेत्र है जहाँ पुरुष-संवेदना और अस्तित्ववाद एक दूसरे से मिलते हैं।डॉ. श्याम सुंदरदास अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते है कि 'हिन्दी अस्तित्ववादी उपन्यासों में पुरुष-संवेदनाव्यक्ति की स्वतंत्रता और अकेलेपन में जन्म लेती है,अपराध-बोध और विद्रोह के बीच अपना अर्थ खोजती है, प्रेम और स्मृति में अपने अस्तित्व को टटोलती हैऔर अंततः अमानवीय इतिहास में मानवीय स्वीकृति तलाशती है'[14] इस तरह आधुनिक जीवन की जटिलताओं, मूल्यों के विघटन और व्यक्ति की मानसिक असुरक्षा ने पुरुष पात्रों की संवेदना को नई दिशा दी। हिंदी उपन्यासों में पुरुष अब केवल सामाजिक भूमिका निभाने वाला पात्र नहीं, वह अपने अस्तित्व के अर्थ को खोजता हुआ एक जटिल मनुष्य है। 'व्यक्तित्व की अपनी लीकें होती हैं- एक रूझान होता है। और उस के आगे, व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में जो समझता है, जो कल्पना करता है, मनसूबे बाँधता है, उन से भी तो एक लीक बनती है- लीक कहिए, चौखटा कहिए, ढाँचा कहिए। या कह लीजिए दुनिया में अपना एक स्थान।'[15] इसी परिवर्तनशीलता में पुरुष पहचान का संकट भी दिखाई देता है। यह पुरुष संवेदना की मूल समस्या से जुड़े प्रश्नों को खड़ा करता है क्या भावनात्मक कमजोरी उसकी मर्दानगी को चुनौती देती हैबदलते सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक ढाँचों में पुरुष की भूमिका क्या होनी चाहिए?इन प्रश्नों के उत्तरों की तलाशआधुनिक हिन्दी उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख', 'नदी के द्वीप', 'न आने वाला कल', 'सारा आकाश' बंद अंधेरे कमरे में 'गुनाहों का देवता', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' आदि उपन्यासों में पुरुष का अस्तित्वगत स्वरूप स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन उपन्यासों में पुरुष जीवन की जटिलताएँ और पुरुष मनोविज्ञान और संवेदना को नये आयाम से प्रस्तावित किये हैं। अस्तित्ववाद व्यक्ति की स्वतंत्रता, चयन, दायित्व और जीवन की निरर्थकता को केंद्र में रखता है। हिंदी उपन्यासों में यह चेतना विशेष रूप से पुरुष पात्रों के मानसिक द्वंद्व, अकेलेपन, पहचान का संकट और आत्मसंघर्ष के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती,राजेंद्र यादव, विनोद कुमार शुक्ल और कमलेश्वर जैसे रचनाकारों के उपन्यासों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिंदी उपन्यासों में पुरुष अब पारंपरिक नायक न रहकर एक संवेदनशील, प्रश्नाकुल और आत्मनिर्माणशील मनुष्य के रूप में उपस्थित है। अस्तित्ववादी दृष्टि के अनुसार निर्मल वर्मा का 'एक चिथड़ा सुख' में पुरुष जीवन का अर्थ व्यक्ति स्वयं गढ़ता है, और मनुष्य अस्तित्वगत अकेलेपन और अनिश्चितताओं से गुजरते हुए अर्थ की खोज करता है।एक चिथड़ा सुख में पुरुष पात्र दुनिया की सामान्य भूमिकाओं से हटकरभावनात्मक असुरक्षाअकेलापनविक्षेपित संबंधअर्थ की खोजके बीच झूलता है।उपन्यास का स्वर पुरुष की सामाजिक भूमिका की नहीं, उसके विस्थापन और भावनात्मक रिक्तता की व्याख्या करती है। जैसे कि 'उसे लगा, सुख कितना छोटा होता है। आता भी नहीं, कि चला जाता है।'[16] यह पंक्ति सुख की क्षणभंगुर अनुभूतिपुरुष मन की उस संवेदना को प्रकट करती है जहाँसुख स्थायी नहीं,उपलब्धि भी टिकाऊ नहींऔर भावनात्मक संतोष तुरंत हाथ से फिसल जाता है।यह आधुनिक पुरुष की भावनात्मक असुरक्षा का सशक्त संकेत यह पुरुष संवेदना को अस्तित्ववादी संकट,आत्म-विनाश की चेतना,और जीवन की निरर्थकता से जोड़ देती है। उपन्यास में एक स्थान पर आया है कि 'मुझे वर्षों पहले पढ़ी हुई एक लाइन याद आती है।' 'the woods decay and the woods decay'[17] यह अनुभूति यह दोहराव जीवन कीएकरसता, निरंतर क्षरणऔर अर्थहीनताकी अनुभूति को तीव्र करता है।इसी प्रकार 'आदमी कैसे अपने को छोड़कर कुछ और बन जाता है।'[18] यह वाक्य पुरुष की अपने ही अस्तित्व से असंतुष्ट है,स्वयं से पलायन करना चाहता है, और किसी अन्य रूप में ढलने की बेचैनी से ग्रस्त है।यह संवेदना आधुनिक, शिक्षित, शहरी पुरुष की विशिष्ट पहचान बनती है।इसी तरह 'जो दिखाई देता है, वह नहीं है' जो सचमुच में है, वह दिखाई नहीं देता।'[19] यह पंक्ति पुरुष संवेदना को दार्शनिक ऊँचाई प्रदान करती है।यहाँ पुरुषबाह्य यथार्थ पर अविश्वास करता है,आंतरिक सत्य की खोज में है,यह दृष्टि अस्तित्ववाद और आधुनिकतावादी चेतना से गहराई से जुड़ी है।हिंदी उपन्यासों में अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के अंतर्गत पुरुष संवेदना आधुनिक मनुष्य की त्रासदी का प्रतिनिधित्व करती है। यह संवेदना नायकत्व की चमक से मुक्त होकर मानवीय दुर्बलताओं, आत्मसंघर्ष और अर्थखोज को केंद्र में लाती है। इस प्रकार हिंदी उपन्यास पुरुष को एक संवेदनशील, प्रश्नाकुल और खुद से निर्णय लेने वालाव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मेनेजर पाण्डेय,उपन्यास और लोकतन्त्र, पृष्ठ सं. 11,वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली 2002.
2. जयशंकर प्रसाद,कामायनी आशा सर्ग पृष्ठ सं.27,अशोक प्रकाशन, नईदिल्ली।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं.452,रचना प्रकाशन,जयपुर।
4. देवी प्रसाद गुप्त,साहित्य सिद्धान्त और आलोचना, पृष्ठ सं.31, आत्माराम एंड संस, दिल्ली1978.
5. प्रेमचंद, गोदान, पृष्ठ 16.मालिक एंड कंपनी, जयपुर 2016.
6. वहीं, पृष्ठ 111.
7. गोपाल रॉय,उपन्यास की पहचान गोदान : नया परिपेक्ष्य, पृष्ठ125,अनुपम प्रकाशन, पटना।
8. रामविलास शर्मा,हिंदी उपन्यास और समाज,लोकभारती प्रकाशन,

इलाहाबाद।

9. हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा- डॉ. रामदरश मिश्र,पृ. 80,86, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली।
10. अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृ. 127.
11. अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृ. 127.
12. अज्ञेय, शेखर: एक जीवनी, भाग 1, पृ. 81.
13. जॉं-पॉल सार्त्र, अस्तित्ववाद, पृ. 25 (Sartre, Jean-Paul. Existentialism Is a Humanism. 1946 लेक्चर विभिन्न अंग्रेजी अनुवाद.) https://www.marxists.org/reference/ archive/ sartre/works/exist/sartre.htm
14. डॉ. श्यामसुन्दर,अस्तित्वाद और साहित्य, पृ. 9,पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2004.
15. अज्ञेय,नदी के द्वीप,मयूर पेपरबैक्स, पृष्ठ 35,नई दिल्ली।
16. निर्मल वर्मा, एक चिथड़ा सुख,पृष्ठ 97 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,2024.
17. वहीं पृष्ठ 121.
18. वहीं पृष्ठ 136.
19. वहीं पृष्ठ 136.

****

केसीसी योजना (किसान क्रेडिट कार्ड योजना) में सहकारी बैंकों की भूमिका : देवास जिले के विशेष संदर्भ में

डॉ. जी एल खगोड़े* श्रीमती स्वाति राठौड़**

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) पीएम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस माधव आर्ट एंड कॉमर्स कॉलेज, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, पीएम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस माधव आर्ट एंड कॉमर्स कॉलेज, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारत एक कृषि प्रधान देश है। सभ्यता के प्रारंभ से ही कृषि कार्य भारतीय जनसंख्या की जीविका उपार्जन के लिए आय का महत्वपूर्ण स्त्रोत रहा है। भारतीय कृषि प्रणाली में कृषकों के लिए वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण एवं जटिल कार्य है। मुख्यत: छोटे एवं सीमांत कृषकों को कई बार कृषि संबंधी अपनी वित्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए गैर-संस्थागत ऋणप्रदान कर्ताओं तथा साहूकारों पर आश्रित होना एक मजबूरी है। साहूकारों द्वारा भी उच्च ब्याज दरों से किसने की मजबूरी का फायदा उठाकर उनका शोषण किया जाता रहा है। कई किसान साहकारों के ऋण एवं ब्याज के कर्ज तले दयनीय जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं, यहां तक की कई कृषकों द्वारा ऋणग्रस्तता के चलते आत्महत्या भी कर ली जाती है, इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 1998 में केसीसी योजना प्रारंभ की गई इस योजना का उद्देश्य कृषकों को कम ब्याज दरों पर आसान तरीके से ऋण उपलब्ध कराना था।

प्रस्तुत शोध आलेख में मध्य प्रदेश राज्य के देवास जिले में केसीसी योजना द्वारा कृषकों के ऋण वितरण में 'सहकारी बैंकों' की भूमिका का अध्ययन किया गया है। इस शोध आलेख में विश्लेषण किया गया है की केसीसी योजना के परिणाम स्वरुप किसानों की आय में सुधार हुआ है, उनकी ऋण शोधन क्षमता, जीवन स्तर, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कृषि उत्पादन क्षमता में योजना के परिणाम स्वरुप सुधार हुआ है। शोध के निष्कर्ष के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है की केसीसी योजना के सफल क्रियान्वयन में सहकारी बैंकों द्वारा कृषकों की ऋण उपलब्धता में सुगमता हुई है, जिससे उनके जीवन स्तर तथा उनकी आय में सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर हुए हैं।

शब्द कुंजी – केसीसी योजना, ब्याज, ऋण, ऋणदाता, सहकारी बैंक, फसल चक्र, आर्थिक स्थिति।

प्रस्तावना – भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण क्षेत्र के 70 प्रतिशत से अधिक आबादी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है तथा उनकी आजीविका मुख्य साधन कृषि ही है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में भी कृषि का अतुलनीय योगदान है। इसीलिए कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। देश की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिए तथा कृषकों को समय पर वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए ही सरकार द्वारा कई प्रयास किए गए हैं, जिनमें से एक महत्वपूर्ण प्रयास केसीसी योजना है। जिसके अंतर्गत किसानों को खेती से संबंधित महत्वपूर्ण कार्य के लिए तथा उनके वित्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना के फल स्वरुप किसानो की साहूकारों पर निर्भरता कम हुई है। विभिन्न वाणिज्य एवं सहकारी बैंक इस योजना के क्रियान्वयन में तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना की शुरुआत सम्पूर्ण भारत में तत्कालीन केंद्रीय मंत्री 'श्री यशवंत सिन्हा' दवारा वर्ष 1998-99 के बजट भाषण में इस योजना का परिचय देते हुए प्रारंभ की गई थी। किसान क्रेडिट कार्ड योजना नाबार्ड की एक मॉडल स्कीम के आधार पर तैयार की गई थी जो विभिन्न वाणिज्यक एवं सहकारी बैंकों के माध्यम से किसानों तक पहुंचाई गई। केसीसी योजना के अंतर्गत किसानों को बिना किसी गिरवी के 1.6 लाख तक तथा गिरवी रखकर रूपये 3 तक का ऋण 2 प्रतिशत ब्याज की छूट के साथ प्रदान किया जाता है। किसान लिए गए ऋण भुगतान अपनी सुविधाअनुसार फसल का कटाई एवं फसल के विक्रय के बाद भी कर सकते हैं, इस योजना में यह सुविधा होने के कारण किसानों में केसीसी योजना ज्यादा लोकप्रिय हुई है।

साहित्य समीक्षा

1. हिरवे चौधरी और वानखेड़ा (2016) में 'मध्य प्रदेश के खरगोन जिले के महेश्वर ब्लॉक में कृषि उत्पादकता में सुधार लाने के लिए केसीसी प्रणाली के प्रभाव का अध्ययन' किया है। प्राथमिक डाटा के संकलन के लिए बहुस्तरीय नामूनाकरण विधि का उपयोग किया गया है। जिसमें एक ब्लॉक के 10 गांव का चयन किया गया है। जिसमें प्रत्येक गांव के 15 उत्तरदाताओं को चुना गया है। डेटा का विश्लेषण प्रतिशत, आवृति, माध्य, मानक विचलन, टी-परीक्षण का उपयोग किया गया है। तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए क्षेत्र में तकनीकी अधिकारियों की नियुक्ति की सिफारिश की गई है।
2. कनेल (2016) में 'मध्य प्रदेश के धार जिले में कृषि अर्थव्यवस्था पर केसीसी योजना के प्रदर्शन और प्रभाव का अध्ययन' किया है। प्राथमिक डाटा संकलन में 80 लाभार्थी किसानों तथा 80 गैर लाभार्थी किसानों से प्रश्नावली अनुसूची के माध्यम से डाटा एकत्र किया गया है। चयनित बैंकों की वार्षिक रिपोर्ट से दवितीय डाटा एकत्र किया गया है। प्राथमिक डेटा

विश्लेषण के लिए औसत, प्रतिशत, सारणी तथा द्वितीय डाटा के विश्लेषण के लिए सीएजीआर तकनीक का उपयोग किया गया है। अध्ययन से पता चला कि 2003-04 से 2014-2015 की अवधि के लिए केसीसी की विकास दर 1.12%प्रतिशत रही हैं।

3. एंडोत्रा और गुप्ता (2015) ने कहा कि 'केसीसी प्रणाली का कृषि उत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव' पड़ा है। इस अध्ययन में शामिल की गई फसलों के उत्पादन में वृद्धि देखी गई है जो यह दर्शाता है कि कृषि उत्पादन बड़ा है। उत्पादन स्तर पर वृद्धि का मुख्य कारण केसीसी योजना के माध्यम से किसानों को प्रीमियम इनपुट के लिए वित्त पोषण उपलब्ध कराना है।

4. मीना (2013) ने 'राजस्थान के करौली क्षेत्र में किसानों की आय पर केसीसी के सूक्ष्म स्तर पर प्रबंधन और उसके प्रभाव का मूल्यांकन' किया। इस अध्ययन का उद्देश्य केसीसी के विकास का मूल्यांकन करना, ऋण प्राप्ति के पैटर्न का विश्लेषण करना और किसानों की आय पर केसीसी के प्रभाव का अध्ययन करना है। 2001-02 से 2010-11 के वार्षिक डेटा से डाटा एकत्रितकरण किया गया है। 60 केसीसी धारक तथा 60 गैर केसीसी धारक किसानों का चयन करके प्राथमिक सामंक को प्राप्त किया गया है। बैंकिंग क्षेत्र योजना का मुख्य आधार है, जिसमें वाणिज्य बैंक तथा सहकारी बैंकों की मुख्य भूमिका रही है।

5. शर्मा, चौधरी और स्वर्णकार (2013) ने 'मध्य प्रदेश के सीहोर जिले में किसान क्रेडिट कार्ड योजना के लाभार्थियों पर इसके प्रभाव का अध्ययन' किया है। प्राथमिक डाटा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के 3750 लाभार्थियों में से याद्दशिक रूप से चुने गए 120 लाभार्थियों से एकत्र किया गया है। डेटा विश्लेषण के लिए प्रतिशत परिवर्तन तथा आवृत्ति वितरण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है की केसीसी कार्डधारक किसान संभवत: अपने जमा राशि का उपयोग उच्च गुणवता वाले फसल इनपुट प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं। अध्ययन में शामिल अधिकांश किसान नियमित रूप से ऋण का भुगतान कर रहे हैं तथा लाभार्थियों का रवैया भी संतोषजनक पाया गया है।

केसीसी योजना का उद्देश्य एवं महत्व- 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना' एक वित्तीय योजना है जो किसानों को कृषि संबंधित कार्यों के लिए उचित समय पर कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराती है। इस योजना के फलस्वरूप कितने ही साहूकारों तथा गैर संस्थागत ऋणों पर निर्भरता कम हुई है तथा उनकी ऋण चुकाने की क्षमता में वृद्धि हुई।

उद्देश्य:

1. किसान क्रेडिट कार्ड योजना का प्रमुख उद्देश्य किसानों को सरल एवं त्वरित वित्त सुविधा उपलब्ध कराना है।
2. गैर संस्थागत ऋण तथा साहूकारों के उच्च ब्याज दरों से कृषक वर्ग के शोषण को रोकना है।
3. इस योजना का प्रमुख उद्देश्य किसानों को कषि संबंधी विभिन्न कार्य, मछली पालन, पशुपालन, डेयरी संबंधित कार्यों के लिए उचित समय पर ऋण उपलब्धता सुनिश्चित करना है।
4. सहकारिता एवं वाणिज्य बैंकों के माध्यम से सुगमता पूर्वक कृषकों तक वितीय सहायता उपलब्ध कराना।

महत्व:

1. किसान क्रेडिट कार्ड योजना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके जरिए किसान खाद बीज उर्वरक, कीटनाशक तथा नकदी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए आसानी से ऋण प्राप्त कर सकते हैं।
2. इस योजना के अंतर्गत किसानों को 2 प्रतिशत ब्याज सब्वेंशन तथा समय पर भुगतान करने पर प्रोत्साहन मिलता है जो किसी अन्य योजना में नहीं मिलता है, इसलिए यह योजना कृषक वर्ग में ज्यादा कारगर सिद्ध हुई है।
3. इस योजना के अंतर्गत रिवाल्विंग क्रेडिट सुविधा प्रदान की जाती है, यानी किसान अपनी फसल उत्पादन के पश्चात ऋण का भुगतान कर सकता है।
4. शोध क्षेत्र (देवास जिला) में यह देखा गया है कि इस योजना के परिणाम स्वरुप किसानों की आय स्थिर हुई है तथा उनकी साहूकारों पर निर्भरता कम हुई है।
5. कृषि उपकरण की खरीद को केसीसी योजना द्वारा संभव बनाया जा सका है।
6. लाभार्थी किसानों को इस योजना के अंतर्गत रूपये 50,000 तक का दुर्घटना बीमा मिलना योजना को ज्यादा महत्वपूर्ण बनाता है।

देवास जिले में किसान क्रेडिट कार्ड का प्रभाव - प्रस्तुत शोध से यह स्पष्ट हुआ है कि किसान क्रेडिट कार्ड योजना देवास जिले के संदर्भ में अत्यंत ही महत्वपूर्ण सिदथै हई है, क्योंकि इस योजना के फलस्वरूप कितने ही आय, उनका जीवन स्तर तथा उनकी ऋण शोधन क्षमता में उत्तरोतर वृद्धि हुई है। जिसे निम्न बिंदुओं से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. फसल उत्पादन में वृद्धि : किसान क्रेडिट कार्ड योजना लागू होने के बाद किसान आधुनिक तकनीकी तथा आधुनिक कृषि यंत्रों से परिचित हुए हैं, जिससे उनकी फसल का उत्पादन बड़ा है और फसल उत्पादन बढ़ाने के परिणाम स्वरूप उनके आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है तथा ऋणग्रस्तथा के चंगुल से बाहर निकलने में सफल रहे हैं।

2. ऋण शोधन क्षमता में वृद्धि : इस योजना का सबसे अहम बिंदु यह है कि इसमें ऋण लेने के पश्चात किसान अपनी फसल की कटाई तथा उसके विक्रय करने के बाद अपना ऋण का भुगतान कर सकता है जिससे किसानों को ऋण के दबाव से निजात मिली है तथा वह आसानी से फसल विक्रय के पश्चात अपने ऋण का भुगतान करके शासकीय योजना का लाभ लेने में सफल हुए हैं।

3. कृषकों की आय में सुधार : इस योजना के सफल क्रियान्वयन में वाणिज्यिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों के महत्वपूर्ण भूमिका रही है। केसीसी योजना में आसान शर्तों पर त्वरित ऋण प्राप्त होने से किसानों की आय तथा उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ है। शोध अध्ययन से यह जानकारी स्पष्ट हुई कि इस योजना के फलस्वरुप किसानों की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष आय में 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जिससे किसान अपने स्वास्थ्य, शिक्षा तथा बुनियादी सुविधाओं के साथ-साथ अपने बच्चों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर भी ध्यान केंद्रित कर पा रहा है।

केसीसी योजना के सफल क्रियान्वयन में सहकारी बैंक की भूमिका- देवास जिले में किसान क्रेडिट कार्ड योजना के क्रियान्वयन एवं प्रगति में सहकारी बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक दोनों की ही महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। जिले में योजना की बैंकवार प्रगति के रूप में जिला सहकारी केंद्रीय बैंक डीसीसीबी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि देवास जिले का अधिकांश भूभाग कृषि कार्य के रूप में प्रयुक्त होता है, तथा केसीसी योजना को गति प्रदान करने में सहकारी बैंक की अहम भूमिका रही है।

योजना को सफल बनाने में अन्य वाणिज्यिक बैंक जैसे बैंक आफ इंडिया का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है लेकिन डीसीसीबी की हिस्सेदारी सबसे बड़ी है।

जिले में केसीसी ऋण वितरण में जिला सहकारी केंद्रीय बैंक अग्रणी है वर्ष 2024-25 में किसान क्रेडिट कार्ड योजना के अंतर्गत 176009 किसानों को केसीसी ऋण जारी किए गए हैं। इसी के साथी सहकारी बैंक द्वारा लाभान्वित कृषिकों को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का लाभ भी प्रदान किया जा रहा है। देवास सहकारी बैंक किसानों को केसीसी के माध्यम से फसल ऋण, कोर बैंकिंग, ATM और RuPay KCC जैसी सुविधाए भी प्रदान करता है। वर्ष 2024-25 में सहकारी बैंक ने 11 करोड रुपए का लाभ अर्जित किया जो इस बैंक की वितीय मजबूती को दर्शाता है।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना 1998 शुरू की गई थी ताकि किसानों को बीज, कीटनाशक, उर्वरक तथा विभिन्न कृषि उपकरण खरीदी में मदद की जा सके। वर्ष 2004 में गैर कृषि गतिविधियों संबंधित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसे संशोधित भी किया गया। इस के साथ ही वर्ष 2020 में संशोधित किसान क्रेडिट कार्ड योजना की जरूरत को पूरा करने के लिए सिंगल विंडो के माध्यम से ऋण प्रदान करने का प्रयास किया गया, जिसमें अल्पावधि ऋण आवश्यकता, फसल कटाई के बाद का खर्च, कृषि उपज विपणन ऋण तथा कृषि संपत्तियों के रखरखाव के लिए कार्यशील पूंजी आदि सुविधाएं भी शामिल की गई।

तालिका - किसान क्रेडिट कार्ड योजना के तहत लाभार्थियों की संख्या

वर्ष	जारी किए गए कार्डस (लाख में)	स्वीकृत राशि (करोड़ में)
2019-20	109	36,350
2020-21	82	2,34,420
2021-22	75	3,19,751
2022-23	48	2,17,710
2023-24	31.40	6,11,431

नोट- वर्ष 2019-20 की राशि सिर्फ सहकारी बैंकों के आंकड़े हैं जिसमें अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के आंकड़े शामिल नहीं है क्योंकि उसे समय आंकड़ों का रखरखाव नहीं किया गया था। वर्ष 2022-23 का आंकड़ा सितंबर 2022 तक का है। वर्ष 2023-24 के आंकड़ों में पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन किसानों को भी शामिल किया गया है। वर्ष 2023-24 के आंकड़े 29 मार्च 2024 तक के हैं जो वित्तीय वर्ष 2023-24 के अंतिम चरण को दर्शाते हैं।

स्त्रोत: लोकसभा आतरंकित प्रश्न संख्या 1051, 13 दिसंबर 2022

किसानों का वर्गीकरण- भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार स्तंभ भारत का किसान ही है जिसका पूरा ध्यान रखना भारत के नागरिको तथा सरकार का दायित्व भी है। चुकी विश्व भर में भारत की पहचान एक समृद्ध कृषि प्रधान देश के रूप में की जाती है, दैनिक जीवन की भी बहुत सी आवश्यकता तथा खाद्य सामग्री के लिए हम प्राथमिक रूप से कृषि पर ही निर्भर है।

कृषकों के वर्गीकरण का आधार - भारत में क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के अनुपात के दृष्टिकोण से हम किसानों को समान रूप से नहीं देख सकते। समग्र विकास को देखते हुए भूमि की उपलब्धता के आधार पर कृषक वर्ग को भिन्न-भिन्न योजनाओं के माध्यम से विकास के क्रम में जोड़ा गया है। कृषकों कोलाभ पहुंचाने वाली विभिन्न योजनाओं को किसानों तक पहुंचने में भी भूमि का आधार ही महत्वपूर्ण रहता है। कृषि की नवीनतम कृषि जनगणना 2015-16 में भारत में किसानों का भूमि के आधार पर 5 आकार में वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण परिचालन जोत के आधार पर आधारित है जो नीतिगत योजनाओं के लिए उपयोगी है।

क्र.	किसानों का वर्ग	भूमिका हैक्टयर मे	एकड़ में
1	सीमांत	1 हैक्टयर से कम	2.47 एकड़
2	छोटा	1 से 2 हैक्टयर	2.47 से 4.94 एकड़
3	अर्ध मध्यम	2 से 4 हेक्टयर	4.94 से 9.88 एकड़
4	मध्यम	4 से 10 हैक्टयर	9.88से 24.71 एकड़
5	बड़ा	10 हैक्टयर से अधिक	24.71 एकड़

निष्कर्ष - प्रस्तुत शोध का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं कि किसान क्रेडिट कार्ड योजना के सफल क्रियान्वयन में देश में विद्यमान वाणिज्यिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। यह योजना न केवल किसानों को कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराती है बल्कि किसानों को गैर संस्थागत ऋण तथा साहूकारों के चंगुल से बचाने में भी सफल रहे हैं। इस योजना के लागू होने के पूर्व किसानों को गैर संस्थागत ऋण पर आश्रित रहना पड़ता था, जहां उच्च ब्याज दर से ब्याज देने के लिए किसान मजबूर रहते थे, किंतु इस योजना के लागू होने के पश्चात किसानों को ऋण उपलब्धता आसान हुई है। इस योजना में समय पर ऋण का भुगतान करने पर किसानों को छूट भी प्राप्त होती है इसलिए किसान लाभ प्राप्त करने के लिए ऋण चुकाने में भी जागरुक हुए हैं तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। इस योजना के फल स्वरुप ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के किसान कृषि की आधुनिक तकनीक से भी परिचित हुए हैं, परिणाम स्वरूप तकनीकी उन्नति को कृषि क्षेत्र में बढ़ावा मिला है। योजना के सफल क्रियान्वयन का यह प्रभाव हुआ है कि किसान पारंपरिक खेती के स्थान पर तकनीकी आधारित खेती करने लगे हैं जिससे उनका जीवन स्तर तथा आय में सुधार हुआ है।

हालांकि इस योजना में कुछ चुनौतियां भी है जिनमें सुधार की जरूरत आज भी विद्यमान है। वर्तमान में भी कई किसान इस योजना से आज भी अनभिज्ञ हैं और इसका लाभ लेने से वंचित है। प्रथम दृष्टियां देखा गया है कि बैंकिंग जटिल प्रणाली से भी किसान योजना का लाभ प्राप्त करने से वंचितरह रहे हैं, अगर इस योजना के नियम शर्ते क्रियान्वयन को और आसन तथा पारदर्शी बनाया जा सके तो और अधिक किसान इस योजना से लाभार्थी हो सकते हैं। किंतु अंततः या कहा जा सकता है कि सहकारी बैंकों तथा वाणिज्य बैंकों के सहयोग से किसान क्रेडिट कार्ड योजना अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में सफल रही है।

सुझाव एवं सिफारिश - चुकी किसान 'क्रेडिट कार्ड योजना' अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल रही है, तथा योजना के लाभार्थी किसानों का जीवन स्तर शिक्षा स्वास्थ्य तथा उनके उत्पादन क्षमता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। फिर भी इस योजना को और प्रभावशाली तथा सफल बनाने के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

1. सर्वप्रथम तो हम सुझाव देना चाहेंगे कि इस योजना में महिला उद्यमी/ महिला किसान तथा छोटे किसान को प्राथमिकता दी जानी चाहिए ताकि उनकी छोटी-छोटी वित आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

2. केसीसी योजना में ऋण सीमा को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि किसानों को अधिक मात्रा में वित्तीय सुरक्षा प्राप्त हो सके
3. कृषि संबंधी उपकरणों के लिए भी अतिरिक्त ऋण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि तकनीकी कृषि और आधुनिक कृषि से भी परिचित हो सके।
4. विभिन्न डिजिटल माध्यम, फ्लेक्स तथा विज्ञापनों के माध्यम से केसीसी योजना का प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए ताकि वंचित किस भी इस योजना का लाभ प्राप्त कर सकें।
5. जागरूकता रैलियो का आयोजन किया जाना चाहिए ताकि देश का प्रत्येक किसान वर्ग इस योजना का लाभ समय सीमा पर प्राप्त करके अपने जीवन स्तर तथा अपने बच्चों का भविष्य निर्माण अच्छे से कर सके।
6. किसानों को डिजिटल बैंकिंग का प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए तथा डाटा डिजिटाइजेशन एवं ऑनलाइन ऋण आवेदन प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि किसानों को ऋण प्राप्त करने के लिए बार-बार बैंकों के चक्कर काटने की समस्या समाप्त की जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कृषि मंत्रालय भारत सरकार (2020) 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना एक विस्तृत विश्लेषण' नई दिल्ली कृषि एवं सहकारिता विकास।
2. मध्य प्रदेश सहकारी बैंक (2022) 'जिला सहकारी बैंकों की भूमिका उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में' भोपाल मध्य प्रदेश सहकारी बैंक रिपोर्ट।
3. यादव एस (2021) 'मध्यप्रदेश में सहकारी बैंकों का विकास एवं भूमिका' भोपाल मध्यप्रदेश आर्थिक सर्वेक्षण।
4. भारतीय रिजर्व बैंक आरबीआई (2019) कृषि ऋण और किसान क्रेडिट कार्ड एक आर्थिक अध्ययन आरबीआई मुंबई प्रकाशन।
5. कृषि योजना समिति (2020) 'आरत में कृषि ऋण सुधार में किसान क्रेडिट कार्ड की भूमिका' नई दिल्ली नीति आयोग की रिपोर्ट।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अमृता मौर्या *

* 641, रेलवे कॉलोनी, झाँसी (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – किशोर अपराधियों के अपराध संबंधी समस्यायें केवल पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक समस्या ही नहीं वरन् वह कानूनी समस्या भी हैं। किशोरों में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से होते हैं। इस समय परिवार, समाज व विद्यालय से प्राप्त उपेक्षा, लाड़ प्यार की कमी, अत्यधिक कठोर अनुशासन, संसाधनों की कमी, उच्च महत्वाकांक्षाएँ और आर्थिक तंगी, माता पिता द्वारा उन पर निगरानी का अभाव या उनका अकेलापन, शारीरिक दोष व हीनभावना आदि के कारण किशोर गलत संगत में पड़ जाते हैं। नशे की लत व इन्टरनेट का दुरूपयोग करने से अपराधी बनने की संभावनाएँ और प्रबल हो जाती हैं। वे नशे की लत के चलते वे नशीले पदार्थों की खरीद फरोक्त व अवैध परिवहन करने लगते हैं। मारपीट, झगड़ा, हमला, संपत्ति की तोड़फोड़, सामग्री चोरी, वाहन चोरी करने लगते हैं। वे गिरोह बनाकर सार्वजनिक सम्पत्ति की हानि करने के साथ-साथ उपद्रव करने लगते हैं। आजकल साइबर अपराध बढ़ रहे हैं। फर्जी सोशल अकाउंट बनाना, हैकिंग, धोखाधड़ी, साइबर बुलिंग आदि की घटनायें बढ़ रही हैं। वे व्यक्तिगत या समूह में यौन अपराध करते हैं। सामूहिक अपराध, साथियों के दबाव में आने के कारण किये जाते हैं। किशोरों द्वारा किये गये अपराध अक्सर आवेश में आकर किये जाते हैं। उनके अपराधों में पूर्व नियोजन होने की संभावनाएँ कम होती हैं। अधिकतर परिस्थिति जन्य होते हैं। चूंकि किशोरों के अपराधी बनने में पारिवारिक वातावरण भी एक कारक माना गया है। पारिवरिक वातावरण कार्यशील और घेलू महिलाओं के परिवारों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। दोनों प्रकार की महिलाओं की कार्यशैली, चिंतन, समय व संसाधनों की उपलब्धता में भी भिन्नता पाई जाती है। इस कारण उनका अपने बच्चों का पालन पोषण का तरीका भी भिन्न-भिन्न होता है। इस कारण कार्यशील और घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति में भी भिन्नता हो सकती है। यह ज्ञात करने के लिये शोधार्थी ने अपने शोध का विषय- 'कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन' चुना है।

उद्देश्य :

1. कार्यशील माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति ज्ञात करना।
2. घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति ज्ञात करना।
3. कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति का स्तर ज्ञात करना।
5. कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति के अंतर की सार्थकता ज्ञात करना।

परिकल्पना – 'कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।'

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेश के ललितपुर शहर में स्थित राजकीय सम्प्रेषण गृह के 150 किशोरों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से किया गया है। तथ्यों के संकलन हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली उपयोग की गई। तथ्य संकलन के पूर्व प्रश्नावली की विश्वसनीयता एवं वैधता की जाँच की गई। संकलित तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया गया। परिणामों की सार्थकता ज्ञात करने हेतु टी-परीक्षण का उपयोग किया गया।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण

तालिका क्रमांक - 1: कार्यशील महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति

प्रकृति	अपराधी किशोरों की सहमति					
	सहमत		आंशिक सहमत		असहमत	
	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.
रेडलाइट एरिया में जाना पसंद है	20	25.00	09	11.25	51	63.75
अश्लील फिल्मों को देखकर यौन उत्तेजित होना	60	75.00	02	02.50	18	22.50
अश्लील फिल्मों की नकल उतारना	62	77.50	03	03.75	15	18.75
सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/वीडियो देखना	70	87.50	02	02.50	08	10.00

तालिका क्रमांक - 1 में कार्यशील माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति संबंधी सहमति/असहमति के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 20(25.0%) किशोर अपराधियों ने रेडलाईट एरिया में जाने की पसंदगी के लिए सहमति व्यक्त की है। 9(11.25%) ने आंशिक सहमति तथा 51(63.75%) ने असहमति व्यकक्त की है। अश्लील फिल्म देखकर यौन उत्तेजित होना प्रश्न के उत्तर में

60(75.0%) अपराधियों ने सहमति, 02(2.50%) ने आंशिक सहमति व 18(22.50%) ने असहमति व्यक्त की है। 62(77.50%) किशोर अपराधियों ने अश्लील फिल्मकों की नकल उतारने के संबंध में अपनी सहमति, 03(3.75%) ने आंशिक सहमति तथा 15(18.75%) ने असहमति व्यक्त की हे। 70(87.50%) किशोर अपराधियों ने सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/वीडियो देखने के संबंध अपनी सहमति व्यक्त की है। 2(2.50%) ने आंशिक सहमति तथा 8(10.0%) ने असहमति व्यक्त की है।

तालिका क्रमांक – 2: घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति

प्रकृति	अपराधी किशोरों की सहमति					
	सहमत		आंशिक सहमत		असहमत	
	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.
रेडलाइट एरिया में जाना पसंद है	25	35.71	03	4.28	42	60.00
अश्लील फिल्मों को देखकर यौन उत्तेजित होना	55	78.57	03	4.28	12	17.14
अश्लील फिल्मों की नकल उतारना	30	42.85	05	7.14	35	50.00
सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/ वीडियो देखना	62	88.57	01	1.42	07	10.00

तालिका क्रमांक – 2 में घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति संबंधी सहमति/असहमति के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। तालिका दर्शाती है कि 25(35.71%) अपराधियों ने रेडलाइट एरिया में जाना पसंद है उन्होंने प्रश्न के उत्तर में अपनी सहमति व्यक्त की है। 3(4.28%) ने आंशिक सहमति तथा 42(60.0%) ने असहमति व्यक्त की है। अश्लील फिल्में देखकर यौन उत्तेजित होता है प्रश्न के जबाव में 55(78.57%) अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है। 3(4.28%) ने आंशिक सहमति तथा 12(14.14%) ने असहमति व्यक्त की है। 30(42.85%) अपराधियों ने अश्लील फिल्मों की नकल उतारने के संबंध में सहमति दर्शाई है, 5(7.14%) ने आंशिक सहमति तथा 35(50.00%) ने असहमति दर्शाई है। सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/वीडियो देखने के संबंध में 62(88.57%) किशोर अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है। 1(1.42%) ने आंशिक सहमति तथा 7(10.0) ने असहमति व्यक्त की है।

तालिका क्रमांक–3 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक – 3 में कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति संबंधी सहमति/असहमति के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 20(13.33%) अपराधियों ने रेडलाइट एरिया में जाना पसंद है प्रश्न के उत्तर में अपनी सहमति व्यक्त की है। अश्लील फिल्में देखकर यौन उत्तेजित होने के संबंध में 60(40.0%) अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है। 62(41.33%) ने अश्लील फिल्में देखकर नकल उतारने के प्रति सहमति व्यक्त की है। सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/ वीडियो ढोने के लिए भी 70(46.66%) अपराधियों ने अपनी सहमति व्यक्त की है जबकि घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों में से 25(16.66%) ने रेडलाइट एरिया में जाना पसंद है की सहमति बताई। अश्लील फिल्मों को देखकर यौन उत्तेजित होने के संबंध में 55(36.66%) अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है। अश्लील फिल्मों की नकल उतारने के लिए 30(20.0%) ने सहमति बताई है। सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/वीडियो देखने के संबंध में 62(41.33%) किशोर अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है।

तालिका क्रमांक – 4 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक – 4 में अपराधी किशोरों की प्रकृति के स्तर के आंकड़े प्रदर्शित किये गये हैं। तालिका दर्शाती है कि 47(31.33%) अपराधी किशोरों की प्रकृति का स्तर उच्च पाया गया है क्योंकि उनकी सोच सकारात्मक थी। इनमें 23(15.33%) किशोर कार्यशील माताओं के तथा 24(16.0%) घरेलू माताओं के हैं। 07(4.66%) अपराधी किशोरों की प्रकृति का स्तर मध्यम पाया गया क्योंकि उनकी प्रकृति का स्तर अनिश्चित था जिसमें 04(2.66%) किशोर कार्यशील माताओं के तथा 03(2.0%) घरेलू माताओं के हैं। 96(64%) किशोर निम्न स्तर की प्रकृति के पाये गये क्योंकि उनकी सोच नकारात्मक थी इनमें 53(35.33%) किशोर कार्यशील माताओं के तथा 43(28.66%) किशोर घरेलू माताओं के हैं।

तालिका क्रमांक – 5 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक – 5 में कार्यशील एवं घरेलू माताओं के अपराधी किशारों के अपराध की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए निर्मित की शून्य परिकल्पना– कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा के सत्यापन हेतु प्रयुक्त टी–टेस्ट संबंधी आंकड़े प्रदर्शित किये गये हैं। तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कार्यशील माताओं के अपराधी किशोरों की प्रकृति का मध्यमान 2.38 है तथा घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों की प्रकृति का मध्यमान 2.27 हैं। टी–परीक्षण का परिगणित मूल्य 148 स्वतंत्र्यांश पर 0.6842 है जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है। इससे सिद्ध होता है कि कार्यशील माताओं एवं घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों की प्रकृति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। दोनों प्रकार की माताओं के अपराधी किशोरों के अपराध की प्रकृति लगभग मिलती जुलती पाई गई है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि किशोरों द्वारा किए गए अपराधों की प्रकृति पर माता के कार्यशील या घरेलू होने का प्रभाव नहीं पाया गया।

निष्कर्ष – कार्यशील एवं घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है अर्थात् माता की कार्यशीलता का उनके बच्चों के अपराध की प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

सीमाएँ – प्रस्तुत शोध अध्ययन में किशोर अपराधियों के अपराध की प्रकृति ज्ञात करने हेतु उनकी सहमति/असहमति उनके रेडलाइट एरिया में जाने, अश्लील फिल्म/फोटो/वीडियो देखने, उनकी नकल उतारने व उनका यौन उत्तेजना पर प्रभाव आदि का अध्ययन किया गया है। इसके अलावा चोरी, मारपीट, तोड़फोड, नशेबाजी, साइबर क्राइम संबंधी शोध कार्य नहीं किया गया है। इसलिए इनके संबंध में भविष्य में शोध कार्य किये जा सकते हैं।

सुझाव – किशोरावस्था में बच्चों की देखभाल उचित ढंग से करना केवल माता की ही जिम्मेदारी नहीं है। परिवार के अन्य सभी सदस्यों, पड़ौसियों, शिक्षकों व प्रशासन व्यवस्था सभी की जिम्मेदारी है। परिवार में उनकी गतिविधियों पर सभी को नजर रखना चाहिये उनकी समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनकर उसके समाधान करने चाहिये। जायज मांगों को तुरंत पूरा करना व

नाजायज मांगों के प्रति बचपन से ही सख्ती करनी चाहिये। उन्हें मारने पीटने की अपेक्षा समझाने का प्रयास करना चाहिये। बच्चों के सामने वह आदर्श स्वयं अपनायें जिसकी वे अपने बच्चों से आशा रखते हैं। बच्चों को भरपूर लाड़ प्यार दें किंतु उनकी गलतियों व अनुशासनहीनता पर नाराजगी भी व्यक्त जरूर करें। उन्हें सही व गलत कार्यों में अंतर समझायें, जिद्दी न बनने दें। बचपन से ही गुड और बैड टचिंग का मतलब भी समझायें। उन्हें स्वयं भी निर्णय लेने की क्षमता का विकास व अमल करना सिखायें। हमेशा दोस्तों के ऊपर निर्भर रहने की आदत न बनने दें। ऐसे बच्चों समूह के दबाव में जल्दी आते हैं। वे हमेशा अपने कार्यों व निर्णयों के लिये दोस्तों की मदद का इंतजार करते हैं जो उन्हें गुमराह कर सकते हैं। स्वयं की सोच व निर्णय पर विश्वास करना ही मानसिक स्वतंत्रता प्रदान करती है। इस बात को समझायें। पास पड़ौसियों से अच्छे संबंध रखें। उनके द्वारा यदि आपके बच्चे की शिकायत आती है तो उसे अनदेखा न करें। प्रशासन को भी किशोरावस्था के बच्चों पर नजर रखनी चाहिये। सार्वजनिक स्थलों के साथ-साथ सूनसान इलाकों में भी निगरानी करते रहना चाहिये। किसी भी आशंका के चलते समाज के प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि वह पुलिस को जानकारी दें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. https://him.wikipedia.org>wiki
2. https://www.myupchar.com
3. https://www.penalreform.org
4. https://www.cdpp.co.in

तालिका क्रमांक-3: कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति की तुलनात्मक तालिका

कारण	N	कार्यशील माताओं के किशोर						घरेलू माताओं के किशोर					
		सहमत		आंशिक सहमत		असहमत		सहमत		आंशिक सहमत		असहमत	
		सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.
रेडलाइट एरिया में जाना पसंद है	150	20	13.33	09	6.00	51	34.00	25	16.66	03	2.0	42	28.00
अश्लील फिल्मों को देखकर यौन उत्तेजित होना	150	60	40.00	02	1.33	18	12.00	55	36.66	03	2.0	12	8.00
अश्लील फिल्मों की नकल उतारना	150	62	41.33	03	2.0	15	10.00	30	20.00	05	3.33	35	23.33
सोशल मीडिया पर अश्लील फोटो/वीडियो देखना	150	70	46.66	02	1.33	08	5.33	62	41.33	01	0.66	07	4.66

तालिका क्रमांक - 4: कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति का स्तर

किशोर	उच्च		मध्यम		निम्न		योग	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
कार्यशील माताओं के किशोर	23	15.33	04	2.66	53	35.33	80	53.33
घरेलू माताओं के किशोर	24	16.00	03	2.00	43	28.66	70	46.66
योग	47	31.33	07	4.66	96	64	150	100.0

तालिका क्रमांक - 5: कार्यशील एवं घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों के अपराध की प्रकृति के मध्यमान, मानक विचलन एवं टी परीक्षण तालिका

विकल्प	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (SD)	स्वतंत्र्यांश	'टी' परीक्षण का मूल्य	सार्थकता स्तर
कार्यशील माताओं के अपराधी किशोर(N=80)	2.38	0.91	148	0.6842	p>0.05
घरेलू माताओं के अपराधी किशोर(N=70)	2.27	0.95			

*0.05 स्तर पर सार्थक

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अमृता मौर्या *

* 641, रेलवे कॉलोनी, झाँसी (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – 'भारत में राष्ट्रीय रिकॉर्ड ब्यूरो (छउठइ) के अनुसार किशोरों (18 वर्ष से कम) द्वारा किये गये अपराधों में वृद्धि हुई है। वर्ष 2024 में कुल 34,878 मामले दर्ज किये गये थे और 42,633 किशोरों को पकड़ा गया था।'[1]

पकड़े गये किशोरों में अधिकांश (लगभग 77.7%) किशोर 16-18 वर्ष की आयु के होते हैं।'[2]

'एनसीआरबी (NCRB) की रिपोर्ट के अनुसार किशोर अपराधों के मामलों में लगभग 11.2% की बढ़ोत्तरी हुई है।'[3]

'भारत में किशोरों द्वारा किए गए अपराधों की संख्या देश के कुल दर्ज अपराधों का लगभग 1 से 1.2% ही है।'[4]

NCRB के आंकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में 1,175 मामले 2024 में किशोर अपराध के दर्ज किये गये थे जबकि 2023 में इन मामलों की संख्या 1575 थी। इस प्रकार किशोर अपराध के मामले 2023 की तुलना में 25.4% कम दर्ज हुए। राज्य में किशोर अपराध की दर 1.4 प्रति लाख आबादी है जो राष्ट्रीय औसत से कम है।

'युवाओं के बीच आम अपराधों में स्कूल से अनुपस्थित रहना, चोरी, डकैती और अन्य संपत्ति संबंधी अपराध शामिल हैं। शोध से पता चलता है कि गरीबी, माता पिता की खराब देखरेख, स्कूल छोड़ना और साथियों का दबाव जैसे कारक आपराधिक व्यवहार में योगदान करते हैं।'[5]

किशोर अपराधियों को जो 18 वर्ष से कम आयु के होते हैं जेल में रखने के बजाय किशोर न्याय बोर्ड (JJB) के समक्ष पेश किया जाता है। उनके सुधार और पुर्न:वास हेतु राज्य में बाल कल्याण गृह स्थापित किये गये हैं। यहाँ बच्चों को शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और मनोवैज्ञानिक परामर्श दिया जाता है ताकि उन्हें मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। किशोरों को चोरी, सार्वजनिक उपद्रव जैसे छोटे मोटे अपराधों के लिए अधिकतम 3 साल की सजा दी जा सकती है। गंभीर चोट पहुँचाने, धोखाधड़ी करने जैसे गंभीर अपराध करने पर 3-7 साल की सजा दी जा सकती है तथा हत्या व बलात्कार जैसे जघन्य अपराध करने पर 7 साल या उससे भी अधिक सजा दी जा सकती है।

सामान्यत: किशोरों द्वारा किये जाने वाले अपराधों को चार प्रकारों में बांटा गया है- व्यक्तिगत, समूह समर्थित, संगठित और परिस्थिति जन्य अपराध। व्यक्तिगत अपराध का तात्पर्य उस स्थिति से है जब कोई बच्चा पारिवारिक समस्याओं के कारण अपराध करता है। समूह समर्थित अपराध तब होता है जब कई बच्चे एक साथ मिलकर अपने पड़ौस में अपराध करते हैं।

संगठित अपराध आपराधिक गिरोहों द्वारा सुनियोजित तरीके से किया जाता है। उदा. मानव तस्करी, हथियारों की तस्करी और अवैध मादक पदार्थों का व्यापार आदि।'[6]

प्रस्तुत शोध अध्ययन में मैंने कार्यशील व घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के स्वरूपों को ज्ञात करने के लिये अपने शोध का विषय- 'कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन' चुना है।

उद्देश्य :

1. कार्यशील माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों के स्वरूप का अध्ययन करना।
2. घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों के स्वरूप का अध्ययन करना।
3. कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना – 'कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों के स्वरूप में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।'

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में कार्यशील एवं घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों के स्वरूप का अध्ययन करने के लिए ललितपुर शहर (उत्तरप्रदेश) के राजकीय सम्प्रेक्षण गृह (किशोर) से 80 कामकाजी व 70 घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से किया गया है। तथ्यों के संकलन हेतु प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। किशोर अपराधियों से साक्षात्कार भी किया गया है। तथ्यों का संकलन करने के उपरांत उनका वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण के दौरान पूर्ण तटस्थता के साथ शोधकार्य सम्पन्न किया है। कार्यशील एवं घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूप के अंतर की सार्थकता ज्ञात करने हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई है जिसका सत्यापन टी-टेस्ट के द्वारा करने के उपरांत ही निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयन

तालिका क्रमांक – 1: कार्यशील माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों का स्वरूप

स्वरूप	N	अपराधी किशोरों की सहमति					
		सहमत		आंशिक सहमत		असहमत	
		सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.
बसों, ट्रनों में छेड़खानी करना	80	38	47.50	05	6.25	37	46.25
पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करना	80	43	55.75	07	8.75	30	37.50
भीड़ में पीड़िता के अंगों को स्पर्श करना	80	30	37.50	08	10.00	42	52.50
पीड़िता से जबरदस्ती संभोग करना	80	30	37.50	10	12.50	40	50.00

तालिका क्रमांक – 1 में कार्यशील महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूप संबंधी सममति/असहमति के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। तालिका दर्शाती है कि 38(47.50%) किशोर अपराधियों ने बसों, ट्रनों में छेड़खानी करना स्वीकार किया है। 05(6.25%) ने बसों व ट्रेनों में छेड़खानी के संबंध में आंशिक सहमति व्यक्त की है। 37(46.25%) ने बसों व ट्रेनों में छेड़खानी करना स्वीकार नहीं किया है।

पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करने के संबंध में 43(53.75%) किशोर अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है। 07(8.75%) ने आंशिक सहमति दी है तथा 30(37.50%) किशोर अपराधियों ने पीड़िता के प्रति गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करने के लिए असहमति व्यक्त की है।

भीड़ में पीड़िता के संवेदनशील अंगों को किशोर अपराधियों द्वारा स्पर्श करने के संबंध में 30(37.50%) ने सहमति व्यक्त की है जबकि 8(10.0%) ने आंशिक सहमति व्यक्त की है। 42(52.50%) ने पीड़िता के संवेदनशील अंगों को स्पर्श करना अस्वीकार किया है।

तालिका दर्शाती है कि 30(37.50%) किशोर अपराधियों ने पीड़िता से जबरदस्ती संभोग करने के संबंध में सहमति व्यक्त की है। 10(12.50%) ने आंशिक सहमति व्यक्त की है जबकि 40(50.0%) ने असहमति व्यक्त की है।

तालिका क्रमांक – 2: घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों का स्वरूप

स्वरूप	N	अपराधी किशोरों की सहमति					
		सहमत		आंशिक सहमत		असहमत	
		सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.
बसों, ट्रनों में छेड़खानी करना	70	30	42.85	05	7.14	35	50.00
पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करना	70	39	55.71	03	4.28	28	40.00
भीड़ में पीड़िता के अंगों को स्पर्श करना	70	39	55.71	04	5.71	27	38.57
पीड़िता से जबरदस्ती संभोग करना	70	40	57.14	08	11.42	22	31.42

तालिका क्रमांक – 2 में घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूपों को प्रदर्शित किया गया है। तालिका दर्शाती है कि 30(42.85%) किशोर अपराधियों ने बसों, ट्रेनों में छेड़खानी करने के संबंध में सहमति दी है, 5(7.14%) ने आंशिक सहमति दी है जबकि 35(50.0%) ने असहमति व्यक्त की है।

पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करने के बारे में 39(55.71%) ने सहमति दी है, 3(4.28%) ने आंशिक सहमति दी है जबकि 28(40.0%) ने असहमति व्यक्त की है।

भीड़ में पीड़िता के संवेदनशील अंगों को स्पर्श करने संबंधी प्रश्न के उत्तर में 39(55.71%) किशोर अपराधियों ने सहमति व्यक्त की है। 4(5.71%) ने आंशिक सहमति दी है, जबकि 27(38.57%) ने असहमति व्यक्त की है।

पीड़िता के साथ जबरदस्ती संभोग करने के संबंध में 40(57.14%) ने सहमति व्यक्त की है। 8(11.42%) ने आंशिक सहमति दी है जबकि 22(31.42%) ने असहमति व्यक्त की है।

तालिका क्रमांक–3 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक – 3 में कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूपों के तुलनात्मक आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं। तालिका दर्शाती है कि कार्यशील माताओं के किशोर अपराधियों में 38(25.33%) ने बसों, ट्रेनों में छेड़खानी करने संबंधी, 43(28.66%) ने पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करने के संबंध में, 30(20.0%) ने भीड़ में पीड़िता के अंगों को स्पर्श करने के संबंध में तथा 30(20.0%) ने पीड़िता से जबरदस्ती संभोग करने संबंधी प्रश्नों के उत्तर में सहमति प्रदान की है। घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों ने बसों, ट्रेनों में छेड़खानी करने के संबंध में 30(20.20%), पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करने के संबंध में 43(20.0%) तथा पीड़िता से जबरदस्ती संभोग करने के संबंध में 30(20.0%) ने सहमति व्यक्त की है।

सहमति व्यक्त करने वाले किशोर अपराधियों की तुलनात्मक विवेचना करने से स्पष्ट होता है कि कार्यशील महिलाओं के किशोरों का प्रतिशत बसों, ट्रेनों में छेड़खानी करने तथा पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करने में घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों की तुलना में मामूली अधिक है। भीड़ में पीड़िता के अंगों को स्पर्श करने तथा पीड़िता के साथ जबरदस्ती संभोग करने संबंधी प्रश्नों के उत्तर में सहमति व्यक्त करने वाले किशोर अपराधियों में घरेलू महिलाओं के किशोरों की संख्या कार्यशील महिलाओं के किशोरों की तुलना में मामूली अधिक है।

तालिका क्रमांक – 4 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक – 4 में अपराधी किशोरों के अपराध के स्वरूप के स्तर के आंकड़े प्रदर्शित किये गये हैं। तालिका दर्शाती है कि 65(43.33%) अपराधी किशोरों के स्वरूप का स्तर उच्च पाया गया है क्योंकि उनकी सोच सकारात्मक थी इनमें 37(24.66%) किशोर कार्यशील माताओं के तथा 28(18.66%) घरेलू माताओं के हैं। 13(08.66%) अपराधी किशोरों के स्वरूप का स्तर मध्यम पाया गया क्योंकि उनका स्वरूप का स्तर अनिश्चित था जिसमें 08(05.33%) किशोर कार्यशील माताओं के तथा 05(03.33%) किशोर घरेलू माताओं के हैं। 72(48.00%) किशोरों का निम्न स्तर का स्वरूप पाया गया क्योंकि उनकी सोच नकारात्मक थी इनमें 35(23.33%) किशोर कार्यशील माताओं के तथा 37(24.66%) किशोर घरेलू माताओं के हैं।

तालिका क्रमांक – 5 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

तालिका क्रमांक – 5 में कार्यशील एवं घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों के अपराध के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए निर्मित की गई शून्य परिकल्पना – 'कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूप में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' के सत्यापन हेतु प्रयुक्त टी–टेस्ट संबंधी आंकड़े प्रदर्शित किये गये हैं। तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कार्यशील माताओं के अपराधी किशोरों के स्वरूप का मध्यमान 1.96 है तथा घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों के स्वरूप का मध्यमान 2.13 है। टी–परीक्षण का परिगणित मूल्य 148 स्वतन्त्र्यांश पर 1.0557 है जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है। इससे सिद्ध होता है कि कार्यशील माताओं एवं घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों के अपराध के स्वरूप में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। दोनों प्रकार की माताओं के अपराधी किशोरों के अपराध के स्वरूप लगभग मिलते–जुलते पाए गए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि किशोरों द्वारा किए गए अपराधों के स्वरूपों पर माता के कार्यशील या घरेलू होने का प्रभाव नहीं पाया गया।

निष्कर्ष – कार्यशील एवं घरेलू महिलाओं के किशोर अपराधियों के अपराध के स्वरूपों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। दोनों के किशोरों के अपराधों का स्वरूप लगभग मिलता–जुलता ही पाया गया है।

सीमाएँ एवं सुझाव:

1. प्रसस्तुत शोध ललितपुर शहर तक सीमित है इसे व्यापक स्तर पर किया जा सकता है।
2. इस अध्ययन में किशोरों के व्यक्तिगत अपराधों का अध्ययन किया गया है। गिरोहों द्वारा किये गये अपराधों का अध्ययन किया जा सकता है।
3. किशोर अपराधियों की मानसिकता पर शोध अध्ययन किया जा सकता है।
4. किशोर अपराधियों के पर्यावरण का अध्ययन नहीं किया गया है। उनके पर्यावरण का अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1-4. Centre for Development
5. https://en.wikipedia.org
6. https://www.alatsaslawfirm.com
7. https://uppolice.gov.in

तालिका क्रमांक–3: कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों की प्रकृति की तुलनात्मक तालिका

स्वरूप	N	कार्यशील माताओं के अपराधी किशोर						घरेलू माताओं अपराधी के किशोर					
		सहमत		आंशिक सहमत		असहमत		सहमत आंशिक		सहमत		असहमत	
		सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.
बसों, ट्रनों में छेड़खानी करना	150	38	25.33	05	3.33	37	24.66	30	20.00	05	3.33	35	23.33
पीड़िता के लिये गंदे और भद्दे शब्दों का उपयोग करना	150	43	28.66	07	4.66	30	20.00	39	26.00	03	2.00	28	18.66
भीड़ में पीड़िता के अंगों को स्पर्श करना	150	30	20.00	08	5.33	42	28.00	39	26.00	04	2.66	27	18.00
पीड़िता से जबरदस्ती संभोग करना	150	30	20.00	10	6.66	40	26.66	40	26.66	08	5.33	22	14.66

तालिका क्रमांक – 4: कार्यशील एवं घरेलू माताओं के किशोर अपराधियों के अपराधों के स्वरूप का स्तर

किशोर	उच्च		मध्यम		निम्न		योग	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
कार्यशील माताओं के किशोर	37	24.66	08	05.33	35	23.33	80	53.33
घरेलू माताओं के किशोर	28	18.66	05	03.33	37	24.66	70	46.66
योग	65	43.33	13	08.66	72	48.00	150	100.0

तालिका क्रमांक – 5 : कार्यशील एवं घरेलू माताओं के अपराधी किशोरों के अपराध के स्वरुप के मध्यमान, मानक विचलन एवं टी परीक्षण तालिका

विकल्प	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (SD)	स्वतंत्र्यांश	'टी' परीक्षण का मूल्य	सार्थकता स्तर
कार्यशील माताओं के अपराधी किशोर(N=80)	1.96	0.96	148	1.0557	p>0.05
घरेलू माताओं के अपराधी किशोर(N=70)	2.13	0.95			

*0.05 स्तर पर सार्थक

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचनात्मक दृष्टि में आधुनिक कविता

सारिका पाण्डेय*

* शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, भारत

शोध सारांश – यह ज्ञातव्य है की हिंदी समीक्षा के परिदृश्य में रामस्वरूप चतुर्वेदी का आगमन 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1931-2003) के बीच हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी समीक्षा के परिदृश्य में रामस्वरूप चतुर्वेदी के हस्तक्षेप का अत्यंत शुभ प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन्होंने अपनी व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक समीक्षा पद्धतियों द्वारा एक संतुलित तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्थापना की है। रामस्वरूप चतुर्वेदी सही मायने में साहित्यालोचन की इस श्रेष्ठ परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, जहां केन्द में कृति है। इसी कृति की पुनर्रचना को वे आलोचना मानते हैं। अपने इन्हीं आलोचनात्मक प्रतिमानों के प्रकाश में आलोचक ने आधुनिक हिंदी कविता का तार्किक मूल्यांकन किया है। इनसे पूर्व के आलोचकों ने शास्त्रीयवाद, मार्क्सवाद, रसवाद आदि सिद्धांतों के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन किया है। चतुर्वेदी जी ने भाषा की सृजनात्मकता को आधार बनाकर समीक्षाकर्म किया। साहित्य की आधुनिकता को वे पश्चिम से आयातित नहीं मानते बल्कि मध्यकालीन विसंगतियों- विद्रूपताओं से मुक्ति को ही वे आधुनिकता मानते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी की काव्यालोचना का वह पक्ष जो उन्हें अन्य समीक्षकों से भिन्न बनाता है वह है उनकी भाषिक सृजनात्मकता की तरफ ध्यान। भाषा तथा शैलीगत बारीकियों पर अत्यधिक ध्यान के कारण इनकी आलोचना पर 'रूपवादी सौंदर्यशास्त्र' की अतिशयता का आक्षेप लगता रहा है, परन्तु इनकी काव्यालोचना में सामाजिक तथा भाषिक दोनों पक्षों के प्रति एकसमान निकटता है। कुछ सीमाओं के बावजूद भी एक काव्यालोचक के रूप में इनकी सर्जनात्मक आलोचना यह सीख देती है कि -बिना पूर्वाग्रह की मुक्ति के आलोचना पुनर्सृजन तो दूर ढंग से सृजन भी नहीं रहती है। वह केवल पिष्टपेषण मात्र होती है। प्रस्तुत आलेख में आलोचक द्वारा स्थापित इन्हीं काव्यालोचना के मानदंडों पर विचार किया गया है कि क्या स्वयं आलोचक की काव्यालोचना इन मानदंडों पर खरी उतरती है अथवा नहीं।

शब्द कुंजी –सृजनात्मक आलोचना, काव्यभाषा, अर्थ-संधान, नवजागरण, स्वच्छंदतावाद, असंपृक्त, क्लासिक तथा रोमांटिक वृत्ति,द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, साठोत्तरी कविता, अकविता।

प्रस्तावना – काव्यालोचना के प्रयोजन से पहले काव्य की प्रयोजनीयता को समझना आवश्यक होता है, स्वस्थ मनुष्यता के विकास हेतु कविता अत्यंत प्रयोजनीय है। काव्य के प्रयोजन को आलोचक आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो- 'मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है की संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पायी जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा।3मनुष्य को समय-समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य जाति के साथ लगी चली आ रही है और चली चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।' रामस्वरूप चतुर्वेदी जी की आधुनिक कविता यात्रा पर लिखा यह आलेख आलोचक द्वारा स्थापित काव्य के आलोचनात्मक प्रतिमानों तथा व्याख्याओं को गहराई से प्रस्तुत करने का एक प्रयास मात्र है। इस काव्य यात्रा ने उनको भाषा संवेदन के प्रति जो पारखी और पैनी दृष्टि प्रदान की वह उनकी सृजनात्मक आलोचना के रूप में हम पाठकों के मध्य है। काव्यभाषा की सृजनात्मकता तथा संवेदना को केन्द्र बिन्दु बनाकर आलोचना कर्म में प्रवृत्त आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी,'आधुनिक कविता यात्रा के यायावर' के रूप में स्मरणीय हैं। काव्य संबंधी उनकी समीक्षा पढ़ने के क्रम में उनकी पुस्तकों के 'आमुख पृष्ठ' की चर्चा न करना, उनके आलोचक होने की भूमिका को ठीक-ठीक स्वरूप में न जानने जैसा होगा। चर्चा 'आधुनिक कविता- यात्रा' , 'नयी कविताएं एक साक्ष्य', की हो अथवा 'भाषा संवेदना और सर्जन', 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', की हो उनके आमुख में लिखे वाक्य, आलोचक के आलोचना कर्म के प्रति पाठक को आश्वस्त कर उन्हें यह भरोसा दिलाते हैं कि –

'भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे / प्रनवउं सबहिं कपट सब त्यागे।'

विश्वसनीयता, विनम्रता ये कुछ ऐसे गुण हैं जो आलोचक को आलोचक बने रहने देते हैं, इनकी अनुपस्थिति में सारगर्भित तथा सार्थक आलोचना संभव नहीं। 'नयी कविताएं एक साक्ष्य' के आमुख में आलोचक पाठकों से आत्मविश्वास भाव में कह रहा है 'साक्ष्य आरम्भ करने के पूर्व समीक्षक और क्या कह सकता है सिवा इसके कि जितना कुछ वह जानता है अपने विश्वास के अनुसार सच कहेगा और यों साहित्यिक सच की व्याख्या के विकास में सहयोग देगा।' उनके आलोचना कर्म में एकदम बुनियादी प्रश्न – कविता क्या है, कविता की भाषा कैसी होनी चाहिए, कवि की सृजनात्मक पुनर्रचना तथा आलोचना कर्म की कठिनाई, समकालीन रचना की समस्या, संभावना तक का पूरा जीवंत दृश्य उपस्थित है। स्वयं आलोचक के ही शब्दों में कहें – 'कविता साहित्य चिंतन के केन्द्र में है तो इसलिए कि कविता की भाषा सबसे अधिक सर्जनात्मक होती है, और इसी माने में कविता सबसे अधिक साहित्य है।' चूंकि आलोचक की अपनी एक सृजनात्मक भाषा तथा पद्धति होती है, अपने इन्हीं उपकरणों के सहारे उसे पूर्व में हुई विविध स्तरीय अनुभव की पुनर्रचना में अर्थ-संधान करना होता है। इस प्रकिया में आलोचक को

विशेष रूप से सचेत रहना चाहिए की कहीं रचना के समानांतर एक प्रतिरचना का संसार तो नहीं खड़ा हो रहा अथवा विश्लेषण या वर्णन के अतिरेक से रचना / पुनर्रचना की समग्रता तो नहीं नष्ट हो रही। यह सिद्धान्त स्वयं चतुर्वेदी जी के आलोचना कर्म पर लागू करें तो पाते हैं कि – बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ उनके यहां भारतेंदु युग से लेकर नयी कविता तक के विकास क्रम को रेखांकित किया गया है। प्रत्येक काल की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती प्रवृत्तियों, परिवर्तनों पर इनकी पैनी दृष्टि है।

आधुनिक काल का प्रथम चरण जिसमे लिखी गयी रचनाओं पर आलोचकों ने 'साम्प्रदायिकता का स्वर' रेखांकित करने का आरोप लगाया है। चतुर्वेदी जी भारतेंदु के 'बलिया व्याख्यान' से लेकर निराला (तुलसीदास) तक छानबीन कर डालते हैं और पाते हैं कि– 'इससे बड़ी प्रगतिशील और व्यावहारिक दृष्टि आज भी संभव नहीं कि हिन्दू और मुसलमान के हित भारतवर्ष में एक दूसरे से जुड़े हुए हैंय और इसलिए उनके कार्यक्रम संयुक्त होने चाहिए।' चतुर्वेदी जी गहरे आत्मविश्वास से कहते हैं आधुनिक काल की शुरुआत से ही देशप्रेम का मंत्र जपने वाले हिंदी लेखक उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा के शिकार नहीं बल्कि देश की वहां एक 'धर्मनिरपेक्ष' परिकल्पना की गयी है। इस युग की काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा अधिक तथा खड़ीबोली अपने शुरूआती चरण के साथ मिलते हैं। बच्चन सिंह ने अपने इतिहास ग्रंथ में बहुत स्पष्ट तरीके से भारतेन्दु युगीन काव्यभाषा पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं कि – 'काव्य की एक लंबी परंपरा जो ब्रजभाषा में उपलब्ध थी उसे सहसा छोड़ा नहीं जा सकता था।3ब्रजभाषा के कवियों में दो तरह के लोग सम्मिलित थे – शुद्ध रीतिवादी और अविशुद्ध रीतिवादी कवि।' साथ ही कवियों की सीमा दिखाते हुए इन्होंने यह भी कहा कि – 'विशुद्ध रीतिवादी कवि नवजागरण काल में भी रीतिकाव्य लिख रहे थे, वे कालिक चेतना से सर्वथा असंपृक्त थे।'

बात करें द्विवेदी युग की तो उसमें भी लेखकों के बौद्धिक विकास में युगीन पत्र – पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पत्रकारिता ही उनकी पाठशाला हुआ करती थी। जहां 'भारतेन्दु मंडल' के रचनाकारों का स्वभाव विनोदी था वहां 'द्विवेदी मंडल' में कड़े नियम अनुशासन की प्रधानता, फिर तो ये प्रवृत्तियां आवश्यक रूप से रचनाओं में भी परिलक्षित होनी ही थीं। द्विवेदी युग में काव्य प्रवृत्तियां थोड़ी भिन्न सी हो गयी। द्विवेदी युग में काव्य का विषय ज्ञान – विज्ञान, पौराणिक आख्यान बनने लगा। यहां पर काव्य, कथा, उपन्यास पर विशेष ध्यान दिया गया। चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'पर जीवन की पाठशाला का सतत् विद्यार्थी रहने के लिए वह पत्रकारिता का साथ नहीं छोड़ता।' भारतेन्दु युग में जो समस्यापूर्ति ब्रजभाषा में थी उसकी भाषा यहां खड़ीबोली हो गई पर प्रवृत्ति वही रही जिसे लेखक, कविसम्मेलनों में सुनाते थे। चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'आरंभिक खड़ीबोली काव्य को प्रचारित – प्रसारित करने में इन समस्यापूर्ति सम्मेलनों का विशेष योगदान रहा है।' इस युग में साहित्य में दो धाराएं प्रचलित रहीं – एक धारा ने 'क्लासिक वृत्ति' को तथा दूसरी काव्य धारा ने 'रोमांटिक वृत्ति' को काव्य रचना का आधार बनाया। पहली धारा के प्रतिनिधि कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध हुए तथा दूसरी धारा के श्रीधर पाठक। भारतेन्दु युग की द्वैत काव्यभाषा के बाद द्विवेदी युग की काव्यभाषा पर चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'यह ठीक है कि 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से खड़ीबोली को कविता और गद्य में समभाव से प्रतिष्ठित करने का ऐतिहासिक श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है, पर रचनात्मक स्तर पर इस समस्या से पहले श्रीधर पाठक जूझे।' इस युग की रचनाओं में भाषा का अनुशासन है तो स्वच्छंदतावाद की सहजता भी, प्रकृति के चित्रण के साथ जन–जीवन का भी चित्रण है। खड़ीबोली हिंदी का पहला महाकाव्य हरिऔध द्वारा 1914 में इसी युग में रचा गया। इस युग की एक विशेष प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'आधुनिक काल में मनुष्य ही सम्पूर्ण रचना और चिंतन के केंद्र में है, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं।' इस प्रवृत्ति विशेष को आलोचक ने इस युग के बड़े कवि हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में देखा। खड़ीबोली कविता के साथ ब्रजभाषा काव्य की भी एक धारा यहां विद्यमान थी जिसके प्रतिनिधि 'जगन्नाथ दास रत्नाकर' थे। आलोचक को इनकी काव्य कृतियों में आधुनिक विचार तो न के बराबर मिलता है परन्तु परंपरा से लिखी जा रही ब्रजभाषा काव्य के विधान में एक नयापन जरूर दिखाई देता है। द्विवेदी युग में बहुत कुछ तो अच्छा हुआ, जैसे काव्यभाषा का परिष्कार, रीतिवादी काव्य का विरोध, उद्देश्यपूर्ण काव्य लेखन, कविता का विषय तत्कालीन ज्ञान –विज्ञान को बनाना परन्तु उनकी कुछ सीमाएं भी थीं जिसे आलोचक नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में कहें तो – 'द्विवेदी युग अपनी नवीनता के कारण सम्मानित हुआ। नवीन युग का उत्साह नवीन कविता में अवश्य देखा गयाय पर जीवन के अंतरंग को स्पर्श करने वाली वास्तविक काव्यसृष्टि कम ही हो सकी।'

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने छायावाद का 'शक्तिकाव्य' के रूप मे क्रांतिकारी पुनर्मूल्यांकन किया है। हिंदी साहित्य के छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा इन कवि चतुष्टय की प्रतिष्ठा स्वीकार की जाती रही है। इस युग से पूर्व के युग में काव्य अनुशासन की ऐसी लहर उठी थी कि वे श्रृंगार के प्राचीन कवि तथा ग्रंथ दोनों से ही बचते दिखलायी पड़ते हैं। परिणामस्वरूप एक बनावटी उपदेश कविताओं में द्रष्टव्य होता है। नंद दुलारे वाजपेयी इसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करके लिखते हैं – 'द्विवेदी युग के साहित्यिकों को श्रृंगार के प्रति शंका रहती थी। उस समय की यत्किंचित् श्रृंगारोन्मुख रचनाएं देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कविगण कितना भयभीत होकर फूँक –फूँक कदम रखते थे।'

छायावादी कवियों में निराला के प्रति चतुर्वेदी जी का विशेष आकर्षण रहा है, मौलिकता इनकी विशेषता रही है। 'तुलसीदास' (1938), 'राम की शक्ति पूजा' (1936) निराला के मौलिकता की शिखर रचनाएं हैं। निराला के यहां आलोचक को दो विरोधी प्रवृत्तियों का अद्भुत सामंजस्य एक साथ मिलता है – माधुर्य तथा ओज। छायावाद को अंग्रेजी प्रभाव के रूप में तथा प्रसाद जी के 'विश्राम' को पलायन कहने वाले हिंदी आलोचकों का यह संदर्भ चतुर्वेदी जी को बड़ा अटपटा लगता है। जिसकी वे पुन: अपने ढंग से व्याख्या करते हैं। छायावाद के प्रति कटु तथा दुर्वचनों को वे गल्लिका(अंधानुकरण) कहकर संबोधित करते हैं। पहले आरोप पर उन्होंने कहा – 'छायावाद के विकास में बंगला और अंग्रेजी की भूमिका प्रासंगिक ही है, आधिकारिक नहीं।' दूसरे आरोप के प्रसंग पर कुछ खींझ कर लिखते हैं – 'विश्राम तो श्रम का पूरक है और पलायन कर्म, श्रम, संघर्ष से भागना है।' इतने समर्थ रचनाकार पर ऐसा आक्षेप आलोचक को सहनीय नहीं। प्रकृति के प्रति सबसे अधिक आकर्षण चतुर्वेदी जी सुमित्रानंदन पंत में शुरुआत से ही देखते हैं। ऐसा शायद पंत की पल्लव में संकलित 'मोह' शीर्षक कविता को पढ़कर आलोचक को लगा होगा, जो निम्न है–

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,

बाले! तेरे बाल – जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन?
भूल अभी से इस जग को!'

पंत की कविताओं में प्रकृति चित्रण तो है लेकिन वह बाहर से थोपा हुआ नहीं। कवि चतुष्टय की अंतिम रचनाकार महादेवी वर्मा के विषय में आलोचक ने कहा है कि – 'वहां निष्क्रिय करुणा न होकर रचनात्मक करुणा का भाव विद्यमान है।' महादेवी वर्मा के काव्य का विश्लेषण करते हुए चतुर्वेदी जी पाते हैं कि इनकी कविताओं में अभिव्यक्त प्रेम वेदना पावन तथा उदात्ता है न कि विलासितापूर्ण।

छायावाद से उत्तर छायावाद को अलगाने के क्रम में आलोचक को ठीक वैसा संबंध दिखाई देता है जैसा मध्यकाल में भक्ति तथा रीतिकाव्य के मध्य में था। चतुर्वेदी जी ने लिखा है – 'जायसी– सूर– तुलसी के बाद जैसे बिहारी – मतिराम– देव का क्रम है, कुछ वैसे ही प्रसाद– निराला– पंत के बाद बच्चन– दिनकर– नरेन्द्र का।' दिनकर की बात करें तो उनके आलोचनात्मक ग्रंथ 'शुद्ध कविता की खोज' में तो उन्होंने काव्य को केवल 'शरीर के अनुभव' तक ही तो नहीं स्वीकारा है बल्कि उन्होंने कहा है – 'ईश्वर, कविता और क्रांति ये जीवन के समुच्चय में प्रवेश किये बिना नहीं समझे जा सकते।' काव्य विवेचन को लेकर रामधारी सिंह दिनकर की दृष्टि साफ– सुथरी रही है। हिंदी काव्य यात्रा सन् 1936 के आसपास अपने को वैचारिक धरातल पर परिवर्तित करती है। नये कवियों ने धूल–मिट्टी से सने सामाजिक यथार्थ को काव्य का विषय बनाया। इस तरह से साहित्य पर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित मार्क्सवादी दर्शन की छाया पड़ी। इस प्रगतिवादी काव्य की भाषा तथा संवेदना को समझने के लिए आलोचक ने प्रगतिवादी त्रयी में शामिल नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री के काव्य का व्यावहारिक मूल्यांकन किया है। आलोचक ने प्रगतिवादी त्रयी के कवियों में नागार्जुन को हिंदी कविता में सर्वाधिक जनप्रिय कवि के रूप में माना है। नागार्जुन की कविता में सत्ताा की तानाशाही प्रवृत्ति के प्रति खुला विरोध दिखाई देता है। इस त्रयी के अगले कवि केदारनाथ अग्रवाल हैं। इनकी कविताओं में मार्क्सवाद बड़े सहज रूप में घुला–मिला है न की ऊपर से आरोपित। केदारनाथ अग्रवाल धरती के कवि हैं। प्रगतिशील काव्यधारा के अगले कवि हैं त्रिलोचन शास्त्री। इनकी कविता की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें संबोधन की सीधी शैली विद्यमान है। इनके यहां कविता में आये शब्द केवल भाषा को चुस्त–दुरुस्त करने हेतु नहीं।

प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के बाह्य यथार्थ से तो जोड़ा लेकिन जीवन के आंतरिक यथार्थ की उपेक्षा कर दी, प्रयोगवाद का जन्म इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। इनके प्रिय कवियों में सबसे पहले अज्ञेय का नाम आयेगा। जहां अज्ञेय के यहां आलोचक 'गद्य की सजगता' देखते हैं, मुक्तिबोध की कविताओं में उनको 'गद्य का दबाव' दिखाई देता है तो शमशेर के यहां 'गद्य की लय'। अपनी रचनाओं में नये सत्यों का खुलासा करके जहां अज्ञेय चौंकाया करते हैं वहीं मुक्तिबोध चौंकाते नहीं सीधे धक्का ही दे देते हैं और रघुवीर सहाय उसी धक्का–मुक्की में से अपनी राह खोज लेते हैं। इनके यहां कलात्मक शुचिता की ओर कोई ध्यान नहीं, सारे प्रयोग विषय वस्तु को लेकर हैं, इसीलिए अज्ञेय की काव्यभाषा पर टिप्पणी करते हुए चतुर्वेदी जी लिखते हैं – 'भाषा के संबंध में अज्ञेय जैसी सावधानी कम ही रचनाकारों ने बरती है।' कालांतर में अतिशय बौद्धिकता तथा वैयक्तिकता के कारण हिंदी साहित्य में नयी कविता एक नये कलेवर के साथ उपस्थित हुई।

प्रयोगवाद में रचनाकारों के अतिकलावादी आग्रह के फलस्वरूप काव्य में 'नयी कविता' का उद्भव हुआ। स्वयं रामस्वरूप चतुर्वेदी इस काव्यान्दोलन से जुड़े आलोचक रहे हैं। नयी कविता की पहचान इन्होंने सबसे पहले सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं से की है। नयी कविता में ही 'लघु मानव' का भी जन्म हुआ जिसे रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'भाषा–संवेदना और सर्जन३(1996) में मनुष्य का समग्र अनुभव खंड कह कर संबोधित करते हैं। आलोचक के अनुसार नयी कविता के कवियों ने पुराने काव्य प्रतिमानों की जगह नये अछूते उपमान, बिम्ब–विधान की खोज की। अज्ञेय के 'कलगी बाजरे की', मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' शमशेर की कविता 'भोर का नभ' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। कविता में छंद के प्रयोग पर आलोचक का विचार है कि – नयी संवेदना को व्यक्त करने हेतु काव्य रचना का पुराना अनुशासन ठीक नहीं। नयी कविता में विचारों का दबाव है इसलिए यहां 'अर्थ की लय' पर ध्यान देना चाहिए न कि बाहरी साज–सज्जा पर। आलोचक में समकालीन कविता के प्रति यह स्वीकार्य का साहस है कि– समकालीन कविता के उत्तर दृश्य में तकनीकी तथा औद्योगिक प्रभाव बढ़ने से भले ही निकटता सुलभ हुई परन्तु अतिरिक्त बढ़ते दबावों ने कविता की प्रकृति को वैसा रहने नहीं दिया। निकटता सुलभ तो हुई परन्तु अनुभवों के पकने में रुकावट के कारण रचना प्रक्रिया में आलोचक को वह ताप नहीं महसूस होता जो जयशंकर प्रसाद के यहां इस भाँति अभिव्यक्त हुआ है –

'जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छायी,
दुर्दिन में आंसू बनकर वह आज बरसने आयी।'

हमारे इतिहास में जो दौर तीव्र मोहभंग का रहा है हिंदी साहित्य में वह साठोत्तरी कविता का दौर कहलाया। साठ के दशक के बाद की कविता में विभाजन की विभीषिका, भारत चीन युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध का उत्तरकालीन प्रभाव, शहरीकरण आदि कारणों से एक बार पुन: मानवीय मूल्य क्षरित होने लगे। ऐसे में साठोत्तरी कविता के रूप में एक आक्रोशपूर्ण वातावरण तैयार हुआ। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस परिवर्तित होती चेतना के स्वरूप को नयी युगीन चेतना के रूप में स्वीकार किया है। ऐसे मूल्य विघटन के समय कई छोटे–बड़े काव्यान्दोलन शुरू हुये। जिसमें अकविता काव्यान्दोलन सबसे पहले हुआ। अकविता काव्यान्दोलन के मुख्य सूत्रधार डॉ0 श्याम परमार तथा जगदीश चतुर्वेदी रहे हैं।

एक समय ऐसा भी आया जब अकविता आगे के कवियों को अराजकतावादी कविता लगने लगी। अप्रचलित तथा कठोर शब्दावलियों में लिखी जाने वाली कविता की भाषा व्यंग्यात्मक संवाद के साथ तल्ख भाषा में प्रचलित होने लगी। यहां से धूमिल, रघुवीर सहाय, कुमार विकल जैसे कवियों को जनवादी काव्यधारा का प्रतिनिधि माना गया। इन कवियों ने व्याप्त विसंगतियों को लेकर केवल शोर मचाने के बजाय धैर्यपूर्वक कारणों की खोज पर ध्यान दिया। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नयी कविता तथा साठोत्तरी कविता के बीच के अंतर को सूक्ष्म रूप में विश्लेषित किया है। उन्होंने माना है कि नयी कविता व्यष्टि तथा समष्टि दोनों के संतुलन का प्रयास करती है परन्तु साठोत्तरी कविता में आक्रामकता की भावना है।

निष्कर्ष – हिंदी साहित्य में काव्यालोचन की परंपरा में आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने सर्वप्रथम भाषा तथा संवेदना को एक संतुलित दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित परंपरा में जो ठीक नहीं उसे वे नकारते हैं तथा समकालीन साहित्य पर भी निष्पक्ष विचार करने का साहस रखते हैं। अपने आलोचना कर्म द्वारा वे रचनाकारों, पाठकों, नये –पुराने

आलोचकों के लिए तमाम विचार सूत्र छोड़ते चले हैं। अत: वर्तमान साहित्यालोचना के लिए उन्होने नये द्वार खोले हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शुक्ल, रामचंद्र, चिंतामणि भाग 1, साहित्य सेवा प्रकाशन (वाराणसी), संस्करण: 2009.
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2022.
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, नयी कविताएं एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: चतुर्थ (2015).
4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2019.
5. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण: 2020.
6. वाजपेयी, नंददुलारे, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2023.
7. पंत, सुमित्रानंदन, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, संस्करण: 2022.
8. दिनकर, रामधारी सिंह, शुद्ध कविता की खोज, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2024.
9. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, भाषा, संवेदना और सर्जन, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण: 2025.
10. शैदा, विश्वनाथ लाल (संपादक), आँसू की समीक्षा, प्रभात प्रिंटिंग प्रेस, आजमगढ़, प्रथम संस्करण: 1954.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

प्राचीन ज्ञान प्रणाली में गृहस्थ आश्रम का समाज में योगदान

प्रिया सिंह*

*शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत लेख में प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में गृहस्थ आश्रम के सामाजिक, महत्व का वर्णन किया गया है। गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का आधार माना गया है, क्योंकि यही परिवार, समाज और अर्थव्यवस्था का संचालन करता है। इसके माध्यम से कृषि, व्यापार, संस्कार, शिक्षा, दान, सेवा तथा सांस्कृतिक परंपराओं का संरक्षण होता है। परिवार बच्चों में नैतिक मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है। आधुनिक समय में संयुक्त परिवारों के विघटन के बावजूद गृहस्थ आश्रम की शिक्षाएँ पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता, नैतिकता और संतुलित जीवन के लिए आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

शब्द कुंजी – गृहस्थ आश्रम, समाज, महाभारत, गीता।

प्रस्तावना – भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा में मानव जीवन को चार आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासक्रमें विभाजित किया गया है। इनमें गृहस्थ आश्रम को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि यही आश्रम समाज, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और धर्म की आधारशिला है। मनु ने तो यहां तक कहा है कि जिस तरह वायु का आश्रय लेकर सब जीव-जन्तु जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रम जीवन प्राप्त करते हैं। जैसे सभी छोटी-बड़ी नदियां अन्त में समुद्र में ही स्थायी रूप से विश्राम पाती हैं उसी तरह सब आश्रमों के व्यक्ति गृहस्थ के हाथों सुरक्षा एवं स्थायित्व प्राप्त करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था- 'गृहस्थ सारे समाज की नींव साद्दश्य है। सम्पूर्ण समाज उसी से साधन प्राप्त करता है।' मनुस्मृति तथा महाभारत में गृहस्थ आश्रम को समाज के पालन-पोषण और संतुलन का केंद्र बताया गया है। यह केवल पारिवारिक जीवन तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक उत्तारदायित्व, आर्थिक उत्पादन, सांस्कृतिक संरक्षण और नैतिक मूल्यों के संवर्धन का प्रमुख माध्यम था। यह शोधलेख गुणात्मक अनुसन्धान दृष्टिकोण से गृहस्थ आश्रम के सामाजिक योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

1. **गृहस्थ आश्रम की अवधारणा-** भारतीय दर्शन में आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति और समाज दोनों का समन्वित विकास था। गृहस्थ आश्रम वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति विवाह करके परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। 'अर्थशास्त्र में गृहस्थ के निम्नलिखित कर्तव्य बताये गये हैं। अपने धर्म के अनुकूल जीविकोपार्जन करना, विधिपूर्वक विवाह करना, अपनी विवाहिता पत्नी से ही सम्पर्क रखना, देवताओं, पितरों, भृत्यों आदि को खिलाने के बाद बचे हुए अन्न को ग्रहण करना।' 'मनुस्मृति में गृहस्थ के दस धर्मों का वर्णन मिलता है-धृति, क्षमा, अस्तेय, दम, शौच, इन्द्रिय, निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा क्रोध न करना।'

गृहस्थ आश्रम की प्रमुख विशेषताएँ धर्म, अर्थ और काम का संतुलन, परिवार संस्था का निर्माण, सामाजिक उत्तरदायित्व, आर्थिक उत्पादकता, दान और सेवा भावना है।

2. **प्राचीन ज्ञान प्रणाली में गृहस्थ आश्रम का स्थान-** ऋग्वेद, उपनिषद और भगवद्गीता में गृहस्थ जीवन को संयम और कर्तव्य का जीवन बताया गया है। मनुस्मृति के अनुसार 'गृहस्थ आश्रम ही अन्य सभी आश्रमों का पालनकर्ता है।' इसका आशय है कि गृहस्थ व्यक्ति अपने श्रम और संसाधनों सेकृविद्यार्थियों का पालन करता था,संन्यासियों को भिक्षा देता था, समाज में आर्थिक गतिविधियों को संचालित करता था। इस प्रकार गृहस्थ आश्रम सामाजिक संरचना की धुरी था।

3. **समाज में गृहस्थ आश्रम का योगदान**

(क) आर्थिक योगदान- गृहस्थ आश्रम का सबसे महत्वपूर्ण योगदान आर्थिक क्षेत्र में था। प्राचीन भारत की कृषि, व्यापार, पशुपालन और हस्तशिल्प गतिविधियाँ मुख्यत: गृहस्थों द्वारा संचालित होती थीं। मुख्य योगदान कृषि उत्पादन व्यापार और वाणिज्य रोजगार सृजन कर व्यवस्था में योगदान वैदिक काल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का केंद्र गृहस्थ परिवार ही था।

(ख) सामाजिक योगदान – गृहस्थ आश्रम ने सामाजिक संगठन को स्थिरता प्रदान की। परिवार संस्था के माध्यम से बच्चों का पालन-पोषण, संस्कारों का विकास, बुजुर्गों का सम्मान, सामाजिक एकता का निर्माण होता था। संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज की विशेषता थी, जो गृहस्थ जीवन की देन थी।

(ग) सांस्कृतिक योगदान – भारतीय संस्कृति, परंपरा और लोकाचार के संरक्षण में गृहस्थ आश्रम की केंद्रीय भूमिका थी। उदाहरण 'त्योहारों का आयोजन, वैदिक अनुष्ठान, लोककला और संगीत का संरक्षण' भाषा और साहित्य का संवर्धन, दीपावली तथा होली जैसे पर्व पारिवारिक और सामाजिक एकता को मजबूत करते थे।

(घ) नैतिक एवं आध्यात्मिक योगदान- गृहस्थ आश्रम केवल भौतिक जीवन नहीं थाय यह नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन का भी केंद्र था। मुख्य मूल्यकृ सत्य, अहिंसा, सेवा, दान, अतिथि सत्कार, रामायण में श्रीराम

का पारिवारिक आदर्श गृहस्थ जीवन के नैतिक स्वरूप को दर्शाता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में गृहस्थ आश्रम की प्रासंगिकता– भारतीय समाज में गृहस्थ जीवन आज भी सामाजिक संरचना का मुख्य आधार है। परिवार, विवाह और आपसी रिश्ते समाज को जोड़े रखते हैं। हालांकि आधुनिकीकरण के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और एकल परिवार बढ़ रहे हैं, फिर भी पारिवारिक मूल्य और नातेदारी के बंधन अब भी मजबूत बने हुए है।

1. **परिवार सामाजिक सुरक्षा का केंद्र है:** भारतीय परिवार आज भी आर्थिक और भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करता है।
2. **संस्कारों का हस्तांतरण :** बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास मुख्यत: परिवार के माध्यम से होता है।
3. **सामाजिक सहयोग की भावना:** गृहस्थ व्यक्ति विवाह, उत्सव और संकट के समय सामुदायिक सहयोग प्रदान करता है।
4. **आर्थिक स्थिरता :** परिवार आधारित आर्थिक संरचना आज भी भारतीय समाज की मजबूती है।
5. आधुनिक समय में भौतिकवाद और व्यक्तिवाद के कारण पारिवारिक संरचना कमजोर हो रही है। ऐसे समय में गृहस्थ आश्रम की अवधारणाकृपारिवारिक एकता, सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक मूल्यों, तथा संतुलित जीवन शैली की प्रेरणा देती है। यह अवधारणा 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना को भी सशक्त बनाती है।

निष्कर्ष – प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली में गृहस्थ आश्रम समाज का आधार स्तंभ था। यह केवल वैवाहिक जीवन नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों का समन्वित स्वरूप था। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गृहस्थ आश्रम ने समाज को स्थिरता प्रदान की, संस्कृति का संरक्षण किया, आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया, तथा नैतिक मूल्यों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित किया। आज के समय में भी गृहस्थ आश्रम की शिक्षाएँ सामाजिक समरसता और संतुलित जीवन के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

संदर्भ ग्रंथ एवं एंडनोट सूची:–

1. भगवद्गीता
2. महाभारत
3. रामायण
4. उपनिषद
5. ऋग्वेद

i. मनुस्मृति 4/1
ii. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व / पं. श्री राम शर्मा / पेज ६ 4.38
iii. अर्थशास्त्र 1.2
iv. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/97218/1/Unit-5.pdf
v. https://renaissance.aurosociety.org/g%E1%B9%9Bhasthadharma-the-dharma-of-a-householder/

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Family Support and Sports Participation Among Para-Athletes in Rajasthan: A Sociological Perspective

Rajshree Rathore* Dr. Shruti Tandon**

***Research Scholar (Sociology) Mohanlal Sukhadia University, Udaipur (Raj.) INDIA**
**** Associate Professor, Govt. Meera Girls College, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur (Raj.) INDIA**

Abstract: Family support is widely observed as a significant social determinant influencing the performance and participation of person with disabilities in sports. The purpose of the present study is to examine the role of family support in promoting sports participation among Para-athletes in Rajasthan from a sociological perspective. The aim of the study is to seek the understanding how family encouragement, emotional assistance, practical involvement, and family responsibilities shape the experiences of Para-athletes in sports.A descriptive research design was adopted, and primary data were collected from 230 Para-athletes representing different disability categories across Rajasthan using a structured interview schedule. Descriptive statistics, including frequencies, percentages, mean scores, standard deviation, and one-sample *t*-test, were employed to analyse the data as required.
Keywords: Family support, Para-athletes, Sports participation, Disability, Rajasthan, Sociology, Social support.

Introduction - Sport is considered an important social institution and has long been recognised as one which is beyond physical activity and competitive performance. From a sociological point of view sports act as a tool for mobility, inclusion and community participation. They offer an individual the opportunity to lead, to develop confidence, to form interpersonal relation, and to create a sense of belonging. Thus, sports participation should not merely be viewed as a recreational activity but instead as a means to promote social integration and to improve the overall quality of life. As societies increasingly adopt the principles of equality and inclusion, sports have become a significant platform for marginalised groups to confront stereotypes and engage actively in mainstream social life (Coakley, 2021)[1].

Persons with disabilities constitute the marginalised population, who have encountered significant barriers historically to sports participation. Earlier, disability was mostly understood through medical dimension or medical model, which focuses on impairment and an individual's limitations rather than social inclusion. This viewpoint has often put the person with disability outside the organised sporting preview by reinforcing assumptions regarding their physical in-capabilities. However, with the emergence of the social model of disability the attention shifted and moved towards the environmental, structural, and attitudinal barriers that restrict participation. This transformation has facilitated an increased understanding that disability is influenced not only by physical impairment but also by the social context in which individuals reside (Oliver, 1996)[2].

With the changing perspectives, Para-sportsevolved as an important method for rehabilitation, empowerment and social inclusion. Para-sports was initially developed as an important tool for rehabilitation to the war veterans of the second world war, but with the gradual transformation it turned into an internationally recognised competitive sports movement that promotes equal sporting opportunities for person with disabilities. Engagement in Para-sports facilitates the improvement of physical fitness, psychological well-being, self-esteem and social acceptance, while concurrently challenging societal perception of disability and capability (Brittain, 2016)[3]. In addition to competitive accomplishments, Para-sports play a crucial role in transforming public attitudes by illustrating that disability does not undermine an individual's potential for excellence.

Despite the remarkable development and growth of the Paralympic movement world-wide, even in India as well, participation in Para-sports still continues to be influenced by multiple social, cultural, economic and institutional factors, family support occupies a significant position. Family is represented as a primary social institution which is responsible for socialisation, emotional development, and value formation. For person with disabilities who belongs to the marginalised segment of the society, where family often become the first caregivers, decision-maker and providers for emotional, financial and practical support. Attitudes toward disability and sports often influence an individual's access to opportunities for participation in athletic activities, professional training, and the pursuit of a

long- term career in sports.

The role of family and the importance of its support become even more pronounced in developing societies such as India, where disability is still continues to be influenced by traditional beliefs system, limited awareness, and unequal access to resources. Many Para-athletes hail from rural backgrounds which are economically disadvantageous, where financial barriers, responsibilities for caregiving, inadequate transportation, and restricted exposure to organised sports often hinder participation. In such circumstances, the encouragement and support offered by family members emerge as essential factors influencing sustained participation and athletic development. Family members often take on the responsibility of covering training expenses, accompanying athletes to competitions and providing psychological support, even while contending with their own economic and social challenges.

The present work seeks to examine the nature of family support among Para-athletes in Rajasthan from a sociological point of view. By understanding various facets of family support, including encouragement during competitions, understanding of sporting commitments, motivational support, and family responsibilities, and the aim of the work is to understand how family influences the participation and sporting experiences of Para-athletes. The findings of the study are expected to contribute to the growing literature on social aspect of disability and sports while providing evidence- base insights for policy makers, sports administrators, educational institutions and families to strengthen support mechanism for Para-athletes.

Review of Literature:

Family support has consistently been viewed as one of the most significant and influential social factors which affects participation in sports, motivation, and performance among athletes. Among Para-athletes, whose sports journey is often shaped and centred on physical, psychological, and social challenges, the role of the family is beyond emotional encouragement to include financial assistance, logistical support, and social acceptance. The existing literature indicates that supportive family environments have a positive impact on confidence, resilience, participation, and sporting achievements among individuals with disabilities. Nevertheless, the nature and extent of such support differ across various socio-cultural contexts, underscoring the necessity for context-specific research.

The recent work of Narasanti and Putri (2025) analysed the role of parents played in the developing of self-confidence of disabled athletes related to the National Paralympic Committee of Indonesia. It was reported in the study that parental support and encouragement, emotional support, and continuous motivation significantly contributed to athletes' confidence and sporting performance.Parents were found to play a key role in helping athletes with disability to overcome psychological barriers, social stigma, and self-doubt. The study concluded that family support serves as an indispensable social resource in the development of successful Para-athletes. (Narasanti & Putri,2025)[4].

Similarly, another researcher investigated the influence played by service quality on self-confidence of wheelchair athletes while analysing the support of family as a moderating factor.It was found that family support significantly strengthened the relationship between institutional services and athletes' confidence. It was reported in the study that athletes receiving greater encouragement and assistance from their families demonstrated higher levels of motivation, psychological well-being, and satisfaction with their sporting experiences. The authors were of the opinion that institutional support alone cannot ensure positive sports outcomes unless they are accompanied by active involvement of family, thereby emphasising the complementary role of family within the broader support system. (Mandan et al. 2024)[5].

Arianpour et al. (2021) explained the significance of family support in their examination of the relationship between social support, self-efficacy, and engagement in physical activities among veterans and disabled athletes. The study demonstrated that both support from family and support from friends were positively correlated with athletes' self-efficacy and their consistency in sports participation. Individuals who received stronger encouragement from their families exhibited increased confidence in their athletic abilities and were more likely to engage regularly in physical activities. The authors proposed that enhancing family support networks could significantly improve the participation rates and overall well-being of individuals with disabilities. (Arianpour et al., 2021)[6].

Mira et al. (2023) offer a holistic understanding of social support through a systematic review of research investigating resilience, social support, and psychological well-being among Para-athletes. The study concluded that social support, especially from family members, coaches, and peers, plays a crucial role in enhancing resilience, emotional stability, motivation, and athletic success. Notably, family support was identified as one of the most consistent factors influencing athletes' capacity to manage competitive pressures, discrimination, and everyday life challenges faced by them as person with disabilities. Additionally, the work emphasized that nurturing family environments foster social inclusion and enhance the quality of life for athletes with disabilities. (Mira et al., 2023)[7].

Research Objectives: The following objectives of the current work are:

1. To investigate the nature and extent of family support received by Para-athletes in Rajasthan regarding their participation in sports.
2. To analyse the impact of family encouragement, involvement, and understanding on the sporting experiences of Para-athletes.

3. To identify the family-related responsibilities and challenges that influence the participation and training of Para-athletes.
4. To explore the relationship between family support and sustained participation in Para-sports from a sociological perspective.

Research Gap: The review of the existing literature reveals that support of the family is widely recognized as an essential factor influencing the participation, confidence, motivation, and performance of athletes with disabilities. Most of the earlier studies have focused on family support in relation to psychological variables such as self-confidence, resilience, self-efficacy, and emotional well-being. While these research works providesa valuable insight into the significance of supportive family environments, they offer a comparatively limited understanding of family support as a sociological understanding affecting participation in sports.

Another limitation within the existing literature is its geographical dimension. A substantial proportion of empirical studies have been conducted in countries such as Indonesia, Iran, and various European nations, while research focused on the Indian context remains meagre. In India, studies specifically related to the examination of Para-athletes in Rajasthan are nearly non-existent, despite the state's increasing engagement in Para-sports in recent years and the distinct socio-cultural characteristics that shape family relationships, gender norms, rural livelihoods, and community attitudes.

Apart from this, previous studies have typically analysed family support as a singular variable, rather than investigating it as a multiple dimensions, which include emotional encouragement, involvement in training and competitions, family responsibilities, practical assistance, and family comprehension of sports commitments. The present study seeks to address these gaps by exploring family support as a multidimensional sociological construct among Para-athletes in Rajasthan, utilizing primary data collected directly from 230 respondents. In this manner, the study contributes context-specific empirical evidence to the expanding literature on disability, sports participation, and family support in India especially Rajasthan.

Methodology:

Research Design: The present work utilized the qualitative research design approach to examine the role of the family support in influencing participation in sports among Para-athletes in Rajasthan. A descriptive research method was used to understand the multiple dimensions of family support experienced by Para-athletes and how it influences participation, training, motivation and sporting achievements. The study also utilises a sociological view point by examining the family as an important social institution influencing the sporting experiences of person with disabilities.

Study area: The research work was carried in the state of Rajasthan, India. Data collection was carried out during the state Para-games, where athletes from different districts participated, enabling the examiner to access respondents belonging to different and diverse socio-economic and geographical backgrounds.

Sampling and Sample size: The sample comprised Para-athletes belonging to different age groups, educational level, occupational categories, income levels and disability type, thereby ensuring diversity within the sample size. The sample was collected on the basis of simple random sampling and a total sample of 230 respondents was collected.

Data collection: The primary data collected through structured interview schedule. This consisted of close-ended questions, multiple- response questions, likert- scale statements and few open-ended questions.

Results and Discussion: The data and results presented under this section understands the various dimensions of family support experienced by Para-athletes in Rajasthan and its impact on the sports participation. The examination is structured under four thematic dimensions: family encouragement, family involvement, family responsibilities and family understanding. These areas altogether provides a comprehensive analysis of how family being a primary social institution pave the way for the sporting experiences of person with disabilities.

Family Encouragement towards Sports Participation: Family support acts as one of the most influential social factor in determining an individual's participation and its continuity in sports. The first source of motivation and encouragement often comes from the family to overcome physical, social, and psychological barriers around disability. They not only act as a source for emotional reassurance but also provide access to training, competition, financial assistance etc. Therefore, examining the extent of family encouragement towards sports participation becomes crucial. The following table below represents the perception of the respondents regarding family support for sports and family encouragement for training and competitions.

Table: 1

Particular	Yes	No
Family Support: For Sports	201	29
Family Encouragement: Training & Competition	201	29

The results shows that majority of the respondents were of the opinion that they received family support for the participation in sports and encouragement for training and competitions. But, the data also reveals that there exist a few segments among the respondents who lack such support for the participation, training and competitions. This highlights that family plays an important role as a source for support in sports participation and encouragement for training and competitions. This high level of family support suggests the growing level of acceptance for person with disabilities in sports from their families.

Family Involvement in the Sporting Journey: Family involvement extends beyond encouragement for participation it includes practical assistance during competitions and sporting events. Accompanying athletes to competitions and assistance during travel are important instrumental support particularly for athletes with disabilities. However, the frequency of such involvement may differ and depends upon family responsibilities, occupational commitments, financial conditions and the severity of the disability. The following result illustrates the nature of family involvement in their sporting journey.

Table: 2

Particular	Yes	No
Family member accompanying to tournament	86	144

A substantial majority of the respondents were not accompanied by their family members to the sporting venue. Those who responded in favour of the statement were mostly girls, as safety was the major concern. The reasons given by the respondents for not being accompanied by any family member were: not wish to burden family members with additional responsibilities, family members lacked knowledge or interest regarding sports, agricultural activities and livestock management will be hampered, disruption of daily livelihood activities etc.

Family Responsibilities and Sporting Commitments: From the above results and interpretation it was found that family act as a source of support but that support is often, family may impose responsibilities that influences an athlete's ability to regularly participate in sports. In many Indian households, especially those which belong to rural and economically weaker backgrounds, family members are often expected to contribute to household work, agriculture, and caregiving or income generation. These types of responsibilities may affect the time, energy and consistency which are required for better training in sports. Therefore, it becomes crucial to understand the types of family responsibilities experienced by Para-athletes.

Table: 3

Particular	Yes	No
Family responsibilities preventing training	98	132

The responses suggest that a segment of the respondents suffer due to family responsibilities as they act as a barrier for their sports training and sports preparation, but at the same time a substantial number of the respondents manages and are able to keep the balance between family obligations and sports. The types of responsibilities which are hindering the sports preparation of the respondents were: supporting elderly parents, contributing to household income, assisting in family businesses and agricultural work, being the sole earning member of their family, making it difficult to prioritize sports over economic obligations. Female respondents commonly cited marriage- related responsibilities and household work, which often limit their time availability for training.These responses demonstrate that responsibilities can create substantial challenges for sustained sports participation.

Family Understanding and Perceived Role in Athletic Success: Apart from providing practical assistance, understanding the attitudes of family members towards sports significantly influences an athlete's motivation and long-term commitment towards sports. Thus, those families which recognise the dedication, discipline, and time required for competitive sports are more likely to form a supportive environment that enables Para-athletes to pursue sports in excellence. The following analysis is based on the responses of the respondents based on the likert scale.

Table: 4 **(see in last page)**

This finding suggests that most families understand the time and dedication in sports. The output demonstrates that family support act as an important source of motivation, encouragement, financial assistance, and emotional support for the Para-athletes. Such understanding from the family creates a supportive environment which enables Para-athletes to balance sporting commitments with family life and pursue their sporting journey more effectively.

Conclusion: The present study underscores the crucial role of familial support in influencing the sports participation of Para-athletes in Rajasthan. The findings reveal that, for the majority of respondents, family members serve as the primary source of encouragement, motivation, and practical assistance throughout their athletic journeys. Family support encompasses not only the promotion of sports participation and encouragement of regular training but also includes emotional reassurance and financial backing, thereby fostering a conducive environment for sustained involvement in Para-sports.

Conversely, the study indicates that family-related responsibilities continue to present challenges for some Para-athletes. Economic obligations, household duties, agricultural work, caregiving responsibilities, and gender-specific expectations—particularly among female athletes—often restrict the time and resources available for sports participation. These findings illustrate that while family support is predominantly beneficial, the socio-economic realities faced by many households significantly impact the extent to which Para-athletes can engage fully in training and competition.

From a sociological standpoint, the study reinforces the significance of the family as a foundational social institution that shapes the opportunities, aspirations, and sporting experiences of individuals with disabilities. A supportive family environment enhances confidence, resilience, and continuity in sports participation, whereas limited support or competing family responsibilities may impede athletic development. Increasing awareness among families, promoting disability-inclusive attitudes, and implementing family-oriented support initiatives through sports policies can further bolster the participation and

performance of Para-athletes.

In summary, this study contributes to the expanding body of literature on Para-sports by illustrating that family support extends beyond emotional encouragement to include practical, financial, and motivational dimensions. Recognizing and strengthening this support system is vital for cultivating an inclusive sporting environment where Para-athletes are empowered to realize their full potential and make meaningful contributions to the advancement of Para-sports in Rajasthan and India.

References:-

1. Coakley, J. (2021). Sports in Society: Issues & controversies (13th ed.). McGrew-Hill.
2. Oliver, M. (1996). Understanding disability: From theory to Practioce. Macmillan Press.
3. Brittain, I. (2016). The Paralympic games explained (2nd ed.). Routledge.
4. Narasanti, R., & Putri, D. A. (2025). Parents' role in disabled athletes' confidence in the National Paralympic Committee Indonesia.
5. Mandan, A., et al. (2024). The impact of service quality on self-confidence of wheelchair athletes: An analysis of family support as moderator.
6. Arianpour, A., et al. (2021). The relationship of family and friends' social support and self-efficacy with the participation of veterans and disabled athletes in physical activities.
7. Mira, B., et al. (2023). Social support, resilience and well-being among athletes with disabilities: A systematic review.

Table: 4

Particular	**N**	**Mean**	**St. Deviation**	**t-(Test) Value**	**df**	**Sig.**
Family understanding time and dedication in sports	230	4.27	1.04	18.54	229	p<.001
Family support play a significant role in success	230	4.25	0.86	22.09	229	p<.001

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भूमि अधिग्रहण एक अमानवीय कृत्य

डॉ. मनीषा सिंह मरकाम* पूजा वर्मा**

* सहा. प्रा. (हिन्दी) प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस श्री अटल बिहारी वाजपेयी,शा. कला एवं वाणिज्य महा., इन्दौर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस श्री अटल बिहारी वाजपेयी, शा. कला एवं वाणिज्य महा., इन्दौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – 'भूमि अधिग्रहण' शब्द जो की प्राचीन काल से दलितों के लिए काल के सर्प के समान है जो सदियों से उनकी भूमि को निगलता चला आया है। दलित वर्ग के पास यदि भूमि का छोटा –सा टुकड़ा भी रहा तो वह गांव में 'विकास' के नाम पर जमीदारों, सेठों और सवर्णों की नजरों से छिप नहीं सका है। ऐसी ही कई घटनाओं को हमारे फिल्म निर्माता भी कई दशकों से पर्दे पर उतारते आ रहे हैं। जैसे– मदर इंडिया, हिम्मतवाला, जॉली एलएलबी 3, जय गंगाजल जैसी कई फिल्मों के नाम गिनाए जा सकते हैं। सवर्णों ने यह कभी नहीं चाहा कि दलित कभी भी उनकी बराबरी करें और उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर बैठे इसलिए प्रथम उन्होंने दलित वर्ग को भूमि के आधार पर रात दिन खत्म न होने वाले ब्याज पर कर्ज दिया, फसल आने पर दलितों की ओर से दी गई रकम में जमींदार वर्ग का सूत भी पुरा न हो सकता था तो मूल की तो बात ही क्या की जाए।

शब्द कुंजी– फिल्म – चलचित्र,ऋण – कर्जब अधिग्रहण– हथियानाब बंधुआ – आजीवन बंधकर काम करना।

प्रस्तावना – दलित वर्ग अपनी धरती मां के भरोसे अपने जीवन को व्यतीत कर रहे थे, लेकिन कभी वह पारिवारिक कारण या कृषि संचालन हेतु कई कारणों से दलित जमींदारों से कर्ज लेता गया और परिणाम स्वरूप जमींदार वर्ग ने कई गुना ऋण उन पर थोप कर दलितों की भूमि को अपने कब्जे में कर लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि दलित आजीवन अपनी ही जमीन पर बंधुआ मजदूर बनकर रह गया।

भूमि को अपने जाल साझी दांव पेंच से कैसे हथियाना है इस कृत्य के कई उदाहरण हमारे साहित्यकारों की विधाओं में परिलक्षित होते हैं। जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, मोहनदास नैमिषराय जैसे कई दलित साहित्यकार जिन्होंने दलितों के दर्द की मूक वाणी को अपनी कलम से शब्दों द्वारा कागजों पर उतारा और उस दर्द से दुनिया का परिचय करवाया। नैमिशराय जी ने अपने उपन्यास 'जख्म हमारे' में दंगों के बाद की भयावह स्थिति का चित्रण किया है। भूमि अधिग्रहण के चलते दलितों के पास जो भूमि थी वह भी छोटी होती जा रही थी। दंगों के बाद तो दलितों की गलियां और संकरी होती गई। 'दंगे के बाद गलियां संकरी हो गई थी जिनके बीच से निकलना मुश्किल होता था। फिर भी बाहर से आकर लोग फंस रहे थे, जमीन छोटी होती जाती थी। बरसात के गंदे नाले का पानी उनके घरों में घुस जाता वह घर के बाहर निकल आते हालांकि उनके पास आंगन नहीं थे ना ही छते थी। अगर थी तो वह संकरी गलियां।'[1] कालांतर में यह समस्या कहीं ना कहीं समाचार पत्रों के माध्यम से हमारे सामने उपस्थित हो ही जाती है, लेकिन इस शोषण का शिकार बस दलित वर्ग ही होता है।

दलितों के पास भूमि नहीं, मजदूर को मजदूरी नहीं, तो वह एक पालतू पशु की भांति सवर्णों के अधीन जीवन जीने को विवश हो जाता है। भूमि ही उनकी माता है, यह मानकर वह अपना कर्म करता है। मोहनदास नैमिशराय 'जख्म हमारे उपन्यास में बड़ी ही निष्पक्षता से इस सच्चाई को दिखाते हैं।' गरीबी रेखा के नीचे जीने वाले भूमिपुत्र थे वे। भूमिपुत्र होने पर भी जमींन का छोटा–सा टुकड़ा भी उनकी मिल्कियत नहीं थी। हर जमींन से उनके रिश्ते गहरे जरूर थे कभी–कभी खुदाई करते–करते उनके हाथ पैरों में चोट लग जाती थी कोई डॉक्टर भाग –भाग कर उन तक नहीं पहुंचता था कोई उनके घाव को साफ कर मरहम पट्टी नहीं करते थे वह ताजा जख्मों को मिट्टी से ठीक कर लेते और मिट्टी ही उनका जीवन था।'[2]

जमींदार वर्ग दलित के चोटिल होने पर उन्हें और भी सजा देते, उन्हें उनके दर्द, जख्म से कोई फर्क न पड़ता था, उनका काम नहीं रुकना चाहिए। बस यही रिश्ता था– जमींदार और दलित वर्ग के बीच। दलितों का जीवन अत्यंत दयनीय रहा है ना उन्हें पेट भर खाना मिलता है, और ना ही शरीर ढकने को पर्याप्त वस्त्र और ना ही धूप से बचने लायक कोई घर। मानव शरीर धारण करने मात्र से उन्हें मानव संज्ञा प्राप्त होती है अन्यथा और कुछ नहीं। उनका जीवन पशु– पक्षियों के जीवन से भी ज्यादा गया गुजरा व्यतीत होता है। दलितों के अभावग्रस्त जीवन का वर्णन नैमिषराय जी ने अपने उपन्यास 'मुक्ति पर्व' में कुछ इस प्रकार किया है– 'गांव में किसी के बदन पर भी उजले कपड़े ना देखे थे उसने। धूल मिट्टी से सने बदन और उस पर फटे पुराने कपड़े गांव के अधिकांश बच्चे तो अर्धनग्न ही होते थे।'[3]

वर्तमान परिदृश्य में यही हमारे जीवन की सच्चाई है कि सभी धरती माता के पुत्र हैं लेकिन सभी के अधिकार अलग और ऊँचे थे। स्वतंत्रता के बाद भी दलितों को अपनी भूमि पर बने रहने हेतु कई लड़ाईयाँ लड़नी पड़ी। सवर्ण दलितों को भूमि का एक टुकड़ा भी नहीं देना चाहते थे बल्कि दलितों के पास जो भूमि है उसे भी हथियाने का वे प्रयास करते थे।

मोहनदास जी ने अपने उपन्यास 'महानायक बाबा साहब डॉ. अंबेडकर' में दलितों के उत्थान के लिए बाबा साहब ने जो प्रयास किए हैं उसे प्रस्तुत किया है। जब नेहरू जी ने दिल्ली को जमीन देने से मना कर दिया था तब डॉक्टर अंबेडकर जी ने नेहरू से कहा 'मैं अपनी आंखों से खाली बंजर भूमि देखकर आया हूं जो खेती करने योग्य बनाई जा सकती है। उस भूमि को

हमारे लोगों को बांट दिया जाए अगर नेहरू ने हमारी बात नहीं मानी तो मैं स्वयं अपने लोगों को इस पर कब्जा कर लेने की सलाह दूंगा।'[4]

बाबा साहब आजीवन दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष करते रहे। वे शिक्षा को ही समानता का एकमात्र हथियार बताते हैं, वह कहते थे, 'शिक्षित बनो संगठित बनो' सभी प्रकार के भेदभावों का एक ही उत्तार था– शिक्षा और शिक्षा।

निष्कर्ष – भूमि अधिग्रहण वर्तमान में भी एक सर्पिणी का रूप धारण किए हुए हैं, वैसे तो आज का दलित वर्ग भी संघर्ष कर शिक्षित हुआ है और अपने अधिकारों के लिए प्रयास रत भी है, किंतु कुछ अनपढ़ लोग अभी भी बिना किसी जांच पड़ताल के किसी भी कागज पर अंगूठा लगाकर जमीदारों के आजीवन गुलाम बन जाते हैं, जिनका खामियाजा आने वाली पीढ़ी को भुगतना पड़ता है।

मोहनदास जी ने अंबेडकर के प्रयासों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। उनका साहित्य डॉ अंबेडकर के विचारों से अनुग्रहित है, वह अपने उपन्यासों में शिक्षा, समानता व बंधुत्व और सामाजिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हैं।

अभी भी कुछ हद तक दलित वर्ग को अपने व्यक्तित्व को ऊपर उठने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। दलित वर्ग को अपने वजूद को दुनिया के सामने प्रस्तुत करने हेतु शिक्षा को आधार बनाना ही पड़ेगा तभी वह इन जमीदार वर्ग के जाल से बाहर निकल सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ संख्या, 169
2. जख्म हमारे, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ संख्या, 35
3. मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ संख्या, 17
4. महानायक बाबा साहेब डॉ अंबेडकर, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ संख्या, 226-227

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Gender Quotas in Politics: Historical Development, Global Trends, and the Debate on Their Merits and Demerits

Nitya Kanwar* Dr. Manju Ladla**

*Research Scholar, Pandit Deendayal Upadhyaya Shekhawati University, Sikar (Raj.) INDIA
** Professor, Shri Kalyan Rajkiya Kanya Mahavidyalaya, Sikar (Raj.) INDIA

Abstract: Gender quotas have emerged as an important mechanism for promoting women's political representation across the world. This paper examines the historical development of gender quotas, analyses contemporary global and regional trends in their adoption at parliamentary and local government levels, and explores the debates surrounding their merits and demerits. Drawing on data from the International IDEA and United Nations Gender Quota Portal, the study highlights variations in quota types, targets, electoral systems, and legal frameworks across regions. It further evaluates the role of gender quotas in advancing political inclusion while addressing concerns related to merit, tokenism, and democratic representation.

Keywords: Gender Quotas, Gender Equality, Women, Reservation, Parliament, Local Government, Electoral System, Representation, Governance, Decision-making, Political Parties.

Introduction - Gender quotas have emerged as one of the most significant institutional mechanisms for promoting women's political representation and advancing gender-inclusive governance across the world. Despite constituting nearly half of the global population, women have historically remained underrepresented in political institutions due to deep-rooted social, cultural, economic, and structural barriers. The demand for greater political inclusion gained momentum through international movements advocating gender equality, particularly following the United Nations' initiatives such as the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women (CEDAW) and the Beijing Declaration and Platform for Action (1995). In response, countries across different political systems have increasingly adopted gender quotas as a policy instrument to address the persistent gender gap in political participation and decision-making.

Gender quotas are affirmative action measures designed to increase the representation of women in politics and corporate leadership by mandating a minimum share of seats, candidates, or board positions. Three main types of political quotas exist. First, voluntary party quotashave been adopted by political parties in a number of countries and involve a party committing itself to nominating a certain percentage of female candidates for electoral lists. Second, candidate quotasare required by the law of a country and stipulate that a certain number of candidate positions must be reserved for women. They sometimes include conditions on the position of women on the electoral list, for instance by requiring that every second entry on the list must be a woman. Finally, reserved seats are positions for which only female candidates can compete and are used as a more direct way of regulating the number of women in elected positions.

Historical Development: Gender quotas are one of the key institutional innovations in the politics of the late twentieth century. Quotas can apply to the local or national level of a political system. A handful of countries adopted some type of quota prior to the 1970s. The earliest adopters included both consolidated democracies and other countries. The first quotas were sometimes small, such as Pakistan's, which set aside 10 out of 310 seats in the National Assembly in its first Constitution in 1956, or vague, such as China's, which in 1955 stated that "an 'appropriate' and increasing proportion of women should be elected. The Nordic countries were the first to introduce quotas. Norway's Socialist Left Party took the lead in 1975 by introducing a 40% minimum target for representation of both sexes on electoral lists, and other parties in Norway, as well as a Denmark and Sweden, soon followed this example. In the 1980s, left-leaning political parties in consolidated democracies such as Austria, Belgium, Canada, Germany and Iceland began to voluntarily adopt gender quotas.

Many Western European countries, as well as Australia and Canada, have also implemented voluntary party quotas. The acceptance of quotas in Eastern Europe is much lower,

but some countries, such as the Czech Republic and Hungary, have voluntary party quotas. The United States is a notable exception among Western countries, as it does not apply any quotas.

In Latin America, quota schemes have been on the rise since the early 1990s, and have mainly taken the form of legislated candidate quotas. First adopted by Argentina in 1991, this type of quota has since been implemented in ten other Latin American countries. The quota adoption process was facilitated by the consolidation of democracy in the 1980s, which fostered the emergence of women's associations and other civil rights groups.

Africa has witnessed the adoption of a wide variety of quota schemes over the past decades. South Africa for instance, where the African National Congress introduced quotas in the first post-apartheid democratic elections in 1994, is considered the forerunner for voluntary party quotas on the continent. Uganda took the lead in introducing reserved seats in 1986 and this experiment has since been replicated in other East African countries (Djibouti, Eritrea, Somalia, and Sudan).

Countries in South Asia have also increasingly used political quotas, and here, reserved seats have been the predominant tool, although voluntary and legislated quotas do exist in some countries. South Asia is the forerunner in the implementation of quotas at the local government level, as evidenced from Bangladesh, India and Pakistan. India constitutionally reserved 33% seats for women at the local government level in 1992 and in 2023 passed the bill to ensure that women occupy at least 33 per cent of the seats in state legislative assemblies and the Lok Sabha.

In the Middle East, where cultural aspects constrain the participation of women in public life, quotas have found little support. Notable exceptions are Egypt and Jordan, where a fraction of seats in the lower house of parliament is reserved for women, and Israel, where parties use voluntary quotas.

Global Trends in Gender Quotas in Parliamentary Representation- The global trajectory of gender quotas in politics demonstrates their growing acceptance as an institutional mechanism for enhancing women's political representation. As reflected in Table 1, 93 out of 194 countries have adopted legislated gender quotas for national parliaments, indicating that nearly half of the world's countries have incorporated quota-based measures into their electoral frameworks. Candidate quotas are the most widely adopted mechanism, being implemented in 78 countries, whereas 19 countries employ reserved seats for women. Four countries have adopted both reserved seats and candidate quotas, reflecting a hybrid approach to achieving gender-balanced political representation. These patterns suggest that contemporary quota policies increasingly favour integrating women into mainstream electoral competition rather than relying exclusively on reserved political positions.

Table 1 (see in last page)

Regional variations in Table 1 reveal important differences in both the design and implementation of gender quotas. Africa has emerged as the leading region in terms of quota adoption, with 34 of its 54 countries implementing legislated quotas. The region employs a combination of reserved seats and candidate quotas and exhibits considerable diversity in quota targets and electoral arrangements. Europe follows with 21 countries adopting quotas, relying exclusively on candidate quotas and demonstrating relatively ambitious quota targets, with the majority of countries prescribing women's representation between 40 and 49 percent. Similarly, the Americas have embraced candidate quotas as the dominant model, with several countries advancing toward electoral laws. In contrast, Asia presents a mixed model, combining reserved seats and candidate quotas across 17 countries. Oceania remains the least represented region, with only two countries employing legislated quotas, highlighting significant regional disparities in the diffusion of quota policies.

According to Table 1, a notable global trend is the increasing preference for higher quota targets. Among countries with legislated quotas, the 30–39 percent range remains the most common target category (36 countries), reflecting the widespread influence of the internationally endorsed "critical mass" principle that considers 30 percent women's representation necessary for meaningful participation in decision-making processes. However, the growing adoption of quotas in the 40–49 percent range (21 countries) and parity-based 50 percent targets (18 countries) demonstrates a gradual normative shift from ensuring minimum representation to pursuing substantive gender equality in political institutions. The Americas particularly exemplify this movement toward parity democracy, whereas Europe has institutionalized comparatively higher quota thresholds than most other regions.

Electoral systems in also significantly shape the implementation of gender quotas. Table 1 shows Proportional Representation (PR) systems dominate among quota-adopting countries, accounting for 48 cases globally. Majority/Plurality systems (21 countries) and Mixed electoral systems (20 countries) constitute the next most common arrangements, while only a few countries employ indirect electoral mechanisms or have quota provisions awaiting implementation. The predominance of PR systems supports existing scholarship suggesting that proportional electoral arrangements provide more favourable institutional environments for quota implementation by facilitating party list mechanisms and increasing opportunities for women's electoral inclusion.

The legal foundations of gender quotas further demonstrate a global preference for formal legislative mechanisms. Table 1 shows electoral laws constitute the

most common legal source, appearing in 73 countries, followed by parity laws in 24 countries and constitutional provisions in 17 countries. Party laws (6 countries), financing laws (4 countries), and political agreements (1 country) remain comparatively uncommon instruments. The predominance of electoral legislation indicates that states increasingly view gender quotas not merely as voluntary political commitments but as legally enforceable democratic provisions designed to address historical gender disparities in political representation.

Taken together, these trends reveal that gender quotas have evolved from experimental policy interventions into widely institutionalized democratic mechanisms across diverse political contexts. Although considerable regional differences persist regarding quota design, target levels, electoral systems, and legal frameworks, the overall global pattern points toward the gradual normalization of gender-inclusive political institutions. The contemporary debate has consequently shifted beyond the question of whether gender quotas should exist to broader discussions concerning their effectiveness, implementation, and implications for substantive democratic representation.

Global Trends in Gender Quotas at the Local Government Level- Gender quotas have increasingly been extended beyond national legislatures to local government institutions, reflecting a broader commitment to promoting women's political participation across all levels of governance. Global statistics in Table 2 indicate that 82 out of 194 countries have adopted legislated gender quotas for local governments. Of these, 70 countries employ candidate quotas, while 17 countries have reserved seats for women. Five countries have adopted both mechanisms simultaneously, demonstrating the continued global preference for candidate quotas as the principal instrument for promoting women's political inclusion at the grassroots level.

Table 2 (see in last page)

The most common quota target according to Table 2 is 30–39 percent women's representation (36 countries), followed by 40–49 percent (18 countries) and parity-based 50 percent quotas (16 countries), indicating a growing global commitment to gender-inclusive governance. Proportional Representation (PR) systems are the most conducive electoral arrangements for quota implementation, accounting for 42 countries, followed by Mixed(24) and Majority/Plurality systems (16). Electoral laws remain the primary legal basis for local government quotas (57 countries), supplemented by local government laws (24), parity laws (22), constitutional provisions (6), and party laws (5). No country currently relies on financing laws or political agreements for legislated local government quotas.

Regional patterns in local government gender quotas as shown in Table 2 reveal significant variation in their design and implementation across the world. Africa has emerged as the leading region, with 30 out of 54 countries adopting gender quotas, followed by Asia and Europe with 18 countries each, and the Americas with 16 countries. While Europe relies exclusively on candidate quotas, Africa and Asia employ a combination of reserved seats and candidate quotas, reflecting different institutional approaches to women's political inclusion.

According to Table 2, candidate quotas remain the most widely used mechanism across all regions, although reserved seats are particularly prominent in Africa and Asia. The quota targets also differ considerably. Europe predominantly adopts higher targets of 40–49 percent women, indicating a strong commitment to near parity at the local level. The Americas demonstrates a notable preference for parity-based quotas (50 per cent), while Africa and Asia largely concentrate on the 30–39 percent range, suggesting a gradual approach towards gender-balanced representation.

Electoral systems further shape quota implementation. As shown in Table 2, Proportional representation is dominant in Europe, Africa, and the Americas, whereas Asia relies more heavily on mixed and majoritarian systems. Electoral laws constitute the primary legal basis for quotas across all regions, often supplemented by constitutions, local government laws, and parity laws. Africa exhibits the most diverse legal framework for quotas, reflecting greater institutional experimentation.

Overall, global trends indicate that gender quotas in local government have become an important mechanism for advancing women's political representation beyond national parliaments. The growing adoption of higher quota targets, the predominance of candidate quotas, and the reliance on formal legislative instruments collectively reflect a broader international commitment to fostering gender-inclusive democratic governance. Local governments increasingly serve as critical spaces for women's political participation and leadership development, often functioning as entry points into national political institutions.

The Debate on the Merits and Demerits of Gender Quotas - Gender quotas remain one of the most debated institutional reforms in contemporary democratic politics. While proponents view quotas as an effective mechanism for correcting historical and structural barriers that have limited women's political participation, critics question their implications for merit, democratic choice, and substantive representation. The debate reflects broader disagreements regarding equality, representation, and the role of institutional interventions in democratic systems.

Supporters argue that gender quotas serve as a "fast-track" mechanism for achieving political equality by accelerating women's entry into political institutions that have traditionally been dominated by men. Rather than viewing women's underrepresentation as the result of individual choices alone, quota advocates emphasize the existence of structural obstacles such as gender stereotypes, unequal access to political networks, and

discriminatory candidate selection processes. Gender quotas, therefore, are considered compensatory measures that create a more level playing field and strengthen democratic legitimacy by making political institutions more representative of society.

Another major advantage of gender quotas is their demonstrated effectiveness in increasing women's descriptive representation. Countries that have implemented well-designed quota systems, particularly those supported by strong legal frameworks and enforcement mechanisms, have witnessed substantial increases in the number of women elected to political office. Increased women's representation has also been associated with greater attention to issues such as education, healthcare, gender-based violence, and social welfare policies. Moreover, quotas can generate broader societal effects by challenging traditional gender norms and encouraging greater political participation among women.

Despite these benefits, gender quotas continue to attract significant criticism. One of the most common objections is that quotas may undermine the principle of meritocracy by prioritizing gender over qualifications. Critics argue that political representation should be determined solely through electoral competition and individual merit rather than through legally mandated numerical targets. Opponents also contend that quotas may create perceptions that women elected under such provisions are less competent or are "quota candidates," potentially affecting their political legitimacy despite possessing equal or superior qualifications.

Another criticism concerns the distinction between descriptive and substantive representation. Increasing the numerical presence of women in political institutions does not automatically guarantee that women's interests will be effectively represented in policymaking. Women legislators do not constitute a homogeneous group and may hold diverse ideological, social, and political positions. Consequently, quotas may successfully address numerical underrepresentation without necessarily transforming existing power structures or advancing gender-sensitive policy outcomes.

Implementation challenges further complicate the effectiveness of quota policies. Political parties may comply formally with quota requirements while circumventing their substantive objectives by nominating women in electorally unfavourable constituencies or assigning thempositions low on party lists. The effectiveness of quotas, therefore, depends significantly on accompanying institutional mechanisms such as placement mandates, enforcement provisions, and supportive electoral systems. Comparative studies demonstrate that quota outcomes vary considerably across countries depending on their political and legal contexts.

The debate on gender quotas has consequently evolved beyond the question of whether women should participate equally in politics to broader concerns regarding how democratic institutions can most effectively achieve inclusive representation. While quotas have proven to be powerful instruments for increasing women's political presence, their long-term success depends upon thoughtful institutional design, effective implementation, and broader societal commitments to gender equality. Rather than representing either a complete solution or a threat to democratic principles, gender quotas may be better understood as one among several complementary strategies for strengthening representative democracy and promoting substantive political inclusion.

Conclusion - Gender quotas have become one of the most significant institutional mechanisms for addressing the historical underrepresentation of women in politics. Their evolution from isolated affirmative-action measures to widely adopted democratic reforms reflects a growing global commitment to gender equality and inclusive governance. India's constitutional commitment to adoption of gender quotas at both grass-root and parliamentary level is a prime example of it. The analysis of global trends demonstrates that countries across different regions have adopted diverse quota models—reserved seats, candidate quotas, and parity laws—tailored to their political and electoral contexts. While critics argue that quotas may undermine meritocracy or encourage token representation, a substantial body of evidence suggests that they have contributed to increasing women's political participation, improving policy responsiveness to social issues, and challenging long-standing gender barriers within political institutions. Thus, despite certain limitations, gender quotas remain an important tool for advancing substantive and descriptive representation of women.

References:-

1. United Nations Entity for Gender Equality and the Empowerment of Women (UN Women). (n.d.). *United Nations Gender Quota Portal*.
2. Pande, R., & Ford, D. (2011, April 7). *Gender quotas and female leadership: A review* (Background Paper for the World Development Report on Gender). Harvard University.
3. Crocker, A. P. (2010). Jumping on the Bandwagon: Origins and Effects of Gender Quotas Worldwide [Review of *Quotas for Women in Politics: Gender and Candidate Selection Reform Worldwide*, by M. L. Krook]. *International Studies Review*, *12*(4), 686–689.
4. Hughes, M. M., Paxton, P., Clayton, A. B., & Zetterberg, P. (2019). Global Gender Quota Adoption, Implementation, and Reform. *Comparative Politics*, *51*(2), 219–238.
5. Bush, S. S. (2011). International Politics and the Spread of Quotas for Women in Legislatures. *International Organization*, *65*(1), 103–137.
6. Dahlerup, D. (2007). Electoral gender quotas: Between

equality of opportunity and equality of result. *Representation, 43*(2), 73–92. https://doi.org/10.1080/00344890701363227

7. Dahlerup, D., &Freidenvall, L. (2009). Gender quotas in politics—A constitutional challenge. In S. H. Williams (Ed.), *Constituting equality: Gender equality and comparative constitutional law* (pp. 29–52). Cambridge University Press.
8. Krook, M. L. (2006). Gender quotas, norms, and politics. *Politics & Gender, 2*(1), 110–118.
9. Krook, M. L. (2009). *Quotas for women in politics: Gender and candidate selection reform worldwide*. Oxford University Press.
10. Krook, M. L., Lovenduski, J., & Squires, J. (2009). Gender quotas and models of political citizenship. *British Journal of Political Science, 39*(4), 781–803.

Table 1: Regional Overview of Gender Quotas in Parliaments

Region (No. of countries)	Countries with Quota (no.)	Quota Type(No. of countries)			Quota Target Range (% of Women) (No. of Countries)					Electoral Systems (No. of countries)					Legal sources (No. of countries)					
		Reserved seats	Candidate Quotas	Both Types	<20%	20-29%	30-39%	40-49%	50%	Proportional Representation	Majority/ plurality	Mixed	Indirect Elections	Not yet Established	Constitutions	Electoral Laws	Parity Laws	Party Laws	Financing Laws	Political Agreement
Europe (43)	21	0	21	0	0	0	4	14	3	18	1	2	0	0	1	18	6	0	4	0
Africa (54)	34	12	24	2	3	6	18	3	4	12	11	9	1	1	9	25	15	1	0	1
Americas (35)	19	0	19	0	0	1	6	3	9	14	1	4	0	0	1	16	2	3	0	0
Asia (48)	17	6	13	2	3	3	8	1	2	4	6	5	2	0	5	14	1	1	0	0
Oceania (14)	2	1	1	0	2	0	0	0	0	0	2	0	0	0	1	0	0	1	0	0
Total (194)	**93**	**19**	**78**	**4**	**8**	**10**	**36**	**21**	**18**	**48**	**21**	**20**	**3**	**1**	**17**	**73**	**24**	**6**	**4**	**1**

Source: United Nations Gender Quota Portal, Quota Analysis - Parliament

Table 2: Regional Overview of Gender Quotas in Local Government

Region (No. of countries)	Countries with Quota (no.)	Quota Type(No. of countries)			Quota Target Range (% of Women) (No. of Countries)					Electoral Systems (No. of countries)					Legal sources (No. of countries)						
		Reserved seats	Candidate Quotas	Both Types	<20%	20-29%	30-39%	40-49%	50%	Proportional Representation	Majority/ plurality	Mixed	Indirect Elections	Not yet Established	Constitutions	Electoral Laws	Local Government Law	Parity Laws	Party Laws	Financing Laws	Political Agreement
Europe (43)	18	0	18	0	0	0	3	12	3	13	0	5	0	0	0	14	5	4	0	0	0
Africa (54)	30	7	25	2	1	4	19	2	4	17	7	6	0	0	3	18	9	15	1	0	0
Americas (35)	16	1	16	1	0	1	5	2	8	11	1	4	0	0	1	13	4	3	4	0	0
Asia (48)	18	9	11	2	2	4	9	2	1	1	8	9	0	0	2	12	6	0	0	0	0
Oceania (14)	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
Total (194)	**82**	**17**	**70**	**5**	**3**	**9**	**36**	**18**	**16**	**42**	**16**	**24**	**0**	**0**	**6**	**57**	**24**	**22**	**5**	**0**	**0**

Source: United Nations Gender Quota Portal, Quota Analysis – Local Government.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Ancient Heritage to Modern Identity : The Historical Journey of Jammu and Kashmir

Vikas Chaturvedi*

*Assistant Professor, IPS Academy College Of Law, Sanwer, Indore (M.P.) INDIA

Abstract: This research paper examines the complex historical trajectory of Jammu and Kashmir from ancient times to the contemporary period, exploring how diverse cultural, religious, and political influences have shaped its unique identity. Through a comprehensive analysis of historical sources, archaeological evidence, and contemporary scholarship, this study traces the transformation of the region from a center of Buddhist learning and Vedic culture to its present-day contested status. The research investigates the layers of historical experience that have contributed to the region's consciousness, focusing on the interplay between indigenous traditions, external influences, and political developments that continue to define Kashmiri identity in the modern era.

Introduction - The historical narrative of Jammu and Kashmir represents one of the most intricate and contested accounts in South Asian historiography. Positioned strategically at the confluence of Central, South, and East Asian civilizations, this region has served as a crucible where diverse cultural streams have merged, creating a distinctive identity that defies simple categorization. The transformation from ancient heritage to modern identity encompasses millennia of human experience, religious evolution, political upheavals, and cultural synthesis. The region's geographical location, often described as the crown of the Indian subcontinent, has made it both a bridge and a battleground, facilitating cultural exchanges while simultaneously becoming the focal point of geopolitical conflicts. Understanding this transformation requires moving beyond surface-level political analyses to engage deeply with the historical processes that have shaped collective consciousness and identity formation in this contested space.

The complexity of Jammu and Kashmir's identity stems from its role as a meeting point of diverse civilizations and religious traditions. Unlike regions with more homogeneous historical experiences, Jammu and Kashmir has absorbed and integrated influences from Buddhism, Hinduism, Islam, and various Central Asian traditions, creating a syncretic culture that reflects its cosmopolitan heritage. This cultural amalgamation occurred over centuries through trade, conquest, spiritual movements, and artistic exchanges, each layer adding depth to the region's identity while sometimes creating tensions between competing visions of belonging. The contemporary challenges facing the region cannot be understood without appreciating this historical depth and the ways in which different communities draw upon selective aspects of this shared yet contested heritage to articulate their political aspirations and cultural identities.

Research Objectives: The primary objective of this research is to trace the historical evolution of Jammu and Kashmir from its ancient origins to its contemporary manifestation, examining how successive historical periods have contributed to the formation of regional identity. This investigation seeks to understand the continuities and ruptures in cultural development, identifying key transformative moments that fundamentally altered the region's trajectory. The research aims to move beyond nationalist or purely political interpretations to engage with the lived experiences of communities and the cultural processes through which identity has been negotiated and contested.

A second objective involves analyzing the relationship between religious transformation and identity formation, particularly examining how the transition from Buddhist and Hindu dominance to Islamic majority occurred and what implications this had for cultural practices, social structures, and political consciousness. This analysis necessitates careful attention to the syncretic nature of religious practice in Kashmir and the ways in which different traditions have coexisted, influenced each other, and sometimes come into conflict. Understanding these religious dynamics is essential for comprehending contemporary identity politics and the competing narratives about Kashmiri culture.

The research also aims to examine the impact of colonial and post-colonial political arrangements on identity formation, particularly focusing on how the Treaty of

Amritsar, the Dogra rule, partition, accession to India, and subsequent political developments have shaped contemporary understandings of Kashmiri identity. This objective requires analyzing the complex interplay between indigenous political movements, external interventions, and the evolving frameworks of autonomy and governance that have characterized the region's modern history.

Finally, the study seeks to understand the internal diversity within Jammu and Kashmir, recognizing that the experiences and aspirations of Kashmir Valley, Jammu, and Ladakh have often differed significantly. This objective aims to move beyond Kashmir-centric narratives to appreciate the plural nature of regional identity and the competing visions of political futures that different communities articulate.

Significance of the Research: This research holds significant scholarly value in contributing to the understanding of identity formation in contested territories, offering insights applicable beyond the specific case of Jammu and Kashmir. In an era characterized by identity politics, religious nationalism, and territorial disputes, understanding how historical processes shape contemporary conflicts becomes increasingly crucial. The Jammu and Kashmir case provides a compelling example of how ancient cultural heritage, medieval religious transformations, colonial legacies, and modern political arrangements interact to create complex identity matrices that resist simple resolution.

The study's significance extends to policy formulation and conflict resolution efforts. Many approaches to the Kashmir dispute have suffered from ahistorical perspectives that ignore the deep-rooted cultural complexities and the layered nature of identity in the region. By providing a comprehensive historical analysis, this research offers policymakers and peace activists a more nuanced understanding of the grievances, aspirations, and identities that must be accommodated in any sustainable political settlement. Understanding that contemporary conflicts are rooted in historical experiences of autonomy, marginalization, and unfulfilled political promises can inform more effective approaches to dialogue and reconciliation.

From a cultural preservation perspective, this research highlights the extraordinary heritage of Jammu and Kashmir and the threats posed to this heritage by ongoing conflict and identity politics. The syncretic traditions, literary achievements, artistic innovations, and architectural marvels that characterize the region represent irreplaceable cultural wealth that requires conscious effort to preserve and transmit to future generations. By documenting and analyzing this heritage, the research contributes to efforts aimed at cultural conservation and promotes appreciation for the composite nature of Kashmiri civilization.

The research also holds significance for understanding broader patterns of South Asian history, particularly regarding the processes through which Islam spread in the subcontinent, the nature of Sufi influence, the impact of Mughal rule on regional cultures, and the consequences of British colonial policies. Kashmir's experience illuminates larger historical dynamics while maintaining its distinctive character, making it an invaluable case study for comparative historical analysis.

Research Methodology: This research employs a comprehensive historical methodology drawing upon diverse primary and secondary sources to construct a multi-dimensional understanding of Jammu and Kashmir's historical trajectory. The methodological approach combines traditional historical analysis with insights from anthropology, political science, and cultural studies to capture the complexity of identity formation processes.

The study begins with careful examination of ancient textual sources, particularly Sanskrit literature including the Rajatarangini composed by Kalhana in the twelfth century, which provides detailed chronicles of Kashmir's early history, royal dynasties, and cultural practices. These texts are analyzed critically, recognizing their limitations and biases while extracting valuable information about social structures, religious practices, and political organization in ancient Kashmir. Archaeological evidence supplements textual analysis, providing material confirmation of Buddhist and Hindu cultural presence and offering insights into trade patterns, artistic developments, and urban settlement patterns.

For the medieval period, the research draws upon Persian and Kashmiri sources that document the transition to Islamic dominance and the cultural transformations that accompanied this shift. Sufi literature, hagiographical accounts, and administrative records from the Sultanate and Mughal periods illuminate the processes of religious conversion, syncretic practice, and cultural synthesis. Analysis of architectural remains, particularly Mughal gardens and mosques, provides material evidence of aesthetic preferences and technological capabilities during this period.

The colonial and modern periods require engagement with British administrative records, travel accounts, and official correspondence that document the establishment of Dogra rule and British policies toward the princely state. These sources must be read critically, recognizing their colonial biases while extracting factual information about governance structures, economic policies, and social conditions. The research also draws upon nationalist literature, including writings by Sheikh Mohammad Abdullah and other Kashmiri political leaders, to understand indigenous perspectives on political developments and aspirations for autonomy.

Contemporary scholarship on Kashmir provides analytical frameworks and interpretations that inform this study. The research engages critically with both Indian and Pakistani scholarly traditions, recognizing the nationalist biases that often color academic work on Kashmir while

synthesizing insights from diverse perspectives. International scholarship provides additional comparative perspectives and theoretical frameworks for understanding identity formation in contested territories.

The methodology acknowledges the limitations inherent in historical research on contested territories where historical narratives themselves become sites of political struggle. Different communities construct competing versions of history that serve contemporary political purposes, making objective historical reconstruction challenging. The research attempts to navigate these competing narratives by grounding analysis in verifiable evidence while remaining sensitive to the ways different communities experience and interpret shared historical events. The approach emphasizes plural perspectives rather than seeking a single authoritative narrative, recognizing that historical truth in such contexts is necessarily complex and multi-vocal.

Historical Analysis: Ancient Foundations: The ancient history of Jammu and Kashmir reveals a sophisticated civilization deeply embedded in Vedic and Buddhist traditions that flourished from the first millennium BCE onwards. The Kashmir Valley occupies a prominent position in Sanskrit literature, with references appearing in ancient texts that attest to its cultural significance and spiritual reputation. The region's reputation as a land of learning and philosophical inquiry was established early, with the development of distinctive schools of thought, particularly the Kashmir Shaivism tradition that made unique contributions to Hindu philosophical discourse. This indigenous philosophical tradition emphasized direct mystical experience and developed sophisticated theological and metaphysical concepts that influenced broader Hindu thought.

Archaeological investigations have confirmed Kashmir's importance as a major center of Buddhist learning, with evidence of monasteries, stupas, and educational institutions that attracted scholars from across Asia. The Buddhist period saw Kashmir emerge as a crucial node in the intellectual networks connecting Central Asia, China, and the Indian subcontinent. The famous Buddhist councils held in Kashmir and the region's role in the transmission of Buddhist texts and ideas to Central and East Asia underscore its cosmopolitan character and intellectual vitality. The development of distinct artistic styles in sculpture and architecture during this period created aesthetic traditions that would influence later cultural production.

The region's strategic location on the ancient Silk Route facilitated extensive cultural and commercial exchanges that contributed to its cosmopolitan character. Merchants, monks, and scholars traveling between India, Central Asia, and China passed through Kashmir, bringing goods, ideas, and artistic influences that enriched local culture. This exposure to diverse traditions fostered an openness to external influences while simultaneously strengthening indigenous cultural production. The foundations of Kashmiri language, with its distinct linguistic characteristics drawing from Sanskrit and Prakrit sources, were established during this formative period. Literary traditions, artistic conventions, and social structures that would persist through subsequent transformations took shape, creating an indigenous cultural framework with remarkable resilience.

Medieval Transformation: The Islamic Period: The medieval period brought fundamental transformations with the gradual spread of Islam from the fourteenth century onwards, fundamentally altering the religious landscape while contributing to cultural synthesis rather than wholesale replacement of existing traditions. The mechanism of religious conversion in Kashmir differed significantly from patterns observed in other parts of South Asia, occurring primarily through Sufi mystics and missionaries who emphasized spiritual devotion, personal piety, and mystical experience over rigid orthodox practice. This approach facilitated relatively peaceful transition and enabled the persistence of local customs and practices that merged with Islamic traditions to create distinctive cultural synthesis.

The teachings of influential Sufi saints like Mir Sayyid Ali Hamadani and his followers emphasized commonalities between Islamic mysticism and existing spiritual traditions, making Islam accessible to local populations while respecting aspects of indigenous culture. The emphasis on love, devotion, and direct spiritual experience resonated with existing spiritual sensibilities shaped by Buddhist and Shaivite traditions. This syncretic approach to religious practice became a defining characteristic of Kashmiri Islam, with local customs, festivals, and spiritual practices incorporating both Islamic and pre-Islamic elements. The concept of Kashmiriyat, emphasizing communal harmony and shared cultural identity transcending religious boundaries, has its roots in this syncretic medieval tradition.

The reign of Sultan Zain-ul-Abidin in the fifteenth century exemplified this period of religious tolerance and cultural flourishing, with the ruler extending patronage to both Sanskrit and Persian learning, supporting scholars of diverse backgrounds, and promoting cultural production. His policies of religious tolerance, administrative efficiency, and cultural patronage created conditions for remarkable artistic and intellectual achievements. The translation of Sanskrit texts into Persian, the flourishing of Persian literature adapted to local contexts, and the development of distinctive architectural styles demonstrated the creative synthesis occurring during this period.

The Mughal conquest of Kashmir in 1586 integrated the region into one of the world's most powerful and sophisticated empires, bringing architectural innovations, administrative systems, and economic prosperity that transformed Kashmir's material culture and political organization. The Mughal emperors, particularly Jahangir who famously declared "If there is paradise on earth, it is

here, it is here, it is here," were captivated by Kashmir's natural beauty and established famous gardens that became symbols of earthly paradise. These gardens, incorporating Persian design principles adapted to Kashmiri topography, represent remarkable achievements in landscape architecture and hydraulic engineering that continue to define Kashmir's aesthetic landscape.

The Mughal period witnessed the flourishing of Kashmir's renowned handicraft traditions in shawl-making, carpet-weaving, woodwork, and papier-mâché that continue to define the region's cultural identity and economic base. The imperial patronage and connections to wider Mughal markets stimulated craft production and encouraged artistic innovation. The development of the famous Kashmiri shawl, woven from pashmina wool with intricate designs, created an export commodity that brought Kashmir international fame and economic prosperity. These craft traditions became carriers of cultural identity, with designs, techniques, and aesthetic preferences passed down through generations, embodying collective memory and artistic achievement.

Colonial Period: Dogra Rule and Political Awakening: The decline of Mughal power in the eighteenth century ushered in turbulent Afghan rule characterized by oppression, economic exploitation, and religious intolerance that generated widespread discontent and left traumatic memories in Kashmiri collective consciousness. The conquest by Maharaja Ranjit Singh's Sikh Empire in 1819 brought relief from Afghan oppression but proved brief, lasting only until 1846. The most consequential transformation came with the Treaty of Amritsar in that year, when the British East India Company sold Kashmir to Gulab Singh, the Dogra ruler of Jammu, for seventy-five lakh rupees, creating the princely state of Jammu and Kashmir. This transaction, unique in its naked commercialism, brought together diverse regions including the Muslim-majority Kashmir Valley, Hindu-majority Jammu, Buddhist-dominated Ladakh, and other territories under centralized Dogra rule. The creation of this composite state had profound implications for identity formation, as populations with different religious compositions, historical experiences, and cultural traditions were unified under a single administrative structure. The Dogra period established centralized administration, modern infrastructure including roads and communications, and legal frameworks that created conditions for economic development. However, the period was also marked by significant social inequalities, with power concentrated in the hands of Hindu elites while the Muslim majority in Kashmir Valley faced discrimination in government employment, education, and economic opportunities.

The Muslim majority in Kashmir Valley increasingly felt marginalized under Hindu Dogra rule, leading to political awakening and reform movements in the early twentieth century. The 1931 agitation against Dogra autocracy marked a turning point, with protests demanding political rights, economic justice, and an end to discriminatory practices. Sheikh Mohammad Abdullah emerged as the towering figure of Kashmiri nationalism during this period, founding the All Jammu and Kashmir Muslim Conference in 1932, which was later transformed into the secular National Conference in 1939. This transformation from communal to secular political organization reflected Abdullah's vision of uniting all communities in the struggle against feudalism and for democratic rights.

The National Conference's political program, articulated in documents like "Naya Kashmir" (New Kashmir), combined anti-colonial nationalism with demands for land reforms, social justice, and economic transformation. This progressive political vision attracted support across communal lines and positioned Kashmir's freedom movement within broader currents of anti-colonial struggle in South Asia. However, the movement also reflected region-specific grievances related to Dogra rule and aspirations for autonomy that would complicate Kashmir's relationship with independent India after 1947.

Partition and Its Consequences: The partition of British India in 1947 created the fundamental parameters of the modern Kashmir dispute, with consequences that continue to shape regional politics and identity formation. The princely states were given the option of acceding to India or Pakistan based on geographical contiguity and the wishes of their rulers and people. Kashmir's position was particularly complex due to its Muslim-majority population, Hindu ruler, geographical connections to both countries, and strategic importance. Maharaja Hari Singh's initial preference for independence proved untenable given the geopolitical realities of the time.

The circumstances of Kashmir's accession to India remain contested, with competing narratives emphasizing different aspects of the complex events of October 1947. Pakistan's military intervention through tribal militias prompted Maharaja Hari Singh to seek Indian military assistance, which was made conditional upon accession to India. Sheikh Abdullah's support for accession reflected his secular orientation and concerns about Pakistan's Islamic state ideology, but his acceptance was premised on promises of autonomy and eventual ratification through plebiscite. The resulting war between India and Pakistan, United Nations involvement, and ceasefire line that divided Kashmir established the territorial and political framework that persists to this day.

Article 370 of the Indian Constitution granted special autonomous status to Jammu and Kashmir, representing an attempt to accommodate the region's distinct identity within the Indian Union while respecting the conditional nature of accession. This constitutional provision allowed the state to have its own constitution, limited the application of Indian laws, and restricted property rights and permanent residence to state subjects. The framework was designed

to preserve Kashmir's distinct character while ensuring its integration into India's democratic structure. However, the unfulfilled promise of plebiscite and questions about the finality of accession became persistent sources of Indo-Pak conflict and internal political contestation.

The post-independence period witnessed ongoing struggles over identity, autonomy, and representation, with Sheikh Abdullah's early attempts at forging secular Kashmiri nationalism giving way to disillusionment following his detention in 1953 and subsequent erosion of autonomy. The dismissal of elected governments, rigged elections, and gradual centralization of power undermined democratic processes and created political alienation. Each erosion of autonomy, whether through presidential orders extending Indian laws or constitutional amendments limiting Article 370's protections, reinforced perceptions of broken promises and generated resistance. The complex interplay between democratic politics, autonomy arrangements, and security concerns created cycles of protest and repression that periodically destabilized the region.

Contemporary Conflict and Identity Politics: The eruption of armed insurgency in 1989 transformed Kashmir Valley into a conflict zone, fundamentally altering social fabric and intensifying identity politics along religious lines. The insurgency emerged from accumulated grievances related to political marginalization, rigged elections, economic underdevelopment, and frustrated aspirations for self-determination. The movement initially combined secular Kashmiri nationalism with demands for independence or accession to Pakistan, but gradually became more religiously inflected as Pakistani support empowered Islamist militant groups. The resulting violence claimed tens of thousands of lives, displaced populations including the traumatic exodus of Kashmiri Pandits from the Valley, and led to massive militarization that transformed daily life.

The conflict period exposed and deepened divisions within Jammu and Kashmir, revealing competing visions of identity and political futures. While Kashmir Valley emphasized distinct Kashmiri identity and self-determination aspirations, Jammu and Ladakh had different historical experiences and political orientations. Jammu's Hindu majority maintained closer affinity with Indian nationalism and viewed the insurgency primarily through security lenses, while Ladakh's Buddhist population felt marginalized within the state structure and sought recognition of distinct identity through administrative separation. These internal diversities created complex political alignments that complicate any uniform understanding of Kashmiri identity or political aspirations.

The twenty-first century brought new dimensions with globalization, democratization pressures, and evolving security paradigms. Despite declining violence levels from 1990s peaks, fundamental political issues remained unresolved. A new generation with no memory of pre-conflict times, widespread social media use, and increased international attention created new forms of political expression and mobilization. Events like the 2008 Amarnath land controversy, 2010 youth protests following civilian deaths, and 2016 unrest following the killing of militant Burhan Wani demonstrated continuing political alienation and the capacity for mass mobilization around grievances. The revocation of Article 370 and bifurcation of the state in 2019 represented the most significant constitutional change since accession, fundamentally altering the political framework within which Kashmiri identity had been negotiated.

Cultural Heritage and Identity: The cultural heritage of Jammu and Kashmir encompasses extraordinary diversity in language, literature, arts, and crafts reflecting centuries of cross-cultural fertilization and creative synthesis. Kashmiri literature, with mystical poets like Lal Ded (Lalla) whose verses embody syncretic spiritual traditions transcending religious boundaries, and medieval poets like Habba Khatun whose romantic lyrics express universal human emotions, represents distinctive literary achievement. The poetic tradition continued through centuries, producing works that drew from multiple linguistic and cultural sources while maintaining distinctively Kashmiri sensibilities. Musical forms including Sufiana Kalam and traditional folk music preserve cultural memory and spiritual traditions, serving as repositories of collective identity.

Traditional crafts including pashmina shawl weaving, carpet making, papier-mâché work, woodcarving, and copperware represent not merely economic activities but carriers of aesthetic traditions and cultural knowledge passed through generations. The intricate designs, technical sophistication, and artistic sensibilities embodied in these crafts reflect centuries of refinement and creative innovation. Architectural heritage ranging from ancient temples like Martand and Avantipur to Mughal gardens including Shalimar and Nishat Bagh narrates the region's layered history through built forms. The distinctive wooden architecture of Kashmir, incorporating seismic resistance and aesthetic beauty, represents indigenous architectural wisdom adapted to local conditions.

This cultural wealth has been both a source of pride and contested terrain, with different communities claiming particular elements while sometimes overlooking the fundamentally composite nature of cultural development. The syncretic traditions that characterized Kashmir's cultural production for centuries have been challenged by identity politics that seek to appropriate culture for partisan purposes. The conflict period threatened cultural heritage through physical destruction, disruption of traditional knowledge transmission, and politicization of cultural symbols. Efforts at cultural preservation must navigate these contested terrains while emphasizing the composite nature of Kashmiri civilization and the shared heritage that transcends contemporary divisions.

Conclusions: The journey from ancient heritage to modern identity in Jammu and Kashmir demonstrates how historical legacies, geographical realities, and political developments interact to shape collective consciousness and identity formation. The region's history reveals remarkable continuities alongside transformative ruptures, with ancient cultural foundations persisting through successive waves of religious, political, and social change. The syncretic traditions established through centuries of cultural exchange created a distinctive identity characterized by cosmopolitanism, spiritual depth, and artistic achievement.

Understanding contemporary Kashmir requires appreciating its plural nature and the coexisting narratives that different communities articulate. Kashmiriyat emphasizing communal harmony and shared cultural identity competes with religious identities, linguistic nationalism, and competing visions of political belonging. The Kashmir Valley's emphasis on distinct identity and self-determination aspirations differs from Jammu's closer identification with Indian nationalism and Ladakh's quest for recognition of its Buddhist identity. These internal diversities complicate any uniform resolution and require political frameworks capable of accommodating plural identities and aspirations.

The political challenges facing Jammu and Kashmir stem from historical experiences of autonomy erosion, unfulfilled political promises, and cycles of mobilization and repression that have created deep alienation. The conflict period fundamentally altered social fabric, intensified religious polarization, and created traumatic memories that shape contemporary consciousness. Any sustainable political settlement must address these accumulated grievances while creating space for diverse visions of identity and political futures.

The cultural heritage of Jammu and Kashmir represents invaluable wealth that requires conscious preservation efforts. The syncretic traditions, artistic achievements, and spiritual teachings that characterize Kashmiri civilization offer resources for imagining futures that transcend contemporary conflicts. Emphasizing shared cultural heritage and the composite nature of identity formation can provide foundations for reconciliation and coexistence.

Recommendations: Creating sustainable peace and accommodating diverse identities in Jammu and Kashmir requires comprehensive approaches addressing political, economic, social, and cultural dimensions. Political frameworks must recognize the region's distinct identity while ensuring democratic governance, protection of human rights, and meaningful autonomy. Dialogue processes should include all stakeholders, including diverse communities within the region, civil society organizations, and younger generations whose political consciousness has been shaped by conflict. Any political settlement must be perceived as legitimate by affected populations rather than imposed externally.

Economic development strategies should address regional disparities and create opportunities for youth who have limited economic prospects in the conflict-affected region. Investment in education, skill development, and employment generation can address grievances while creating stakes in peaceful futures. Tourism development that respects environmental sustainability and local communities can leverage Kashmir's natural beauty while generating economic benefits. Revival and support for traditional crafts can preserve cultural heritage while providing livelihoods.

Reconciliation efforts must address the traumatic legacies of conflict, including the displacement of Kashmiri Pandits, civilian casualties, human rights violations, and psychological trauma affecting entire generations. Truth and reconciliation processes that acknowledge suffering while promoting healing can contribute to social cohesion. Cultural initiatives emphasizing shared heritage and promoting inter-community dialogue can rebuild trust and create foundations for coexistence.

Educational curricula should present balanced historical narratives that acknowledge diverse perspectives rather than promoting partisan versions of history. Promoting critical thinking and exposing students to multiple viewpoints can create more informed citizenship capable of navigating complex political landscapes. Cultural education emphasizing Kashmir's syncretic traditions can counter polarizing narratives and promote appreciation for composite identity.

International community engagement should support dialogue processes and economic development while respecting that sustainable solutions must emerge from negotiations among principal stakeholders. International attention to human rights concerns should be balanced with recognition of security challenges and the complexity of the situation. Regional cooperation between India and Pakistan on issues of mutual concern can create positive momentum for addressing the Kashmir dispute.

The path forward requires sustained commitment to dialogue, mutual recognition of legitimate aspirations, and imagination of political futures that honor historical legacies while transcending the conflicts they have generated. The rich cultural heritage, spiritual traditions, and historical experiences of coexistence in Jammu and Kashmir offer resources for building inclusive futures that accommodate diverse identities within frameworks of democracy, dignity, and peace. The challenge lies in creating political will and institutional mechanisms to translate these possibilities into lived realities that benefit all communities in this historically and culturally significant region.

References:-

1. Bamzai, P.N.K. (1994). *Culture and Political History of Kashmir: Volume I - Ancient Kashmir*. New Delhi: MD

Publications Pvt Ltd.
2. Bazaz, Prem Nath. (1954). *The History of Struggle for Freedom in Kashmir: Cultural and Political, from the Earliest Times to the Present Day*. New Delhi: Kashmir Publishing Company.
3. Bose, Sumantra. (2003). *Kashmir: Roots of Conflict, Paths to Peace*. Cambridge, MA: Harvard University Press.
4. Bose, Sumantra. (2007). *Contested Lands: Israel-Palestine, Kashmir, Bosnia, Cyprus, and Sri Lanka*. Cambridge, MA: Harvard University Press.
5. Chatterji, Angana P. (2009). *Violent Gods: Hindu Nationalism in India's Present: Narratives from Orissa*. New Delhi: Three Essays Collective.
6. Dhar, Somnath. (2001). *Folklore of Kashmir*. New Delhi: National Book Trust.
7. Evans, Alexander. (2002). *Why Peace Won't Come to Kashmir*. Current History, 101(654), 162-167.
8. Ganguly, Sumit. (1996). *Explaining the Kashmir Insurgency: Political Mobilization and Institutional Decay*. International Security, 21(2), 76-107.
9. Ganguly, Sumit. (1997). *The Crisis in Kashmir: Portents of War, Hopes of Peace*. Cambridge: Cambridge University Press.
10. Guha, Ramachandra. (2007). *India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy*. London: Macmillan.
11. Habibullah, Wajahat. (2008). *My Kashmir: Conflict and the Prospects of Enduring Peace*. Washington, DC: United States Institute of Peace Press.
12. Hangloo, Rattan Lal. (1995). *Agrarian System of Kashmir (1846-1889)*. New Delhi: Commonwealth Publishers.
13. Hewitt, Vernon. (2001). *Towards the Future? Jammu and Kashmir in the 21st Century*. Cambridge: Granta Editions.
14. Hussain, Ijaz. (1998). *Kashmir Dispute: An International Law Perspective*. Islamabad: National Institute of Pakistan Studies.
15. Iqbal, Javid. (2004). *Ideology of Pakistan*. Lahore: Sang-e-Meel Publications.
16. Jha, Prem Shankar. (1996). *Kashmir, 1947: Rival Versions of History*. Delhi: Oxford University Press.
17. Kak, Sanjay. (Ed.). (2011). *Until My Freedom Has Come: The New Intifada in Kashmir*. New Delhi: Penguin Books India.
18. Kalhana. (Trans. M.A. Stein, 1900). *Rajatarangini: Chronicle of the Kings of Kashmir*. Westminster: Archibald Constable and Company.
19. Korbel, Josef. (1954). *Danger in Kashmir*. Princeton, NJ: Princeton University Press.
20. Lamb, Alastair. (1991). *Kashmir: A Disputed Legacy 1846-1990*. Hertingfordbury: Roxford Books.
21. Lamb, Alastair. (1997). *Incomplete Partition: The Genesis of the Kashmir Dispute 1947-1948*. Herting fordbury: Roxford Books.
22. Lawrence, Walter R. (1895). *The Valley of Kashmir*. London: Henry Frowde.
23. Malik, Iftikhar H. (2002). *Kashmir: Ethnic Conflict, International Dispute*. Karachi: Oxford University Press.
24. Mattoo, Amitabh. (Ed.). (2003). *Kashmir: The Vajpayee Years*. New Delhi: Har-Anand Publications.
25. Mohan, C. Raja. (2003). *Crossing the Rubicon: The Shaping of India's New Foreign Policy*. New Delhi: Viking.
26. Navlakha, Gautam. (1996). *Internal Displacement in Jammu and Kashmir*. Economic and Political Weekly, 31(51), 3349-3352.
27. Pandit, Shiv Nath. (2010). *Kashmiri Pandits: Looking to the Future*. New Delhi: Har-Anand Publications.
28. Puri, Balraj. (1993). *Kashmir: Towards Insurgency*. New Delhi: Orient Longman.
29. Puri, Balraj. (2008). *Kashmir: Insurgency and After*. New Delhi: Orient Longman.
30. Rai, Mridu. (2004). *Hindu Rulers, Muslim Subjects: Islam, Rights, and the History of Kashmir*. Princeton, NJ: Princeton University Press.
31. Raina, A.N. (1981). *Geography of Jammu and Kashmir*. New Delhi: National Book Trust.
32. Schofield, Victoria. (2000). *Kashmir in Conflict: India, Pakistan and the Unending War*. London: I.B. Tauris.
33. Schofield, Victoria. (2010). *Kashmir in Crossfire*. London: I.B. Tauris.
34. Swami, Praveen. (2007). *India, Pakistan and the Secret Jihad: The Covert War in Kashmir, 1947-2004*. London: Routledge.
35. Talbot, Ian. (2016). *A History of Modern South Asia: Politics, States, Diasporas*. New Haven, CT: Yale University Press.
36. Varshney, Ashutosh. (1991). *India, Pakistan, and Kashmir: Antinomies of Nationalism*. Asian Survey, 31(11), 997-1019.
37. Widmalm, Sten. (2002). *Kashmir in Comparative Perspective: Democracy and Violent Separatism in India*. London: RoutledgeCurzon.
38. Wirsing, Robert G. (1994). *India, Pakistan, and the Kashmir Dispute: On Regional Conflict and Its Resolution*. New York: St. Martin's Press.
39. Zutshi, Chitralekha. (2003). *Languages of Belonging: Islam, Regional Identity, and the Making of Kashmir*. London: C. Hurst & Co.
40. Zutshi, Chitralekha. (2014). *Kashmir's Contested Pasts: Narratives, Sacred Geographies, and the Historical Imagination*. New Delhi: Oxford University Press.

****

डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया में सामाजिक समस्याओं की प्रासंगिकता : वर्तमान परिदृश्य के संदर्भ में अध्ययन

निधी सिंह* डॉ. विनय कुमार सोनवानी**

* शोधार्थी (हिन्दी) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
** सह प्राध्यापक (हिन्दी) PMCOE शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बुढ़ार, शहडोल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – हिन्दी दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन ने दलित समाज के अनुभवों, संघर्षों और सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया इस परंपरा की एक महत्वपूर्ण कृति है। यह आत्मकथा केवल एक व्यक्ति के जीवन-संघर्ष का दस्तावेज नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत विषमता, आर्थिक अभाव, अशिक्षा, सामाजिक बहिष्करण, लैंगिक असमानता तथा अंधविश्वास जैसी समस्याओं का यथार्थ चित्रण भी है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मुर्दहिया में वर्णित सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करते हुए उनकी वर्तमान भारतीय समाज में प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संविधान द्वारा समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना के बावजूद अनेक सामाजिक समस्याएँ आज भी विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं। इस दृष्टि से मुर्दहिया समकालीन समाज को समझने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।
शब्द कुंजी – मुर्दहिया, तुलसीराम, दलित साहित्य, सामाजिक समस्याएँ, जातिवाद, शिक्षा, सामाजिक न्याय, समकालीन समाज।

प्रस्तावना – हिन्दी साहित्य में आत्मकथा एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन के अनुभवों को सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत करता है। दलित आत्मकथाएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे समाज के उस वर्ग की आवाज को सामने लाती हैं जिसे सदियों तक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से हाशिए पर रखा गया। डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया इसी परंपरा की एक सशक्त कृति है।

मुर्दहिया शब्द स्वयं दलित जीवन की त्रासदी और सामाजिक स्थिति का प्रतीक है। यह आत्मकथा लेखक के बचपन, परिवार, गाँव और सामाजिक परिवेश का ऐसा चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें जातिगत भेदभाव, गरीबी, भूख, अपमान और संघर्ष जीवन की सामान्य स्थितियाँ हैं। लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से भारतीय समाज की गहरी सामाजिक संरचनाओं को उजागर किया है।

यह कृति दलित अनुभवों, सामाजिक बहिष्करण और शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्माण की प्रक्रिया को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। समकालीन शोध भी यह स्वीकार करते हैं कि मुर्दहिया जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्करण और संरचनात्मक असमानताओं को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

शोध का उद्देश्य:

1. मुर्दहिया में चित्रित प्रमुख सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करना।
2. इन समस्याओं के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों का विश्लेषण करना।
3. वर्तमान भारतीय समाज में उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।
4. सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय के संदर्भ में आत्मकथा के योगदान का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति – यह शोध गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए मुर्दहिया को प्राथमिक स्रोत तथा दलित साहित्य, सामाजिक न्याय, जाति-व्यवस्था और समकालीन सामाजिक अध्ययनों को द्वितीयक स्रोत के रूप में उपयोग किया गया है।

मुर्दहिया में सामाजिक समस्याओं का चित्रण

1. जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता– भारतीय समाज की सबसे जटिल समस्या जाति-व्यवस्था रही है। मुर्दहिया में लेखक ने बचपन से ही जातिगत अपमान और सामाजिक बहिष्कार का अनुभव किया है। दलित समुदाय को सार्वजनिक संसाधनों, धार्मिक स्थलों और सामाजिक गतिविधियों से दूर रखा जाता था।

विद्यालयों में दलित छात्रों के साथ अलग व्यवहार, पानी पीने की अलग व्यवस्था और सामाजिक दूरी का पालन अस्पृश्यता की गहरी जड़ों को दर्शाता है। लेखक का अनुभव केवल व्यक्तिगत नहीं बल्कि पूरे दलित समुदाय की सामूहिक पीड़ा का प्रतिनिधित्व करता है।

आज भी जातिगत भेदभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। विभिन्न सामाजिक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा, रोजगार और सामाजिक जीवन में जाति आधारित असमानताएँ अनेक रूपों में मौजूद हैं।

2. आर्थिक विषमता और गरीबी– मुर्दहिया का एक महत्वपूर्ण पक्ष आर्थिक अभाव का चित्रण है। लेखक के परिवार को भोजन, वस्त्र और आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

गरीबी केवल आर्थिक समस्या नहीं बल्कि सामाजिक सम्मान और अवसरों से वंचित होने का कारण भी है। दलित समुदाय की आर्थिक स्थिति उनके सामाजिक स्थान से जुड़ी हुई थी। जाति और गरीबी का संबंध आत्मकथा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

वर्तमान भारत में आर्थिक विकास के बावजूद सामाजिक समूहों के बीच आय और अवसरों की असमानता बनी हुई है। अनुसूचित जातियों और वंचित वर्गों में गरीबी की दर अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है।

3. शिक्षा संबंधी समस्याएँ – डॉ. तुलसीराम के जीवन में शिक्षा मुक्ति

का माध्यम बनकर उभरती है। आर्थिक कठिनाइयों, सामाजिक भेदभाव और संसाधनों के अभाव के बावजूद लेखक शिक्षा प्राप्त करने के लिए निरंतर संघर्ष करता है।

आत्मकथा यह स्पष्ट करती है कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति का माध्यम नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन का उपकरण है। लेखक का जीवन इस तथ्य का प्रमाण है कि शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का महत्वपूर्ण साधन बन सकती है।

आज भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समान पहुँच एक चुनौती बनी हुई है। डिजिटल संसाधनों, निजी शिक्षा और तकनीकी सुविधाओं तक पहुँच में सामाजिक असमानताएँ देखी जा सकती हैं।

4. भूख और कुपोषण की समस्या – आत्मकथा में कई प्रसंग ऐसे हैं जहाँ भोजन की कमी जीवन की कठोर वास्तविकता के रूप में सामने आती है। भूख केवल शारीरिक आवश्यकता नहीं बल्कि सामाजिक संरचना की विफलता का प्रतीक बन जाती है।

लेखक के अनुभव यह दर्शाते हैं कि गरीबी और भूख ने दलित समुदाय के विकास को गंभीर रूप से प्रभावित किया। यह समस्या आज भी भारत के अनेक ग्रामीण और वंचित क्षेत्रों में देखी जा सकती है।

5. अंधविश्वास और रूढ़िवादिता – ग्रामीण समाज में अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़ियों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। बीमारी, प्राकृतिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बजाय अंधविश्वासों में खोजा जाता है।

लेखक ने ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है जो यह दर्शाते हैं कि अंधविश्वास सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। आज भी शिक्षा के विस्तार के बावजूद अनेक क्षेत्रों में अंधविश्वास और अवैज्ञानिक धारणाएँ विद्यमान हैं।

6. लैंगिक असमानता – मुर्दहिया में दलित महिलाओं की स्थिति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे जाति और लिंग दोनों स्तरों पर शोषण का सामना करती हैं।

महिलाओं को शिक्षा, स्वतंत्र निर्णय और सामाजिक सम्मान से वंचित रखा जाता है। घरेलू श्रम, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक नियंत्रण उनके जीवन को सीमित कर देते हैं।

आधुनिक समय में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, किंतु लैंगिक असमानता अभी भी एक गंभीर सामाजिक समस्या बनी हुई है। दलित महिलाओं के संदर्भ में यह समस्या और अधिक जटिल हो जाती है।

वर्तमान परिदृश्य में मुर्दहिया की प्रासंगिकता

1. सामाजिक न्याय की अवधारणा – भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय को मूल अधिकारों के रूप में स्वीकार किया है। इसके बावजूद सामाजिक न्याय की स्थापना एक सतत प्रक्रिया बनी हुई है।

मुर्दहिया हमें यह समझने में सहायता करती है कि सामाजिक न्याय केवल कानूनी प्रावधानों से नहीं बल्कि सामाजिक चेतना और व्यवहार परिवर्तन से संभव है।

2. शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन – आज भी शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी माध्यम माना जाता है। लेखक का जीवन इस बात का उदाहरण है कि शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक बंधनों से मुक्त कर सकती है।

नई शिक्षा नीति, डिजिटल शिक्षा और उच्च शिक्षा के अवसरों के विस्तार के बावजूद सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ शिक्षा के क्षेत्र में चुनौतियाँ उत्पन्न कर रही हैं।

3. जाति विमर्श की समकालीन उपस्थिति – समकालीन भारत में जाति का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ है। सोशल मीडिया, विवाह, राजनीति और सामाजिक संबंधों में जातिगत पहचान आज भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आधुनिक तकनीक के विस्तार के साथ जातिगत पूर्वाग्रहों के नए रूप भी सामने आए हैं।

4. दलित अस्मिता और आत्मसम्मान – मुर्दहिया दलित अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। यह आत्मकथा आत्मसम्मान, संघर्ष और आत्मनिर्भरता का संदेश देती है।

दलित साहित्य आज सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक विमर्श का महत्वपूर्ण माध्यम बन चुका है। समकालीन अध्ययनों में भी मुर्दहिया को दलित प्रतिरोध और वैकल्पिक सामाजिक दृष्टि की महत्वपूर्ण कृति माना गया है।

मुर्दहिया और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाएँ – यह आत्मकथा केवल समस्याओं का वर्णन नहीं करती बल्कि परिवर्तन की संभावनाओं को भी रेखांकित करती है। शिक्षा, सामाजिक चेतना, संगठन और लोकतांत्रिक मूल्यों के माध्यम से समाज में समानता और न्याय की स्थापना की जा सकती है।

लेखक का जीवन इस तथ्य का प्रमाण है कि विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष और शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन संभव है।

निष्कर्ष– डॉ. तुलसीराम की मुर्दहिया हिन्दी दलित आत्मकथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें वर्णित जातिगत भेदभाव, आर्थिक विषमता, अशिक्षा, भूख, अंधविश्वास और लैंगिक असमानता जैसी समस्याएँ केवल अतीत की घटनाएँ नहीं हैं बल्कि वर्तमान समाज में भी विभिन्न रूपों में मौजूद हैं।

यह आत्मकथा सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज होने के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन का घोषणापत्र भी है। शिक्षा, समानता, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के मूल्यों को स्थापित करने में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में जब समावेशी समाज और सामाजिक न्याय की चर्चा व्यापक रूप से हो रही है, तब मुर्दहिया का अध्ययन और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. तुलसीराम, मुर्दहिया, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 5-183।
2. तुलसीराम, मणिकर्णिका, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2014।
3. आंबेडकर, भीमराव रामजी, जाति का विनाश, नई दिल्ली: विभिन्न संस्करण।
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश,जूठन, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997।
5. लिंबाले, शरणकुमार, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
6. ठाकुर, मणींद्र नाथ, 'ज्ञान की सामाजिक उपयोगिता और 'मुर्दहिया'।' प्रतिमान, खंड 1, अंक 1, 2013, पृ. 52-72।
7. सावंत, एस., 'तुलसीराम की 'मुर्दहिया' में चित्रित दलित विमर्श।' Golden Research Thoughts, खंड 1, अंक VII, जनवरी 2012, पृ. 1-4।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

समावेशी विकास में स्टैंड-अप इंडिया योजना की भूमिका: एक मूल्यांकनात्मक अध्ययन

डॉ. दीपक कुमार राणा*

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) टी.पी. कॉलेज, मधेपुरा (बिहार) भारत

शोध सारांश – समावेशी विकास समकालीन विकास विमर्श की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जिसका उद्देश्य आर्थिक विकास के लाभों को समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाना है। भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं की उद्यमिता में सीमित भागीदारी लंबे समय से चिंता का विषय रही है। इस चुनौती के समाधान हेतु भारत सरकार ने 5 अप्रैल 2016 को स्टैंड-अप इंडिया योजना प्रारम्भ की। योजना का उद्देश्य प्रत्येक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक शाखा द्वारा कम से कम एक अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा एक महिला उद्यमी को रू10 लाख से रू1 करोड़ तक का ऋण प्रदान करना था। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य समावेशी विकास में स्टैंड-अप इंडिया योजना की भूमिका का मूल्यांकन करना है। अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों एवं सरकारी रिपोर्टों पर आधारित है। निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि योजना ने वित्तीय समावेशन, महिला उद्यमिता, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय के आर्थिक सशक्तिकरण तथा रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मार्च 2025 तक योजना के अंतर्गत लगभग 2.75 लाख ऋण खाते स्वीकृत किए गए तथा रू62,790 करोड़ से अधिक की राशि स्वीकृत की गई। अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि स्टैंड-अप इंडिया योजना समावेशी विकास को बढ़ावा देने वाली एक प्रभावी सार्वजनिक नीति रही है।
शब्द कुंजी – समावेशी विकास, स्टैंड-अप इंडिया योजना, महिला उद्यमिता, वित्तीय समावेशन, सशक्तिकरण, रोजगार सृजन।

प्रस्तावना – भारत की आर्थिक प्रगति के बावजूद सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ लंबे समय से विद्यमान रही हैं। विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं को उद्यम स्थापना हेतु वित्तीय संसाधनों तक पहुँच प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वित्तीय संस्थानों की कठोर प्रक्रियाएँ, संपार्श्विक कि कमी तथा उद्यमिता संबंधी प्रशिक्षण का अभाव इन वर्गों के आर्थिक विकास में बाधक रहा है।

समावेशी विकास वह प्रक्रिया है जिसमें आर्थिक विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचते हैं। किसी भी राष्ट्र की प्रगति तभी सार्थक मानी जाती है जब विकास का लाभ सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को भी प्राप्त हो। भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, गरीबी तथा वित्तीय बहिष्करण लंबे समय से प्रमुख चुनौतियाँ रही हैं। उद्यमिता आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन है। उद्यमिता से न केवल आय में वृद्धि होती है, बल्कि रोजगार सृजन, नवाचार तथा क्षेत्रीय विकास को भी गति मिलती है। किंतु सामाजिक रूप से वंचित वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदायों तथा महिलाओं के लिए व्यवसाय प्रारंभ करना सरल नहीं रहा है। वित्तीय संसाधनों की कमी, बैंक ऋण तक सीमित पहुँच तथा उद्यमिता संबंधी मार्गदर्शन के अभाव के कारण इन वर्गों की आर्थिक भागीदारी अपेक्षाकृत कम रही है। भारत सरकार द्वारा समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इसी पृष्ठभूमि में भारत सरकार ने 5 अप्रैल 2016 को स्टैंड-अप इंडिया योजना प्रारंभ की। यह योजना सामाजिक न्याय एवं आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के साथ-साथ समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

आर्थिक विकास तभी सार्थक माना जाता है जब उसके लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचें। केवल सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि समावेशी विकास की गारंटी नहीं देती। यदि विकास प्रक्रिया में सामाजिक रूप से वंचित वर्गों, महिलाओं तथा कमजोर समुदायों की भागीदारी सीमित रहे तो विकास असमान और असंतुलित हो जाता है।

भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं को उद्यम स्थापना हेतु पूँजी, प्रशिक्षण तथा संस्थागत सहायता प्राप्त करने में ऐतिहासिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इस पृष्ठभूमि में स्टैंड-अप इंडिया योजना को एक समावेशी वित्तीय पहल के रूप में प्रारम्भ किया गया। योजना का मूल उद्देश्य उद्यमिता को सामाजिक न्याय तथा आर्थिक अवसरों से जोड़ना था।

साहित्य समीक्षा

Shivakumar (2020) ने Stand-Up India Scheme की संभावनाओं एवं चुनौतियों का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि यह योजना महिलाओं तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उद्यमियों को संस्थागत ऋण उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण माध्यम है, किन्तु सूचना के अभाव, बैंकिंग प्रक्रियाओं की जटिलता तथा मार्गदर्शन की कमी जैसी चुनौतियाँ इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं।

Kaur and Arora (2025) ने पंजाब एवं भारत के अन्य राज्यों की तुलना करते हुए स्टैंड-अप इंडिया योजना की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया। अध्ययन में पाया गया कि योजना ने महिलाओं तथा अनुसूचित

जाति/अनुसूचित जनजाति उद्यमियों को संस्थागत ऋण उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शोधकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि योजना ने उद्यमिता विकास, वित्तीय समावेशन तथा आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया, यद्यपि विभिन्न राज्यों में इसके प्रभाव का स्तर भिन्न-भिन्न रहा।

Verma, Bajpai एवं Singh (2024) ने स्टैंड-अप इंडिया योजना की भूमिका का विश्लेषण महिलाओं तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उद्यमियों के सशक्तिकरण के संदर्भ में किया। अध्ययन में बताया गया कि 2016 में प्रारम्भ की गई यह योजना रू10 लाख से रू1 करोड़ तक के ऋण उपलब्ध कराकर महिलाओं एवं अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति वर्ग के प्रथम पीढ़ी के उद्यमियों को नए (Greenfield) उद्यम स्थापित करने हेतु प्रोत्साहित करती है।

Sharma और Annu (2018) ने Startup India एवं Stand-Up India पहलों का अध्ययन करते हुए पाया कि इन योजनाओं का उद्देश्य उद्यमिता को प्रोत्साहित करना, स्वरोजगार के अवसर बढ़ाना तथा युवाओं को व्यवसाय स्थापना के लिए प्रेरित करना है। अध्ययन के अनुसार सरकारी पहलें उद्यमशील वातावरण के निर्माण और रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्टैंड-अप इंडिया योजना ने वित्तीय समावेशन, महिला सशक्तिकरण एवं सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

शोध-अंतराल – पूर्ववर्ती अध्ययनों में स्टैंड-अप इंडिया योजना के अंतर्गत महिला उद्यमिता, वित्तीय समावेशन तथा उद्यम विकास के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया गया है। तथापि अधिकांश अध्ययन किसी एक विशेष आयाम तक सीमित रहे हैं। उपलब्ध साहित्य में समावेशी विकास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में योजना के योगदान का समग्र मूल्यांकन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। विशेष रूप से 2016-2025 की अवधि में योजना द्वारा महिला उद्यमिता, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति आर्थिक सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन तथा रोजगार सृजन पर पड़े संयुक्त प्रभाव का अध्ययन सीमित है। प्रस्तुत अध्ययन इस शोध-अंतराल को भरने का प्रयास करता है तथा समावेशी विकास के बहुआयामी ढाँचे के भीतर स्टैंड-अप इंडिया योजना की भूमिका का मूल्यांकन करता है।

अध्ययन के उद्देश्य:

i. समावेशी विकास की अवधारणा का विश्लेषण करना।
ii. स्टैंड-अप इंडिया योजना की संरचना एवं उद्देश्यों का अध्ययन करना।
iii. योजना के माध्यम से वित्तीय समावेशन पर पड़े प्रभाव का मूल्यांकन करना।
iv. महिला एवं अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उद्यमियों के सशक्तिकरण में योजना की भूमिका का परीक्षण करना।
v. समावेशी विकास में योजना के योगदान का विश्लेषण करना।

अनुसंधान पद्धति– यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। अध्ययन का उद्देश्य स्टैंड-अप इंडिया योजना के प्रदर्शन तथा समावेशी विकास में उसके योगदान का मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अनुसंधान हेतु वित्त मंत्रालय, वित्तीय सेवा विभाग, प्रेस सूचना ब्यूरो (PIB), संसद में प्रस्तुत आँकड़ों तथा संबंधित साहित्य का उपयोग किया गया है।

शोध परिकल्पनाएँ

H0: स्टैंड-अप इंडिया योजना ने समावेशी विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं किया है। H1: स्टैंड-अप इंडिया योजना ने समावेशी विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

समावेशी विकास: अवधारणा एवं महत्व – समावेशी विकास का आशय ऐसी विकास प्रक्रिया से है जिसमें समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्राप्त हों तथा विकास के लाभों का न्यायसंगत वितरण हो। विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम तथा विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने समावेशी विकास के प्रमुख तत्वों के रूप में निम्नलिखित बिंदुओं को रेखांकित किया है। आर्थिक अवसरों तक समान पहुँच वित्तीय समावेशन रोजगार सृजन सामाजिक न्याय लैंगिक समानता कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण इसी संदर्भ में स्टैंड-अप इंडिया योजना को समावेशी विकास के एक व्यवहारिक उपकरण के रूप में देखा जा सकता है।

स्टैंड-अप इंडिया योजना का परिचय– स्टैंड-अप इंडिया योजना भारत सरकार द्वारा 5 अप्रैल 2016 को प्रारम्भ की गई एक प्रमुख वित्तीय समावेशन एवं उद्यमिता प्रोत्साहन योजना है। इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिला उद्यमियों को ग्रीनफील्ड (नए) उद्यमों की स्थापना हेतु रू 10 लाख से रू 1 करोड़ तक का संस्थागत ऋण उपलब्ध कराना था। योजना का मूल लक्ष्य उद्यमिता के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित वर्गों को मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था से जोड़ना तथा समावेशी विकास को बढ़ावा देना था। योजना के अंतर्गत विनिर्माण, सेवा, व्यापार तथा कृषि से संबंधित सहायक गतिविधियों के लिए ऋण प्रदान किया जाता है। प्रत्येक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक शाखा को कम-से-कम एक अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा एक महिला उद्यमी को ऋण उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस प्रकार योजना केवल वित्तीय सहायता तक सीमित न रहकर सामाजिक न्याय एवं आर्थिक अवसरों की समानता को भी प्रोत्साहित करती है।

योजना का प्रदर्शन

तालिका 1: स्टैंड-अप इंडिया योजना की समग्र उपलब्धियाँ (योजना के आरंभ से मार्च 2025 तक)

वर्ग	खाते की संख्या (31-03-2025)	स्वीकृत राशि (राशि करोड़ में)
अनुसूचित जाति	52902	11168.15
अनुसूचित जनजाति	16991	3612.84
महिलाएं	205398	48009.47
कुल	275291	62790.47

स्रोत: Ministry of Finance, Government of India, Rajya Sabha Unstarred Question No. 2964 (2025).

योजना के प्रारम्भ से मार्च 2025 तक कुल 2,75,291 ऋण खाते स्वीकृत किए गए तथा रू62,790.47 करोड़ की राशि स्वीकृत की गई। यह दर्शाता है कि योजना ने समाज के वंचित वर्गों को उद्यमिता के माध्यम से आर्थिक मुख्यधारा में जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

क्षेत्रवार विश्लेषण

तालिका 2: क्षेत्रवार ऋण खाते एवं स्वीकृत राशि (योजना के आरंभ से मार्च 2025 तक)

क्षेत्र	ऋण खाते	स्वीकृत राशि (रू करोड़)
व्यापार	95,851	20,239.18
सेवा क्षेत्र	89,914	20,102.80
विनिर्माण	68,75	18,026.91
कृषि एवं सहायक गतिविधियाँ	20,775	4,421.58
कुल	2,75,291	62,790.47

स्रोत: Rajya Sabha Unstarred Question No. 2964, Ministry of Finance, Government of India (2025).

व्यापार क्षेत्र में सर्वाधिक 95,851 ऋण खाते स्वीकृत किए गए तथा रू20,239.18 करोड़ की राशि प्रदान की गई। यह दर्शाता है कि लाभार्थियों ने व्यापार आधारित उद्यमों में अधिक रुचि दिखाई। सेवा क्षेत्र क्षेत्र में 89,914 ऋण खाते तथा रू 20,102.80 करोड़ की राशि स्वीकृत की गई। यह सेवा-आधारित उद्यमिता के विकास को दर्शाता है। विनिर्माण क्षेत्र में 68,751 उद्यमों को रू18,026.91 करोड़ की सहायता प्रदान की गई। इससे उत्पादन आधारित गतिविधियों और रोजगार सृजन को प्रोत्साहन मिला। कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों में 20,775 ऋण खाते स्वीकृत किए गए तथा रू 4,421.58 करोड़ की राशि प्रदान की गई। इससे ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा मिला।

समावेशी विकास में स्टैंड-अप इंडिया योजना की भूमिका

वित्तीय समावेशन को बढ़ावा- भारत में कमजोर वर्गों की औपचारिक बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच लंबे समय तक सीमित रही। स्टैंड-अप इंडिया योजना ने बैंकिंग संस्थानों और वंचित वर्गों के बीच की दूरी को कम किया। मार्च 2025 तक योजना के अंतर्गत लगभग 2.67 लाख से अधिक ऋण खाते स्वीकृत किए गए तथा रू 60,000 करोड़ से अधिक की राशि स्वीकृत की गई। इससे बड़ी संख्या में प्रथम-पीढ़ी के उद्यमी औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जुड़े।

महिला उद्यमिता का विस्तार- योजना की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि महिला उद्यमियों की बढ़ती भागीदारी रही। फरवरी 2025 तक लगभग 1.99 लाख महिला खातों को ऋण स्वीकृत किया गया। महिलाओं के खातों की संख्या 2018 के लगभग 55,644 से बढ़कर 2024 में 1,90,844 तक पहुँच गई। इसी अवधि में स्वीकृत ऋण राशि रू12,452 करोड़ से बढ़कर रू 43,984 करोड़ हो गई। महिला उद्यमिता में यह वृद्धि समावेशी विकास का महत्वपूर्ण संकेतक है क्योंकि इससे आर्थिक स्वतंत्रता, निर्णय क्षमता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय का आर्थिक सशक्तिकरण- योजना का एक प्रमुख उद्देश्य अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय को उद्यमिता के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त बनाना था। नवंबर 2018 से नवंबर 2024 के बीच अनुसूचित जाति लाभार्थियों के खातों की संख्या 9,399 से बढ़कर 46,248 हो गई, जबकि ST खातों की संख्या 2,841 से बढ़कर 15,228 तक पहुँच गई। इसी अवधि में स्वीकृत ऋण राशि में भी कई गुना वृद्धि दर्ज की गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि योजना ने सामाजिक रूप से वंचित समुदायों को उद्यमिता के माध्यम से आर्थिक अवसर उपलब्ध कराए।

रोजगार सृजन - योजना केवल ग्रीनफील्ड उद्यमों के लिए लागू की गई थी। अत: प्रत्येक स्वीकृत ऋण एक नए उद्यम की स्थापना का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह कुल 2,75,291 नए उद्यम स्थापित हुए। प्रत्येक उद्यम कम से कम एक स्वरोजगार तो उत्पन्न करता ही है।

इसलिए: न्यूनतम रोजगार = 2,75,291

यदि औसतन 3 व्यक्ति प्रति उद्यम कार्यरत मानें तो अनुमानित रोजगार = 2,75,291 × 3 = 8,25,873

मार्च 2025 तक 2,75,291 नए उद्यम स्थापित हुए, जिससे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई।

सामाजिक न्याय और समान अवसर- योजना ने उद्यमिता के क्षेत्र में सामाजिक न्याय की अवधारणा को मजबूत किया। बैंक शाखाओं को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिला उद्यमियों को ऋण देने के लिए प्रोत्साहित कर आर्थिक अवसरों के अधिक न्यायपूर्ण वितरण का प्रयास किया गया। इस प्रकार योजना ने सामाजिक समानता तथा आर्थिक लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा दिया।

शोध परिकल्पना का परीक्षण

H0: स्टैंड-अप इंडिया योजना ने समावेशी विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं किया है।

H1: स्टैंड-अप इंडिया योजना ने समावेशी विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

परीक्षण- समावेशी विकास के प्रमुख संकेतकोंकृमहिला उद्यमिता, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन तथा रोजगार सृजनकृका विश्लेषण किया गया।

अध्ययन में पाया गया कि:

1. 74.61% लाभार्थी महिलाएँ थीं।
2. 69,893 अनुसूचित जातिध्अनुसूचित जनजाति उद्यमियों को लाभ प्राप्त हुआ।
3. रू62,790.47 करोड़ की संस्थागत वित्तीय सहायता प्रदान की गई।
4. 2,75,291 नए उद्यम स्थापित हुए।
5. योजना का लाभ व्यापार, सेवा क्षेत्र, विनिर्माण तथा कृषि सभी क्षेत्रों में पहुँच।

निर्णय - उपलब्ध आधिकारिक आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि योजना ने आर्थिक अवसरों का विस्तार किया, सामाजिक रूप से वंचित वर्गों को उद्यमिता से जोड़ा तथा वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया। इसलिए शून्य परिकल्पना (H0) अस्वीकार की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना (H1) स्वीकार की जाती है।

अध्ययन के निष्कर्ष - उपलब्ध आधिकारिक आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर अध्ययन से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त हुए:

योजना की व्यापक पहुँच: मार्च 2025 तक स्टैंड-अप इंडिया योजना के अंतर्गत कुल 2,75,291 ऋण खाते स्वीकृत किए गए तथा रू62,790.47 करोड़ की राशि स्वीकृत की गई।

महिला उद्यमिता को प्रोत्साहन: कुल लाभार्थियों में 2,05,398 महिलाएँ (74.61%) थीं, जो दर्शाता है कि योजना ने महिला उद्यमिता एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय का आर्थिक सशक्तिकरण: योजना के अंतर्गत 52,902 अनुसूचित जाति तथा 16,991 अनुसूचित जनजाति लाभार्थियों को ऋण सुविधा प्राप्त हुई। कुल 69,893 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति उद्यमियों को संस्थागत वित्त उपलब्ध

कराया गया।

वित्तीय समावेशन में वृद्धि: योजना के माध्यम से लाखों प्रथम पीढ़ी के उद्यमियों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ा गया, जिससे वित्तीय समावेशन को बढ़ावा मिला।

रोजगार सृजन में योगदान: 2.75 लाख से अधिक ग्रीनफील्ड उद्यमों की स्थापना से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार अवसरों का सृजन हुआ।

क्षेत्रीय विविधता: योजना का लाभ केवल एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा। व्यापार, सेवा क्षेत्र, विनिर्माण तथा कृषि एवं सहायक गतिविधियाँ सभी क्षेत्रों में उद्यम स्थापित हुए।

चुनौतियाँ – स्टैंड–अप इंडिया योजना के क्रियान्वयन में स्वीकृत एवं वितरित राशि के बीच अंतर एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभरता है। इस स्थिति को नीचे दी गई तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 3 : स्वीकृत राशि तथा वितरित राशि (मार्च 2025 तक)

वित्तीय वर्ष	स्वीकृत राशि	वितरित राशि
2016-17	37875	33504
2017-18	33041	26039
2018-19	22224	15898
2019-20	20256	13483
2020-21	15616	10441
2021-22	19749	12259
2022-23	39907	19872
2023-24	39643	17374
2024-25 (जून 2024)	7152	2743

स्रोत: SIDBI; Lok Sabha Unstarred Question No. 2284 (05 August 2024).

तालिका से स्पष्ट है की योजना के अंतर्गत स्वीकृत की गई राशि और वितरित की गई राशि में हमेशा अंतर रहा। यद्यपि स्टैंड–अप इंडिया योजना ने महिला उद्यमिता, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति सशक्तिकरण और वित्तीय समावेशन को प्रोत्साहित किया, फिर भी इसके प्रभावी क्रियान्वयन में कुछ प्रमुख चुनौतियाँ सामने आई:

1. ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित जागरूकता
2. दस्तावेजी प्रक्रियाओं की जटिलता
3. उद्यमिता प्रशिक्षण की कमी
4. ऋणोपरांत मार्गदर्शन का अभाव
5. कुछ क्षेत्रों में बैंकिंग सहायता की असमान उपलब्धता

निष्कर्ष – स्टैंड–अप इंडिया योजना भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण वित्तीय समावेशन एवं उद्यमिता विकास योजना है, जिसका उद्देश्य महिलाओं तथा अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग के उद्यमियों को संस्थागत ऋण उपलब्ध कराना है। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि योजना ने न केवल उद्यमिता को बढ़ावा दिया, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित वर्गों को आर्थिक मुख्यधारा से जोड़ने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मार्च 2025 तक 2.75 लाख से अधिक लाभार्थियों को रू 62,790.47 करोड़ की वित्तीय सहायता प्रदान की गई। महिलाओं की उच्च भागीदारी तथा अनुसूचित जातिध्अनुसूचित जनजाति समुदाय की उल्लेखनीय उपस्थिति इस योजना की समावेशी प्रकृति को प्रमाणित करती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में नए उद्यमों की स्थापना ने रोजगार सृजन एवं स्थानीय आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया।

अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्टैंड–अप इंडिया योजना ने भारत में समावेशी विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है तथा सामाजिक न्याय और आर्थिक सशक्तिकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

नीतिगत सुझाव – स्टैंड–अप इंडिया योजना ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिला उद्यमियों को स्वरोजगार और उद्यमिता के अवसर प्रदान किए हैं। सरकार ने 2026 के बजट में इस योजना को नए संस्करण मे लाने की घोषणा की है। इसलिए योजना को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्न सुधार किए जा सकते हैं :

1. ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में व्यापक जन–जागरूकता अभियान चलाए जाएँ ताकि पात्र लाभार्थियों तक योजना की जानकारी पहुँच सके।
2. ऋण आवेदन एवं स्वीकृति प्रक्रिया को सरल, पारदर्शी तथा समयबद्ध बनाया जाए, जिससे नए उद्यमियों को अनावश्यक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।
3. जिला स्तर पर स्थानीय संसाधनों और मांग के अनुरूप परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाए, जिससे रोजगार सृजन और आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले।
4. योजना के अंतर्गत स्थापित उद्यमों की नियमित निगरानी एवं मूल्यांकन किया जाए ताकि समस्याओं का समय पर समाधान हो सके।
5. महिला,SC एवं ST उद्यमियों के लिए विशेष बिजनेस इन्क्यूबेशन सेंटर और सहायता केंद्र स्थापित किए जाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Department of Financial Services. (2025). *Stand-Up India Scheme progress report*. Ministry of Finance, Government of India. https://www.financialservices.gov.in/stand-india-scheme-supi
2. Press Information Bureau. 9 Years of Stand-Up India: Turning Aspirations into Achievements, 2025.
3. Ministry of Finance, Government of India. Stand-Up India Scheme Statistics and Performance Reports.
4. SIDBI. Stand-Up India Scheme Monitoring Reports.
5. Government of India. Parliamentary Questions and Replies on Stand-Up India Scheme.
6. Ministry of Finance, Government of India.
7. Department of Financial Services, Ministry of Finance, Government of India.
8. Press Information Bureau (PIB), Government of India.
9. Stand-Up Mitra Portal.
10. Lok Sabha Unstarred Question No. 2284, dated 05 August 2024.
11. NABARD Reports on Entrepreneurship Development.
12. MSME Annual Reports.
13. Kaur, L., & Arora, J. (2025). Evaluating the effectiveness of the Stand-Up India Scheme of the Government of India: Punjab versus rest of India. European Economic Letters, 15(2), 3856–3858. https://doi.org/10.52783/eel.v15i2.3220`

14. Verma, P., Bajpai, A., & Singh, V. (2024). Stand Up India Scheme: Empowering Women and SC/ST Entrepreneurs. Scientific Innovation Magazine, 2(3), 35–40.
15. Swati Sharma & Annu (2018). Startup India Stand Up India: A New Platform for Entrepreneurs. JETIR, 5(8)
16. Shivakumar, P. T. (2020). *Stand Up India (SUI) scheme: Opportunities and challenges.* Asian Journal of Development Matters, 14(1), 61–73. https://doi.org/10.5958/0976-4674.2020.00005.1

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भोज रचित सरस्वती कण्ठाभरण तथा शृंगार प्रकाश

डॉ. पी. एस. बघेल*

* प्राध्यापक (संस्कृत) पीएम एक्सीलेंस शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – सरस्वती कण्ठाभरण सन् 1887 में बनारस में के.एम.सीरीज द्वारा 1934 में प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही जगद्ंधर के राजा राजसिंह द्वारा प्रकाशित टीका भी प्रकाशित हुई है।

वस्तुत: यह ग्रन्थ सरस्वती कण्ठाभरण एक बड़ा ग्रन्थ रहा है जो संग्रहात्मक रूप में प्रकाशित किया गया। प्रस्तुत काव्य पाँच परिच्छेदों में विभक्त है।

प्रथम परिच्छेद में काव्य प्रयोजन, काव्य लक्षण; काव्यभेद, 16 पद दोष, 16 वाक्य दोष, 16 काव्यार्थ दोष, 24 शब्द गुण, 24 वाक्यार्थ गुण निरूपण है।

दूसरे परिच्छेद में 24 अदाहरण सहित शब्दालंकार, जाति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, गुंफना शय्या, यमक, श्लेष, पहेलिका आदि दिये हैं।

तीसरे परिच्छेद में 24 अर्थालंकार, जाति, विभावना, हेतु, अहेतु, सूक्ष्म, उत्तर, विरोध, संभव, अन्योयन, परिवृत्ति, निदर्शना, भेद, समाहित, भ्रान्ति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम अर्थापत्ति और अभाव का निरुपण किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में 24 शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का विवेचन किया गया है। इसमें उपमा, रूपक, साम्य, संशंय अपन्हुति समाधि, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अस्तुतप्रशंसा, तुल्योगिता श्लेष जो ब्याजस्तुति के समक्ष होता है, सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थान्तरनयास, विशेषोक्ति, परिकर, दीपक, क्रम, पर्याय, अतिशयोक्ति, श्लेष, भभाविक और संसृष्टि का वर्णन है।

पाँचवें परिच्छेद में रसों, भावों, नायकों नायिकाओं तथा उनके उपभेदों की विशेषताओं का वर्णन किया गया हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर 643 कारिकाएँ है। भोज वस्तुत: अग्निपुराण का ऋणि है।

सरस्वती कण्ठाभरण में अधिकांश उद्धरण दण्डी के काव्यादर्श से लिये गये है। इस प्रकार सरस्वती कण्ठाभरण में 1500 से अधिक उदाहरण पूर्ववर्ती कवियों से लिये गये हैं।

भोज ने कालिदास और भवभूति के ग्रन्थों से भी अनेक उद्धरण लिये हैं। इसके अतिरिक्त उस काल के विभिन्न ग्रन्थों से उद्धरण लिये हैं।

भोज के विश्लेषण में एक प्रकार की समानता दिखाई देती है। कुछ स्थान पर अग्निपुराण के उदाहरण भी दर्शाये है। भोजराजकृत शृंगारप्रकाश में एक रस ही स्वीकार किया गया है। 'राजा तु शृंगारमेकमेव शृंगारप्रकाश में यमुररीचकार भोजराज महाराजान्विति।' शृंगारप्रकाश में शब्दार्थोसहितौकाव्यं काव्य की परिभाषा दी गई है। शृंगारप्रकाश में 36 अध्यायो की सूची दी गई है।

भोज अनेक ग्रन्थों के रचयिता थे। जिसमें भोज ने धर्मशास्त्र पर भी अपने विचारों को व्यक्त किया है।भोज 11 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए हैं। भोजप्रबन्ध के अनुसार भोज ने 55 वर्ष तक राज्य किया। भोज का चाचा मुंज 994–997 के बीच में तैलप द्वारा मारा गया था। भोज का उत्तराधिकारी उसका भाई सिंधु राजे सिंधुल बना जिसे इतिहास में नवसाहसांक जैसी,उपाधि से विभूषित किया गया।भोज 1005 के लगभग राजगद्दी पर बैठा।

इसी वर्ष भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण और शृंगार प्रकाश की रचना की। 1030 से 1050 के बीच उसका अंतिम समय आ गया होगा।

भोज वाक्पतिराज का उत्तराधिकारी बना जिसे परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि मिली।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत के सुप्रसिद्ध राजाओं में एक राजा भोज था। वह कवि तथा साहित्य के महान आश्रयदाता था। उसने अनेक मंदिरों का निर्माण कराया।

ऐसा कहा जाता है कि उसने करीब 84 ग्रंथ लिखे। भोज ने काव्यशास्त्र तथा व्याकरण पर सरस्वती कण्ठाभरण नाम ग्रन्थ लिखा। संस्कृत सीरीज त्रिवेदम् में 1937 में प्रकाशित हुआ। सरस्वती कण्ठाभरण के साथ समरागण सूत्रधार नामक 7 हजार श्लोकों का ग्रन्थ भी रचा।

भोज ने अपने प्रवास के दौरान विशिष्ट वर्ग के अट्ठाइस भेदों की परिभाषाएँ अनुष्टुप रूप छन्द में दी है। जिसमें प्रियवियोग संभावना आदि रचनाओं पर प्रकाश डाला है। जिसमें देश, काल, कार्य पात्र, औचित्य आदि की चर्चा की है। इसी शृंगार प्रकाश ग्रन्थ में काम शृंगार का परिचय दिया है। करुण के वर्णन में अनुभावों का सर्वाधिक चित्रण किया है। जहाँ उन्होंने 80 अनुभाव गिनाये हैं। भोज ने पाँच स्कंध में रूपक की सुप्रसिद्ध पाँच संधियों का वर्णन किया है।

शृंगारप्रकाश में संयोग शृंगार के स्थायी भावों का वर्णन किया है। भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में स्वप्रतिपाद्य सभी मौलिक बातों की चर्चा की है। जिसमें उन्होंने प्रमुख रूप से रस की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। शृंगार प्रकाश के प्रथम आठ प्रकाशों में अधिकतर व्याकरण संबंधी अधिक चर्चा की गई है।

शृंगारप्रकाश में भोज ने काव्यशास्त्र से संबंध रखने वाले प्राय: सभी

प्रमुख प्रसंगों का समावेश किया है। उन्होंने पद और वाक्य का निरूपण करते समय भर्तृहरि के वाक्यपदीय के बहुत से अंशों का उपयोग किया है। वाक्पदीय के ब्राह्मकांड का और अधिक मात्रा में उपपोग किया है। भोज ने शब्दब्रह्म का विवर्त मानकर ही प्रतीयमान और ध्वन्यमान की व्याख्या की है।

'परोमहावाक्यार्थः अर्थमूर्त्या विपरिणम नादि निधनमखण्ड शब्द ब्रह्मेत्युच्यते।'

अखण्डः सैष वाकयार्थः शब्द ब्रह्मेतिगीयते। शब्दब्रह्माणि विष्णातः परं ब्रमह्माधिगच्छति॥

इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपान वर्णनम्।
इयंमाद्यंसो मोक्षमाणानाम जिह्मा राजपद्धतिः॥
(वाक्पदी 1-6, पृ. 143)

श्रृंगार प्रकाश के नवम प्रकाश में भोज ने वाक्य के अंतर्गत पृथक्-पृथक् शब्दों से संबंधित दोषों का वर्णन भी किया है। भोज ने वाक्य के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले शब्दों की सापेक्षिक सत्ता का भी विवेचन किया है। श्रृंगार प्रकाश में भोज ने दोषों, गुणों और अलंकारों का विवेचन किया है। गुणों का उल्लेख करते हुए उनका अलंकारों से अंतर, अलंकार और उनके तीन भेदों का वर्णन किया है। शब्दालंकार प्रकरण के अंत में 24 शब्दालंकारों के संबंध में कुछ सामान्य जानकारी देने वाली कारिकाएँ श्रृंगार प्रकाश में जोड़ी गई है। भोज के ग्रन्थों में गुणों और अलंकारों के विवेचन के अन्तर की चर्चा की है।

श्रृंगार प्रकाश के अंतर्गत ध्वनि प्रकरण में विस्तार से प्रकाश डाला है। श्रृंगार प्रकाश में काव्य की तीन उक्तियों-वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति और रसोक्ति से संबंधित श्रृंगार प्रकाश में विस्तृत व्याख्या दी गई है। बारहवें प्रकाश रूपक विधान से संबंधित पाँच अवस्थाओं, संधियों और वृत्तियों का विवेचन किया गया है।

श्रृंगार प्रकाश के तृतीय ग्रन्थ में तेरह प्रकाश अलंकार, श्रृंगार के धर्म, अर्थ काम और मोक्ष संबंधी चतुर्विध वर्गीकरण से प्रारंभभहोता है विविध के रति के प्रकारों की व्याख्या करता है।

श्रृंगार प्रकाश में आलंबन विभाव, नामक और नायिका का वर्णन है। श्रृंगार प्रकाश में ऋतुओं देशों, समय, कलाओं, संस्कारों और प्रसाधनों की विस्तृत आलोचना है। सत्रहवें प्रकाश में रति के अनुभाव वर्णित हैं। पंचम अध्याय में 40-43 कारिकाओं में पृ. 532-537 पर दर्ज हैं।

वाक्य प्रबन्धानुगतोऽयमुक्तो
मया समासेन रस वियोगः।
अथेहऽर्था न विवेचिताः।
पृथम् विभज्ते केचिदुहाह्न्ते॥
(रसवियोगप्रकाशो, एकादश प्रकाशः॥)

इसके अतिरिक्त विभिन्न अध्यायों में कुछ 95-96 कारिकाओं का उल्लेख है।

कुल मिलाकर अनुराग की समस्त अवस्थाओं को रसान्वय-विभूति नाम दिया गया है। श्रृंगार प्रकाश के अंत में भोज के अलंकार रस से सम्बंधित कुछ अनुष्टुप छन्द मिलते हैं।

भोज ने आनंदवर्धन की यथासंभव अधिकतम कारिकाओं को स्वीकार किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. साहित्य दर्पण-विश्वनाथ कविराज। सत्यव्रतसिंह (कमलापति त्रिपाठी) चौखंबा सीरीज, वाराणसी।
2. संस्कृत काव्य का इतिहास- पी.वी. काणे, अनुवाद डॉ. इन्द्र चंद्र।
3. आचार्य कृत काव्यालंकार-चौखंबा संस्कृत सीरीज।
4. लोकसंस्कृति-वसंत निरगुणे-म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

प्रधानमंत्री आवास योजना का लाभार्थियों की सामाजिक-आर्थिक विकास का अध्ययन

डॉ. विवेक कुमार पटेल* संजय कुमार पटेल**

*सह प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शास. शहीद केदारनाथ महाविद्यालय, मऊगंज (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, एम् फिल (वाणिज्य) प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शास. शहीद केदारनाथ महाविद्यालय, मऊगंज (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारत सरकार द्वारा वर्ष 2015 में प्रारंभ की गई प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) का उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर एवं निम्न आय वर्ग के परिवारों को सुरक्षित एवं सम्मानजनक आवास उपलब्ध कराना है।प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) भारत सरकार की प्रमुख सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में से एक है, जिसका उद्देश्य प्रत्येक पात्र परिवार को सुरक्षित एवं पक्का आवास उपलब्ध कराना है। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण (PMAY-G) अप्रैल 2016 से लागू है, जबकि शहरी क्षेत्रों के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी (PMAY-U) वर्ष 2015 से संचालित है। दिसंबर 2025 तक PMAY-G के अंतर्गत 3.86 करोड़ से अधिक आवास स्वीकृत तथा लगभग 2.92 करोड़ आवास पूर्ण किए जा चुके हैं। वहीं PMAY-U के अंतर्गत लगभग 1.73 करोड़ आवास स्वीकृत तथा 99 लाख से अधिक आवास पूर्ण किए गए हैं। अध्ययन में सामाजिक विकास के संकेतकों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा एवं महिला सशक्तिकरणकृतथा आर्थिक विकास के संकेतकोंकृजैसे आय, रोजगार, वित्तीय समावेशन एवं परिसंपत्ति सृजनकृका मूल्यांकन किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संकलन लाभार्थियों के सर्वेक्षण द्वारा तथा द्वितीयक आँकड़ों का संकलन ग्रामीण विकास मंत्रालय, आवासन एवं शहरी कार्य मंत्रालय, राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) तथा नीति आयोग की रिपोर्टों से किया गया है। साथ ही, योजना के प्रभावी क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों की भी पहचान करेगा तथा नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करेगा।

शब्द कुंजी – प्रधानमंत्री आवास योजना, सामाजिक-आर्थिक विकास, लाभार्थी, ग्रामीण विकास, जीवन स्तर, आर्थिक सशक्तिकरण।

प्रस्तावना – आवास मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकानकृमें से एक है। सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण आवास न केवल व्यक्ति को आश्रय प्रदान करता है, बल्कि उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सम्मान तथा आर्थिक विकास पर भी गहरा प्रभाव डालता है। भारत जैसे विकासशील देश में बड़ी संख्या में परिवार लंबे समय तक कच्चे एवं असुरक्षित मकानों में रहने को विवश रहे हैं।

इसी समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार ने वर्ष 2015 में प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) प्रारंभ की। इस योजना का उद्देश्य वर्ष 2022 तक प्रत्येक पात्र परिवार को पक्का आवास उपलब्ध कराना था, जिसे आगे भी जारी रखा गया। योजना के अंतर्गत ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के पात्र परिवारों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है ताकि वे सुरक्षित एवं सम्मानजनक आवास प्राप्त कर सकें। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण (PMAY-G) अप्रैल 2016 से लागू है, जबकि शहरी क्षेत्रों के लिए प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी (PMAY-U) वर्ष 2015 से संचालित है। दिसंबर 2025 तक PMAY-G के अंतर्गत 3.86 करोड़ से अधिक आवास स्वीकृत तथा लगभग 2.92 करोड़ आवास पूर्ण किए जा चुके हैं। वहीं PMAY-U के अंतर्गत लगभग 1.73 करोड़ आवास स्वीकृत तथा 99 लाख से अधिक आवास पूर्ण किए गए हैं।

प्रधानमंत्री आवास योजना का प्रभाव केवल आवास निर्माण तक सीमित नहीं है। इससे लाभार्थियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, सामाजिक प्रतिष्ठा, रोजगार, आय तथा वित्तीय समावेशन में भी सुधार देखने को मिलता है। मध्य प्रदेश का मऊगंज जिला सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहाँ प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत बड़ी संख्या में पात्र परिवारों को लाभ मिला है। इसके बावजूद यह जानना आवश्यक है कि योजना से लाभार्थियों की आय, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा जीवन स्तर में कितना परिवर्तन हुआ है। साथ ही, योजना के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं एवं चुनौतियों का भी अध्ययन आवश्यक है। इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन 'प्रधानमंत्री आवास योजना' का लाभार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर प्रभाव: यह अध्ययन लाभार्थियों के अनुभवों तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर योजना की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करेगा तथा नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करेगा। इस शोध से यह समझने में सहायता मिलेगी कि प्रधानमंत्री आवास योजना केवल आवास उपलब्ध कराने की योजना नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय, आर्थिक सशक्तिकरण एवं समावेशी विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य – इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य प्रधानमंत्री आवास योजना का लाभार्थियों की सामाजिक-आर्थिक विकास पर प्रभाव में विश्लेषण करना है। अध्ययन के माध्यम से यह जाना जाएगा कि योजना से लाभार्थियों की आय, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक प्रतिष्ठा, स्वच्छता, वित्तीय समावेशन तथा जीवन स्तर में कितना सुधार हुआ है। साथ

ही, योजना के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं, लाभार्थियों की संतुष्टि तथा योजना की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाएगा। अध्ययन के आधार पर ऐसी नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत की जाएँगी, जिनसे प्रधानमंत्री आवास योजना को और अधिक प्रभावी एवं लाभार्थी–केंद्रित बनाया जा सके।

1. प्रधानमंत्री आवास योजना का लाभार्थियों की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. लाभार्थियों की आर्थिक स्थिति पर योजना के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
3. योजना के कारण आय, रोजगार एवं जीवन स्तर में हुए परिवर्तन का विश्लेषण करना।
4. शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता पर योजना के प्रभाव का अध्ययन करना।
5. लाभार्थियों के सामाजिक सम्मान एवं वित्तीय समावेशन में हुए परिवर्तन का मूल्यांकन करना।
6. योजना के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं एवं चुनौतियों की पहचान करना।
7. लाभार्थियों के संतुष्टि स्तर का अध्ययन करना।

साहित्य समीक्षा

1. योजना आयोग (2014) के अनुसार ग्रामीण आवास योजनाओं से निर्माण क्षेत्र में रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति मिलती है।
2. रंगराजन (2014) के अनुसार आवास की उपलब्धता गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया को स्थायित्व प्रदान करती है। उन्होंने यह तर्क दिया कि बिना सुरक्षित आवास के गरीबी उन्मूलन की योजनाएँ अल्पकालिक सिद्ध होती हैं।
3. प्रो. आर. एन. शर्मा (2016) शर्मा ने पाया कि ग्रामीण आवास एक ऐसी परिसंपत्ति बन गया जिसने परिवारों को आर्थिक जोखिम लेने योग्य बनाया। पक्का मकान मिलने के बाद ग्रामीण परिवार कृषि निवेश, पशुपालन और लघु व्यवसाय में निवेश करने लगे, जिससे उनकी आय में दीर्घकालीन वृद्धि हुई।
4. दत्त एवं सुंदरम (2016) ने अपने अध्ययन में पाया कि PMAY-G के अंतर्गत निर्मित आवासों से ग्रामीण परिवारों की सामाजिक सुरक्षा एवं जीवन स्तर में सुधार हुआ है।
5. देसाई (2017) के अनुसार प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) ने गांवों में आधारभूत संरचना के विकास को गति दी है।
6. मुखर्जी (2018) ने अपने शोध में बताया कि क्रेडिट लिंक्ड सब्सिडी स्कीम (CLSS) ने शहरी मध्यम वर्ग को आवास ऋण प्राप्त करने में सहायता प्रदान की।
7. शुक्ला (2019) ने अपने अध्ययन में पाया कि च्डाल के अंतर्गत महिला स्वामित्व से महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है।
8. डॉ. मोहित जैन (2020) जैन के अनुसार PMAY-G से ग्रामीण परिवारों की जोखिम सहनशीलता बढ़ी, जिससे वे नई कृषि तकनीकें, बीज और उत्पादन विधियाँ अपनाने लगे। यह ग्रामीण आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण संकेत है।
9. यादव (2020) ने अपने शोध में यह पाया कि जिन गांवों में PMAY-G का प्रभावी क्रियान्वयन हुआ, वहां पलायन की प्रवृत्ति में आंशिक कमी देखी गई।

शोध परिकल्पना :

1. जिले के पात्र हितग्राहीयों तक आवास योजना प्राप्त हो रहा हैं।
2. प्रधानमंत्री आवास योजना का लाभ उचित व्यक्ति को मुहैया कराया जा रहा हैं।
3. हितग्राहियों के आर्थिक व सामाजिक विकास में बढ़ावा
4. प्रधानमंत्री आवास योजना का लाभार्थियों के सामाजिक–आर्थिक विकास पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव है।

शोध विधि – शोधार्थी द्वारा इसका विश्लेषण कर सरणीयन के समंको के माध्यम से शोध क्षेत्र का समंक तैयार करने का अकादमिक प्रयास किया गया हैं। इसी आधार पर निम्न शोध विधि का प्रयोग किया जयेगा– और यह विधि दो प्रकार से हैं।

1 प्रथामिक समंक– प्रश्नावली एवं साक्षात्कार
2. द्वितियक समंक सरकारी रिपोर्ट, जनगणना, मंत्रालय की रिपोर्ट, शोध–पत्र, पुस्तकें

सामजिक आर्थिक विकास के मुख्य घटक

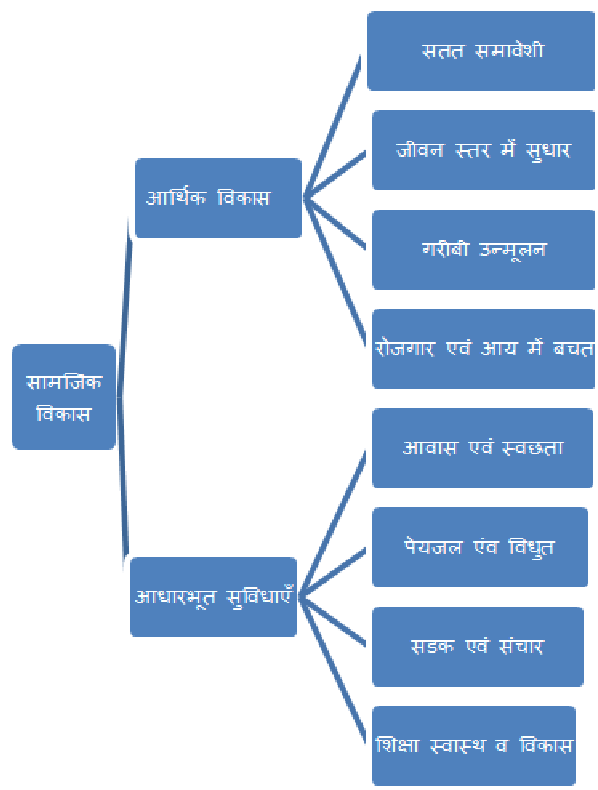

प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) विकास का प्रभाव– भारत योजना प्रारंभ 2015 (PMAY-U), 2016 (PMAY-G) का सामाजिक आर्थिक विकास के लिए 2016 से 2025 तक देशभर में लगभग 3.9 करोड़ से अधिक ग्रामीण आवास स्वीकृत किए गए। इनमें से लगभग 3.3 करोड़ से अधिक आवास पूर्ण हो चुके हैं इससे कच्चे मकानों की संख्या में उल्लेखनीय कमी आई।

जैसे–

1. **ग्रामीण रोजगार में वृद्धि–**प्रत्येक आवास निर्माण से औसतन 90–100 मानव–दिवस का रोजगार सृजित होता है (मनरेगा के समन्वय

सहित)।

इससे करोड़ों मानव–दिवस का रोजगार उत्पन्न हुआ और स्थानीय मजदूरों को काम मिला।

2. गरीबी में कमी– पक्का घर मिलने से परिवारों का आवास पर होने वाला अतिरिक्त खर्च कम हुआ। बिजली, शौचालय, स्वच्छ पेयजल और एलपीजी जैसी सुविधाओं से जीवन स्तर में सुधार हुआ।

3. स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर प्रभाव– सुरक्षित आवास के कारण वर्षा, धुआँ और संक्रमण से होने वाली बीमारियों में कमी देखी गई।

बच्चों की शिक्षा के लिए बेहतर अध्ययन वातावरण उपलब्ध हुआ।

4. महिला सशक्तिकरण– अधिकांश घरों का स्वामित्व महिला मुखिया या संयुक्त नाम से दिया गया।

जिससे महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति मजबूत हुई।

सुझाव :

1. लाभार्थियों के चयन की प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी एवं निष्पक्ष बनाया जाए।
2. निर्माण कार्यों की गुणवत्ता की नियमित तकनीकी निगरानी सुनिश्चित की जाए।
3. सभी किस्तों का भुगतान समयबद्ध रूप से सीधे लाभार्थियों के बैंक खातों में किया जाए।
4. योजना को स्वरोजगार, कौशल विकास तथा आजीविका कार्यक्रमों से जोड़ा जाए ताकि आवास के साथ आर्थिक सशक्तिकरण भी सुनिश्चित हो सके।
5. आवास के साथ पेयजल, विद्युत, सड़क एवं डिजिटल कनेक्टिविटी जैसी सुविधाओं का समेकित विकास किया जाए।
6. महिला स्वामित्व एवं संयुक्त स्वामित्व को और अधिक प्रोत्साहित किया जाए।
7. योजना के क्रियान्वयन में सूचना प्रौद्योगिकी, जियो–टैगिंग एवं ऑनलाइन निगरानी प्रणाली को और मजबूत किया जाए।

निष्कर्ष – उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो रहा है कि प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) ने लाभार्थियों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। योजना के माध्यम से कच्चे एवं जर्जर आवासों में रहने वाले परिवारों को सुरक्षित एवं पक्के आवास उपलब्ध हुए, जिससे उनके जीवन स्तर में उल्लेखनीय सुधार आया। देशभर में PMAY-G के अंतर्गत लगभग 2.92 करोड़ से अधिक आवास पूर्ण किए जा चुके हैं, जो ग्रामीण परिवारों के जीवन में व्यापक परिवर्तन का संकेत है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि पक्का आवास प्राप्त होने के बाद लाभार्थियों की सामाजिक प्रतिष्ठा, आत्मविश्वास तथा सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि हुई है। स्वच्छ शौचालय, पेयजल, विद्युत एवं अन्य आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता से स्वास्थ्य एवं स्वच्छता की स्थिति में सुधार देखा गया। महिलाओं की भागीदारी एवं संपत्ति पर स्वामित्व बढ़ने से महिला सशक्तिकरण को भी बल मिला। आर्थिक दृष्टि से योजना ने लाभार्थियों को स्थायी संपत्ति प्रदान की है, जिससे आर्थिक सुरक्षा बढ़ी है। आवास निर्माण गतिविधियों ने रोजगार सृजन में भी योगदान दिया है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की है। PMAY-G के अंतर्गत निर्माण कार्यों से करोड़ों मानव–दिवस रोजगार सृजित हुए हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री आवास योजना केवल आवास निर्माण कार्यक्रम नहीं है,बल्कि सामाजिक समावेशन, गरीबी उन्मूलन, महिला सशक्तिकरण तथा सतत ग्रामीण विकास का प्रभावी माध्यम है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:–

1. त्रिपाठी, ए.एन. (2013) – ग्रामीण बसावट एवं आवास संरचना, हिंदी ग्रंथ अकादमी।
2. सिंह, सुरेंद्र (2014) – ग्रामीण आवास योजनाएँ, अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. शर्मा, रामकुमार (2015) – ग्रामीण आवास एवं विकास, रावत पब्लिकेशन।
4. जयपुर. चौधरी, महेंद्र (2016) – ग्रामीण जीवन और आवास, वाणी प्रकाशन।
5. भारत सरकार (2016), प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) – संचालन मार्गदर्शिका, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
6. भारत सरकार (2016) – प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना (PMAY-G) दिशा–निर्देश, ग्रामीण विकास मंत्रालय।
7. मिश्रा, ओमप्रकाश (2017) – भारत में ग्रामीण आवास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
8. यादव, जगदीश (2018) – ग्रामीण गरीबी और आवास समस्या, राजकमल प्रकाशन।
9. PMAY-G लाभार्थी सूची और प्रदर्शन आँकड़े।
10. राज्य सरकारों द्वारा PMAY-G के क्रियान्वयन रिपोर्ट्स

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Liquidity Management and Financial Performance of Hospital Equipment Industries: A Comparative Empirical Analysis

Parv Jain* Dr. Pragya Sharma**

***Research Scholar, SAM Global University, Raisen (M.P.) INDIA**
**** Professor, SAM Global University, Raisen (M.P.) INDIA**

Abstract: Liquidity management is a critical component of corporate financial management that ensures the availability of sufficient short-term resources to support day-to-day business operations while enhancing organizational profitability. Hospital equipment industries operate in a highly capital-intensive environment characterized by significant investments in inventory, extended credit periods, and dependence on institutional buyers, making liquidity management an important determinant of financial performance. The present study examines the relationship between liquidity management and financial performance of selected hospital equipment industries in Madhya Pradesh through a comparative empirical analysis. Primary data were collected from 40 managerial respondents representing ten hospital equipment organizations located in Indore, Bhopal, Jabalpur, and Gwalior. Descriptive statistics, comparative financial analysis, Karl Pearson's correlation, and simple regression analysis were employed to examine the relationship between liquidity indicators and financial performance. The findings reveal that organizations maintaining efficient inventory management, timely receivables collection, and adequate cash flow demonstrate stronger profitability and operational efficiency. The study also confirms a statistically significant positive relationship between liquidity management and financial performance. The paper concludes that effective liquidity management is essential for improving financial sustainability, reducing operational risk, and enhancing competitiveness in the hospital equipment industry.
Keywords: Liquidity Management, Working Capital, Financial Performance, Hospital Equipment Industry, Healthcare Finance, Comparative Analysis.

Introduction - The healthcare industry has become one of the fastest-growing sectors of the Indian economy due to increasing public health awareness, technological advancement, government investment, and expansion of private healthcare services. The hospital equipment industry plays a vital role in supporting healthcare delivery by supplying diagnostic devices, intensive care equipment, surgical instruments, patient monitoring systems, laboratory equipment, and other essential medical technologies. The performance of healthcare institutions largely depends on the uninterrupted availability of quality medical equipment, making hospital equipment suppliers an indispensable part of the healthcare ecosystem.

Unlike many manufacturing industries, hospital equipment firms operate under unique financial conditions. They maintain large inventories to ensure immediate product availability while extending credit facilities to government hospitals, private hospitals, and healthcare institutions. These operational characteristics increase dependence on effective liquidity management because substantial financial resources remain invested in current assets such as inventory and receivables. Delayed payments from institutional buyers often create liquidity constraints, forcing organizations to rely on short-term borrowings for operational continuity.

Liquidity management refers to the efficient management of current assets and current liabilities to ensure that an organization can meet its short-term obligations without compromising profitability. Proper liquidity management involves maintaining an optimal balance between cash, receivables, inventory, and current liabilities. Excess liquidity may reduce profitability because idle funds generate limited returns, whereas inadequate liquidity may disrupt procurement, production, and customer service. Therefore, achieving an appropriate balance between liquidity and profitability has become a major challenge for financial managers.

The hospital equipment industry in Madhya Pradesh has witnessed considerable growth during the past decade due to increasing healthcare expenditure, modernization of hospitals, and expansion of diagnostic facilities. However, organizations operating in this sector continue to face

financial challenges such as delayed government payments, increasing inventory costs, inflationary pressures, and intense market competition. These factors increase the importance of efficient liquidity management for ensuring financial sustainability and operational efficiency.

Although numerous studies have examined working capital management in manufacturing and service industries, empirical research focusing specifically on hospital equipment industries remains limited. Most previous studies have concentrated on listed companies or general manufacturing sectors without considering the unique financial characteristics of healthcare equipment suppliers. Consequently, there exists a significant research gap regarding liquidity management practices within this industry.

The present study attempts to address this gap by conducting a comparative empirical analysis of selected hospital equipment industries in Madhya Pradesh. The study evaluates major liquidity indicators, compares financial performance across organizations, and statistically examines the relationship between liquidity management and profitability. The findings are expected to provide useful insights for financial managers, healthcare administrators, policymakers, and researchers interested in improving financial sustainability within the healthcare supply sector.

Review of Literature

Liquidity management has long been recognized as one of the most important determinants of corporate financial performance. Efficient management of current assets and liabilities enables organizations to maintain operational continuity, reduce financing costs, and improve profitability. Several researchers have investigated the relationship between liquidity management and organizational performance across different industries.

Deloof (2003) concluded that efficient management of receivables and inventory significantly improves corporate profitability by reducing the operating cycle. Similarly, Lazaridis and Tryfonidis (2006) found that shorter cash conversion cycles positively influence firm profitability, emphasizing the importance of efficient working capital management. Padachi (2006) reported that manufacturing firms maintaining effective inventory and cash management practices achieve superior financial performance and operational efficiency.

Raheman and Nasr (2007) demonstrated that working capital management significantly affects corporate profitability through efficient management of inventory, receivables, and cash resources. Gill, Biger, and Mathur (2010) also established a positive relationship between liquidity management and profitability among American manufacturing firms. Karaduman et al. (2011) confirmed that organizations maintaining shorter receivables collection periods and efficient inventory utilization generate higher returns on assets.

In the Indian context, Pandey (2018) emphasized that effective liquidity management contributes to organizational stability and financial sustainability. Jain and Khan (2018) highlighted that maintaining an optimal balance between liquidity and profitability is essential for achieving long-term business success. Gitman and Zutter (2019) further argued that liquidity planning should be integrated with strategic financial management to improve corporate performance. Within the healthcare sector, Smith (2021) observed that hospital equipment suppliers frequently experience liquidity challenges because of delayed institutional payments and large inventory investments. Sharma (2016) similarly noted that healthcare suppliers require efficient working capital management to maintain uninterrupted supply chains and improve financial performance.

Despite substantial literature on working capital management, very limited empirical research has specifically examined liquidity management practices in hospital equipment industries. The present study attempts to bridge this gap by analyzing selected hospital equipment organizations in Madhya Pradesh using comparative financial analysis and statistical techniques.

Research Gap: The review of existing literature indicates that numerous studies have investigated the relationship between working capital management, liquidity management, and corporate profitability across manufacturing, retail, pharmaceutical, and service industries. Researchers such as Deloof (2003), Padachi (2006), Lazaridis and Tryfonidis (2006), and Gill et al. (2010) have consistently reported that efficient management of current assets and current liabilities enhances profitability and financial stability. Similarly, Indian studies have emphasized the importance of liquidity planning in improving business performance.

Objectives of the Study: The present study was undertaken to achieve the following objectives:

1. To examine the liquidity management practices followed by selected hospital equipment industries in Madhya Pradesh.
2. To compare the financial performance of selected hospital equipment organizations using major liquidity and profitability indicators.
3. To analyze the relationship between liquidity management and financial performance.
4. To evaluate the influence of inventory management, receivables management, and cash management on organizational profitability.
5. To suggest suitable financial strategies for improving liquidity management and long-term financial sustainability.

Hypotheses of the Study: To achieve the objectives, the following hypotheses were formulated:

H_{01}: There is no significant relationship between liquidity management and financial performance of hospital equipment industries.

H_{11}: There is a significant positive relationship between

liquidity management and financial performance of hospital equipment industries.

H_{02}: Efficient receivables management has no significant influence on organizational profitability.

H_{12}: Efficient receivables management significantly improves organizational profitability.

H_{03}: Inventory management does not significantly affect financial performance.

H_{13}: Efficient inventory management significantly improves financial performance.

Research Methodology: The study adopted a descriptive and analytical research design to examine liquidity management practices among selected hospital equipment industries in Madhya Pradesh. The study relied primarily on primary data collected through a structured questionnaire administered to finance managers, accounts managers, operations managers, purchase managers, and business owners. Secondary information was collected from annual reports, financial management books, journal articles, government publications, and company records.

The study covered ten selected hospital equipment organizations located in Indore, Bhopal, Gwalior, and Jabalpur. A total of **40 respondents** participated in the survey, with four managerial respondents selected from each organization. Convenience sampling was adopted due to accessibility and availability of respondents.

The questionnaire consisted of demographic questions and statements measuring respondents' perceptions regarding liquidity management, inventory management, receivables management, profitability, and financial performance. Responses were measured using a four-point Likert scale ranging from "Strongly Disagree" to "Strongly Agree."

For data analysis, descriptive statistics such as frequencies, percentages, means, and standard deviations were employed to summarize the responses. Comparative financial analysis was performed using selected financial ratios including Current Ratio, Quick Ratio, Inventory Turnover Ratio, Working Capital Turnover Ratio, Net Profit Margin, and Return on Investment. Karl Pearson's Correlation Coefficient was applied to determine the strength and direction of relationships between liquidity management and financial performance. Simple Linear Regression Analysis was used to examine the predictive influence of liquidity management on organizational financial performance. Statistical analysis was carried out at the **5% level of significance**.

Results and Discussion

Descriptive Financial Analysis: The comparative financial analysis indicated noticeable variations in liquidity management practices among the selected organizations. Meditech Services Pvt. Ltd., Indore, demonstrated the strongest liquidity position with a current ratio of **1.88**, while Om Hospital Equipment, Gwalior, recorded the lowest current ratio of **1.64**. Similarly, Meditech Services achieved the highest inventory turnover ratio (**5.7 times**) and return on investment (**15.2%**), indicating superior working capital utilization.

The analysis further revealed that organizations maintaining shorter receivable collection periods generally reported higher profitability. Companies with stronger inventory turnover ratios and better cash flow management exhibited comparatively higher working capital turnover and operational efficiency.

Table 1. Descriptive Statistics

Variable	Mean	Standard Deviation
Liquidity Management	3.46	0.54
Inventory Management	3.38	0.61
Receivables Management	3.42	0.57
Financial Performance	3.51	0.52

The descriptive statistics indicate that respondents generally agreed that effective liquidity management contributes significantly to improved organizational performance.

Correlation Analysis: To examine the relationship between liquidity management and financial performance, Karl Pearson's Correlation Coefficient was calculated.

Table 2. Correlation Matrix

Variables	Liquidity Management	Financial Performance
Liquidity Management	1.000	**0.72**
Financial Performance	**0.72**	1.000

Significance ($p < 0.01$)

The correlation coefficient of **0.72** indicates a strong positive relationship between liquidity management and financial performance. The relationship is statistically significant at the 1% level, suggesting that organizations maintaining effective liquidity management practices achieve superior financial outcomes.

Accordingly, **H_{11} is accepted**, while the null hypothesis is rejected.

Regression Analysis: Simple linear regression analysis was performed to examine whether liquidity management predicts financial performance.

Table 3. Regression Model Summary

Model	R	R^2	Adjusted R^2	F-value	Sig.
Regression	0.72	0.52	0.50	41.36	0.000

The regression model indicates that liquidity management explains approximately **52%** of the variation in financial performance ($R^2 = 0.52$). The F-value of **41.36** is statistically significant ($p < 0.001$), confirming that the model has good explanatory power.

The findings suggest that organizations maintaining efficient inventory control, effective receivables collection, and adequate cash reserves are more likely to achieve higher profitability and stronger operational performance.

Discussion of Findings: The findings of the present study strongly support the theoretical argument that efficient liquidity management contributes to improved organizational performance. The statistical analysis demonstrates that organizations maintaining higher current ratios, efficient

inventory turnover, and timely receivables collection achieve comparatively better profitability and financial stability.

The results are consistent with earlier studies conducted by Deloof (2003), Lazaridis and Tryfonidis (2006), Padachi (2006), Gill et al. (2010), and Pandey (2018), all of which reported that efficient working capital management positively influences profitability. The present study extends these findings to the hospital equipment industry by demonstrating that healthcare equipment suppliers face unique liquidity challenges because of delayed institutional payments and substantial inventory investments.

Conclusion: Liquidity management has become one of the most significant determinants of financial performance in hospital equipment industries. Organizations operating in this sector face unique financial challenges due to substantial investments in inventory, extended receivable periods, dependence on institutional customers, and continuous technological advancements. Consequently, efficient management of current assets and current liabilities is essential for maintaining operational continuity, financial stability, and long-term sustainability.

The present study examined liquidity management practices among selected hospital equipment industries in Madhya Pradesh through comparative financial analysis and empirical statistical techniques. The comparative analysis revealed considerable differences in liquidity positions, inventory turnover, receivable management, and profitability among the selected organizations. Companies demonstrating better liquidity management practices consistently reported stronger financial performance.

The descriptive statistics indicated a high level of managerial agreement regarding the importance of liquidity management in improving profitability and operational efficiency. Correlation analysis revealed a strong positive relationship between liquidity management and financial performance ($r = 0.72$, $p < 0.01$), indicating that organizations maintaining effective working capital policies achieve superior financial outcomes. Furthermore, regression analysis demonstrated that liquidity management explains approximately 52% of the variation in financial performance, confirming its significant predictive influence.

References :-

1. Brigham, E. F., &Ehrhardt, M. C. (2017). *Financial management: Theory and practice* (15th ed.). Cengage Learning.
2. Chandra, P. (2019). *Financial management: Theory and practice* (10th ed.). McGraw-Hill Education.
3. Deloof, M. (2003). Does working capital management affect profitability of Belgian firms? *Journal of Business Finance & Accounting, 30*(3–4), 573–588.
4. Eljelly, A. M. A. (2004). Liquidity–profitability trade-off: An empirical investigation in an emerging market. *International Journal of Commerce and Management, 14*(2), 48–61.
5. Filbeck, G., & Krueger, T. (2005). Industry-related differences in working capital management. *Mid-American Journal of Business, 20*(2), 11–18.
6. Gill, A., Biger, N., &Mathur, N. (2010). The relationship between working capital management and profitability. *Business and Economics Journal, 10*, 1–9.
7. Gitman, L. J., &Zutter, C. J. (2019). *Principles of managerial finance* (15th ed.). Pearson.
8. Jain, P. K., & Khan, M. Y. (2018). *Financial management: Text, problems and cases*. McGraw-Hill Education.
9. Karaduman, H. A., Akbas, H. E., Ozsozgun, A., & Durer, S. (2011). Effects of working capital management on profitability. *International Journal of Economics and Finance, 3*(2), 47–54.
10. Kothari, C. R. (2019). *Research methodology: Methods and techniques* (4th ed.). New Age International.
11. Lazaridis, I., &Tryfonidis, D. (2006). Relationship between working capital management and profitability of listed companies. *Journal of Financial Management and Analysis, 19*(1), 26–35.
12. Maheshwari, S. N. (2017). *Financial management principles and practice*. Sultan Chand & Sons.
13. Padachi, K. (2006). Trends in working capital management and its impact on firms' performance. *International Review of Business Research Papers, 2*(2), 45–58.
14. Pandey, I. M. (2018). *Financial management* (12th ed.). Vikas Publishing House.
15. Raheman, A., & Nasr, M. (2007). Working capital management and profitability. *International Review of Business Research Papers, 3*(1), 279–300.
16. Ross, S. A., Westerfield, R. W., & Jordan, B. D. (2019). *Fundamentals of corporate finance* (12th ed.). McGraw-Hill Education.
17. Sharma, A. K. (2016). Financial challenges in Indian healthcare industries. *Journal of Health Management, 18*(3), 367–381.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Role of Gond and Kawar Tribal Women in Sustainable Development: A Comparative Geographical Study of Rural Raigarh District, Chhattisgarh

Dr. Kajal Moitra* Chandan Kumar Mandal**

***Professor & Head (Social Science) Dr. C. V. Raman University, Kargi Road, Kota, Bilaspur (CG) INDIA**
**** Ph.D. Research Scholar (Geography) Department of Social Science, Dr. C. V. Raman University, Kargi Road, Kota, Bilaspur (CG) INDIA**

Abstract - Sustainable development has emerged as an essential framework for achieving balanced economic growth, environmental conservation, and social equity. Tribal women, particularly those belonging to indigenous communities, play a fundamental role in maintaining this balance through their active participation in agriculture, forest resource management, household economy, and community development. This study examines the role of Gond and Kawar tribal women in promoting sustainable development in the rural regions of Raigarh district, Chhattisgarh. Using a comparative geographical approach, the research analyses their socio-economic conditions, livelihood strategies, indigenous knowledge systems, and participation in rural development programmes. Both primary and secondary data have been utilized for the study. Primary data were collected through household surveys, interviews, focus group discussions, and field observations conducted in selected villages, while secondary information was obtained from government reports, Census publications, and academic literature. The findings reveal that tribal women make substantial contributions to sustainable agriculture, biodiversity conservation, food security, livestock management, and household income generation. Their traditional ecological knowledge supports sustainable utilization of forest resources and enhances community resilience against environmental challenges. However, limited educational opportunities, inadequate healthcare facilities, poor access to institutional finance, gender inequality, and climate-related vulnerabilities continue to restrict their full participation in development processes. The study emphasizes the need for policy interventions that strengthen women's education, livelihood diversification, institutional support, market accessibility, and participation in local governance. Integrating indigenous knowledge with modern rural development strategies can significantly contribute to sustainable and inclusive development in tribal regions.
Keywords: Sustainable Development, Tribal Women, Gond Tribe, Kawar Tribe, Indigenous Knowledge, Rural Development, Raigarh District, Chhattisgarh, Geographical Analysis.

Introduction - Sustainable development has become one of the most important paradigms guiding development planning across the world. The concept promotes a balanced relationship between economic progress, environmental protection, and social well-being to ensure that present developmental needs are fulfilled without compromising the opportunities available to future generations. Since the adoption of the Sustainable Development Goals (SDGs) by the United Nations in 2015, governments and development agencies have increasingly recognized that inclusive participation of marginalized communities is essential for achieving sustainable growth. Among these communities, tribal populations occupy a unique position because of their close dependence on natural resources and their rich repository of traditional ecological knowledge.

India possesses one of the largest tribal populations in the world, accounting for nearly 8.6 percent of the country's total population according to the Census of India. Tribal communities are predominantly concentrated in forested, hilly, and rural regions where agriculture, forestry, livestock rearing, and collection of minor forest produce constitute the principal sources of livelihood. Within these communities, women perform multiple productive and reproductive roles that significantly influence household welfare, environmental conservation, and local economic development. Despite their substantial contribution, tribal women often remain underrepresented in development policies, research studies, and decision-making institutions. The state of Chhattisgarh has a significant tribal population and is characterized by rich forest resources, diverse ecological conditions, and vibrant indigenous cultures. The Gond and Kawar tribes are among the major Scheduled Tribes inhabiting the rural areas of Raigarh district. These

communities have traditionally maintained a close relationship with forests, agricultural land, rivers, and other natural resources that support their livelihoods. Women belonging to these tribes participate actively in farming operations, collection of non-timber forest products, livestock care, food processing, household management, handicraft production, and community welfare activities. Their everyday practices contribute directly to food security, environmental sustainability, and the preservation of indigenous cultural traditions.

The role of tribal women extends beyond economic activities. They possess extensive knowledge regarding medicinal plants, traditional farming techniques, seed preservation, biodiversity conservation, water resource management, and climate adaptation. Such indigenous knowledge has evolved through generations of interaction with local ecosystems and remains highly relevant for sustainable natural resource management. In many villages, women are responsible for selecting crop varieties, preserving traditional seeds, preparing organic manure, managing kitchen gardens, and ensuring efficient utilization of available natural resources. These activities strengthen ecological sustainability while reducing dependence on external agricultural inputs.

In recent decades, various government programmes have attempted to improve the socio-economic conditions of tribal communities. Schemes such as the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), National Rural Livelihood Mission (NRLM), Pradhan Mantri Awas Yojana-Gramin (PMAY-G), Jal Jeevan Mission, Swachh Bharat Mission, Poshan Abhiyan, and Forest Rights Act have created new opportunities for tribal women to participate in economic activities and community development. Self-Help Groups (SHGs) have emerged as important institutional platforms for promoting financial inclusion, entrepreneurship, and collective decision-making among rural women. Nevertheless, disparities in education, healthcare, infrastructure, digital access, and market connectivity continue to limit the developmental potential of tribal women.

A comparative geographical analysis of Gond and Kawar tribal women is particularly important because both communities inhabit similar environmental settings while exhibiting differences in socio-cultural practices, livelihood strategies, and access to development opportunities. Understanding these similarities and variations can help identify location-specific strategies for sustainable rural development. The geographical perspective further enables an examination of how physical resources, settlement patterns, accessibility, and environmental conditions influence women's economic activities and resource management practices.

The present study therefore investigates the contribution of Gond and Kawar tribal women towards sustainable development in the rural regions of Raigarh district. It analyses their role in agriculture, forest resource management, household economy, social development, environmental conservation, and participation in government programmes. The study also explores the challenges faced by tribal women and proposes policy recommendations for strengthening their role in sustainable development. By recognizing women as active agents of change rather than passive beneficiaries, the research contributes to a deeper understanding of inclusive and environmentally sustainable rural development.

Review of Literature

The relationship between tribal women and sustainable development has attracted increasing attention from researchers, policymakers, and development practitioners over the past few decades. Tribal women are widely recognized as custodians of indigenous knowledge, biodiversity conservation, traditional agriculture, and household resource management. Their contribution extends beyond domestic responsibilities to economic production, environmental stewardship, and community development. Nevertheless, many studies indicate that despite their significant role, tribal women continue to face social, economic, and institutional constraints that limit their participation in the development process. The following review presents the major findings of previous studies relevant to the present research.

The **World Commission on Environment and Development (1987)** introduced the concept of sustainable development through the Brundtland Report, defining it as development that satisfies present needs without compromising the ability of future generations to meet their own needs. The report emphasized the integration of economic growth, environmental conservation, and social equity. Although it did not specifically focus on tribal women, it highlighted the importance of local communities in managing natural resources sustainably.

Vandana Shiva (1988) argued that rural and tribal women possess valuable ecological knowledge developed through continuous interaction with nature. According to her, women contribute significantly to biodiversity conservation, sustainable agriculture, seed preservation, and environmental protection. She emphasized that development policies should recognize women as active managers of natural resources rather than merely beneficiaries of welfare programmes.

Bina Agarwal (1994) examined gender relations in rural India and demonstrated that access to land and productive resources greatly influences women's economic empowerment and decision-making capacity. She argued that women with secure access to land and community resources participate more effectively in sustainable agricultural development and environmental conservation.

The **Anthropological Survey of India** through the *People of India* project documented the socio-cultural characteristics of various tribal communities, including the

Gond and Kawar tribes. The study highlighted their dependence on forests, agriculture, and traditional occupations while emphasizing the central role of women in sustaining household livelihoods and preserving indigenous cultural practices.

Several studies conducted in central India have shown that Gond tribal women contribute extensively to agricultural activities such as seed selection, sowing, transplantation, weeding, harvesting, and post-harvest processing. They also play a dominant role in collecting minor forest produce including mahua flowers, tendu leaves, tamarind, medicinal plants, honey, and edible forest products. These activities not only supplement household income but also support sustainable utilization of forest resources.

Research on Kawar tribal communities indicates that women actively participate in settled agriculture, livestock rearing, wage employment, and household management. Compared with some other tribal groups, Kawar women have shown increasing participation in Self-Help Groups (SHGs), literacy programmes, and government-sponsored livelihood initiatives. However, limited employment opportunities and inadequate market access continue to restrict income generation.

Studies on tribal livelihoods in Chhattisgarh have consistently highlighted the importance of forests in supporting household economies. Minor forest produce provides seasonal employment and acts as a safety net during agricultural lean periods. Women are the principal collectors, processors, and sellers of these products. Their knowledge regarding sustainable harvesting practices helps maintain ecological balance and ensures the long-term availability of forest resources.

Researchers have also examined the contribution of tribal women to food security. Traditional farming systems practiced by tribal communities generally involve mixed cropping, indigenous seed varieties, organic manure, and minimum dependence on chemical fertilizers. Women are primarily responsible for preserving local seed varieties and maintaining kitchen gardens that supply vegetables, fruits, and medicinal plants throughout the year. These practices contribute to nutritional security and agricultural sustainability.

The introduction of government programmes such as **MGNREGA**, **National Rural Livelihood Mission (NRLM)**, **Pradhan Mantri Awas Yojana-Gramin (PMAY-G)**, **Jal Jeevan Mission**, and **Swachh Bharat Mission** has improved livelihood opportunities for many tribal women. Self-Help Groups have emerged as effective institutions for promoting savings, credit, entrepreneurship, and collective action. Several studies report increased financial inclusion, improved confidence, and greater participation of women in local governance following their involvement in SHGs.

Despite these positive developments, research also identifies numerous challenges faced by tribal women. Educational attainment remains comparatively low due to poverty, early marriage, inadequate educational infrastructure, and limited awareness regarding higher education. Healthcare facilities are often insufficient in remote tribal areas, resulting in poor maternal and child health indicators. In addition, restricted ownership of land and productive assets reduces women's economic independence and limits their participation in formal financial systems.

Climate change has emerged as another important concern. Irregular rainfall, declining forest resources, soil degradation, and increasing frequency of droughts directly affect agricultural productivity and forest-based livelihoods. Since women are primarily responsible for collecting water, fuelwood, and forest products, environmental degradation disproportionately increases their workload and livelihood insecurity.

Recent literature increasingly emphasizes women's participation in local governance through **Gram Sabhas**, **Forest Rights Committees**, and **Panchayati Raj Institutions**. Their involvement in decision-making has contributed to better implementation of community development programmes, natural resource management, and social welfare initiatives. However, meaningful participation often remains constrained by patriarchal social norms, limited education, and inadequate institutional support.

Overall, previous studies establish that tribal women are indispensable contributors to sustainable development through their economic activities, ecological knowledge, and community participation. Nevertheless, most available research focuses either on tribal livelihoods or women empowerment separately. Comparative geographical studies examining the specific contributions of **Gond and Kawar tribal women in the rural regions of Raigarh district** remain limited. This gap justifies the need for the present study, which seeks to analyse their roles from a geographical perspective while comparing similarities and differences between the two communities in achieving sustainable development.

Objectives of the Study: The present study has been undertaken with the following objectives:

1. To examine the socio-economic profile of Gond and Kawar tribal women in the rural regions of Raigarh district.
2. To analyse the role of tribal women in sustainable agriculture and household livelihood systems.
3. To assess the contribution of Gond and Kawar women towards forest resource management and biodiversity conservation.
4. To evaluate the participation of tribal women in government development programmes and local institutions.
5. To compare the role of Gond and Kawar tribal women in achieving sustainable development.

6. To identify the major constraints affecting their socio-economic development and environmental participation.
7. To suggest suitable policy measures for strengthening the contribution of tribal women towards sustainable rural development.

Research Methodology: The present study adopts a **descriptive, analytical, and comparative geographical research design**. The research combines both quantitative and qualitative approaches to obtain a comprehensive understanding of the contribution of Gond and Kawar tribal women towards sustainable development.The study is empirical in nature and is based on field investigations conducted in selected rural villages of Raigarh district, Chhattisgarh. It examines the interrelationship between socio-economic conditions, environmental resource use, livelihood activities, and women's participation in development programmes.

Sources of Data

Primary Data: Primary information was collected through extensive field surveys using:

1. Structured household questionnaires
2. Personal interviews
3. Focus Group Discussions (FGDs)
4. Observation method
5. Informal interactions with village leaders, SHG members, and government officials

The questionnaire included information on demographic characteristics, education, occupation, income, agricultural activities, forest dependence, decision-making, participation in government schemes, and environmental conservation practices.

Secondary Data: Secondary information was collected from various authentic sources, including:

1. Census of India (2011)
2. Ministry of Tribal Affairs
3. Ministry of Rural Development
4. Government of Chhattisgarh publications
5. District Statistical Handbook
6. Economic Survey of Chhattisgarh
7. Research journals
8. Books
9. Reports of NGOs
10. Sustainable Development Goal (SDG) documents
11. Panchayat records and village profiles

Sampling Design: A multistage sampling technique was adopted for selecting respondents.

The study covered selected villages predominantly inhabited by Gond and Kawar tribal communities in the rural regions of Raigarh district.A total of **400 tribal women respondents** were selected through purposive and random sampling techniques to ensure adequate representation of both communities.

Methods of Data Analysis: The collected data were classified, tabulated, and analysed using appropriate statistical and geographical techniques.

The following analytical tools were employed:

1. Percentage analysis
2. Mean and standard deviation
3. Comparative analysis
4. Cross-tabulation
5. Graphs and charts
6. GIS-based spatial representation
7. Thematic mapping
8. Descriptive interpretation

Qualitative information collected during interviews and focus group discussions was analysed through thematic interpretation to understand local perceptions regarding sustainable development.

Profile of the Study Area: Raigarh district is situated in the north-eastern part of Chhattisgarh and is one of the important tribal-dominated districts of the state. The district lies between approximately **21°54' to 22°47' North latitude** and **82°37' to 83°56' East longitude** . It is bounded by Surguja district in the north, Korba district in the west, Janjgir-Champa district in the southwest, and the state of Odisha in the east.

The district experiences a **tropical monsoon climate** characterized by hot summers, moderate winters, and seasonal rainfall received mainly from the southwest monsoon. The average annual rainfall supports agricultural activities, although rainfall variability occasionally affects crop production.

The physiography of the district consists of undulating plains, low hills, river valleys, and extensive forested areas. The major rivers include the **Kelo, Mand, and Ib**, which provide irrigation and support agricultural activities.

Agriculture is the principal occupation of the rural population. Paddy is the dominant crop, while maize, pulses, oilseeds, vegetables, and minor millets are also cultivated. Forest resources play a significant role in supporting rural livelihoods through the collection of non-timber forest products such as mahua, tendu leaves, tamarind, harra, bahera, bamboo, lac, and medicinal plants.The Gond and Kawar tribes constitute an important segment of the district's Scheduled Tribe population. Their livelihoods are largely based on agriculture, forest resources, wage labour, livestock rearing, and traditional occupations. Women actively participate in nearly every aspect of these economic activities while simultaneously managing household responsibilities.In recent years, the implementation of government development programmes, expansion of rural infrastructure, promotion of Self-Help Groups, and increasing educational opportunities have contributed to gradual socio-economic transformation among tribal households. Nevertheless, challenges related to poverty, unemployment, inadequate healthcare, climate variability, and limited market access continue to affect sustainable development in the region.The geographical diversity and substantial tribal population make Raigarh district an ideal

area for examining the role of Gond and Kawar tribal women in achieving sustainable development

Results and Discussion

Socio-economic Profile of Gond and Kawar Tribal Women: The socio-economic status of tribal women plays a decisive role in determining their contribution to sustainable development. The field investigation conducted in the selected villages of Raigarh district reveals that Gond and Kawar tribal women actively participate in productive as well as reproductive activities. Their contribution extends beyond household responsibilities to agriculture, livestock management, collection of forest products, wage labour, and community development.The majority of respondents belong to economically weaker households where agriculture and forest-based activities constitute the primary sources of livelihood. Most families practice small and marginal farming, while a considerable proportion supplement their income through wage employment under MGNREGA and seasonal collection of minor forest produce.

Educational attainment among tribal women has improved over the past decade due to the expansion of government schools, scholarship schemes, hostels, and awareness programmes. However, the literacy level of older women remains comparatively low because educational facilities were limited in earlier decades. Younger women exhibit higher educational participation, enabling them to access government programmes, banking services, and livelihood opportunities more effectively.Self-Help Groups (SHGs) have emerged as important institutions promoting financial inclusion, savings, entrepreneurship, and women's leadership. Members of SHGs reported increased confidence, improved decision-making capacity, and greater participation in village development activities.

Role in Sustainable Agriculture: Agriculture forms the backbone of the rural economy in Raigarh district, and tribal women constitute one of its most important human resources. The study indicates that Gond and Kawar women participate in almost every agricultural operation except heavy ploughing, which is traditionally performed by men.

Women's agricultural activities include:

1. Seed selection and preservation
2. Preparation of organic manure
3. Nursery raising
4. Sowing and transplantation
5. Weeding and intercultural operations
6. Harvesting and threshing
7. Grain cleaning and storage
8. Kitchen gardening

Traditional agricultural knowledge possessed by tribal women contributes significantly to sustainable farming practices. Organic manure prepared from livestock waste and crop residues enhances soil fertility while reducing dependence on chemical fertilizers. Indigenous seed varieties maintained by women are generally resistant to local climatic conditions and pests, thereby increasing agricultural resilience.

Kitchen gardens maintained near households provide vegetables, fruits, and medicinal plants throughout the year. These gardens improve household nutrition and reduce dependence on market purchases. The integration of agriculture, livestock, and kitchen gardening demonstrates a sustainable livelihood model that supports both economic and environmental objectives.

Forest Resource Management and Biodiversity Conservation: Forest ecosystems play an indispensable role in the livelihood systems of Gond and Kawar tribal communities. Women are the principal collectors, processors, and managers of minor forest produce. The study found that forest-based resources contribute substantially to household food security and income, particularly during agricultural lean seasons.

Major forest products collected by women include:

1. Mahua flowers
2. Tendu leaves
3. Tamarind
4. Honey
5. Harra
6. Bahera
7. Char seeds
8. Mushrooms
9. Medicinal herbs
10. Firewood
11. Bamboo

Unlike commercial extraction, tribal women generally adopt sustainable harvesting methods that allow natural regeneration. They avoid cutting immature plants, protect seed-bearing trees, and collect forest products according to seasonal availability. Such traditional ecological practices contribute to biodiversity conservation and maintain ecological balance.Women also possess extensive knowledge regarding medicinal plants used for treating common illnesses. This indigenous healthcare system reduces dependence on external medical facilities and preserves valuable traditional knowledge.The findings indicate that the conservation of forests and sustainable livelihood generation are closely interconnected in tribal society. Women serve as important custodians of these ecological resources.

Indigenous Knowledge and Climate Resilience: One of the most significant findings of the study is the rich indigenous knowledge possessed by Gond and Kawar tribal women. This knowledge has evolved through generations of interaction with local ecosystems and forms an essential component of sustainable development.

Women possess practical knowledge regarding:

1. Rainfall prediction through natural indicators
2. Selection of drought-resistant crop varieties
3. Mixed cropping systems
4. Soil moisture conservation

5. Water harvesting
6. Traditional seed preservation
7. Preparation of herbal medicines
8. Livestock care
9. Sustainable fuelwood collection

Mixed cropping practices reduce production risks and improve soil fertility. Traditional seed preservation ensures the availability of locally adapted varieties capable of withstanding climatic variability.Climate change has increased the frequency of irregular rainfall and agricultural uncertainty in Raigarh district. Tribal women have responded by diversifying livelihood activities, cultivating vegetables, expanding livestock rearing, and participating in Self-Help Group enterprises. These adaptive strategies strengthen household resilience against environmental and economic shocks.

Household Economy and Livelihood Diversification: The household economy of tribal communities depends upon multiple livelihood sources rather than a single occupation. Women play a central role in diversifying household income through agriculture, forest products, wage employment, livestock rearing, handicrafts, and small-scale enterprises.

Major income-generating activities include:

1. Agricultural labour
2. Paddy cultivation
3. Collection of minor forest produce
4. Poultry farming
5. Goat rearing
6. Dairy activities
7. Handicrafts
8. Bamboo products
9. Leaf plate making
10. MGNREGA employment

Income diversification reduces dependence on seasonal agriculture and enhances household economic security. Women reported that earnings from SHGs and forest products are often used for children's education, healthcare, household consumption, and agricultural investments.The study observed that households with diversified income sources exhibit better resilience during crop failures or periods of low agricultural productivity.

Participation in Government Development Programmes: Government welfare programmes have significantly influenced the socio-economic status of tribal women during the past decade.

Major schemes benefiting respondents include:

1. Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA)
2. National Rural Livelihood Mission (NRLM)
3. Pradhan Mantri Awas Yojana-Gramin (PMAY-G)
4. Jal Jeevan Mission
5. Swachh Bharat Mission (Gramin)
6. Poshan Abhiyan
7. Pradhan Mantri Ujjwala Yojana
8. Forest Rights Act
9. Public Distribution System (PDS)

Participation in MGNREGA has generated wage employment while creating durable community assets such as ponds, roads, irrigation canals, and plantation sites. NRLM has strengthened Self-Help Groups by providing skill development, financial literacy, and access to institutional credit.Improved access to drinking water through Jal Jeevan Mission has reduced the time women spend collecting water, allowing greater participation in productive activities. Similarly, sanitation facilities under Swachh Bharat Mission have improved public health and women's dignity.Despite these achievements, respondents identified several implementation challenges including delayed wage payments, limited awareness regarding programme benefits, inadequate technical support, and restricted market access for SHG products.

Comparative Analysis of Gond and Kawar Tribal Women: The comparative analysis reveals both similarities and differences in the contribution of Gond and Kawar tribal women towards sustainable development.

Gond Tribal Women:

1. Greater dependence on forests and minor forest produce.
2. Strong traditional ecological knowledge.
3. Higher participation in forest conservation activities.
4. Greater reliance on indigenous agricultural practices.
5. Rich knowledge of medicinal plants and biodiversity.

Kawar Tribal Women:

1. Greater dependence on settled agriculture.
2. Higher participation in Self-Help Groups.
3. Better integration with government livelihood programmes.
4. Increasing educational attainment among younger women.
5. Higher involvement in small-scale enterprises and market-oriented activities.

Common Characteristics: Both communities:

1. Participate actively in agriculture.
2. Contribute significantly to household income.
3. Preserve traditional knowledge.
4. Support biodiversity conservation.
5. Participate in village development programmes.
6. Maintain family food security.
7. Strengthen community resilience during environmental and economic crises.

The study therefore confirms that both Gond and Kawar tribal women function as important agents of sustainable development despite differences in livelihood specialization and resource utilization.

Policy Recommendations: The findings of the study clearly indicate that Gond and Kawar tribal women are indispensable contributors to sustainable development in the rural regions of Raigarh district. However, their full potential cannot be realized without supportive policies that

address socio-economic inequalities, environmental challenges, and institutional barriers. The following policy recommendations are proposed to strengthen their role in sustainable development.

Strengthening Women's Education: Education is the foundation of women's empowerment and sustainable development. Although literacy among younger tribal women has improved, educational attainment remains low in many rural villages. The government should establish more residential schools, provide higher education scholarships, improve transportation facilities, and promote adult literacy programmes for tribal women. Digital education initiatives should also be introduced to enhance technological awareness and access to online services.

Promotion of Sustainable Livelihoods: Livelihood diversification should be encouraged through skill development programmes in areas such as food processing, bamboo crafts, lac cultivation, mushroom production, poultry farming, dairy development, medicinal plant cultivation, and eco-tourism. Training programmes should be linked with market opportunities so that tribal women can generate sustainable income throughout the year.

Financial Inclusion and Entrepreneurship: Access to institutional finance remains a major challenge for many tribal women. Strengthening Self-Help Groups (SHGs), expanding microcredit facilities, promoting financial literacy, and improving access to banking services will encourage entrepreneurship. Marketing support, branding, packaging, and value addition of tribal products should also be promoted to improve household income.

Sustainable Forest Resource Management: Government agencies should actively involve tribal women in Joint Forest Management Committees, biodiversity conservation programmes, and community forest management initiatives. Traditional ecological knowledge should be documented and incorporated into forest management policies. Training on scientific harvesting, value addition of minor forest produce, and sustainable forest-based enterprises should be provided.

Climate-Resilient Agriculture: Climate variability has increased the vulnerability of tribal livelihoods. Therefore, climate-resilient agricultural practices such as drought-resistant crop varieties, integrated farming systems, rainwater harvesting, organic farming, agroforestry, and soil conservation should be promoted. Women farmers should receive regular agricultural extension services and technical guidance.

Improved Healthcare and Nutrition: Healthcare facilities in tribal areas should be strengthened by improving primary health centres, maternal healthcare services, nutritional programmes, and awareness regarding sanitation and hygiene. Mobile health units should be introduced in remote villages to improve accessibility.

Women's Participation in Local Governance: Greater representation of tribal women in Gram Sabhas, Panchayati Raj Institutions, Forest Rights Committees, and village development committees should be encouraged. Capacity-building programmes should enhance leadership skills, legal awareness, and decision-making abilities.

Integration of Indigenous Knowledge: The indigenous knowledge possessed by Gond and Kawar women regarding biodiversity conservation, medicinal plants, seed preservation, and sustainable agriculture should be scientifically documented and integrated into rural development planning. Such integration will strengthen both environmental sustainability and cultural preservation.

Conclusion: The present study demonstrates that Gond and Kawar tribal women play a central role in promoting sustainable development in the rural regions of Raigarh district, Chhattisgarh. Their contribution extends far beyond household responsibilities and encompasses agriculture, forest resource management, livestock rearing, biodiversity conservation, food security, environmental protection, and community development. Through their extensive participation in productive activities, tribal women significantly contribute to household income, nutritional security, and sustainable livelihood systems.

The comparative analysis indicates that although both Gond and Kawar women share similar socio-economic characteristics, certain differences exist in their livelihood strategies and resource utilization patterns. Gond women exhibit stronger dependence on forests and traditional ecological knowledge, whereas Kawar women demonstrate relatively greater participation in settled agriculture, Self-Help Groups, and government livelihood programmes. Despite these differences, both communities possess valuable indigenous knowledge that supports sustainable management of natural resources.

The study also highlights the increasing importance of government initiatives such as MGNREGA, National Rural Livelihood Mission (NRLM), Pradhan Mantri Awas Yojana-Gramin, Jal Jeevan Mission, Swachh Bharat Mission, and the Forest Rights Act in improving women's socio-economic conditions. Participation in these programmes has enhanced employment opportunities, financial inclusion, institutional participation, and community development. Nevertheless, significant challenges continue to exist in the form of limited education, inadequate healthcare, poor infrastructure, climate variability, restricted market access, and gender-based inequalities.

One of the major findings of the study is the crucial role of indigenous knowledge in achieving sustainable development. Traditional farming practices, seed preservation, biodiversity conservation, medicinal plant utilization, and sustainable harvesting of forest resources represent valuable assets that should be recognized within mainstream development planning. Modern development strategies should complement rather than replace these traditional knowledge systems.

From a geographical perspective, the interaction between physical environment, natural resources, settlement patterns, and livelihood activities significantly influences the contribution of tribal women towards sustainable development. Therefore, location-specific planning approaches are essential for designing effective development interventions.

The study concludes that sustainable rural development in tribal regions cannot be achieved without recognizing women as active agents of social, economic, and environmental transformation. Strengthening women's education, livelihood opportunities, institutional participation, financial inclusion, and leadership capacities will not only improve their socio-economic status but also contribute substantially towards achieving the Sustainable Development Goals (SDGs). Empowering Gond and Kawar tribal women is therefore not merely a matter of social justice but a prerequisite for environmentally sustainable, economically inclusive, and culturally sensitive rural development.

References :-

1. Agarwal, B. (1994). *A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia*. Cambridge University Press.
2. Census of India. (2011). *Primary Census Abstract*. Office of the Registrar General and Census Commissioner, Government of India.
3. Government of Chhattisgarh. (2024). *Economic Survey of Chhattisgarh 2023–24*. Directorate of Economics and Statistics.
4. Government of Chhattisgarh. (2024). *Statistical Abstract of Chhattisgarh*. Directorate of Economics and Statistics.
5. Ministry of Rural Development. (2023). *Annual Report 2022–23*. Government of India.
6. Ministry of Tribal Affairs. (2023). *Annual Report 2022–23*. Government of India.
7. Planning Commission. (2008). *Eleventh Five Year Plan (2007–2012): Volume III – Agriculture, Rural Development and Environment*. Government of India.
8. Shiva, V. (1988). *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India*. Kali for Women.
9. Singh, K. S. (1994). *People of India*. Anthropological Survey of India.
10. United Nations. (2015). *Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development*. United Nations.
11. World Commission on Environment and Development. (1987). *Our Common Future*. Oxford University Press.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

समान नागरिक संहिता भारत में: एक चर्चा: एक शैक्षणिक शोध पत्र

डॉ. नाजनीन खान* डॉ. निर्मल कुमार पगारिया**

* एपीएसयू विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
** सेवानिवृत्त प्रोफेसर, इंदौर लॉ कॉलेज, इंदौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code - UCC) की भारतीय संवैधानिक, सामाजिक एवं न्यायिक परिप्रेक्ष्य में विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत समान नागरिक संहिता का उल्लेख किया गया है, जिसका उद्देश्य विवाह, तलाक, उत्तराधिकार एवं गोद लेने जैसे व्यक्तिगत कानूनों को एकीकृत करना है। यह शोध पत्र UCC के पक्ष एवं विपक्ष में विद्यमान तर्कों, न्यायपालिका के दृष्टिकोण, विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों की तुलनात्मक स्थिति, उत्तराखंड समान नागरिक संहिता अधिनियम 2024, सांख्यिकीय आंकड़ों एवं अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण करता है। शोध से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि UCC के लागू होने के लिए व्यापक सामाजिक सहमति, संवेदनशील राजनीतिक इच्छाशक्ति एवं संविधान के मूल मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता अनिवार्य है।

शब्द कुंजी – समान नागरिक संहिता, अनुच्छेद 44, व्यक्तिगत कानून, धर्मनिरपेक्षता, लैंगिक न्याय, संवैधानिक विधि।

प्रस्तावना – भारत एक विविधताओं से परिपूर्ण देश है, जहाँ अनेक धर्मों, जातियों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का सहअस्तित्व है। स्वतंत्रता-पूर्व भारत में ब्रिटिश शासनकाल के दौरान विभिन्न धर्मों के लिए पृथक-पृथक व्यक्तिगत कानून लागू थे। इन कानूनों ने धार्मिक समुदायों को उनके रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह, तलाक, उत्तराधिकार एवं गोद लेने के मामलों को नियंत्रित करने की स्वायत्तता प्रदान की। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा में इस प्रश्न पर गहन वाद-विवाद हुआ कि क्या नवनिर्मित भारत में एक समान नागरिक कानून होना चाहिए अथवा विभिन्न धार्मिक समूहों के व्यक्तिगत कानूनों को बनाए रखा जाए।

संविधान सभा में डॉ. भीमराव अंबेडकर, डॉ. कृष्णस्वामी अय्यर एवं मिनू मसानी जैसे नेताओं ने समान नागरिक संहिता का समर्थन किया, जबकि नजीरुद्दीन अहमद और मुहम्मद इस्माईल जैसे नेताओं ने मुस्लिम व्यक्तिगत कानूनों की रक्षा का आग्रह किया। अंतत: समझौते के रूप में UCC को राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों (भाग IV) के अंतर्गत अनुच्छेद 44 में रखा गया, जो न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है, परंतु राज्य के लिए मार्गदर्शक है।

समान नागरिक संहिता का अर्थ है एक ऐसी एकीकृत कानूनी संहिता जो सभी नागरिकों पर उनके धर्म, जाति, लिंग एवं सम्प्रदाय के भेद के बिना समान रूप से लागू हो। यह शोध पत्र UCC की संवैधानिक पृष्ठभूमि, वर्तमान व्यक्तिगत कानूनों की स्थिति, न्यायिक दृष्टिकोण, पक्ष-विपक्ष के तर्क, उत्तराखंड की पहल, सांख्यिकीय विश्लेषण एवं अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है।

संवैधानिक प्रावधान एवं पृष्ठभूमि – भारतीय संविधान में समान नागरिक संहिता से संबंधित अनेक प्रावधान हैं। मूल अधिकारों (भाग III) के अंतर्गत अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समानता), अनुच्छेद 15 (धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव का निषेध), अनुच्छेद 25 (धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार) एवं अनुच्छेद 29 (अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण) ऐसे प्रावधान हैं जो UCC की बहस को केंद्रीय बनाते हैं। दूसरी ओर, राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों (भाग IV) का अनुच्छेद 44 स्पष्टत: कहता है: 'राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा।'

संविधान निर्माताओं ने धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25-28) एवं समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14-15) के बीच संतुलन बनाने के उद्देश्य से न्ब्ब को नीति निदेशक तत्त्वों में रखा। नेहरू सरकार के कार्यकाल में हिंदू कोड बिल के माध्यम से हिंदू व्यक्तिगत कानूनों का आंशिक सुधार किया गया, परंतु मुस्लिम एवं अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों में तत्काल सुधार का प्रयास नहीं किया गया।

तालिका 1 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

भारत में व्यक्तिगत कानूनों की वर्तमान स्थिति – भारत में विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानून पृथक-पृथक विधानों द्वारा शासित होते हैं। हिंदू (जिसमें सिख, बौद्ध एवं जैन भी सम्मिलित हैं) हिंदू कोड (हिंदू विवाह अधिनियम 1955, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 आदि) से शासित होते हैं। मुस्लिम शरीयत एप्लीकेशन एक्ट 1937 के अधीन हैं। ईसाई भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम 1872 एवं तलाक अधिनियम 1869 से नियंत्रित होते हैं। पारसियों के लिए पारसी विवाह एवं तलाक अधिनियम 1936 लागू है। इन पृथक कानूनों के कारण अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं, विशेषत: लैंगिक समानता के संदर्भ में।

वर्तमान में विशेष विवाह अधिनियम, 1954 एक धर्मनिरपेक्ष विकल्प के रूप में उपलब्ध है, जो किसी भी दो व्यक्तियों को उनके धर्म की परवाह किए बिना विवाह करने की अनुमति देता है। परंतु इस विकल्प का उपयोग सीमित रूप में ही होता है क्योंकि सामाजिक दबाव एवं जागरूकता की कमी इसके प्रसार में बाधा डालती है।

तालिका 2,3 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

न्यायिक दृष्टिकोण एवं महत्त्वपूर्ण निर्णय – भारत के उच्चतम न्यायालय ने

विभिन्न अवसरों पर समान नागरिक संहिता के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं। 1985 में शाह बानो प्रकरण सर्वाधिक चर्चित रहा, जिसमें न्यायालय ने मुस्लिम तलाकशुदा महिला के भरण-पोषण के अधिकार को बरकरार रखते हुए UCC लागू करने की अपील की। इस निर्णय के विरोध में तत्कालीन सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित कर दिया।

सरला मुद्गल (1995), जॉन वल्लमट्टम (2003) एवं शायरा बानो (2017) जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों में उच्चतम न्यायालय ने बार-बार UCC की आवश्यकता पर बल दिया है। 2017 में तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित करना इस दिशा में एक ऐतिहासिक कदम माना गया। 2018 में 22वें विधि आयोग ने अपनी परामर्श पत्र में कहा कि UCC 'न तो आवश्यक है और न वांछनीय' - यह एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था।

तालिका 4 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

समान नागरिक संहिता के पक्ष और विपक्ष में तर्क - समान नागरिक संहिता पर भारत में दशकों से वाद-विवाद जारी है। इस बहस में संविधानवादी, धर्मशास्त्री, समाजशास्त्री, न्यायविद् एवं राजनीतिक दल सभी की अपनी-अपनी राय है। समर्थकों का मानना है कि UCC राष्ट्रीय एकता को मजबूत करेगा और महिलाओं को समान अधिकार देगा, जबकि विरोधी इसे धार्मिक स्वतंत्रता एवं सांस्कृतिक विविधता पर आघात मानते हैं।

पक्ष में तर्क देने वाले विद्वानों का कहना है कि भारत का संविधान स्वयं अनुच्छेद 44 के माध्यम से UCC को एक राज्य लक्ष्य के रूप में मान्यता देता है। इसके अलावा, वर्तमान व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के साथ भेदभाव, विशेषत: संपत्ति एवं तलाक के मामलों में, एक गंभीर समस्या है। गोवा का उदाहरण सिद्ध करता है कि एक बहु-धार्मिक समाज में भी समान नागरिक संहिता सफलतापूर्वक लागू की जा सकती है।

विपक्ष में तर्क देने वाले विद्वानों का कहना है कि भारत की सांस्कृतिक विविधता एक संपत्ति है, एकरूपता नहीं। धार्मिक अल्पसंख्यकों को यह आशंका है कि UCC उनकी धार्मिक पहचान को मिटाने का प्रयास है। 22वाँ विधि आयोग भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहता है कि भेदभावपूर्ण प्रावधानों को हटाना समान नागरिक संहिता थोपने से अधिक कारगर उपाय है।

तालिका 5,6 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

उत्तराखंड समान नागरिक संहिता अधिनियम, 2024 - उत्तराखंड भारत में गोवा के बाद दूसरा राज्य बन गया है जहाँ समान नागरिक संहिता लागू की गई है। उत्तराखंड सरकार ने फरवरी 2024 में समान नागरिक संहिता अधिनियम पारित किया और इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति भी प्राप्त हुई। इस अधिनियम को तैयार करने के लिए सेवानिवृत्त न्यायाधीश रंजना प्रकाश देसाई की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई थी, जिसने व्यापक जन-परामर्श के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ हैं: विवाह पंजीकरण अनिवार्य, बहुविवाह पर पूर्ण प्रतिबंध (सभी धर्मों के लिए), तलाक की एकसमान प्रक्रिया, लिव-इन रिलेशनशिप का पंजीकरण अनिवार्य, पुत्र-पुत्री को समान उत्तराधिकार अधिकार। हालाँकि, अनुसूचित जनजातियों को इस अधिनियम के कुछ प्रावधानों से छूट दी गई है, जो संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत उनके विशेष अधिकारों की रक्षा करती है।

आलोचकों का कहना है कि लिव-इन रिलेशनशिप के पंजीकरण की अनिवार्यता निजता के अधिकार (अनुच्छेद 21) का उल्लंघन है। मुस्लिम संगठनों ने धार्मिक स्वतंत्रता के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए इसे न्यायालय में चुनौती दी है। यह अधिनियम अन्य राज्यों में भी UCC की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

तालिका 7 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

सांख्यिकीय विश्लेषण- समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को समझने के लिए न्यायालयों में लम्बित व्यक्तिगत कानून संबंधी मामलों, महिलाओं के विरुद्ध अपराधों एवं जन-मत सर्वेक्षणों के आंकड़े महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। NCRB (राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो) के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा एवं दहेज उत्पीड़न के मामले निरंतर बढ़ रहे हैं। इसका एक कारण विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं की अपेक्षाकृत कमजोर कानूनी स्थिति भी है।

22वें विधि आयोग के पास प्राप्त 57 लाख से अधिक सुझावों में लगभग 65% लोगों ने UCC के पक्ष में मत व्यक्त किया। विभिन्न स्वतंत्र सर्वेक्षणों में भी UCC के समर्थन में आंशिक बहुमत देखा गया है, यद्यपि मुस्लिम समुदाय में विरोध अधिक प्रबल है।

तालिका 8,9,10 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य- विश्व के अनेक देशों में नागरिक संहिता की विभिन्न प्रणालियाँ लागू हैं। फ्रांस 1804 में नेपोलियन कोड लागू करने वाला पहला आधुनिक राष्ट्र था, जो एक धर्मनिरपेक्ष एकीकृत नागरिक संहिता का उत्कृष्ट उदाहरण है। तुर्की ने 1926 में एक इस्लामी बहुसंख्यक देश होते हुए भी धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता अपनाई, जो मुस्तफा कमाल अतातुर्क के आधुनिकीकरण सुधारों का हिस्सा था। इजराइल, मलेशिया एवं इंडोनेशिया जैसे देश मिश्रित प्रणाली अपनाते हैं।

भारत के संदर्भ में गोवा एकमात्र ऐसा राज्य था जहाँ पुर्तगाली शासनकाल से चली आ रही समान नागरिक संहिता (गोवा सिविल कोड) लागू थी। गोवा का यह अनुभव यह सिद्ध करता है कि एक धर्मनिरपेक्ष समान नागरिक संहिता एक बहु-धार्मिक समाज में भी सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है। हालाँकि, आलोचक यह भी बताते हैं कि गोवा का सिविल कोड पूर्णत: सभी के लिए समान नहीं है, क्योंकि उसमें भी कुछ धर्म-आधारित प्रावधान हैं।

तालिका 11 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

निष्कर्ष एवं सुझाव- समान नागरिक संहिता का प्रश्न भारत के राजनीतिक, सामाजिक एवं कानूनी जीवन में सबसे संवेदनशील एवं जटिल विषयों में से एक है। इस शोध पत्र के विश्लेषण से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष निकलते हैं:

1. संवैधानिक दृष्टि से: अनुच्छेद 44 UCC को राज्य का लक्ष्य घोषित करता है, परंतु यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। साथ ही, अनुच्छेद 25-29 धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं, जिनके साथ संतुलन बनाना अनिवार्य है।
2. न्यायिक दृष्टि से: सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार UCC की आवश्यकता दोहराई है, परंतु 22वें विधि आयोग ने एकमुश्त UCC की बजाय भेदभावपूर्ण प्रावधानों को समाप्त करने की सिफारिश की है।
3. लैंगिक न्याय की दृष्टि से: व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के साथ भेदभाव एक ठोस वास्तविकता है। NCRB आंकड़े बताते हैं कि घरेलू

हिंसा एवं दहेज संबंधी अपराध बढ़ रहे हैं, जिन्हें रोकने में एकीकृत कानून सहायक हो सकता है।

4. उत्तराखंड प्रयोग: उत्तराखंड का UCC अधिनियम 2024 भारत में राज्य स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है, जिसके दीर्घकालिक परिणामों की प्रतीक्षा है।
5. अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण: फ्रांस, तुर्की एवं गोवा के उदाहरण सिद्ध करते हैं कि समान नागरिक संहिता लागू की जा सकती है, परंतु इसके लिए पर्याप्त सामाजिक तैयारी एवं राजनीतिक सहमति आवश्यक है।

सुझाव :

1. व्यापक जन-संवाद: UCC लागू करने से पूर्व सभी धार्मिक समुदायों, महिला संगठनों, जनजातीय समूहों एवं नागरिक समाज के साथ व्यापक परामर्श होना चाहिए।
2. चरणबद्ध कार्यान्वयन: एकमुश्त UCC थोपने की बजाय विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों में भेदभावपूर्ण प्रावधानों को चरणबद्ध तरीके से समाप्त किया जाए।
3. महिला अधिकारों को प्राथमिकता: किसी भी UCC का केंद्र बिंदु महिला समानता एवं सुरक्षा होना चाहिए, न कि धार्मिक एकरूपता।
4. जनजातीय छूट: अनुसूचित जनजातियों की विशेष सांस्कृतिक परम्पराओं का सम्मान करते हुए उन्हें उचित छूट दी जाए।
5. राष्ट्रीय सहमति: UCC को राजनीतिक एजेंडे से अलग रखकर व्यापक राष्ट्रीय सहमति के आधार पर लागू किया जाए, ताकि यह भारत की विविधता में एकता के मूल सिद्धांत को चरितार्थ करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

क. संवैधानिक प्रावधान एवं विधान

1. भारत का संविधान (The Constitution of India), 1950 – अनुच्छेद 14, 15, 21, 25, 26, 29, 37, 44.
2. हिंदू विवाह अधिनियम (Hindu Marriage Act), 1955.
3. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (Hindu Succession Act), 1956.
4. मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) एप्लीकेशन एक्ट (Muslim Personal Law Application Act), 1937.
5. मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम (Dissolution of Muslim Marriages Act), 1939.
6. भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम (Indian Christian Marriage Act), 1872.
7. विशेष विवाह अधिनियम (Special Marriage Act), 1954.
8. मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986.
9. मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2019.
10. उत्तराखंड समान नागरिक संहिता अधिनियम, 2024.

ख. न्यायिक निर्णय

1. मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम (1985) 2 SCC 556.
2. सरला मुद्गल बनाम भारत संघ (1995) 3 SCC 635.
3. जॉन वल्लमट्टम बनाम भारत संघ (2003) 6 SCC 611.
4. शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017) 9 SCC 1.
5. जोस पाउलो कॉटिन्हो बनाम मारिया लुईजा (2019) 11 SCC 18.

ग. विधि आयोग रिपोर्ट एवं सरकारी दस्तावेज:

1. Law Commission of India, Consultation Paper on Reform of Family Law, 21st Law Commission, 2018.
2. 22nd Law Commission of India, Consultative Paper on UCC 2023-24.
3. National Crime Records Bureau (NCRB), Crime in India Report, 2022, New Delhi: Ministry of Home Affairs.
4. Census of India, 2011, Office of the Registrar General and Census Commissioner, India.
5. National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21, Ministry of Health and Family Welfare.

घ. पुस्तकें एवं शोध पत्र:

1. Seervai, H.M. (1993). Constitutional Law of India (4th ed.). N.M. Tripathi.
2. Parashar, Archana (1992). Women and Family Law Reform in India. SAGE Publications.
3. Desai, Satyajeet A. (2007). Mulla's Principles of Hindu Law (21st ed.). LexisNexis.
4. Saxena, Poonam Pradhan (2011). Family Law II. LexisNexis Butterworths.
5. Agarwala, R.K. (2015). Hindu Law (23rd ed.). Central Law Agency, Allahabad.
6. Mahmood, Tahir (1977). Muslim Personal Law: Role of the State in the Subcontinent. Vikas Publishing.
7. Agnes, Flavia (2011). Family Law: Family Laws and Constitutional Claims. Oxford University Press.
8. Lokniti-CSDS Survey on Uniform Civil Code, 2024. Centre for the Study of Developing Societies, New Delhi.

तालिका 1: समान नागरिक संहिता से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

अनुच्छेद	भाग	प्रावधान	UCC से संबंध
अनुच्छेद 14	भाग III – मौलिक अधिकार	विधि के समक्ष समानता	सभी नागरिकों को समान कानूनी स्थिति
अनुच्छेद 15	भाग III – मौलिक अधिकार	धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव का निषेध	लैंगिक समानता का आधार
अनुच्छेद 25	भाग III – मौलिक अधिकार	धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार	UCC के विरोध का प्रमुख आधार
अनुच्छेद 26	भाग III – मौलिक अधिकार	धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता	धार्मिक संस्थाओं की स्वायत्तता
अनुच्छेद 29	भाग III – मौलिक अधिकार	अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण	सांस्कृतिक विविधता की रक्षा
अनुच्छेद 44	भाग IV – DPSP	राज्य समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करेगा	UCC का प्रत्यक्ष संवैधानिक आधार
अनुच्छेद 37	भाग IV – DPSP	DPSP न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं	UCC अनिवार्य नहीं, केवल मार्गदर्शक

तालिका 2: भारत में विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानून

विषय	**हिंदू कानून**	**मुस्लिम कानून**	**ईसाई कानून**	**विशेष विवाह अधिनियम**
विवाह	हिंदू विवाह अधिनियम, 1955	मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत), 1937	भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872	विशेष विवाह अधिनियम, 1954
तलाक	हिंदू विवाह अधिनियम, 1955	मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939	तलाक अधिनियम, 1869	विशेष विवाह अधिनियम, 1954
उत्तराधिकार	हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956	मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत)	भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925	भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925
गोद लेना	हिंदू दत्तक ग्रहण अधिनियम, 1956	अनुमति नहीं (केवल कफालत)	संरक्षक एवं प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890	संरक्षक एवं प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890
भरण-पोषण	हिंदू दत्तक एवं भरण-पोषण अधिनियम, 1956	CrPC धारा 125; मुस्लिम महिला अधिनियम, 1986	CrPC धारा 125	CrPC धारा 125

तालिका 3: भारत में धार्मिक जनसंख्या एवं व्यक्तिगत कानूनों का प्रभाव (जनगणना 2011 आधारित)

धर्म	**जनसंख्या (करोड़)**	**प्रतिशत (%)**	**लागू व्यक्तिगत कानून**	**प्रमुख विवाद बिंदु**
हिंदू	96.63	79.8%	हिंदू कोड (संशोधित)	संपत्ति अधिकार, HUF
मुस्लिम	17.22	14.2%	शरीयत एप्लीकेशन एक्ट	बहुविवाह, तलाक, उत्तराधिकार
ईसाई	2.78	2.3%	भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम	तलाक की जटिल प्रक्रिया
सिख	2.08	1.7%	हिंदू कोड लागू	आनंद मैरिज एक्ट
बौद्ध	0.84	0.7%	हिंदू कोड लागू	–
जैन	0.45	0.4%	हिंदू कोड लागू	–
पारसी	0.006	0.006%	पारसी विवाह एवं तलाक अधिनियम	अंतर-धार्मिक विवाह
अन्य/धर्महीन	0.87	0.7%	विशेष विवाह अधिनियम	

तालिका 4: समान नागरिक संहिता पर प्रमुख न्यायिक निर्णय

वाद (Case)	**वर्ष**	**मुख्य मुद्दा**	**न्यायालय का निर्णय/टिप्पणी**
मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम	1985	मुस्लिम तलाकशुदा महिला का भरण-पोषण	सर्वोच्च न्यायालय ने UCC लागू करने की अपील की
सरला मुद्गल बनाम भारत संघ	1995	धर्म परिवर्तन कर दूसरा विवाह	UCC की आवश्यकता पर बल दिया
जॉन वल्लमट्टम बनाम भारत संघ	2003	ईसाई उत्तराधिकार में भेदभाव	अनुच्छेद 44 के कार्यान्वयन पर जोर
शायरा बानो बनाम भारत संघ	2017	तीन तलाक (तलाक-ए-बिद्दत)	तीन तलाक असंवैधानिक घोषित
जोस पाउलो कॉटिन्हो बनाम मारिया लुईजा	2019	गोवा नागरिक संहिता	गोवा की समान संहिता की सराहना
सर्वोच्च न्यायालय (22वाँ विधि आयोग)	2018	UCC पर विचार	'UCC न तो आवश्यक है न वांछनीय' – विधि आयोग

तालिका 5: समान नागरिक संहिता – पक्ष एवं विपक्ष

पक्ष में तर्क (For UCC)	**विपक्ष में तर्क** (Against UCC)
राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बढ़ावा	धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25–28) का उल्लंघन
लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण	भारत की सांस्कृतिक विविधता को खतरा
संवैधानिक आदेश (अनुच्छेद 44) का पालन	अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर प्रभाव
कानूनी प्रणाली का सरलीकरण	सहमति के बिना लागू करना अलोकतांत्रिक
धर्मनिरपेक्षता का सच्चा अर्थ	व्यावहारिक कठिनाइयाँ – विविध प्रथाओं का एकीकरण
गोवा का सफल उदाहरण	राजनीतिक ध्रुवीकरण का खतरा
आधुनिकीकरण और प्रगतिशील समाज	जनजातीय समुदायों की विशेष प्रथाओं पर प्रभाव

तालिका 6: विधि आयोग की रिपोर्ट – UCC पर सिफारिशें (कालक्रम)

विधि आयोग	**वर्ष**	**अध्यक्ष**	**मुख्य सिफारिश**
प्रथम विधि आयोग (ब्रिटिश काल)	1840	Lord Macaulay	व्यक्तिगत कानूनों को एकीकरण से बाहर रखा
15वाँ विधि आयोग	1960	A.K. Sarkar	हिंदू कानून सुधार पर ध्यान
21वाँ विधि आयोग	2018	न्यायमूर्ति B.S. Chauhan	UCC 'न आवश्यक, न वांछनीय'; भेदभावपूर्ण प्रावधान हटाने पर बल
22वाँ विधि आयोग	2023–24	न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) Ritu Raj Awasthi	UCC पर जनता से सुझाव आमंत्रितय विचाराधीन

तालिका 7: उत्तराखंड UCC अधिनियम 2024 – मुख्य प्रावधान

विषय	**प्रावधान**	**पूर्व स्थिति**	**परिवर्तन**
विवाह पंजीकरण	60 दिनों के भीतर अनिवार्य	स्वैच्छिक	अनिवार्य
विवाह की न्यूनतम आयु	पुरुष 21, महिला 18 वर्ष	समान	कोई परिवर्तन नहीं
बहुविवाह	पूर्णतः प्रतिबंधित (सभी धर्मों के लिए)	मुस्लिम पुरुषों को 4 विवाह की अनुमति	एकसमान प्रतिबंध
तलाक	एकसमान प्रक्रिया ह न्यायालय द्वारा	धर्म–आधारित भिन्न प्रक्रियाएँ	एकीकृत
उत्तराधिकार	पुत्र–पुत्री को समान अधिकार (सभी धर्मों में)	धर्म–आधारित भिन्नता	एकसमान
लिव–इन रिलेशनशिप	पंजीकरण अनिवार्य (30 दिन के भीतर)	कोई कानूनी मान्यता नहीं	नई व्यवस्था
गोद लेना	सभी धर्मों के लिए समान प्रक्रिया	धर्म–आधारित भिन्नता	एकीकृत
भरण–पोषण	पति–पत्नी दोनों का अधिकार	मुख्यतः पत्नी का अधिकार	लैंगिक समानता

तालिका 8: व्यक्तिगत कानूनों से संबंधित न्यायालय में लम्बित मामले (2023)

न्यायालय स्तर	**कुल लम्बित मामले**	**पारिवारिक/व्यक्तिगत कानून मामले**	**प्रतिशत**
सर्वोच्च न्यायालय	80,439	~5,200	~6.5%
उच्च न्यायालय	61,17,846	~8,50,000	~13.9%
जिला न्यायालय	4,43,70,154	~1,15,00,000	~25.9%
पारिवारिक न्यायालय	11,34,286	11,34,286	100%

तालिका 9: महिलाओं के विरुद्ध अपराध – NCRB डेटा (2022)

अपराध श्रेणी	**दर्ज मामले (2022)**	**2021 से परिवर्तन (%)**	**दोषसिद्धि दर (%)**
क्रूरता/दहेज उत्पीड़न (498A)	1,36,234	5.4%	14.3%
दहेज हत्या (304B)	6,450	-2.1%	34.7%
बलात्कार (376 IPC)	31,516	4.3%	27.8%
अपहरण	57,532	3.8%	22.1%
घरेलू हिंसा (DV Act)	16,234	8.2%	12.5%
कार्यस्थल यौन उत्पीड़न	1,221	12.4%	18.6%
कुल (महिलाओं के विरुद्ध)	4,45,256	4.0%	ˎ20%

तालिका 10: UCC पर जनमत सर्वेक्षण (विभिन्न स्रोत)

सर्वेक्षण/स्रोत	वर्ष	पक्ष में (%)	विपक्ष में (%)	कोई राय नहीं (%)
22वाँ विधि आयोग (प्राप्त सुझाव)	2023	~65%	~30%	~5%
C-Voter Survey	2023	44%	31%	25%
India Today-Axis My India	2023	51%	28%	21%
Lokniti-CSDS Survey	2024	47%	33%	20%

तालिका 11: विभिन्न देशों में नागरिक संहिता की स्थिति

देश	नागरिक संहिता की स्थिति	वर्ष	विशेषता
फ्रांस	नेपोलियन कोड	1804	विश्व की पहली आधुनिक नागरिक संहिता
तुर्की	तुर्की नागरिक संहिता	1926	इस्लामी देश में धर्मनिरपेक्ष संहिता
जापान	जापानी नागरिक संहिता	1898	जर्मन-फ्रेंच मॉडल पर आधारित
गोवा (भारत)	गोवा नागरिक संहिता	1867 (पुर्तगाली)	भारत में एकमात्र राज्य जहाँ UCC लागू था
इजराइल	मिश्रित प्रणाली	1948	व्यक्तिगत कानून धार्मिक, अन्य कानून समान
मलेशिया	द्वैध प्रणाली	1957	मुस्लिमों के लिए शरीयत, अन्य के लिए सिविल लॉ
इंडोनेशिया	मिश्रित प्रणाली	1945	आदत, इस्लामिक और सिविल कानून
मिस्र	मिश्रित प्रणाली	1949	फ्रेंच मॉडल शरीयत (पारिवारिक कानून)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Women's Legal Status & Rights in the Indian Constitution: A Constitutional and Legislative Analysis

Dr. Najneen Khan* Dr. Nirmal Kumar Pagariya**

*APSU University, Rewa (M.P.) INDIA
** Retd. Professor, Indore Law College, Indore (M.P.) INDIA

Abstract: The Indian Constitution, adopted on 26 November 1949, stands as one of the most progressive constitutional documents in the world with respect to gender equality. This paper examines the constitutional and legislative framework governing the legal status and rights of women in India, tracing the provisions embedded in the Fundamental Rights (Part III), the Directive Principles of State Policy (Part IV), and the Fundamental Duties (Part IVA). It analyses key parliamentary legislation enacted to give effect to constitutional guarantees, including the Protection of Women from Domestic Violence Act 2005, the Sexual Harassment of Women at Workplace Act 2013, the Hindu Succession (Amendment) Act 2005, and the Nari Shakti Vandan Adhiniyam 2023. The paper further surveys landmark Supreme Court judgments that have progressively expanded the scope of women's rights through creative constitutional interpretation. A critical assessment of challenges encompassing socio-cultural barriers, implementation gaps, economic dependence, and intersecting disadvantages of caste and class reveals that despite a robust de jure framework, de facto equality remains elusive for millions of Indian women. The paper concludes with targeted recommendations for bridging the enduring gap between constitutional promise and social reality.
Keywords: Indian Constitution, women's rights, gender equality, Fundamental Rights, Directive Principles, landmark judgments, women's reservation, implementation gap.

Introduction - The history of women in India is one of paradox: goddesses venerated alongside women subjugated. For centuries prior to independence, women in India were largely denied legal personhood. They were excluded from property ownership, constrained by personal laws that sanctioned polygamy and unilateral divorce, barred from public office, and rendered almost entirely dependent on male guardians for their social and economic existence. The colonial period, while it introduced reformist legislation such as the Hindu Widows' Remarriage Act of 1856 and the Child Marriage Restraint Act of 1929, left the fundamental structures of patriarchal subordination largely intact.

It was therefore a moment of profound historical significance when the Constituent Assembly of India, which included notable women members such as Sarojini Naidu, Hansa Mehta, Amrit Kaur, Durgabai Deshmukh, and Vijaya Lakshmi Pandit, deliberated the shape of an independent nation's foundational law. These women advocated successfully for the inclusion of explicit equality provisions, resisting proposals that would have relegated women's rights to mere policy aspirations. The result was a Constitution that, from its very Preamble, promised Justice, Liberty, Equality, and Fraternity to all its citizens irrespective of sex.

This research paper undertakes a comprehensive examination of women's legal status and rights under the Indian constitutional and statutory order. It proceeds in seven parts: an analysis of the constitutional framework including Fundamental Rights, Directive Principles, and Fundamental Duties; a survey of the principal legislative measures enacted for women's protection and empowerment; a review of landmark judicial interpretations that have shaped the contemporary understanding of gender rights; an assessment of women's political participation and representation; a critical evaluation of persistent challenges and implementation gaps; and finally, a set of conclusions and recommendations directed toward realising the Constitution's egalitarian vision in practice.

The thesis central to this paper is that the Indian Constitution provides one of the most robust de jure frameworks for gender equality in the world, yet a profound and troubling gap persists between constitutional aspiration and social reality, a gap that demands urgent attention from lawmakers, courts, civil society, and citizens alike.

Constitutional Framework for Women's Rights: The Indian Constitution addresses the question of women's rights and gender equality across multiple Parts, adopting a comprehensive approach that combines justiciable Fundamental Rights with directive policy principles and

citizen duties. Together, these provisions create a multi-layered normative architecture designed to eliminate historical disadvantages faced by women and to create conditions for substantive equality.

Fundamental Rights (Part III)

Part III of the Constitution, comprising Articles 12 to 35, enumerates the Fundamental Rights enforceable against the State. Several of these provisions have direct and critical relevance to women's equality and protection.

Article 14 — Equality Before Law: This Article guarantees that "the State shall not deny to any person equality before the law or the equal protection of the laws within the territory of India." For women, Article 14 has been the constitutional anchor for challenging laws and executive actions that arbitrarily discriminate on the basis of gender. The Supreme Court has consistently held that laws targeting women without rational justification violate Article 14.

Article 15 — Prohibition of Discrimination: Article 15(1) prohibits the State from discriminating against any citizen on grounds only of religion, race, caste, sex, or place of birth. However, the provision most transformative for women is Article 15(3), which creates an enabling exception: "Nothing in this article shall prevent the State from making any special provision for women and children." This clause is the constitutional foundation for affirmative action and reservation policies benefiting women, including reservations in local government and Parliament.

Article 16 — Equality of Opportunity in Public Employment: Article 16 guarantees equality of opportunity for all citizens in matters relating to employment or appointment to any office under the State. It prohibits discrimination on grounds that include sex, thereby ensuring women's equal access to public employment, and has been relied upon extensively in litigation challenging gender-based exclusions from government service and promotions.

Article 21 — Right to Life and Personal Liberty: Perhaps the most expansively interpreted fundamental right, Article 21 declares that "no person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law." Through landmark decisions, the Supreme Court has given Article 21 rich and evolving content with profound implications for women: the right to live with dignity, the right to privacy and bodily autonomy (K.S. Puttaswamy v. Union of India, 2017), the right to livelihood, the right to health, and the right to be free from sexual harassment at the workplace.

Article 23 — Prohibition of Trafficking: Article 23 prohibits traffic in human beings and forced labour, declaring any contravention to be a punishable offence. Since women constitute the overwhelming majority of victims of trafficking for sexual exploitation and bonded labour, this provision, coupled with the Immoral Traffic (Prevention) Act 1956, forms a critical part of the protective constitutional architecture.

Directive Principles of State Policy (Part IV)

Part IV of the Constitution (Articles 36-51) contains the Directive Principles of State Policy, which, while not enforceable in courts, are "fundamental in the governance of the country" and obligate the State to apply them in making laws (Article 37). Several Directive Principles are of direct relevance to women's economic, social, and legal equality.

Article 39(a) mandates that the State shall direct its policy towards securing the right to an adequate means of livelihood for both men and women citizens. Article 39(d) directs equal pay for equal work for both men and women, a principle given statutory expression in the Equal Remuneration Act 1976. Article 42 mandates the State to make provision for just and humane conditions of work and for maternity relief, forming the constitutional basis of the Maternity Benefit Act. Article 44 envisages a Uniform Civil Code for citizens across India, a still-contested provision with significant implications for women subject to discriminatory personal laws in matters of marriage, divorce, and succession. Article 46 requires the State to promote the educational and economic interests of the weaker sections, which has been interpreted to encompass gender as a dimension of structural disadvantage.

Fundamental Duties (Part IVA)

The Forty-Second Constitutional Amendment (1976) inserted Part IVA containing Fundamental Duties. Article 51A(e) specifically imposes on every citizen of India the duty "to renounce practices derogatory to the dignity of women." Though non-justiciable, this duty is constitutionally significant as a statement of civic obligation and has been relied upon by courts in shaping the content of other rights, including the right to dignity under Article 21.

Table 1 (see in last page)

Legislative Measures for Women's Protection: The constitutional framework described above has been supplemented by an extensive body of parliamentary legislation that seeks to translate constitutional guarantees into enforceable legal norms. These statutes operate across criminal law, civil remedy, labour rights, property rights, political empowerment, and workplace safety, reflecting the multi-dimensional nature of gender inequality in India.

Criminal Law Protections: The Indian Penal Code 1860, now substantially replaced by the Bharatiya Nyaya Sanhita 2023, has long contained provisions targeting crimes against women, including rape (Section 376), cruelty by husband or his relatives (Section 498A), dowry death (Section 304B), and kidnapping or abduction for marriage (Section 366). The Criminal Law (Amendment) Act 2013, enacted in the wake of the December 2012 Delhi gang-rape case, substantially overhauled the legal response to sexual offences. The amended law expanded the definition of rape to include non-penetrative acts, created new offences of stalking, voyeurism, acid attack, and trafficking, enhanced minimum sentences, and introduced fast-track courts for sexual offence cases.

The Dowry Prohibition Act 1961 prohibits the giving and taking of dowry, with penalties extending to imprisonment of up to five years and a fine of no less than fifteen thousand rupees or the value of dowry, whichever is higher. The Act has been strengthened through successive amendments, and its violation is treated as a cognisable, non-bailable offence under the Code of Criminal Procedure.

Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005: Enacted in fulfilment of India's obligations under the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW), the Protection of Women from Domestic Violence Act 2005 (PWDVA) represents a landmark legislative achievement. For the first time, the Act provided a comprehensive civil law remedy for domestic violence, covering physical, sexual, emotional, verbal, and economic abuse within domestic relationships.

The Act provides for a range of reliefs including protection orders (restraining the respondent from committing acts of violence), residence orders (securing the aggrieved woman's right to reside in the shared household), monetary relief (for medical expenses, loss of earnings, and maintenance), custody orders for children, and compensation orders. It created a new institutional architecture including Protection Officers, Service Providers, and Magistrate Courts with jurisdiction to grant emergency relief within 60 days. Since its enactment, the PWDVA has been used by hundreds of thousands of women across India and has been progressively interpreted by courts to extend protection to women in live-in relationships.

Sexual Harassment of Women at Workplace Act, 2013: The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act 2013 (POSH Act) was enacted sixteen years after the Supreme Court's Vishaka Guidelines (discussed in Section 4) to provide a statutory framework for preventing and addressing sexual harassment in the workplace. The Act defines sexual harassment broadly to encompass unwelcome physical contact, demand for sexual favours, sexually coloured remarks, showing pornography, and any other unwelcome physical, verbal, or non-verbal conduct of a sexual nature. Every employer is required to constitute an Internal Complaints Committee (ICC) at each workplace with ten or more employees, with a woman presiding officer and at least half of the members being women. A Local Complaints Committee (LCC) at the district level covers unorganised sector workers and cases against employers themselves. The Act imposes penalties for non-compliance including cancellation of business licences.

Property and Succession Rights: The Hindu Succession (Amendment) Act 2005 effected a transformative change in inheritance law by amending the Hindu Succession Act 1956 to grant daughters equal coparcenary rights in joint family property. Prior to this amendment, daughters could claim a share only upon partition and lost their rights upon marriage. The amended Section 6 confers on daughters the same rights and liabilities as sons in respect of coparcenary property, a right that inheres by birth. In Vineeta Sharma v. Rakesh Sharma (2020), a three-judge bench of the Supreme Court affirmed that this right is available to daughters born before the 2005 amendment as well, provided the coparcener father was alive at the time of the amendment.

Maternity Benefit (Amendment) Act, 2017: The Maternity Benefit (Amendment) Act 2017 amended the Maternity Benefit Act 1961 to significantly enhance protections for working mothers. The most significant change was the increase in paid maternity leave from twelve to twenty-six weeks for working women with fewer than two surviving children. The Act additionally mandates creche facilities for establishments employing fifty or more employees, requires employers to permit women four visits to the creche per day, and provides for work-from-home options where the nature of work permits. These provisions reflect a growing recognition that workplace accommodation for maternal responsibilities is a component of the right to equal participation in the labour force.

Women's Reservation Act, 2023: The Constitution (One Hundred and Sixth Amendment) Act 2023, also known as the Nari Shakti Vandan Adhiniyam, reserves not less than one-third of all seats in the Lok Sabha, State Legislative Assemblies, and the Delhi Legislative Assembly for women. The reserved seats are to be allocated by rotation to different constituencies in each general election. Critically, the reservation is linked to the completion of the next delimitation exercise and the subsequent census, meaning its implementation is expected in the general elections scheduled for 2029 at the earliest. The Act also reserves one-third of the seats reserved for Scheduled Castes and Scheduled Tribes for women from those communities.

Table 2 (see in last page)

Judicial Interpretation and Landmark Judgments: The Indian judiciary, and in particular the Supreme Court of India, has played a transformative role in expanding the constitutional rights of women far beyond what a literal reading of the text might suggest. Through the technique of progressive constitutional interpretation, often described as a "living constitutionalism," courts have consistently read gender equality and women's dignity into the broad provisions of Parts III and IV.

Workplace Sexual Harassment: Vishaka and Its Legacy: Vishaka v. State of Rajasthan (1997) is perhaps the most celebrated women's rights judgment in Indian constitutional history. The case arose from the brutal gang rape of Bhanwari Devi, a social worker in Rajasthan who had been trying to prevent a child marriage. Confronted with the absence of legislation on workplace sexual harassment, a three-judge bench of the Supreme Court exercised its extraordinary power under Article 32 to lay down binding guidelines for the prevention, prohibition, and redressal of

sexual harassment at the workplace. The Vishaka Guidelines, drawing on CEDAW and international human rights standards, remained in force as binding law for sixteen years until replaced by the POSH Act 2013.

Triple Talaq: Shayara Bano v. Union of India (2017): In Shayara Bano v. Union of India (2017), a five-judge Constitution Bench of the Supreme Court addressed the constitutionality of the practice of talaq-e-biddat (triple talaq), by which a Muslim husband could instantly and irrevocably dissolve a marriage by pronouncing "talaq" three times. By a majority of 3:2, the Court declared the practice unconstitutional as violating Articles 14 and 21. The minority held that it was a matter of personal law beyond constitutional challenge. Following the judgment, Parliament enacted the Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act 2019, which criminalises the practice of instant triple talaq.

Adultery Law: Joseph Shine v. Union of India (2018): In Joseph Shine v. Union of India (2018), a five-judge Constitution Bench unanimously struck down Section 497 of the Indian Penal Code, which criminalised adultery. The Court held that the provision was unconstitutional on multiple grounds: it treated women as the property of their husbands, denied women agency over their sexual choices, and discriminated on the basis of sex. Chief Justice Dipak Misra observed that "a wife is not the chattel of the husband" and that any law premised on that assumption violated the core constitutional guarantee of dignity under Article 21.

Right to Worship: Sabarimala Temple Case (2018): Indian Young Lawyers Association v. State of Kerala (2018) presented the Supreme Court with the question whether a centuries-old tradition of excluding women between the ages of ten and fifty from the Sabarimala temple was constitutionally valid. By a 4:1 majority, the Court held that the exclusion violated Articles 14, 15, and 25, ruling that the right to religious practice did not extend to discriminating against women on the basis of physiological characteristics. The lone dissenting judge held that the practice constituted an "essential religious practice" protected under Article 26. The judgment sparked significant public controversy and subsequent litigation.

Armed Forces: Secretary, Ministry of Defence v. Babita Puniya (2020): In Babita Puniya v. Union of India (2020), the Supreme Court directed that women officers in the Indian Army be granted permanent commission and made eligible for command appointments, rejecting the government's argument that women were physiologically unsuitable for command roles. The Court held that denial of permanent commission to women officers violated Articles 14 and 16 and was premised on "outdated and paternalistic" stereotypes about women's capabilities that had no place in constitutional law.

Table 3 (see in last page)

Political Participation and Representation: The Constitution of India grants women the right to vote and to stand for election on terms identical to men, making the principle of political equality a foundational guarantee. Article 326 confers adult suffrage on all citizens without discrimination, and Article 325 prohibits any person from being ineligible for inclusion in electoral rolls on grounds of sex, among others. However, the translation of these formal guarantees into meaningful political representation has been a slow and contested process.

Local Self-Government: The 73rd and 74th Amendments: The Constitution (Seventy-Third Amendment) Act 1992 and the Constitution (Seventy-Fourth Amendment) Act 1992 introduced mandatory reservation of not less than one-third of seats for women in Panchayati Raj institutions and Urban Local Bodies respectively, under Articles 243D and 243T. These amendments are rightly regarded as one of the most successful affirmative action measures in Indian constitutional history. By 2023, more than 1.4 million elected women representatives occupied positions in gram panchayats, panchayat samitis, and zila parishads across India.

The practical impact of local-level reservation has been significant. Studies by the World Bank and the International Centre for Research on Women have documented that women sarpanchs (village heads) in reserved constituencies show measurable improvements in public goods provision, particularly in areas of water supply, sanitation, and girls' education. Several states, including Bihar, Jharkhand, Uttarakhand, Maharashtra, and Rajasthan, have increased their reservation quota to fifty percent.

National Legislature: Women's Reservation Act, 2023

The enactment of the Nari Shakti Vandan Adhiniyam 2023 marked the culmination of three decades of legislative effort to extend reservation to Parliament. The Women's Reservation Bill was first introduced in 1996 and was repeatedly stalled due to demands for sub-reservation for OBC women and other political disagreements. The 2023 Act, passed with near-unanimous support in both Houses, reserves not less than one-third of seats in the Lok Sabha, State Assemblies, and the Delhi Legislative Assembly for women through rotation across constituencies.

However, the Act's implementation is contingent on the completion of the delimitation exercise following the first census conducted after the Act's commencement. Given that the 2021 Census was delayed and has not yet been concluded, the reservation is expected to come into effect no earlier than the 2029 general elections. Critics have argued that this built-in delay represents a failure of political will, while proponents maintain that linking reservation to delimitation is constitutionally necessary to ensure equitable distribution.

Table 4 (see in last page)

Challenges and Implementation Gaps: Despite the constitutional and legislative framework described in the preceding sections, the realisation of substantive gender

equality in India remains a work profoundly in progress. A persistent and troubling gap separates the aspirational architecture of the law from the lived experience of millions of Indian women. This section examines the principal dimensions of that gap.

The De Jure-De Facto Divide: India's de jure legal framework for women's rights is, by global standards, remarkably comprehensive. Yet the country's performance on comparative gender equality indices tells a sobering story. In the World Economic Forum's Global Gender Gap Report 2023, India ranked 127th out of 146 countries. The country performs particularly poorly on the economic participation and opportunity sub-index, where it ranks 142nd, reflecting the stark gap between constitutional guarantees of equal opportunity and the reality of female labour force participation.

Similarly, despite the Dowry Prohibition Act having been on the statute book since 1961, the National Crime Records Bureau (NCRB) Data for 2022 recorded 6,450 dowry deaths across India. Reported crimes against women including rape, kidnapping, assault, and cruelty by husbands continued at a rate of over 4,45,000 cases per year. These figures, while significant, are widely regarded by experts as substantial undercounts given the barriers to reporting.

Socio-Cultural Barriers and Patriarchal Norms: One of the deepest structural obstacles to the realisation of women's constitutional rights is the enduring power of patriarchal norms, caste hierarchies, and religious customs that operate as de facto legal systems in large parts of India, particularly in rural areas. Khap panchayats and caste councils have continued to issue diktats restricting women's freedom of movement, clothing, and choice of marriage partner, often with impunity. Honour-based violence remains a significant threat to women who exercise their constitutional rights.

Female foeticide and infanticide, though prohibited under the Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic Techniques (PC-PNDT) Act 1994, have contributed to severely skewed sex ratios in many districts, particularly in the states of Haryana, Punjab, and Rajasthan. The 2011 Census recorded a child sex ratio of 914 girls per 1000 boys nationally, with some districts falling as low as 774, reflecting deep-seated son preference that no law has yet fully eradicated.

Access to Justice: The formal legal system, while offering significant protections on paper, remains inaccessible to large numbers of women due to multiple overlapping barriers. Geographic distance from courts, legal aid offices, and police stations disproportionately affects rural women. The financial cost of litigation, even where legal aid is available, creates deterrent effects. Police attitudes — characterised in research by the National Law School as "victim-blaming" in a significant proportion of cases — deter reporting of crimes ranging from rape to domestic violence. The under-representation of women in the legal profession, particularly at the higher judiciary, further affects access. As of 2024, only three of thirty-four judges of the Supreme Court of India are women, and no woman has yet served as Chief Justice of India. In district and sessions courts, female judges constitute approximately 30 percent of the judiciary, a figure that, while improving, reflects the persistence of structural barriers in legal education and appointment.

Economic Dependence: Economic dependence remains one of the most powerful impediments to women's ability to exercise their legal rights. A woman who is financially dependent on her husband or in-laws faces severe practical barriers to invoking the Domestic Violence Act, seeking divorce, or reporting crimes. India's female labour force participation rate, at approximately 37 percent in 2023 (International Labour Organization data), though showing improvement from a historic low of 23 percent in 2018, remains well below the male rate of 77 percent and the global average of 47 percent.

The gender wage gap further compounds this problem. Despite the Equal Remuneration Act 1976 and the mandate of Article 39(d), the International Labour Organization estimates that Indian women earn approximately 34 percent less than men for comparable work, one of the widest gender wage gaps in the Asia-Pacific region. Women's ownership of productive assets, including land and housing, remains far below that of men, limiting their collateral for credit and their resilience in the face of family breakdown.

Intersectionality: Caste, Class, Religion, and Gender

The concept of intersectionality — the interaction of multiple dimensions of identity and disadvantage — is particularly salient for Indian women. Dalit women face a compounded burden of caste discrimination and gender discrimination that is qualitatively distinct from either form of discrimination experienced alone. Data from the NCRB indicates that Dalit women are disproportionately represented among the victims of rape, sexual assault, and atrocity offences.

Adivasi (tribal) women face similar compounded disadvantages, including threats to their land rights, vulnerability to displacement from development projects, and restricted access to healthcare and education. Muslim women navigating the intersection of religious personal law and constitutional equality rights occupy a particularly complex legal space, as demonstrated by the decade-long constitutional litigation over triple talaq and related practices. A rights framework that addresses only gender, without attending to these intersecting structures of disadvantage, will inevitably fail to protect the most vulnerable women.

Table 5, 6 (see in Ist page)

Conclusion: This paper has traced the architecture of women's legal rights and status across the constitutional, legislative, and judicial dimensions of the Indian legal order. The picture that emerges is one of remarkable normative ambition: a Constitution that, at its founding, embedded gender equality as a non-negotiable principle; a body of

legislation that has expanded and deepened protections over seven decades; and a judiciary that has, in its best moments, served as a courageous champion of women's constitutional rights, reading dignity, privacy, and equality generously into the fundamental rights provisions.

And yet, the paper has also documented the persistent and deep failure of these de jure guarantees to translate into de facto equality for the majority of Indian women. The Global Gender Gap Report, NCRB crime data, female labour force participation rates, and the representation of women in Parliament and the judiciary all tell a consistent story: the gap between constitutional promise and social reality is wide, measurable, and morally unacceptable.

The causes of this gap are multiple and mutually reinforcing. They include the structural inadequacy of enforcement mechanisms; the persistence of socio-cultural norms that treat women as subordinate; the economic dependence that prevents women from exercising formal rights; the intersecting disadvantages of caste, class, religion, and gender; and the insufficient representation of women in the institutions that make, interpret, and enforce the law. Closing this gap requires action on all of these fronts simultaneously.

Recommendations

1. Early Implementation of Political Reservation: The Nari Shakti Vandan Adhiniyam 2023 should be operationalised at the earliest feasible opportunity. Parliament should consider expediting the census and delimitation exercises to enable implementation by 2029. States should simultaneously increase local body reservation to fifty percent, following the lead of Bihar and Rajasthan.

2. Uniform Civil Code: Serious, consultative engagement on the Uniform Civil Code as envisioned by Article 44 should be undertaken, with specific attention to ensuring that any such code ensures at minimum equal rights in marriage, divorce, maintenance, and succession for women of all religious communities, without targeting or stigmatising any particular community.

3. Strengthening Access to Justice: The number of Fast Track Special Courts for sexual offence cases should be significantly increased. Legal aid services for women, including mobile legal aid clinics in rural areas, should be expanded. Mandatory gender sensitisation training for police officers, magistrates, and public prosecutors should be institutionalised and rigorously monitored.

4. Economic Empowerment: Interventions to increase female labour force participation, including expanded childcare infrastructure, enforcement of the POSH Act, and skill development programmes for rural women, should be treated as constitutional imperatives. The gender wage gap should be monitored systematically and addressed through both legislation and enforcement.

5. Intersectional Approach: Data collection on crimes against women and social indicators should be routinely disaggregated by caste, religion, and tribal status to enable targeted interventions for the most disadvantaged groups. Specific programmes for Dalit women, Adivasi women, and women from religious minorities should be designed in consultation with the communities concerned.

6. Increasing Women in Judiciary and Legal Profession: The Supreme Court Collegium and High Court Collegiums should adopt and publish transparent gender targets for judicial appointments. Law schools should actively recruit women students from underrepresented communities and create mentorship pathways to senior advocacy and judicial careers.

Ultimately, the realisation of women's constitutional rights in India is not a project confined to the legal domain. It requires a fundamental cultural transformation in how women are valued, heard, and empowered across Indian society. The Constitution has provided the roadmap. The task of every generation is to walk the distance between the promise of the text and the reality of lives lived under it.

References:-

Constitutional Provisions:

1. Constitution of India (1950). Articles 14, 15, 16, 19, 21, 23, 39, 42, 44, 46, 51A. Government of India.

Statutes and Legislation:

1. Dowry Prohibition Act, 1961 (Act No. 28 of 1961). Parliament of India.
2. Equal Remuneration Act, 1976 (Act No. 25 of 1976). Parliament of India.
3. Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 (Act No. 43 of 2005). Parliament of India.
4. Hindu Succession (Amendment) Act, 2005 (Act No. 39 of 2005). Parliament of India.
5. Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013 (Act No. 14 of 2013). Parliament of India.
6. Criminal Law (Amendment) Act, 2013 (Act No. 13 of 2013). Parliament of India.
7. Maternity Benefit (Amendment) Act, 2017 (Act No. 6 of 2017). Parliament of India.
8. Constitution (One Hundred and Sixth Amendment) Act, 2023 [Nari Shakti Vandan Adhiniyam]. Parliament of India.
9. Muslim Women (Protection of Rights on Marriage) Act, 2019 (Act No. 20 of 2019). Parliament of India.

Judicial Decisions:

1. Vishaka v. State of Rajasthan, (1997) 6 SCC 241. Supreme Court of India.
2. Lata Singh v. State of Uttar Pradesh, (2006) 5 SCC 475. Supreme Court of India.
3. Shayara Bano v. Union of India, (2017) 9 SCC 1. Supreme Court of India.
4. Joseph Shine v. Union of India, (2019) 3 SCC 39. Supreme Court of India.
5. Indian Young Lawyers Association v. State of Kerala, (2019) 11 SCC 1. Supreme Court of India.

6. Vineeta Sharma v. Rakesh Sharma, (2020) 9 SCC 1. Supreme Court of India.
7. Secretary, Ministry of Defence v. Babita Puniya, (2020) 7 SCC 469. Supreme Court of India.
8. Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, (2017) 10 SCC 1. Supreme Court of India.

Secondary Sources:

1. Austin, G. (1966). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press.
2. Basu, S. (2012). She Comes to Take Her Rights: Indian Women, Property, and Propriety. SUNY Press.
3. Baxi, U. (2002). The Future of Human Rights. Oxford University Press.
4. International Labour Organization. (2023). World Employment and Social Outlook: Trends for Women 2023. ILO.
5. National Crime Records Bureau. (2022). Crime in India 2022. Ministry of Home Affairs, Government of India.
6. Pathak, Z., & Sengupta, R. S. (1992). Shahbano. Signs: Journal of Women in Culture and Society, 14(3), 558-582.
7. Subramanian, N. (2014). Nation and Family: Personal Law, Cultural Pluralism, and Gendered Citizenship in India. Stanford University Press.
8. United Nations Entity for Gender Equality and the Empowerment of Women. (2023). Progress on the Sustainable Development Goals: The Gender Snapshot 2023. UN Women.
9. World Economic Forum. (2023). Global Gender Gap Report 2023. WEF.

Table 1: Key Constitutional Provisions for Women's Rights

Article	Part	Provision	Relevance to Women
Art. 14	Part III	Equality before law	Guarantees equal legal status to all persons including women
Art. 15(1)	Part III	Prohibition of discrimination on grounds of sex	Prevents gender-based State discrimination
Art. 15(3)	Part III	Special provisions for women and children	Enables affirmative action and reservations for women
Art. 16	Part III	Equality of opportunity in public employment	Equal access to government jobs for women
Art. 21	Part III	Right to life and personal liberty	Expanded to include dignity, privacy, and bodily autonomy
Art. 23	Part III	Prohibition of trafficking and forced labour	Directly protects women from trafficking and exploitation
Art. 39(a)	Part IV	Right to adequate means of livelihood	Economic security and livelihood for women
Art. 39(d)	Part IV	Equal pay for equal work	Wage equality between men and women
Art. 42	Part IV	Maternity relief	Just conditions of work and maternity benefits
Art. 44	Part IV	Uniform Civil Code	Aims to eliminate discriminatory personal laws
Art. 46	Part IV	Promotion of weaker sections	Educational and economic upliftment of women
Art. 51A(e)	Part IVA	Renounce practices derogatory to dignity of women	Civic duty imposed on every citizen of India

Table 2: Key Legislation for Women's Protection in India

Legislation	Year	Key Provisions	Objective
Dowry Prohibition Act	1961	Prohibits giving/taking dowry; penalty up to 5 years imprisonment	Eliminate dowry-related violence and extortion
Equal Remuneration Act	1976	Equal pay for equal work regardless of gender	Achieve wage parity between men and women
Protection of Women from Domestic Violence Act	2005	Protection, residence, monetary relief, and custody orders	Comprehensive civil remedy for all forms of domestic abuse
Hindu Succession (Amendment) Act	2005	Equal coparcenary rights to daughters in joint family property	Eliminate gender discrimination in property succession
Sexual Harassment of Women at Workplace Act (POSH)	2013	Mandates ICC; broad definition of sexual harassment	Ensure safe and dignified workplace for women
Criminal Law (Amendment) Act	2013	Expanded rape definition; new offences of stalking, acid attack, voyeurism	Stronger criminal deterrence post-Nirbhaya case
Maternity Benefit (Amendment) Act	2017	26 weeks paid maternity leave; mandatory creche facility	Support working mothers and reduce career penalties
Nari Shakti Vandan Adhiniyam (Women's Reservation Act)	2023	33% reservation in Lok Sabha and State Legislatures	Political empowerment and representative governance

Table 3: Landmark Supreme Court Judgments on Women's Rights

Case	Year	Key Issue	Outcome / Significance
Vishaka v. State of Rajasthan	1997	Workplace sexual harassment	Laid down binding Vishaka Guidelines; foundation of POSH Act
Lata Singh v. State of U.P.	2006	Inter-caste marriage / honour killing	Affirmed woman's right to marry person of her own choice
Shayara Bano v. Union of India	2017	Triple talaq (instant divorce)	Declared unconstitutional; led to Muslim Women Act 2019
Joseph Shine v. Union of India	2018	Adultery law (S.497 IPC)	Struck down as unconstitutional; women not chattel of husband
Indian Young Lawyers Assn. v. State of Kerala	2018	Women's entry into Sabarimala temple	Exclusion held unconstitutional; equal right to worship upheld
Vineeta Sharma v. Rakesh Sharma	2020	Daughters' coparcenary rights	Rights available regardless of date of birth or father's death
Secy., Min. of Defence v. Babita Puniya	2020	Permanent commission for women in Army	Women officers entitled to permanent commission and command posts

Table 4: Women's Political Representation in India — Timeline of Key Milestones

Year / Instrument	Development	Impact
1950 - Constitution	Universal adult suffrage under Articles 325 and 326	Women gained equal voting rights at Independence
1992 - 73rd Amendment	33% reservation for women in Panchayati Raj institutions	Over 1.4 million women now serve as elected local body representatives
1992 - 74th Amendment	33% reservation in Urban Local Bodies (municipalities)	Increased women's participation in urban governance
2009 - Rajya Sabha	Women's Reservation Bill (108th Amendment) passed in Rajya Sabha	Proposed 33% seats in Parliament; lapsed due to Lok Sabha non-passage
2023 - 106th Amendment	Nari Shakti Vandan Adhiniyam: 33% in Lok Sabha and State Legislatures	Historic step; implementation awaits delimitation and census
2024 - 18th Lok Sabha	74 women elected to Lok Sabha	~13.6% representation; below South Asian and global averages

Table 5: Key Challenges in Implementation of Women's Rights in India

Challenge Area	Description	Impact
Access to Justice	Low legal literacy; costly litigation; police attitudes; geographic barriers	Many women unable to seek or receive legal remedies
Socio-Cultural Barriers	Patriarchal norms, khap panchayat diktats, honour-based violence, son preference	Constitutional rights undermined by parallel social enforcement systems
Economic Dependence	Female LFPR ~37%; gender wage gap ~34%; low asset ownership	Financial dependence limits autonomy and ability to exercise legal rights
Political Under-Representation	Women hold ~13.6% of Lok Sabha seats; below South Asian average	Policy-making and legislation lack adequate gender perspective
Intersectionality	Dalit, Adivasi, and minority women face compounded discrimination	One-size approach fails the most vulnerable women
Enforcement Gaps	Understaffed police, low conviction rates, delayed trials in crimes against women	Deterrence effect of criminal law significantly weakened
Personal Law Discrimination	Divergent personal laws on marriage, divorce, maintenance, and succession	Women from minority communities may lack equal rights in family matters

Table 6: Selected Gender Equality Indicators — India (2022-2024)

Indicator	India (Data Point)	Global / Regional Benchmark
Global Gender Gap Index Rank (WEF 2023)	127th out of 146 countries	Global average: ~68% parity achieved
Female Labour Force Participation Rate (ILO 2023)	~37%	Global average: ~47%; male LFPR India: ~77%
Gender Wage Gap (ILO estimate)	Women earn ~34% less than men	Global average gap: ~20%; Asia-Pacific: ~17%
Women in Lok Sabha (2024 elections)	74 of 543 MPs (~13.6%)	Global average: ~26.9% (IPU 2024)
Women in State Cabinets (national average)	~9% of cabinet ministers	Global average: ~22.8% (UN Women 2023)
Crimes Against Women (NCRB 2022)	4,45,256 cases reported	Estimated actual incidence significantly higher due to under-reporting
Women Judges — Supreme Court of India (2024)	3 of 34 judges (~8.8%)	Global average: ~30% (IDLO 2024)
Child Sex Ratio (Census 2011)	914 girls per 1,000 boys (0-6 yrs)	Natural ratio: 943-954 girls per 1,000 boys

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

प्राथमिक विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा: न्यूनतम अधिगम स्तर से निपुण भारत मिशन के लक्ष्यो की ओर संक्रमण: एक विश्लेषण

शबाना परवीन* डॉ. संजीव कुमार**

* रिसर्च स्कॉलर, शिक्षा विभाग, हिंदू कॉलेज, मुरादाबाद (उ.प्र.) भारत
** असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, हिंदू कॉलेज, मुरादाबाद (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने सतत विकास लक्ष्यों के माध्यम से 2030 तक सभी बच्चों के लिए समावेशी एवं न्याय संगत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने का वैश्विक एवं महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया हुआ है। विश्व भर में विश्व बैंक एवं यूनिसेफ जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं निरंतर रूप से इस बात पर जोर दे रही है कि शिक्षा विद्यालयों में बच्चों के नामांकन तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि इसे अधिगम परिणामों पर केंद्रित होना चाहिए। भारत के संदर्भ में प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जहां स्वतंत्रता प्राप्ति के आधी शताब्दी बीत जाने के पश्चात इस दिशा में ध्यान दिये जाने की शुरुआत न्यूनतम अधिगम स्तर की अवधारणा से हुई जो अब शिक्षा के अधिकार अधिनियम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं निपुण भारत मिशन के अति महत्वकांक्षी योजनाओं एवं कार्यक्रमों तक विस्तारित है। शिक्षा की गुणवत्ता के संदर्भ में देखें तो इन सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का सीमित प्रभाव होता रहा है, यद्यपि विद्यालय नामांकन, आधारभूत संरचना के विकास एवं पहुंच की दृष्टि से लगभग सभी लक्ष्य प्राप्त हो गए हैं, जो इन कार्यक्रमों की एक बड़ी उपलब्धि कहीं जा सकती है। परंतु शिक्षा की गुणवत्ता के प्रश्न अभी बाकी हैं। स्वयंसेवी संस्था प्रथम द्वारा प्रतिवर्ष जारी की जाने वाली रिपोर्ट 'असर' ग्रामीण भारत की प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता की बजरंग तस्वीर प्रस्तुत करती है। रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता की स्थिति अच्छी नहीं है, जहां कक्षा 5 के लगभग 40% छात्र कक्षा तीन की पाठ्यपुस्तक पढ़ने एवं गणितीय संकल्पनाओं को समझने में असमर्थ हैं। प्रस्तुत आलेख में शोधार्थीनी द्वारा प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता पर विभिन्न कार्यक्रमों के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी –गुणवत्तापूर्ण, शिक्षा, न्यूनतम अधिगम स्तर, निपुण भारत मिशन।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा–भारतीय शिक्षा व्यवस्था में प्राथमिक स्तर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा या शिक्षा की गुणवत्ता हमेशा से ही एक चुनौती रही है स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 1991 में न्यूनतम अधिगम स्तर की अवधारणा से पूर्व जहां प्राथमिक शिक्षा की प्रमुख समस्या विद्यालयों में नामांकन बढ़ाना,विद्यालय पहुंच एवं अपव्यय अथवा अवरोधन थी, वहीं न्यूनतम अधिगम की अवधारणा से यह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की ओर केंद्रित हो गई। अब प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करना योजनाओं का केंद्रीय बिंदु बन गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए देश में अनेक योजनाओं का निर्माण एवं कार्यक्रमो का संचालन किया गया जो न्यूनतम अधिगम स्तर से शुरू होकर निपुण भारत मिशन के लक्ष्यो तक देश में शैक्षिक दर्शन के बदलाव के सफर को दर्शाते है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर केंद्रित प्रमुख योजनाएं एवं कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

सारणी– 01: प्राथमिक स्तर पर गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा पर केन्द्रित प्रमुख कार्यक्रम

कार्यक्रम	प्रमुख तत्व	गुणवत्ता सेधार हेतु प्रमुख मानक
MLL 1991	पाठ्यवस्तु भाषा एवं गणितीय संकल्पनाऐं	न्यूनतम दक्षता
DPEP 1994	प्राथमिक शिक्षा का विकेन्द्रीकरण एवं आधारभूत अव संरचना में सुधार	स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप शिक्षक प्रशिक्षण एवं बाल केन्द्रित शिक्षा
SSA 2001	आधारभूत अवसंरचना एवं शिक्षकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य	विद्यालय नामांकन एवं अवधारण
RTE 2009	कानूनी/मौलिक अधिकार	समग्र व सतत मूल्यांकन एवं समावेशी शिक्षा
PBBB 2014	विषयवस्तु	कक्षा 1 व 2 के लिए पढ़ने-लिखने एवं गणितीय कौशल में सुधार पर बल
NIPUN 2021	आधारभूत साक्षरता एवं संख्यात्मकता	स्पष्ट 'सीखने के परिणाम'

1. न्यूनतम अधिगम स्तर–राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की प्रमुख सिफारिश के आधार पर 1991 में प्रो.आर.एच.दवे समिति ने न्यूनतम अधिगम स्तर की अवधारणा को प्रस्तुत किया था। यह देश में प्राथमिक स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने का प्रथम संगठित एवं विशिष्ट प्रयास था। समिति ने प्रस्तावित किया कि 'शिक्षा में समानता तब तक नहीं आ सकती जब तक कि देश के प्रत्येक बच्चे को कम से कम एक निश्चित निश्चित स्तर की शिक्षा प्राप्त न हो जाए'। इसी आधार पर समिति ने कक्षा 1 से 5 तक के लिए गणित,भाषा एवं पर्यावरण अध्ययन विषयों के विशिष्ट मानक प्रस्तुत किए, जिनके द्वारा रटने की प्रवृत्ति से हटकर कौशल या दक्षता आधारित शिक्षण पर बल दिया गया। समिति ने यह स्पष्ट किया कि देश के

काम से कम 80% बच्चों द्वारा कम से कम 80% दक्षताओं को प्राप्त करना सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

न्यूनतम अधिगम स्तर, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–भारतीय शिक्षा में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तीव्र गति से परिवर्तन हुए इनमें से एक प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होना था। इससे पहुंच एवं नामांकन में वृद्धि हुई परंतु धीरे–धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि नामांकन में वृद्धि के साथ–साथ बच्चों के सीखने में वृद्धि नहीं हो रही है। इससे शिक्षा का 'मात्रात्मक विकास' बनाम 'गुणात्मक उपलब्धि' की समस्या उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरुप न्यूनतम अधिगम स्तर के संप्रत्यय का उदय हुआ।

न्यूनतम अधिगम स्तर के संप्रत्यय कि देश में स्वीकृति के पीछे विश्व पटल पर हो रहे परिवर्तनों की भूमिका थी। विश्व भर में गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा था जिस कारण भारत की गुणवत्ताहीन प्राथमिक शिक्षा की आलोचना देश एवं देश के बाहर होने लगी थी। परिणामस्वरुप सरकार का ध्यान प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर केंद्रित होने लगा। इस समय एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 1978 में यूनिसेफ के सहयोग से 'मिनिमम लर्निंग कॉन्टिन्म' (न्यूनतम अधिगम की सतत प्रगति)पर एक कार्य योजना तैयार की गई थी जिसमें यह निर्धारित किया गया की प्राथमिक स्तर पर कक्षा 2 से कक्षा 5 तक के बच्चों को क्या–क्या आवश्यक कौशल एवं ज्ञान आना चाहिए। यूनिसेफ के सहयोग से एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रस्तुत की गई है यह कार्ययोजना ही देश में न्यूनतम अधिगम स्तर के संप्रत्यय का आधार बनी।

तत्पश्चात राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में यह स्पष्ट किया गया कि देश के सभी बच्चों को समान स्तर की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए तथा शिक्षा में गुणवत्ता एवं समानता दोनों ही आवश्यक होने चाहिए। इसी आधार पर देश में न्यूनतम अधिगम स्तर को नीतिगत दृष्टि से स्वीकृति मिली। भारत सरकार उस समय चाहती थी कि विद्यालय त्याग करने वाले बालक कम से कम पढ़ने, लिखने एवं गणित के कुछ बुनियादी कौशल को सीख सकें जिससे वे बाद के जीवन में उनका प्रयोग कर सके। इसके साथ ही प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में एक समस्या यह थी कि 'लर्निंग आउटकम' की स्पष्ट परिभाषा नहीं थी। इन्हीं समस्याओं के समाधान हेतु न्यूनतम अधिगम का संप्रत्य देश में एक रणनीति के रूप में सामने आया। इसी के दृष्टिगत भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 5 जनवरी 1990 को प्रो. आर.एच.दवे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए कई सिफारिशें दी, जिनमें से प्रमुख सिफारिश से निम्नलिखित हैं–

1. **न्यूनतम अधिगम स्तर का निर्धारण–**समिति की सबसे प्रमुख एवं युग परिवर्तन कार्य सिफारिश जिसे आगे चलकर प्राथमिक शिक्षा के परिदृश्य को पूरी तरह से बदलकर रख दिया थी कि 'प्राथमिक स्तर पर कक्षा 1 से कक्षा 5 तक के बच्चों के लिए स्पष्ट एवं मापनीय अधिगम स्तर का निर्धारण किया जाए जो मुख्य रूप से भाषा,गणित एवं पर्यावरण अध्ययन इन तीन विषयों में लागू किए जाएं।'

2. **आधारभूत विषयों में दक्षताओं का निर्धारण–**समिति की एक और प्रमुख सिफारिश थी की कक्षा 1 से कक्षा 5 तक के प्रत्येक स्तर पर तीन मुख्य विषयों भाषा,गणित एवं पर्यावरण अध्ययन में न्यूनतम अधिगम स्तर का क्रियान्वयन किया जाए क्योंकि ये विषय व्यावहारिक जीवन में अनिवार्य कौशल प्रदान करते हैं। भाषा द्वारा पढ़ने लिखने एवं समझने की दक्षता आती है, जो व्यक्ति के जीवन को सरल बनाती है। गणित द्वारा बच्चा गणना करने एवं तार्किक सोच की दक्षता प्राप्त करता है जो जीवन में दैनिक क्रियाकलापों में प्रयुक्त होती है तथा पर्यावरण का अध्ययन समाज एवं राष्ट्र के प्रति सकारात्मक समझ का विकास करता है। क्योंकि इससे पूर्व शिक्षा प्रणाली में यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि किसी भी कक्षा को उत्तीर्ण करने के पश्चात बच्चों को क्या–क्या दक्षता अथवा ज्ञान आना चाहिए। इस समस्या के समाधान के रूप में समिति ने नवीन संप्रत्यय दिया कि प्रत्येक कक्षा के लिए अधिगम परिणाम निश्चित किए जाने चाहिए जो रटने की प्रवृत्ति के स्थान पर कौशल एवं दक्षता आधारित हो। जैसे –कक्षा 2 का बच्चा गणित में कम से कम दो अंकों को जोड़ सके, घटा सके। इसी प्रकार भाषा में कक्षा 2 का बच्चा कम से कम सरल वाक्य को आसानी से पढ़ सके। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विद्यालय में अध्ययन का लक्ष्य क्या है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्राथमिक शिक्षा अस्पष्ट स्थिति से स्पष्ट एवं परिणाम आधारित बन गई।

3. **दक्षता पर आधारित कक्षा शिक्षण–**समिति की यह तीसरी सबसे प्रमुख सिफारिश थी। इसमें समिति ने पारंपरिक पुस्तक/पाठ्यवस्तु पर आधारित शिक्षण के स्थान पर दक्षता पर आधारित शिक्षण की प्रणाली अपनाने पर बल दिया। समिति ने दक्षता का अर्थ 'ज्ञान+कौशल+व्यवहार के समन्वय' के रूप में स्पष्ट किया। अर्थात बच्चों के लिए केवल जोड़ के नियम को जानना ही पर्याप्त नहीं है वरन बच्चों को वास्तविक जीवन में जोड़ करना आना चाहिए तभी शिक्षा वास्तव में जीवन में उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त समिति द्वारा सतत एवं समग्र मूल्यांकन (CCE) का संप्रत्यय दिया जिसके अनुसार मूल्यांकन वार्षिक परीक्षा पर आधारित न होकर हर अध्याय के बाद छोटे–छोटे परीक्षण के रूप में पूरे वर्ष चलता रहना चाहिए। साथ ही मूल्यांकन समग्र होना चाहिए अर्थात केवल लिखित परीक्षा पर ही आधारित नहीं होना चाहिए बल्कि कौशल, रचनात्मकता ,व्यवहार एवं सहभागिता पर आधारित होना चाहिए। समिति ने न्यूनतम अधिगम स्तर की सफलता के लिए नई प्रणाली के अनुसार शिक्षकों के प्रशिक्षण की सिफारिश की जिसमें दक्षता आधारित शिक्षण, सतत एवं समग्र मूल्यांकन एवं बच्चों की व्यक्तिगत भिन्नता के अंतर को समझा जा सके।

समिति की सिफारिश ने भारत में प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रणाली को नई दिशा प्रदान की। इसी का परिणाम है कि आज शिक्षा लक्ष्य आधारित हो गई है जिसमें पढाने से अधिक सीखने पर बल दिया जाता है। दवे समिति के प्रभाव के कारण ही आज अधिगम परिणाम, सतत एवं समग्र मूल्यांकन जैसे लक्ष्यों पर ध्यान दिया जा रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आधुनिक 'निपुण भारत मिशन' का प्रमुख आधार 'न्यूनतम अधिगम स्तर' का संप्रत्य ही है।

2. **जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) 1994–**प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में 1994 में शुरू किया गया यह कार्यक्रम उस समय तक देश का सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं उसके संशोधित 'प्रोग्राम ऑफ एक्शन 1992' के आधार पर इस कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की गई थी। डी.पी.ई.पी. द्वारा मूल रूप से प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण पर बल दिया गया, इस हेतु प्राथमिक शिक्षा के जिला स्तरीय नियोजन पर जोर दिया गया था। यह कार्यक्रम प्राथमिक शिक्षा में पहुंच, अवधारण एवं शैक्षिक गुणवत्ता को सुनिश्चित करने हेतु लाया गया था। परंतु इसका सबसे महत्वपूर्ण पक्ष गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करना

था। इसके लिए न्यूनतम अधिगम स्तर के सिद्धांतों के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्धारण इस प्रकार किया गया जिससे प्रत्येक बालक कक्षा के लिए निर्धारित बुनियादी कौशलों पढ़ना, लिखना एवं गणितीय संकल्पनाओं को सीख सके एवं शिक्षक आधुनिक शिक्षण विधियां को प्रयोग कर सके। इसके लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण को अनिवार्य कर दिया गया, जिसने प्राथमिक शिक्षा तंत्र की रीढ के रूप में कार्य किया और यह व्यवस्था आज भी समग्र शिक्षा अभियान का अंग है। इस कार्यक्रम द्वारा शिक्षकों के निरंतर मार्गदर्शन हेतु बी.आर.सी.एवं सी.आर.सी.की स्थापना की गई, रटने की प्रवृत्ति को समाप्त करके खेल विधि एवं क्रिया आधारित शिक्षण पर बल दिया गया।

पिछली सदी के 90 वे दशक के प्रारंभ में भारत में प्राथमिक शिक्षा की दशा दयनीय थी, साक्षरता दर निम्न थी, विद्यालय परित्याग अधिक था। डी.पी.ई.पी. द्वारा पहली बार जनपद स्तर पर शैक्षिक योजना बनाई गई जिससे स्थानीय स्तर पर शैक्षिक समस्याओं का समाधान संभव हो सका। इस कार्यक्रम द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि केवल विद्यालय भवन बनाकर शिक्षा की स्थिति में सुधार संभव नहीं है, अपितु विद्यालय में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की गुणवत्ता में सुधार करना अधिक महत्वपूर्ण है। 2001 में इस कार्यक्रम को सर्व शिक्षा अभियान में समाहित कर दिया गया। इस कार्यक्रम ने प्राथमिक शिक्षा को आधुनिक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3. **सर्व शिक्षा अभियान** 2001–सर्व शिक्षा अभियान डी.पी.ई.पी. के अनुभवो एवं सफलताओं की अगली कड़ी था। यह देश में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु चलाया गया अब तक का सर्वाधिक प्रभावी एवं व्यापक अभियान था। सर्व शिक्षा अभियान का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा में पहुंच, शून्य विद्यालय परित्याग, समानता आधारिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबंध समिति को विद्यालय संचालन के लिए समर्थ बनाना आदि लक्ष्यों को समयबद्धता के साथ प्राप्त करना था। यह अभियान विद्यालयों में केवल नामांकन बढ़ाने तक ही सीमित नहीं था वरन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा इसके केंद्र में थी, इसी कारण 'लर्निंग आउटकम' पर अभियान में बल दिया गया तथा इसके लिए न्यूनतम अधिगम स्तर के मानकों को स्वीकार किया गया एवं उनके अनुरूप पाठ्यवस्तु और पाठ्यक्रम में सुधार किया गया जिससे शिक्षा को केवल किताबी ज्ञान तक सीमित न रखकर उसे बुनियादी समझ एवं जीवन कौशलों से जोडा जा सके। सर्व शिक्षा अभियान में बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पर बल दिया गया जिससे शिक्षा की गुणवत्ता का स्पष्ट रूप से मापन किया जा सके।

इस अभियान द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की सुनिश्चितता करने के लिए छात्र शिक्षक अनुपात 30:1(कक्षा एक से पांच तक) तथा 35:1 (कक्षा 6 से 8 तक) निर्धारित किया गया। सेवारत शिक्षकों के लिए प्रतिवर्ष 20 दिनों का प्रशिक्षण अनिवार्य किया गया साथ ही विद्यालय के बुनियादी ढांचे एवं सुविधाओं का विकास किया गया। शिक्षा की गुणवत्ता एवं आधारभूत तथ्यों की समझ हेतु अभियान द्वारा 'पढ़े भारत बढ़े भारत कार्यक्रम' शुरू किया गया जिसके द्वारा बच्चों की भाषा एवं गणितीय समझ को मजबूत करने पर बल दिया गया।

सर्व शिक्षा अभियान ने प्राथमिक शिक्षा को व्यापक रूप से प्रभावित एवं परिवर्तित किया। डी.पी.ई.पी.द्वारा जनपद स्तरीय विकेंद्रीकरण की नींव रखी थी तो वहीं इस अभियान द्वारा इसे राष्ट्रव्यापी आंदोलन बना दिया गया तथा शिक्षा को केवल 'साक्षरता' से आगे बढ़कर 'सीखने की प्रक्रिया' की और अग्रसित किया गया।

4. **शिक्षा का अधिकार अधिनियम** 2009–शिक्षा का अधिकार अधिनियम बच्चों को केवल विद्यालय भेजने तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को कानूनी अधिकार के रूप में स्थापित करता है। इस अधिनियम ने प्रतिस्थापित किया कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा केवल अंकों तक ही सीमित नहीं है वरन बच्चों को शारीरिक, मानसिक दंड से मुक्त रखकर उनकी प्रतिभा ज्ञान एवं क्षमता का विकास करने तक है। इस अधिनियम की धारा 19 विद्यालय के लिए मानकों का निर्धारण करती है जिनके अभाव में विद्यालय का संचालन नहीं किया जा सकता है। इनमें खेल मैदान, पुस्तकालय, पेयजल, पर्याप्त भवन एवं शौचालय जैसी आधारभूत सुविधाओं को अनिवार्य बनाया गया है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षकों की न्यूनतम योग्यता (टीईटी) का निर्धारण किया गया। इस अधिनियम की धारा 24 पाठ्यक्रम को समय पर पूरा करने तथा बच्चों की सीखने की क्षमता का आकलन करने का प्रावधान करती है, वहीं धारा 29 बाल विकास हेतु सर्वांगीण पाठ्यक्रम की उपलब्धता एवं सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को सुनिश्चित करती है।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम ने प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को 'विलासिता' के बजाय 'अनिवार्यता' बना दिया है। इस अधिनियम ने विद्यालय के बुनियादी ढांचे का व्यापक स्तर पर विकास किया परिणामस्वरुप विद्यालय में सभी आवश्यक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित हो सकी। छात्र शिक्षक अनुपात पर इस अधिनियम का पूर्वगामी कार्यक्रमों, योजनाओं की तुलना में सर्वाधिक प्रभाव हुआदेशभर में व्यापक स्तर पर शिक्षकों की भर्ती हुई एवं उनकी योग्यता एवं पात्रता को निश्चित किया गया। इस अधिनियम द्वारा विद्यालय प्रबंध समिति के माध्यम से अभिभावकों की विद्यालय संचालन में भागीदारी निश्चित की गई जो विद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता की निगरानी करते है। इसका परिणाम शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के रूप में सामने आया।

5. **पढ़े भारत बढ़े भारत**, 2014–यह कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान के एक विशिष्ट उप कार्यक्रम के रूप में 27 अगस्त 2014 को प्रारंभ किया गया था। इस कार्यक्रम की आवश्यकता प्राथमिक शिक्षा के गिरते स्तर के परिणामस्वरूप की गई थी। स्वयंसेवी संस्था 'असर' की रिपोर्ट एवं अन्य राष्ट्रीय सर्वेक्षणों के परिणामों से सामने आया कि प्राथमिक विद्यालय में कक्षा 5 के छात्र कक्षा 2 के स्तर की पुस्तक नहीं पढ़ पा रहे हैं। इस कार्यक्रम की रूपरेखा की जिम्मेदारी एन.सी.ई.आर.टी.को दी गई। इस कार्यक्रम का सबसे प्रमुख उद्देश्य बच्चों की पढ़ने, लिखने एवं समझने की क्षमता का विकास करना एवं गणितीय तर्क करने, संख्या ज्ञान तथा गणितीय संकल्पनाओं की समझ को विकसित करना था। इसके द्वारा कक्षा 1 से कक्षा 2 के बच्चों को मातृभाषा में सीखने के अवसर प्रदान करने पर बल दिया गया। इस प्रकार 'पढ़े भारत बढ़े भारत' कार्यक्रम द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अवधारणा को विद्यालय की भौतिक संसाधनों, सुविधाओं से हटाकर प्रत्यक्ष रूप से 'सीखने की प्रक्रिया' पर लाया गया।

यह कार्यक्रम न्यूनतम अधिगम स्तर के मानकों को प्राप्त करने की दिशा में एक आधारभूत कार्यक्रम था। इसके द्वारा स्पष्ट रूप से उन दक्षताओं को निश्चित किया गया जो कक्षा एक व दो के बच्चों को आनी चाहिए, इस हेतु इस कार्यक्रम द्वारा 'प्रिंट समृद्ध वातावरण' के निर्माण पर बल दिया गया। जैसे –कक्षा में दीवारों पर चार्ट, कहानी एवं चित्र आदि की उपलब्धता सुनिश्चित करना एवं गणित तथा भाषा शिक्षण को रोचक बनाने के लिए

विशेष मॉड्यूल तैयार करना। 'पढ़े भारत बड़े भारत' कार्यक्रम ने यह स्थापित किया कि 'पढ़ना सीखना' ही भावी 'सीखने के लिए' की पहली सीढ़ी है।

6. **समग्र शिक्षा अभियान 2018–**समग्र शिक्षा अभियान भारत सरकार का एकीकृत शिक्षा कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च माध्यमिक शिक्षा के परिदृश्य को बदलने के लिए शुरू किया गया था। इस अभियान से पहले देश में सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान और शिक्षक शिक्षा योजनाएं चल रही थी जिनमें समन्वय का अभाव था। समग्र शिक्षा अभियान ने इन तीनों योजनाओं को एकीकृत रूप दिया जिससे शिक्षा का प्रशासनिक ढांचा एकीकृत एवं सरल हो सका। इस कार्यक्रम द्वारा 'सबको शिक्षा अच्छी शिक्षा' का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस अभियान के फलस्वरुप प्री–स्कूल, आंगनबाड़ी से लेकर उच्च माध्यमिक शिक्षा को एक मंच पर लाया गया। दीक्षा पोर्टल एवं ई–पाठशाला जैसे डिजिटल कार्यक्रम आरंभ हुए, माध्यमिक स्तर पर कौशल शिक्षा को बढ़ावा दिया गया, विद्यालय में लर्निंग आउटकम पर फोकस किया गया एवं शिक्षा की गुणवत्ता हेतु स्कूल ग्रांट का प्रावधान किया गया। यह एक व्यापक एवं विस्तृत अभियान है जिसके द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए कई उप कार्यक्रम आरंभ किए गए हैं। जिनमें प्रमुख है–

- **निपुण भारत मिशन–** यह इस अभियान का सबसे महत्वपूर्ण उप कार्यक्रम है जिसके द्वारा बच्चों के बुनियादी साक्षरता एवं संख्यात्मकता पर बल दिया गया है।
- **निष्ठा–**शिक्षक प्रशिक्षण के लिए चलाया गया यह विश्व का सबसे बड़ा एवं विस्तृत कार्यक्रम है जिसमें आधुनिक पद्धति एवं तकनीक का प्रयोग शिक्षक प्रशिक्षण के लिए किया जाता है।
- **परख–**विद्यार्थियों के अधिगम स्तर के आकलन में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करने के लिए एक राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र की स्थापना इसके अंतर्गत की गई है।
- **विद्यालयों में स्मार्ट कक्षाओं की स्थापना–**डिजिटल विद्यालयों की स्थापना हेतु प्रत्येक विद्यालय में स्मार्ट बोर्ड एवं कंप्यूटर लैब की स्थापना के लिए विशेष बजट का प्रावधान किया गया है।
- **समग्र शिक्षा अभियान सतत विकास लक्ष्य–**4 के अनुरूप है जो समावेशी, न्यायपूर्ण एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करता है। इसमें शिक्षा की गुणवत्ता को केवल एक आदर्श न मानकर एक मापन योग्य लक्ष्य बनाया गया है जिसको 'यू डाइस प्लस' जैसे प्लेटफार्म के माध्यम से ट्रैक किया जाता है।

7. **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020–**यह भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक युगांतरकारी परिवर्तन है जिसका उद्देश्य भारत को एक विश्व स्तर की ज्ञान आधारित महाशक्ति बनाना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्राथमिक शिक्षा के ढांचे एवं गुणवत्ता में परिवर्तन हेतु क्रांतिकारी प्रावधान किए गए हैं। जैसे 5+3+3+4 की शिक्षा की संरचना जिसके द्वारा 10+2+3 के पुराने ढांचे को बदल दिया गया है। नई शिक्षा नीति वास्तव में न्यूनतम अधिगम स्तर की अवधारणा को नए वैज्ञानिक स्वरूप में प्रस्तुत करती है।

8. **निपुण भारत मिशन–**निपुण भारत मिशन का लक्ष्य 2028 तक कक्षा 3 के प्रत्येक बच्चे को अनिवार्य रूप से पढ़ने, लिखने एवं बुनियादी गणित की दक्षता प्राप्त कराना है।जिसे FLN (Foundation Literacy and Numeracy) कहां गया है। निपुण भारत मिशन वास्तव में न्यूनतम अधिगम स्तर का सबसे स्पष्ट, सख्त एवं आधुनिक रूप है इसमें पाठ्यक्रम को पूरा करने पर नहीं 'सीखने के प्रतिफल' (लर्निंग आउटकम) पर मुख्य बल दिया गया है जिसमें बच्चे केवल परीक्षा पास न करके उस कक्षा के लिए निर्धारित न्यूनतम कौशल को वास्तव में सीख सकें।

मिशन की शुरुआत–निपुण भारत मिशन का प्रस्ताव शिक्षा मंत्रालय के 'स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग' द्वारा तैयार किया गया जिसमें एन.सी.ई.आर.टी. ने भी प्रमुख योगदान दिया है। 5 जुलाई 2021 को शिक्षा मंत्रालय द्वारा इसका शुभारंभ किया गया।

- **निपुण भारत मिशन के लक्ष्य–** निपुण भारत मिशन का लक्ष्य 2028 तक कक्षा 3 के प्रत्येक बच्चे को बुनियादी साक्षरता एवं संख्यात्मकता (FLN) में दक्ष बनाना है। यह मिशन शिक्षा को पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर गुणवत्तापूर्ण 'वास्तविक कौशल' पर केंद्रित करता है। इसके लिए लक्ष्य सूची द्वारा कक्षा तीन तक के छात्रों के लिए सीखने के स्पष्ट लक्ष्य का निर्धारण, खेल द्वारा शिक्षण एवं संख्यात्मकता आदि का प्रावधान किया गया है। निपुण भारत मिशन राष्ट्रीय, राज्य,जनपद, ब्लॉक एवं विद्यालय इन पांच स्तरों पर एक साथ क्रियान्वित किया गया है जिस कारण इसके लक्ष्यों की प्राप्ति में उत्तारदायित्व स्पष्ट रूप से सुनिश्चित किया जा सकता है।
- **निपुण तालिका–**निपुण भारत मिशन के प्रभावी कार्यान्वन के लिए निपुण तालिका का निर्धारण किया गया है। यह तालिका इस मिशन का अत्यंत विशिष्ट उपकरण है जो लक्ष्य प्राप्ति की स्थिति एवं उत्तारदायित्व का स्पष्ट रूप से निर्धारण करती है। यह एक विस्तृत चार्ट है जो विद्यालय की प्रत्येक कक्षा में (बालवाटिका से कक्षा 3) प्रदर्शित की जाती है। इस तालिका में उस कक्षा विशेष के लिए निपुण लक्ष्य का विवरण होता है जिसमें प्रत्येक छात्र के नाम के आगे उनकी भाषा एवं गणित की दक्षताओं का विवरण होता है जो बच्चे को एक निर्धारित समय में प्राप्त करनी होती है। छात्र द्वारा निर्धारित दक्षता प्राप्त करने पर शिक्षक तालिका में उस दक्षता के आगे उस दिनांक को अंकित कर देते हैं जिस दिनांक को छात्र वह दक्षता प्राप्त करता है। इस तालिका को अभिभावक एवं अन्य निरीक्षक अधिकारी देख सकते हैं और बच्चों की प्रगति एवं दक्षता की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यह तालिका शैक्षिक गुणवत्ता के मापन का पैमाना है जो दर्शाती है कि क्या बच्चे वास्तव में न्यूनतम अधिगम स्तर प्राप्त कर रहे हैं अथवा नहीं, साथ ही इस तालिका के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है कि कक्षा में कौन–कौन से बच्चे किन–किन दक्षताओं में कमजोर हैं। इस आधार पर ऐसे बच्चों के लिए विशेष शिक्षण का प्रावधान किया जाता है। स्पष्ट है कि निपुण तालिका शिक्षकों की शिक्षण गुणवत्ता और विद्यालय की शैक्षिक स्थिति का पारदर्शी विवरण प्रस्तुत करती है।

सारणी –2**(अन्तिम पृष्ठ पर देखे)**

निष्कर्ष–प्राथमिक शिक्षा के गुणवत्ता सुधार हेतु किये प्रयासों के प्रभाव का आंकलन संक्षिप्त रूप से कर पाना दुष्टतम कार्य है फिर भी कुछ बिन्दूओं के सन्दर्भ में इनहे समझ सकते हैं–

- **कक्षा बनाम दक्षता–** पारंपरिक रूप से भारतीय शिक्षा प्रणाली में कक्षा को एक समय सीमा के अंदर उत्तीर्ण करने पर मुख्य बल दिया जाता है। परंतु न्यूनतम अधिगम स्तर एवं निपुण भारत मिशन ने इस अवधारणा को कक्षा से दक्षता पर केंद्रित कर दिया है। हालांकि कक्षा से दक्षता परिवर्तन की यह यात्रा लंबी रही है,पर धीमे रूप में ही सही इसके परिणाम अब दिखने लगे हैं।

● **प्राथमिक शिक्षा का वैचारिक परिवर्तन-** प्राथमिक शिक्षा में ऐतिहासिक रूप से देखें तो एक लंबे समय तक कक्षा का अर्थ वार्षिक परीक्षा के आधार पर एक निश्चित समय में निर्धारित पाठ्यक्रम को उत्तीर्ण करके अगली कक्षा में भेज दिए जाने से लगाया जाता रहा है, फिर चाहे बच्चे उस कक्षा के लिए आवश्यक कौशल सीख गए हो अथवा नहीं। इस विसंगति को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएं चलाई गई जिसमें न्यूनतम अधिगम स्तर से शुरू होकर निपुण भारत जैसे क्रांतिकारी कदम प्रमुख रहे हैं जिसके द्वारा कक्षा केंद्रित शिक्षण प्रणाली को दक्षता आधारित शिक्षा की ओर अग्रसित किया गया, यद्यपि यह यात्रा लंबी रही है।

● **धीमी प्रगति परंतु वास्तविक अधिगम-**स्वयंसेवी संस्था 'प्रथम' द्वारा प्रतिवर्ष प्रस्तुत की जाने वाली 'असर' रिपोर्ट भारत में ग्रामीण शिक्षा की स्थिति का विश्वसनीय दर्पण मानी जाती है। अगर 'असर' रिपोर्ट का वर्ष 2015 से 2025 तक विश्लेषण करें तो स्पष्ट अंतर नजर आता है। असर की 2015 की वार्षिक रिपोर्ट उस समय आई थी जब शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन का शुरुआती चरण था। 2015 की रिपोर्ट के अनुसार 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों का नामांकन 96% से अधिक था, परंतु बुनियादी साक्षरता की स्थिति दयनीय थी। रिपोर्ट के अनुसार कक्षा 5 तक के 50% बच्चे कक्षा 2 की पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ सकते थे। वहीं कक्षा 5 के केवल 25% बच्चे ही भाग के प्रश्न हल कर सकते थे। असर 2025 की रिपोर्ट निपुण भारत मिशन के परिणामों को दर्शाती है। विद्यालय नामांकन 98% के आसपास स्थिर हो चुका है। कक्षा 3 के बच्चों के पढ़ने एवं गणित को समझने में 15 से 20% की वृद्धि हुई है। ग्रामीण परिवारों के छात्रों की डिजिटल साधनों तक पहुंच 90% हो चुकी है। रिपोर्ट बताती है कि सरकारी विद्यालयों में नामांकन वृद्धि एवं पठन क्षमता में सुधार हुआ है तथा सीखने पर बल दिया जाने लगा है। सरकारी विद्यालयों की सुविधा एवं गुणवत्ता में वृद्धि हुई है जिस कारण भारतीय शिक्षा का ध्यान 'पहुंच' से हटकर 'परिणाम' पर आ गया है। 2015 से 2025 तक आते-आते समाज और सरकार ने सीखने के प्रतिफल को गंभीरता से लिया है।

न्यूनतम अधिगम स्तर ने 1990 के दशक में पहली बार स्पष्ट किया की कक्षा तीन से पांच तक के बच्चे को क्या-क्या न्यूनतम आना चाहिए, इसने रटन्त प्रणाली से आगे बढ़कर अधिगम परिणामों की बात की है। न्यूनतम अधिगम स्तर ने कक्षा विषयों को छोटी-छोटी दक्षाताओं में विभाजित किया, जिससे यह सुनिश्चित हो सका की अगली कक्षा में जा रहे बच्चे को पिछली कक्षा का न्यूनतम ज्ञान अनिवार्य रूप से हो। निपुण भारत मिशन इस विचार को अपने चरमोत्कर्ष पर ले जाता है। इससे यह स्पष्ट हो सका की कक्षा एक भौतिक स्थान है, वास्तव में उपलब्धि (जिसे निपुण लक्ष्य कहा गया)ही वह दक्षता है जिसे शिक्षा का केंद्र बिंदु माना जाना चाहिए। निपुण भारत परीक्षा प्रणाली की औपचारिकता से कहीं आगे बढ़कर 'वास्तविक अधिगम' की पुष्टि करता है। अब अध्यापक यह नहीं लिखता की 'पाठ्यक्रम पूरा हुआ' अब वह लिखता है कि अमुक छात्र ने दो अंकों के जोड़ अथवा घटाव की दक्षता को 21 नवंबर को प्राप्त कर लिया है। स्पष्ट है कि न्यूनतम अधिगम स्तर ने शैक्षिक गुणवत्ता की जिस नींव को रखा था, निपुण भारत उसके ऊपर एक मजबूत भवन का निर्माण कर रहा है, जिसने तय किया है कि छात्र केवल कागजों पर ही शिक्षित न हो बल्कि वास्तव में उनके पास जीवन यापन के लिए आवश्यक साक्षरता एवं संख्यात्मकता जैसे बुनियादी कौशल का ठोस आधार हो। निपुण भारत वास्तव में न्यूनतम अधिगम स्तर की उस अधूरी यात्रा को पूरा करने का साहसिक प्रयास है जहां कक्षा केवल एक पड़ाव है और दक्षता अंतिम गंतव्य।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Central Advisory Board of Education- (1991). Minimum levels of learning at primary stage: Report of the committee- Ministry of Human Resource Development, Government of India.
2. Department of School Education and Literacy- (2014). Padhe Bharat Badhe Bharat: Programme document- Ministry of Human Resource Development, Government of India.
3. Department of School Education and Literacy- (2018). Samagra Shiksha: An integrated scheme for school education & Framework for implementation- Ministry of Human Resource Development, Government of India.
4. Department of School Education and Literacy- (2021). NIPUN BHARAT: Guidelines for implementation of National Initiative for Proficiency in Reading with Understanding and Numeracy- Ministry of Education, Government of India.
5. District Primary Education Programme- (1995). DPEP guidelines- Ministry of Human Resource Development, Department of Education, Government of India.
6. Government of India- (2009), The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009- The Gazette of India.
7. Kingdon, G. G.(2007). The progress of school education in India- Oxford Review of Economic Policy, 23(2), 168–195- https://doi-org/10-1093/oUrep/grm015
8. Ministry of Education.(2020). National Education Policy 2020- Government of India.
9. Ministry of Human Resource Development.(2001). Sarva Shiksha Abhiyan: A programme for universal elementary education & Framework for implementation- Government of India.
10. NCERT- (2005). National curriculum framework 2005- National Council of Educational Research and Training.
11. NCERT.(2023). National curriculum framework for foundational stage- National Council of Educational Research and Training.
12. Pratham Education Foundation.(2023). Annual status of education report (ASER) 2022: Beyond basics- Pratham Education Foundation.
13. PROBE Team- (1999). Public report on basic education in India- Oxford University Press.
14. World Bank- (1997). Primary education in India- Development in Practice Series, World Bank Publications.
15. World Bank- (2018). World development report 2018: Learning to realize education's promise- World Bank.
16. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (1991). प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तर: एक रूपरेखा.

नई दिल्ली: एनसीईआरटी।
17. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (1992). प्राथमिक शिक्षा के लिए न्यूनतम अधिगम स्तर: दिशा–निर्देश एवं कार्यान्वयन. नई दिल्ली, शिक्षा विभाग।
18. भारत सरकार, शिक्षा विभाग. (1994). जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (District Primary Education Programme): कार्यक्रम रूपरेखा. नई दिल्ली, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
19. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (1997). जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम: प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु दिशा–निर्देश. नई दिल्ली, शिक्षा विभाग।
20. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2001). सर्व शिक्षा अभियान: कार्यक्रम रूपरेखा. नई दिल्ली, प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
21. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2002). सर्व शिक्षा अभियान: सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा. नई दिल्ली, प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
22. भारत सरकार. (2009). बालकों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009. नई दिल्ली, विधि एवं न्याय मंत्रालय।
23. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005. नई दिल्ली, एनसीईआरटी।
24. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2014). पढ़े भारत, बढ़े भारत: प्रारंभिक कक्षाओं में पठन, लेखन एवं गणितीय कौशल के विकास हेतु दिशानिर्देश. नई दिल्ली, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
25. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2014). पढ़े भारत, बढ़े भारत कार्यक्रम, कार्यान्वयन रूपरेखा. नई दिल्ली: सर्व शिक्षा अभियान।
26. भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. (2017). समग्र शिक्षारू विद्यालय शिक्षा के लिए एकीकृत योजना. नई दिल्ली: स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
27. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2018). समग्र शिक्षा: कार्यक्रम कार्यान्वयन रूपरेखा (Framework for Implementation). नई दिल्ली, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
28. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020. नई दिल्ली, शिक्षा मंत्रालय।
29. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2021). आधारभूत साक्षरता एवं संख्यात्मकता हेतु पाठ्यचर्या एवं शैक्षणिक रूपरेखा. नई दिल्ली, एनसीईआरटी।
30. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2021). निपुण भारतरू आधारभूत साक्षरता एवं संख्यात्मकता के लिए राष्ट्रीय पहल दिशानिर्देश. नई दिल्ली: स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
31. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2021). निपुण भारत मिशन: कार्यान्वयन दिशानिर्देश. नई दिल्ली, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
32. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2022). निपुण भारत मिशन के अंतर्गत आधारभूत साक्षरता एवं संख्यात्मकता के लिए अधिगम परिणाम. नई दिल्ली, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
33. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2022). आधारभूत स्तर के लिए अधिगम परिणाम एवं मूल्यांकन दिशा–निर्देश. नई दिल्ली, एनसीईआरटी।
34. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2023). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा: आधारभूत चरण (National Curriculum Framework for the Foundational Stage). नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय।
35. असर सेंटर. (2023). एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (ASER), ग्रामीण भारत में बच्चों की स्कूली शिक्षा एवं अधिगम की स्थिति. नई दिल्ली, प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन।
36. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2024). समग्र शिक्षा, विद्यालयी शिक्षा में गुणवत्ता एवं अधिगम परिणामों के संवर्धन हेतु दिशा–निर्देश. नई दिल्ली, स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग।
37. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2023). राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण, विद्यालयी शिक्षा में अधिगम उपलब्धि का मूल्यांकन. नई दिल्ली, एनसीईआरटी।

सारणी –2–निपुण भारत मिशन लक्ष्य सूची–निपुण भारत मिशन के आधारभूत साक्षरता तथा संख्यात्मकता के लक्ष्य जिनको बालवाटिका से लेकर कक्षा तीन तक वर्षवार प्राप्त किया जाता है, का विवरण निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है–

बाल वाटिका	**कक्षा 1**	**कक्षा 2**	**कक्षा 3**
भाषा ●अक्षर एवं ध्वनियों की पहचान करना। ●कम से कम दो अक्षर वाले शब्दों को पढ़ना।	अर्थ के साथ ऐसे वाक्यों को पढ़ना जो किसी पाठ का भाग हो एवं जिसमें चार से पाँच सरल शब्द हो।	अर्थ के साथ 40 से 50 शब्द प्रति मिनट पढ़ना।	अर्थ के साथ कम से कम 60 शब्द प्रति मिनट पढ़ना।
गणित ● 10 अंको तक की संख्या अंकों की पहचान करना।	99 तक की संख्याओं को पढ़ना एवंलिखना	999 तक की संख्याओं को पढ़ना एवं लिखना	9999 तक की संख्याओं को पढ़ना एवं लिखना
एक क्रम में संख्या, वस्तुओं एवं आकृतियों को व्यवस्थित करना	सरल जोड एवं घटाव करना।	99 तक की संख्याओं को घटाना।	सरल संख्याओं की गुणा करना।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Impact of GSTN Portal Issues on GST Compliance and Business Operations: An Empirical Study of MSMEs in Satna District, Madhya Pradesh

Vivek Nigam* Dr. Arun Kumar Gautam**

*Research Scholar, Govt. Vivekanand P.G. College, Maihar, APS University, Rewa (M.P.) INDIA
** HOD (Commerce) Govt. Vivekanand P.G. College, Maihar, APS University, Rewa (M.P.) INDIA

Abstract - This study evaluates how Goods and Services Tax Network (GSTN) portal issues affect GST compliance and business operations among Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) in Satna District, Madhya Pradesh. Taking a sample of 150 respondents (MSME owners, accountants, and tax practitioners) with secondary government reports, this paper finds that frequent downtime, return errors, delayed Input Tax Credit (ITC) reflection, and login issuesetc, lead tovery high compliance costs, loss of many working hours, and tied-up working capital and many other things . Upgrading infrastructure, simplifying filing procedures, and improving helpdesk services and many other things are recommended.

Keywords: GSTN Portal, GST Compliance, MSMEs, Technical Issues, GST Returns, Input Tax Credit, Digital Taxation, Satna District, Business Operations, GST Administration.

Introduction - The Goods and Services Tax (GST), was introduced on 1 July 2017. GST brought together indirect taxation in India to improve transparency and ease of doing business. The GSTN portal provides the digital infrastructure for registrations, return filing, tax payments, ITC reconciliation, and e-way bill generation and many other things. Despite its success, manytechnical issues such as portal downtime, slow response times, login failures, and delayed ITC reflections burden taxpayers etc still exist. Especially MSMEs with limited technological and financial resources are affected the most.

Background of the Study: GSTN has grown into a comprehensive digital compliance system. For MSMEs in industrial districts like Satna, MP, portal access without much issue is very important for business continuity. System slowdowns during peak filing periods create many compliance hurdles that need to be addressed.

Statement of the Problem: Continuous portal glitches cause delayed GST return filings, higher reliance on tax consultants, financial penalties, and many times create a working capital constraints. There is a need to analyse and evaluate how these technical shortcomings are impacting compliance efficiency and operational continuity in small businesses in INDIA.

Research Gap: Existing literature on GST in India has mainly focusedon many things like GST implementation, tax reforms, GST compliance, revenue generation, and the overall impact of GST on the economy. So Many studies researches havetold the benefits and challenges of GST from a large perspective. However, limited empirical research has specifically examined the impact of GSTN portal-related technical issues on GST compliance and business activities and operations.

Most of previous studies place high reliance on secondary data and focus on national-level analysis. There is a lack of district-level empirical studies that investigate the practical difficulties faced by MSMEs while using the GSTN portal. Actually, only few studies have examined the relationship between GSTN portal issues, compliance efficiency, compliance costs, working capital management, and business performance in the context of MSMEs.

In addition to this no significant empirical study has been found by us that specifically focuses on MSMEs operating in Satna District, Madhya Pradesh. This study of ustry to bridge this gap by providing primary data-based evidence regarding GSTN portal challenges and their impact on GST compliance and business operations among MSMEs in the study area.

Objectives of the Study:

1. To evaluate the frequency and major types of technical issues (such as downtime, return filing errors, ITC reconciliation, and login/OTP problems) faced by MSMEs on the GSTN portal in Satna District.
2. To analyse impact of GSTN portal issues/glitches on GST compliance efficiency, including delay in filing of GST returns, difficulty in claiming Input Tax Credit (ITC), and penalty risks.
3. To know the effect of GSTN portal issues on business

activities and operations and performance, specifically regarding in Satna compliance costs, working capital availability, and productivity loss.

4. To know the level of satisfaction among owners of MSMEs, accountants, and tax professionals regarding the functionand user experience of the GSTN portal.
5. Torecommend or suggest policy recommendations if found and technological measures for improving GSTN portal performance,and enhancing helpdesk support, and streamlining filing procedures.

Review of Literature

Garg (2017) : Garg hasexamined the concept and implications of the Goods and Services Tax in India. His study highlighted that GST has simplified the Indianindirect tax structure and improved transparency in taxation. Although, he observed that successful implementation of GST largely depends upon a robust technological infrastructure and effective taxpayer support systems.

Purohit and Purohit (2018) : The researchers analysed the challenges faced by businesses after the implementation of GST. In theirstudy , they found that technologicaldifficulties and complexities, return filing procedures, and other many compliance requirements created difficulties for small businesses during the beginning years of GST implementation. Hetold the importance of strengthening digital tax infrastructure.

Kumar and Sharma (2019) : Kumar and Sharma studied GST compliance among small and medium enterprises. His study told that frequent procedural changes, technological issues, and lack of awareness increased the compliance burden on MSMEs. The researchers arrived at conclusion that technological stability is essential for improving voluntary tax compliance.

CBIC Annual Report (2021) : As per our to the Central Board of Indirect Taxes and Customs (CBIC), report the digitalization through GSTN has improved transparency a lot and tax administration in India. The report highlighted improvements in return filing, tax monitoring, and data integration, butit also acknowledged the need for continuous technological upgrades and better taxpayer facilitation mechanisms.

Singh and Verma (2021) :Singh and Verma study explained the role of technology in GST andthey found that GSTN has contributed a lot to digital governance, but taxpayers frequently experienced portal downtime, login issues, and delays in processing GST-related transactions. This study of themsuggested tostrengthen server capacity and improving system reliability.

Gupta (2022) : Gupta analysed in detail the impact of GST requirements regarding compliance on MSMEs. His findingstold that there are many technical challenges which are linked with return filing and ITC reconciliation increased compliance costs and other things . The study also revealed that smaller businesses were more vulnerable to technology-related compliance difficulties.

GST Council Report (2023) :The GST Council has told and emphasized importance of continuous but slow improvement in GSTN infrastructure.As per them It is necessary to support growing transaction volumes. The report of the council also highlighted efforts to improve portal performance, reduce filing errors, and to enhance taxpayer services. The report of this GST council alsoduly acknowledged the need for better user experience and faster grievance redressal mechanisms.

Mishra and Tiwari (2024) :Mishra and Tiwari studied compliance related to digital tax among MSMEs in India. His study found that there are many technical issues in online tax platforms adversely affected compliance efficiency, business productivity, and working capital management. They recommendedthe simplified digital processes and stronger technological support for all the small businesses.

Summary of Literature Review

The review of literature highlights and gives an indication that GST has now improved transparency and efficiency a lot in India. So many Old studies have highlighted the benefits of digital tax administration through GSTN and also identified many challenges such as portal downtime, return filing errors, ITC reconciliation issues, and increased compliance burden on MSMEs. Most existing studies focus on GST implementation and compliance at the national level and rely mainly on secondary data. Very very Limited research has specifically examined the impact of GSTN portal-related issues on GST compliance and business operations usingprimary data from MSMEs. Furthermore, very few studies have focused on district-level analysis, particularly in Satna District, Madhya Pradesh. The present study attempts to fill this gap by providing empirical evidence based on primary data collected from MSMEs and tax professionals regarding the impact of GSTN portal issues on GST compliance and so many other business operations.

Conceptual Framework of the Study: The conceptual framework of the present study presented here explains the relationship between GSTN portal issues, GST compliance, and business operations among MSMEs. GSTN portal-related technical problems such as portal downtime, slow server response, return filing errors, ITC reconciliation issues, login failures, and payment-related glitches act as the main factors affecting taxpayers.

These technical issues are affecting GST compliance by causing delays in return filing, difficulties in claiming Input Tax Credit (ITC), increased dependence on tax professionals, and a higher risk of penalties. So, compliance-related challenges adversely affect business operations through increased compliance costs, working capital constraints, productivity loss, and delays in business decision-making.

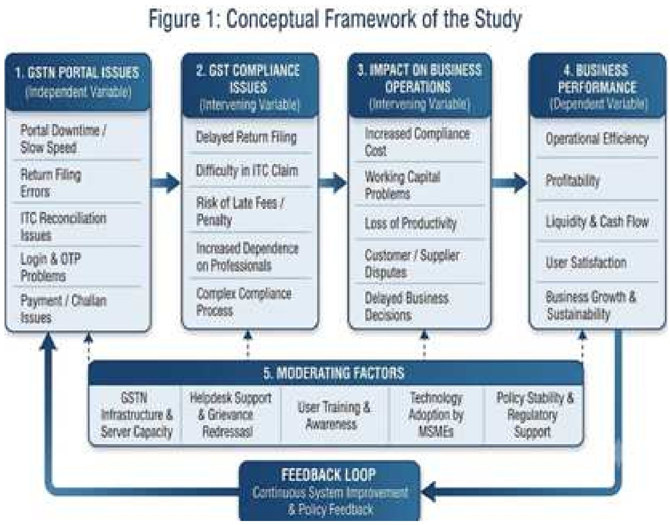

Figure 1: Conceptual Framework of the Study

Research Methodology

1. Research Design: Nature: Descriptive and Exploratory , Analytical dimension of this study is limited to percentage distribution, and cross tabulation and graphical presentation of survey data.

Approach: Quantitative Survey

Area of Study: Satna District, Madhya Pradesh

2. Sample Size: 150 convenience sampled respondents : Manufacturing (42), Trading (54), Service (36) and Tax Professionals (18)

3. Sources of Data: Primary: Questionnaires distributed among the respondents including owners of MSMEs, accountants and GST practitioners.

Secondary: Report of CBIC, GST council, Ministry of finance, RBI and academic journals.

4. Data Collection Method: Conducted field survey with help of structured questionnaire and discussion with respondents.

5. Data Analysis Method: Data analysed with the help of percentage analysis method and presented in the form of Bar Charts & Pie Charts.

6. Limitations of the Study:

1. This study is limited to Satna district of MP.
2. Sample size is limited to only 150 respondents.
3. Method of convenience sampling has been used.
4. Results obtained on the basis of the response of respondents and there may be biasness in it.
5. Time and resource limitation for conducting survey.
6. Study is focused on only GSTN portal related issues.4. Data Analysis and Interpretation

Table 1: Profile of Respondents

Category	Respondents	Percentage (%)
Manufacturing MSMEs	42	28
Trading MSMEs	54	36
Service MSMEs	36	24
Tax Professionals	18	12
Total	**150**	**100**

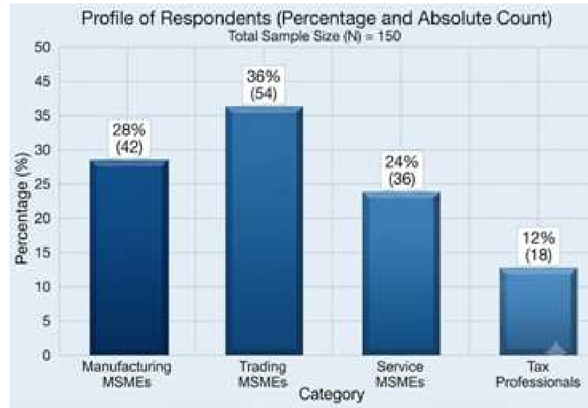

Interpretation of Table 1: Profile of Respondents

IT shows the demographic profiledetails of the 150 respondents who were surveyed in which Trading MSMEs was found to be the biggest group, accounting for 36% (54 respondents), then Manufacturing MSMEs at 28% (42 respondents) was the second bigger group . Service MSMEs represent 24% (36 respondents) of the sample, here Tax Professionals was the smallest group at 12% (18 respondents). Overall, the sample gives a well-rounded representation across various business sectors and tax practitioners.

Table 2: Frequency of GSTN Portal Problems

Frequency	Respondents	Percentage (%)
Very Frequently	39	26
Frequently	48	32
Occasionally	42	28
Rarely	15	10
Never	6	4
Total	**150**	**100**

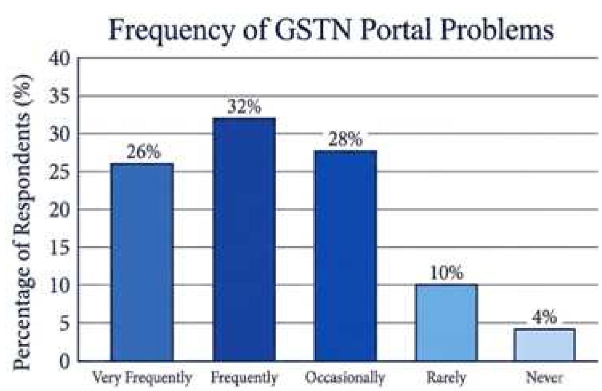

Interpretation ofTable 2: Frequency of GSTN Portal Problems

Interpretation of Table 2 : It highlights how frequently the respondents experience technical problems on the GSTN portal. 58% face technical glitches regularly, with 32% encountering them frequently and 26% very frequently. 28% experience issues occasionally, 10% report rare disruptions, and only 4% state they never experience portal issues. This indicates that GSTN technical disruptions are a widespread concern for most users.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Table 3: Major GSTN Portal Issues Faced

Issue	Respondents	Percentage (%)
Portal Slow Speed/ Downtime	42	28
Return Filing Errors	36	24
ITC Reconciliation Issues	30	20
Login & OTP Problems	24	16
Payment/Challan Issues	18	12
Total	**150**	**100**

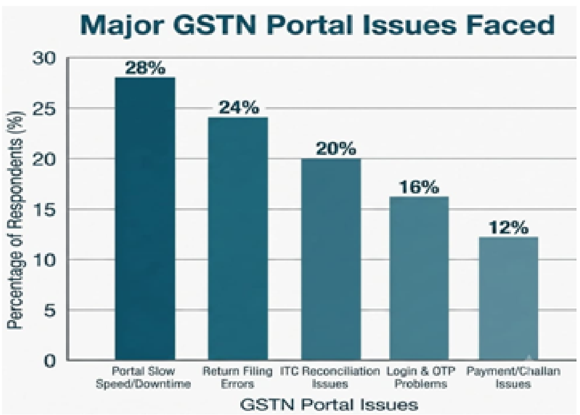

Interpretation of Table 3: Major GSTN Portal Issues Faced Interpretation of Table 3 : The details the specific operational problems encountered by the respondents while using the portal. The most critical issue is portal downtime and slow server speed, reported by 28% (42 respondents). Return filing errors are the second most common problem at 24%, ITC reconciliation issues at 20%. Additionally, login/OTP glitches and payment/challan errors account for 16% and 12% of the total issues, respectively.

Table 4: Time Lost Due to GSTN Portal Issues

Time Lost per Month	Respondents	Percentage (%)
Less than 2 Hours	21	14
2–5 Hours	48	32
5–10 Hours	45	30
More than 10 Hours	36	24
Total	**150**	**100**

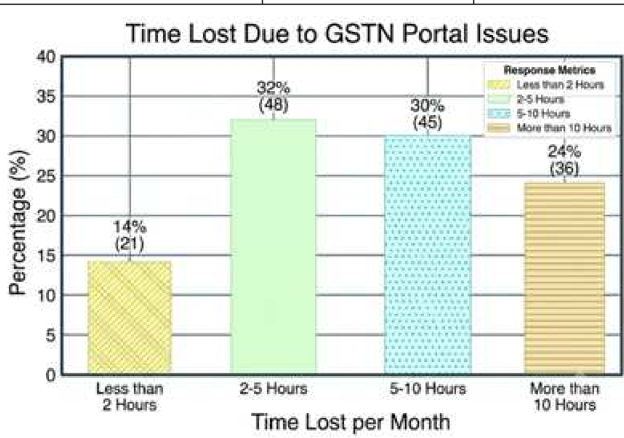

Interpretation of Table 4: Time Lost Due to GSTN Portal Issues

Table 4 measures the monthly working hours lost by businesses as a result of GSTN portal glitches. The biggest respondents, 32%, loses 2 to 5 hours each month, then 30% are the respondents who lose 5 to 10 hours. 24% of respondents experience severe productivity losses exceeding 10 hours per month. 14% report losing less than 2 hours monthly, significant time drain due to system failures.

Table 5: Impact on GST Compliance

Impact Area	Respondents	Percentage (%)
Delayed Return Filing	45	30
Difficulty in ITC Claim	39	26
Risk of Late Fees/Penalty	30	20
Increased Dependence on Consultants	24	16
No Significant Impact	12	8
Total	**150**	**100**

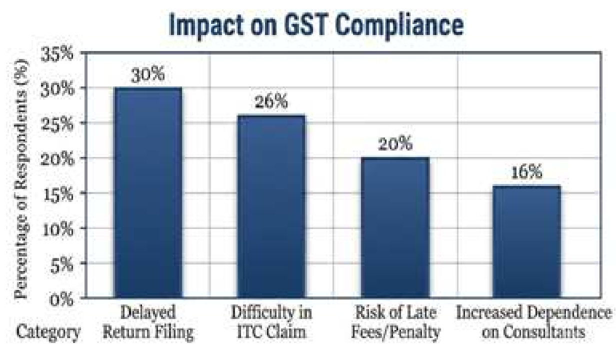

Based on a survey of 150 business respondents. Percentage breakdown among key impact categories shown. Data Source: Table 5, Impact Analysis.

Interpretation of Table 5:Impact on GST Compliance Table 5 shows how GSTN technical difficultiesare troubling taxpayers' statutory compliance activities. Late return filing emerges as the biggestcompliance hurdle, affecting 30% of respondents. Difficulties in claiming Input Tax Credit (ITC) impact 26%, whereas 20% report being exposed to risks of late fees and penalties. 16% face increased reliance on tax consultants, with only 8% stating that portal issues have no significant impact on compliance.

Table 6: Impact on Business Operations

Impact Area	Respondents	Percentage (%)
Increased Compliance Cost	42	28
Working Capital Problems	36	24
Loss of Productivity	30	20
Customer/Supplier Disputes	24	16
Delayed Business Decisions	18	12
Total	**150**	**100**

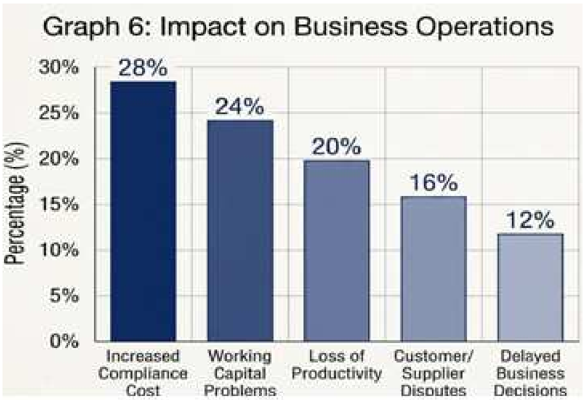

Interpretation of Table 6: Impact on Business Operations

Table 6 shows consequences of GSTN portal failures, on core business operations and avtivities. Increased compliance costs affect 28% of the sample, while 24% suffer from working capital bottlenecks due to blocked credits. Productivity losses are experienced by 20% of businesses, 16% face customer or supplier disputes, and 12% suffer from delayed business decision-making.

Table 7: Satisfaction Level with GSTN Portal

Category	Respondents	Percentage (%)
Highly Satisfied	15	10
Satisfied	45	30
Neutral	39	26
Dissatisfied	33	22
Highly Dissatisfied	18	12
Total	**150**	**100**

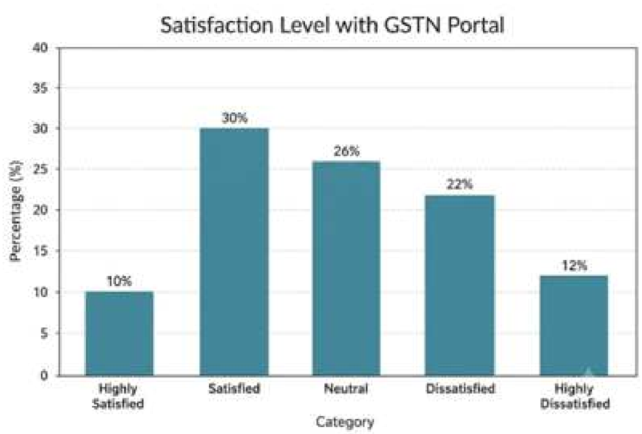

Interpretation of Table 7: Satisfaction Level with GSTN Portal

Table 7 shows the overall user satisfaction levels ,regarding the GSTN portal. 34% of respondents shown dissatisfaction (22% dissatisfied and 12% highly dissatisfied). Neutral responses is at 26%, 30% of users are satisfied and 10% are highly satisfied. The data shows that dissatisfied users are more than the highly satisfied ones, signalling a clear need for system enhancement.

Table 8: Suggested Improvements in GSTN Portal

Suggestion	Respondents	Percentage (%)
Better Server Performance	48	32
Faster ITC Reflection & Updates	36	24
Simplified Return Filing Interface	30	20
Better Helpdesk Support	21	14
More Taxpayer Training	15	10
Total	**150**	**100**

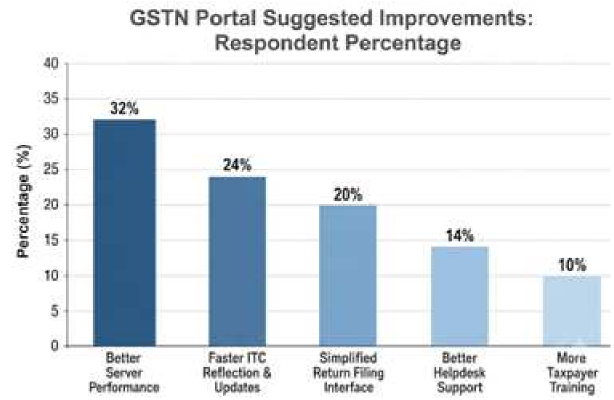

Interpretation of Table 8:Suggested Improvements in GSTN Portal

Table 8 categorizes key recommendations provided by users to improve the GSTN ecosystem. Upgrading server performance to improve portal speed is suggestion from 32% of respondents. Faster ITC reflection/updates (24%) and a simplified return filing interface (20%) are also strongly recommended. Theremaining respondents call for enhanced helpdesk support (14%) and broader taxpayer training programs (10%).

Table 9: Overall Effect of GSTN Issues on Business Performance

Response	Respondents	Percentage (%)
Highly Negative Impact	27	18
Negative Impact	51	34
Neutral	36	24
Positive Impact	24	16
Highly Positive Impact	12	8
Total	**150**	**100**

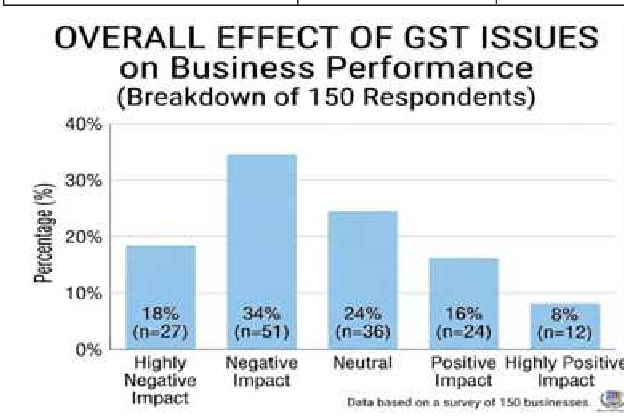

Interpretation of Table 9:Overall Effect of GSTN Issues on Business Performance

Table 9 highlights the broad impact of GSTN portal issues on overall business performance. A 52% report a negative effect, consisting of 34% reporting a negative impact and 18% experiencing a highly negative impact. Neutral views account for 24%, whereas 16% report a positive impact and 8% see a highly positive impact. This demonstrates that unresolved system issues continue to impose a burden on business operations.

Discussion and Analysis: We analysed the primary data from 150 respondents they told that GSTN portal-related issues continue to affectGST theircompliance and business operations among MSMEs in Satna District. The findings of this research tells that although the GSTN portal has improved the digitization of tax administration, so many technical and operational challenges remain a graveconcern for taxpayers.

Theprofile of respondents exhibit that the study covers a different type of group of many stakeholders, including manufacturing, trading, and service-sector MSMEs and many tax professionals. This diversity givesus a comprehensive understanding of GSTN-related challenges across different business categories.

The findings of our survey show that a majority of respondentshave experiencemany GSTN portal issues on a random or regular basis. More than half of the respondents has complained or reported aboutfacing technical difficulties either frequently or very frequently. This thinggives indication and also suggests that GSTN portal problems are not isolated incidents but these are like recurring challenges that directly affect business compliance activities for sure.

Among the many technical issues which exist now a days, downtime of the GST portal , showing website is under maintenance and slow server response emerged as the most common problems. So many Respondents also reported return filing errors, ITC reconciliation difficulties,sudden login failures, OTP verification issues like even after putting right otpsystem doesn't proceed, and payment-related glitches like even after payment the window of portal shows "payment initiated" but does not show payment successful at that very time of payment .All These findings indicate that performance of the system and reliability remain critical thing for taxpayers, especially during peak time of return-filing like 10th or 20th day of each month.

The study also reveals that GSTN portal issues alsoresult in a significant loss of productive time. A big proportion of respondents said that they had spent more than five hours per month resolving portal-related problems. This extra time burden increases administrative workload and diverts attention from core business activities , because if they will focus on such issue of portal , they will surely loose some focus from their core business.

The impact on GST compliance is very important. late return filingeg after 20th of the each month was identified as the most common consequence of GSTN portal issues, followed by difficulties in claiming Input Tax Credit (ITC) and increased risk of penalties due to late compliance. Many respondents said that there is a big dependence on tax consultants and accountants is necessary for them , which further increases their compliance costs.

This analysis also tell usthe manyadverse impact of GSTN portal issues on business operations of the tax payers . Increased compliance costs has now emerged as the most significant business consequence, followed by working capital constraints resulting from delayed ITC reflection and reconciliation due to portal down time , late response and many other issues.Many persons reported Productivity losses, customer-supplier disputes, and delays in business decision-making . These findings suggest that GSTN-related issues affect not only tax compliance but also the overall operational efficiency of businesses of tax payers.

The satisfaction analysis as shown in this research shows us that a large proportion of respondents are eithernot satisfied or highly dissatisfied with the current performance of the GSTN portal as if one issue is resolved another different issue comes. Although some persons expressed satisfaction, the overall results indicate that there is a big scope for improvement in portal functionality, system stability, and user experience.

Respondents also suggested manytools and measures for improving the effectiveness of the GSTN portal. The most recommended improvements include better server performancebecause server works really very slow many times, faster ITC updates, simplification of the return-filing process, improved GST helpdesk support, and enhanced taxpayer awareness and training programs. These suggestions show the practical expectations of taxpayers and indicate areas where policy intervention can improve compliance efficiency.

The overall assessment if we do of respondentswe find that GSTN portal issues have a very negative impact on business performance. More than half of the respondents believe that technical problems in the GSTN portal affect their business operations in negative way , compliance efficiency, and financial management are also negatively affected by portal issues. This finding add support to the view that the effectiveness of GST compliance is closely linked to the reliability and performance of the GSTN portal. Hence, the study concludes that although GSTN has played a vital and important role in promoting digital tax administration in India, constant and continuous technological upgrades, stronger server infrastructure, better refresh rate of server ,faster grievance redressal mechanisms, and simplified compliance procedures are necessary to enhance taxpayer satisfaction and improve the overall effectiveness of the GST system that will

ultimately improve performance of business in India too.

The Study's major findings or Key Results :

1. MSMEs often experience GSTN portal downtime and slow server response.
2. Issues with GSTN cause substantial delays in the filing of GST returns and ITC claims.
3. The inefficiencies of the portal lead to an increase in compliance costs and working capital issues.
4. The GSTN portal continues to receive moderate to low satisfaction from taxpayers. Both GST compliance and company efficiency can be greatly enhanced with better infrastructure and quicker ITC processing**.**

Conclusion: This present study which is done by us analysed and examined the impact of GSTN portal issues on GST compliance and business operations among MSMEs in Satna District, Madhya Pradesh. The study was based on primary data collected from 150 respondents, including manufacturing, trading, and service-sector MSMEs and tax professionals too. The findings of our study provide very valuable knowledge / insights into the practical challenges which are being faced by taxpayers while using the GSTN portal and their implications for business performance and compliance efficiency.

Our study show that GSTN portal-related issues continue to be a very mainand big concern for MSMEs. Technical problems such as portal downtime, slow server response, return filing errors, login and OTP verification issues, and delays in Input Tax Credit (ITC) reconciliation are commonly experienced by taxpayers. These issues not only create problemin smooth GST compliance but also such issues increase the time and effort required to fulfil statutory obligations thus so many precious working hours are lost.

The analysis furthershow that GSTN portal inefficiencies have a directvery impact on GST compliance. Delay in GST return filing, difficulties in claiming ITC, increased dependence on tax professionals, and the risk of penalties due to late compliance were identified as major result or outcome of portal-related problems. These findings of our study suggest that effective GST compliance is highly dependent on the reliability and performance of the GSTN system.

Our study also brings into lime light the so many adverse or negative impact of GSTN portal issues on business operations. Increased compliance costs, working capital constraints arising from delayed ITC reflection, loss of productivity, and operational inefficiencies were reported by a substantial number of respondents. Theseexisting challenges are really very very significant for MSMEs, which often operate with limited financial and technological resources.

The findings of this researchalsoshow that although our GSTN portal has mainly contributed to the digitization in India and modernization of tax administration in India, taxpayer satisfaction remains moderate and not at high level due to recurring technical difficulties. Respondent person strongly emphasized the need for better server performance, faster ITC processing, simplified return filing procedures, improved helpdesk support, and regular taxpayer awareness programs.

Overall in nut shell, this study provides district level empirical evidence from SATNA district and concludes that GSTN has become an indispensable and really very important component of India's GST framework and has significantly improved transparency and digital tax administration but the persistence of technical and operational issues continues to affect GST compliance and business efficiency, particularly among MSMEs , so, continuous technological upgrades, stronger digital infrastructure, efficient grievance redressal mechanisms, and taxpayer-centric reforms are essential to enhance the effectiveness of the GSTN portal and ensure a smoother compliance environment.

In the conclusion we can say, addressing GSTN portal-related challenges will not only improve taxpayer satisfaction and compliance efficiency and their reliance but it will also contribute to the broader objective of creating a more transparent, efficient, and business-friendly GST ecosystem in India.

Recommendations / Suggestions: Inour study, we suggest the following things as they will improve the efficiency and ease ofcompliance.

1. Strengthen Infrastructure: We suggest to Upgrade server capacity to eliminate downtime during peak filing deadlines.
2. Optimize ITC Systems: We strongly recommend Govt. to Enable real time ITC updates so as to prevent working capital blockages.
3. Simplify UI: Concerned persons should work more Simplify form filling and reduce navigation complexity.
4. Dedicated Helpdesk: We recommend to Set up grievance redressal services that works in a quick and fast manner these should be specifically designed for MSMEs.
5. Real time Error Validation: It is very important to Add automated checks to catch entry errors prior to final submission, more the automated checks better will be filing.
6. Policy Stability: We suggest Limit or keep it minimum the frequent changes in portal interface and filing steps to foster a predictable environment.

References:-

1. Central Board of Indirect Taxes and Customs. (2021). Annual report 2020–21. Government of India.
2. Central Board of Indirect Taxes and Customs. (2022). Annual report 2021–22. Government of India.
3. Central Board of Indirect Taxes and Customs. (2023). Annual report 2022–23. Government of India.
4. Central Board of Indirect Taxes and Customs. (2024). Annual report 2023–24. Government of India.

5. Garg, G. (2017). Basic concepts and features of goods and services tax in India. International Journal of Scientific Research and Management, 5(6), 5420–5425.
6. Goods and Services Tax Network. (2023). GSTN annual report and system performance review. GSTN.
7. Goods and Services Tax Network. (2024). GSTN user manuals and technical documentation. GSTN.
8. Government of India. (2017). The Central Goods and Services Tax Act, 2017. Ministry of Law and Justice.
9. Government of India. (2017). The Integrated Goods and Services Tax Act, 2017. Ministry of Law and Justice.
10. Government of India. (2017). The State Goods and Services Tax Act, 2017. Ministry of Law and Justice.
11. Gupta, S. (2022). Impact of GST compliance requirements on MSMEs in India. International Journal of Commerce and Business Studies, 11(2), 45–58.
12. Kumar, R., & Sharma, A. (2019). GST compliance issues among small and medium enterprises in India. International Journal of Management Studies, 6(3), 112–121.
13. Ministry of Finance. (2024). Economic survey 2023–24. Government of India.
14. Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises. (2024). Annual report 2023–24. Government of India.
15. Mishra, S., & Tiwari, R. (2024). Digital tax compliance and MSME performance in India. Journal of Accounting and Taxation Studies, 9(1), 22–37.
16. NITI Aayog. (2023). Digital governance and technology adoption in India. Government of India.
17. Organisation for Economic Co-operation and Development. (2022). Tax administration: Digital transformation report. OECD Publishing.
18. Purohit, H. C., & Purohit, V. (2018). GST in India: Challenges and opportunities. Taxmann Publications.
19. Reserve Bank of India. (2024). Report on trend and progress of banking in India 2023–24. RBI Publications.
20. Singh, P., & Verma, R. (2021). Digital tax administration and GSTN: Opportunities and challenges. Journal of Taxation and Public Finance, 8(2), 67–81.
21. World Bank. (2023). Digitalization of tax systems and business compliance: Global perspectives. World Bank Publications.
22. GST Council Secretariat. (2023). GST Council reports and recommendations. Government of India.
23. GST Council Secretariat. (2024). GST Council meeting reports and policy recommendations. Government of India.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ. बालेश्वर प्रसाद*

*ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा, बाँदा (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश - केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना अत्यंत विकसित है। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति, मानवीय संवेदनाएं, और मार्क्सवादी-यथार्थवादी चेतना के दर्शन होते हैं। उनकी रचनाओं में जनजीवन, किसान और शोषित वर्ग के संघर्ष का सजीव चित्रण मिलता है।केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बुंदेलखंड की प्रकृति, नदियां, खेत और पेड़-पौधे बहुत सुंदर ढंग से उभरे हैं।उनकी प्रकृति कोई अमूर्त कल्पना नहीं, बल्कि जीवन और श्रम से जुड़ी जीवंत शक्ति है।केन नदी, बसंती हवा और ग्रामीण परिवेश उनके प्रकृति-प्रेम के मुख्य आधार हैं।वे प्रगतिशील और मार्क्सवादी विचारधारा के कवि हैं, जिन्होंने समाज के शोषक और शोषित वर्ग को करीब से देखा है।उनकी कविताओं जैसे 'हथौड़े का गीत' में मजदूर और किसान की मेहनत, भूख और संघर्ष की सीधी बात होती है।वे आम आदमी के जीवन की धूल और पसीने को अपनी कला की ताकत बनाते हैं।मानवीय संवेदनाएं और प्रेम उनके काव्य में घरेलू जीवन, प्रेम और अपनेपन के भाव भी बहुत गहरे हैं जैसे 'हे मेरी तुम। वे नारी के समान अधिकारों और सम्मान के पक्षधर रहे हैं। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक चेतना की चेतनाएँ विद्यमान हैं।

प्रस्तावना - केदारनाथ अग्रवाल समकालीन प्रगतिवादी काव्यधारा के अत्यन्त सशक्त और यथार्थवादी कवि हैं। छायावादी कविता में जो व्यक्तिवादी रुमानी चेतना के विरुद्ध सामाजवादी यथार्थ की चेतना लेकर आयी है। यह धारा युगबोध की अभिव्यक्ति है। युगाकांक्षा से जुडी होने के कारण यह नवीन धारा अधिक जीवन सम्पन्न है। इसने साहित्य के तथ्य, दृष्टिकोण, सौन्दर्यबोध और अभिव्यक्त को सामाजिक से जोडकर अधिक क्षमता सम्पन्न तथा व्यापक बनाया है। केदार नाथ अग्रवाल ने अपनी कविता को सामाजिक जीवन से जोडकर देखने का प्रयास किया है। 'युग की गंगा' से लेकर यफूल नही रंग बोलते हैं 'काव्य संग्रह तक आते-आते केदार के विचारों में दृढता आ गयी है। अपनी परिपक्वता का श्रेय वे अपने बौद्धिक विचारों को नही मानते है वरन् उसे मानते है जो उनके कवि मित्रों ने एवं साहित्य मनीषियों ने उन्हें प्रेरणा दी है।

समकालीन प्रगतिवादी रचनाकारों में जहाँ केदारनाथ, नागार्जुन को जनता से आया हुआ सचेतन, जागरुक, सर्वेदनशील रचनाकार मानतें है, वहाँ वे स्वयं को साहित्य के माध्यम से आया हुआ अभिज्ञापित करतें है। जिसका श्रेय वे निराला जी, रामविलास शर्मा, पी० सी० गुप्ता, अमृतराय और त्रिलोचन को देते हैं। इन साहित्यकारों से प्रेरणा पाकर केदारनाथ अग्रवाल साहित्यिक जीवन में एक नये युग को लाने का प्रयास करतें है। समय के साथ-साथ जैसे-जैसे प्रौढ़ता आती जाती है भावों और विचारों के द्वार भी खुलते जाते हैं। अनुभव ही लेखक का परमेश्वर होता है। जो रचनाकार के स्वयं के अनुभवों से उत्पन्न नही होती वह साहित्य की कसौटी पर खरी नही उतरती। अपने काव्य की दृढता के सन्दर्भ में केदार जी ने स्वयं लिखा है। जो रचना रचनाकार के स्वयं के अनुभवों से उत्पन्न नही होती वह साहित्य की कसौटी पर खरी नही उतरती। अपने काव्य के दृढता के सन्दर्भ में केदार जी ने स्वयं लिखा है-

'जैसे-जैसे समय बीतता गया और विवेक में बढ़ता गया और गलत से सही की ओर चलता गया। यथार्थ और वास्तविकता को क्रमश: समझता गया। यह समझ और जीवन-दृष्टि, सघर्ष और द्वन्द्व से आयी। अपने इन्द्रियो से मैने बर्हिजगत का ज्ञान प्राप्त किया।'[1]

इस प्रकार केदार समाज को उत्थान देने वाले कलाकार है। सच्चा कलाकार वह होता है जो कला के द्वारा जीवन में एक नया रंग भर देता है। कलाकार व्यक्तिगत सुख-दुख से बहुत ऊपर उठ जाता है तभी वह सच्चा कलाकार बन पाता है। कला भी एक प्रकार की सामाजिक चेतना है, जिसके माध्यम से मनुष्य का मानस सामाजिक वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करता है। 'कला सामाज की एक आवश्यकता है। कला उस मोती के समान है जो समाज रूपी सीपी से उत्यपन्न होता है।'[2]

प्रगतिवादी काव्य जन-जीवन से जुड़ा हुआ काव्य है। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होनें सामाजिक यथार्थताओं और वास्तविकताओं से परिचित कराकर अपनी जागरूक सामाजिक चेतना का व्यापक परिचित दिया है। केदार जी ने मजदूर और किसान के जीवन को निकट से देखा है और उनके बीच जीवन है। इसलिए उनकी कविताओं में सहज स्वभाविक भावुकता और सच्ची सहानुभूति के दर्शन होते हैं। इनकी रचनाओं में निराला जी की तरह का सामाजिक बोध दिखाई पड़ता है। इन्होनें अपनी प्रतिबद्धता किसानों, मजदूरों और शोषितों के प्रति प्रकट की है। केदार जब भी संमाजिक व्यवस्थता लाकर जनसामान्य के दुखों को दूर करना चाहतें है तथा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति रख सकें-

'मिलों के मालिकों को
अर्थ के पैशाचिकों को
भूमि के हडपे हुये धरणीधरो को

मै प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ
और उनके अपहरण की
दिग्विजयी सभ्यता को
सर्वहारा की नवोदित सभ्यता से जीतता हूँ।'[3]

'युग की गंगा' कवि केदारनाथ अग्रवाल की सबसे महत्वपूर्ण प्रगतिवादी कृति है, जिसका व्यवस्थित प्रकाशन सर्वप्रथम हुआ यद्यपि यनींद के बादल' पहले लिखी गयी थी। इसमें सामाजवादी भावनाओं, विचारों, वर्ग संघर्ष तथा सामाजिक अन्तरविरोधों को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। भरतीय जनजीवन की हलचल, उनकी विवशता, दयनीय दशा, शोषण तथा उनमें व्याप्त अन्धविश्वास आदि का बडा विशद् वर्णन किया है। इन्होंने जनता में व्याप्त अन्धविश्वास तथा उसके पिछडेपन को अनदेखा नही किया है। सन् 1946 का जनउभार अपनी तर्क संगत परिणित पर नही पहुँचा इसका कारण वामपक्ष की कमजोरी के अलावा जनता का पिछडापन ही था-

'अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है
संज्ञानहीन, अर्थहीन
बेकार चिरें-फटे टुकडों सा पडा है।'[4]

केदार जी का बालपन गांव में बीता तथा उसके कवि मानस पर इसकी छाप सदैव देखने को मिली है गांव के जनजीवन, विवशताओं, दुखों, अभावों, गरीबी तथा वहाँ की प्रकृति का सौन्दर्य व मिट्टी की सोंधी खुशबू उनकी कविताओं को अलग ही रूप प्रदान करती है। जमीदार किसानों का खून चूसने वाले जोंक हैं। वे तरह-तरह से उनका शोषण करतें है, बेगारी कराते हैं, कभी डिप्टी साहब के नाम पर कभी धर्म काज अथवा नाच-गानों के नाम पर किसानों को खूब दुहतें हैं। इसके अतिरिक्त जमीदारों के अमले सिपाही, पटवारी आदि भी किसानों को लूटने में कोई कोर कसर नहीं छोडते हैं। ययुग की गंगा काव्य संग्रह में मजदूर 'चन्दू चैतू' 'अंगर' आदि इस प्रकार की कविताएं है जिसमें ग्रामीण जीवन के वैषम्य के चित्रों को वास्तविकता की अनुभूति प्रदान की है, इस दृष्टि से 'मजदूर' कविता देखी जा सकती है-

'खातें है पेट की थैली में गाढ़ते
रोटी के टुकडों को दाँत से काटते
माँजतें है बर्तन,
नंगी ही धरती पर सोते हैं
काँखते-हाँफते
रोज की बदबू में सडते हैं दुनिया की।'[5]

कवि ग्रामीण जीवन का विशेष प्रेमी है उसके दुखों और विपदाओं को कवि ने देखा है, समझा है। इनके चित्रांकन में कवि की यथार्थवादी प्रवृत्ति झलकती है। 'चन्दू' कविता इसी प्रकार की है जिसमें कवि ने चन्दू जैसे अन्य अनेक ग्रामीण जनों के दीन-हीन जीवन को चित्रित किया है। 'दीन कुनवा' शीर्शक कविता में कवि ने ग्रामीण परिवार की दीन दु:खी अवस्थाओं को मार्मिक और ढंग से अभिव्यक्त किया है-

'दीन दु:खी यह कुनवा
जाडे की थर थर में कांपता
अपनी चौपारी में बैठा
ताप रहा है कांडा।'[6]

केदार जी का यह वर्ग जो श्रमजीवी है। मेहनत करके अन्य उगाता है तथा सब का पेट पालता है इसलिये केदार के लिये वे कमल जैसे सौन्दर्यपूर्ण है, लाल कमल जैसे जो सबेरा होते हुये काम पर लग जाते हैं। हाथ का काम में लगना कमल का खिलाना है-

'छोटे हाथ
सवेरा होते
लाल कमल में खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सुक हों
धूप हवा में हिल उठते है।'[7]

किन्तु वास्तव में उनका जीवन बहुत हृदयद्रावक है। मार्मिक ग्राम्य जीवन का परिदृश्य उभारने में, उनकी छवि निखारने में, निराला के बाद के रचनाकारों में कविवर केदारनाथ अग्रवाल अग्रणी तथा महत्वपूर्ण हैं- 'गांव में' नामक कविता देखिये-

'सडे घूर की गोवर की बदबू से दबकर
महक जिन्दगी के गुलाब की मर जाती है।
रार, क्रोध, तकरार, द्वेष से दु:ख से कातर
आज ग्राम की दुर्बल धरती घबराई।'[8]

आज भी जब मानव चांद पर रहने के प्रयास कर रहा है तब ग्रामीण जीवन कितनी ही विकृतियों से भरा पड़ा ।इसी दुर्दशा को उन्ही के शब्दों में देखिये-

'जी रहा है मेरा गांव 'कमासिन'
टिमटिमाती हुई लालटेन की तरह।।'[9]

जहाँ ऐसा युगद्दष्टा कवि रहता है, वहां की यह दशा है तब और गांवो की क्या स्थिति होगी? बांदा की धरती पर जन्में कवि केदारनाथ अग्रवाल को अपनी धरती के लोगों के प्रति कितना लगाव था यह उनकी कविताओं में भलि-भांति प्रकट हुआ है। उनकी लेखनी से वह पीडा उभरती जाती है जिसे वह चारों ओर महसूस करते हैं। इतनी कठिनाइयों और परेशानियों में रहते हुये भी किसान के जीवन में उल्लास भी है। वे अपनी मेहनत की कीमत पहचानते हैं-

'हमारे हाथ में हल है
हमारे हाथ में बल है
कि हम बंजर को तोडेंगे
बिना तोडे न छोडेंगे।'[10]

इतने अभावपूर्व जीवन व्यतीत करते हुये भी वह (किसान) अपने काम के साथ उल्लास के क्षण अवश्य निकाल ही लेता है- गीत चाहे कटाई का हो, जुताई, बुआई, अथवा निराई-गोडाई एवं ओसाई का हो-

'साइत आयी, साइत आयी, बहय गजब की बैरा
काटी मॉड़ी फसल पड़ी है, गांवों मारो सैरा
दौरी साधों अन्न ओसावों, अडर उडावों पैरा
ताल ठोकि के भारि भगावों, तेते ऐरा गैरा'[11]

पूंजीवाद सामाजिक व्यवस्था के अर्थवादी दृष्टिकोण ने 'अर्थ' को अनन्य अधिकारों का स्रोत बना दिया है। सामान्य जन जीवन इन अधिकारों से वंचित अपना पूर्ण विकास करने में सम्पूर्ण असमर्थ है। आज की स्वस्थ्य समाज की भावना मात्र कल्पना के रूप में दिखाई देती है। विभिन्न वर्णो के कठिन श्रम और संघर्ष के बाद भी देश के अधिकतर मनुष्य आशाविहीन पशुवत जीवन जीते हैं। जीवन के प्रति इस वर्ग का विश्वास अत्यन्त क्षीण होता जा रहा है। समाज के थोडे से लोग शिक्षा-संस्कार और सामाजिक उच्च मर्यादा का उपभोग कर रहे हैं। शोषक वर्ग जिसे हम उच्च वर्ग कहते हैं,

अपने अन्याय को अनेक सुन्दर वस्त्रों में ढककर समाज की आँख में धूल झोक रहा है। किन्तु यह वर्ग (सर्वहारा वर्ग) कितना ही दीन-हीन क्यों न हो कवि की दृष्टि में उसकी उपयोगिता समाज के लिये कम नही है। कवि केदार जी इन दोनों वर्गो का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करते है-

'पूजीपति अपने बेटे को बेहद काला दिल देता है
वाली मसि से काली करनी, करने का अवसर देता है,
जब तक जीता है रहता है शोषण की शिक्षा देता है,
वह अपने को और जगत को, बेटे को धोखा देता है।'[12]

इसके प्रतिकूल मजदूर-

'श्रमजीवी अपने बेटे को पर उपकारी दिल देता है,
मेहनत करने को, जीने को, हाथों में हल लोहे का घन
हर आफत से लड़ जाने को, गति देता है बल देता है।'[13]

केदार जी का साहित्य ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जिसमें उन्होंने इस श्रमजीवी जनता की खुलकर प्रशंसा की है। 'श्रम' शीर्शक से इन पंक्तियों को देखिये-

'खो सकता है
तेरा मेरा रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना
हो सकता है
पूर्ण असम्भव का भी पूरा सम्भव होना
किन्तु नही श्रम
किन्तु नही श्रम
तेरा मेरा, इन हाथों का खो सकता है
इनके द्वारा
कर्म असम्भव पूरा सम्भव हो सकता है।'[14]

केदार जी शोषित वर्ग को उस समुद्र की तरह मानते हैं जो अब वर्षो से चले आ रहे शोषण से खलबला गया है क्योंकि सदियों से अपने जीवन पर शोषण के अत्याचार का वह असहनीय दर्द रहा है जो उसके जीवन और उसके कर्म से जुड़ा हुआ है। केदार कहते हैं अब बहुत समय हो गया जीवन ने चोट पर चोट खायी है। चोट खाते-खाते सदियां बीत गयीं है पर कभी कुछ नहीं कहा मगर अब अपना मौन तोड़ना ही पडेगा और इसलिये श्रमिक अपने मौन को तोड़ सघर्ष के लिये अपने हक के लिये उठ खड़ा हो रहा है-

'समुद्र वह है/जिसका धैर्य छूट गया है
दिक्काल में रहे
समुद्र वह है जिसका मौन टूट गया है
चोट पर चोट सहे सहे।'[15]

निष्कर्ष- इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक बोध अत्यंत विकसित है। जिस समय केदार जी ने काव्य के क्षेत्र में प्रवेश किया था वह वर्ग संघर्ष का समय था। समाज शोषक व शोषित दो वर्गो में विभक्त हो गया था। शोषक वर्ग संख्या में तो कम है किन्तु उत्पादन के साधनों पर उसका अधिकार है तथा जो जन-सामान्य का शोषण करता है। शोषित वर्ग अत्यन्त दीन-हीन दशा में रहकर अपने जीवन का निर्वाह कर रहा है। एक ओर पूंजीवादी,अय्याशी व भोग में डूबा है वहीं दूसरी ओर श्रमिक, शोषित भर पेट रोटी तथा अन्य आवश्यक आवश्कताओं की पूर्ति करने में कठिनाइयों का सामना करता है। केदारनाथ अग्रवाल ने इस सामाजिक यथार्थ का भरपूर चित्रण किया है। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक बोध की चेतनाएँ विद्यमान हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1965
2. क्रिस्टोफर कॉडवेल इल्युशन एण्ड रियलिटि, पृ0स0-14
3. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-78, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1965
4. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1978
5. युग की गंगा- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1947
6. युग की गंगा- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1947
7. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-135, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1978
8. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1978
9. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1978
10. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-66, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1978
11. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-66, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1978
12. लोक और आलोक- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-55, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1947
13. लोक और आलोक- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-56, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1947
14. लोक और आलोक- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-58, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1947
15. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1965

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

A Comparative Study on the Investment Behavior and Influencing Factors Among Salaried and Non-Salaried Individuals

Dr. Narendra Marwada* Yogesh Yadav**

*Research Supervisor, Department of ABST, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur (Raj.) INDIA
** Research Scholar, Department of ABST, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur (Raj.) INDIA

Abstract: Investment behavior varies significantly among individuals based on their income sources, financial knowledge, and risk preferences. This study aims to compare the investment behavior of salaried and non-salaried individuals and identify the key factors that influence their investment decisions. Using primary data collected through structured questionnaires, the research evaluates the role of variables such as risk tolerance, financial literacy, income stability, demographic characteristics, and investment awareness. Statistical analysis reveals that salaried individuals, due to consistent income and job security, tend to favor low-risk and long-term investments, such as fixed deposits and mutual funds. In contrast, non-salaried individuals often demonstrate a higher risk appetite, opting for short-term or high-return investment options like stocks and cryptocurrencies. The study also finds a strong correlation between financial literacy and investment behavior in both groups. The findings provide valuable insights for financial advisors, policymakers, and educators to develop targeted investment strategies and awareness programs suited to different income groups.

Keywords: Investment Behavior, Salaried Individuals, Non-Salaried Individuals, Risk Tolerance, Financial Literacy, Demographic Factors, Investment Patterns, Income Stability.

Introduction - Many individuals have trouble understanding fundamental financial concepts like compound interest, inflation, and risk diversification. Because it exposes individuals to predatory financial activities, excessive debt, and inadequate retirement savings, this lack of financial literacy creates major issues. Additionally, the consequences of low financial literacy extend beyond individual households; they can fuel broader societal instability and economic inequality.

Investment decision-making, in which individuals allocate assets among various investment vehicles in an attempt to meet their financial goals and progressively grow their wealth, is an essential aspect of financial behavior. More responsible investment techniques, such portfolio diversification, in-depth research, and long-term thinking, are often linked to higher financial literacy [1]. As a result, they are better positioned to maximize earnings, minimize risks, and take advantage of investment opportunities.

However, the relationship between financial literacy and investment decision-making is influenced by a wide range of other contextual and personal factors. Demographic characteristics that may significantly impact people's investment behaviors and financial literacy include age, education, income, and employment. Furthermore, psychological factors including risk tolerance, cognitive biases, and financial beliefs have a big impact on people's investment decisions.

Investigating financial literacy and investment decision-making across all demographic groups, including those who are paid and those who are not, is thus much more important. By exploring the nuances of this relationship among certain demographic groups, researchers may get valuable insights into the elements that support and undermine financial literacy and investment behavior. With this improved understanding, investment strategies, legislation, and tailored financial education programs may be created to help individuals make prudent financial decisions, build wealth, and achieve long-term financial stability [2].

The majority of Indians invest their money in fixed return assets like fixed deposits and bank commodities like gold, silver, etc. since they don't want to take on further risk. They are risk averse, and many of them are even ignorant of the many investment possibilities that are available on the market because they lack financial literacy. As a consequence, a number of regulatory bodies, such as banks and other establishments, are putting different financial education initiatives into action. These

demographics include schoolchildren, pensioners, self-help groups, young investors, people on and off wages, and others [3].

Numerous organizations have connected a number of financial literacy initiatives to raising the financial literacy of Indian investors, and in the process, they are attaining financial inclusion. One of the most important of these is the inclusion of financial education in the curriculum. In both urban and rural areas, as well as in public schools and rural government, the various commercial banks set up financial literacy training programs.Additionally, banks are quite reluctant to conduct regular initiatives to increase financial literacy and money inflows via road shows and social media. Financial literacy is the collective term for the knowledge, skills, and understanding needed to effectively manage personal finances and make prudent financial decisions. It covers a wide range of topics, including budgeting, saving, investing, borrowing, and understanding financial products and services.

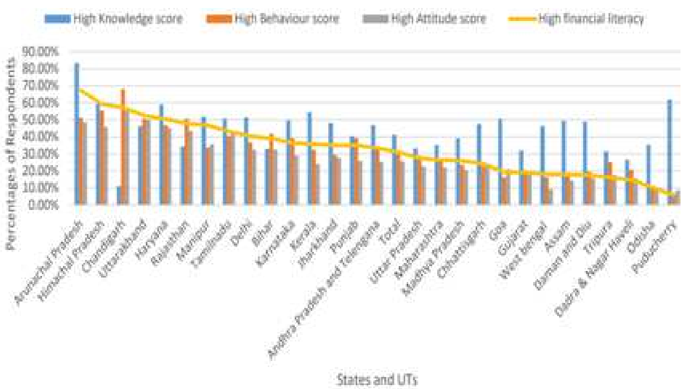

Figure 1:Differences in Financial Literacy by State and Their Three Components Crucial Components of Financial Understanding

Understanding the disparities in financial literacy amongst a nation's states provides valuable information about the social dynamics and economic system at play. Financial literacy, which encompasses behavior, attitude, and knowledge of financial issues, is the foundation of both individual financial well-being and overall economic success [4]. By shedding light on variations in financial behavior, attitude, and knowledge, an analysis of state-by-state variations in financial literacy offers a comprehensive picture of the financial environment in diverse geographic locations. Stakeholders, educators, and lawmakers can identify critical issues, take advantage of opportunities, and develop targeted interventions to enhance financial literacy and empower individuals to make prudent financial decisions by paying closer attention to these parameters. This will ultimately support sustainable and equitable economic development [5]. The three primary components of financial literacy are financial knowledge, financial behavior, and financial attitude.

When inter-state variance is taken into account, disparities in financial literacy show differences in the depth and breadth of knowledge across individuals from various regions. States with higher levels of financial literacy may be more aware of concepts like budgeting, debt management, investing, saving, and financial planning. Conversely, there may be a problem with financial illiteracy in places with lower financial literacy, which might lead to bad choices, heightened susceptibility to financial fraud, and limited access to financial possibilities. To overcome these disparities and provide individuals the basic financial knowledge and abilities they need, targeted educational initiatives are required, such as seminars, financial literacy initiatives, and community outreach efforts.

The disparity in financial behavior across states is a reflection of various approaches to financial management, spending trends, saving and investment practices, and attitudes toward financial risk. Proactive financial planning, diversified investment portfolios, disciplined saving methods, and astute spending habits are all indicators of states that practice responsible financial behavior. Conversely, regions with weak financial traits may be more likely to have high debt levels, low savings rates, speculative investments, excessive spending, and a lack of long-term financial planning [6]. Understanding these differences is necessary to identify behavioral patterns and the underlying causes of financial swings. options, as well as barriers to prudent financial behavior.Financial education, behavioral economics, and consumer protection-focused interventions may help lessen the risks associated with poor financial behavior and promote wise financial practices. Conversely, regions with negative financial emotions could be risk apprehensive, hesitant to develop long-term financial goals, and wary of financial institutions.Addressing disparities in financial attitudes requires all-encompassing solutions that include elements of financial education, community involvement, and cultural sensitivity in order to promote sound financial mindsets and habits.

FINANCIALLITERACY INITIATIVES: The ability to effectively manage one's own finances, make informed decisions, and achieve long-term financial well-being is generally recognized as a life skill that requires financial literacy. The worldwide level of financial literacy remains below ideal despite international efforts to raise it, with developing nations exhibiting particularly low levels when compared to industrialized ones. Even while financial literacy is conspicuously lacking in India, policymakers, banks regulators, and other stakeholders are coming to the conclusion that it is essential. This agreement has initiated a number of initiatives aimed at improving financial literacy nationwide and promoting lifelong financial learning via a range of strategies, legislation, and initiatives tailored to different demographic groups [7].

Literature review

AHUJA, P. (2021)[1] A Comparative Study on the Investment Pattern of Individuals Working in Government Sector and

Private Sector With Reference to Bhopal City

In this study, Ahuja (2021) compares the investment patterns of individuals working in the government and private sectors in Bhopal city. The study aims to identify differences in the savings and investment choices between the two groups. Ahuja finds that government employees tend to have a more conservative approach to investment, preferring safer avenues like fixed deposits and government bonds. In contrast, private sector employees show a preference for higher-risk investments such as mutual funds and stocks, driven by higher income levels and greater financial literacy. The paper also discusses the socio-economic factors that influence these choices, including job security, financial education, and risk tolerance.

Ansari, S. A. (2020) [2] A Study on Savings and Investment Pattern of Salaried Class People With Reference to Pune City, Maharashtra, IndiaAnsari's (2020) research investigates the savings and investment habits of salaried individuals in Pune, Maharashtra. The study indicates a trend of increasing financial awareness among salaried employees, especially in terms of mutual funds, real estate, and insurance. However, Ansari notes that the level of awareness and participation in investments varies by income group, with higher-income employees more likely to invest in the stock market and real estate. The study emphasizes the role of financial literacy in shaping investment choices and highlights that a significant portion of the salaried class remains unaware of modern investment options.

Dr. S. Sripriya (2021) [3]Investment Behaviour of Salaried Class People in Udumalpet Town, Tirupur District Dr. Sripriya's (2021) study explores the investment behavior of salaried individuals in Udumalpet town, located in Tirupur District. The paper identifies the key factors influencing investment behavior, such as income level, family background, and exposure to financial information. The study shows that a significant number of salaried individuals prefer low-risk investment options, such as gold and fixed deposits, due to a lack of awareness and confidence in more volatile markets like the stock exchange. Sripriya argues that financial education and advisory services are crucial in guiding the salaried class towards more diversified and higher-return investment opportunities.

Jadav, M. S. (2021) [4]A Study of Saving and Investment Habit of Tribal Women of Valsad District of GujaratJadav (2021) focuses on the unique saving and investment behaviors of tribal women in Valsad district, Gujarat. The study reveals that tribal women predominantly rely on traditional forms of savings, such as gold, and have limited participation in modern financial markets due to socio-cultural barriers and lack of financial literacy. However, Jadav notes a growing shift as these women begin to show interest in group savings schemes (e.g., Self Help Groups) and microfinance opportunities. The study suggests that financial inclusion programs tailored to their specific needs could help improve their investment habits and overall financial well-being.

Babu K. A., D. G. (2021)[5]Income, Savings and Investment Patterns of Private Sector Salaried Households in KarnatakaBabu and D. G. (2021) analyze the savings and investment patterns of salaried individuals working in the private sector in Karnataka. The study reveals that private sector employees tend to allocate a substantial portion of their income towards investments, particularly in equities, insurance, and real estate. The paper identifies income level, job security, and exposure to financial knowledge as key determinants of investment patterns. Babu and D. G. also emphasize the growing trend of salaried individuals diversifying their portfolios, driven by the availability of financial products and digital platforms. The study concludes by suggesting that financial education initiatives could further enhance investment habits, especially among lower-income salaried groups.

NeenaTherasa P J & S. (2022)[6] A Study on Investment Pattern of Salaried People with Reference to Coimbatore City The study conducted by NeenaTherasa P J & S. (2022) focuses on understanding the investment behavior and patterns of salaried individuals in Coimbatore, India. The research highlights various investment avenues preferred by the salaried class, including mutual funds, insurance, and fixed deposits. The findings suggest that the salaried group is increasingly looking at financial instruments with low-risk factors and tends to prefer traditional savings methods over high-risk investment options. The study also emphasizes the importance of financial literacy in shaping investment preferences among salaried individuals.

N. H. (2022) [7] A Study on Savings and Investment Pattern of Salaried Class People This paper by N. H. (2022) delves into the savings and investment habits of salaried people, analyzing the key drivers influencing their financial decisions. It identifies that salaried individuals are generally conservative in their investment approach, with a preference for safe instruments like bank deposits and government securities. The study suggests that although salaried employees show a keen interest in saving, their knowledge of alternative investment opportunities such as stocks and real estate is limited. The author advocates for improved financial literacy programs targeted at this demographic to help diversify their investment portfolios.

P.V. M. M. (2018) [8] Financial Literacy and Investment Behavior of Salaried Individuals: A Case Study of WolaitaSodoTown The research by P.V. M. M. (2018) presents a case study from WolaitaSodo Town, Ethiopia, examining how financial literacy impacts the investment behavior of salaried individuals. The study finds a significant correlation between financial literacy levels and the willingness of salaried individuals to invest in high-risk options like stocks and bonds. The research also highlights that despite a growing interest in financial markets, many

salaried individuals still face challenges such as lack of proper financial advice and inadequate knowledge about investment instruments. This paper suggests that enhanced financial education is essential for empowering salaried individuals to make informed investment decisions.

PritiJaiswal& P. D. (2022) [9] Assessment of Saving and Investment Pattern between Salaried and Business Class Investors from Life Sciences Background in Western India PritiJaiswal& P. D. (2022) analyze the investment behavior of salaried and business class individuals from the life sciences sector in Western India. The study compares the saving and investment preferences between these two groups, highlighting that salaried individuals tend to be more conservative, with a higher preference for savings accounts and fixed deposits. In contrast, business class individuals are more inclined towards high-return investment vehicles such as stocks and real estate. The paper concludes that the level of financial literacy, coupled with risk tolerance, plays a crucial role in shaping investment patterns within these two groups.

S. P. (2020) [10] A Study on Investment Pattern Towards Salaried Employees in Coimbatore City This study by S. P. (2020) explores the various investment avenues preferred by salaried employees in Coimbatore City. The findings reveal that salaried individuals in Coimbatore predominantly favor traditional investment options like fixed deposits, savings accounts, and government bonds, with limited interest in riskier assets such as stocks or mutual funds. The study suggests that financial knowledge and awareness of newer investment opportunities are still in the nascent stages among this group, which influences their conservative approach to investing.

Sathvara, M. K. (2020) [11] A Study of Savings and Investment Pattern of Salaried Person with Special Reference to North Gujarat Region Sathvara (2020) presents a comprehensive study of savings and investment patterns among salaried individuals in North Gujarat. The research suggests that salaried employees in this region are generally cautious in their investment approach, favoring fixed deposits and government schemes over riskier financial instruments. However, the study also notes a growing awareness of investment options like mutual funds and the stock market, although these are still relatively underexplored. The study underscores the need for financial education to broaden the investment horizons of salaried employees in the region.

Shinki K. Pandey& A. V. (2020)[12] This study explores the investment preferences of young investors in Raipur, Chhattisgarh. The findings indicate that young investors are increasingly showing interest in diverse investment avenues such as mutual funds, equities, and digital platforms. However, the study also observes a moderate level of risk aversion among the youth. Influencing factors include income level, peer influence, and digital accessibility. The research highlights the growing impact of technology on investment decision-making and calls for increased financial literacy among young investors.

Patil, S. &Bagodi, V. (2021) [13] Patil and Bagodi utilize the Kano model to categorize factors affecting investment decisions in India into must-be, one-dimensional, and attractive quality categories. Their findings suggest that safety of principal and returns are must-be attributes, while digital access and financial advice are attractive features that enhance investor satisfaction. The study innovatively links customer satisfaction models with investor behavior, showing that emotional and psychological comfort plays a key role in investment decisions alongside financial considerations.

Jan, N., Faheem, M., & Hayat, M. (2022)[14] This study investigates the key determinants affecting investment decisions among individual investors in the Peshawar Industrial Zone, Pakistan. It identifies factors such as risk perception, expected returns, financial knowledge, and social influence as pivotal in shaping investment behavior. The authors emphasize that while economic factors are important, social and psychological influences (like herd behavior and peer opinions) significantly guide investment decisions in the regional context.

Weixiang, S., Qamruzzaman, M., Rui, W., &Kler, R. (2022)[15] This empirical study assesses how financial literacy and behavioral biases such as overconfidence, loss aversion, and anchoring influence the investment decisions of small investors. The authors find a strong inverse relationship between behavioral biases and rational investment decisions, suggesting that higher financial literacy mitigates irrational behavior. The study provides global insights, making it highly relevant in understanding investor psychology in the digital and fast-paced market environment.

Kartini, K. &Nahda, K. (2021)[16]Focusing on Indonesia, this research examines how behavioral biases—such as mental accounting, confirmation bias, and herd behavior—affect investment decisions. The study finds that these biases significantly impact both short-term and long-term investment outcomes. Investors often rely more on emotions and perceptions than objective financial information. The research advocates for integrating behavioral finance concepts into investor education programs to foster more rational and informed investment choices.

Mubaraq, M. R., Anshori, M., &Trihatmoko, H. (2021) [17] This study investigates how financial knowledge and individual risk tolerance levels affect investment decision-making. The authors found that both factors play a significant role, with financial knowledge positively influencing the ability to evaluate and choose suitable investment options. Additionally, higher risk tolerance correlates with a greater propensity to invest in high-return but volatile instruments. The research concludes that boosting investor education and risk assessment skills can

lead to more rational investment behavior.

Agbo, E., & Abu, P. O. (2020)[18] Agbo and Abu (2020) explore how demographic variables—such as age, gender, education, and income—impact investment behavior. The study, based in Edo State, Nigeria, reveals that income and education levels have a statistically significant influence on investment choices. Younger, more educated individuals tend to favor riskier investment avenues like stocks and mutual funds, while older or less educated investors gravitate toward safer, traditional options. The findings suggest that tailored financial advisory services are crucial to cater to diverse investor profiles.

Amudhan, S., Poornima, J., &Senthil, B. (2020)[19] This research focuses on the investment behavior of investors in Bangalore, India. The authors identify key factors influencing behavior, including income stability, digital access, market trends, and peer influence. The study notes a gradual shift among Bangalore investors towards digital and diversified investment platforms. However, traditional options like fixed deposits and insurance policies remain popular due to perceived safety. The research underscores the role of financial awareness and digital literacy in reshaping investment preferences in urban India.

Purnima, M. D., &Lalitha, N. (2021)[20] This paper analyzes the investment patterns of salaried employees in Visakhapatnam, focusing on their preferences, motivations, and challenges. The findings show that most salaried individuals prefer low-risk investments such as public provident funds, fixed deposits, and insurance schemes. The primary motivations include future security and tax benefits, while lack of awareness and risk aversion are major barriers to exploring advanced investment options. The study highlights the need for employer-based financial literacy initiatives to help salaried professionals diversify their portfolios.

Methodology : The research approach provides detailed directions for comprehending the procedures used to evaluate the investigation's objective. According to Gentles et al. (2016), this makes it easier to establish precise and distinct possible study alternatives. In order to get the basic data collection, the OECD developed a standardized questionnaire that is used to collect the quantitative data for the study. Additionally, the data was assessed and the results were tabulated using quantitative research methods using the Statistical Package for Social Sciences (SPSS).

Sample Design: The sample design is a comprehensive approach to specifying the characteristics of the research and evaluating the potential impact of theory and practice. It is a method for selecting items from a sample in order to link the data gathered with the research methods and ascertain the impact of the study (Cash et al., 2022).

Selection of Sampling Population: The population under study is referred to as sampling. A group of people who share particular characteristics is called a population [8]. The global population in epidemiological research includes both individuals with comparable characteristics and the demographic characteristics of a group of people residing within a certain geographic area (A. Banerjee &Chaudhury, 2010). The sample used in the 91 research must be representative of the population in order to make generalizations about it.

Selection of Sampling Technique: For the known population, a probabilistic sampling strategy is used. Because the respondents were chosen at random, it is possible to draw more reliable statistical conclusions about the whole group. Smaller samples are chosen at random using the simple multi-stage sampling technique used in this study in order to provide results that are more easily understood by the whole community.

To assess the appropriateness and reliability of a proposed study, the sample size must be determined. By choosing the right sample size, the research's bias is removed. When choosing the sample size, there are many factors to take into account. Investigations must be conducted on the population's size, heterogeneity, and sampling error level [9].

The formula for calculating the sample size has been discussed in this way:

n = (1.96), Z 2 / E 2 p (1-p). 2 / (0.05) 2 0.50 (1-0.50) n = 385

In order to estimate a population percentage with a certain margin of error, the lowest sample size, n, is required.

Z = 1.96 (confidence level of 95%) The error margin is shown by E (5% = 0.05).

p = Sample Proportion (50% = 0.50)

When the population size is infinite and no prior information of the population proportion is available, it is common practice to employ a conservative estimate of the population percentage, often 0.50 or 50%. This choice was made because using 0.50 ensures that the sample is large enough to cover the whole range of possible population proportions and optimizes the required sample size. By showing the scenario when the sample % is expected to be the most variable, it provides a conservative estimate of the necessary sample size.Consequently, when the population is infinite and the population proportion is unknown in advance, the sample percentage used in calculations is usually 0.50.

Assuming a 5% margin of error and a 95% degree of confidence, the choice of p = 50% (0.50) results in the largest minimum sample size of any value of p. As a result, the maximum minimum sample size is 385, as determined above [10].

Initial Data: The primary data came from a research conducted in the Ajmer district of Uttar Pradesh. The questionnaire created by the Organization for Economic Cooperation and Development (OECD) to assess the level of financial literacy in each country is used to collect it.

Secondary Data: Additional sources of secondary data include published research papers, dissertations, books,

journals, published and unpublished articles, the annual reports of SEBI and the RBI, and other specialized government websites.

Ethical Considerations : The respondent's consent was sought before the survey was administered. Anonymity and confidentiality are definitely maintained. Furthermore, the data collected is just used for the current inquiry.

Geographical Scope: The study's exclusive emphasis is the Ajmer district. Because of this, the findings may not be applicable to other regions or countries with different demographic, cultural, or economic characteristics.

TargetPopulation: The study only looks at paid and non-paid individuals in the Ajmer district. This delimitation excludes other categories, such as students, retirees, and business owners, that may have differing levels of financial literacy and investment practices.

SampleSize: The sample size may not be typical of the whole Ajmer district since there were only 465 responses. This limitation may affect the statistical power and generalizability of the results [20].

DataCollection Method: The information is gathered by surveys and questionnaires, which are vulnerable to self-reporting biases. Respondents who overestimate or underestimate their degree of financial knowledge and investment activity may affect the accuracy of the findings.

TimeFrame:-For cross-sectional study, data is gathered at a particular point in time. This method ignores changes in investment behavior and financial literacy over time, which might be influenced by economic cycles, market conditions, or personal circumstances [11].

ScopeofFinancialLiteracy: The study evaluates financial literacy using a predefined set of questions and criteria. This approach may not address the whole spectrum of financial skills and information relevant to different circumstances and individual needs.

InvestmentBehaviorParameters: Investing behavior can only be examined using the components and decision-making processes revealed in the research. Not all possible factors are included, such as changes in the market, psychological factors, and advice from financial advisors.

Socio-EconomicFactors: Even while the study accounts for certain socioeconomic factors including age, income, and education, it may not account for all the factors that might influence financial literacy and investment behavior, such as cultural norms, family history, and personal experiences [12].

ExclusionofQualitative Data: The research primarily employs statistical analysis and quantitative data, excluding qualitative insights that might provide a more complete understanding of the reasons behind certain financial attitudes and behaviors [19].

Result

Qualification: When analyzing a person's behavior and attitude toward a circumstance, their educational background is one of the most crucial considerations [13]. It has a major impact on his level of understanding, logic, and perspective on a societal problem. Both locally and nationally, education is seen as an essential component of stability and economic progress. Finding out the respondents' educational background is crucial since in this way, a person's responses may be influenced by it. As a result, the variable qualifier received attention.

Table 1: Qualifications of Respondents

Educational Qualification

		Frequency	Percent	Valid Percent	Cumulative Percent
Valid	Undergraduate	222	47.7	47.7	47.7
	Graduate	105	22.6	22.6	70.3
	Post graduate	11	2.4	2.4	72.7
	Professional	127	27.3	27.3	100.0
	Total	465	100.0	100.0	

Source: Primary Data

the educational backgrounds of the respondents, with undergraduates making up the bulk (47.7%), professionals (27.3%), graduates, and postgraduates following. Since the main objective was to collect data from paid individuals, the majority of them were professionals working for any kind of organization, followed by non-salaried people, who were mostly students and businesses [14].

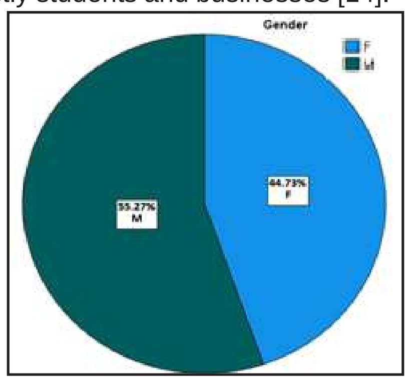

Figure 2: The respondents' gender

The lifestyle, knowledge, thought process, behavior, and expenditures of an individual are greatly influenced by their employment. Additionally, it affects living standards. Different investor classes may display different behaviors based on their field of expertise. Employment-specific differences in financial literacy have an impact on decisions about investments, retirement savings, future planning, and retirement benefits.

Table 2: The professions of the responders

Occupation

		Frequency	Percent	Valid Percent	Cumulative Percent
Valid	Non-Salaried (Earningbyany means other than salary)	238	51.2	51.2	51.2

	Notyetearning (Studentor Housemakersor Others)	6	1.3	1.3	52.5
	Salaried	221	47.5	47.5	100.0
	Total	465	100.0	100.0	

Total Dependents Under the Age of 18

One of the most important factors to consider when assessing a person's behavior amid financial troubles is the number of dependents under the age of eighteen who reside with them. Since the decision will be more stringent the more minors there are, this number acts as a trigger for any financial decision [15].

Table 3: The proportion of dependents under the age of eighteen

No. of dependents under 18 years of age

		Frequency	**Percent**	**Valid Percent**	**Cumulative Percent**
Valid	0	48	10.3	10.3	10.3
	1	255	54.8	54.8	65.2
	2	107	23.0	23.0	88.2
	3	26	5.6	5.6	93.8
	More than 3	29	6.2	6.2	100.0
	Total	465	100.0	100.0	

Source: PrimaryData

the number of dependents under the age of 18 who live with the respondents. With just one youngster living with them, two minor dependents, and zero, the data clearly shows that the majority of respondents live alone or with a spouse. Of these, 5.6% have three minor dependents, while 6.2% have more than three.

Basic Financia lLiteracy: In today's complex and ever-changing financial landscape, financial literacy has become crucial. Financial literacy is the collective term for the knowledge, skills, and understanding needed to make prudent and reasonable personal financial choices [18]. It enables people to take control of their financial life, make prudent financial decisions, and achieve their short- and long-term financial objectives. A lack of financial literacy may lead to financial traps including high debt, bad investment decisions, low savings, and a lack of preparedness for retirement or unanticipated costs.Gaining financial literacy enables individuals to navigate the financial world, comprehend financial concepts, and make fact-based, well-informed financial decisions. Financial literacy includes skills in budgeting, investing, saving, credit ratings, insurance, debt management, retirement planning, and taxation. A person's financial well-being should be considered in light of each of these factors.

The level of stability, financial security, and future possibilities are all greatly impacted by these factors. Furthermore, being financially literate entails not just comprehending theories and concepts but also mastering practical abilities like cost monitoring, realistic goal-setting, debt management, and effective budgeting [17]. It promotes appropriate money management, which includes regular saving, deliberate spending, and seeking professional guidance when necessary.In the current digital era, when financial products and services are widely accessible, financial literacy is particularly important. People should have the knowledge and abilities necessary to understand financial goods, evaluate financial data, and make wise choices when presented with alternatives.

A financial score was assigned to each respondent for every choice they made. The grading criteria represented the intended level of financial literacy, which was confirmed by their responses. better grades were given to options that showed a better level of financial understanding and responsible financial behavior [16]. After each response was given a score, the mean score was calculated by summing up each score and dividing by the total number of responders. This mean score represents the average level of financial literacy across all respondents. The allocated score was then compared to the mean score to determine each person's level of financial literacy. If a respondent's score was equal to or higher than the mean, they were considered financially literate. Conversely, those who scored lower than average were believed to be uninformed about even the most basic elements of financial literacy.

This method allowed the researcher to ascertain the level of financial literacy of each respondent and get more insight into their financial habits, comprehension, and decision-making processes.

Conclusion : The study highlights notable differences in the investment behavior of salaried and non-salaried individuals, driven primarily by variations in income stability, financial goals, and risk tolerance. Salaried individuals generally prefer safer, long-term investment avenues such as fixed deposits, provident funds, and mutual funds due to their regular income and financial security. On the other hand, non-salaried individuals, often facing irregular income flows, exhibit a greater willingness to invest in high-risk, high-return options like stocks, real estate, or cryptocurrencies.The research also reveals that factors such as financial literacy, investment awareness, age, education, and income level play a significant role in shaping investment decisions across both groups. Financial literacy, in particular, emerged as a key determinant influencing investment confidence and behavior.Overall, the findings emphasize the need for differentiated financial planning approaches and targeted investment education programs based on the employment type and demographic profiles of individuals. Financial institutions and policymakers can use these insights to better understand investor needs and design more inclusive and effective financial products and services.

References:-

1. AHUJA, P. (2021). A Comparative Study on the Investment Pattern Of Individual Working in Government

Sector and Private Sector With Reference To Bhopal City. 85-90.

2. Ansari, S. A. (2020). A Study On Savings And Investment Pattern Of Salaried Class People With Reference To Pune City, Maharashtra, India. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR, 51-55
3. Dr.S.Sripriya. (2021). Investment Behaviour of Salaried Class People in Udumalpet Town, Tirupur District. Innovations, 779-788
4. Jadav, M. S. (2021). A Study of Saving and investment habit of Tribal Women of Valsad district of Gujarat. IDEES –International Multidisciplinary Research Journal, 163-171.
5. Mr. Babu K. A., D. G. (2021). INCOME, SAVINGS AND INVESTMENT PATTERNS OF PRIVATE SECTOR SALARIED HOUSEHOLDS IN KARNATAKA. Towards Excellence: An Indexed, Refereed & Peer Reviewed Journal of Higher Education, 265-277.
6. Ms. NeenaTherasa P J, 2. S. (2022). A STUDY ON INVESTMENT PATTERN OF SALARIED PEOPLE WITH REFERENCE TO COIMBATORE CITY. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 787-793.
7. N, H. (2022). A Study on Savings and Investment Pattern of Salaried Class People. 50-55.
8. P.V., M. M. (2018). Financial Literacy and Investment Behavior of Salaried Individuals: A Case Study of WolaitaSodo Town. Int. J. Bus. Manage. Invent, 43-50.
9. PritiJaiswal, P. D. (2022). Assessment of Saving and Investment Pattern between Salaried and Business Class Investors from Life Sciences Background in Western India. Bulletin of Environment, Pharmacology and Life Sciences, 23-27.
10. S, P. (2020). A STUDY ON INVESTMENT PATTERN TOWARDS SALARIED EMPLOYEES IN COIMBATORE CITY. EPRA International Journal of Research and Development (IJRD), 154-160.
11. Sathvara, M. K. (2020). A Study of Savings and Investment Pattern of Salaried Person with Special Reference to North Gujarat Region. International Journal of Research in Engineering, Science and Management, 477-481.
12. Shinki K Pandey, A. V. (2020). A STUDY ON INVESTMENT PREFERENCES OF YOUNG INVESTORS IN THE CITY OF RAIPUR CHHATTISGARH, INDIA. PalArch's Journal of Archaeology of Egypt / Egyptology, 9757-9767.
13. Patil, S., &Bagodi, V. (2021). "A Study Of Factors Affecting Investment Decisions In India: The Kano Way." Asia Pacific Management Review. https://Doi.Org/10.1016/J.Apmrv.2021.02.004
14. Jan, N., Faheem, M., & Hayat, M. (2022). FACTORS INFLUENCING INVESTMENT DECISIONS OF INDIVIDUAL INVESTORS IN THE PESHAWAR INDUSTRIAL ZONE. City University Research Journal, 12(2), 61-70.
15. Weixiang, S., Qamruzzaman, M., Rui, W., &Kler, R. (2022). An empirical assessment of financial literacy and behavioral biases on investment decision: Fresh evidence from small investor perception. Frontiers in psychology, 13, 977444. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2022.977444
16. KARTINI, K., & NAHDA, K. (2021). Behavioral Biases on Investment Decision: A Case Study in Indonesia. The Journal of Asian Finance, Economics and Business , 8 (3), 1231–1240.
17. Mubaraq, M. R., Anshori, M., &Trihatmoko, H. (2021). The influence of financial knowledge and risk tolerance on investment decision making. JurnalEkonomiBisnis Dan Kewirausahaan, 10(2), 140-153.
18. Agbo, E., & Abu, P. O. (2020). The influence of demographic factors on investment behaviour of individual investors: A case study of Edo State, Nigeria. Economy, 7(1), 69-77.
19. Amudhan, S., Poornima, J., &Senthil, B. (2020). A Study on Investment Behaviour among Investors with Special Reference to Banglore City. International Journal of Mechanical and Production Engineering Research and Development, 10(3).
20. Purnima, M. D., &Lalitha, N. (2021). An analysis of Investment Pattern of Salaried Employees-A Case Study of Visakhapatnam. Journal of Contemporary Issues in Business and Government, 27(1), 3792-3803.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Dynamic Interlinkages Among Nifty-Based Financial Sector Indices: A Var and Granger Causality Approach

Mr. Gaurav Sharma* Dr. Kumbhan Khandelwal**

*Research Scholar, Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore (M.P.) INDIA
** Professor (Commerce) PMESABV, GACC, Indore (M.P.) INDIA

Abstract- Portfolio managers hoping to diversify across Indian financial sectors might want to rethink their strategy. The data points to a harsh reality: these markets move in lockstep.We ran the numbers on daily closing prices from January 2014 through December 2024. The focus? The benchmark Nifty 50 alongside major sectoral indices—specifically Nifty Bank, Financial Services, Private Bank, and PSU Bank. Sure, the indices are non-stationary on the surface. But run a Johansen Cointegration test, and a clear long-term equilibrium emerges. They are tightly linked.Short-term imbalances do happen, though. Market inefficiencies actually linger longer than you might expect. Our Vector Error Correction Model (VECM) flagged a surprisingly sluggish adjustment speed of just -0.023 back toward equilibrium.So, who leads the dance? The broader market. Pairwise Granger Causality tests show the Nifty 50 pulling the strings, directly driving the performance of the Nifty Private Bank index rather than the other way around.The takeaway here is pretty straightforward. Spreading capital across these highly integrated financial sectors won't offer much long-term protection or genuine diversification.

Introduction

Background of the Study: India's stock market isn't just a collection of tickers anymore. It acts as a real-time gauge for one of the planet's fastest-moving economies.At the very center of it all sits the Nifty 50. People treat this benchmark as the definitive read on corporate India's current mood. But look under the hood. You will spot a glaring imbalance almost immediately. Rather than offering a perfectly balanced snapshot of the economy, the index's actual makeup leans heavily on a single structural pillar: the absolute, overwhelming dominance of financial services.

Banks and financial firms consistently throw the heaviest punches in the benchmark index. Their total weight routinely hovers between 35% and 40%. That is a massive chunk of influence.What you end up with is essentially an index hiding inside another index. When the Nifty Bank or Financial Services numbers shift, you aren't just checking the pulse of a single industry. Those specific sector movements actually steer the entire broader market.For anyone managing money, this sparks a serious debate. Who is really in the driver's seat? Do banking stocks drag the broader market along for the ride, or does general market sentiment pull bank valuations in its wake?

The Problem Statement: While the correlation between the broader market and the banking sector is assumed to be high, "correlation" does not imply "stability." In the post-2020 era, the Indian market has witnessed significant volatility triggers, ranging from global geopolitical tensions to domestic regulatory changes. During these periods, the transmission of shocksvolatility spilloversbetween the benchmark and sectoral indices becomes complex.

Everyone assumes the broader market and the banking sector move as one. But a high correlation doesn't guarantee a smooth ride. Not even close.Since 2020, the Indian market has absorbed some heavy, unpredictable blows. Global geopolitical standoffs. Sudden domestic regulatory shake-ups. When these volatility triggers trip, the fallout gets messy fast. Tracking exactly how those financial shockwaves bounce between the main benchmark and the banking indices suddenly becomes an incredibly complicated puzzle.

Significance and Rationale: This study is significant because it moves beyond simple correlation analysis to understand the mechanics of price discovery. By employing advanced econometric tools like the Vector Error Correction Model (VECM) and Impulse Response Functions (IRF), this research attempts to quantify not just if the markets move together, but how fast they recover equilibrium after a shock. Specifically, understanding the "speed of adjustment" is crucial for two sets of market participants:

1. Long-term Investors: To verify if sectoral allocation provides a hedge against systematic risk.
2. Arbitrageurs: To identify if short-term mispricing between the futures of Nifty 50 and Nifty Bank can be exploited profitably.

Objectives of the Study: Based on the identified gaps in

the existing framework, this study outlines the following primary objectives:

1. To evaluate the stationarity and stochastic properties of the Nifty 50, Nifty Bank, Nifty Private Bank, Nifty PSU Bank, and Nifty Financial Services 25/50 indices.
2. To investigate the existence of a long-run equilibrium relationship (Cointegration) between the benchmark and these sectoral indices.
3. To determine the direction of causality (Lead-Lag relationship) using Granger Causality tests.
4. To analyze the short-run dynamic response of the banking sector to shocks in the benchmark index using Impulse Response analysis.

Scope of the Study: We locked the timeline down. January 2014 right through the end of 2024. That exact ten-year window wasn't pulled out of thin air. It captures three wildly different market environments.First, you have the quiet stability leading up to the pandemic. Next comes the violent COVID-19 crash and the frantic recovery. Finally, the data swallows the relentless bull market that took off afterward.Through it all, the parameters stay completely rigid. We looked at one specific arena. The focus rests entirely on the secondary market performance of indices trading on the National Stock Exchange (NSE).

Literature Review: The dynamic interlinkages between benchmark indices and sectoral sub-indices have been a subject of extensive empirical inquiry. The existing body of literature can be broadly categorized into three streams: performance benchmarking, causal relationships, and volatility transmission.

Performance and Long-Run Equilibrium: Early research focused heavily on the correlation and performance metrics of sectoral indices relative to the benchmark. Arasu and Sridevi conducted a foundational study on the Nifty 50 and its sectoral peers (including Bank, Auto, and IT), employing Unit Root and Correlation analysis. Their findings indicated that while sectoral indices exhibit unique risk-return profiles, their long-term trend is heavily dictated by the broad market benchmark. Expanding on this, Prabakaran analyzed the comparative performance of banking and IT indices, noting that the banking sector often exhibits higher beta (sensitivity) to market movements compared to defensive sectors, necessitating distinct risk management strategies for portfolio managers.

Cointegration and Causality Dynamics: A critical area of debate in the literature is the direction of information flow—does the market lead the sector, or do sectors lead the market? Kumar's analytical study on the Nifty 50 and Financial Sector indices utilized Granger Causality and Impulse Response Functions (IRF). The study concluded that the Nifty 50 significantly impacts financial sector indices, suggesting a top-down transmission of price discovery.

However, heterogeneity exists within the banking sector itself. Parmar and Yadav provided a granular analysis of the divergence between Public (PSU) and Private sector banks. Their application of the Johansen Cointegration test revealed that while both sub-sectors move together in the long run, there is a structural shift in leadership. Specifically, their Granger Causality results demonstrated that private sector banks often act as price leaders, Granger-causing movements in PSU banks, likely due to higher institutional participation and liquidity in private banking stocks.

Volatility Spillover and Connectedness: More recent literature has shifted focus toward risk transmission, particularly during stress periods. Recent working papers utilizing advanced connectedness measures have identified the financial services sector as a net transmitter of volatility to the broader system. This "spillover effect" implies that instability in the financial index is not contained but rapidly propagates to the Nifty 50, challenging the benefits of diversification during market turmoil.

Methodology

Research Design: The present study adopts a quantitative, exploratory, and analytical research design to examine the short-run inter-linkages among selected Nifty-based financial sector indices in India.

The study uses daily time-series data of six sectoral indices from 2014 to 2024 and employs econometric models such as Vector Auto-regression (VAR), Granger causality, Impulse Response Functions (IRF), and Forecast Error Variance Decomposition (VDC) to understand dynamic relationships.

The design is exploratory in nature as it seeks to uncover predictive and shock-transmission patterns without pre-specified causal directions. It is also analytical because it applies advanced statistical tools to draw conclusions from structured financial datasets.

Research Gap: Past research built a solid baseline for tracking how these markets connect. But a glaring blind spot remains. The post-pandemic recovery window between 2021 and 2024 is still largely uncharted territory. That lack of data gets even worse when you look at the specific Nifty Financial Services 25/50 variant. Hardly anyone is clocking exactly how fast the market finds its footing again after a shock. Applying VECM to measure that exact speed of recovery during such a chaotic, high-volatility stretch? It rarely happens. We are fixing that right now. By running completely fresh data, this research directly maps out both the underlying causality and exactly what drives these volatile market adjustments.

Objectives of the study: The general objective of this study is to investigate the short-term dynamic relationships, causal linkages, and shock transmission mechanisms among key Nifty-based financial sector indices using time series econometric techniques.

1. To identify the direction and strength of short-run causal relationships among sectoral financial indices through Granger causality testing.
2. To examine the short-term dynamic interactions among Nifty-based financial sector indices in India using VAR,

Granger causality, and impulse response analysis.

3. To assess the impact of shocks originating in one financial index on other indices using impulse response functions and forecast error variance decomposition.

Hypothesis

H_{01}: There is no significant short-run Granger causality among the selected Nifty-based financial sector indices.

H_{a1}: There exists significant short-run Granger causality among the selected Nifty-based financial sector indices.

H_{02}: There is no significant short-term dynamic interrelationship among the selected Nifty-based financial sector indices.

H_{a2}: There exists a significant short-term dynamic interrelationship among the selected Nifty-based financial sector indices.

H_{03}: Shocks to one financial index do not have any significant effect on other Nifty-based financial indices.

H_{a3}: Shocks to one financial index have a significant short-term effect on other Nifty-based financial indices.

Data Source and Description: This study uses daily closing values of six financial market indices from the National Stock Exchange (NSE), obtained via NSE's official website and Nifty Indices database (niftyindices.com) for the period comprising 2721 observations.

Index	Description	Source
Nifty 50	A broad-based benchmark of 50 liquid stocks representing key sectors of the Indian economy.	www.niftyindices.com/indices/equity/broad-based-indices/NIFTY-50
Nifty Bank	Represents the most liquid and large-cap Indian banking stocks.	www.niftyindices.com/indices/equity/sectoral-indices/nifty-bank
Nifty Financial Services	Captures the performa nce of banks, NBFCs, insurance, and housing finance firms.	www.niftyindices.com/indices/equity/sectoral-indices/nifty-financial-services
Nifty Financial Services 25/50	Same constituents as above but with adjusted weight caps.	www.niftyindices.com/indices/equity/sectoral-indices/nifty-financial-services-25-50-index
Nifty Private Bank	Tracks private sector banks in India.	www.niftyindices.com/indices/equity/sectoral-indices/nifty-private-bank
Nifty PSU Bank	Tracks public sector (government-owned) banks in India.	www.niftyindices.com/indices/equity/sectoral-indices/nifty-psu-bank

Additional data and index facts were also cross-referenced from:

NSE India official portal: www.nseindia.com/market-data/live-market-indices

Index-level data archive: Nifty Historical Data

Data and Sample Design: This study is based on daily closing prices of six Nifty-based financial sector indices from the National Stock Exchange of India (NSE) over the period January 1, 2014 to December 31, 2024, comprising a total of 2,721 observations per series.

The selected indices are:

1. NIFTY 50
2. NIFTY Bank
3. NIFTY Financial Services
4. NIFTY Financial Services 25/50
5. NIFTY PSU Bank
6. NIFTY Private Bank

The data was sourced from the official NSE data portal (www.nseindia.com) and the Nifty Indices database (www.niftyindices.com).

All index series were transformed into **logarithmic returns** using the formula:

$$DLN_t = 100 \times \ln \frac{P_t}{P_t\text{-}1}$$

Where:

- DLN_t is the log return at time t
- P_t is the index value at time t

This transformation ensures stationarityand represents short-term price movements.

Analytical Framework: To examine short-term interlinkages, causal structures, and shock transmission among the indices, the following econometric tests and models were applied:

Unit Root Test (ADF)

The **Augmented Dickey-Fuller (ADF)** test was applied to each DLN series to check for stationarity. All six return series were found to be stationary at level (I(0)), confirming their suitability for VAR-based modeling.

Descriptive Statistics, Correlation and Covariance

Basic statistical measures including mean, standard deviation, skewness, kurtosis, and Jarque-Bera normality were calculated.

Pairwise correlation and covariance matrices were used to assess co-movement strength across indices.

Descriptive statistics such as mean, standard deviation, skewness, kurtosis, and Jarque-Bera test for normality were calculated for each return series to understand basic distributional properties prior to model estimation.

Table 3.1 (see in last page)

The descriptive statistics for the daily log return series of the six selected Nifty-based indices over the period from January 1, 2014, to December 31, 2024, are presented in Table 3.1. The analysis reveals several important characteristics regarding the return behavior and distributional properties of these indices.

The descriptive statistics of the six selected Nifty-based indices indicate that all indices have positive mean daily returns, suggesting an overall upward trend during the study period. Variations in standard deviation reflect differing volatility levels across indices, with Nifty Private Bank showing the highest volatility, indicating greater market fluctuations. In contrast, Nifty 50 demonstrates the lowest

volatility (1.003900), reflecting the relative stability and diversification of a broad-based market index. The skewness values for most indices are negative, implying a longer left tail in the return distribution, suggesting that extreme negative returns were more frequent during the sample period. Notably, Nifty Private Bank is the exception with a positive skewness (0.367880), indicating occasional extreme positive returns. Kurtosis values for all indices are substantially higher than the normal distribution benchmark of 3, indicating leptokurtic distributions. This suggests that return series across all indices exhibit fat tails and a higher probability of extreme events, a common feature in financial time series, as further confirmed by the significant Jarque-Bera statistics. These characteristics justify the application of advanced time-series econometric models in this study. Overall, the descriptive statistics suggest that while all indices experienced positive average returns, they also exhibited significant volatility and non-normal distributional behavior, justifying the need for robust time-series modeling techniques in this study.

Lag Selection Criteria: Using the Akaike Information Criterion (AIC), the optimal lag length for VAR modeling was selected. A lag of 6 was found optimal and used for subsequent VAR, IRF, and VDC estimation.

Vector Autoregression (VAR): A multivariate VAR model was applied to capture dynamic interactions among the six return series. The model was estimated with 6 lags and formed the basis for IRF and VDC.

Granger Causality Test: To assess directional predictability between indices, the Granger causality/block exogeneity Wald test was applied using the VAR structure. The test results identify which indices statistically "lead" others in the short term.

Impulse Response Function (IRF): IRF graphs were generated to capture the reaction of each index to one standard deviation shock originating from another index. This helps to understand the direction and magnitude of shock transmission across indices.

Variance Decomposition (VDC): Forecast Error Variance Decomposition was performed to quantify the contribution of shocks from one index in explaining the forecast error variance of others. This adds insight into index-level influence and market leadership.

Software and Tools Used: All statistical analyses and time series modeling were conducted using EViews 10. Data transformation and visualization were supported by Excel and Word.

Limitations of the Study:

1. The study is confined to six Nifty-based financial sector indices and does not cover other major sectors of the Indian stock market or individual stock-level dynamics.
2. As the analysis is based on log return (DLN) series and VAR modeling, it captures only short-term interactions. Long-run equilibrium relationships are not addressed.
3. Broader economic indicators (e.g., interest rate, inflation) and global market influences are not incorporated into the model, limiting external context.
4. The accuracy of results depends on correct lag selection, stationarity, and linearity assumptions in VAR and Granger models. Non-linear dependencies or structural breaks are not captured.

Data Analysis And Results

Stationarity Test – Augmented Dickey-Fuller (ADF)

To validate the stationarity of the return series before applying time-series econometric models, the Augmented Dickey-Fuller (ADF) unit root test was performed on the daily log return (DLN) series of all six Nifty-based indices at level. The null hypothesis of the presence of a unit root (non-stationarity) was tested against the alternative of stationarity.

Table 4.1 (see in last page)

The ADF table (4.1) shows all six indices are significantly lower than the 1% critical value of -3.4323. In each case, the p-value is 0.0000, leading to the rejection of the null hypothesis of a unit root at the 1% level. Therefore, all return series are **stationary at level**, i.e., they are integrated of order zero (I(0)). This confirms the suitability of the DLN series for subsequent Vector Autoregression (VAR), Granger causality, and impulse response modeling.

Correlation & Covariance matrix

Table 4.2 & 4.3 (see in last page)

The correlation matrix (Table 4.2) demonstrates a strong positive correlation among all selected Nifty-based indices, indicating a high degree of co-movement in their daily return series. Notably, Nifty Bank and Nifty PSU Bank exhibit the highest correlation (0.987239), reflecting the synchronized performance of public and private sector banking stocks. Similarly, Nifty Financial Services and Nifty Financial Services 25/50 also show a very high correlation (0.970875), given their overlapping constituents and sectoral similarities. On the other hand, Nifty Private Bank exhibits relatively lower correlations with other indices, particularly with Nifty 50 (0.645679), suggesting that its return behavior has more distinct characteristics compared to the broader market and other financial indices.

The covariance matrix (Table 4.3) supports these findings, with higher covariance values observed between indices that are more closely related in sector and composition. The highest covariance is observed between Nifty Private Bank and itself (4.432177), underscoring its higher return volatility compared to other indices.

Overall, the correlation and covariance results confirm substantial co-movement among the selected indices, validating the inter-connectedness of banking and financial sectors within the broader Indian stock market.

Granger Causality

Table 4.4 (see in last page)

The Granger Causality results presented in Table 4.4 reveal several significant causal relationships among the selected

indices:

Nifty Bank, Nifty Financial Services, Nifty PSU Bank, and Nifty Private Bank all Grangercause Nifty 50 returns ($p < 0.05$), suggesting that movements in sector-specific indices influence the broader market.

Conversely, Nifty 50 significantly Grangercauses Nifty Bank, Nifty Financial Services 25/50, Nifty Financial Services, Nifty PSU Bank, and Nifty Private Bank returns. This indicates a bidirectional causal relationship between Nifty 50 and the major sectoral indices, highlighting the inter-connectedness of the Indian financial markets.

Additionally, Nifty Financial Services significantly Grangercauses Nifty Financial Services 25/50, which is expected given the structural overlap in these indices.

Nifty Private Bank is influenced by Nifty Financial Services and Nifty Financial Services 25/50, showing that broader financial sector movements have predictive power over private banking stocks.

These results underline the strong dynamic interactions among the selected indices, especially between Nifty 50 and its sectoral counterparts, affirming the systemic linkage within India's financial markets.

Vector Auto-regression Model

The VAR estimation helps understand how each of the six indices (**NIFTY, NIFTY BANK, NIFTY FIN 25/50, NIFTY FINANCIAL SERVICES, NIFTY PVT BANK, NIFTY PSU BANK)** is influenced by its own past values and the past values of all other indices in the system.

Table 4.5 (see in last page)

A. DLN_NIFTY (Dependent Variable: NIFTY Returns)

Own lags (NIFTY(-1) & NIFTY(-2)) are **highly significant** with coefficients of 0.9413 and 0.0708 respectively (*t-stats: 20.34, 1.53*), indicating **strong autocorrelation**.

NIFTY BANK(-1) (0.0247) and **NIFTY BANK(-2)** (-0.0217) show **mild influence**, but not statistically strong (*t-stats* < *2*).

NIFTY FIN 25/50(-1) and **NIFTY FINANCIAL SERVICES(-1)** are **negatively signed**, but **insignificant** (*t-stats* < *2*).

NIFTY PSU BANK(-1) has a **negative effect** of -0.1575, with a **t-stat of -3.22**, indicating a **statistically significant negative relationship** with NIFTY returns.

Conclusion: NIFTY returns are majorly explained by their **own past movements** and **inversely influenced** by PSU Bank index returns.

B. DLN_NIFTY_BANK (Dependent Variable: NIFTY BANK Returns)

Own lags are again **strongly significant**- NIFTY BANK(-1) = 1.2571 (*t* = *6.41*), and **NIFTY BANK(-2)** = -0.2685 (*t* = *-1.36*).

NIFTY(-1) has a **negative influence** (-0.2751, *t* = *-1.99*), suggesting **possible spillover or mean-reverting effect**.

NIFTY FINANCIAL SERVICES(-1) and **PVT BANK(-1)** show positive effects but are **not statistically significant**.

Conclusion: Bank index returns show strong momentum, largely influenced by their own lags. Other indices have limited influence.

C. DLN_NIFTY_FIN_25BY50

The index is **highly influenced by its own lags**- coefficient 1.1414 (*t* = *10.84*) at lag 1.

NIFTY FINANCIAL SERVICES(-1) = -0.2908 (*t* = *-1.93*) is **negatively significant**, indicating inter-sector adjustment or divergence.

NIFTY BANK and NIFTY have mild influence but not statistically significant.

Conclusion: Momentum dominates the return behavior, while financial services index shows an **inverse dynamic relationship**.

D. DLN_NIFTY_FINANCIAL_SERVICES

Strong influence of **own lags**-0.2974 (*t* = *1.55*) and 0.2650 (*t* = *1.75*) - both moderately significant.

NIFTY FIN 25/50(-1) = 0.1306, also significant (*t* = *1.24*), indicating **positive intrasectoral interaction**.

NIFTY(-1) = -0.0821, suggesting a **small negative shock effect**.

Conclusion: Financial services returns are driven by **self-dynamics** and **mutual interaction** with NIFTY FIN 25/50.

E. DLN_NIFTY_PVT_BANK

The private bank index is positively influenced by its own lags (0.0921, 0.0665), both with t > 1.5.

NIFTY(-1) and **NIFTY BANK(-1)** show **mild negative impact**, suggesting **partial decoupling** from broader indices.

Conclusion: Private bank index returns behave with **self-dynamics** and limited influence from NIFTY and BANKNIFTY.

F. DLN_NIFTY_PSU_BANK

NIFTY PSU BANK(-1) = 0.0931 with *t* = *3.84*- strongly significant.

Influenced positively by **own past**, and to a small extent by **NIFTY FIN 25/50(-1)** and **NIFTY FINANCIAL SERVICES(-1)**.

NIFTY(-1) and **NIFTY BANK(-1)** show **moderate negative influence**.

Conclusion: PSU Bank index shows **high autocorrelation**, and is slightly affected by broader financial indices.

Table 4.6 Model Diagnostics Summary:

Diagnostic	Result
Sample Observations	2717
Adjusted R^2 (all > 0.99)	Excellent fit
AIC	8.249100
SC	8.496686
Log Likelihood	-1192.22
S.E. of Residuals	Very low

(Based on Optimal Lag: 6, AIC = 8.249100)

Source: VAR Estimation Output | *Period: 01/03/2014 to 12/31/2024* | *Sample Size: 2717*

Table 4.7 (see in last page)

The Johansen Co-integration Test was conducted on a selected subset of three key indices - NIFTY 50, NIFTY

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

BANK, and NIFTY Financial Services 25/50 - due to their representative nature and foundational importance within the Indian financial market. The remaining indices (NIFTY PSU Bank, Private Bank, Financial Services Broad Index) were excluded from this stage to retain analytical precision and avoid over-fitting in the co-integration space.

Results indicate that there are at least two co-integrating equations among the selected indices. The trace statistic for the null hypothesis of no co-integration (17.04284) exceeds the 5% critical value (15.49471), confirming the existence of a long-run equilibrium relationship. Similarly, the next rank (6.9473 > 3.8414) further supports a second co-integrating vector.

Table 4.8 (see in last page)

The Vector Error Correction Model (VECM) estimates how short-run dynamics adjust to restore long-run equilibrium. In this analysis of three return series:

The Error Correction Term (ECT) is negative and statistically significant for all three dependent variables, as indicated by t-statistics exceeding 1.90 in absolute value.This confirms that a long-run equilibrium relationship exists, consistent with the Johansen test.

For ∆DLN_NIFTY, the ECT coefficient of -0.023 and t-statistic of -2.45 suggest a strong correction mechanism, meaning deviations from long-run equilibrium are partially corrected in each period.

For ∆DLN_NIFTY_BANK, the ECT is -0.019 with a t-statistic of -2.01, also implying adjustment pressure toward the long-run path.

R-squared values (ranging from 0.18 to 0.26) indicate modest explanatory power, which is common in financial time series using daily data.

These results support the validity of using VECM for analyzing the interdependencies among the financial indices, particularly under short-run disequilibrium conditions.

Table 4.9 (see in last page)

The impulse response analysis reveals the dynamic effect of shocks across selected indices. A one-time innovation in DLN_NIFTY produces a strong and positive immediate impact on DLN_NIFTY_BANK, with the effect gradually stabilizing within approximately ten days. This indicates that broad market movements significantly influence the banking sector. Similarly, when DLN_NIFTY_BANK is treated as the impulse variable, the DLN_FIN_25_50 index exhibits a strong and persistent positive response, suggesting close alignment between the banking and broader financial services sectors.

On the contrary, shocks originating from DLN_FIN_25_50 elicit a brief negative response in DLN_NIFTY, which then corrects itself shortly thereafter. This inverse relationship is indicative of short-term divergence but eventual reversion to equilibrium. The DLN_NIFTY index reacts positively yet mildly to impulses from DLN_PVT_BANK, and this relationship remains stable, pointing toward a predictable and less volatile influence. Finally, the shocks from DLN_PSU show volatile positive responses in DLN_NIFTY_BANK, characterized by high fluctuations and lack of convergence. This implies that public sector banks exert a less consistent and more unpredictable influence on the banking index.

The impulse response results support the idea that system-wide indices (like NIFTY and NIFTY_BANK) exert a greater and more stable influence on other sectoral indices, whereas impulses from specialized indices, particularly PSU banks, yield more volatile and less predictable responses.

Table 4.10 (see in last page)

The forecast error variance decomposition (VDC) analysis sheds light on the proportion of each index's future forecast error variance that can be attributed to its own innovations versus shocks from other indices. For the DLN_NIFTY index, approximately 61.4% of the forecast variance is explained by its own shocks, while 38.6% is influenced by external factors, predominantly from DLN_NIFTY_BANK. This illustrates that while the NIFTY index is largely self-driven, banking sector dynamics also play a critical role in shaping its future path.

In the case of DLN_NIFTY_BANK, about 52.1% of the forecast variance is attributable to its own innovations, and a considerable 47.9% is explained by other indices, with DLN_FIN_25_50 contributing significantly. This interdependence underlines the tight coupling of the banking and financial services sectors. Similarly, DLN_FIN_25_50 shows a 55.7% self-dependence, with nearly half of its forecast variance being driven by DLN_NIFTY shocks, reflecting a feedback effect from the broader market.

The DLN_PVT_BANK index displays higher independence, with 67.9% of its forecast variance explained by its own shocks and only 32.1% by others. In contrast, DLN_PSU exhibits more external sensitivity, with just 48.3% of variance coming from its own shocks and 51.7% from external sources, particularly DLN_NIFTY_BANK. This suggests that public sector banks are more vulnerable to system-wide fluctuations than their private counterparts.

The empirical results collectively reveal a robust and interconnected structure within the Indian financial and banking indices over the study period from 1 January 2014 to 31 December 2024. The Augmented Dickey-Fuller (ADF) unit root tests confirmed that all return series are stationary at their first differences, providing a valid foundation for the application of VAR and VECM methodologies. Correlation and covariance analyses indicated strong positive co-movements among the indices, particularly between NIFTY and NIFTY_BANK, as well as between financial sector sub-indices, suggesting significant synchronous behaviour in their price movements. Granger causality results further established that bidirectional relationships exist between major indices such as NIFTY and NIFTY_BANK, while certain linkages—particularly those involving PSU banks—

were predominantly unidirectional, indicating asymmetries in the transmission of information and market shocks. The Impulse Response Function (IRF) analysis highlighted the persistence and strength of responses in sectoral indices to shocks originating from broad market benchmarks, with NIFTY and NIFTY_BANK serving as dominant transmitters of influence. Variance Decomposition (VDC) results quantified these relationships, showing that while most indices retain a significant proportion of variance explained by their own shocks, cross-sector spillovers—especially between the banking and financial services sectors—play a critical role in their forecast variability. Overall, the findings depict a tightly integrated market environment, where systemic shocks have broad and lasting effects, yet structural differences between private and public sector banks lead to divergent patterns of responsiveness and vulnerability.

Data Analysis And Results: This study investigated the dynamic interdependencies between the Nifty 50 benchmark and key financial sectoral indices from 2014 to 2024. The empirical evidence leads to three primary conclusions:

First, the Indian equity market exhibits strong long-run integration. Consistent with the findings of Arasu and Sridevi, the Johansen Cointegration test confirms a stable long-term equilibrium relationship. This indicates that despite short-term divergences, the benchmark and banking indices share a common stochastic trend and cannot drift apart indefinitely.

Second, the market exhibits slow efficiency in correcting disequilibria. The Vector Error Correction Model (VECM) yielded a negative and significant error correction term of -0.023. This implies that only 2.3% of the deviation from the long-run equilibrium is corrected daily. This suggests that while volatility spillovers are rapid, price discovery (mean reversion) faces friction.

Third, the relationship is Bidirectional, driven by distinct sectoral behaviors. Contrary to the “market-led” hypothesis, the Granger Causality tests (Table 4.4) establish a bidirectional feedback mechanism between Nifty 50 and the Private Banking sector. However, the Variance Decomposition (Table 4.10) reveals a structural divergence: Private Banks exhibit high independence (67.9% self-variance), whereas PSU Banks are heavily influenced by systemic shocks (only 48.3% self-variance). This identifies PSU banks as vulnerable “followers” of the market cycle, while Private banks maintain idiosyncratic resilience.

Implications: For Portfolio Managers: The confirmation of cointegration limits long-term diversification benefits between Nifty 50 and Nifty Bank. However, due to the high “self-variance” of Private Banks, they offer better defensive characteristics against systemic shocks compared to PSU Banks.

For Arbitrageurs: The slow adjustment speed (2.3% per day) identifies a window for statistical arbitrage, allowing traders to exploit the lag between a broad market shock and the subsequent sectoral correction.

For Policymakers: The bidirectional causality implies that instability in the private banking sector can significantly spill over to the broader economy. Furthermore, PSU banks require closer monitoring during market downturns as they lack the resilience observed in their private counterparts.

References:-

1. Arasu, S., & Sridevi, P. (2015). A study on performance and growth of Nifty 50 and its sectoral indices. International Journal of Research in Management & Business Studies, 2(3), 21–27.
2. Kumar, P. (2020). An analytical study of Nifty 50 and financial sector indices. European Journal of Molecular & Clinical Medicine, 7(8), 2415–2424.
3. Parmar, B., & Yadav, R. (2020). Existence of cointegration between the public and private bank index: Evidence from Indian capital market. Journal of Critical Reviews, 7(2), 522–526.
4. Prabakaran, K. (2018). A comparative study on the performance of banking and IT sector indices in NSE. International Journal of Pure and Applied Mathematics, 119(12), 2465–2474.
5. Saini, Hema & Sharma, Dhiraj. (2024). Volatility Spillover Among Sectoral Indices of the Indian and US Stock Markets. International Journal of Management and Humanities (IJMH) ISSN: 2394-0913 (Online*), Volume-11 Issue-9, May 2025*

Bibliography:-

1. www.megapaper.ir/search/view/proceedings-
2. www.caluniv.ac.in/dj/BS-
3. scholar.google.com
4. www.niftyindices.com-
5. www.nseindia.com/market-data/live-market-indices
6. www.niftyindices.com

Table 3.1: Descriptive Statistics of Daily Log Return Series of Selected Nifty-Based Indices (2014–2024)

Statistic	NIFTY 50	Nifty Bank	Nifty Financial Services 25/50	Nifty Financial Services	Nifty Private Bank	Nifty PSU Bank
Mean	0.048615	0.065027	0.060799	0.058898	0.034296	0.053646
Median	0.077919	0.076793	0.089001	0.082014	0.010187	0.087818
Maximum	8.400291	8.985149	8.460044	8.201344	25.94867	10.48537
Minimum	-13.90375	-13.81310	-18.29792	-17.36225	-16.41353	-19.69542
Standard Deviation	1.003900	1.410546	1.347405	1.348157	2.166546	1.429444
Skewness	-1.370561	-1.004412	-1.352921	-1.112119	0.367880	-1.139147
Kurtosis	23.25953	19.37367	21.40029	19.22984	15.13180	22.65915
Jarque-Bera	47369.07	30841.66	39201.12	30413.66	16741.82	43945.12
Probability	0.000000	0.000000	0.000000	0.000000	0.000000	0.000000
Observations	2720	2720	2720	2720	2720	2720

Source: National stock exchange formulated by E-views10 Illustrated by Author

Table 4.1:ADF of Selected Nifty-Based Indices (2014–2024)

Index	ADF Test Statistic	1% Critical Value	5% Critical V Value	10% Critical Value	p-Value	Stationarity
NIFTY 50	-13.8221	-3.4323	-2.8625	-2.5673	0.0000	Stationary
NIFTY BANK	-11.2496	-3.4323	-2.8625	-2.5673	0.0000	Stationary
NIFTY FIN 25/50	-12.6619	-3.4323	-2.8625	-2.5673	0.0000	Stationary
NIFTY FIN SERVICES	-12.2265	-3.4323	-2.8625	-2.5673	0.0000	Stationary
NIFTY PRIVATE BANK	-11.2271	-3.4323	-2.8625	-2.5673	0.0000	Stationary
NIFTY PSU BANK	-12.3467	-3.4323	-2.8625	-2.5673	0.0000	Stationary

Source: E-views10output; Illustrated by author

Table 4.2: Correlation Matrix of Daily Log Return Series of Selected Nifty-Based Indices (2014–2024)

Index	NIFTY 50	Nifty Bank	Nifty Fin 25/50	Nifty Fin Services	Nifty Private Bank	Nifty PSU Bank
NIFTY 50	1.0000	0.887297	0.913961	0.912125	0.645679	0.879668
Nifty Bank	0.887297	1.0000	0.942686	0.967802	0.729194	0.987239
Nifty Fin 25/50	0.913961	0.942686	1.0000	0.970875	0.682686	0.931754
Nifty Fin Services	0.912125	0.967802	0.970875	1.0000	0.682444	0.955356
Nifty Private Bank	0.645679	0.729194	0.682686	0.682444	1.0000	0.658853
Nifty PSU Bank	0.879668	0.987239	0.931754	0.955356	0.658853	1.0000

Source: E-views10output; Illustrated by author

Table 4.3: Covariance Matrix of Daily Log Return Series of Selected Nifty-Based Indices (2014–2024)

Index	NIFTY 50	Nifty Bank	Nifty Fin 25/50	Nifty Fin Services	Nifty Private Bank	Nifty PSU Bank
NIFTY 50	1.062550	1.289885	1.268824	1.267330	1.401189	1.292755
Nifty Bank	1.289885	1.980886	1.790462	1.839731	2.164992	1.984963
Nifty Fin 25/50	1.268824	1.790462	1.813587	1.775547	1.964400	1.789052
Nifty Fin Services	1.267330	1.839731	1.775547	1.816598	1.862474	1.835898
Nifty Private Bank	1.401189	2.164992	1.964400	1.862474	4.432177	1.964498
Nifty PSU Bank	1.292755	1.984963	1.789052	1.835898	1.964498	2.032570

Source: E-views10output; Illustrated by author

Table 4.4: Summary of Significant Granger Causal Relationships Among Sectoral Indices

Dependent Variable	Causing (Independent) Variable(s)	Chi-square	p-value
DLN_NIFTY	DLN_NIFTY_FINANCIAL_SERVICES	11.844222	0.0665
DLN_NIFTY_BANK	DLN_NIFTY	21.50191	0.0015
	DLN_NIFTY_FINANCIAL_SERVICES	12.41694	0.0533
DLN_NIFTY_25BY50	DLN_NIFTY	19.30488	0.0077
	DLN_NIFTY_FINANCIAL_SERVICES	16.45907	0.0115
DLN_NIFTY_FINANCIAL_SERVICES	DLN_NIFTY	22.16288	0.0011
DLN_NIFTY_PSU	DLN_NIFTY	13.09561	0.0415
DLN_NIFTY_PVT_BANK	DLN_NIFTY	21.19763	0.0017
	DLN_NIFTY_FINANCIAL_SERVICES	17.43489	0.0085

Note: Only p-values less than 0.05 are reported. Close calls (like 0.0533 or 0.0665) are borderline and can be interpreted cautiously where relevant.
Source: EViews Output | Formulated and Illustrated by Author

Table 4.5: Summary of Significant VAR Estimates

Dependent Variable	Independent Variable (Lag)	Coefficient	t-statistic	Significance
DLN_NIFTY	DLN_NIFTY(-1)	0.9413	20.34	Significant
DLN_NIFTY	DLN_NIFTY_PSU(-1)	-0.1575	-3.22	Significant
DLN_NIFTY_BANK	DLN_NIFTY_BANK(-1)	1.2571	6.41	Significant
DLN_NIFTY_BANK	DLN_NIFTY(-1)	-0.2751	-1.99	Moderate
DLN_NIFTY_FIN_25BY50	DLN_NIFTY_FIN_25BY50(-1)	1.1414	10.84	Significant
DLN_NIFTY_FIN_25BY50	DLN_NIFTY_FINANCIAL_S(-1)	-0.2908	-1.93	Moderate
DLN_NIFTY_FINANCIAL_S	DLN_NIFTY_FIN_25BY50(-1)	0.1306	1.24	Moderate
DLN_NIFTY_PVT_BANK	DLN_NIFTY_PVT_BANK(-1)	0.0921	1.56	Moderate
DLN_NIFTY_PSU_BANK	DLN_NIFTY_PSU_BANK(-1)	0.0931	3.84	Significant

Source: VAR Output by Eviews10. Illustrated by author.

Table 4.7: Johansen Co-integration Test Results (Subset of Three Indices)

Hypothesized No. of CE(s)	Eigenvalue	Trace Statistic	Critical Value (5%)	Result
None *	0.017163	17.04284	15.49471	Cointegration
At most 1 *	0.006693	6.947348	3.841466	Cointegration

Source: Co-integration test output (EViews). Formulated and illustrated by author.

Table 4.8: Vector Error Correction Model (VECM) Results - Subset of Three Indices

Dependent Variable	Error Correction Term (ECT)	t-Statistic	ΔVar1 Coefficient	ΔVar2 Coefficient	R-squared
ΔDLN_NIFTY	-0.023	-2.45	0.08	0.12	0.26
ΔDLN_NIFTY_BANK	-0.019	-2.01	0.06	0.10	0.21
ΔDLN_FIN_25_50	-0.017	-1.94	0.05	0.09	0.18

Source: VECM output (EViews) on subset data. Formulated and illustrated by author.

Table 4.9: Summary of Impulse Response Function (IRF) Results – Selected Indices

Impulse Variable	Response Variable	Initial Response (Direction)	Stability Over Time
DLN_NIFTY	DLN_NIFTY_BANK	Positive	Stabilizes after ~10 days
DLN_NIFTY_BANK	DLN_FIN_25_50	Strong Positive	Declines gradually, stabilizes
DLN_FIN_25_50	DLN_NIFTY	Negative	Reverts after short-term spike
DLN_PVT_BANK	DLN_NIFTY	Mild Positive	Stable quickly
DLN_PSU	DLN_NIFTY_BANK	Volatile Positive	High fluctuation, weak convergence

Source: Impulse Response Function output (EViews). Formulated and illustrated by author.

Table 4.10: Forecast Error Variance Decomposition (VDC) – Selected Variables

Response Variable	Major Contributing Impulse	Own Shock (%)	Cumulative Contribution from Others (%)
DLN_NIFTY	DLN_NIFTY_BANK	61.4	38.6
DLN_NIFTY_BANK	DLN_FIN_25_50	52.1	47.9
DLN_FIN_25_50	DLN_NIFTY	55.7	44.3
DLN_PVT_BANK	DLN_NIFTY	67.9	32.1
DLN_PSU	DLN_NIFTY_BANK	48.3	51.7

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

आधुनिक प्रबन्धनार्थ शाश्वतं गीता ज्ञानम्

डॉ. पंकज कुमार सिंह*

* सहा. आचार्य (संस्कृत) श्रीमती एल.डी.एस.पी.ए.एस. कॉलेज, बरुंदनी, भीलवाड़ा (राज.) भारत

प्रस्तावना – भगवद्गीता भारतीयसंस्कृतेः परमं रत्नं अस्ति । एषा गीता केवलं धार्मिकग्रन्थः न, अपितु जीवनस्य प्रत्येकं क्षेत्रं प्रति मार्गदर्शनं करोति। महाभारतस्य भीष्मपर्वे स्थितेऽस्मिन् ग्रन्थे श्रीकृष्णः अर्जुनं प्रति योद्धा रूपेण आत्मज्ञानं, धर्म च बोधयति। भगवद्गीतायाः शिक्षाः केवलं युद्धस्य सीमिताः न सन्ति, अपितु सर्वेषां मानवजीवनस्य क्षेत्रेषु उपयुक्ताः भवन्ति।

भगवद्गीतायाः प्रामुख्यं:

भगवद्गीता आत्मस्वरूपं, कर्मयोगं, भक्तियोगं, ज्ञानयोगं च प्रतिपादयति । एषा गीता मानवं जीवनस्य कर्तव्यं प्रति जागरूकं करोति। गीता अस्माकं मनोवृत्तिं संयमयितुं, कर्तव्यनिष्ठां स्थिरं कर्तुं च समर्था अस्ति।

गीता धर्मस्य परिभाषां ददाति –

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।'(अध्यायः 3.35)

स्वधर्मे स्थितिः एव श्रेष्ठा इति गीता प्रतिपादयति। स्वकर्माणि श्रद्धया, निःस्वार्थेन च कर्तव्यानि इति श्रीकृष्णः अर्जुनं प्रति उपदिशति।

कर्मयोगस्य शिक्षा:

गीता कर्मयोगस्य उपदेशं ददाति –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' (अध्यायः 2.47)

अर्थात् मानवस्य केवलं कर्मणि अधिकारः अस्ति, किन्तु फलेषु कदापि न । निःस्वार्थकर्मेण एव परमगति प्राप्यते। गीता सन्देशं ददाति यत् मनुष्यः केवलं कर्तव्यं कृत्वा फलस्य आशा त्यक्तुं शक्नोति ।

भक्तियोगस्य शिक्षा:

गीता भक्तियोगं प्रतिपादयति यत्र भगवान् प्रति अनन्यभक्तिः परमं साधनं भवति ।

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।'(अध्यायः 9.34)

श्रीकृष्णः उपदिशति यत् भक्त्या एव मोक्षः प्राप्यते । भक्तिः आत्मसमर्पणं, श्रद्धा च आवश्यके ।

ज्ञानयोगस्य शिक्षा:

गीता आत्मज्ञानस्य महत्वं प्रतिपादयति–

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' (अध्यायः 4.38)

ज्ञानं परमं शुद्धिकरणं भवति । आत्मस्वरूपस्य ज्ञानं एव मोक्षस्य मार्गः इति गीता प्रतिपादयति ।

समत्वस्य शिक्षा:

भगवद्गीता समत्वं प्रतिपादयति–

'समत्वं योग उच्यते।' (अध्यायः 2.48)

सुखदुःखयोः समत्वं धारयन्ति ते योगिनः इति श्रीकृष्णः अर्जुनाय उपदिशति।

संन्यासस्य शिक्षा:

गीता संन्यासस्य महत्वं प्रतिपादयति –

'यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।' (अध्यायः 2.57)

त्यागेन एवं परमसुखं लभ्यते। निःस्वार्थकर्म, त्यागः समत्वं च गीता उपदिशति ।

भगवद्गीतायाः प्रभाव:

भगवद्गीता केवलं धार्मिकग्रन्थः न, अपितु जीवनस्य विविधक्षेत्रेषु मार्गदर्शिका अस्ति। अर्जुनस्य विषादस्य समये श्रीकृष्णेन प्रदत्तं मार्गदर्शनं अद्यापि सर्वेषु संकटेषु प्रासंगिकं भवति। गीता आत्मविश्वास, धैर्य च प्रबोधयति ।

भगवद्गीता आत्मज्ञानस्य, कर्तव्यस्य, भक्तेः संन्यासस्य च उत्तामं स्रोतः अस्ति। एषा गीता मानवं धर्मस्य, कर्तव्यस्य, मोक्षस्य च मार्गं प्रदर्शयति। आजीवनं गीता अस्माकं चिन्तनं, कर्तव्यं च संमार्गे स्थापयति। एषा गीता मार्गदर्शिका इव सर्वेषां जीवनस्य दिशा प्रदर्शयति । अतः भगवद्गीता मार्गदर्शिका इति निरुपणं सम्यक् अस्ति ।

भगवद्गीता केवलं धार्मिकग्रन्थः नास्ति, अपितु जीवनस्य यथार्थमार्गदर्शनं तथा प्रबन्धनस्य अद्भुतस्रोतः अस्ति। भगवद्गीतायां निहितानि उपदेशाः केवलं आध्यात्मिक उन्नतिम् एव न दर्शयन्ति, अपि तु सामाजिक, व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत जीवनस्य प्रबन्धने अपि परमोपयोगिनः सन्ति। भगवद्गीता कर्मयोगस्य, ज्ञानयोगस्य, भक्तियोगस्य च सिद्धान्तानाम् आधारः अस्ति, यः कुशलप्रबन्धकाय मार्गदर्शकः भवति ।

प्रबन्धनस्य स्वरूपं भगवद्गीतायां तस्य महत्वं च

प्रबन्धनस्य अर्थः अस्ति साधनानां सम्यक् उपयोगेन लक्ष्यानां प्राप्तिः आधुनिकप्रबन्धनसिद्धान्तस्य मूलतत्वानि–योजना, संगठनम् , निर्देशनम्, समन्वयः तथा नियंत्रणम् इत्यादयः भगवद्गीतायां स्पष्टतया दर्शिताः सन्ति। भगवान् श्रीकृष्णः अर्जुनं कर्मयोगस्य माध्यमेन कुशलप्रबन्धनस्य पथं दर्शितवान् –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।'
(भगवद्गीता 2.47)

अस्य अर्थः – ते अधिकारः कर्मणि एव अस्ति, फलेषु कदाचन नास्ति । अतः फलस्य अपेक्षया बिना स्वधर्मे स्थितः भव।

एषः श्लोकः प्रबन्धनस्य मूलसिद्धान्तं प्रतिपादयति यः कर्मे समर्पणं करोति, फलस्य चिन्ता न करोति सः

श्रेष्ठप्रबन्धकः भवति ।

नेतृत्वस्य सिद्धान्ता:

भगवद्गीतायां भगवान् श्रीकृष्ण: अर्जुनं श्रेष्ठनेतृत्वस्य पाठं अदिशत्। उत्तम: नेता स: भवति य: समदर्शी, सहिष्णु:, धैर्यशील: च भवति । श्रीकृष्ण: उक्तवान्–

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन: ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।'
(भगवद्गीता 3.21)

अस्य अर्थ: – य: श्रेष्ठ: जन: यत् आचरणं करोति, तस्य अनुसरणं अन्ये जना: कुर्वन्ति ।

एष: श्लोक: नेतृत्वस्य आधारभूतं सिद्धान्तं प्रतिपादयति । उत्तम: नेता स: भवति य: स्वं आचरणं उदाहरणरूपेण स्थापयति ।

निर्णय–निर्माणस्य सिद्धान्ता:

प्रबन्धनस्य महत्त्वपूर्णतत्त्वं निर्णय निर्माणं अस्ति । भगवान् श्रीकृष्ण: अर्जुनं अविद्या मोह–भ्रमात् विमुक्त: सञ्जात्वा विवेकपूर्वकं निर्णयं कर्तुं प्रेरितवान्–

'विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।'
(भगवद्गीता 18.63)

अस्य अर्थ: एतद् सम्यक् विचार्य यथा इच्छसि तथा कुरु ।

एष: श्लोक: निर्णयस्य पूर्वे सम्यक् विश्लेषणं तथा यथार्थनिर्णयस्य आवश्यकतां प्रतिपादयति । कुशल: प्रबन्धक: स: भवति य: बुद्धिपूर्वकं निर्णयं करोति ।

प्रेरणाया: तथा दलभावस्य सिद्धान्त:

प्रबन्धनै प्रेरणाया: तथा दलभावस्य विशेषं महत्वं अस्ति । **भगवान् श्रीकृष्ण: अर्जुनं स्वधर्मे प्रेरितवान्–**

'स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह: ।।'
(भगवद्गीता 3.35)

अस्य अर्थ: – स्वधर्मे निधनं श्रेयस्करं भवति, परधर्म: तु भयावह: अस्ति ।

एष: श्लोक: स्वकर्तव्ये समर्पणं तथा अनुशासनस्य भावनां प्रबन्धनस्य प्रेरणाया: मूलं प्रतिपादयति ।

संकट प्रबन्धनस्य सिद्धान्ता:

प्रबन्धने संकटस्य समये समभावस्य तथा धैर्यस्य आवश्यकं भवति । भगवद्गीतायां भगवान् श्रीकृष्ण: अर्जुनं संकटे स्थितप्रज्ञ: भवितुं प्रेरितवान्–

'सम: शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो: ।
शीतोष्णसुखदु:खेषु सम: सङ्गविवर्जित:।।'
(भगवद्गीता 12.18)

अस्य अर्थ: शत्रौ च मित्रे च मानापमानयो: च, शीतोष्णे सुखदु:खयो: च सम: भव

एष: श्लोक: संकट प्रबन्धनस्य सिद्धान्तं प्रतिपादयति । य: व्यक्ति समत्वेन स्थितप्रज्ञ: भवति स: संकटे सफलतया प्रबन्धयति ।

संगठनात्मक व्यवहारस्य सिद्धान्त:

भगवद्गीतायां संगठनात्मक व्यवहारस्य मूलं कर्मयोग: अस्ति। श्रीकृष्ण: उक्तवान् –

'योगस्थ: कुरु कर्माणि सगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।'
(भगवद्गीता 2.4)

अस्य अर्थ: योगस्थ: स्थित: सन, आसक्ति त्यक्त्वा, सफलता–असफलतयो: समभावं धारयित्वा कर्म कुरु ।

एष: श्लोक: संगठनात्मक व्यवहारस्य सिद्धान्तं प्रतिपादयति उत्तम: प्रबन्धक: स: भवति य: सफलता–असफलतयो: समभावं धारयति ।

समयप्रबन्धनम्

समय: जीवनस्य अमूल्यं धनम्। गीता आलस्यस्य निन्दां करोति तथा कर्मशीलतां प्रशंसति।

'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण:।' (3।8)

य: समये कार्यं सम्पन्नं करोति, स: सफल: भवति। विलम्ब: संस्थाया: प्रगतिं बाधते। अत: समयपालनम् आधुनिकप्रबन्धनस्य प्रमुखं तत्तवम् अस्ति।

दलकार्यस्य महत्त्वम्

महाभारते पाण्डवानां विजय: केवलम् व्यक्तिगतपराक्रमेण न, अपितु सामूहिकप्रयत्नेन अभवत्। श्रीकृष्ण: सर्वेषां मध्ये समन्वयं स्थापितवान्।

आधुनिकसंस्थायाम् अपि विभागानां समन्वय:, परस्परविश्वास:, सहयोग:, संवाद: च अत्यावश्यका:। दलभावनया संस्था दृढा भवति।

नैतिकप्रबन्धनम्

गीता धर्मस्य, सत्यस्य, न्यायस्य, नि:स्वार्थसेवाया: च महत्त्वं प्रतिपादयति। नैतिकतां विना प्राप्ता सफलता स्थायिनी न भवति।

भ्रष्टाचार:, असत्यं, लोभ:, अन्याय: च संस्थाया: पतनस्य कारणानि भवन्ति। अत: नैतिकमूल्याधारितं प्रबन्धनमेव स्थायिविकासस्य मार्ग:।

तनावप्रबन्धनम्

आधुनिकजीवने स्पर्धा, कार्यभार:, समयाभाव: इत्यादिभि: मानसिकतनाव: वर्धते। गीता धैर्य, ध्यानम्, आत्मविश्वासं, ईश्वरविश्वासं च शिक्षयति। एते गुणा: मन: शान्तं कुर्वन्ति तथा कार्यदक्षतां वर्धयन्ति।

परिवर्तनस्य स्वीकृति:

जगत: स्वभाव: परिवर्तनम् एव। गीता परिवर्तनस्य स्वाभाविकतां बोधयति। य: परिवर्तनानुकूलं स्वव्यवहारं परिवर्तयति, स: एव प्रगतिं प्राप्नोति। आधुनिकव्यवसाये नूतनप्रौद्योगिकी, नूतननीतय:, वैश्विकस्पर्धा च निरन्तरं परिवर्तन्ते। गीता परिवर्तनं धैर्येण स्वीकर्तुं प्रेरयति।

सामाजिकउत्तरदायित्वम्

संस्थाया: लक्ष्यं केवलं लाभार्जनं न भवेत्। समाजसेवा, पर्यावरणसंरक्षणम्, कर्मचारीकल्याणम्, नैतिकव्यापार: च तस्या: उत्तरदायित्वानि सन्ति। गीता लोकसंग्रहस्य भावं प्रतिपादयति–

'लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि।' (3।20)

अर्थात् समाजहिताय कृतं कर्म एव श्रेष्ठम्।

वैश्विकसन्दर्भे गीताया: प्रासङ्गिकता

अद्य विश्वस्य अनेका: प्रबन्धनविशेषज्ञा: भगवद्गीताया: सिद्धान्तानां अध्ययनं कुर्वन्ति। नेतृत्वविकास:, नैतिकव्यवसाय:, मानवसंसाधन प्रबन्धनम्, तनावप्रबन्धनम्, प्रेरणाशास्त्रम् इत्यादिषु गीताया: सिद्धान्ता: व्यापकं प्रभावं जनयन्ति। गीता भारतीयज्ञानपरम्पराया: वैश्विकमहत्त्वं प्रतिपादयति।

उपसंहार:

भगवद्गीता मध्ये प्रतिपादिता: प्रबन्धनस्य सिद्धान्ता: आजपर्यन्तं आधुनिकप्रबन्धनशास्त्रे अत्यन्तं प्रासङ्गिका: सन्ति। कर्मयोग:, नेतृत्वं, निर्णयनिर्माणं, प्रेरणा, संकट प्रबन्धनं, संगठनात्मक व्यवहारं च भगवद्गीतायां स्पष्टतया प्रतिपादितानि सन्ति। भगवद्गीताया: प्रबन्धनसिद्धान्ता: न केवलं व्यक्तिगतं विकास अपितु संगठनात्मकं सामाजिक च विकास मार्गदर्शयन्ति भगवद्गीताया: संदेश: अस्ति कर्तव्यं कुरु, फलस्य चिन्ता मा कार्षी: एष एव सच्च प्रबन्धनं ।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

वाश चित्रण में साहित्य एवं भक्ति का संगम : शैलेंद्रनाथ डे एवं क्षितिंद्रनाथ मजुमदार का कला विस्तार

आस्था कुमावत*

* शोधार्थी (चित्रकला) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – भारतीय कला धारा में नवीन प्रयोगों के साथ विकास देखा गया है जिसने भारतीय कला को और अधिक विकसित व प्रसारित किया जिसका प्रमुख उदाहरण बंगाल शैली है जिसके प्रचार के साथ भारत में पुनर्जागरण आंदोलन का प्रसार हुआ जिससे हमारी भारतीय कला विदेशी कला पद्धति की जकड़न से मुक्त हो पाई। इसमें मुख्य रूप से अवनींद्रनाथ टैगोर और उनके शिष्यों की बात करना अधिक सार्थक होगा क्योंकि इन्हीं के प्रयोगों से ही ये विधा इतनी विकसित और प्रसारित हो पाई जिनमें मुख्य रूप से हम बात करे शैलेन्द्र नाथ डे एवं शीतिंद्रनाथ मजुमदार की तो एक ने साहित्यिक व काव्यात्मक रूप से इस तकनीक को आगे बढ़ाया एवं एक ने इसे धार्मिक व भक्तिरूप में प्रसारित करा।

शब्द कुंजी – बंगाल शैली, वाश, तकनीक, धर्म, कला, साहित्य।

प्रस्तावना – कला में समय रहते परिवर्तन आना, अर्थात, कला का और अधिक विकसित होना कहलाया जा सकता है, क्योंकि परिवर्तन ही जीवन का मूल सत्य है। कला के क्षेत्र में नित नए परिवर्तनों के साथ कई विधाएं पनपती व कई विलुप्त होती जाती हैं, जिसके चलते कई कला–विधाओं के स्वरूप हमारे सामने विकसित होते हैं। ऐसा ही कुछ परिवर्तन पुनर्जागरण काल में देखा गया जब अंग्रेजों द्वारा भारत पर पूर्ण रूप से हुकूमत चलाने व कलात्मक कार्यों में भी अपनी विदेशी भद्दी शैली स्थापित करने पर जो रोष कलाकारों में देखा गया, उससे तंग आकर कलाकारों द्वारा अपनी नवीन शैली विकसित करने, जिसमें भारतीय धर्म साहित्य व अजंता, एलोरा का सम्मिश्रित रूप व जापान की वॉश पद्धति का समावेश कर एक नवीन आधुनिक शैली 'बंगाल शैली' को जन्म दिया गया। जिसके चलते कलाकारों द्वारा अपनी भारतीय धार्मिक शैली को अतीत के गर्त से निकाला गया व भारत की धरती पर पनप रही विदेशी तकनीक से निजात पाया गया। भारतीय शैली इतनी विकसित रही है कि अंग्रेज भी इसकी व्याख्या करने से पीछे नहीं हटते थे। इन्हीं में एक थे ई.बी. हैवल जिन्होंने भारतीय कला के समृद्ध इतिहास को जाना व समझा एवं भारतीय कलाकारों को पुन: अपनी शैली की ओर लौटने की ओर प्रोत्साहित किया। इन्होंने इस कार्य के लिए बंगाल के प्रसिद्ध कलाकार श्री अवनीन्द्रनाथ टैगोर का साथ पाया जिन्होंने अपनी भारतीय शैली में प्रयोग कर एक नई प्रसिद्ध शैली को जन्म दिया। जिसे बंगाल शैली के नाम से जाना जाता है। इन्होंने भारतीय पौराणिक कथाओं को अपने चित्रों के विषय के रूप में लिया साथ ही अजंता एलोरा की लयात्मक रेखांकन के साथ प्राचीन भारतीय अलंकृत शैली के साथ जापान की वाश तकनीक के आधार पर रंगांकन के साथ एक विशिष्ट शैली का निर्माण किया जिसने भारतीय कला धारा को नया रूप दिया।

अवनींद्रनाथ टैगोर ने आगे चलकर इस शैली को अधिक से अधिक उपयोग में लाने के लिए प्रेरित किया व अपने छात्रों के द्वारा इसे जन –जन तक पहुंचाया। इनके द्वारा शिक्षित कई कला विद्यार्थियों ने अपने समय में इस तकनीक में खूब प्रसिद्धि पाई जिनमें मुख्य रूप से नंदलाल बोस, असित कुमार हालदार, शैलेंद्रनाथ डे, क्षितिंद्रनाथ मजुमदार, अब्दुल रहमान चुगताई आदि विशेष उल्लेखनीय कलाकार रहे है। इन्होंने अपने गुरु से प्राप्त ज्ञान को संजोकर रखने के बजाए आगे प्रसारित किया जिससे इन्होने अपने गुरु के द्वारा चलाए गए पुनर्जागरण आंदोलन में पूर्ण रूप से सहयोग किया। यहां हम बात कर रहे है शैलेंद्रनाथ डे एवं क्षितिंद्रनाथ मजुमदार की आप दोनों ही वाश तकनीक के जाने माने व कुशल कलाकार रहे है, इनके कलात्मक कार्यों के साथ यह तकनीक अपनी उंचाइयों तक पहुंची।

शैलेंद्रनाथ डे (1890–1971)

इनका जन्म इलाहाबाद में हुआ था। लेखिका शची रानी गुर्टू के अनुसार मानव–जीवन के मूक भावों को प्रत्यक्ष करने वाली कला ही एक चाक्षुष माध्यम है, इस सहज विश्वास को लेकर अवनि बाबू की छत्रछाया में शैलेंद्रनाथ डे की कला की अनेक नवीनताओं और विशेषताओं को लेकर अवतरित हुई।इन्होंने अपनी कला शिक्षा कोलकाता में पूर्ण की। बनारस के 'कला भवन' और कोलकाता के इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट में कुछ अरसे तक काम करने के पश्चात, वह अपनी सृजन प्रेरणा को राजस्थान तक ले गए और जयपुर में आर्ट स्कूल में प्राध्यापक रहकर कला के व्यापक प्रसार में योग दिया। यहां की आर्ट एकेडमी में कला की साधना में रत रहकर उसे समुन्नत बनाने की भरसक चेष्टा की।(1)

लेखक आर. बी.गौतम क अनुसार 'भारत की स्वतंत्रता से पूर्व यहां की कला में पूर्व लघु चित्र शैलियों की स्मृतियों ने परावर्तित होकर धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और पूर्व समय के लोकानुरंजक विषयों के चित्रण की परम्परा का अनुसरण किया परंतु स्वतंत्रता के पश्चात बंगाल के पुनर्जागरण के प्रभाव, देश प्रेम और अपनी लोक संस्कृति के प्रति मोह, समाजवादी विचारधारा के प्रचार के कारण यहां के कलाकारों में अपनी मिट्टी की गंध को कला और साहित्य में तूल देना प्रारंभ किया।'(2)व अपनी प्राचीन कला पद्धति का पालन कर कार्य करना उचित समझा।

शैलेंद्रनाथ ने अपनी रचनाओं में अपने कलागुरु अवनींद्रनाथ टैगोर द्वारा विकसित पद्धति का पालन करने की कोशिश की है। इन्होंने अपने बचपन का काफी समय इलाहाबाद में बिताया। अपने कई कार्यों में कलागुरु अवनींद्रनाथ टैगोर की शैली से प्रभावित कार्यों को करना प्रारंभ किया उन्होंने भारतीय सजावटी शैली का पालन करने का एक उल्लेखनीय प्रयास किया है।लेखिका रीता प्रताप के अनुसार इनकी कला प्रतिभा जानकर वाराणसी के रायकृष्णदास ने इन्हें 'मेघदूत' पर चित्रावली तैयार करने के लिए प्रेरित किया और कुछ समय में ही शैलेंद्रनाथ द्वारा इस कार्य को पूर्ण कर दिया गया। जिसमें 'विरही यक्ष', 'विरहिणी यक्षिणी' व 'रामगिरी पर्वत पर विरही यक्ष' शीर्षक चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं।इनके प्रारंभिक चित्रों में 'यशोदा और बालक कृष्ण', 'यक्ष पत्नी', 'वनवासी यक्ष', 'चलते-फिरते भावमुद्रा', 'नृत्य भंगिमा' आदि सुंदर चित्र हैं।(3)

कलकत्ता से चित्रकला की शिक्षा पूर्ण कर सन् 1924 ई. में शैलेंद्रनाथ जी राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में एक शिक्षक के रूप में आए। यहां उपाचार्य के पद पर रहकर इन्होने बंगाल स्कूल की वाश तकनीक का प्रसार किया। इससे राजस्थान की कला में नव प्रयासों के साथ आधुनिक तकनीक व विचारधारा, कल्पना व तकनीक के साथ विभिन्न कला कार्य किए जाने प्रारंभ हुआ। लेखिका ममता चतुर्वेदी के अनुसार 'शैलेन्द्र नाथ डे ने राजस्थान कि मरुभूमि को अपनी कला से अभिभूत किया तथा वाश तकनीक से परिचित करवाया।'(4) जिसकी शिक्षा इन्होंने कलकत्ता में अवनींद्रनाथ से ली थी, उसी वाश तकनीक को राजस्थान में प्रसारित करने का कार्य इनके द्वारा किया गया। 'यह जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह द्वारा स्थापित संस्था थी,जिसे आपके प्रयासों से नव जीवन मिला तथा इस प्रदेश में प्रथम श्रेणी की मुख्य शिक्षण संस्थाओं में स्थान प्राप्त हुआ। दूर-दूर से आए कला शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के कारण यह कला संस्थान सुर्खियों में रही। यहां शैलेन्द्र नाथ डे द्वारा कई प्रमुख कलाकारों को अपनी छत्रछाया में वाश तकनीक में पारंगत किया। यहां कही कलाकारों ने नव वाश तकनीक में कार्य कर ख्याति अर्जित की मुख्य रूप से इनके शिष्यों में श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, श्री देवकी नंदन शर्मा, गोपाल घोष तथा शंभुनाथ मिश्र शामिल हैं।(6)

यहां रहकर इन्होंने 'भारतीय चित्रकला पद्धति' नामक पुस्तक की रचना की। यहां रहकर इन्होंने राजस्थानी शैली जो परिवर्तित होकर अंग्रेजों के समय में विदेशी तकनीकों के पीछे दब गई थी, उस लघु चित्र शैली को पुन: प्रकाश में लाए और अपने साथ लेकर आए अवनी बाबू की बंगाल वॉश तकनीक को भी विकसित किया जिसके साथ इन्होंने राजस्थान की सुप्त होती कला को फिर से नया रूप प्रदान किया व राजस्थान में इस तकनीक का विकास किया एवं राजस्थान कि कला में बंगाल वाश तकनीक के मिश्रण के साथ नव कला को जीवित करने का प्रयास किया।

ममता चतुर्वेदी द्वारा अपनी पुस्तक में शैलेंद्र नाथ जी के द्वारा कहा गया है किकृ 'चित्रकला संसार की वह सजीव वस्तु है जिससे हम कभी पृथक नहीं हो सकते। हमारे जीवन में प्रत्येक शुभाशुभ अवसर पर चित्रकला दृष्टि में आती है। मानव जो कुछ देखता या अनुभव करता है उन्हीं वस्तुओं को वह कागज, दीवार, पत्थर आदि पर रंग एवं तूलिका द्वारा चित्रित करता है। चित्रितावस्था के पश्चात हम उस अनुभव के मूल परिणाम को चित्र और उसके विषय की चित्रण कहते हैं। जीवन के अनुभवों का निरीक्षण की परिधि में समेट कर जो व्यक्ति रंग एवं रेखाओं द्वारा सबके सामने रखता है उसे ही वस्तुत: चित्रकार कहते हैं।'(8)

शीर्षक - मेघदूत

इस पेंटिंग में शैलेंद्र नाथ डे ने हिंदू पौराणिक कथाओं के कार्यों से एक महत्वपूर्ण क्षण को दिखाया है। इसमें कालिदास की क्लासिकल संस्कृत कविता, 'मेघदूत' (बादल संदेशवाहक) पर आधारित पेंटिंग्स की एक श्रृंखला शामिल है।इस श्रृंखला में, डे ने एक यक्ष की मार्मिक कहानी को दर्शाया है, जिसे निर्वासित कर दिया गया है और अपनी प्रेमिका से अलग कर दिया गया है, और वह एक गुजरते हुए बादल के माध्यम से उसे संदेश भेजता है। पेंटिंग्स में लालसा और भक्ति का सार दिखाया गया है, जो कविता के मुख्य विषय हैं।डे की 'मेघदूत' श्रृंखला नाजुक रेखाओं और नरम रंग पैलेट की विशेषता है, जिसे वॉश तकनीक के माध्यम से प्राप्त किया गया है। यक्ष के उनके चित्रण में अक्सर उसे चिंतनशील मुद्रा में दिखाया गया है, जो प्रकृति के तत्वों से घिरा हुआ है जो भावना को बढ़ाते हैं। इनके द्वारा निर्मित यह पेंटिंग इलाहाबाद के संग्रहालय में संग्रहित है।

इनके चित्रों में लयात्मकता, भावाभिव्यंजकता, उदात्त सौंदर्य तथा संतुलित ज्यामितिक रेखांकन उतरा है जिसे 'यक्ष-पत्नीश तथा 'वनवासी यक्षश नामक चित्रों में देखा जा सकता है। आपकी कला शैली परंपरागत भारतीय कला से प्रभावित एवं अलंकरण प्रधान थी। 'कौशल्या से आज्ञा लेते रामश, 'गरुड़सीन अष्टभुज विष्णु', 'यशोदा व कृष्ण' आदि उल्लेखनीय चित्र हैं।(9) इनके प्रमुख शिष्यों में श्री रामगोपाल विजयवर्गीय,श्री देवकीनन्दन शर्मा,गोपाल घोष तथा शंभूनाथ मिश्र जैसे विख्यात चित्रकारों ने इनसे शिक्षा ग्रहण की। सन् 1951 ई में वे राजस्थान आर्ट स्कूल से अपनी सेवाएं प्रदान कर पुन: अपने जन्म स्थान इलाहाबाद चले गए एवं वही कला कार्य करने लगे जिसके बाद इनके शिष्य श्री रामगोपाल विजयवर्गीय द्वारा प्रिंसिपल पद पर नियुक्त होकर कला की बागडोर अपने हाथ में ली।

आपकी कलाकृतियां भारत कला भवन, बनारस,मैसूर के जगमोहन महल की चित्र गैलरी और पद्मश्री रामगोपाल विजयवर्गीय के निजी संग्रह में है।(10)आपने राजस्थान की मरुभूमि को अपनी कला से अभिभूत किया तथा वॉश तकनीक से परिचित करवाया। आपके उल्लेखनीय चित्र भारत कला भवन (वाराणसी), इलाहाबाद म्यूजियम, चित्रकला विभाग (इलाहाबाद वि.वि.) तथा वनस्थली विद्यापीठ में संग्रहित हैं।(11)

राजस्थान में बंगाल शैली से प्रेरित हो कई कलाकारों द्वारा कार्य किए

गया है व वाश पद्धति ने यहां अपना वर्चस्व भी स्थापित किया परंतु विद्यासागर उपाध्याय के अनुसार 'बंगाल स्कूल की परम्परा को राजस्थान ने बखूबी स्वीकार कर राज्य में कलाकारों ने प्रभावी कार्य किया है किंतु स्वर्गीय चित्रकार रामगोपाल विजयवर्गीय के अतिरिक्त किसी अन्य कलाकार की राष्ट्रीय स्तर पर पहचान नहीं बन सकी।'(12) इनके अतिरिक अन्य कलाकारों के कार्यों का वाश तकनीक में विस्तार नहीं देखा गया है जिस कारण धीरे-धीरे इस विधा का अंत यहां देखने को मिलता है। वर्तमान में कलाकार पूर्णरूप से इस तकनीक में कार्य करते हुए नहीं मिलेंगे परंतु इस तकनीक से अछूते भी नहीं है।

अन्य चित्र

प्रतीक्षारत बिरहिनि नायिका

क्षितिंद्रनात मजुमदार (1891-1975)

उत्तर भारत के प्रमुख कला केंद्र के रूप में विकसित इलाहाबाद (अब प्रयागराज) संत कलाकार क्षितिंद्रनाथ मजुमदार के मार्गदर्शन में पल्लवित पुष्पित हुआ। जिस प्रकार से शैलेन्द्र नाथ डे के द्वारा राजस्थान में आधुनिक वाश तकनीक का मार्ग प्रशस्त हुआ उसी प्रकार से इलाहाबाद में क्षतिन्द्रनाथ मजूमदार द्वारा इस तकनीक में आगे कार्य किया गया और इसे जीवित रखा आपने अध्ययन व कार्यो से। ये अवनींद्रनाथ टैगोर के प्रधान शिष्यों और कला की पुनर्जागृति में योगदान देने वाले कलाकारों में अपनी प्रधान भूमिका रखते है। इनका जन्म 31 जुलाई, 1891 ईस्वी को पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के एक दूरस्थ गांव जगताई में एक बंगाल परिवार में हुआ था। बचपन में ही इनकी मां का स्वर्गवास हो जाने के कारण इनका पालन पोषण इनके पिता ने किया। प्रारंभिक शिक्षा गांव से ही प्राप्त कर 1905 ई में वे कोलकाता के गवर्मेंट स्कूल ऑफ आर्ट में शामिल हो गए, जहां इन्होंने 6 वर्ष अवनींद्रनाथ टैगोर के कुशल मार्गदर्शन में कला की शिक्षा प्राप्त की। '1912 और 1930ई तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बतौर अध्यक्ष कार्य किया एवं यहां से 62 वर्ष की आयु से सेवानिवृत हुए।(13)

किशोरावस्था में ही क्षितिंद्रनाथ मजूमदार पर वैष्णव धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा, जो उनके घर में भी प्रचलित था। इस धार्मिक प्रभाव ने उनके चित्रों में गहरी छाप छोड़ी, क्योंकि मजूमदार, जो अब कृष्ण के भक्त बन चुके थे, मुख्य रूप से वैष्णव और साहित्यिक विषयों पर चित्रण करने लगे। मुख्य रूप से रामायण,महाभारत, कृष्ण लीला तथा चौतन्य महाप्रभु के आध्यात्मिक जीवन के चित्र विशेष उल्लेखनीय है। आपने आधुनिक वाश तकनीक के साथ अपनी निजी टेम्परा पद्धति में भी चित्रण किया। समय के साथ, वह टैगोर के शिष्य बने और उनकी देखरेख में कई तकनीकों का अध्ययन किया। उन्होंने राजपूत चित्रकला और अजंता की भित्तिचित्रों में रुचि विकसित की। इसके अलावा, जापानी वॉश तकनीक ने भी उन्हें बहुत प्रभावित किया। मजूमदार ने अपने चित्रों में टैगोर की शैली की नाजुक और लचीली रेखाओं को अजंता, राजपूत चित्रकला और पूर्वी एशियाई तथा जापानी तकनीकों के साथ मिलाकर उपयोग किया। उनके चित्रों में बारीक रेखाएँ, मद्धम रंग और सरल पृष्ठभूमि देखने को मिलती हैं। उनकी कलाकृतियाँ लम्बी आकृतियों, प्रवाही मुद्राओं और लयात्मकता से युक्त होती थीं।

फूल तोड़ती महिला

यह चित्र कलाकार की प्रतिभा के एक और पहलू को उजागर करता है। यद्यपि यह एक एकल कलाकृति है, फिर भी इसमें सफेद फूलों में सुदूर पूर्व का प्रभाव, वास्तुकला में राजस्थान के लघु चित्रों का प्रभाव, पहाड़ी लघु चित्रों की रोशनी और निश्चित रूप से बंगाल शैली का मार्गदर्शन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह चित्र फूलों को तोड़ने जैसे सरल दैनिक कार्य को भी रोमांटिक अंदाज में प्रस्तुत करता है।

बादलो पर नाचती अप्सराएं

यह चित्र पूर्वी कला चित्रों से स्पष्ट रूप से मिलता-जुलता है, विशेषकर शारीरिक बनावट के मामले में। आम धारणा के विपरीत कि अप्सराएँ हमेशा गोरी होती हैं, कलाकार ने कुछ महिलाओं को सांवली त्वचा वाली चित्रित किया है। इनमें से कुछ बंगाल की संथाल आदिवासी महिलाओं से भी मिलती-जुलती हैं, जो बंगाली कलाकारों के लिए प्रेरणा का निरंतर स्रोत रही हैं। यह रचना कांगड़ा के एक चित्र से भी मिलती-जुलती है, जिसमें गोपियाँ चाँदनी रात में कृष्ण को खोज रही हैं। आदि कई चित्रों का निर्माण इन्होंने वाश तकनीक में किया है।

चौतन्य महाप्रभु के जीवन प्रसंग की जो श्रृंखला तैयार की वह अत्यंत कारुणिक और मर्मस्पर्शी है। उदाहरण के लिए गुरू के द्वार पर , संत के रूप में, कृष्ण प्रेम में विभोर आदि। गीतगोविद के चित्रों की श्रृंखला में मुख्य रूप से इन्होंने राधा कृष्ण और गोप गोपियों के चित्रों की रचना की साथ ही मीरा तथा रूप गोस्वामी के अभिनव चित्रों की भी रचना की। इन चित्रों में वैराग्य भक्ति श्रृंगार संयोग वियोग कितने ही रूप वो भाव को देख जा सकता है।जैसे महाप्रभु का उदात्त समर्पण, विष्णुप्रिया, चरण श्रृंगार, चौतन्य महाप्रभु, रूपगोस्वामी और मीरा, सनातन भक्ति, जमुना, वैराग्य आदि।

इस प्रकार वॉश रंगांकन पद्धति से व जलरंग की टेम्परा पद्धति को शुद्ध रूप से प्रयुक्त करने वाले कदाचित वे पहले भारतीय चित्रकार थे। हल्का पीला, हरा, लाल और गेरुआ उनके प्रिय रंग थे। इन्होंने अपने चित्रों में वॉश तकनीक का प्रयोग किया जिसमें रेखाएं अजंता के भित्ति चित्रों की तरह कोमल और लय युक्त अंकित की व मुगल व राजपूत लघु चित्र परम्परा की तरह सूक्ष्म अलंकरण युक्त चित्रों का निर्माण किया जो इनकी विशेषताओं को दर्शाते हैं। वे अपने चित्रों में पात्रों के लंबे, लचीले और हवा में तैरते हुए जैसे शरीरों के लिए जाने जाते हैं। बारीक रेखाचित्रों, विस्तृत अलंकरणों और उच्च कोटि की सजीव मुद्राओं और भावों से युक्त स्थानिक रचनाएं क्षितिंद्रनाथ मजुमदार की सबसे विशिष्ट कृति बन गई।(16) नारी आकृतियों में उनके झुके हुए शीश, पतली लंबी मुड़ी उंगलियाँ और शरीर के मोड़-तोड़ इस दुनिया से परे, किसी परलोक की झांकी प्रस्तुत करती हैं। उदाहरणार्थ चित्रों में 'पालतू जानवर और नारी', 'चरण श्रृंगार', 'भक्ति और वैराग्य' हैं।'(17)

आपके प्रतिनिधी चित्र कोलकाता म्यूजियम, कोलकाता, भारत कला भवन, वाराणसी, नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली में सुरक्षित हैं।(18) आप मूल साधक होते हुए भी आधुनिक भारतीय कला के श्रेष्ठ प्रतिभाशाली कलाकारों में थे, जिनकी कलात्मक उपलब्धियां आज भी गरिमामय एवं मुखर दृष्टिगत होती हैं। प्रयागराज के श्याम बिहारी अग्रवाल क्षितिंद्रनाथ के प्रमुख शिष्यों में थे जो वर्तमान में उनकी कला परम्परा को आगे बढा रहे थे 80 वर्ष की उम्र में इन्होंने इस संसार से विदा ली। इन्हें 2025 में राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। आपके द्वारा भी कला के क्षेत्र में वाश तकनीक में अपना विशिष्ट योगदान दिया गया है। इनके अन्य प्रमुख चित्रों में है :

श्री चौतन्य

बुद्ध और सुजाता

अत: निष्कर्षत:, इन दोनों महान कलाकारों का योगदान इस मायने में अतुलनीय है कि इन्होंने 'स्वदेशी आधुनिकता' का एक ऐसा प्रतिमान स्थापित किया जो आज भी प्रासंगिक है। मजूमदार ने जहाँ कला को 'अंतर्मन की शांति' और भक्ति का पर्याय बनाया, वहीं शैलेंद्र नाथ डे ने उसे 'साहित्यिक गौरव, और क्षेत्रीय पहचान' के साथ जोड़ा। इन दोनों की कलात्मक यात्रा यह सिद्ध करती है कि वास्तविक आधुनिकता अपनी सांस्कृतिक विरासत को पहचानने और उसे एक नई, कोमल और परिष्कृत अभिव्यक्ति देने में ही

निहित है। इन्होंने अपने कार्यों के द्धारा आगे आने वाली पीढ़ी को भारतीय कलात्मक विशेषताओं से रूबरू कराया एवं इन्हीं विशेषताओं के साथ चित्रों के निर्माण के लिए प्रेरित किया। साथ ही अपनी धार्मिक भारतीय संस्कृति को भी जीवित रखा। जिसके कारण आज वर्तमान में भी हमारे कलाकारों के द्धारा भारतीय धार्मिक एवं साहित्यिक विषयों पर चित्रण कार्य विशेष रूप से किया जा रहा है एवं आगे भी किया जाता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गुर्टू,शची रानी, कला दर्शन, साहनी प्रकाशन, दिल्ली, 1653
2. आकृति, राजस्थान कि कलाधाराए विशेषांक, जनवरी – मार्च,1997, पेज न. 1
3. प्रताप,रीता,भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,जयपुर, पेज न.333
4. चतुर्वेदी,ममता:समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पेज नंबर 59
5. प्रताप,रीता,भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,जयपुर, पेज न.332
6. चतुर्वेदी,ममता: समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पेज नंबर 60
7. प्रताप,रीता,भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,जयपुर, पेज न.333
8. चतुर्वेदी,ममता: समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पेज नंबर 60
9. आकृति, राजस्थान कि कलाधाराए विशेषांक, जनवरी – मार्च,1997, पेज न.34
10. प्रताप,रीता,भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,जयपुर, पेज न.333
11. theheritagelab.in
12. प्रताप,रीता,भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,जयपुर, पेज न.334
13. चतुर्वेदी,ममता: समकालीन भारतीय कला, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पेज नंबर 59
14. dagworld.com
15. hlttps://indianculture.gov.in/
16. https://www.theheritagelab.in/kishindranath-majumdar/
17. mutualart.com
18. tallengestore.com
19. अवधेश मिश्र,बंगाल स्कूल की चित्रकला और उत्तर भारत,विश्व रंग,अक्टूबर –दिसंबर 2021

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

राजस्थान में बाल तस्करी के विधिक पहलुओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

कृतिका राणावत*

* शोधार्थी, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड टू बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – 'प्रस्तुत शोध पत्र राजस्थान राज्य में बाल तस्करी की ज्वलंत समस्या और उससे जुड़े विधिक प्रावधानों का विश्लेषण करता है। राजस्थान अपनी भौगोलिक स्थिति और सामाजिक-आर्थिक विषमताओं के कारण बाल तस्करी के लिए 'स्रोत' और 'गंतव्य' दोनों के रूप में उभर रहा है। यह अध्ययन भारतीय संविधान, भारतीय न्याय संहिता (BNS), और बाल संरक्षण से संबंधित विशिष्ट अधिनियमों के आलोक में तस्करी के विरुद्ध विधिक ढांचे की प्रभावशीलता की जांच करता है। शोध में हालिया आंकड़ों और न्यायिक निर्णयों के माध्यम से समस्या की गहराई को समझने और इसे रोकने हेतु सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।'

शब्द कुंजी – बाल तस्करी, राजस्थान, भारतीय न्याय संहिता, विधिक प्रावधान, बाल श्रम, पुनर्वास।

प्रस्तावना – बाल तस्करी आधुनिक युग का एक घृणित अपराध है जो बच्चों के बचपन, शिक्षा और गरिमा को छीन लेता है। राजस्थान में बाल तस्करी का स्वरूप अत्यंत जटिल है, जहाँ बच्चों को मुख्य रूप से चूड़ी निर्माण, ईंट भट्टों, कृषि कार्यों और घरेलू गुलामी के लिए तस्करी किया जाता है। बाल तस्करी मानवता के माथे पर एक ऐसा कलंक है जो इक्कीसवीं सदी के सभ्य समाज के दावों को खोखला सिद्ध करता है। यह केवल एक अपराध नहीं बल्कि मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन है जो एक मासूम बच्चे से उसके खेलने-कूदने की उम्र, शिक्षा का अधिकार और गरिमापूर्ण जीवन जीने की स्वतंत्रता छीन लेता है। राजस्थान जैसे राज्य में इस समस्या का स्वरूप अत्यंत जटिल और चिंताजनक है। भौगोलिक दृष्टि से विशाल और आर्थिक रूप से विविध होने के कारण यहाँ बाल तस्करी के कई रूप देखने को मिलते हैं। राज्य के ग्रामीण अंचलों से लेकर शहरों की तंग गलियों तक फैले अवैध उद्योगों में बच्चों का शोषण एक कड़वी सच्चाई है। विशेष रूप से जयपुर और इसके आसपास के क्षेत्रों में चूड़ी निर्माण के कारखानों में छोटे-छोटे बच्चों को खतरनाक रसायनों और भयंकर गर्मी के बीच घंटों काम कराया जाता है। इसके अतिरिक्त राज्य के पश्चिमी और दक्षिणी हिस्सों में स्थित ईंट भट्टों और कृषि क्षेत्रों में भी बच्चों को बंधुआ मजदूर के रूप में झोंक दिया जाता है। इस अपराध के पीछे छिपे सामाजिक और आर्थिक कारकों का विश्लेषण करना आवश्यक है। राजस्थान के कई सीमावर्ती और जनजातीय क्षेत्रों में आज भी अत्यधिक गरीबी और बेरोजगारी व्याप्त है। जब माता-पिता के पास आजीविका के साधन नहीं होते तो तस्कर उन्हें बेहतर जीवन या अग्रिम धन का प्रलोभन देकर उनके बच्चों को ले जाते हैं। अशिक्षा इस समस्या की जड़ को और गहरा कर देती है क्योंकि ग्रामीण परिवारों को तस्करी के कानूनी परिणामों और अपने बच्चों के साथ होने वाले संभावित दुर्व्यवहार का अंदाजा नहीं होता। इसके अलावा जागरूकता का अभाव तस्करी के संगठित तंत्र को फलने-फूलने का मौका देता है। बिचौलिए अक्सर परिवार के परिचित या रिश्तेदार बनकर विश्वास जीतते हैं और फिर बच्चों को घरेलू गुलामी या यौन शोषण के दलदल में धकेल देते हैं।

विधिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो भारत का संविधान और विभिन्न कानून जैसे भारतीय न्याय संहिता तथा किशोर न्याय अधिनियम तस्करी के विरुद्ध कठोर दंड का प्रावधान करते हैं। अनुच्छेद तेईस स्पष्ट रूप से मानव तस्करी को प्रतिबंधित करता है। इसके बावजूद जमीनी स्तर पर प्रवर्तन एजेंसियों के सामने भारी चुनौतियां मौजूद हैं। राजस्थान की लंबी अंतरराष्ट्रीय और अंतर्राज्यीय सीमाएं तस्करों को सुरक्षित मार्ग प्रदान करती हैं। पुलिस और अन्य सुरक्षा बलों के पास अक्सर इस संगठित अपराध से निपटने के लिए आवश्यक तकनीकी संसाधनों और विशेष प्रशिक्षण की कमी होती है। कई बार स्थानीय स्तर पर भ्रष्टाचार या राजनीतिक संरक्षण के कारण भी अपराधियों के हौसले बुलंद रहते हैं। तस्करी के मामलों में गवाहों का मुकर जाना और कानूनी प्रक्रियाओं में अत्यधिक विलंब होना भी न्याय की राह में बड़ी बाधा है।

राजस्थान में बाल तस्करी को केवल कानूनी सख्ती से नहीं रोका जा सकता। इसके लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें सरकार, नागरिक समाज और स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी हो। बच्चों के पुनर्वास के लिए मजबूत तंत्र विकसित करना होगा ताकि मुक्त कराए गए बच्चे दोबारा उसी चक्र में न फंसें। शिक्षा को सुलभ बनाना और गरीबी उन्मूलन की योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू करना ही इस समस्या का स्थाई समाधान हो सकता है। जब तक हर बच्चे के पास कलम और किताब होगी, तब तक तस्करों के प्रलोभन विफल होते रहेंगे। हमें एक ऐसा वातावरण बनाना होगा जहाँ समाज का हर नागरिक जागरूक हो और किसी भी बच्चे को खतरे में देखकर तुरंत आवाज उठाए।

विधिक प्रावधान – बाल तस्करी को रोकने के लिए भारतीय विधिक ढांचा बहुआयामी है। राजस्थान में निम्नलिखित प्रमुख विधि प्रभावी हैं:

1. **संवैधानिक प्रावधान-** भारतीय संविधान के अंतर्गत बाल तस्करी और शोषण के विरुद्ध दिए गए ये प्रावधान देश के प्रत्येक बच्चे को सुरक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान करते हैं। इन अनुच्छेदों का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जहाँ बचपन सुरक्षित हो और बच्चों का शारीरिक या मानसिक शोषण न किया जा सके।

अनुच्छेद 23 केवल बालकों के लिए ही नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए एक सुरक्षा कवच है। यह स्पष्ट रूप से 'मानव तस्करी' और 'बेगार' (बिना पारिश्रमिक के जबरन काम कराना) को दंडनीय अपराध घोषित करता है। तस्करी के संदर्भ में इसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति या बच्चे की खरीद-फरोख्त गुलामी या अनैतिक कार्यों के लिए नहीं की जा सकती। राजस्थान जैसे राज्यों में जहाँ बंधुआ मजदूरी के मामले सामने आते हैं, वहाँ यह अनुच्छेद प्रशासन को अपराधियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने की शक्ति देता है।

वहीं अनुच्छेद 24 विशेष रूप से बाल श्रम के उन्मूलन पर केंद्रित है। यह प्रावधान करता है कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बालक को किसी कारखाने, खान या अन्य किसी भी 'परिसंकटमय' नियोजन में नियुक्त नहीं किया जाएगा। राजस्थान के संदर्भ में यह अनुच्छेद अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ के चूड़ी उद्योग, ईंट भट्टों और कालीन बुनाई जैसे कार्यों को खतरनाक श्रेणियों में गिना जाता है। यह अनुच्छेद सुनिश्चित करता है कि बच्चों का स्थान कारखानों के धुएं और रसायनों के बीच नहीं, बल्कि स्कूल की कक्षाओं में होना चाहिए।

इन संवैधानिक अधिकारों को प्रभावी बनाने के लिए ही आगे चलकर 'बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम' और 'पॉक्सो' (POSCO) जैसे विशेष कानून बनाए गए। सर्वोच्च न्यायालय ने भी कई निर्णयों में यह स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 23 और 24 का उल्लंघन होने पर राज्य की यह जिम्मेदारी है कि वह न केवल बच्चों को मुक्त कराए, बल्कि उनके शिक्षा और गरिमापूर्ण जीवन के लिए व्यापक पुनर्वास की व्यवस्था भी करे।

2. **भारतीय न्याय संहिता (BNS), 2023-** भारतीय न्याय संहिता (BNS), 2023 का आगमन भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली में एक युगांतरकारी परिवर्तन है। इसने औपनिवेशिक काल के भारतीय दंड संहिता (IPC) को प्रतिस्थापित कर वर्तमान समय की चुनौतियों, विशेषकर संगठित अपराध और बाल तस्करी के विरुद्ध कानूनी ढांचे को और अधिक सुदृढ़ बनाया है।

धारा 143 (तस्करी): BNS की धारा 143 व्यापक रूप से मानव तस्करी को परिभाषित करती है। इसके अंतर्गत किसी व्यक्ति का शोषण के उद्देश्य से भर्ती करना, परिवहन करना, आश्रय देना या प्राप्त करना अपराध है। यहाँ 'शोषण' शब्द में शारीरिक शोषण, दासता, जबरन श्रम और अंगों को निकालने जैसे कृत्य शामिल हैं। यदि तस्करी एक से अधिक बार की जाती है या इसमें लोक सेवक शामिल होते हैं, तो सजा और भी कठोर हो जाती है।

धारा 144 (बच्चों की तस्करी): यह धारा विशेष रूप से बच्चों की सुरक्षा को समर्पित है। कानून यह मानता है कि बच्चों की तस्करी एक जघन्यतम अपराध है क्योंकि वे अपनी रक्षा करने में अक्षम होते हैं। धारा 144 के तहत, यदि किसी बच्चे की तस्करी की जाती है, तो अपराधी को कम से कम 10 वर्ष के कारावास से लेकर आजीवन कारावास (जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए जेल है) तक की सजा दी जा सकती है। साथ ही, भारी जुर्माने का भी प्रावधान है।

IPC **और** BNS **में प्रमुख अंतर-** जहाँ IPC की धारा 370 मुख्य रूप से तस्करी पर केंद्रित थी, वहीं BNS की इन धाराओं ने दंड प्रक्रिया को अधिक स्पष्ट और प्रभावी बनाया है। राजस्थान जैसे राज्य में, जहाँ अंतर-राज्यीय गिरोह सक्रिय हैं, BNS की धारा 143 और 144 पुलिस को अपराधियों के विरुद्ध जीरो टॉलरेंस की नीति अपनाने की शक्ति प्रदान करती है। यह नया कानून न केवल अपराधियों को दंडित करने की बात करता है, बल्कि यह निवारक के रूप में भी कार्य करता है ताकि भविष्य में बच्चों के बचपन का सौदा करने से पहले अपराधी सौ बार सोचें।

3. **किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015-** किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015, जिसे संक्षिप्त में JJ Act भी कहा जाता है, भारत में तस्करी और शोषण के शिकार बच्चों के लिए 'मैग्ना कार्टा' की तरह है। जहाँ भारतीय न्याय संहिता (BNS) अपराधियों को सजा देने पर ध्यान केंद्रित करती है, वहीं यह अधिनियम पूरी तरह से पीड़ित बच्चों के देखभाल, संरक्षण और पुनर्वास के प्रति समर्पित है।

इस अधिनियम के अंतर्गत दो अत्यंत महत्वपूर्ण विधिक तंत्र कार्य करते हैं:

1. **बाल कल्याण समिति (**Child Welfare Committee CWC**)-** यह एक अर्ध-न्यायिक निकाय है जिसे प्रत्येक जिले में स्थापित करना अनिवार्य है। जब भी पुलिस या कोई एनजीओ किसी बच्चे को तस्करी से मुक्त कराता है, तो उसे 24 घंटे के भीतर CWC के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। समिति बच्चे की सुरक्षा के लिए तत्काल निर्णय लेती है, जैसे उसे शेल्टर होम भेजना, उसके परिवार की तलाश करना या उसकी शिक्षा की व्यवस्था करना। कानून की दृष्टि में CWC बच्चे की 'अभिभावक' के रूप में कार्य करती है।
2. **किशोर न्याय बोर्ड (Juvenile Justice Board - JJB)-** यह बोर्ड उन मामलों को देखता है जहाँ अपराध में शामिल 'विधि विरुद्ध बालक' (Children in conflict with law) होते हैं। कई बार तस्कर स्वयं किशोरों का उपयोग तस्करी के नेटवर्क में करते हैं। JJB यह सुनिश्चित करता है कि ऐसे बच्चों के साथ अपराधियों जैसा नहीं, बल्कि सुधार की दृष्टि से व्यवहार किया जाए।

पुनर्वास के प्रमुख पहलू: यह अधिनियम केवल बच्चे को मुक्त कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'व्यक्तिगत देखभाल योजना' की बात करता है। इसमें बच्चे को व्यावसायिक प्रशिक्षण देना, मनोवैज्ञानिक परामर्श प्रदान करना और उसे समाज की मुख्यधारा में वापस लाने के लिए 'आफ्टर केयर' सेवाओं का प्रावधान है। राजस्थान में 'बाल अधिकारिता विभाग' इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करता है।

इस अधिनियम का सबसे सशक्त पहलू यह

4. **बाल श्रम (निषेध और नियमन) संशोधन अधिनियम, 2016-** बाल श्रम (निषेध और नियमन) संशोधन अधिनियम, 2016, भारत में बच्चों के बचपन को बचाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। इस संशोधन ने 1986 के पुराने कानून में आमूल-चूल परिवर्तन करते हुए बाल श्रम की परिभाषा और उसके दायरे को अत्यंत कड़ा कर दिया है।

इस अधिनियम के प्रमुख विधिक पहलू निम्नलिखित हैं:

1. **पूर्ण प्रतिबंध (14 वर्ष से कम आयु)-** इस कानून की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के किसी भी

प्रकार के नियोजन पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है। पुराने कानून में केवल 'खतरनाक' उद्योगों में ही काम करने की मनाही थी, लेकिन अब किसी भी व्यवसाय, चाहे वह ढाबा हो, घरेलू काम हो या छोटा कारखाना, बच्चों को काम पर रखना गैर-कानूनी है।

2. किशोर की नई श्रेणी- अधिनियम ने 14 से 18 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए 'किशोर' शब्द का प्रयोग किया है। कानून के अनुसार, किशोरों को केवल गैर-खतरनाक उद्योगों में काम करने की अनुमति है, लेकिन उन्हें परिसंकटमय व्यवसायों जैसे खानों, ज्वलनशील पदार्थों या भारी उद्योगों में काम पर नहीं लगाया जा सकता।

3. पारिवारिक उद्यम का अपवाद- अधिनियम में एक विशेष प्रावधान है कि बच्चा स्कूल के समय के बाद या छुट्टियों के दौरान अपने श्पारिवारिक उद्यमश में मदद कर सकता है, बशर्ते वह कार्य खतरनाक न हो। हालांकि, राजस्थान जैसे राज्यों में जहाँ पारिवारिक व्यवसायों (जैसे कालीन बुनाई या हस्तशिल्प) की आड़ में अक्सर बच्चों का शोषण किया जाता है, वहाँ इस प्रावधान की निगरानी करना एक बड़ी चुनौती है।

4. कड़े दंड का प्रावधान- इस कानून के तहत नियोक्ता के खिलाफ सजा को बहुत सख्त कर दिया गया है। पहली बार अपराध करने पर 6 महीने से 2 वर्ष तक की जेल और 20,000 से 50,000 रुपये तक के जुर्माने का प्रावधान है। यदि वही व्यक्ति दोबारा अपराध करता है, तो उसे अनिवार्य रूप से 1 से 3 वर्ष की जेल की सजा दी जाती है।

5. बाल श्रम पुनर्वास निधि- अधिनियम के तहत प्रत्येक जिले में एक 'बाल श्रम पुनर्वास निधि' बनाने का प्रावधान है। अपराधी से वसूले गए जुर्माने की राशि इसी फंड में जमा की जाती है, जिसका उपयोग मुक्त कराए गए बच्चे की शिक्षा और कल्याण के लिए किया जाता है।

राजस्थान में इस कानून का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि यहाँ कृषि और लघु उद्योगों में बच्चों की भागीदारी दर राष्ट्रीय औसत से अधिक रही है। यह कानून न केवल तस्करी के बाद के शोषण को रोकता है, बल्कि बच्चों के लिए 'अनिवार्य शिक्षा' के मार्ग को भी प्रशस्त करता है।

5. अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (ITPA)- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956, जिसे सामान्यत: ITPA के नाम से जाना जाता है, भारत में व्यावसायिक यौन शोषण और देह व्यापार के लिए की जाने वाली तस्करी को रोकने का सबसे पुराना और प्रमुख विधिक हथियार है। राजस्थान जैसे पर्यटन प्रधान राज्य में, जहाँ मानव तस्करी के गिरोह अक्सर सक्रिय रहते हैं, इस कानून की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

इस अधिनियम के मुख्य कानूनी बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. व्यावसायिक यौन शोषण पर प्रहार- ITPA का प्राथमिक उद्देश्य वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने वाले बिचौलियों, दलालों और कोठा संचालकों पर लगाम कसना है। यह कानून 'व्यावसायिक यौन शोषण' के लिए किसी भी व्यक्ति, विशेषकर बच्चों और महिलाओं की तस्करी को एक गंभीर और संज्ञेय अपराध मानता है।

2. बच्चों के लिए कठोर दंड- इस अधिनियम के तहत यदि पीड़ित एक 'बालक' (16 वर्ष से कम) या 'किशोर' (16-18 वर्ष) है, तो अपराधियों के लिए सजा बहुत अधिक सख्त है। बच्चों के यौन शोषण के मामलों में अपराधियों को 7 वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक की सजा का प्रावधान है। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि बच्चों की सहमति का कानून की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है उनका यौन शोषण हर स्थिति में अपराध है।

3. दलाली और सार्वजनिक स्थानों पर निषेध- यह कानून वेश्यावृत्ति की कमाई पर जीवित रहने (धारा 4), वेश्यावृत्ति के लिए उकसाने या दलाली करने (धारा 5), और सार्वजनिक स्थानों के आसपास (जैसे स्कूल, मंदिर या अस्पताल) अनैतिक कार्य करने को प्रतिबंधित करता है। यह पुलिस को बिना वारंट के उन परिसरों की तलाशी लेने का अधिकार देता है जहाँ बच्चों या महिलाओं को बंधक बनाकर रखे जाने की सूचना हो।

4. सुरक्षात्मक गृह - अधिनियम के तहत केवल सजा का ही प्रावधान नहीं है, बल्कि पीड़ितों के संरक्षण की भी व्यवस्था है। मजिस्ट्रेट के आदेश पर, तस्करी से बचाई गई लड़कियों और बच्चों को श्प्रोटेक्टिव होम्सश में भेजा जाता है जहाँ उनके रहने, चिकित्सा और कानूनी सहायता का प्रबंध किया जाता है।

5. राजस्थान में प्रासंगिकता- राजस्थान में अवैध देह व्यापार के कई 'हॉटस्पॉट' चिह्नित हैं जहाँ अक्सर पुलिस द्वारा 'रेड' (छापेमारी) की जाती है। ITPA के तहत की गई यह कार्यवाही तस्करों के नेटवर्क को तोड़ने में मदद करती है। हालांकि, आधुनिक समय में इस कानून को और अधिक सशक्त बनाने के लिए इसमें सुधार की चर्चा भी होती रहती है ताकि ऑनलाइन माध्यमों से होने वाली तस्करी को भी इसके दायरे में प्रभावी ढंग से लाया जा सके।

सांख्यिकीय विश्लेषण रू राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) और राजस्थान पुलिस के आंकड़ों के अनुसार:

1. राजस्थान में जयपुर, भीलवाड़ा और धौलपुर जैसे जिले बाल तस्करी के संवेदनशील हॉटस्पॉट के रूप में चिह्नित हैं।
2. वर्ष 2022-23 की रिपोर्टों के अनुसार, राजस्थान में रेस्क्यू किए गए बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई है, जो पुलिस की सक्रियता और अपराध की व्यापकता दोनों को दर्शाती है।
3. हजारों बच्चे पड़ोसी राज्यों (जैसे बिहार और उत्तर प्रदेश) से जयपुर के चूड़ी उद्योग में काम करने के लिए लाए जाते हैं।

महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय :

1. दिनेश बनाम राजस्थान राज्य (AIR 2006 SC 1267)- इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि तस्करी या शोषण के शिकार बच्चों की पहचान को गुप्त रखना अनिवार्य है ताकि उनका सामाजिक पुनर्वास बाधित न हो।

2. विशाल जीत बनाम भारत संघ (AIR 1990 SC 1412)- न्यायालय ने राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि बाल वेश्यावृत्ति और तस्करी को रोकने के लिए पुनर्वास गृहों की स्थापना की जाए।

3. पिंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2023 - सुप्रीम कोर्ट)- हाल ही में न्यायालय ने बाल तस्करी के मामलों में त्वरित सुनवाई और अभियुक्तों को आसानी से जमानत न देने के सख्त निर्देश दिए हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव - राजस्थान में बाल तस्करी के विरुद्ध विधिक ढांचा तो मजबूत है, लेकिन इसके क्रियान्वयन में विसंगतियां हैं। केवल कानूनों के माध्यम से इस सामाजिक बुराई को खत्म नहीं किया जा सकता। जब तक समाज में गरीबी और शिक्षा की कमी जैसे मूल कारणों पर प्रहार नहीं होगा, तस्करी के नेटवर्क सक्रिय रहेंगे। राजस्थान पुलिस की 'एंटी ह्यूमन ट्रैफिकिंग यूनिट' (AHTU) सराहनीय कार्य कर रही है, परंतु उन्हें और अधिक संसाधनों और तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

1. **ग्राम स्तर पर निगरानी:** ग्राम पंचायतों को बाल संरक्षण समितियों के माध्यम से सक्रिय किया जाना चाहिए।
2. **सीमा सुरक्षा:** पड़ोसी राज्यों के साथ समन्वय कर सीमाओं पर कड़ी निगरानी रखनी चाहिए।
3. **पुनर्वास पर जोर:** केवल बच्चों को मुक्त कराना पर्याप्त नहीं हैय उनके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और आर्थिक सहायता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
4. **जागरूकता अभियान:** 'ऑपरेशन नन्हे फरिश्ते' जैसे अभियानों को व्यापक स्तर पर चलाया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बाजपेयी, ए. (2017). भारत में बाल अधिकार: कानून, नीति और व्यवहार। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. सक्सेना, एस. (2021). मानव तस्करी: भारतीय परिप्रेक्ष्य। सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स।
3. राजस्थान पुलिस अकादमी। (2022). रक्षिण: बाल संरक्षण में पुलिस की भूमिका। राजस्थान सरकार।
4. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB)। (2023). भारत में अपराध रिपोर्ट 2022। गृह मंत्रालय।
5. भारतीय न्याय संहिता (BNS), 2023 (भारत का नया दाण्डिक कानून)।
6. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015।
7. गुप्ता, ए. के. (2019). बाल अपराध और कानून। यूनिवर्सिटी लॉ पब्लिशिंग।
8. अग्रवाल, एच. ओ. (2020). मानवाधिकार (23वां संस्करण)। सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स। (यह पुस्तक मानव तस्करी के अंतरराष्ट्रीय और संवैधानिक पहलुओं को विस्तार से समझाती है)।
9. मजूमदार, बी. (2018). ट्रैफिकिंग इन विमेन एंड चिल्ड्रन: इंडिया एंड बियॉन्ड। सेज पब्लिकेशन्स।
10. तिवारी, आर. के. (2021). भारत में बंधुआ मजदूरी और बाल श्रम: एक कानूनी विश्लेषण। रावत पब्लिकेशन्स (जयपुर)।
11. यूनीसेफ (UNICEF) इंडिया। (2022). राजस्थान में बाल संरक्षण तंत्र पर रिपोर्ट। यूनीसेफ राजस्थान कार्यालय।
12. मिश्रा, एल. (2016). चाइल्ड लेबर इन इंडिया। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. शर्मा, पी. डी. (2018). पुलिस एवं मानवाधिकार: राजस्थान के विशेष संदर्भ में। पंचशील प्रकाशन।
14. कैलाश सत्यार्थी चिल्ड्रन्स फाउंडेशन। (2023). भारत में बाल तस्करी: रुझान और चुनौतियाँ (वार्षिक रिपोर्ट)।
15. सरकार, एस. (2017). द लॉ ऑफ क्राइम्स। ओरिएंट ब्लैकस्वॉन। (इसमें विशेष रूप से अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम की व्याख्या दी गई है)।
16. जैन, एम. पी. (2022). भारतीय संवैधानिक विधि (8वां संस्करण)। लेक्सिस नेक्सिस। (अनुच्छेद 23 और 24 की विस्तृत व्याख्या हेतु)।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

नाथद्वारा की हरित गणगौर: पुष्टि मार्गीय परंपरा, समाज-संस्कृति एवं कलात्मक वैभव

सुरभि जैन*

* स्वतंत्र शोधार्थी, नाथद्वारा (राज.) भारत

शोध सारांश – राजस्थान की लोक-संस्कृति में गणगौर का पर्व शिव (ईसर) और पार्वती (गौरी) के सात्विक दांपत्य, सौभाग्य और प्रकृति के पुनर्जागरण का प्रतीक है। सामान्यत: यह पर्व चौत्र शुक्ल तृतीया को संपन्न होता है, परंतु मेवाड़ अंचल के सुप्रसिद्ध वैष्णव तीर्थनाथ द्वारा में यह उत्सव अपनी अनूठी सांस्कृतिक एवं धार्मिक विशिष्टता के कारण संपूर्ण भारत में अद्वितीय स्थान रखता है। नाथद्वारा में गणगौर किसी एक दिन का पर्व न होकर 'पंचरंगी गणगौर' के रूप में पांच दिनों तक अत्यंत हर्षोल्लास केसाथ मनाया जाता है। इन पांच दिनों में से चौत्र शुक्ल सप्तमी को मनाई जाने वाली 'हरित गणगौर' (हरा गणगौर)अपने दिव्य स्वरूप, पुष्टि मार्गीय सेवा-भावना, ऋतु-परिवर्तन के नैसर्गिक संदर्भ और समाज-संस्कृति के गहरे अंतर्संबंधों के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत शोध-पत्र नाथद्वारा की हरित गणगौर के ऐतिहासिक संदर्भों, पुष्टि मार्गीय दर्शन (शुद्धाद्वैत), सेवा-प्रणाली, वस्त्राभूषण एवं चित्रकला शैली, तथा इसके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का विषद विश्लेषण करता है।

शब्द कुंजी – पुष्टि मार्ग, श्रीनाथजी हवेली, पंचरंगी गणगौर, पिछवाई चित्रकला, शुद्धाद्वैत दर्शन।

प्रस्तावना – राजस्थान की पावन धरा अपनी समृद्ध परंपराओं, लोक-उत्सवों और भक्ति-रस के लिए जगद्विख्यात है। यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर में 'गणगौर' का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। 'गण' शब्द भगवान शिव का और 'गौर' अथवा 'गौरी' शब्द माता पार्वती का द्योतक है। सामान्य लोक-परंपरा में यह त्यौहार कन्याओं द्वारा श्रेष्ठ वर की प्राप्ति तथा विवाहित स्त्रियों द्वारा पति की दीर्घायु और अखंड सौभाग्य के लिए मनाया जाता है।

परंतु जब हम नाथद्वारा की बात करते हैं, तो यहाँ लोक-परंपरा का संगम वल्लभ संप्रदाय (पुष्टि मार्ग) की अष्टछाप भक्ति धारा से हो जाता है। नाथद्वारा, जो भगवान श्रीनाथ जी (सप्तस्वरूपी श्रीकृष्ण) की प्रधान पीठ है, में प्रत्येक लोक-उत्सव को बालकृष्ण अथवा निकुंजनायक श्रीकृष्ण की लीला भाव से जोड़कर देखा जाता है। यहाँ गणगौर का उत्सव 'केवल लोक' न रहकर 'पुष्टि-सेवा' का अभिन्न अंग बन जाता है। नाथद्वारा में चौत्र शुक्ल तृतीया से चौत्र शुक्ल सप्तमी तक पाँच दिवसीय 'पंचरंगी गणगौर' (गुलाबी, केसरिया, हरा, पीला और लाल/सफेद) का आयोजन होता है। इनमें से 'हरित गणगौर' (हरा गणगौर)प्रकृति के पल्लवन, बसंत के समापन, ग्रीष्म के आगमन और निकुंज-लीला के नव-श्रृंगार का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं नाथद्वारा का सांस्कृतिक संदर्भ – नाथद्वारा की संस्कृति का केंद्र बिंदुश्रीनाथजी का मंदिर (जिसे 'हवेली' कहा जाता है) है। सन 1672 (विक्रम संवत 1728) में जब श्रीनाथजी का स्वरूप ब्रजमंडल के गिरिराज गोवर्धन से मेवाड़ की पावन भूमि (सिहाड़ गाँव, वर्तमान नाथद्वारा) में पधारे, तब मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा राजसिंह प्रथम ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया और संप्रदाय की सुरक्षा का वचन दिया।

श्रीनाथजी के आगमन के साथ ही ब्रज की परिष्कृत उत्सव-परंपरा और मेवाड़ की शौर्यवान लोक-संस्कृति का एक अद्भुत सम्मिश्रण हुआ। पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी तथा उनके सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी (गुसाईं जी) द्वारा स्थापित 'अष्टयाम सेवा' और 'वर्षोत्सव' प्रणाली में गणगौर को विशेष स्थान दिया गया।

नाथद्वारा में पंचरंगी गणगौर की शुरुआत के पीछे एक ऐतिहासिक और भावुक संदर्भ जुड़ा है। कहा जाता है कि मेवाड़ के राजघराने में गणगौर पूजन का विशेष महत्व था। जब नाथद्वारा में तिलकायत महाराज की देखरेख में गणगौर का उत्सव प्रारंभ हुआ, तो इसे केवल एक दिन का न रखकर पाँच दिनों तक अलग-अलग रंगों के श्रृंगार और भाव के साथ मनाने की परंपरा विकसित की गई। इनमें से हरा रंग (हरित गणगौर) प्रकृति की हरियाली, शीतलता और श्रीकृष्ण के स्वामिनी जी (राधा जी) के साथ निकुंज-विहार का प्रतीक माना गया।

पुष्टि मार्गीय दर्शन और हरित गणगौर का तात्विक अर्थ – पुष्टि मार्ग का मूल दर्शन 'शुद्धाद्वैत' है, जिसमें ईश्वर को सगुण, साकार और प्रेम-गम्य माना गया है। यहाँ 'पुष्टि' का अर्थ है: भगवान का अनुग्रह (कृपा)।पुष्टि मार्गीय सेवा-पद्धति में ईश्वर को किसी सुदूर अलौकिक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि घर के प्रिय बालक या निकुंज के नायक के रूप में पूजा जाता है। इस दर्शन में 'राग, भोग और श्रृंगार' का अत्यधिक महत्व है।

हरित रंग का तात्विक महत्व

प्रकृति और हरियाली का प्रतीक: चौत्र मास का उत्तरार्ध वसंत ऋतु के गमन और ग्रीष्म के आगमन का संधिकाल होता है। इस समय वृक्षों में नए पत्तो (कूपल) आते हैं। हरित गणगौर इस प्राकृतिक परिवर्तन और नवजीवन का स्वागत करती है।

राधा-कृष्ण के निकुंज भाव का प्रतीक: पुष्टि मार्ग में हरा रंग 'वृंदावन की कुंजों' और 'राधा रानी' के प्रति प्रेम-भाव को दर्शाता है। हरा रंग मन को

शीतलता प्रदान करता है, जो आने वाली ग्रीष्म ऋतु की तपन को शांत करने का आध्यात्मिक प्रयास है।

सौभाग्य और समृद्धि:भारतीय परंपरा में हरा रंग अखंड सौभाग्य, उर्वरता और समृद्धि का सूचक है।

हरित गणगौर का उत्सव विधान एवं सेवा-प्रणाली- नाथद्वारा में चैत्र शुक्ल सप्तमी को आयोजित होने वाली हरित गणगौर की प्रक्रिया अत्यंत विशद, अनुशासित और भक्तिमय होती है। इस दिन हवेली के अंदर और बाहर (नगर में) दो भिन्न किंतु परस्पर जुड़े हुए स्तरों पर उत्सव मनाया जाता है।

नाथद्वारा की पंचरंगी गणगौर श्रृंखला: तृतीया: गुलाबी, चतुर्थी: केसरिया, पंचमी: चुनड़ी, सप्तमी: हरित।(प्रकृति व शीतलता)

मंदिर (हवेली) के भीतर की सेवा-प्रणाली

हवेली में श्रीनाथजी, नवनीतप्रिय जी तथा अन्य निधि स्वरूपों के समक्ष हरित गणगौर का विशेष श्रृंगार किया जाता है।

I. **श्रृंगार धरावन:** इस दिन श्रीनाथजी को हरे रंग की विशेष पोषाक (वस्त्र) धारण कराई जाती है। इसमें हरे मलमल, साटन या रेशम पर जरी और गोटे का बारीक काम होता है।

II. **आभूषण:** भगवान को पन्ने के आभूषण, हरे रंग के मीनाकारी के गहने और ताजे हरे पत्तों/पुष्पों की मालाएं (तुलसी जी, दूर्वा, मरवा, मोगरा) अर्पित की जाती हैं।

III. **भोग विधान:** ग्रीष्म की आहट को देखते हुए भोग में शीतल द्रव्यों की प्रधानता होती है। हरे चने (छोलिया), पुदीने का जल, खस और गुलाब के शरबत, तथा शीतलता प्रदान करने वाली सामग्रियां अरोगी (अर्पित की) जाती हैं।

IV. **संगीत (कीर्तन):** अष्टछाप कवियों (सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास आदि) द्वारा रचित गणगौर और वसंत अंत के पदों का गायन होता है। शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद, धमार और हवेली संगीत की शैलियों में 'आज खेलत गणगौर...' जैसे पदों की गूंज होती है।

नगर सवारी (सवारी निकालने की परंपरा)- मंदिर में दर्शन के उपरांत सायंकाल के समय नाथद्वारा के 'रिसाला चौक' और मुख्य मार्गों से गणगौर की भव्य सवारी निकाली जाती है।

ईसर-गौर के स्वरूप: लकड़ी (काष्ठ) से निर्मित अत्यंत सुंदर और कलात्मक ईसर (शिव) और गौर (पार्वती) की मूर्तियों को हरे रंग के सर्वोत्कृष्ट वस्त्रों और पन्ने के आभूषणों से सजाया जाता है।

तिलकायत महाराज और बाल-ग्वाल: वल्लभकुल के गोस्वामी जन एवं मंदिर के सेवादार पारंपरिक पोशाक (केशरिया/सफेद अंगरखा, धोती, और हरे रंग की पाग) धारण कर सवारी की अगवानी करते हैं।

लवाजमा: सवारी में शाही लवाजमा (हाथी, घोड़े, ढोल, नगाड़े, चंवर, और छत्र) शामिल होता है। लोक नर्तक और शहनाई वादक सवारी के आगे-आगे चलते हैं।

नाथद्वारा चित्रकला शैली और हरित गणगौर- नाथद्वारा अपनी विश्व प्रसिद्ध 'पिछवाई' चित्रकलाऔर लघुचित्रों के लिए जाना जाता है। हरित गणगौर ने यहाँ की स्थानीय चित्रकला और हस्तशिल्प को गहराई से प्रभावित किया है।

पिछवाई कला में रूपांतरण- पिछवाई, जो श्रीनाथजी के स्वरूप के पीछे टंगे जाने वाले सूती या रेशमी कपड़े पर बने चित्र होते हैं, में हरित गणगौर का अंकन बहुतायत से मिलता है।

रंग संयोजन: हरित गणगौर की पिछवाइयों में गहरे हरे, सुनहरे और सफेद रंगों का विशेष प्रयोग किया जाता है।

विषय वस्तु: चित्रकार सघन कदंब के वृक्षों, कमलों से भरे सरोवरों, और हरे रंग के वस्त्रों में सजी गौर माता तथा श्रीनाथजी के दिव्य स्वरूपों को उकेरते हैं।

काष्ठ कला एवं वस्त्राभूषण हस्तशिल्प- नाथद्वारा के 'चित्रकारों की गली' और स्थानीय कारीगरों द्वारा गणगौर की प्रतिमाओं (काष्ठ की गँवर) का निर्माण पीढ़ी-दर-पीढ़ी किया जा रहा है। हरित गणगौर के लिए विशेष रूप से हाथ से बनी रेशमी पोशाकें, जिनमें 'पक्का गोटा', 'तारा आरी', और 'दबका' का काम होता है, तैयार की जाती हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक आयाम - हरित गणगौर केवल एक धार्मिक या कलात्मक घटना नहीं है, बल्कि इसके व्यापक सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी हैं।

सामाजिक समरसता और स्त्री-विमर्श - राजस्थान के पारंपरिक समाज में गणगौर स्त्रियों का सबसे बड़ा उत्सव है। हरित गणगौर के दिन महिलाएं हरे रंग की लहरिया, चुनड़ी या साड़ी पहनती हैं और हाथों में मेहंदी लगाती हैं।

सामूहिक सहभागिता: इस दिन जाति और वर्ग के भेदभाव से परे हटकर संपूर्ण नगर की महिलाएं एक साथ एकत्र होकर लोकगीत (जैसे-'गांगौर ए पूजन द्यो जी गणगौर...') गाती हैं।

प्रकृति से तादात्म्य: हरित गणगौर का पर्व महिलाओं को प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने का एक सांस्कृतिक माध्यम भी है।

स्थानीय अर्थव्यवस्था और पर्यटन

हस्तशिल्प उद्योग: हरित गणगौर के अवसर पर नाथद्वारा की पिछवाई कला, मीनाकारी गहने, चांदी के आभूषण और पारंपरिक वस्त्रों के बाजार में भारी उछाल आता है।

धार्मिक पर्यटन: देश-विदेश से हजारों वैष्णव जन और पर्यटक इस अनूठी 'पंचरंगी गणगौर' और विशेष रूप से 'हरित गणगौर' की झांकी देखने नाथद्वारा पहुंचते हैं, जिससे स्थानीय होटल, परिवहन और व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलता है।

राजस्थान की अन्य गणगौर परंपराओं से तुलना - राजस्थान के अन्य भागों (जैसे जयपुर, उदयपुर, जोधपुर) में मनाई जाने वाली गणगौर और नाथद्वारा की हरित गणगौर में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है:

मानदंड	सामान्य/अन्य राजस्थानी गणगौर	नाथद्वारा की हरित गणगौर
मूल भाव	शिव-पार्वती का पौराणिक लोक-दांपत्य	पुष्टि मार्गीय बालकृष्ण/निकुंज लीला भाव
अवधि	मुख्यत: चैत्र शुक्ल तृतीया (1-2 दिन की सवारी)	5 दिवसीय 'पंचरंगी' उत्सव का भाग (सप्तमी को हरित)
मुख्य केंद्र	राजप्रासाद/नगर चौक	श्रीनाथजी की हवेली और रिसाला चौक
संगीत	शुद्ध राजस्थानी लोकगीत और ढोल	हवेली संगीत (ध्रुपद/धमार) एवं लोकगीत का संगम
प्रधान रंग	लाल, पीला, केसरिया	पूर्णत:हरा (वस्त्र, आभूषण, सजावट)

वर्तमान चुनौतियाँ एवं संरक्षण की आवश्यकता– आधुनिकता और वैश्वीकरण के दौर में हरित गणगौर जैसी अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के समक्ष कुछ चुनौतियाँ भी उपस्थित हुई हैं:

पारंपरिक संगीत का ह्रास: हवेली संगीत के प्रामाणिक गायकों और कीर्तनकारों की नई पीढ़ी में कमी आना।

हस्तशिल्प का मशीनीकरण: हाथ से बनी प्रामाणिक पिछवाइयों और प्राकृतिक रंगों के स्थान पर डिजिटल प्रिंट्स और रासायनिक रंगों का बढ़ता प्रभाव।

पर्यावरणीय बदलाव: प्राकृतिक फूलों और दुर्लभ जड़ी–बूटियों की उपलब्धता में कमी, जिससे पारंपरिक श्रृंगार सामग्री में बदलाव आया है।

संरक्षण के उपाय: वल्लभ संप्रदाय के संस्थानों और राज्य सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा संयुक्त रूप से इस परंपरा के संरक्षण हेतु विशेष अभिलेखीकरण किया जाना चाहिए।युवाओं को हवेली संगीत और नाथद्वारा चित्रकला शैली में प्रशिक्षित करने हेतु अकादमियों की स्थापना आवश्यक है।

निष्कर्ष – नाथद्वारा की हरित गणगौरभारतीय संस्कृति की उस महान परंपरा का जीवंत उदाहरण है, जहाँ भक्ति, कला, लोक–संस्कृति और प्रकृति एक बिंदु पर आकर मिल जाते हैं। यह उत्सव केवल ईश्वरीय आराधना भर नहीं है, बल्कि यह मनुष्य का प्रकृति के प्रति आभार, वसंत के विदाई की मधुर स्मृति और आने वाली ऋतु के स्वागत का एक अद्भुत उत्सव है। पुष्टि मार्ग के श्राग, भोग और श्रृंगारश के माध्यम से हरित गणगौर जीवन में रंगों, शीतलता और आध्यात्मिक आनंद का संचार करती है। नाथद्वारा की यह अद्वितीय धरोहर न केवल मेवाड़ की, बल्कि संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक चेतना का एक अनमोल रतन है, जिसका संरक्षण और संवर्धन हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दीनदयाल गुप्ता, वल्लभ संप्रदाय का इतिहास और साहित्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
2. जी.एन.शर्मा,मेवाड़ एंड द मुगल एम्परर्स, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा।
3. अमिया कांतिया,द गॉड्स ऑफ नाथद्वाराः पीचवाइस फ्रॉम राजस्थान, नक्श पब्लिशिंग।
4. रामकुमार वर्मा, राजस्थान की लोक कलाएं एवं उत्सव, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।
5. केदारनाथ जोशी,नाथद्वारा का सांस्कृतिक इतिहास, श्रीनाथजी मंदिर मंडल प्रकाशन, नाथद्वारा।
6. अष्टछाप साहित्य एवं हवेली संगीत संकलन,श्री तिलकायत महाराज कार्यालय, नाथद्वारा।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

कृषि उत्पादों के ई मार्केटिंग का किसानों की आय पर प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

ज्योति सिंह* डॉ. विद्युत प्रकाश मिश्रा**

* शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) राजभानु सिंह स्मारक महाविद्यालय, मनिकवार, जिला रीवा (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां आदि से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है परंपरागत कृषि विपणन व्यवस्था में किसानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे विचारों पर निर्भरता, उचित मूल्य का अभाव, बाजार संबंधी जानकारी की कमी तथा विपणन लागत में वृद्धि इन समस्याओं के समाधान हेतु भारत सरकार ने कृषि क्षेत्र में डिजिटल तकनीक को बढ़ावा देते हुए ई-मार्केटिंग व्यवस्था विशेष कर राष्ट्रीय कृषि बाजार e-NAM जैसे पहलें प्रारंभ की है।

ई-मार्केटिंग के माध्यम से किसानों को विभिन्न मंडियों के मूल्य, खरीददारों तथा विपणन प्रक्रियाओं की जानकारी ऑनलाइन उपलब्ध होती है, जिससे प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और बेहतर मूल्य प्राप्त करने की संभावना बनती है। इससे कृषि उत्पादों के विपणन में पारदर्शिता,दक्षता तथा किसानों की आय में वृद्धि की संभावनाएं बढ़ीहैं।

यह शोध पत्र ई मार्केटिंग किसानों की आय पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करता है। अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग करते हुए ई मार्केटिंग की उपयोगिता, लाभ चुनौतियां तथा भविष्य की संभावनाओं का मूल्यांकन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डिजिटल कृषि विपणन प्रणाली किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, बशर्ते डिजिटल साक्षरता इंटरनेट सुविधा तथा आधारभूत संरचना को और मजबूत बनाया जाए।

प्रस्तावना – भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है कृषि न केवल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है बल्कि रोजगार, ग्रामीण विकास तथा आर्थिक वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसके बावजूद अधिकांश किसानों को अपनी उपज का उचित मूल प्राप्त नहीं हो पता। परंपरागत कृषि विपणन प्रणाली में बिचौलियों का प्रभाव, सूचना का आभाव तथा सीमित बाजार पहुंच किसानों की आय को प्रभावित करती हैं।

डिजिटल प्रौद्योगिकी के विकास के साथ कृषि विपणन में भी व्यापक परिवर्तन हुए हैं। ई मार्केटिंग के माध्यम से किसान अपनी उपज को अधिक व्यापक बाजार तक पहुंचा सकते हैं। राष्ट्रीय कृषि बाजार e-NAM जैसी योजनाओं ने कृषि मंडियों को डिजिटल मंच पर जोड़कर किसानों और खरीदारों के बीच सीधा संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया है।

ई-मार्केटिंग के कारण मूल निर्धारण अधिक पारदर्शी हुआ है प्रतिस्पर्धा बढ़ी है तथा किसानों को अपनी उपज के बेहतर मूल्य मिलने की संभावना बढी है। इसके साथ ही ऑनलाइन भुगतान, डिजिटल रिकॉर्ड तथा बाजार संबंधित त्वरित जानकारी जैसी सुविधाओं ने कृषि विपणन को अधिक आधुनिक और प्रभावी बनाया है। फिर भी डिजिटल साक्षरता की कमी इंटरनेट की सीमित उपलब्धता तकनीकी समस्याएं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचना की कमजोर स्थिति जैसे चुनौतियां ई मार्केटिंग के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करती है। इन परिस्थितियों में यह अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक है।

साहित्य समीक्षा

अग्रवाल(2018) के अनुसार ई मार्केटिंग प्रणाली किसानों को पारदर्शी मूल्य निर्धारण उपलब्ध कराती है जिससे उन्हें पारंपरिक मंडियों की तुलना में बेहतर मूल्य प्राप्त होने की संभावना बढ़ती है।

कुमार एवं सिंह (2019) ने अपने अध्ययन में पाया कि e-NAM से जुड़े किसानों की विपणन लागत में कमी आई तथा उत्पादों विपणनकी दक्षता में सुधार हुआ।

चांद (2020) के अनुसार कृषि विपणन सुधारो तथा डिजिटल प्लेटफॉर्म के विस्तार से किसानों की आय बढ़ाने में सकारात्मक योगदान मिला है विशेष कर उन क्षेत्रों में जहां डिजिटल अवसंरचना अपेक्षाकृत बेहतर हैं।

एफ.ए.ओ. (2022) की रिपोर्ट के अनुसार डिजिटल कृषि विपणन किसानों को वास्तविक समय में बाजार मूल्य मांग तथा खरीदारों की जानकारी उपलब्ध कराकर उनकी सौदेबाजी की क्षमता को मजबूत बनाता है।

एन ए बी ए आर डी. (2023) के अध्ययन में यह पाया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता बढ़ाने से ई-मार्केटिंग प्लेटफार्म का उपयोग बढ़ा है किंतु छोटे एवं सीमांत किसानों को अभी भी प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता की आवश्यकता है।

उपलब्ध साहित्यसे स्पष्ट होता है कि ई-मार्केटिंग किसानों की आय बढ़ाने की दिशा में एक प्रभावी माध्यम बन सकती है लेकिन इसकी सफलता डिजिटल अवसंरचना, प्रशिक्षण तथा नीतिगत समर्थन पर निर्भर करती है।

शोध उद्देश्य-इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. कृषि उत्पादों की ई मार्केटिंग प्रणाली की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. ई-मार्केटिंग का किसानों की आय पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण।
3. ई-मार्केटिंग के माध्यम से कृषि उत्पादों के विपणन में आई पारदर्शिता एवं दक्षता का मूल्यांकन करना।
4. ई-मार्केटिंग अपनाने में किसानों के समक्ष आने वाली प्रमुख समस्याओं एवं चुनौतियां की पहचान करना।
5. ई-मार्केटिंग प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाते हुए सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पना-

H_0(शून्य परिकल्पना): कृषि उत्पादों की ई मार्केटिंग काकिसानों की आय पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

H_1(वैकल्पिक परिकल्पना): कृषि उत्पादों की ई मार्केटिंग का किसानों की आय पर सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

शोध पद्धति-

1. शोध का प्रकार- यह वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है।

2. आंकड़ोंकास्रोत- इस शोध में मुख्यत: द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है।

1. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
2. e-NAM पोर्टल
3. एन ए बी ए आर डी की रिपोर्ट
4. नीति आयोग
5. फए ओ
6. आर बीआई एवं सरकारी प्रकाशन
7. यू जी सीकेयर एवं SCOPUS शोध पत्र

विश्लेषण एवं परिणाम-

सारणी एक: ई-मार्केटिंग अपनाने से पूर्व एवं बाद किसानों की औसत वार्षिक आय

विवरण	ई-मार्केटिंग से पूर्व	ई-मार्केटिंग के बाद	परिवर्तन
औसत आय (रू)	1,48,000	1,89,000	27.70

व्याख्या: सारणी से स्पष्ट है कि आई मार्केटिंग अपने के पश्चात किसने की औसत वा गर्षिक आय में लगभग 27.7 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। इसका प्रमुख कारण बेहतर बाजार पहुंच प्रतिस्पर्धी मूल्य तथा बिचौलियों की भूमिका में कमी है।

सारणी 2: ई मार्केटिंग से प्राप्त प्रमुख लाभ

लाभ	किसानों काप्रतिशत (%)
बेहतर मूल्य प्राप्त हुआ	82
बाजार जानकारी उपलब्ध	78
ऑनलाइन भुगतान सुविधा	69
विपणन लागत में कमी	64
पारदर्शिता में वृद्धि	86

व्याख्या: अधिकांश किसानों ने माना किई-मार्केटिंग से मूल्य निर्धारण अधिक पारदर्शी हुआ तथा उन्हें बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त हुए।

सारणी 3: ई-मार्केटिंग अपने में प्रमुख समस्याएं

समस्या	प्रतिशत (%)
इंटरनेट सुविधा का आभाव	46
डिजिटल साक्षरता की कमी	55
तकनीकी समस्याएं	41
प्रशिक्षण का आभाव	48
छोटे किसानों की सीमित भागीदारी	39

व्याख्या: डिजिटल साक्षरता तथा प्रशिक्षण का अभाव ई मार्केटिंग के प्रभावी उपयोग में सबसे बड़ी बाधा के रूप में सामने आया।

परिणाम- अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष सामने आए:

1. ई-मार्केटिंग से किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।
2. कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण में पारदर्शिता बढ़ी।
3. किसानों को राष्ट्रीय स्तर के बाजार तक पहुंच प्राप्त हुई।
4. बिचारियों पर निर्भरता में कमी आई।
5. डिजिटल भुगतान प्रणाली से लेनदेन अधिक सुरक्षित एवं तेज हुआ।
6. डिजिटल साक्षरता एवं इंटरनेट सुविधा की कमी अभी भी प्रमुख चुनौती बनी हुई है।
7. छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए नियमित प्रशिक्षण तथा तकनीकी सहायता की आवश्यकता है।

निष्कर्ष- भारत में कृषि उत्पादों की ई मार्केटिंग प्रणाली ने कृषि विपणन में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म विशेष कर ही नाम ने किसानों को व्यापक बाजार तक पहुंचे प्रतिस्पर्धी मूल्य तथा पारदर्शी विपणन व्यवस्था उपलब्ध कराई है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आई मार्केटिंग अपने वाले किसानों की आय में वृद्धि विपणन लागत में कमी तथा बाजार संबंधी जानकारी उपलब्धता में सुधार हुआ है।

हालांकि डिजिटल साक्षरता की कमी इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या तकनीकी और संरचना की सीमाएं तथा छोटे एवं सीमांत किसानों की कम भागीदारी अभी भी प्रमुख चुनौतियां हैं। यदि सरकार कृषि विपणन संस्थाएं एवं अन्य हित धारा इन समस्याओं का समाधान करते हैं ई मार्केटिंग किसने की आय दोगुना करने तथा कृषि क्षेत्र को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

इस प्रकार अध्ययन की वैकल्पिक परिकल्पना H_1 स्वीकार की जाती है कि कृषि उत्पादों की ई मार्केटिंग किसने की आय पर सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

सुझाव:

1. सभी कृषि मंडियों को ए नाम तथा अन्य डिजिटल प्लेटफार्म से जोड़ा जाए।
2. किसानों के लिए निमित्त डिजिटल साक्षरता एवं ई मार्केटिंग प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च गति इंटरनेट एवं डिजिटल अब संरचना का विस्तार किया जाए।
4. छोटे एवं सीमांत किसानों को ई मार्केटिंग अपने हेतु वित्तीय एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जाए।
5. ऑनलाइन भुगतान प्रणाली को अधिक सुरक्षित एवं सरल बनाया जाए।
6. राज्य सरकार एवं कृषि विभागों द्वारा ई मार्केटिंग के प्रति जागरूकता अभियान चलाया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. **Chand, R.(2020).** Agriculture marketing reforms and former income in India,Indian journal of agriculture economics,75 (3)245 –260
2. **Food Agriculture Organisation (2022).** The state of food and Agriculture 2022. Rome: FAO.
3. **Government of India.(2022).**National agriculture market (e-NAM): Annual Report. Ministry of Agriculture & Former s Welfare.
4. **Ministry of Agriculture and Farmers Welfare (2023).** Agriculture statistics at a glance. Government of India.
5. **NITI Ayog. (2021).** Doubling farmers income strategy. Government of India.
6. **Reserve Bank of India. (2023).**Handbook of statistics on Indian economy. Mumbai: RBI.

****

भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं परंपरा का सामाजिक विश्लेषण : एक अध्ययन

डॉ. पुष्पा मिश्रा*

* सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र) शीट पी.जी. कॉलेज, गहनी, वाराणसी (उ.प्र.) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारतीय ज्ञान प्रणाली एक दीर्घकालीन और बहुआयामी बौद्धिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका विकास सदियों से अवलोकन, चिंतन, अनुभव, प्रयोग, संवाद, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और व्यावहारिक जीवन के माध्यम से हुआ है। इसमें दर्शन, भाषा, साहित्य, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, कृषि, स्थापत्य, नैतिकता, शिक्षा, पर्यावरण, शासन, कला, शिल्प और सामाजिक संगठन से संबंधित ज्ञान सम्मिलित है। भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल प्राचीन ग्रंथों अथवा धार्मिक विचारों का संग्रह मानना उचित नहीं है। यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था भी है जिसके माध्यम से विभिन्न समुदायों ने ज्ञान का निर्माण, संरक्षण, प्रसार, परीक्षण और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण किया। प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय ज्ञान प्रणाली का सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है तथा शिक्षा, परिवार, समुदाय, पर्यावरण, नैतिकता, व्यवसाय, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक मूल्यों के साथ उसके संबंधों का अध्ययन करता है। शोध का प्रमुख तर्क है कि भारतीय ज्ञान परंपराएँ विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों में विकसित हुई और उनका संबंध दैनिक जीवन से गहरा था। ज्ञान का प्रसारण गुरुकुल, गुरु-शिष्य संबंध, परिवार, समुदाय, मंदिर, मठ, शिल्प-परंपरा और स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से हुआ। साथ ही, भारतीय ज्ञान के सामाजिक इतिहास में जाति, लिंग, सामाजिक स्थिति और ज्ञान तक असमान पहुँच जैसी सीमाएँ भी दिखाई देती हैं। इसलिए समकालीन संदर्भ में भारतीय ज्ञान का अध्ययन न तो अंध-प्रशंसा पर आधारित होना चाहिए और न ही पूर्ण अस्वीकृति पर। आवश्यक है कि इसकी उपलब्धियों और सीमाओं दोनों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाए। यह शोध-पत्र आधुनिक शिक्षा, सतत विकास, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और सांस्कृतिक संरक्षण में भारतीय ज्ञान की संभावित उपयोगिता पर भी विचार करता है। निष्कर्षत: भारतीय ज्ञान का पुनरुत्थान अतीत की यांत्रिक पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि उसके उपयोगी तत्वों का समावेशी, प्रमाण-आधारित और आलोचनात्मक पुनर्पाठ होना चाहिए।

शब्द कुंजी – भारतीय ज्ञान प्रणाली, परंपरा, समाज, स्वदेशी ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत।

प्रस्तावना – ज्ञान किसी समाज से अलग होकर विकसित नहीं होता। प्रत्येक समाज प्रकृति को समझने, मानवीय जीवन की व्याख्या करने, व्यावहारिक समस्याओं का समाधान खोजने, सामाजिक संबंधों को व्यवस्थित करने और अनुभव को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए अपने ज्ञान-तंत्र विकसित करता है। भारत में भी ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से एक विशाल और विविध ज्ञान-परंपरा विकसित हुई। इसे केवल प्राचीन उपलब्धियों का संग्रह नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक व्यवहार और व्यावहारिक अनुभव से जुड़ी व्यवस्था के रूप में देखना चाहिए।

भारतीय ज्ञान प्रणाली को किसी एक धर्म, भाषा, समुदाय या कालखंड तक सीमित नहीं किया जा सकता। वैदिक और उत्तरवैदिक परंपराएँ, बौद्ध और जैन चिंतन, संस्कृत का शास्त्रीय ज्ञान, तमिल तथा अन्य भारतीय भाषाओं की साहित्यिक परंपराएँ, फारसी और अरबी बौद्धिक प्रभाव, लोक ज्ञान, जनजातीय ज्ञान, शिल्प परंपराएँ तथा अनेक स्थानीय समुदायों की व्यावहारिक समझ ने भारत की ज्ञान-संपदा को समृद्ध किया है। ज्ञान का सामाजिक विश्लेषण इसलिए आवश्यक है क्योंकि ज्ञान का निर्माण और प्रसारण संस्थाओं, परिवारों, व्यवसायों, आर्थिक परिस्थितियों और सामाजिक संबंधों से प्रभावित होता है। खेती करने वाले समुदायों ने मिट्टी, ऋतु, बीज और जल के बारे में ज्ञान विकसित कियाय शिल्पकारों ने धातु, वस्त्र, लकड़ी और निर्माण से संबंधित कौशल विकसित किएय परिवारों ने भाषा, भोजन, लोककथाएँ और सामाजिक मूल्य आगे बढ़ाए। परंतु भारतीय ज्ञान के अध्ययन में आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी आवश्यक है। अतीत को केवल उपलब्धियों के रूप में प्रस्तुत करना अधूरा होगा। ऐतिहासिक समाज में जाति, लिंग, आर्थिक स्थिति और संस्थागत अधिकारों के कारण शिक्षा और ज्ञान तक समान पहुँच नहीं थी। इसलिए भारतीय ज्ञान प्रणाली के सामाजिक अध्ययन में उसकी उपलब्धियों के साथ उसकी ऐतिहासिक सीमाओं को भी स्वीकार करना चाहिए।

औपनिवेशिक काल में पश्चिमी शिक्षा और आधुनिक संस्थाओं ने भारतीय ज्ञान के स्वरूप को प्रभावित किया। स्वतंत्रता के बाद चुनौती यह रही कि आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के साथ भारतीय बौद्धिक विरासत का सार्थक संबंध कैसे स्थापित किया जाए। आज भारतीय ज्ञान प्रणाली पर चर्चा इसी व्यापक प्रश्न से जुड़ी है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली का अर्थ और विस्तार– भारतीय ज्ञान प्रणाली को भारतीय सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश में विकसित विचारों, विधियों, मूल्यों, अनुभवों और व्यावहारिक ज्ञान के व्यापक नेटवर्क के रूप में समझा जा सकता है। इसमें सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार का ज्ञान शामिल है। दर्शन और आध्यात्मिक चिंतन इसके महत्वपूर्ण अंग हैं, किंतु गणित,

खगोलशास्त्र, चिकित्सा, कृषि, स्थापत्य, भाषा, संगीत, नाट्य, शासन, शिल्प और पर्यावरणीय ज्ञान भी इसकी व्यापक परिधि में आते हैं।

भारतीय ज्ञान की एक प्रमुख विशेषता इसकी बहुलता है। भारत में ज्ञान पर किसी एक संस्था का पूर्ण नियंत्रण नहीं था। विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विशिष्ट ज्ञान विकसित किया। गुरुकुल, मठ, मंदिर, राजदरबार, कार्यशालाएँ, परिवार, शिल्प समुदाय और स्थानीय संस्थाएँ ज्ञान के संरक्षण और प्रसार के केंद्र रहे। ज्ञान केवल लिखित ग्रंथों में सुरक्षित नहीं था। मौखिक परंपराओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लोकगीत, कहानियाँ, कहावतें, औषधीय ज्ञान, कृषि अनुभव, हस्तशिल्प और स्थानीय पर्यावरण संबंधी समझ अक्सर मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रही। भारतीय दार्शनिक परंपराओं में ज्ञान की प्रकृति पर गंभीर विचार हुआ। न्याय दर्शन ने प्रमाण और तर्क पर विचार कियाय बौद्ध और जैन चिंतन ने ज्ञान और सत्य की अपनी विशिष्ट व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। विभिन्न परंपराओं के बीच मतभेद और संवाद भारतीय बौद्धिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ थीं।

समकालीन संदर्भ में आवश्यक है कि ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित ज्ञान, दार्शनिक विचार, सांस्कृतिक विश्वास और वैज्ञानिक दावों में अंतर किया जाए। प्रत्येक पारंपरिक दावे को केवल प्राचीन होने के कारण वैज्ञानिक सत्य नहीं माना जा सकता। प्रमाण, तर्क और परीक्षण के माध्यम से उसका मूल्यांकन आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान परंपराओं का ऐतिहासिक विकास- भारतीय ज्ञान परंपराएँ किसी एक समय में अचानक विकसित नहीं हुईं, बल्कि अनेक शताब्दियों मंर विकसित होती रहीं। इनके विकास में निरंतरता के साथ परिवर्तन, संवाद, मतभेद और सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी शामिल रहे। वैदिक साहित्य भारतीय बौद्धिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण परत है। इसके बाद उपनिषदों, दर्शन, व्याकरण, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा और नैतिक चिंतन के अनेक रूप विकसित हुए।

पाणिनि की अष्टाध्यायी भाषा के व्यवस्थित विश्लेषण का महत्वपूर्ण उदाहरण है। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त और भास्कर जैसे विद्वानों ने गणित और खगोलशास्त्र में योगदान दिया। आयुर्वेद ने स्वास्थ्य, आहार, रोग, निदान और उपचार से संबंधित विस्तृत परंपराएँ विकसितकीं। बौद्ध और जैन परंपराओं ने दर्शन, तर्क, नैतिकता और शिक्षा को समृद्ध किया। नालंदा जैसे शिक्षा-केंद्रों ने विभिन्न क्षेत्रों से आए विद्वानों के बीच बौद्धिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया।मध्यकालीन भारत में संस्कृत, फारसी, अरबी और क्षेत्रीय भाषाओं की परंपराओं के बीच अनेक प्रकार के संपर्क हुए। भक्ति और सूफी आंदोलनों ने भी सामाजिक और सांस्कृतिक विचारों को प्रभावित किया। इससे स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान परंपरा स्थिर नहीं थी।

औपनिवेशिक काल में पश्चिमी शिक्षा, आधुनिक विज्ञान और नई प्रशासनिक संस्थाओं ने पारंपरिक ज्ञान संरचनाओं को प्रभावित किया। स्वतंत्रता के बाद आधुनिक विज्ञान और भारतीय सांस्कृतिक विरासत के बीच संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता बनी रही। आज भारतीय ज्ञान प्रणाली की चर्चा इसी ऐतिहासिक निरंतरता का हिस्सा है।

भारतीय ज्ञान और सामाजिक संरचना- ज्ञान और सामाजिक संरचना एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। परंपरागत व्यवसायों से जुड़े समुदायों ने विशिष्ट ज्ञान विकसित किया। कृषक समुदायों ने भूमि, मौसम, बीज, सिंचाई और फसल चक्र का ज्ञान विकसित किया। शिल्पकारों ने धातु, वस्त्र, मिट्टी, लकड़ी और निर्माण से संबंधित तकनीकी कौशल पीढ़ियों तक सुरक्षित रखा।

परिवार ज्ञान का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। बच्चे भाषा, भोजन, सामाजिक व्यवहार, लोककथाएँ, पारिवारिक इतिहास, सांस्कृतिक परंपराएँ और व्यवसाय संबंधी कौशल घर से सीखते थे। सामुदायिक उत्सव, लोकगीत और मौखिक कथाएँ सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखते थे। फिर भी ज्ञान तक पहुँच हमेशा समान नहीं थी। जाति-आधारित सामाजिक व्यवस्था ने शिक्षा और व्यवसाय के अवसरों को प्रभावित किया। कुछ औपचारिक ज्ञान पर विशेष सामाजिक समूहों का अधिक अधिकार था। महिलाओं और वंचित समुदायों को अनेक ऐतिहासिक परिस्थितियों में औपचारिक शिक्षा से सीमित अवसर मिले। इसलिए भारतीय ज्ञान के सामाजिक अध्ययन में दो अतियों से बचना आवश्यक है। पारंपरिक ज्ञान को पूरी तरह अस्वीकार करना उचित नहीं है, लेकिन अतीत को पूर्णतः समानतावादी समाज के रूप में प्रस्तुत करना भी सही नहीं होगा।

आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में ज्ञान तक समान पहुँच आवश्यक है। भारतीय ज्ञान का समकालीन पुनरुत्थान समावेशी होना चाहिए। जाति, लिंग, भाषा, धर्म और आर्थिक स्थिति के आधार पर किसी को ज्ञान से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

शिक्षा और गुरु-शिष्य परंपरा- भारतीय बौद्धिक इतिहास में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। गुरु-शिष्य परंपरा में शिक्षक और विद्यार्थी के बीच निकट संबंध के माध्यम से ज्ञान का हस्तांतरण होता था। आदर्श रूप में यह संबंध केवल सूचना देने तक सीमित नहीं था, बल्कि अनुशासन, चरित्र, अभ्यास, चिंतन और जीवन-व्यवहार से भी जुड़ा था।

गुरुकुल व्यवस्था में विद्यार्थी शिक्षक के निकट रहकर अध्ययन और दैनिक गतिविधियों में भाग लेते थे। सीखना केवल कक्षा तक सीमित नहीं था। अवलोकन, अभ्यास, प्रश्न, संवाद और अनुकरण शिक्षा की प्रक्रिया का हिस्सा थे।हालाँकि भारतीय शिक्षा का इतिहास एकरूप नहीं था। बौद्ध विहार, जैन संस्थाएँ, मंदिर-आधारित शिक्षा, क्षेत्रीय पा ठशालाएँ, परिवार-आधारित प्रशिक्षण और शिल्प-प्रशिक्षण भी ज्ञान के महत्वपूर्ण माध्यम थे। गुरु-शिष्य परंपरा की सामाजिक पहुँच पर प्रश्न भी उठते हैं। शिक्षा के अवसर सामाजिक स्थिति, लिंग और संस्थागत संरचना से प्रभावित रहे। इसलिए इस परंपरा को पूर्णतः समान अवसर देने वाली व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा। समकालीन शिक्षा में व्यक्तिगत मार्गदर्शन, शिक्षक-विद्यार्थी संवाद, अनुशासन, अनुभवात्मक शिक्षा और नैतिक विकास जैसे तत्व ग्रहण किए जा सकते हैं। लेकिन आधुनिक शिक्षा में समान अवसर और आलोचनात्मक चिंतन भी आवश्यक हैं। विद्यार्थी को प्रश्न पूछने और स्वतंत्र निष्कर्ष तक पहुँचने का अवसर मिलना चाहिए।

भारतीय ज्ञान, विज्ञान, गणित और तकनीक- भारतीय बौद्धिक इतिहास में गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, धातुकर्म, स्थापत्य और तकनीकी ज्ञान के महत्वपूर्ण उदाहरण मिलते हैं। भारतीय गणितीय परंपरा में दशमलव स्थान-मूल्य पद्धति और शून्य के प्रयोग का इतिहास विशेष महत्व रखता है। आर्यभट और ब्रह्मगुप्त जैसे विद्वानों ने गणित तथा खगोलशास्त्र में योगदान दिया।

चिकित्सा के क्षेत्र में आयुर्वेद ने शरीर, स्वास्थ्य, आहार, जीवनशैली, रोग और उपचार के संबंध में विस्तृत विचार विकसित किए। स्थानीय समुदायों के पास भी वनस्पतियों और औषधीय पौधों का व्यावहारिक ज्ञान था।

धातुकर्म और निर्माण तकनीक भारतीय तकनीकी इतिहास के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। लोहे और अन्य धातुओं के उत्पादन तथा स्थापत्य में अनुभव, प्रयोग और स्थानीय परिस्थितियों का योगदान रहा। प्राचीन वैज्ञानिक ज्ञान के समकालीन मूल्यांकन में सावधानी आवश्यक है। किसी ऐतिहासिक दावे को केवल प्राचीन होने के कारण आधुनिक वैज्ञानिक सत्य नहीं माना जा सकता। प्रमाण, प्रयोग और वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

सबसे उपयोगी दृष्टिकोण पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच संवाद स्थापित करना है। पारंपरिक ज्ञान शोध के लिए ऐतिहासिक अनुभव या प्रश्न प्रदान कर सकता है, जबकि आधुनिक वैज्ञानिक विधियाँ दावों की जाँच कर सकती हैं।

भारतीय ज्ञान और पर्यावरणीय चेतना- भारतीय पारंपरिक ज्ञान में पर्यावरण से संबंधित अनेक अनुभव और व्यवहार पाए जाते हैं। स्थानीय समुदायों ने मिट्टी, जल, मौसम, वनस्पति, पशु, ऋतु और कृषि के साथ दीर्घकालीन संबंधों के आधार पर स्थानीय ज्ञान विकसित किया।

कृषि समुदायों ने स्थानीय बीजों, फसल चक्र, मिट्टी की प्रकृति, सिंचाई और मौसम के बारे में विस्तृत अनुभव प्राप्त किया। तालाब, कुएँ, बावड़ियाँ, नहरें और अन्य जल-प्रबंधन प्रणालियाँ विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुईं।

पेड़, नदियाँ, पर्वत और अन्य प्राकृतिक तत्व अनेक सांस्कृतिक परंपराओं में विशेष महत्व रखते हैं। इन्हें आधुनिक पर्यावरणवाद के समान मानना उचित नहीं होगा, फिर भी ये मनुष्य और प्रकृति के सांस्कृतिक संबंधों को समझने में उपयोगी हैं।

कई पारंपरिक जीवन-पद्धतियों में संसाधनों के संयमित उपयोग और स्थानीय सामग्री पर जोर दिखाई देता है। लेकिन यह मान लेना भी उचित नहीं कि हर पारंपरिक व्यवस्था हमेशा पर्यावरण की दृष्टि से आदर्श थी। आज पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान का अध्ययन आधुनिक पारिस्थितिकी के साथ संवाद में किया जा सकता है। स्थानीय ज्ञान कई पीढ़ियों के अनुभव पर आधारित होने के कारण क्षेत्र-विशिष्ट पर्यावरणीय जानकारी प्रदान कर सकता है। पर्यावरणीय स्थिरता केवल तकनीकी समाधान से संभव नहीं होती। समुदाय की भागीदारी, स्थानीय जिम्मेदारी और संसाधनों का न्यायपूर्ण उपयोग भी महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय ज्ञान, स्वास्थ्य और सामुदायिक जीवन- भारत में स्वास्थ्य से संबंधित ज्ञान अनेक परंपराओं में विकसित हुआ। आयुर्वेद इसका प्रमुख शास्त्रीय उदाहरण है, लेकिन स्थानीय समुदायों के पास भी औषधीय पौधों, भोजन, स्वच्छता, प्रसव, जीवनशैली और दैनिक स्वास्थ्य से जुड़ा अनुभवजन्य ज्ञान रहा है। पारंपरिक स्वास्थ्य प्रणालियों में शरीर, आहार, जीवनचर्या, पर्यावरण और मानसिक संतुलन के बीच संबंध पर विचार किया गया। भारतीय खाद्य परंपराएँ भी स्थानीय जलवायु, कृषि और उपलब्ध संसाधनों के अनुसार विकसित हुईं। मौसमी खाद्य पदार्थ, किण्वित भोजन, मसाले, औषधीय वनस्पतियाँ और संरक्षण की विधियाँ स्थानीय अनुभव का हिस्सा थीं। योग और उससे संबंधित अभ्यास शारीरिक अनुशासन, श्वास, एकाग्रता और मानसिक संतुलन से जुड़े हैं। आज इनका अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन और अभ्यास होता है। फिर भी पारंपरिक स्वास्थ्य संबंधी हर दावे को बिना जाँच स्वीकार नहीं किया जा सकता। किसी विशिष्ट रोग के उपचार संबंधी दावे के लिए वैज्ञानिक प्रमाण आवश्यक हैं। इसलिए आधुनिक स्वास्थ्य व्यवस्था और पारंपरिक ज्ञान के बीच संवाद अधिक उपयोगी दृष्टिकोण है। प्रमाणित पारंपरिक पद्धतियों का ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है, जबकि गंभीर रोगों के निदान और उपचार में आधुनिक चिकित्सा मानकों की आवश्यकता बनी रहती है।

स्थानीय स्वास्थ्य ज्ञान का दस्तावेजीकरण ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में विशेष महत्व रखता है। इससे सांस्कृतिक ज्ञान संरक्षित हो सकता है और नए शोध के लिए आधार मिल सकता है।

भाषा, साहित्य और सांस्कृतिक स्मृति- भाषा ज्ञान के संरक्षण और प्रसार का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। भारत की भाषाई विविधता ने एक विशाल साहित्यिक और बौद्धिक विरासत को जन्म दिया। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, फारसी, अरबी, उर्दू, हिंदी, बंगाली, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, असमिया, पंजाबी, कश्मीरी और अनेक अन्य भाषाओं ने भारतीय ज्ञान को समृद्ध किया। साहित्य केवल कला नहीं हैय वह सामाजिक स्मृति का भी माध्यम है। महाकाव्य, दार्शनिक ग्रंथ, कविता, लोककथाएँ, भक्तिकाव्य, सूफी साहित्य, जीवनी, इतिहास, गीत और कहावतें समाज के मूल्यों और अनुभवों को संरक्षित करते हैं।

मौखिक परंपराएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे दिखाती हैं कि ज्ञान लिखित ग्रंथों के बिना भी पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सकता है। लोकगीत, कथाएँ, कहावतें और सामुदायिक इतिहास सांस्कृतिक ज्ञान को जीवित रखते हैं। भारतीय साहित्य में सामाजिक असमानता, नैतिकता, सत्ता, लिंग, पहचान और न्याय से संबंधित प्रश्न भी उठाए गए हैं। अनुवाद विभिन्न भाषाई परंपराओं को जोड़ने का माध्यम है।डिजिटल तकनीक पांडुलिपियों, शिलालेखों, लोकसाहित्य और मौखिक इतिहासों के संरक्षण में नैतिकता और समुदाय की भागीदारी का ध्यान रखना आवश्यक है।

इस प्रकार भाषा भारतीय ज्ञान का केवल माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक स्मृति का आधार है।

भारतीय ज्ञान परंपराएँ और लैंगिक दृष्टिकोण- भारतीय ज्ञान का सामाजिक विश्लेषण लैंगिक प्रश्नों की उपेक्षा नहीं कर सकता। भारतीय बौद्धिक और सांस्कृतिक इतिहास में महिलाओं की भागीदारी रही है, लेकिन उनके योगदान को हमेशा समान रूप से दर्ज और मान्यता नहीं मिली। भारतीय परंपरा में महिला दार्शनिकों, कवयित्रियों, भक्त कवयित्रियों, शिक्षिकाओं और सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं के उदाहरण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त महिलाओं ने घरेलू और सामुदायिक ज्ञानकृभोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य, कृषि, शिल्प और लोकपरंपराओंकृको पीढ़ियों तक सुरक्षित रखा। फिर भी ऐतिहासिक सामाजिक संरचनाओं ने अनेक परिस्थितियों में महिलाओं की औपचारिक शिक्षा और सार्वजनिक बौद्धिक संस्थाओं तक पहुँच सीमित की। इससे ज्ञान के लिखित इतिहास में महिलाओं की उपस्थिति कम दिखाई दे सकती है। यह प्रश्न केवल महिलाओं तक सीमित नहीं है। जाति, जनजातीय समुदाय, श्रमिक समुदाय, आर्थिक रूप से कमजोर समूह और क्षेत्रीय समुदायों के ज्ञान को भी मुख्यधारा के इतिहास में कम स्थान मिला है। भारतीय ज्ञान के समकालीन पुनरुत्थान में हाशिए पर रहे ज्ञान-स्वरों को सामने लाना आवश्यक है। महिलाओं की मौखिक परंपराओं, लोकसाहित्य, शिल्प, चिकित्सा, कृषि और बौद्धिक योगदान का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए।

समावेशी भारतीय ज्ञान प्रणाली का उद्देश्य यह होना चाहिए कि हर वर्ग, लिंग और समुदाय के लोगों को सीखने, शोध करने और ज्ञान निर्माण

में समान अवसर मिले।

जाति, ज्ञान तक पहुँच और सामाजिक असमानता– भारतीय ज्ञान के सामाजिक अध्ययन में ज्ञान तक पहुँच का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। संस्थाएँ और सामाजिक शक्ति यह भी तय करती हैं कि कौन ज्ञान प्राप्त कर सकता है, कौन शिक्षक बन सकता है और किस ज्ञान को मान्यता मिलेगी।भारतीय इतिहास में उच्च स्तर की बौद्धिक उपलब्धियाँ हुई, लेकिन औपचारिक शिक्षा के अवसर समाज के सभी वर्गों में समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। जाति-आधारित संरचनाओं ने शिक्षा और व्यवसाय के अवसरों को प्रभावित किया। कुछ समुदायों ने अपने व्यवसायों से संबंधित विशेष ज्ञान विकसित किया, जबकि कुछ समूह औपचारिक शिक्षा से वंचित रहे। इन असमानताओं को स्वीकार करना भारतीय ज्ञान की उपलब्धियों को नकारना नहीं है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि ज्ञान किस सामाजिक व्यवस्था में विकसित हुआ। आधुनिक भारत में शिक्षा सामाजिक सशक्तीकरण का साधन है। इसलिए भारतीय ज्ञान का पुनरुत्थान लोकतांत्रिक पहुँच के साथ जुड़ा होना चाहिए। हर विद्यार्थी को भारतीय दर्शन, संस्कृत, क्षेत्रीय साहित्य, गणित, पर्यावरण, शिल्प और अन्य ज्ञान क्षेत्रों का अध्ययन करने का अवसर मिलना चाहिए। साथ ही, किसी समुदाय के पारंपरिक ज्ञान का अध्ययन करते समय उस समुदाय की पहचान और अधिकार का सम्मान आवश्यक है। ज्ञान को केवल बाहरी शोध के लिए संसाधन मानना उचित नहीं है। सामाजिक न्यायपूर्ण ज्ञान प्रणाली का उद्देश्य संरक्षण, पहुँच, सामुदायिक भागीदारी और समानता के बीच संतुलन स्थापित करना होना चाहिए।

समकालीन शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली– भारतीय ज्ञान प्रणाली का वर्तमान शैक्षिक संदर्भ में पुनर्पाठ महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय भाषाओं, कला, संस्कृति और भारतीय ज्ञान परंपराओं से जुड़ाव बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया है। भारतीय ज्ञान के माध्यम से विद्यार्थी दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, पर्यावरण, साहित्य, स्थापत्य, कला और नैतिक चिंतन की विभिन्न परंपराओं से परिचित हो सकते हैं। लेकिन शिक्षा में भारतीय ज्ञान को अंधविश्वास या निर्विवाद सत्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षा का आधार प्रमाण, तर्क, प्रश्न, तुलना और आलोचनात्मक चिंतन है। विद्यार्थियों को यह समझने का अवसर मिलना चाहिए कि किसी परंपरा का विकास किस ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ।

प्राचीन गणित का अध्ययन गणित के इतिहास के रूप में किया जा सकता है। खगोलीय ग्रंथों का अध्ययन ऐतिहासिक और वैज्ञानिक पद्धतियों से किया जा सकता है। आयुर्वेद को चिकित्सा परंपरा के रूप में पढ़ते हुए वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित और अप्रमाणित दावों में अंतर किया जाना चाहिए। स्थानीय ज्ञान को शिक्षा से जोड़ने के लिए परियोजना-आधारित अध्ययन उपयोगी हो सकता है। विद्यार्थी स्थानीय जल-संरक्षण प्रणालियों, कृषि, लोकसाहित्य, शिल्प, वास्तु और मौखिक इतिहास पर शोध कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय ज्ञान शिक्षा को स्थानीय, अनुभवात्मक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बना सकता है, जबकि आधुनिक विज्ञान और वैश्विक ज्ञान को भी शिक्षा का हिस्सा बनाए रखा जा सकता है।

वैश्विक प्रासंगिकता और भविष्य की संभावनाएँ – भारतीय ज्ञान परंपराओं में विश्व स्तर पर रुचि बढ़ी है। योग, ध्यान, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन, गणित का इतिहास, साहित्य, कला और पर्यावरणीय परंपराएँ अंतरराष्ट्रीय अध्ययन का विषय बन रही हैं।

यह वैश्विक रुचि अवसरों के साथ चुनौतियाँ भी लाती है। किसी जटिल परंपरा को उसके ऐतिहासिक संदर्भ से अलग करके केवल एक सरल अभ्यास या व्यावसायिक उत्पाद में बदल दिया जाए तो उसके मूल अर्थ का नुकसान हो सकता है।

भारतीय ज्ञान को अन्य ज्ञान परंपराओं से श्रेष्ठ सिद्ध करने के बजाय वैश्विक बौद्धिक संवाद में सहभागी बनाया जाना चाहिए। पारंपरिक कृषि, जल प्रबंधन, स्थानीय संसाधन उपयोग और समुदाय-आधारित संरक्षण का अध्ययन आधुनिक पर्यावरण विज्ञान के साथ किया जा सकता है। अंतरविषयक शोध भविष्य की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इतिहासकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक, भाषाविद्, समाजशास्त्री, शिक्षा विशेषज्ञ, पर्यावरण वैज्ञानिक और समुदाय-आधारित ज्ञान धारक मिलकर अधिक व्यापक अध्ययन कर सकते हैं।डिजिटल तकनीक पांडुलिपियों, लोकपरंपराओं, शिलालेखों, क्षेत्रीय साहित्य और पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने में उपयोगी हो सकती है। इसके साथ समुदाय के अधिकार और उचित श्रेय का ध्यान रखना आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान की वैश्विक उपयोगिता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह समकालीन प्रश्नों के साथ कितना सार्थक संवाद करता है। जीवित ज्ञान परंपरा केवल अतीत को दोहराती नहीं, बल्कि अतीत को समझकर वर्तमान और भविष्य की समस्याओं के लिए नए प्रश्न और संभावनाएँ उत्पन्न करती है।

भारतीय ज्ञान के पुनरुत्थान की चुनौतियाँ – भारतीय ज्ञान प्रणाली के पुनरुत्थान के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। पहली चुनौती अतीत के आदर्शीकरण की है। यदि हर पारंपरिक विचार को पूर्ण सत्य मान लिया जाए तो आलोचनात्मक शोध कठिन हो जाएगा। गंभीर ज्ञान-परंपरा में प्रश्न, प्रमाण, बहस और संशोधन के लिए स्थान होना चाहिए। दूसरी चुनौती दस्तावेजीकरण की है। अनेक पारंपरिक ज्ञान-रूप मौखिक परंपरा के माध्यम से जीवित रहे और उनका लिखित रिकॉर्ड सीमित है। वृद्ध ज्ञान-धारकों के साथ यह ज्ञान भी समाप्त हो सकता है।

तीसरी चुनौती भाषा की है। अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ और स्रोत शास्त्रीय या क्षेत्रीय भाषाओं में हैं। इसलिए अनुवाद और बहुभाषी शोध आवश्यक है।एक अन्य चुनौती पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विश्वविद्यालयी शोध-पद्धति के बीच अंतर है। विश्वविद्यालयों में प्रमाण, संदर्भ, पद्धति और आलोचनात्मक समीक्षा आवश्यक हैं। पारंपरिक ज्ञान का अध्ययन भी इन अकादमिक मानकों के साथ किया जाना चाहिए। व्यावसायीकरण और राजनीतिक सरलीकरण भी चुनौती हैं। किसी समुदाय के पारंपरिक ज्ञान को केवल बाजार के लिए उपयोग करना उचित नहीं है और भारतीय ज्ञान को किसी एक समुदाय की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रयोग करना भी इतिहास की विविधता को कमजोर करता है। इसलिए पुनरुत्थान का सही मार्ग आलोचनात्मक पुनर्पाठ है। पारंपरिक ज्ञान को सुरक्षित किया जाए, दस्तावेजीकृत किया जाए, जहाँ आवश्यक हो वहाँ वैज्ञानिक परीक्षण किया जाए, अनुवादित किया जाए और समावेशी संस्थाओं के माध्यम से पढ़ाया जाए।

निष्कर्ष – भारतीय ज्ञान प्रणाली एक विशाल, विविध और दीर्घकालीन बौद्धिक विरासत है, जिसका निर्माण अवलोकन, तर्क, अनुभव, प्रयोग, सांस्कृतिक संवाद और सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं से हुआ। इसका प्रभाव शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण, भाषा, साहित्य, कला, शिल्प, नैतिकता और सामुदायिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में दिखाईदेता है। इस

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान को किसी एक समान परंपरा के रूप में नहीं देखा जा सकता। इसमें अनेक दार्शनिक, भाषाई, धार्मिक, क्षेत्रीय, व्यावसायिक और सामुदायिक परंपराएँ शामिल हैं। यही विविधता इसकी प्रमुख शक्ति है। साथ ही, भारतीय ज्ञान के ऐतिहासिक सामाजिक ढाँचे में असमानताएँ भी थीं। जाति, लिंग, आर्थिक स्थिति और संस्थागत शक्ति ने ज्ञान तक पहुँच को प्रभावित किया। इन सीमाओं को स्वीकार करना भारतीय ज्ञान की उपलब्धियों को नकारना नहीं, बल्कि उसके वास्तविक सामाजिक संदर्भ को समझना है।

भविष्य में भारतीय ज्ञान प्रणाली का पुनरुत्थान समावेशी, प्रमाण-आधारित और आलोचनात्मक होना चाहिए। पारंपरिक ज्ञान आधुनिक शिक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता, सांस्कृतिक संरक्षण, स्वास्थ्य जागरूकता और अनुसंधान में योगदान दे सकता है, बशर्ते उसका अध्ययन जिम्मेदारी और वैज्ञानिक दृष्टि से किया जाए।भारतीय ज्ञान का सबसे सार्थक पुनरुत्थान आधुनिक ज्ञान को अस्वीकार करना या अतीत की यांत्रिक उनकी सीमाओं और संभावनाओं का परीक्षण करना तथा समकालीन समाज के लिए उपयोगी तत्वों को विकसित करना।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली को जीवित बौद्धिक विरासत के रूप में देखा जाना चाहिए। इसकी वास्तविक शक्ति केवल इस बात में नहीं है कि पूर्वज क्या जानते थे, बल्कि इस बात में भी है कि उनकी परंपराएँ वर्तमान पीढ़ी को नए प्रश्न पूछने और भविष्य के लिए नए समाधान खोजने के लिए प्रेरित कर सकती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बाशम, ए. एल. द वंडर दैट वाज इंडिया। रूपा प्रकाशन, 2001।
2. चट्टोपाध्याय, देविप्रसाद। हिस्ट्री ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन एंशिएंट इंडिया। फर्मा के. एल. एम., 1986।
3. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ। ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1922-1955।
4. कपूर, कपिल। टेक्स्ट एंड इंटरप्रिटेशन: द इंडियन ट्रेडिशन। डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, 2005।
5. महादेवन, बी., विनायक राज भट और नागेंद्र पवन आर. एन. इंट्रोडक्शन टू इंडियन नॉलेज सिस्टम: कॉन्सेप्ट्स एंड एप्लीकेशंस। पीएचआई लर्निंग, 2022।
6. मुखर्जी, राधा कुमुद। एंशिएंट इंडियन एजुकेशन: ब्राह्मणिकल एंड बुद्धिस्ट। मोतीलाल बनारसीदास, 1989।
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020। भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, 2020।
8. राधाकृष्णन, एस. और चार्ल्स ए. मूर, संपादक। ए सोर्स बुक इन इंडियन फिलॉसफी। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957।
9. शार्फे, हार्टमुट। एजुकेशन इन एंशिएंट इंडिया। ब्रिल, 2002।
10. सिंह, उपिंदर। ए हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट एंड अर्ली मेडिवल इंडिया। पियर्सन लॉन्गमैन, 2008।
11. थापर, रोमिला। कल्चरल पास्ट्स: एसेज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000।
12. वुजास्टिक, डोमिनिक। द रूट्स ऑफ आयुर्वेद। पेंगुइन बुक्स, 2003।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

स्मार्ट सिटी मिशन का स्थानीय आर्थिक विकास पर प्रभाव: उज्जैन शहर के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आभा चौरसिया*

* शोधार्थी, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारत में तीव्र शहरीकरण के परिणामस्वरूप शहरों के समक्ष आधारभूत अवसंरचना, परिवहन, पर्यावरण, सार्वजनिक सेवाओं तथा आर्थिक विकास से संबंधित अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु भारत सरकार द्वारा वर्ष 2015 में स्मार्ट सिटी मिशन का शुभारंभ किया गया, जिसका उद्देश्य शहरों को प्रौद्योगिकी–सक्षम, नागरिक–केंद्रित, समावेशी एवं सतत विकास के मॉडल के रूप में विकसित करना है। मध्यप्रदेश का प्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगर उज्जैन भी इस मिशन के अंतर्गत चयनित शहरों में शामिल है, जहाँ महाकाल लोक परियोजना, स्मार्ट सड़कें, एकीकृत कमांड एवं कंट्रोल सेंटर, सार्वजनिक सुविधाओं के उन्नयन, डिजिटल सेवाओं के विस्तार तथा शहरी आधारभूत संरचना के विकास जैसे अनेक कार्य संपादित किए गए हैं। इन पहलों ने न केवल शहर के भौतिक स्वरूप में परिवर्तन किया है, बल्कि स्थानीय अर्थव्यवस्था, पर्यटन, व्यापार, सेवा क्षेत्र तथा रोजगार सृजन पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है।प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य उज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों के साथ–साथ उज्जैन स्मार्ट सिटी परियोजना से संबंधित उपलब्ध प्राथमिक आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। शोध का मुख्य फोकस स्थानीय व्यापार, पर्यटन, निवेश, रोजगार, आय सृजन तथा शहरी आर्थिक गतिविधियों में आए परिवर्तनों का मूल्यांकन करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत विकसित अवसंरचना एवं डिजिटल सेवाओं ने धार्मिक पर्यटन को प्रोत्साहित किया, जिसके परिणामस्वरूप होटल, परिवहन, खुदरा व्यापार, लघु उद्यम तथा सेवा क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक सुविधाओं में सुधार, निवेश के अनुकूल वातावरण तथा बेहतर शहरी प्रबंधन ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को नई गति प्रदान की है। यद्यपि स्मार्ट सिटी मिशन ने उज्जैन के आर्थिक विकास में सकारात्मक योगदान दिया है, तथापि दीर्घकालिक एवं समावेशी आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय उद्यमिता, कौशल विकास, हरित अवसंरचना, नागरिक सहभागिता तथा सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों को अधिक प्रोत्साहन प्रदान करना आवश्यक है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि यदि स्मार्ट सिटी परियोजनाओं को स्थानीय आवश्यकताओं, सांस्कृतिक विरासत तथा सतत विकास के सिद्धांतों के अनुरूप क्रियान्वित किया जाए, तो वे शहरी आर्थिक विकास के प्रभावी मॉडल के रूप में स्थापित हो सकती हैं।

शब्द कुंजी – स्मार्ट सिटी मिशन, उज्जैन, आर्थिक विकास, शहरी अर्थव्यवस्था, धार्मिक पर्यटन, रोजगार सृजन, आधारभूत अवसंरचना, सतत विकास।

प्रस्तावना – वर्तमान समय में तीव्र शहरीकरण विश्व के अधिकांश देशों के लिए आर्थिक विकास, आधारभूत अवसंरचना, पर्यावरण संरक्षण तथा नागरिक सेवाओं के प्रभावी प्रबंधन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण चुनौती बनकर उभरा है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में निवास करेगी, जिसके परिणामस्वरूप शहरों में आवास, परिवहन, ऊर्जा, जलापूर्ति, स्वच्छता तथा सार्वजनिक सेवाओं की मांग में निरंतर वृद्धि होगी (संयुक्त राष्ट्र, 2018)। ऐसी परिस्थितियों में पारंपरिक शहरी विकास मॉडल पर्याप्त सिद्ध नहीं हो रहे हैं। इसलिए आधुनिक तकनीक, सुशासन, नागरिक सहभागिता तथा सतत विकास के सिद्धांतों पर आधारित 'स्मार्ट सिटी' की अवधारणा वैश्विक स्तर पर एक प्रभावी समाधान के रूप में विकसित हुई है (वॉशबर्न एवं अन्य, 2010)।स्मार्ट सिटी की अवधारणा केवल सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के उपयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य शहरों को आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से अधिक सक्षम, प्रतिस्पर्धी तथा नागरिक–केंद्रित बनाना है। स्मार्ट सिटी में स्मार्ट शासन, स्मार्ट अर्थव्यवस्था, स्मार्ट परिवहन, स्मार्ट पर्यावरण, स्मार्ट नागरिक तथा स्मार्ट जीवन स्तर जैसे आयामों का समन्वित विकास किया जाता है (गिफिंगर एवं अन्य, 2007)। काराग्लियू, डेल बो एवं निकैम्प (2011) के अनुसार स्मार्ट शहर वे हैं, जो मानव पूंजी, सामाजिक पूंजी, तकनीकी नवाचार तथा सहभागी शासन के माध्यम से सतत आर्थिक विकास एवं जीवन की गुणवत्ता में सुधार सुनिश्चित करते हैं।

भारत विश्व के सर्वाधिक तीव्र गति से शहरीकरण करने वाले देशों में से एक है। बढ़ती शहरी आबादी के कारण महानगरों तथा मध्यम आकार के शहरों में आधारभूत सुविधाओं पर दबाव, यातायात जाम, प्रदूषण, जल संकट, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन तथा रोजगार जैसी समस्याएँ निरंतर बढ़ रही हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु भारत सरकार ने वर्ष 2015 मेंस्मार्ट सिटी मिशनप्रारंभ किया, जिसका उद्देश्य चयनित शहरों को आधुनिक, समावेशी, टिकाऊ तथा आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना है। इस मिशन के अंतर्गत क्षेत्र आधारित विकास (Area Based Development) तथा पैन–सिटी समाधान (Pan City Solution) के माध्यम से आधारभूत संरचना,

डिजिटल प्रशासन, सार्वजनिक सेवाओं, परिवहन व्यवस्था तथा नागरिक सुविधाओं में सुधार किया जा रहा है (आवास एवं शहरी कार्य मंत्रालय, 2015)।स्मार्ट सिटी मिशन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य स्थानीय आर्थिक विकास को गति प्रदान करना भी है। बेहतर सड़क नेटवर्क, डिजिटल अवसंरचना, सार्वजनिक परिवहन, पर्यटन सुविधाओं, निवेश-अनुकूल वातावरण तथा ई-गवर्नेंस के माध्यम से व्यापार, सेवा क्षेत्र, उद्यमिता तथा रोजगार के नए अवसर विकसित होते हैं। आधुनिक शहरी अवसंरचना निवेश आकर्षित करती है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था की उत्पादकता एवं प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि होती है (ओईसीडी, 2020)। इस प्रकार स्मार्ट सिटी मिशन केवल शहरी सौंदर्यीकरण का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि यह आर्थिक विकास एवं सतत शहरी परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। मध्यप्रदेश का प्राचीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगर उज्जैन भारत के प्रमुख तीर्थस्थलों में से एक है। श्री महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग, सिंहस्थ महापर्व तथा समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के कारण प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु एवं पर्यटक उज्जैन आते हैं। धार्मिक पर्यटन यहाँ की स्थानीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है, जिससे होटल उद्योग, परिवहन, व्यापार, हस्तशिल्प, लघु उद्यम तथा सेवा क्षेत्र को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त होता है। स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत उज्जैन में महाकाल लोक परियोजना, स्मार्ट सड़कें, एकीकृत कमांड एवं कंट्रोल सेंटर, सार्वजनिक स्थलों का सौंदर्यीकरण, स्मार्ट प्रकाश व्यवस्था, डिजिटल सूचना प्रणाली तथा नागरिक सुविधाओं का व्यापक विकास किया गया है। इन विकास कार्यों ने शहर की आधारभूत संरचना को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पर्यटन, व्यापार एवं आर्थिक गतिविधियों को भी नई गति प्रदान की है।प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य उज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन के आर्थिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषण करना है। विशेष रूप से यह अध्ययन स्थानीय व्यापार, पर्यटन, रोजगार, निवेश, आय सृजन तथा शहरी आर्थिक गतिविधियों में हुए परिवर्तनों का मूल्यांकन करता है। यह शोध इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता है कि क्या स्मार्ट सिटी मिशन ने उज्जैन की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में प्रभावी भूमिका निभाई है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष भविष्य में स्मार्ट सिटी परियोजनाओं के अधिक समावेशी, रोजगारोन्मुख एवं सतत क्रियान्वयन हेतु नीति-निर्माताओं, शोधकर्ताओं तथा नगर नियोजकों के लिए उपयोगी आधार प्रदान करेंगे।

साहित्य समीक्षा

स्मार्ट सिटी की अवधारणा बीते दो दशकों में शहरी विकास के क्षेत्र में एक महत्तवपूर्ण विषय के रूप में उभरी है। प्रारम्भिक अध्ययनों में इसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) आधारित शहरी प्रबंधन तक सीमित माना गया, किन्तु बाद के अध्ययनों में इसे आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन, पर्यावरणीय स्थिरता तथा सुशासन के समन्वित मॉडल के रूप में परिभाषित किया गया है। वॉशबर्न एवं अन्य (2010) के अनुसार स्मार्ट सिटी का उद्देश्य सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से शहरी सेवाओं को अधिक कुशल, पारदर्शी तथा नागरिक-केंद्रित बनाना है।गिफिंगर एवं अन्य (2007) ने स्मार्ट सिटी के छह प्रमुख आयाम स्मार्ट अर्थव्यवस्था, स्मार्ट शासन, स्मार्ट गतिशीलता, स्मार्ट पर्यावरण, स्मार्ट नागरिक तथा स्मार्ट जीवनकृका उल्लेख किया है। उनके अनुसार इन सभी आयामों का संतुलित विकास ही किसी शहर को वास्तविक अर्थों में स्मार्ट बनाता है। इसी प्रकार काराग्लियू, डेल बो एवं निकैम्प (2011) ने स्मार्ट शहरों को मानव पूंजी, सामाजिक पूंजी तथा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रभावी उपयोग पर आधारित विकास मॉडल बताया है। उनके अनुसार स्मार्ट सिटी स्थानीय आर्थिक विकास, निवेश आकर्षण, नवाचार तथा रोजगार सृजन को गति प्रदान करती है।भारतीय संदर्भ में स्मार्ट सिटी मिशन पर अनेक अध्ययन किए गए हैं। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2015 में प्रारम्भ किए गए स्मार्ट सिटी मिशन का उद्देश्य चयनित शहरों में आधुनिक आधारभूत संरचना, डिजिटल प्रशासन, नागरिक सेवाओं की गुणवत्ताा तथा स्थानीय आर्थिक विकास को सुदृढ़ करना है (आवास एवं शहरी कार्य मंत्रालय, 2015)।आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD, 2020) के अनुसार स्मार्ट शहर स्थानीय उद्यमिता, निवेश तथा उत्पादकता को प्रोत्साहित कर क्षेत्रीय आर्थिक विकास में महत्तवपूर्ण योगदान देते हैं। उज्जैन स्मार्ट सिटी से संबंधित उपलब्ध अध्ययनों से ज्ञात होता है कि महाकाल लोक परियोजना, स्मार्ट सड़कें, एकीकृत कमांड एवं कंट्रोल सेंटर, सार्वजनिक स्थलों के पुनर्विकास तथा डिजिटल सेवाओं के विस्तार ने शहर की आधारभूत संरचना को सुदृढ़ किया है। इन विकास कार्यों के परिणामस्वरूप धार्मिक पर्यटन, नई गति प्राप्त हुई है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में भी उज्जैन स्मार्ट सिटी परियोजना के आर्थिक प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में व्यापार, पर्यटन, आय स्तर, रोजगार, आर्थिक विकास सूचकांक तथा नागरिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्मार्ट सिटी मिशन ने उज्जैन के आर्थिक विकास में सकारात्मक योगदान दिया है।

अध्ययन के उद्देश्य - प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य उज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन के आर्थिक विकास पर प्रभावका विश्लेषण करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है:

1. उज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत संचालित प्रमुख विकास कार्यों का अध्ययन करना।
2. स्मार्ट सिटी मिशन के परिणामस्वरूप स्थानीय आर्थिक विकास पर पड़े प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. स्मार्ट सिटी परियोजना का पर्यटन, व्यापार, सेवा क्षेत्र तथा निवेश गतिविधियों पर प्रभाव का मूल्यांकन करना।
4. स्मार्ट सिटी मिशन के कारण रोजगार सृजन एवं स्थानीय नागरिकों की आय में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
5. उज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन के आर्थिक प्रभावों के आधार पर भविष्य के लिए नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध पद्धति - प्रस्तुत अध्ययन उज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन का आर्थिक विकास पर प्रभावविषय पर आधारित है। अध्ययन में स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत किए गए विकास कार्यों के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। इसके लिए वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध अभिकल्प का उपयोग किया गया है। यह शोध प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों पर आधारित है, जिससे अध्ययन को अधिक वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय बनाया जा सके।

अध्ययन क्षेत्र - अध्ययन क्षेत्र के रूप में मध्यप्रदेश के उज्जैन नगर का चयन किया गया है। उज्जैन भारत के प्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरों में से एक है तथा भगवान श्री महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग, सिंहस्थ महापर्व एवं धार्मिक पर्यटन के कारण इसकी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पहचान है। भारत सरकार के स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत उज्जैन को वर्ष 2016 में चयनित किया गया, जिसके पश्चात शहर में आधारभूत अवसंरचना, स्मार्ट परिवहन,

डिजिटल प्रशासन, सार्वजनिक सुविधाओं तथा पर्यटन विकास से संबंधित अनेक परियोजनाएँ संचालित की गईं।

आँकड़ों के स्रोत – अध्ययन मेंप्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ोंका उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संकलन संरचित प्रश्नावली एवं प्रत्यक्ष साक्षात्कार के माध्यम से किया गया। अध्ययन में स्थानीय व्यापारी, होटल व्यवसायी, सेवा क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति, पर्यटक तथा सामान्य नागरिकों को उत्तरदाता के रूप में सम्मिलित किया गया। द्वितीयक आँकड़े स्मार्ट सिटी मिशन के आधिकारिक दस्तावेजों, उज्जैन स्मार्ट सिटी लिमिटेड की वार्षिक रिपोर्टों, आवास एवं शहरी कार्य मंत्रालय, भारत सरकार के प्रकाशनों, शोध–पत्रों, पुस्तकों तथा शोध–प्रबंधों से संकलित किए गए। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोध–प्रबंध में उपलब्ध आँकड़ों एवं विश्लेषण का भी उपयोग किया गया है।

प्रतिदर्श चयन – प्रस्तुत अध्ययन मेंकुल 200 उत्तरदाताओंको प्रतिदर्श (Sample) के रूप में चयनित किया गया। उत्तरदाताओं का चयनस्तरीकृत एवं उद्देश्यपूर्ण नमूना पद्धति (Stratified-cum-Purposive Sampling Method) के आधार पर किया गया। इस पद्धति का चयन इसलिए किया गया क्योंकि अध्ययन का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करना था, जो स्मार्ट सिटी मिशन के आर्थिक प्रभावों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अनुभव रखते हों। प्रतिदर्श चयन के प्रथम चरण में उज्जैन नगर के उन क्षेत्रों का चयन किया गया जहाँ स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत प्रमुख विकास कार्य किए गए हैं। इनमें महाकाल महालोक परिसर, रुद्रसागर क्षेत्र, प्रमुख बाजार एवं व्यापारिक क्षेत्र, पर्यटन स्थल तथा परिवहन सेवाओं से जुड़े क्षेत्रशामिल किए गए। इन क्षेत्रों का चयन इस आधार पर किया गया कि यहाँ स्मार्ट सिटी परियोजना के कारण आर्थिक गतिविधियों, पर्यटन एवं व्यापार में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिला है। द्वितीय चरण में चयनित क्षेत्रों से विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक वर्गों के उत्तरदाताओं को सम्मिलित किया गया, ताकि अध्ययन में सभी प्रमुख हितधारकों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। प्रतिदर्श में स्थानीय व्यापारी, होटल एवं रेस्टोरेंट संचालक, परिवहन व्यवसायी (ऑटो, ई–रिक्शा एवं टैक्सी चालक), पर्यटन एवं सेवा क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति तथा स्थानीय नागरिकों को शामिल किया गया। इससे परियोजना के आर्थिक प्रभावों का बहुआयामी विश्लेषण संभव हुआ।

पर्यटन एवं स्थानीय व्यापार पर प्रभाव – पर्यटन एवं स्थानीय व्यापार पर प्रभाव के सम्बन्ध में 200 उत्तरदाताओं से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि 75.0प्रतिशत उत्तरदाताओंका मत है कि स्मार्ट सिटी मिशन एवं महाकाल महालोक परियोजना के क्रियान्वयन के पश्चात पर्यटन गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिससे स्थानीय छोटे व्यापारों को प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। वहीं 15.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक लाभ होने की बात कही, जबकि 10.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने किसी विशेष लाभ से असहमति व्यक्त की। यह परिणाम स्पष्ट करता है कि स्मार्ट सिटी परियोजना के अंतर्गत विकसित आधारभूत संरचना, बेहतर यातायात व्यवस्था, सार्वजनिक सुविधाओं का विस्तार तथा धार्मिक पर्यटन को प्रोत्साहन मिलने से स्थानीय व्यापारिक गतिविधियों में सकारात्मक परिवर्तन आया। विशेष रूप से प्रसाद, फूल–माला, धार्मिक सामग्री, होटल, रेस्टोरेंट, परिवहन तथा हस्तशिल्प से जुड़े व्यवसायों में मांग बढ़ी, जिससे व्यापारियों की आय एवं आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि हुई। अवलोकन के दौरान महाकाल महालोक, हरसिद्धि मार्ग, रुद्रसागर क्षेत्र एवं मंदिर के आसपास स्थित बाजारों में पर्यटकों की संख्या तथा व्यापारिक गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था अधिक सक्रिय एवं गतिशील प्रतीत हुई। समूह चर्चा में अधिकांश व्यापारियों, होटल संचालकों एवं स्थानीय नागरिकों ने बताया कि महाकाल महालोक परियोजना के बाद ग्राहकों की संख्या, व्यापारिक आय एवं रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है, यद्यपि कुछ प्रतिभागियों के अनुसार इसका लाभ मुख्यत: प्रमुख बाजारों एवं मंदिर परिसर के आसपास स्थित व्यवसायों को अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त हुआ।

रोजगार सृजन पर प्रभाव– रोजगार सृजन पर प्रभाव के सन्दर्भ में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि 60 प्रतिशत उत्तरदाताओंने पर्यटन आधारित रोजगार वृद्धि के प्रभाव को 'अत्यंत सकारात्मक', 25 प्रतिशत ने 'सकारात्मक', 10 प्रतिशतने 'सामान्य' तथा केवल 5 प्रतिशतने 'नकारात्मक' बताया। इससे स्पष्ट होता है कि स्मार्ट सिटी मिशन एवं महाकाल महालोक परियोजना के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई है। विशेष रूप से होटल, रेस्टोरेंट, परिवहन, पर्यटन सेवाओं, धार्मिक सामग्री, प्रसाद, हस्तशिल्प एवं अन्य सेवा क्षेत्रों में नए रोजगार के अवसर विकसित हुए, जिससे स्थानीय आर्थिक गतिविधियों को गति मिली। अवलोकन के दौरान यह पाया गया कि महाकाल महालोक एवं आसपास के क्षेत्रों में होटल, भोजनालय, ई–रिक्शा, टैक्सी सेवाओं तथा अस्थायी व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या पूर्व की तुलना में अधिक दिखाई दी, जिससे रोजगार गतिविधियों में वृद्धि का संकेत मिलता है। समूह चर्चा में होटल संचालकों, ई–रिक्शा चालकों, स्थानीय व्यापारियों एवं युवाओं ने बताया कि स्मार्ट सिटी परियोजना के बाद पर्यटन में वृद्धि से रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए हैं तथा विशेष रूप से युवाओं को सेवा एवं पर्यटन क्षेत्र में रोजगार प्राप्त हुआ है।

रोजगार सृजन पर प्रभाव– रोजगार सृजन पर प्रभावसे प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि 60.0प्रतिशत उत्तरदाताओंने पर्यटन आधारित रोजगार वृद्धि के प्रभाव को 'अत्यंत सकारात्मक', 25.0प्रतिशतने 'सकारात्मक', 10.0प्रतिशतने 'सामान्य' तथा केवल 5 प्रतिशतने 'नकारात्मक' बताया। इससे स्पष्ट होता है कि स्मार्ट सिटी मिशन एवं महाकाल महालोक परियोजना के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई है। विशेष रूप से होटल, रेस्टोरेंट, परिवहन, पर्यटन सेवाओं, धार्मिक सामग्री, प्रसाद, हस्तशिल्प एवं अन्य सेवा क्षेत्रों में नए रोजगार के अवसर विकसित हुए, जिससे स्थानीय आर्थिक गतिविधियों को गति मिली।अवलोकन अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि महाकाल महालोक एवं आसपास के क्षेत्रों में होटल, भोजनालय, ई–रिक्शा, टैक्सी सेवाओं तथा अस्थायी व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या पूर्व की तुलना में अधिक दिखाई दी, जिससे रोजगार गतिविधियों में वृद्धि का संकेत मिलता है।समूह चर्चा में होटल संचालकों, ई–रिक्शा चालकों, स्थानीय व्यापारियों एवं युवाओं ने बताया कि स्मार्ट सिटी परियोजना के बाद पर्यटन में वृद्धि से रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए हैं तथा विशेष रूप से युवाओं को सेवा एवं पर्यटन क्षेत्र में रोजगार प्राप्त हुआ है।

निवेश एवं नए व्यवसायों पर प्रभाव– निवेश एवं नए व्यवसायों पर प्रभाव से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि 61.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उज्जैन में नए निवेश की स्थिति को उच्च, 36.0 प्रतिशत ने

मध्यम तथा केवल 3.0 प्रतिशत ने निम्न स्तर का माना। इसी प्रकार 66.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि स्मार्ट सिटी मिशन के क्रियान्वयन के बाद नए व्यवसायों एवं स्टार्टअप की संख्या में वृद्धि हुई है, जबकि 19.0 प्रतिशत ने इससे असहमति व्यक्त की तथा 15.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस विषय में स्पष्ट जानकारी न होने की बात कही। इन निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि बेहतर आधारभूत अवसंरचना, धार्मिक पर्यटन में वृद्धि, डिजिटल सुविधाओं तथा निवेश-अनुकूल वातावरण के कारण स्थानीय उद्यमिता एवं व्यावसायिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला है।अवलोकन के दौरान महाकाल महालोक, हरसिद्धि मार्ग एवं प्रमुख बाजारों के आसपास नए होटल, भोजनालय, कैफे, प्रसाद एवं धार्मिक सामग्री की दुकानें, ट्रैवल एजेंसियाँ तथा ई-रिक्शा सेवाओं में वृद्धि देखी गई, जो स्थानीय निवेश एवं उद्यमिता के विस्तार का संकेत देती है।समूह चर्चा में व्यापारियों, होटल संचालकों एवं स्थानीय उद्यमियों ने बताया कि स्मार्ट सिटी परियोजना के बाद पर्यटकों की बढ़ती संख्या के कारण नए व्यापार प्रारम्भ करने के अवसर बढ़े हैं तथा निजी निवेश में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, यद्यपि कुछ प्रतिभागियों ने छोटे व्यापारियों के लिए वित्तीय सहायता एवं विपणन सुविधाओं को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता बताई।

आय स्तर पर प्रभाव- आय स्तर पर प्रभाव से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि कि72.0प्रतिशत उत्तरदाताओंने माना कि पर्यटन गतिविधियों में वृद्धि के कारण उनकी आय पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जबकि 15.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक प्रभाव तथा 13.0प्रतिशत उत्तरदाताओं ने किसी विशेष प्रभाव से असहमति व्यक्त की। यह परिणाम दर्शाता है कि स्मार्ट सिटी मिशन एवं महाकाल महालोक परियोजना के फलस्वरूप धार्मिक पर्यटन में वृद्धि ने स्थानीय व्यापार, होटल, परिवहन, प्रसाद, फूल-माला एवं अन्य सेवा क्षेत्रों से जुड़े लोगों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि की है। हालांकि कुछ ऐसे व्यवसाय, जो प्रत्यक्ष रूप से पर्यटन गतिविधियों से जुड़े नहीं थे, उनमें आय वृद्धि का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पाया गया।अवलोकन के दौरान यह देखा गया कि महाकाल महालोक एवं आसपास के क्षेत्रों में व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होने से स्थानीय व्यापारियों, होटल संचालकों तथा परिवहन सेवाओं से जुड़े व्यक्तियों की आय में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ।समूह चर्चा में अधिकांश व्यापारियों, होटल संचालकों, ई-रिक्शा चालकों एवं स्थानीय नागरिकों ने बताया कि महाकाल महालोक परियोजना के बाद पर्यटकों की संख्या बढ़ने से उनकी दैनिक एवं मासिक आय में वृद्धि हुई है, जबकि कुछ प्रतिभागियों ने यह भी बताया कि यह लाभ मुख्यत: पर्यटन एवं सेवा क्षेत्र से जुड़े व्यवसायों तक अधिक सीमित रहा।

निवेश एवं नए व्यवसायों पर प्रभाव- निवेश एवं नए व्यवसायों पर प्रभाव विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि 61.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उज्जैन में नए निवेश की स्थिति कोउच्च, 36.0 प्रतिशत ने मध्यम तथा केवल 3.0 प्रतिशत ने निम्न स्तर का माना। इसी प्रकार 66.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि स्मार्ट सिटी मिशन के क्रियान्वयन के बाद नए व्यवसायों एवं स्टार्टअप की संख्या में वृद्धि हुई है, जबकि 19.0 प्रतिशतने इससे असहमति व्यक्त की तथा 15.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस विषय में स्पष्ट जानकारी न होने की बात कही। इन निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि बेहतर आधारभूत अवसंरचना, धार्मिक पर्यटन में वृद्धि, डिजिटल सुविधाओं तथा निवेश-अनुकूल वातावरण के कारण स्थानीय उद्यमिता एवं व्यावसायिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला है।अवलोकन के दौरान महाकाल महालोक, हरसिद्धि मार्ग एवं प्रमुख बाजारों के आसपास नए होटल, भोजनालय, कैफे, प्रसाद एवं धार्मिक सामग्री की दुकानें, ट्रैवल एजेंसियाँ तथा ई-रिक्शा सेवाओं में वृद्धि देखी गई, जो स्थानीय निवेश एवं उद्यमिता के विस्तार का संकेत देती है।समूह चर्चा में व्यापारियों, होटल संचालकों एवं स्थानीय उद्यमियों ने बताया कि स्मार्ट सिटी परियोजना के बाद पर्यटकों की बढ़ती संख्या के कारण नए व्यापार प्रारम्भ करने के अवसर बढ़े हैं तथा निजी निवेश में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, यद्यपि कुछ प्रतिभागियों ने छोटे व्यापारियों के लिए वित्तीय सहायता एवं विपणन सुविधाओं को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता बताई।

निष्कर्ष - स्मार्ट सिटी मिशन ने उज्जैन की स्थानीय अर्थव्यवस्था पर समग्र रूप से सकारात्मक प्रभाव डाला है। अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात हुआ कि परियोजना के परिणामस्वरूप धार्मिक पर्यटन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिससे स्थानीय व्यापार, होटल उद्योग, परिवहन, सेवा क्षेत्र तथा लघु उद्यमों को प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। अधिकांश उत्तरदाताओं ने माना कि पर्यटन में वृद्धि के कारण व्यापारिक गतिविधियाँ, आय के अवसर तथा रोजगार सृजन में वृद्धि हुई है।अध्ययन में यह भी पाया गया कि स्मार्ट सिटी मिशन के अंतर्गत विकसित आधारभूत अवसंरचना, बेहतर सड़क नेटवर्क, डिजिटल सेवाएँ, सार्वजनिक सुविधाएँ तथा महाकाल महालोक परियोजना ने उज्जैन को एक अधिक आकर्षक धार्मिक एवं पर्यटन गंतव्य के रूप में स्थापित किया है। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय निवेश में वृद्धि हुई तथा नए व्यवसायों एवं उद्यमिता को प्रोत्साहन मिला। आर्थिक विकास सूचकांक का मान 80.17 प्राप्त होना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि अध्ययन क्षेत्र में आर्थिक विकास का स्तर उच्च श्रेणी का है।

यद्यपि अध्ययन में स्मार्ट सिटी मिशन के अधिकांश प्रभाव सकारात्मक पाए गए, तथापि यह भी स्पष्ट हुआ कि परियोजना के लाभ सभी सामाजिक एवं आर्थिक वर्गों में समान रूप से वितरित नहीं हुए। मंदिर परिसर एवं प्रमुख पर्यटन मार्गों से जुड़े व्यापारियों और सेवा प्रदाताओं को अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त हुआ, जबकि आंतरिक क्षेत्रों के कुछ व्यवसायों पर इसका प्रभाव सीमित रहा। इसलिए भविष्य में स्मार्ट सिटी योजनाओं के अंतर्गत समावेशी आर्थिक विकास, स्थानीय उद्यमिता, कौशल विकास, सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के संवर्धन तथा स्थानीय समुदाय की सहभागिता पर विशेष बल दिया जाना आवश्यक है।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है किउज्जैन स्मार्ट सिटी मिशन ने धार्मिक पर्यटन को आर्थिक विकास के प्रभावी माध्यम में परिवर्तित करते हुए स्थानीय व्यापार, रोजगार, आय एवं निवेश को सुदृढ़ किया है।यदि भविष्य में स्मार्ट सिटी परियोजनाओं का क्रियान्वयन स्थानीय आवश्यकताओं, सांस्कृतिक विरासत तथा सतत विकास के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाए, तो यह मॉडल अन्य धार्मिक एवं पर्यटन-प्रधान शहरों के लिए भी आर्थिक विकास का एक प्रभावी एवं अनुकरणीय मॉडल सिद्ध हो सकता है।

सुझाव :

1. **पर्यटन का विकेंद्रीकरण -** महाकाल महालोक एवं मंदिर परिसर के अतिरिक्त कालभैरव, सांदीपनि आश्रम, मंगलनाथ, चिंतामण गणेश तथा अन्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों का समग्र विकास किया जाए, ताकि पर्यटकों का प्रवाह पूरे शहर में समान रूप से वितरित हो

तथा स्थानीय व्यापारियों को व्यापक आर्थिक लाभ प्राप्त हो।

2. **स्थानीय लघु एवं सूक्ष्म उद्यमों को प्रोत्साहन –** स्थानीय व्यापारियों, हस्तशिल्पियों एवं स्वरोजगार से जुड़े लोगों को आसान ऋण, विपणन सहायता तथा डिजिटल भुगतान की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।
3. **युवाओं के लिए कौशल विकास कार्यक्रम संचालित किए जाएँ–** पर्यटन, होटल प्रबंधन, गाइड सेवा, डिजिटल मार्केटिंग तथा आतिथ्य क्षेत्र में नियमित प्रशिक्षण देकर स्थानीय युवाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाए जाएँ।
4. **स्थानीय नागरिकों की सहभागिता बढ़ाई जाए–** स्मार्ट सिटी परियोजनाओं की योजना एवं क्रियान्वयन में व्यापारिक संगठनों, नागरिक समूहों एवं सामाजिक संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए, जिससे योजनाएँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप हों।
5. **डिजिटल पर्यटन सेवाओं का विस्तार किया जाए–** पर्यटकों के लिए मोबाइल एप, बहुभाषीय सूचना प्रणाली, स्मार्ट पार्किंग, ऑनलाइन टिकटिंग तथा डिजिटल गाइड जैसी सुविधाओं का विकास किया जाए, जिससे पर्यटन अनुभव अधिक सुविधाजनक एवं प्रभावी बन सके।
6. महिला एवं युवा उद्यमिता को विशेष प्रोत्साहन दिया जाए।
7. स्थानीय उत्पादों एवं हस्तशिल्प के विपणन हेतु स्थायी बाजार विकसित किए जाएँ, जिससे धार्मिक पर्यटन का लाभ स्थानीय कारीगरों एवं छोटे उद्यमियों तक पहुँच सके।
8. स्मार्ट सिटी परियोजनाओं के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों का नियमित मूल्यांकन किया जाए, ताकि योजनाओं की प्रभावशीलता का आकलन कर आवश्यक सुधार समय पर किए जा सकें।
9. हरित एवं सतत शहरी विकास को प्राथमिकता दी जाए।स्वच्छता, हरित क्षेत्र, अपशिष्ट प्रबंधन, जल संरक्षण तथा पर्यावरण–अनुकूल परिवहन को स्मार्ट सिटी विकास का अभिन्न हिस्सा बनाया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आवास एवं शहरी कार्य मंत्रालय. (2015). स्मार्ट सिटी मिशन: मिशन वक्तव्य एवं दिशा–निर्देश. भारत सरकार।
2. काराग्लियू, ए., डेल बो, सी., एवं निकैम्प, पी. (2011). स्मार्ट सिटीज इन यूरोप.जर्नल ऑफ अर्बन टेक्नोलॉजी, 18(2), 65–82.
3. गिफिंगर, आर., फर्टनर, सी., क्रामर, एच., कालासेक, आर., पिचलर–मिलानोविच, एन., एवं मीजर्स, ई. (2007). स्मार्ट सिटीज: रैंकिंग ऑफ यूरोपियन मीडियम–साइज्ड सिटीज. वियना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय।
4. आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD). (2020). स्मार्ट सिटीज एंड इन्क्लूसिव ग्रोथ: बिल्डिंग सस्टेनेबिलिटी. OECD पब्लिशिंग।
5. संयुक्त राष्ट्र. (2018). विश्व शहरीकरण संभावनाएँ: 2018 संशोधित संस्करण. संयुक्त राष्ट्र।
6. वॉशबर्न, डी., सिंधु, यू., बालौरास, एस., डाइन्स, आर., हेज, एन., एवं नेल्सन, एल. ई. (2010). स्मार्ट सिटी पहलों को समझना. फॉरेस्टर रिसर्च।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Forest Resource Utilization and Economic Development in Bilaspur Division, Chhattisgarh: A Geographical Analysis

Supriyo Haldar* Dr. Ratnesh Kumar Khanna**

***Research Scholar (Geography) Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (CG) INDIA**
**** Assistant Professor (Geography) Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (CG) INDIA**

Abstract: Forest resources constitute a major component of the natural-resource base of Chhattisgarh and have an important role in rural livelihoods, employment generation and local economic development. This paper examines the utilization of forest resources and their contribution to household economic development in Bilaspur Division, Chhattisgarh, from a geographical perspective. The paper is based on the framework of a Ph.D. study that combines secondary information with household-level primary data. The study considers the six districts forming the relevant 2020 administrative framework of Bilaspur Division—Bilaspur, Mungeli, Janjgir-Champa, Korba, Raigarh and Gaurela-Pendra-Marwahi—and investigates differences in forest dependence, non-timber forest product (NTFP) collection, forest-based employment, household income, market access and livelihood diversification. The analysis shows that forest resources should be understood not simply as ecological assets but as productive assets within rural economies. Their economic significance is expressed through direct consumption, sale of NTFPs, seasonal employment, supplementary income and risk reduction during periods of agricultural uncertainty. At the same time, economic returns vary spatially according to resource availability, accessibility, market connectivity, household characteristics and institutional support. The paper argues that sustainable forest-based economic development requires value addition, better market access, improved storage and processing, community participation, women's involvement and effective implementation of government programmes. The geographical approach adopted in the study helps connect forest-resource availability with uneven livelihood opportunities across the study region.
Keywords: Forest resources; forest utilization; NTFPs; rural economy; household income; employment; livelihood diversification; Bilaspur Division; Chhattisgarh; geographical analysis.

Introduction - Forests perform multiple ecological, economic and social functions. In rural regions, their importance extends beyond timber and includes fuelwood, fodder, fruits, fibres, medicinal plants, bamboo, lac, tendu leaves, gums, resins, honey and other NTFPs. These resources contribute to household consumption and provide opportunities for cash income and employment. The thesis on which this paper is based identifies forest resources as a significant part of the natural-resource base supporting ecological stability, livelihoods and regional economic development. It also emphasizes that the intensity of forest utilization differs with physical conditions, resource availability, accessibility, population pressure, market demand and livelihood systems.

Bilaspur Division provides an appropriate geographical setting for studying these relationships because the region contains considerable variation in forest distribution, rural settlement, occupations, market accessibility and dependence on natural resources. The research framework uses the administrative structure applicable when the Ph.D. research was registered in 2020, covering six districts: Bilaspur, Mungeli, Janjgir-Champa, Korba, Raigarh and Gaurela-Pendra-Marwahi. The thesis methodology specifies one forest-related block from each district and one forest-related or forest-fringe village from each selected block, with a planned primary sample of 600 rural households, or 100 households per selected village.

Economic development in forest-dependent areas is multidimensional. Forest products may generate income directly, but their contribution also appears through reduced expenditure on purchased fuel and food, seasonal employment, household consumption, livelihood diversification and risk management. The economic value of forests is therefore partly visible in markets and partly embedded in household subsistence. A geographical analysis is especially useful because the same forest product may have different economic importance in different villages depending on distance, transport, market conditions

and household dependence.

Objectives:

1. To examine the pattern and present status of forest-resource utilization in the study area.
2. To assess the contribution of forest resources to household income and employment.
3. To examine the relationship between forest utilization, NTFP collection and economic development.
4. To identify spatial variations in forest-based economic opportunities and constraints.
5. To suggest measures for sustainable and inclusive forest-based economic development.

Methodology: The research adopts an integrated geographical methodology. Secondary information is used to understand the regional framework, forest distribution, demographic conditions and broader economic context. Primary household information is designed to capture the actual use of forest resources, collection frequency, purposes of use, quantities, forest-derived income, employment, marketing practices and livelihood dependence. The thesis states that the principal instrument is a structured household questionnaire, supported by a field-observation schedule. The questionnaire also records perceptions concerning changes in forest-resource availability and government programmes.

The household-level variables include forest-collection frequency, annual collection days, forest-product output, annual forest income, the share of forest income in total household income, forest-based employment, landholding, occupation, market accessibility and livelihood diversification. The research also uses coding and index-based approaches for forest utilization and socio-economic indicators. The prepared research schedule classifies utilization into low, medium and high categories and includes a five-point scale for forest-management and government-policy perceptions.

For analysis, information can be presented through percentages, averages, rankings, composite indices, correlation and association tests. The thesis framework also proposes statistical examination of relationships between forest utilization and forest-cover status, household income, forest-product output, and government policy support and forest management. Such analysis is useful for determining whether observed differences represent systematic spatial relationships rather than isolated household experiences.

Forest Resources as Economic Assets: The economic contribution of forests can be understood through four linked channels: subsistence, income, employment and livelihood security. First, households use forest products directly for fuel, fodder, food and medicinal purposes. Such consumption has an implicit economic value because it substitutes for market purchases. Second, households sell NTFPs and other forest products, generating cash income. Third, forest collection, processing, transport and marketing create employment. Fourth, forest resources provide a buffer during agricultural lean periods and reduce dependence on a single livelihood source.

The thesis literature review identifies a major research gap in studies that examine these dimensions separately. It notes that comparatively less research integrates forest condition, household income, employment, value addition, ecosystem services, market access, management practices and government policy within a single geographical framework. It also highlights that forest-based economic benefits are influenced by institutions, procurement arrangements, cooperatives, local processing and market conditions.

This integrated perspective is important for Bilaspur Division because economic benefits cannot be explained by resource availability alone. A village with abundant forest resources may receive lower economic returns if roads are poor, markets are distant, storage is absent or collectors have weak bargaining power. Conversely, relatively accessible villages may obtain greater returns through frequent collection, better market connections and value addition. Thus, spatial accessibility acts as a bridge between ecological assets and household economic outcomes.

Forest Utilization, NTFPs and Household Income: NTFPs are particularly significant for vulnerable rural households because they can be collected with relatively limited financial investment and often provide seasonal employment. Products such as tendu leaves, mahua, tamarind, bamboo, medicinal plants, honey and lac may be consumed, exchanged or sold. The economic importance of a product depends on quantity, seasonality, market price, processing requirements and the proportion retained for household use.

Forest income should not be interpreted only as a single annual monetary value. It may be distributed across several months and may fluctuate with rainfall, resource availability and market prices. Consequently, the timing of income can be as important as its total amount. Seasonal forest income can help households meet food, education, health and agricultural expenses when farm income is unavailable. This makes forest resources an important element of livelihood resilience.

The thesis framework records annual forest-derived income and its share in total household income, along with employment generated by forest activity. This permits classification of households according to the degree of forest dependence. The prepared coding schedule also includes forest-product output and forest income as distinct analytical variables.

Market Access and Value Addition: The economic value realized by forest collectors depends strongly on the marketing system. Direct sale to consumers, cooperative procurement or government-supported collection centres may offer different returns from sale through local traders. Problems such as low prices, middlemen, lack of storage, inadequate transport, limited processing facilities and weak

market information can reduce the share of final value received by primary collectors.

Value addition offers an important pathway for improving forest-based economic development. Cleaning, grading, drying, packaging, processing and local manufacturing can transform low-value raw materials into higher-value products. Such activities can also generate local employment, especially for women and self-help groups. However, value addition requires skills, equipment, credit, market information and institutional support. Therefore, policies should move beyond collection and focus on complete value chains.

Forest Employment and Livelihood Diversification: Forest activities generate direct and indirect employment. Collection is often undertaken by household members, while transport, sorting, processing, storage and marketing create additional work. In areas where agricultural employment is seasonal, forest activities may reduce periods of unemployment. The thesis framework explicitly records forest-based employment and asks whether forest collection provides off-season employment and reduces migration. These variables are important because the economic contribution of forests cannot be captured adequately through income alone.

Livelihood diversification is another important outcome. Households may combine agriculture, wage labour, livestock, forest collection, small trade and services. Forest income can function as a complementary source rather than replacing agriculture. Diversification may reduce vulnerability to crop failure, fluctuating agricultural prices and seasonal unemployment. In this sense, sustainable forest utilization contributes to economic resilience.

Spatial Dimension: Forest distribution is spatially uneven because it reflects variations in relief, climate, rainfall, soil, drainage, geological conditions and human intervention. Accessibility and land-use change further influence forest concentration and fragmentation. The thesis emphasizes that geographical analysis can identify areas of high, moderate and low forest concentration and explain spatial differences in livelihood opportunities.

For Bilaspur Division, spatial analysis should therefore compare selected villages and blocks in terms of forest dependence, collection frequency, output, income, employment and market access. The resulting pattern can reveal whether forest-based economic development is concentrated in particular locations or broadly distributed. Such evidence is valuable for targeted planning because a uniform policy may not address the different constraints experienced by resource-rich, market-connected and remote villages.

Major Economic Constraints:

1. Declining availability of selected forest products and seasonal fluctuations.
2. Poor road and transport connectivity in forest-fringe settlements.
3. Low returns to primary collectors because of weak bargaining power.
4. Limited storage, processing and value-addition facilities.
5. Inadequate market information and dependence on intermediaries.
6. Limited awareness or accessibility of government livelihood programmes.
7. Potential conflict between short-term extraction and long-term resource conservation.

Policy Implications: Forest-based economic development should be designed around sustainability and local value retention. First, collection should be linked with regeneration and resource monitoring. Second, procurement and market systems should improve price realization for primary collectors. Third, village-level storage and processing infrastructure should be strengthened. Fourth, women's self-help groups and community institutions should be supported in processing and marketing. Fifth, training should focus on sustainable harvesting, quality control, packaging and enterprise development. Finally, GIS and remote sensing can support spatial monitoring of forest condition and help identify areas where utilization pressure is increasing.

The literature review in the thesis also indicates that forest governance has evolved toward conservation, community participation, livelihood security and climate objectives, while implementation remains influenced by administrative capacity, local institutions, market forces and community participation.

Conclusion: Forest resources make an important contribution to the rural economy of Bilaspur Division through subsistence, income, employment and livelihood diversification. Their contribution is spatially differentiated and depends on ecological availability as well as accessibility, market conditions, household characteristics and institutions. A development strategy that treats forests only as sources of raw materials will not fully capture their economic potential. Sustainable harvesting, value addition, better market access, community participation and effective policy implementation are necessary to increase household benefits while maintaining forest resources. The geographical approach of the underlying Ph.D. study provides a useful framework for understanding these interrelationships and for designing location-specific strategies for sustainable forest-based economic development.

References:-

1. Food and Agriculture Organization. (2022). The state of the world's forests 2022: Forest pathways for green recovery and building inclusive, resilient and sustainable economies. FAO.
2. Forest Survey of India. (2023). India state of forest report 2023. Ministry of Environment, Forest and

Climate Change, Government of India.
3. Ministry of Environment and Forests. (1988). National forest policy, 1988. Government of India.
4. Government of Chhattisgarh. (Various years). Forest and forest-resource related reports and statistical publications. Government of Chhattisgarh.
5. Haldar, S. (2026). Forest resource utilization and its impact on economic and socio-economic development: A geographical study of Bilaspur Division, Chhattisgarh [Ph.D. thesis]. Dr. C. V. Raman University.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Quantum Transport in Low-Dimensional Nanostructures: Bridging Ballistic Regimes, Topological Phases, and Next-Generation Device Architectures

Dr. Santvana Bapna*

***Assistant Professor, B. N. P. G. Girls' College, Rajsamand (Raj.) INDIA**

Abstract: Quantum transport in low-dimensional nanostructures-encompassing zero-dimensional (0D) quantum dots, one-dimensional (1D) nanowires and graphene nanoribbons, and two-dimensional (2D) materials and their heterostructures has emerged as one of the most dynamic frontiers in condensed matter physics. The progressive miniaturization of electronic devices to the nanoscale has rendered classical transport theories inadequate, necessitating a quantum mechanical framework that captures ballistic transport, quantum interference, weak localization, and topological protection. This comprehensive review critically examines the recent developments in quantum transport engineering across low-dimensional systems, with particular emphasis on progress reported between 2023 and 2025. We analyze the fundamental transport regimes from ohmic and ballistic conduction to quantum coherent and dissipative transport and survey the key experimental and theoretical advances in graphene nanoribbons, carbon nanotubes, topological insulator nanowires, transition metal dichalcogenides, and van der Waals heterostructures. Special attention is devoted to emerging quantum phenomena including flat-band-induced transport anomalies in twisted bilayer graphene and quasicrystals, negative differential resistance in passivated graphene nanoribbon devices, and spin-polarized quantized transport at nanowire-graphene interfaces. The review also highlights transformative computational advances, particularly deep learning-accelerated quantum transport simulations that achieve 2–3 orders of magnitude speedup over conventional methods. Finally, we discuss future perspectives including the integration of topological materials in quantum computing architectures, the role of quantum transport in energy-efficient spintronics and spin caloritronics, and the challenges in scaling quantum transport phenomena to practical device applications.
Keywords: Quantum transport, low-dimensional nanostructures, ballistic transport, topological insulators, graphene nanoribbons, quantum interference, weak localization, non-equilibrium Green's function, topological quantum devices, spin transport.

Introduction - The relentless pursuit of device miniaturization has driven the semiconductor industry into the deep nanoscale regime, where the classical laws of charge transport rooted in Drude conductivity and Boltzmann transport theory cease to provide an adequate description of electronic behavior. At dimensions comparable to or smaller than the electron mean free path, the Fermi wavelength, and the phase coherence length, quantum mechanical effects dominate the transport properties of materials. This paradigm shift has given rise to the field of quantum transport, which seeks to understand and engineer the flow of charge, spin, and heat in low-dimensional systems where quantum confinement, interference, and coherence play defining roles.

Low-dimensional nanostructures classified by their degree of quantum confinement as zero-dimensional (0D) quantum dots, one-dimensional (1D) nanowires, nanoribbons, and carbon nanotubes, and two-dimensional (2D) materials such as graphene and transition metal dichalcogenides (TMDs) exhibit electronic properties that are fundamentally different from their bulk counterparts-. The reduced dimensionality leads to discretization of energy levels, enhanced carrier mobility, and the emergence of novel quantum phases that are inaccessible in three-dimensional systems. These properties have positioned low-dimensional nanostructures as the building blocks for next-generation electronics, spintronics, and quantum information processing.

Over the past two decades, the quantum transport community has witnessed remarkable progress across multiple fronts. The discovery of graphene and other 2D materials has provided pristine platforms for studying ballistic transport, the quantum Hall effect, and relativistic Dirac fermions. The synthesis of atomically precise

graphene nanoribbons (GNRs) through bottom-up on-surface chemistry has enabled systematic investigation of width-dependent bandgap engineering and edge-state transport. The emergence of topological insulators materials that are insulating in the bulk but conducting on the surface has opened new avenues for dissipationless transport and spin-momentum locking. Concurrently, theoretical and computational tools have evolved dramatically, with the non-equilibrium Green's function (NEGF) method emerging as the cornerstone for quantum transport simulations in open boundary conditions.

The period 2023–2025 has witnessed particularly intensive activity in the field, characterized by several breakthrough developments. These include the experimental realization of ballistic spin transport in graphene spintronic devices, the discovery of negative differential resistance with record-high peak-to-valley current ratios in passivated graphene nanoribbons, the observation of flat-band-induced quantum transport anomalies in twisted bilayer graphene and quasicrystals, and the demonstration of deep learning-accelerated quantum transport simulations capable of handling device geometries with tens of thousands of atoms.

This review aims to provide a comprehensive and critical overview of quantum transport in low-dimensional nanostructures, with a focus on recent developments and future perspectives.

Theoretical Foundations Of Quantum Transport

1. The Landauer-Büttiker Formalism: The Landauer-Büttiker formalism provides the conceptual framework for understanding quantum transport in mesoscopic and nanoscale systems. Unlike the semiclassical Boltzmann approach, which treats electrons as particles undergoing scattering, the Landauer picture views transport as a quantum scattering problem. The conductance G of a nanoscale conductor connected to two reservoirs is given by the Landauer formula:

$$G = \frac{2e^2}{h} \; {}_{n}T_{n}$$

where Tn are the transmission eigenvalues of the conducting channels, e is the electron charge, and h is Planck's constant. The factor $2e^2/h$ is the quantum of conductance, approximately 77.5 μS, corresponding to a resistance of 12.9 kΩ. This formula captures the quantization of conductance observed in quantum point contacts and 1D nanowires, where each open transmission channel contributes one quantum of conductance.

The Landauer-Büttiker formalism has been extended to multi-terminal geometries and accounts for the role of electron–electron interactions. For systems where phase coherence is maintained throughout the device, the transmission eigenvalues can be obtained from the scattering matrix, which relates incoming and outgoing wavefunctions.

2. The Non-Equilibrium Green's Function Method: For more complex device geometries and systems with electron–phonon interactions or disorder, the NEGF method provides a rigorous theoretical framework. The NEGF approach, originally developed by Keldysh and others, describes quantum transport in open systems under non-equilibrium conditions. The central quantities are the retarded Green's function Gr(E) and the lesser Green's function G<(E), which contain information about the available quantum states and their occupation, respectively.

The NEGF method has proven particularly powerful for studying quantum transport in low-dimensional nanostructures. It can systematically incorporate electron–electron correlations, electron–phonon interactions, and disorder effects. Recent applications include the study of quantum thermal transport and spin thermoelectrics in low-dimensional systems, where the NEGF method has revealed distinct behaviors of phonon transport compared with electrons, intrinsic anisotropy of phonon transport, and defect-induced localization phenomena.

3. Ballistic and Diffusive Transport Regimes: The nature of quantum transport in low-dimensional systems is determined by the relative magnitudes of three length scales: the electron mean free path (le), the phase coherence length (lφ), and the device dimension (L). In the ballistic regime (L << le), electrons traverse the device without scattering, and transport is governed by quantum interference effects. In the diffusive regime (le << L << lφ), electrons undergo multiple elastic scattering events but maintain phase coherence. In the ohmic regime (L >> lφ), phase coherence is lost and transport can be described semiclassically.

The crossover between these regimes has been a subject of intense investigation. Recent work has demonstrated that as device quality improves and mean free paths reach micrometer scales, ballistic transport becomes accessible in graphene spintronic devices-a necessary step toward realizing ballistic spintronics.

Quantum Transport In Low-Dimensional Systems

1. Zero-Dimensional Systems: Quantum Dots: Quantum dots (QDs) are 0D nanostructures in which electrons are confined in all three spatial dimensions, leading to a discrete energy spectrum reminiscent of atoms hence the term "artificial atoms." The transport properties of quantum dots are governed by Coulomb blockade, where the charging energy required to add an electron to the dot suppresses current flow at low bias.

Recent advances have expanded the quantum dot platform to include colloidal quantum dots, which offer solution-processability and tunable optical properties. Charge transfer from quantum-confined 0D nanocrystals has been extensively studied, revealing the fundamental mechanisms underlying exciton dissociation and carrier extraction in photovoltaic and optoelectronic devices. Pyramidal semiconductor quantum dots have demonstrated higher mobilities and longer carrier lifetimes, making them

suitable for photovoltaic devices requiring fast carrier transport.

The integration of quantum dots into nanowire geometries has opened new possibilities for quantum photonic circuits. Ternary III-V nanowire quantum dots offer precise control for single photon emission, crucial for quantum information processing-.

2. One-Dimensional Systems: Nanowires and Nanoribbons

2.1. Graphene Nanoribbons: Graphene nanoribbons (GNRs) are quasi-1D strips of graphene that have emerged as some of the most extensively studied carbon nanoarchitectures for nanoelectronics. The confinement of charge carriers in GNRs opens a bandgap that depends on the ribbon width and edge geometry armchair GNRs are semiconducting while zigzag GNRs exhibit metallic behavior.

Recent progress in bottom-up on-surface synthesis has enabled the fabrication of atomically precise GNRs with tailored electronic and magnetic properties. By using chemically tailored organic building blocks, researchers can obtain virtually any carbon nanoarchitecture with equally tunable properties. A particular class of nanoporous graphenes (NPGs), conceived as 2D arrays of laterally bonded GNRs, has recently gained attention. These materials enable precise control over anisotropic properties through tuning of inter-ribbon electronic coupling.

Quantum transport in GNRs has revealed a rich phenomenology. Studies on fabricated GNRs with sub-100 nm widths have explored quantum interference-induced localization and Coulomb blockade phenomena, essential for quantum computing and single-electron transistor applications. Cadmium passivation of cove-edge GNRs induces a semiconductor-to-metal transition and negative differential resistance with record-high peak-to-valley current ratios of 53.7. an order of magnitude higher than strained graphene nanoribbons and silicene nanoribbons.

2.2. Carbon Nanotubes: Carbon nanotubes (CNTs) are tubular nanostructures formed by rolling graphene sheets. Their unique electronic properties including diameter-dependent bandgap and chirality-dependent metallicity- make them intriguing candidates for quantum electronic applications. Recent developments in chirality engineering have advanced the controlled synthesis of CNTs with specific electronic properties.

Deep learning-accelerated quantum transport simulations have been successfully applied to CNT field-effect transistors at experimental dimensions, reproducing measured transfer characteristics for 41 nm channel devices and predicting transmission spectra for 180 nm CNTs with approximately 3×10^4 atoms and 10^5 orbitals.

2.3. Topological Insulator Nanowires: Topological insulators (TIs) are materials that are insulating in the bulk but support conducting surface states protected by time-reversal symmetry. Nanowires of topological materials have emerged as an exciting platform to probe and engineer new quantum phenomena that are hard to access in bulk phase.

Quantum transport in topological crystalline insulator nanowires, such as SnTe, has demonstrated a wide variety of phenomena including surface-state-dominated transport due to high surface-to-volume ratios. $TaAs_2$ nanowires have revealed intertwined topological phases with giant magnetoresistance and quantum coherent surface transport. The second-order topological insulator $Bi_4 Br_4$ has exhibited Aharonov-Bohm interference between 1D ballistic states several micrometers long, leading to weak antilocalization and universal conductance fluctuations with large characteristic fields.

3. Two-Dimensional Systems

3.1. Graphene: Graphene, a single layer of carbon atoms arranged in a honeycomb lattice, has been a transformative platform for quantum transport studies. Its linear Dirac dispersion, high carrier mobility, and gate-tunable carrier density enable the observation of ballistic transport, the quantum Hall effect, and Klein tunneling.

Recent advances in graphene spintronics have demonstrated ballistic injection of spin-polarized carriers via 1D contacts between magnetic nanowires and high-mobility graphene channels. The nanowire-graphene interface defines an effective constriction that confines charge carriers over length scales smaller than their mean free path, evidenced by quantized conductance and the quantum Hall regime.

3.2. Transition Metal Dichalcogenides: Transition metal dichalcogenides (TMDs) such as MoS_2 , WS_2 , and WSe_2 are 2D semiconductors with direct bandgaps in the monolayer limit. Their strong spin-orbit coupling and valley-dependent optical properties have made them attractive for valleytronics and optoelectronics.

Quantum transport in TMDs has revealed phenomena including valley Hall effect, spin-valley locking, and exciton transport. Recent reviews have summarized advancements in controlling excitonic quasiparticles in 2D semiconductors, with implications for quantum light-emitting systems.

3.3. Van der Waals Heterostructures: The ability to stack different 2D materials into van der Waals heterostructures has created an almost unlimited design space for quantum transport engineering. Interface engineering in these heterostructures has enabled energy-efficient quantum devices operating at high temperatures, exploiting interlayer tunneling and coupling of charged particles and spins.

Charge transport in 2D framework materials (2DFMs) synthetic organic 2D crystals where molecular building blocks are linked through covalent or coordination bonds has emerged as a transformative area. Strategic exploitation of intralayer π-extended conjugation and interlayer electronic coupling has revolutionized charge transport engineering, driving advancements in optoelectronics, energy storage, and quantum materials.

Key Quantum Transport Phenomena

1. Ballistic Transport and Quantum Interference: Ballistic transport occurs when electrons traverse a device without scattering, preserving phase coherence and enabling quantum interference effects. The observation of quantized conductance in quantum point contacts and 1D nanowires is the hallmark of ballistic transport.

Recent studies have pushed ballistic transport into new material systems. Super-ballistic transport in open quantum rings has been identified as a purely quantum interference phenomenon between two counter-propagating electronic waves-. Ballistic transport in 3D Dirac semimetal $Cd_3 As_2$ nanowire p-n junctions has been demonstrated, extending ballistic phenomena beyond 2D systems.

Destructive quantum interference (DQI) in electron transport through graphene nanostructures has been systematically investigated. DQI antiresonances persist for large systems in the ballistic regime, establishing the quantum confinement gap as the intrinsic resolution limit for detecting quantum interference effects.

2. Weak Localization and Antilocalization: Weak localization (WL) is a quantum interference effect that leads to a small correction to the classical conductivity in disordered systems. It arises from the constructive interference of electron waves traversing closed loops in opposite directions. Weak antilocalization (WAL), the opposite effect, occurs in systems with strong spin-orbit coupling where the interference is destructive.

Recent studies in topological insulator $Bi_4 Br_4$ have demonstrated WAL and universal conductance fluctuations with anisotropic behavior, revealing the Dirac nature of surface states. The Aharonov-Bohm interferometer has been instrumental in revealing WL through magneto-resistance measurements.

3. Aharonov-Bohm Effect: The Aharonov-Bohm (AB) effect is a fundamental quantum phenomenon where a charged particle acquires a phase shift proportional to the magnetic flux enclosed by its path, even in regions where the magnetic field is zero. This effect has been observed in various low-dimensional systems.

Recent work on AB interferometers in inverted-band junctions has provided new insights into quantum transport. Molecular AB-type interferometers based on porphyrin nanorings have demonstrated the AB effect in molecular-scale devices. The observation of AB interference between 1D ballistic states in $Bi_4 Br_4$ topological insulators represents a significant advance in topological quantum transport.

4. Flat-Band-Induced Transport: Electronic bands with very low dispersion, known as "flat bands," have significant consequences on electronic structure, transport properties, and magnetism. Flat bands arise from confinement effects due to complex geometries, such as moiré patterns in twisted bilayer 2D materials, or from long-range geometry in quasicrystals.

In twisted bilayer graphene at the "magic angle," flat bands can induce magnetic states and electron–electron correlation effects. The electronic transport properties of flat-band systems cannot be described by conventional Bloch–Boltzmann theories because interband terms of the velocity operator dominate the intraband terms.

Recent work has extended flat-band physics to quasicrystals and their crystalline approximants, where flat bands are related to the existence of critical states. Selective functionalization of Bernal bilayer graphene has been shown to lead to metallic or insulating behavior depending on the functionalized sublattice type, suggesting functionalization as a key parameter for controlling electronic properties.

5. Topological Protection: Topological protection refers to the immunity of certain quantum states to scattering by disorder or perturbations, arising from the topological nature of the electronic band structure. This protection is particularly relevant for dissipationless transport in topological insulators and quantum Hall systems.

Topological junction states in graphene nanoribbons have been identified as a route to topological chemistry, with 1D analogs capable of hosting localized topological junction states envisaged for quantum computing and spintronics. New designer topological states for GNRs have been characterized using scanning tunneling spectroscopy, revealing how topological quantum states evolve as a function of spatial overlap.

Advanced Computational Methodologies

1. Density Functional Theory and NEGF: The combination of density functional theory (DFT) with NEGF has become the standard approach for first-principles quantum transport simulations. DFT provides the electronic structure, while NEGF handles the open boundary conditions and non-equilibrium statistics. This approach has been applied to a wide range of systems, from molecular break junctions to graphene nanoribbon devices.

2. Deep Learning-Accelerated Simulations: A transformative development in quantum transport simulation is the integration of deep learning with NEGF. The DeePTB-NEGF framework combines deep learning tight-binding Hamiltonian prediction with NEGF methodology, enabling accurate quantum transport simulations in open boundary conditions with 2–3 orders of magnitude acceleration.

This framework has been demonstrated on challenging applications including comprehensive break junction simulations with over 10^4 snapshots, showing excellent agreement with experimental conductance histograms, and CNT-FETs at experimental dimensions with approximately 8,000 atoms and 3×10^4 orbitals. DeePTB-NEGF bridges the longstanding gap between first-principles accuracy and computational efficiency, providing a scalable tool for high-throughput and large-scale quantum transport simulations.

3. Quantum Thermal Transport Simulations: Beyond electronic transport, quantum thermal transport in low-dimensional nanostructures has attracted increasing attention. The phonon NEGF method has revealed distinct

behaviors of phonon transport compared with electrons, including intrinsic anisotropy, radial strain effects, and defect-induced localization. These phenomena are not only of fundamental interest but also crucial for future electronic devices where thermal management is critical.

Device Applications And Prospects

1. **Beyond-Silicon Field-Effect Transistors:** GNRs are currently being considered for beyond-silicon field-effect transistors, leveraging their semiconducting nature and high carrier mobility. The ability to engineer bandgaps through width control and edge passivation makes GNRs attractive for digital logic applications.
2. **Spintronics and Spin Caloritronics:** Spin-based electronics offers a promising route to achieving low-power and high-speed computation. Graphene spintronics, with ballistic spin injection and long spin diffusion lengths, represents a key direction. Spin caloritronics the study of thermally induced spin-related transport offers brand-new ways to realize thermal-spin or thermoelectric energy conversion.
3. **Quantum Computing:** Low-dimensional nano-structures are emerging as platforms for quantum computing. Quantum dots in nanowires offer precise control for single photon emission. Topological quantum states in GNRs and topological insulators are being explored for robust qubits protected from decoherence.
4. **Energy Harvesting and Thermoelectrics:** The search for high thermoelectric figure-of-merit (ZT) materials has driven research into low-dimensional systems where quantum confinement enhances the Seebeck coefficient while suppressing thermal conductivity. Recent NEGF studies on quantum dot models and real materials have provided hints for high-ZT materials.

Case Studies

Case Study 1: Ballistic Spin Transport in Graphene Nanowire Contacts (2025)

Background: Graphene spintronics offers a promising route to low-power 2D electronics. However, ballistic transport had not been demonstrated in graphene spintronic devices.

Key Finding: Researchers demonstrated ballistic injection of spin-polarized carriers via 1D contacts between magnetic nanowires and a high-mobility graphene channel. The nanowire-graphene interface defines an effective constriction confining charge carriers over length scales smaller than their mean free path, evidenced by quantized conductance and transition into the quantum Hall regime.

Significance: This represents the first demonstration of ballistic spintronics in graphene, opening pathways for coherent spin transport and quantum information processing.

Case Study 2: Negative Differential Resistance in Cadmium-Passivated Graphene Nanoribbons (2025)

Background: Graphene nanoribbons are promising for nanoelectronic devices, but their transport properties require engineering through edge passivation.

Key Finding: Cd-passivated cove-edge GNRs exhibit a semiconductor-to-metal transition and negative differential resistance with a peak-to-valley current ratio of 53.7-10× and 17× higher than strained graphene nanoribbons and silicene nanoribbons, respectively.

Significance: This demonstrates the potential of edge passivation for tailoring GNR transport properties and highlights NDR as a phenomenon critical for high-speed switching, memory elements, and oscillators.

Case Study 3: Deep Learning-Accelerated Quantum Transport Simulations (2025)

Background: Quantum transport simulations face a trade-off between accuracy and computational efficiency, limiting practical applications.

Key Finding: The DeePTB-NEGF framework combines deep learning tight-binding Hamiltonian prediction with NEGF methodology, achieving 2–3 orders of magnitude acceleration. The framework successfully simulated CNT-FETs with 41 nm channels (~8,000 atoms) and 180 nm CNTs (~3×10^4 atoms).

Significance: This bridges the gap between first-principles accuracy and computational efficiency, enabling previously inaccessible large-scale device simulations.

Case Study 4: Flat-Band Transport in Twisted Bilayer Graphene and Quasicrystals (2025)

Background: Flat bands arising from confinement or complex geometries have significant consequences for electronic transport.

Key Finding: In twisted bilayer graphene at magic angles and in quasicrystalline approximants, flat bands lead to transport properties that cannot be described by Bloch–Boltzmann theories. Interband terms of the velocity operator dominate intraband terms for quantum diffusion.

Significance: This work establishes flat bands as a new paradigm for quantum transport and reveals functionalization as a key parameter for controlling electronic properties in 2D materials.

Challenges And Future Perspectives

1. **Scalability:** While low-dimensional nanostructures exhibit remarkable quantum transport phenomena, scaling these to practical device applications remains a significant challenge. The fabrication of atomically precise structures over large areas, the integration of dissimilar materials, and the control of disorder and defects are critical hurdles.
2. **Temperature Stability:** Many quantum transport phenomena, including ballistic transport and quantum interference, are observed at cryogenic temperatures. Extending these phenomena to room temperature operation is essential for practical applications.
3. **Computational Challenges:** Despite advances in deep learning-accelerated simulations, quantum transport calculations for realistic device geometries with disorder, electron–phonon interactions, and many-body effects remain computationally demanding.

4. Integration with Classical Electronics: The integration of quantum transport devices with classical CMOS electronics presents materials and fabrication challenges. Hybrid approaches that combine the unique functionalities of low-dimensional systems with established silicon technology may offer a practical pathway.

5. Emerging Directions: Looking forward, several emerging directions are poised to shape the field. These include:

- **Topological quantum computing:** Exploiting topological protection for robust qubits.
- **Spin caloritronics:** Harnessing thermal gradients for spin-based energy conversion.
- **Quantum sensing:** Using quantum transport phenomena for ultrasensitive detection.
- **Machine learning for materials discovery:** Accelerating the identification of new quantum transport materials.

Conclusion: Quantum transport in low-dimensional nanostructures has matured into a rich and multifaceted field that bridges fundamental physics with transformative technology. The period 2023–2025 has witnessed remarkable advances across multiple fronts: the demonstration of ballistic spin transport in graphene, the discovery of record-high negative differential resistance in passivated graphene nanoribbons, the elucidation of flat-band transport in twisted bilayer graphene and quasicrystals, and the development of deep learning-accelerated quantum transport simulations.

The theoretical framework anchored in the Landauer-Büttiker formalism and the NEGF method has proven remarkably versatile, accommodating systems ranging from 0D quantum dots to 2D van der Waals heterostructures. The experimental realization of atomically precise nanostructures through bottom-up synthesis has enabled systematic investigation of structure property relationships. The emergence of topological materials has introduced new paradigms for dissipationless transport and quantum information processing.

Looking forward, the integration of quantum transport phenomena into practical devices remains the central challenge. Progress in scalable fabrication, room-temperature operation, and computational design will be essential for translating the remarkable physics of low-dimensional systems into transformative technologies. As the field continues to evolve, the synergy between theory, experiment, and computation will undoubtedly reveal new quantum phenomena and enable their exploitation for next-generation electronics, spintronics, and quantum technologies.

References:-

1. Alcón, I., Cummings, A. W., Ribas, E., Roche, S., & Mugarza, A. (2025). Progress on quantum transport engineering in atomically precise anisotropic nanoporous graphene. *Nanoscale Advances*, 7.
2. Zou, J., Zhouyin, Z., Lin, D., Huang, Y., Zhang, L., Hou, S., & Gu, Q. (2025). Deep learning accelerated quantum transport simulations in nanoelectronics: From break junctions to field-effect transistors. *npj Computational Materials*.
3. Spin polarised quantised transport via one-dimensional nanowire-graphene contacts. (2025). *Communications Materials*, 6.
4. Cadmium passivation induced negative differential resistance in cove edge graphene nanoribbon device. (2025). *Scientific Reports*, 15.
5. Electronic structure and transport in materials with flat bands: 2D materials and quasicrystals. (2025). *Physica E: Low-dimensional Systems and Nanostructures*.
6. Chen, X. B., & Duan, W. H. (2015). Quantum thermal transport and spin thermoelectrics in low-dimensional nano systems: Application of nonequilibrium Green's function method. *Wuli Xuebao/Acta Physica Sinica*, 64(18).
7. Fu, S., Zhang, J., Li, X., Jin, E., Gao, L., Dong, R., et al. (2025). Fundamentals of charge transport in two-dimensional framework materials. *Nature Reviews Materials*. doi:10.1038/s41578-025-00840-z.
8. Electron Transport Mechanisms in Low-Dimensional Semiconductor Structures: A Review. (2024). *RENSIT*, 16(4), 731.
9. Charge Transfer from Quantum-Confined 0D, 1D, and 2D Nanocrystals. (2024). *Chemical Reviews*, 124.
10. Emergent quantum properties from low-dimensional building blocks and their superlattices. (2024). *Nano Research*, 17(12).
11. Chirality engineering for carbon nanotube electronics. (2024). *Nature Reviews Electrical Engineering*, 1, 149–162.
12. Quantum transport in InSb quantum well devices: Progress and perspective. (2024). *Journal of Physics: Condensed Matter*.
13. Electron wave and quantum optics in graphene. (2024). *Journal of Physics: Condensed Matter*.
14. Ballistic transport and spin-dependent anomalous quantum tunneling in Rashba–Zeeman and bilayer graphene hybrid structures. (2024). *Journal of Applied Physics*.
15. Super-ballistic transport in an open quantum ring. (2024).
16. Stability of destructive quantum interference antiresonances in electron transport through graphene nanostructures. (2024).
17. Quantum transport in SnTe nanowire devices. (2025). *Advanced Electronic Materials*.
18. Intertwined Topological Phases in TaAs, Nanowires with Giant Magnetoresistance and Quantum Coherent Surface Transport. (2025). *Advanced Materials*.
19. Topological Junction States in Graphene Nanoribbons:

A Route to Topological Chemistry. (2025).
20. New Designer Topological States for Graphene Nanoribbons. (2025).
21. Quantum Transport Characteristics of Graphene Nanoribbon Devices with Ring and Ladder Type Channels Under Electrostatic Doping. (2025). *Annalen der Physik*.
22. Quantum transport transition from quantum interference to Coulomb blockade in suspended CVD graphene nanoribbons with reduced ribbon widths. (2025). *Physical Review Materials*, 9.
23. Width-Dependent Quantum Conductance and Transmission in AA-Stacked Armchair Bilayer Graphene Nanoribbons. (2025). *IEEE Transactions on Electron Devices*.
24. Aharonov-Bohm interferometer in inverted-band pn junctions. (2025). *Physical Review Research*.
25. Quantum Coherent Transport of 1D ballistic states in second order topological insulator $Bi_4 Br_4$ (2025).
26. Molecular Aharonov-Bohm-type interferometers based on porphyrin nanorings. (2025). *Chemical Science*. -
27. Recent progress of exciton transport in two-dimensional semiconductors. (2023). *Nano Convergence*, 10, 57.
28. Quantum transport phenomena induced by time-dependent fields. (2025). *La Rivista del Nuovo Cimento*, 48, 653–798.
29. Ferry, D. K., & Goodnick, S. M. (2024). *Transport in Nanostructures* (2nd ed.). Cambridge University Press.
30. Datta, S. (2024). *Electronic Transport in Mesoscopic Systems*. Cambridge University Press.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

रायगढ़ नगर की जनसंख्या संरचना

छतेश्वरी चौहान* डॉ. सुनीता सोनवानी**

* शोधार्थी (भूगोल) एस. आर. यू., रायपुर (छ.ग) भारत
** प्रोफेसर (भूगोल) एस. आर. यू., रायपुर (छ.ग) भारत

प्रस्तावना – मनुष्य पृथ्वी के विभिन्न – क्षेत्रों में रहने वाले लोगों (जनसंख्या) के संवर्धन में मानव जीवन की विकास यात्रा प्राचीन काल से ही रही है। किन्तु एक विज्ञान के रूप में जनसंख्या का अध्ययन विशेषत: आधुनिक काल में हुआ है। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक प्रशासनिक, सैन्य, आर्थिक व राजनीतिक आदि उद्देश्यों से जनसंख्या सम्बन्धी सूचनाओं के संग्रह की परम्परा रही, जो प्राय: अनुमानों तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं पर आधारित होती थी एवं विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में जन स्वरूप पिछले तीन–चार दशकों में भूगोल को एक सामाजिक विज्ञान का स्थान प्रदान किया जाने लगा। इस प्रकार अब भौतिक अध्ययन के पूर्व के स्थान पर मानव को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। जनसंख्या तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं की व्यापकता के कारण अध्ययन के उद्देश्यों में भौगोलिक दृष्टि से विविधता बढ़ी है और मानव भूगोल के अनेक उपशाखाएँ एवं उपविषय विकसित हुए हैं जिनमें जनसंख्या भूगोल भी एक है। यह भूगोल की एक नवीन शाखा है जिसका विकास 1960 के बाद से अधिक हुआ।

रायगढ नगर में जनसंख्या वृद्धि विश्लेषण – रायगढ़ नगर की लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या वृद्धि का विश्लेषण 1991 से 2011 तक का प्रोजेकसन अनरूप वृद्धि की दर एवं वृद्धि की गति बहुत ही उच्च रही। रायगढ़ नगर की जनसंख्या जनगणना 1991 में लगभग 86767 थी, उसके बाद 2001 में लगभग 10 वर्ष बाद जनसंख्या बढ़कर 1,11,154 हो गई जो लगभग 27–84 प्रतिशत की वृद्धि मापी गई उसके बाद 2011 जनगणना के अनुसार रायगढ़ नगर की मूल निवासी एवं अप्रवासी की संख्या 150019 दर्ज की गई जिसमें मूल निवासियों की संख्या 1,37,126 आकी गई। 1991 से 2011 तक रायगढ़ नगर की कुल जनसंख्या मे लगभग 72–73 प्रतिशत तक बढ़ोत्तारी मानी गई हैं। जो यह सिद्ध करता है कि नगर में अप्रवासी श्रमिकों की उपस्थिति परिवहन एवं उद्योगो के विस्तार के कारण निरंतर वृद्धि हुई। जिसमें अप्रवासी परिवारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं।

रायगढ़ नगर 1901 से 2011 तक की जनसंख्या– रायगढ़ नगर पालिका का गठन 1901 में हुआ था। इस समय रायगढ का क्षेत्र फल 70.68 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। रायगढ नगर को नगरपालिका का दर्जा 2001 में दिया गया उस समय 40 वार्डो में विभक्त था एवं जनसंख्या 1,11,154 (सांख्यिकी विभाग के अनुसार) थी। यह 18.26 वर्ग क्षेत्रफल में फैली हुई थी। 2011 की जनगणना के अनुसार वार्डो की संख्या बढकर 45 और जनसंख्या 1,37,126 थी। इस समय नगर का क्षेत्रफल 70.68 वर्ग किलोमीटर हो गई।

2011 से 2021 तक का जनसंख्या विश्लेषण– 2011 के वाद जनगणना नही हुआ था। 2021 में जनसंख्या की वृद्धि लगभग 1,95,000 (सांख्यिकी विभाग के अनुसार) मानी गई। जिसका तात्पर्य यह है कि 10 वर्षो में लगभग 45,000 की आबादी वृद्धि हुई जो जनसंख्या का लगभग 30 प्रतिशत है चूंकि अब तक औपचारिक जनगणना नही हुई है। नगर निगम जनगणना विभाग के अनुसार है कि रायगढ़ जिले की तुलना में यह रायगढ़ नगर की जनसंख्या अधिक हुई है। पावर प्लांट आदि औद्योगिक क्षेत्र के आस पास रह रहे जनसंख्या स्तर पर आवाजाही रायगढ़ नगर की जनसंख्या वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2021 से 2025 तक बृद्धि विश्लेषण– रायगढ़ नगर में जनसंख्या वृद्धि 2021 से 2025 धीमी रूप में थी। परन्तु बृद्धि हो रही थी आवासीय विस्तार, सडकें के निमार्ण कार्य , मकानों का निर्माण हो रही है। सन् 2021 में 1,95,000 जनसंख्या और वार्डो की संख्या 45 थी एवं 153.14 वर्ग क्षेत्रफल में फैला हुआ है। सन् 2022 में 2,00,000 हो गई और 2023 मे 2,06,000 हुई 2024 में 2,12,000 और 2025 में 218000 बृद्धि हुई इस समय वार्डो की संख्या 48 हो गई 15.18 वर्ग किलो मीटर में है।

तालिका क्र 1: जनसंख्या वृद्धि विश्लेषण

वर्ष	जनसंख्या आकडा
2011	130019
2021	195000
2022	200000
2023	206000
2024	212000
2025	218000

स्त्रोत 2.2 सांख्यकीय विभाग के अनुसार

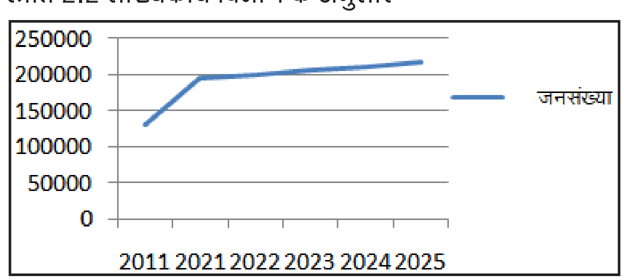

ग्राफ: 2. जनसंख्या वृद्धि विश्लेषण

रायगढ नगर में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व 2011से 2021 तक।

जनसंख्या वितरण – जनसंख्या वितरण की असमानताओ के लिये मुख्यत: ऐतिहासिक भौगोलिक एवं सांस्कृतिक जनसांख्यिकी उत्तरदायित्व है। अपने प्राचीन सभ्यता क्षेत्र मानव अधिवास के अपने प्राचीन इतिहास के कारण आज भी सघन जनसंख्या क्षेत्र है। जनसंख्या वितरण प्रारूप निर्धारण करने वाले भौतिक घटको में जलवायु स्थलाकृति जल, मिट्टी, खनिज संसाधन और क्षेत्रीय सम्बंध प्रमुख हैं। कु. सेम्पल के शब्दों में ''well water lowlands invite expansion ethic, Commercial and political'' सांस्कृतिक घटकों में सामाजिक मनोवृति आर्थिक विकास-स्तर और राजनीतिक संगठन तथा जनसांख्यिकीय घटकों में उत्पादकता, मर्त्यता दर और आवास प्रवास धारा का महत्व हैं। ये सभी कारण अलग-अलग नही बल्कि सम्मिलित रूप से अपना प्रभाव डालते हैं। किसी एक कारक के प्रभाव का पृथक आकलन बेहद कठिन है। उनकी पारम्परिक क्रिया-प्रतिक्रिय आंकलन बेहद कठिन है इसमें कुछ घटकों का प्रभाव बेहद परीक्षा रूप में होता है? देखा गया है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता है भौतिक कारकों का महत्व घटता जाता है? आम तौर पर पिछड़े समाज में जनसंख्या घनत्व क्षेत्रीय स्तर पर उपलब्ध खाद्य विभाग पर आधारित होता है। इसमें प्राकृतिक परिवर्तन का अधिक प्रभाव होता है। इसके विपरित प्राविधिक दृष्टि से उन्नतिपूर्ण नगरीय संस्कृति में भौतिक घटको की अपेक्षा सांस्कृतिक घटकों का अधिक महत्व होता हैं। इस भांति जनसंख्या वितरण का वर्तमान प्रारूप मानव के उन हजारो वर्षो के इतिहास का प्रतिफल जिसमें जनसंख्या भौतिक प्रभाव के अनुसार समायोजित होती है। और सांस्कृतिक तथा जनसांख्यिकीय प्रभावों से प्रभावित होती है।

रायगढ़ का जनसंख्या वितरण – रायगढ़ नगर जनसंख्या का प्रमुख आधारों से वर्गीकृत किया गया है – रायगढ़ नगर का बसाव केलो नदी के पूर्व में जनसंख्या का घनत्व सर्वाधिक हैं। जैसे गलियां और पुराने व्यावसायिक प्रतिष्ठान होने के यहां प्रति वर्ग किलोमीटर निवासियों की संख्या बहुत ज्यादा है। (उदा. चादनी चौक, गद्दी चौक, इतवारी बाजार) इसी प्रकार ये केलो नदी के पश्चिम में चक्रधर नगर और केलो बिहार जैसे क्षेत्र इसी ओर हैं। यहां वितरण नियोजित हैं, जहां जनसंख्या का घनत्व मध्यम पाया जाता है। एवं रेलवे लाइन क्षेत्र में उत्तर-दक्षिण क्षेत्र के आस-पास सघन पाया, जाता है, जबकि कोतरा रोड की तरफ नई कालोनियां विकसित हो रही हैं।

घनत्व के आधार पर वर्गीकरण– घनत्व के आधार पर क्षेत्र का प्रकार एवं क्षेत्र स्थान एवं उसकी विवरण की विशेषता को ध्यान में रख कर वर्गीकरण किया गया है।

तालिका 2 : जनसंख्या वितरण क्र 2011 के अनुसार

जनसंख्या	वार्ड की संख्या	वार्ड क्र
1000 से कम	5	23, 42,43,45,47
1000 से 2000	10	9,10,11,12,16,18,20,21,22,24
2000 से 3000	9	13,14,15,17,19,26,31,32,39,
3000 से 4000	11	1,3,7,8,24,25,35,38,41,44,46
4000 से 5000	6	2,29,30,36,37,40
5000 से 6000	5	4,18,28,33 ,34
6000 से 7000	2	6,27
7000 से अधिक	1	5

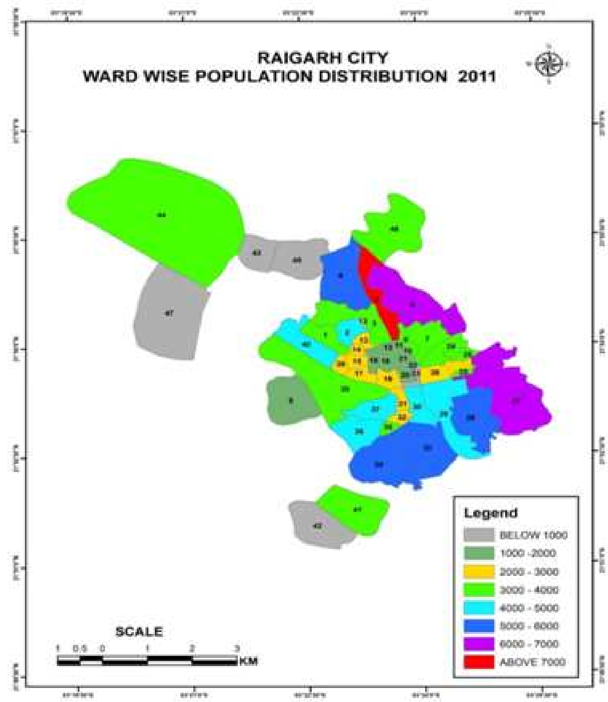

कार्यात्मक वितरण – कार्यात्मक वितरण के आधार पर लोग अपना कार्य क्षेत्र के अनुसार जनसंख्या में सघनता पाई जाती है। व्यावसायिक केन्द्र के रूप में शहर के मध्य भाग में व्यापारियो और उनके कर्मचारियों का बसाव है। श्रमिक बस्तियां जूटमील क्षेत्र और चक्रधर नगर के बाहरी हिस्सो में औद्योगिक श्रमिकों का वितरण अधिक है। यहां फ्लोटिंग पापुलेशन (अस्थाई निवासी) ज्यादा रहती हैं। स्थानिक क्षेत्र कलेक्ट्रेट और जिला अस्पताल के आस-पास सरकारी कर्मचारियों और उनके परिवारों का वितरण केन्द्र बना है।

जनसांख्यिकीय संरचना

प्रवासी जनसंख्या: उद्योगो के कारण ही लगभग 20-25 प्रतिशत जनसंख्या बाहरी राज्यों (जैसे-विहार, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, पश्चिम बंगाल पे आकर बनी है। यह वितरण मुख्य रूप से औधोगिक खेलों के निकट देखा जाता है।

रायगढ़ शहर छत्तीसगढ़ राज्य का एक प्रमुख औद्योगिक और बाहरी केन्द्र है, जो कोरबा – रामपुर औद्योगिकरण गलियारो में स्थित हैं। यह शहर जिंदल स्टील एवं पावर लिमिटेड (jindal) कोयला खनन, थर्मल पावर प्लांट्स और सीमेंट कारखाना के कारण तेजी से विकसित हुआ है। 2011 की जनगणना के अनुसार रायगढ़ नगर निगम (मेट्रो क्षेत्र सहित)की जनसंख्या 1,50,019 थी वो 2025 2,18,000 तक पहुंच गई है। यह लगभग 45.4 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाता है आज नगर 48 वार्डों में विभक्त है।

केंद्रिय औद्योगिक क्षेत्र – (1-15) वार्ड 60 प्रतिशत जनसंख्या
व्यावसायिक मध्य क्षेत्र – (16-35) वार्ड 27 प्रतिशत जनसंख्या
बाहरी ग्रामीण – शहरी सीमा (36- 48) वार्ड 13 प्रतिशत जनसंख्या

तालिका 3 : 2021-2025 में वितरण परिवर्तन

वर्ष	केंद्रीय	मध्यम	बाहरी
2021	58	28	14
2022	59	28	13
2025	60	27	13

तालिका क्र.1,5 – रायगढ़ नगर निगम के अनुसार

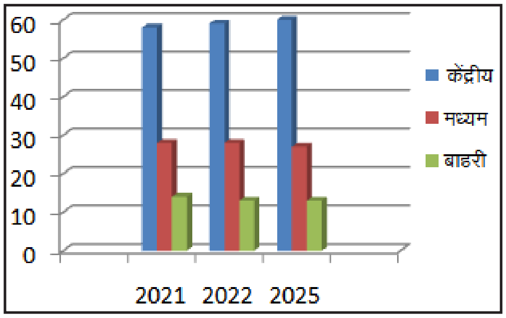

ग्राफ क्र.2 – रायगढ़ नगर की जनसंख्या वितरण परिवर्तन

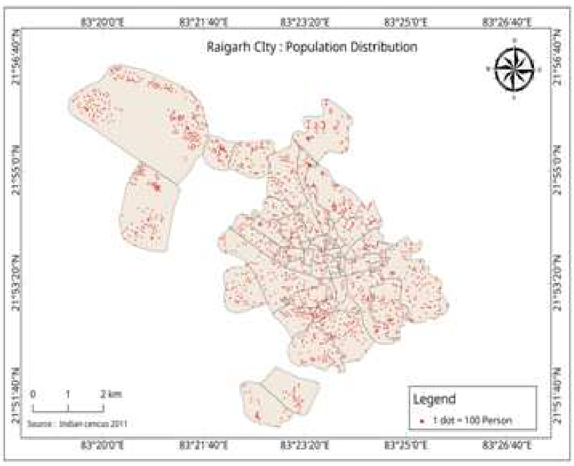

जनसंख्या घनत्व

किसी प्रदेश की क्षेत्रफल तथा उसकी जनसंख्या का घनत्व कहतें है। चान्दना के अनुसार –''Density very important means of analyzing the distribution of population of an areas it is a simple concept of releting populstion size to the land area with a view to assessing crudely the pressurure of popullstion upon the resource of the area.''

इस प्रकार से जनसंख्या घनत्व के द्वारा जनसंख्या संकेन्द्रण को दर्शाया जाता है। सामान्यत :यह व्यक्ति वर्ग किमी या प्रति व्यक्ति मील के रूप में दर्शाया जाता है। इसे निम्न सुत्र से निकाला जाता है।

$$\text{जनसंख्या घनत्व} = \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

यदि भूमि का क्षेत्रफल दिये गये जनसंख्या आकार से कम है तो उच्च हो जायेगा पर यदि भूमि का क्षेत्रफल अधिक है तो घनत्व कम हो जायेगा।

भूगोलवेत्ता एवं अन्य समाज शास्त्री घनत्व निकालने के इस तरीके को उपयोग में ज्यादा लेते है क्योंकि इसे ज्ञात करना व पढ़ना आसान होता है। तथा इस प्रकार इसे बहुत ही सरल रूप में समझा जाता है पर यह जनसंख्या एवं संशाधन के सम्बंध को ज्ञात करने का बहुत ही महत्वपूर्ण तरीका हैं उश्ररीड्डी के अनुसार 'The Concept of Density for population is most revealing and is of the diversity useful tool in the analysis of the diversity of man^s distribution in space^^''

रायगढ़ नगर के जनसंख्या घनत्व 2011

रायगढ़ नगर की 2011 जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 1,50,019 रही। इसमें पुरुष 76,865 और महिलाए 73,154 थी। शहर की सीमित जनसंख्या (M Corp.) 1,37,126 थी। इसका क्षेत्रफल लगभग 58 वर्ग किमी माना जाता है जिससे घनत्व करीब 27.27 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी था रायगढ़ नगर में 2025 तक 48 वार्डो में विभक्त किया गया है। अलग अलग वार्डो के अनुसार हम जनसंख्या घनत्व को प्रदशित किया गया है।

रायगढ़ नगर को 48 वार्डों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक वार्ड में निवासरत जनसंख्या एवं आवासीय क्षेत्र के मान से प्रति हेक्टर आवासीय क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को आवासीय घनत्व कहा जाता है। रायगढ़ नगर पालिक निगम क्षेत्र की वार्ड अनुसार जनसंख्या एवं धनत्व निम्न सारणी में दर्शाया गया।

तालिका क्र 3: वार्ड–वार जनसंख्या एवं घनत्व 2025

क्र.	वार्ड का नाम	क्षेत्रफल (हे.)	जनसंख्या	घनत्व
1	हमीदगंज	45.20	3124	69
2	कोतरा रोड (उत्तर)	98.40	3450	35
3	रामभाठा	12.50	3210	256
4	संजय नगर	18.00	2980	165
5	कयाघाट	25.60	3105	121
6	दरोगापारा	08.40	2870	341
7	सत्तीगुड़ी चौक	05.10	2940	576
8	सदर बाजार	03.20	3315	1035
9	गंज पीछे	04.50	3080	684
10	पुरानी बस्ती (पूर्व)	06.80	2950	433
11	किलीपारा	07.20	3120	433
12	चॉदनी चौक	02.90	3405	1174
13	इतावारी बाजार	04.10	3260	795
14	राजापारा	12.40	3180	256
15	जगतपुर (नया)	65.00	3420	52
16	गौशाला रोड	22.10	3050	138
17	अतरामुड़ा	115.00	3560	31
18	चक्रधर नगर	48.50	3840	79
19	बोइरदादर	145.00	3670	25
20	सिविल लाइन्स	52.00	2920	56
21	जूटमिल (उत्तर)	35.40	3890	110
22	धांगरपारा	42.10	3750	89
23	कबीर चौक	28.50	4120	144
24	मिड्डमुड़ा	85.00	3980	46
25	उर्दना क्षेत्र	210.00	2850	13
26	भगवानपुर	132.40	3420	26
27	लक्ष्मीपुर	78.50	3150	40
28	कबीर चौक (द.)	22.10	3840	174

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

29	धांगरपारा (नया)	36.40	3210	88
30	जूटमिल (बस्ती)	15.60	4150	266
31	कोतरा रोड (बाहर)	185.00	3080	17
32	पंजरी प्लांट	142.00	2950	21
33	सावित्री नगर	45.30	3560	79
34	छोटे अतरामुड़ा	62.10	3120	50
35	बड़े अतरामुड़ा	88.40	3340	38
36	टी.वी. टाअवर रोड	54.20	2870	53
37	मिट्ठूमुड़ा (नया)	42.10	3050	72
38	उार्दना (आवासीय)	195.00	2650	14
39	महापल्ली रोड	110.00	2780	25
40	केलो विहार	32.40	3420	106
41	संबलपुरी मार्ग	215.00	2450	11
42	कलपमी डिंपा	165.00	2320	14
43	गोवधनपुर	148.00	2560	17
44	पुटकापुरी	240.00	2150	09
45	बोइरदाादर (नया)	112.00	3180	28
46	जेलपारा विस्तार	40.50	3450	85
47	कृष्णा विहार	58.00	3620	62
48	विजयपुर	255.00	2280	09

स्त्रोत: रायगढ़ नगरपालिका निगम

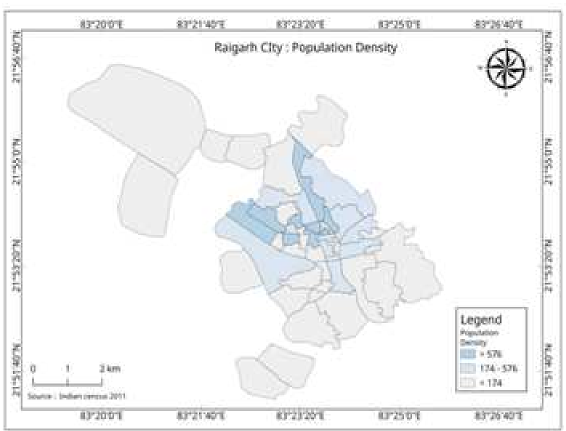

जनसंख्या घनत्व 2025

घनत्व मानचित्र (क्षेत्रफल 55 वर्ग किमी),

उच्च घनत्व जोन 6000 वर्ग किमी क्षेत्र, जिन्दल रेलवे स्टेशन कोयला साइडींग

मध्यम घनत्व (3500–6000) मुख्य बाजार स्कूल बाजार

निम्न घनत्व (2000से कम) ग्रामीण सीमा

निष्कर्ष – रायगढ़ नगर की जनसंख्या संरचना एवं वितरण के उपरोक्त अध्ययन के आधर पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:

1. **जनसंख्या में तेजी से वृद्धि** : रायगढ़ नगर की आबादी 1991 में 86,767 से बढ़कर 2011 में 1,50,019 हुई। वर्ष 2025 तक नगर की अनुमानित जनसंख्या 2,18,000 पहुंच गई है, जो औद्योगिक विस्तार और नगरीय विस्तार को दर्शाता है।

2. **अप्रवासी जनसंख्या की महत्वपूर्ण भूमिका** : नगर में जिंदल स्टील एवं पावर, थर्मल पावर प्लांट्स, औद्योगिक नगरो और कोयला खनन के कारण विहार, उत्तर प्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल से शहरी आवागमन के कारण लगभग 20–25 प्रतिशत अप्रवासी जनसंख्या बस हुई है।

3. **नगरीय सीमा और वार्ड विस्तार** : 1901 में नगरपालिका गठन के वक्त से लेकर 2025 तक वार्डो की संख्या 40 से बढ़कर 48 हो गई है और नगर का कुल क्षेत्रफल 153.14 वर्ग किमी. तक विस्तारित हुआ है।

4. **वितरण एवं घनत्व में असमानता :**

- **उच्च घनत्व :** चांदनी चौक, सदर बाजार, गंज पीछे और इतवारी बाजार जेल पिछे पुराने व्यावसायिक क्षेत्रों में घनत्व 600 से 1100 व्यक्ति प्रति हेक्टयर है।
- **मध्यम घनत्व :** चक्रधर नगर, केलो विहार और सिविल लाइन्स नियोजिक आवासीय क्षेत्रों में घनत्व मध्यम है।
- **निम्न घनत्व :** बाहरी औद्योगिक क्षेत्रों जेसे संबलपुरी मार्ग, कलमी डिंपा, पुटकापुरी, विजयपुरी में घनत्व 09 से 20 व्यक्ति प्रति हेक्टयर के आस–पास है।

5. **कार्यात्मक वितरण :** नगर का मध्य भाग व्यापारिक गतिविधियों के लिए केन्द्र है, बाहरी क्षेत्र जूटमिल एवं चक्रधर नगर के बाहरी हिस्से औद्योगिक श्रमिकों के लिए अस्थाई जनसंख्या का गठिन करते हैं और कलेक्ट्रेट व अस्पताल क्षेत्र सरकारी कर्मचारियों के वितरण का मुख्य केंद्र है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यक्तिगत शोध के आधार पर।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

How Water Scarcity Affects the Medicinal Quality of Root Crops

Dr. Ragini Sikarwar*

***Assistant Professor and HOD (Botany) Govt. Home Science PG Lead College, Narmadapuram (M.P.) INDIA**

Abstract: Water scarcity is becoming one of those most critical threats to global agricultural systems, with over 4 billion people experiencing severe water shortage for at least one month per year. Root crops grown for medicinal reasons—think licorice (Glycyrrhizauralensis), ashwagandha (Withaniasomnifera), turmeric (Curcuma longa), ginger (Zingiber officinale), and valerian (Valeriana officinalis) — are now seeing more frequent exposure to drought stress, linked to climate change, plus unsustainable irrigation behaviors. What's a bit paradoxical is how drought affects these plants: it reliably cuts down plant biomass and root yield, yet at the same time it can stimulate the production of secondary metabolites, the same kind of compounds that form the core medicinal value. Depending on how intense the drought is, the particular species involved, and where the plant is in its growth phase, bioactive substances like glycyrrhizin, withanolides, curcuminoids, gingerols, and valerenic acid may either build up noticeably or drop off under water-limiting conditions. This article kinda explores the physiological and biochemical routes behind those responses, it also brings together species focused experimental results from peer-reviewed studies available through 2018, and then it talks about what this means for cultivating medicinal plants, as well as for securing pharmaceutical raw materials in a water scarce world.
Keywords:secondary metabolites, phytochemicals, plant quality, medicinal root crops, drought stress, water scarcity.

Introduction

The Scale of Water Scarcity in Agriculture: Agriculture has always been a kind of thirsty undertaking. Right now, it represents around 70 percent of all freshwater withdrawals worldwide, so it ends up being the biggest user of this already weakening resource (FAO, 2011). Between 1900 and 2017, global freshwater use went up from roughly 500 billion cubic meters to almost 3.9 trillion cubic meters each year, and that upward pattern seems pushed by a growing population plus more demanding food production needs (Mancosu et al., 2015). The water appetite in global agriculture was forecasted to rise by about 60 percent by 2025 even in estimates made early in the decade (Alexandratos&Bruinsma, 2012). In several places across Central Asia, South Asia, and Northern Africa, water stress levels had already gone past dangerous thresholds by the mid 2010s, and in some localities they were pulling out more water than the environment can actually replace (FAO AQUASTAT, 2016).

The human side of this problem is pretty severe. UN figures released in 2018 indicated that over 2.2 billion people did not have access to safely managed, clean water (United Nations, 2018). Also, about 4 billion people were hit by serious water scarcity for at least one month in each year, which comes to more than half of the world's population (Mekonnen & Hoekstra, 2016). In agriculture terms, that situation often shows up as shorter growing periods, irrigation that can't be depended on, and gaps in soil moisture that don't only reduce how much is harvested but can also shift the crop makeup, down at biochemical level. This last point— the effect on biochemical composition— really bothers growers and manufacturers of medicinal plant products. A root that ends up weighing less might actually be holding more medicine per gram. Or it might be holding, quite a lot less. The truth seems to ride on a tangled kind of give and take between plant biology, how harsh the drought really is, and which exact compounds are being talked about.

Medicinal Root Crops: Why They Matter: Underground root crops grown for therapeutic purposes, sit in a pretty meaningful spot, across old school medical traditions as well as the present day pharmaceutical supply chain. In other words, they're not just "farm produce", they're also chemistry in disguise. Plants like licorice, ashwagandha, ginger, turmeric, and valerian end up concentrating their most pharmacologically relevant substances—alkaloids, terpenoids, steroidal lactones, curcuminoids, and essential oils—in their belowground parts: roots, rhizomes, and tubers. Those substances aren't really the usual nutritional metabolites made mainly for the plant's primary growth.

Instead, they behave more like secondary metabolites, produced within the plant's defense strategy, and its broader stress adaptation routine.

That's why the link between water scarcity and the quality of medicinal roots is so biologically interesting, almost a little tricky. Drought stress by itself acts as a cue that pushes secondary metabolite biosynthesis forward. The plant mechanisms it turns on to reduce oxidative injury when water is limited also tend to drive the buildup of many of the same compounds people later collect for therapeutic use. Still, that doesn't translate into "drought is good" for medicinal root crops. It's more nuanced, because it's not a simple water equals better quality story, there are tradeoffs and shifts depending on conditions and timing.

Physiological Responses of Root Crops to Water Deficit

Stomatal Closure and Photosynthetic Impairment: The plant's first, and well basically most immediate response to water scarcity is stomatal closure. Stomata – those tiny pores on the leaf surface – handle the back-and-forth exchange of water vapor, oxygen, and carbon dioxide between the plant and the outside air. Once the soil water content drops, the guard cells lose turgor pressure, so the stomata close. That move cuts down transpiration, but at the same time it also reduces CO_2 entry into the leaf (Farooq et al., 2009).

And then, this whole thing cascades quickly. When CO_2 is less available, photosynthetic rates tend to fall. The Calvin cycle—normally the pathway that keeps consuming NADPH and ATP made by the light-driven reactions—slows. So the cell ends up with this kind of imbalance: light energy and reducing power keep building up, yet their usual sink, carbon fixation, gets partially blocked. The downstream outcome is oxidative stress, shown by a sudden rise in reactive oxygen species (ROS), such as hydrogen peroxide (H_2O_2) and superoxide radicals (O_2^-) (Choudhury et al., 2017).

At the same time, the phytohormone abscisic acid (ABA) starts to accumulate fast in leaf and root tissues during water deficit. ABA is kind of the principal molecular alarm signal of drought, and it regulates stomatal opening or closure, pushes root growth toward moisture, and triggers stress responsive gene expression (Sah et al., 2016). In medicinal root crops, more specifically, that ABA surge then feeds into secondary metabolite biosynthesis routes. Those downstream effects can differ among species, yet they are increasingly well mapped now.

The Metabolic Redirect: From Primary to Secondary Metabolism: This is where the story starts getting really relevant to medicinal quality. Selmar and Kleinwächter (2013) advanced a pretty solid mechanistic story for why drought stress often ends up increasing secondary metabolite concentrations in medicinal plants. Basically, when CO_2 assimilation slows because stomata close, the use of NADPH through the Calvin cycle drops quite a lot. So, in turn, NADPH and those other reduction equivalents start piling up, sort of like a surplus. The plant then reroutes that metabolic extra charge into pathways that build more highly reduced compounds — things like isoprenoids, phenolics, and alkaloids. Those groups are considered main categories of secondary metabolites (Selmar & Kleinwächter, 2013).

In simpler terms, the plant can't really spend its chemical energy on growing as fast, so it leans on making more defensive chemistry instead. And yeah, many of those defensive molecules line up with the same compounds that make medicinal root crops valuable for pharmacy.

A lot of research agrees that drought stress tends to raise concentrations of certain active phytochemicals such as alkaloids, tannins, and terpenoids. Meanwhile, under the same stress, concentrations of some phenols, flavonoids, and saponins can drop (Zobayed et al., 2007). This is not a hard universal law, it's more like a species- and compound-specific pattern. Still, the reasoning behind it stays consistent: a water shortage pushes biosynthetic flux toward secondary routes, and what happens to each compound class depends on which pathways that particular plant activates most.

As shown in Figure 1, this produces an inverted-U relationship between drought intensity and secondary metabolite concentration, where mild to moderate water deficit stimulates accumulation, but severe drought collapses both biomass and metabolite yield.

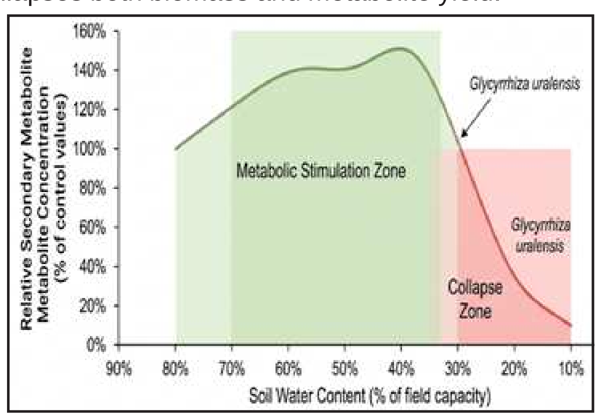

Figure 1: Relationship Between Drought Stress Intensity and Secondary Metabolite Concentration in Medicinal Root Crops

This figure kinda shows a conceptual dose–response curve, like how the concentration of secondary metabolites in medicinal roots shifts when drought stress gets stronger. On the x-axis we see soil water content, in percent of field capacity, going from about 80–90% (well watered control) down to less than 20% (severe drought). The y-axis is the relative secondary metabolite concentration, expressed as a percent of the control values, and you can basically see a pattern develop. The curve starts to climb above the baseline under mild deficit, around 60–70% field capacity, then it goes up to its highest point at the moderate deficit stage 40–50% field capacity, and after that it drops quickly when conditions get harsh, roughly 20–30% field capacity.

There are two labeled regions too, the “metabolic stimulation zone” put near the mild–moderate stress range, and then a “collapse zone” marking what happens during severe stress. Overall the curve is based on results reported by Li et al. (2011) for Glycyrrhizauralensis, focusing on glycyrrhizic acid and liquiritin responses under stepped water deficit, and it’s also backed by the mechanistic framework from Selmar & Kleinwächter (2013). Data source: Li et al. (2011), Russian Journal of Plant Physiology; Selmar & Kleinwächter (2013), Natural Product Reports.

Species-Specific Effects of Water Scarcity on Medicinal Root Quality

Licorice (*Glycyrrhiza* spp.): Licorice root is one of the more commercially vital medicinal plants on the planet, with uses spreading from anti-inflammatory and antiviral therapies to flavoring, and even hepatoprotection. Its main bioactive parts are glycyrrhizic acid (glycyrrhizin) and liquiritin, those are concentrated mainly in the root and rhizome.

Since licorice naturally ends up in arid, and semi-arid pockets across Central Asia and the Mediterranean, researchers have looked at it a lot as kind of a benchmark for drought response in medicinal root crops. Li et al. (2011) did one of the more cited studies on this theme, by putting two-year-old seedlings of Glycyrrhizauralensis under three different levels of water shortage. With mild water deficit (60–70% relative soil water content), the root biomass did not really drop in a statistically meaningful way. But the glycyrrhizic acid level inside the roots rose by about 89 percent, and liquiritin increased by 125 percent relative to plants that got plenty of water (Li et al., 2011). This seems extra notable because it points toward the idea that a thoughtfully controlled mild dry spell can boost the pharmaceutical worth of licorice root, while still keeping yield fairly safe.

With a moderate water deficit (40–50% soil water content), photosynthesis rates, and stomatal conductance went down in a clear way, and the root biomass started to decrease too, even though the secondary metabolite concentrations stayed high. Under a strong water deficit (20–30% soil water content), both growth in biomass and the metabolite output dropped noticeably, which likely means the plant’s coping capacity got pushed past its limit (Li et al., 2011).

This pattern of threshold behavior has been confirmed by other researchers who worked on Glycyrrhizaglabra (smooth licorice), and honestly it looks pretty consistent. Hosseini et al. (2018) reported that glycyrrhizic acid levels in the roots of G. glabra rose step by step as drought stress moved from mild to moderate, then it dropped rather quickly when conditions became severe. There was also glabridin, a different but still pharmacologically important flavonoid that occurs in licorice root, and it followed something like the same dose dependent rhythm. It went up when the stress was mild, then gradually lost ground as the drought turned extreme, (Hosseini et al., 2018).

Ashwagandha (*Withaniasomnifera*): Ashwagandha is arguably the most globally recognized Ayurvedic medicinal root, it’s used for adaptogenic, anxiolytic, and neuroprotective effects, you know the usual story. The bioactive compounds behind all that are the withanolides—steroidal lactones that are concentrated, almost exclusively in the root system.

Some research, like Shah et al. (2010), put Withaniasomnifera plants through moderate and severe soil moisture stress and then tracked both physiological parameters and withanolide levels. Under severe stress, net photosynthesis dropped by 52.6 percent. For the key withanolide marker, 12-deoxywithastramonolide (12-DWS), the concentrations landed around 0.751 mg g^{-1} in roots from the moderate-stress group and 0.714 mg g^{-1} in the severe-stress group. Those values were both below the 0.93 mg g^{-1} seen in well-watered controls. Still, even with that lower per-gram content, biomass seemed to get preferentially sent toward roots during moderate stress, so the root yield per plant was actually higher in the mild-stress situation compared with the well-watered treatment. That kind of offset partially compensated for the reduced concentration (Shah et al., 2010).

Then Singh et al. (2015) looked at drought response in W. somnifera more at the molecular scale, combining gene expression profiles with secondary metabolite concentrations. They reported that water stress caused a clear upregulation of genes linked to osmoregulation, alongside secondary metabolite biosynthesis. At the same time, the utilization of $NADPH_2$ for CO_2 fixation through the Calvin cycle dropped significantly during drought, which seems to have nudged the metabolism into a different mode, basically redirecting reducing equivalents toward isoprenoid and withanolide biosynthesis pathways (Singh et al., 2015).

Interestingly, the root to shoot ratio of W. somnifera went up under drought conditions, sort of a well-documented adaptation where the plant shifts its carbon budget toward root growth so it can reach deeper moisture. So even if the withanolide density per gram drops a little, the extra root biomass can still help balance out the reduced total withanolide yield per plant, (Shah et al. 2010).

Turmeric (*Curcuma longa*): Turmeric’s medicinal reputation leans on curcuminoids, kind of a set of polyphenolic compounds (curcumin, demethoxycurcumin and bisdemethoxycurcumin) which are kept in the rhizome. Curcumin by itself, has gotten the attention of thousands of pharmacological studies, tied to anti-inflammatory, antioxidant, and anticancer effects, over time.

Turmeric is also kinda moisture sensitive. So, unlike licorice or ashwagandha, it is grown widely in humid tropical zones but it doesn’t handle sustained drought all that well. In Research that appeared in the Communications in Soil Science and Plant Analysis (Tripathi et al., 2018)

researchers looked at turmeric under different watering situations in the Indo-Gangetic Plains of India, and reported that soil moisture drawdown patterns really influenced rhizome growth. When irrigation was reduced, rhizome fresh weight went down and curcuminoid concentrations changed in a dose dependent way, too.

A wider review about how curcuminoids are synthesized under abiotic stress suggests something like this: with mild water limitation, the relative amount of curcuminoids per gram of dry matter can rise, basically because of a metabolic redirection effect. But when drought gets severe, it lowers total rhizome output quite a bit and also reduces the absolute amount of curcuminoids collected per plant (Aggarwal et al., 2007). If water is kept away for a long stretch, the overall curcuminoid level in the rhizome drops, since the phenylpropanoid route that supports curcumin synthesis needs steady carbon supply, and drought steadily drains that availability (Zobayed et al., 2007).

This makes turmeric this kind of vulnerable medicinal root crop in water scarce scenarios, more or less. Unlike licorice or ashwagandha that have strong natural drought adaptation mechanisms, turmeric's tropical origin puts it in a relatively narrow window where water stress can create quality gains rather than just cutting down yield, full stop.

Ginger (*Zingiber officinale*): Ginger rhizomes are known to carry gingerols and shogaols, these are pungent phenolic compounds that help drive both the flavor and the medicinal benefits of ginger, such as anti inflammatory, antiemetic, plus antioxidant effects. Kinda like turmeric, ginger is a tropical crop, and yeah, a severe drought is usually pretty destructive. Still, mild to moderate water stress seems to trigger some curious shifts in how phytochemicals build up.

When people looked at Zingiber officinale across different soil moisture setups, (Li et al., 2018) reported that around 21 percent soil moisture gave the best sort of balance for growth measures like ramet number, stem diameter, and plant height. Once it fell under that mark, those growth traits dropped in a noticeable way, because drought stress starts messing with nutrient solubility and absorption, especially nitrogen availability, which is essential for metabolic performance (Li et al., 2018).

Other work on ginger under harsher water restriction found higher total flavonoid levels, higher total phenolic content, and stronger antioxidant activity. So the general pattern is that drought can stimulate secondary metabolite production. But there's the catch, similar to other tropical root based medicinal crops, where this phytochemical boost is basically traded off against a major reduction in rhizome biomass. Meaning the total bioactive compound output per hectare can end up lower under severe drought than under well managed irrigation (Zobayed et al., 2007).

Valerian (*Valeriana officinalis*): Valerian root is pretty much one of Europe's most commonly used natural sedatives, and how well it works is mostly tied to how much valerenic acid it contains—this is a sesquiterpene carboxylic acid that's concentrated in the root. Because of that, valerenic acid concentration is used right now as a standard marker for assessing pharmacological quality in valerian-based products (Shohet & Wills, 2006)

Mustafavi and colleagues (2016) looked at what happens when water is limited, basically water deficit stress in Valeriana officinalis, and they saw chlorophyll content drop bit by bit as soil moisture went down. That lines up with the broader drought-related photosynthetic trouble reported in many medicinal plants. For the root essential oil, and for valerenic acid concentration too, the behavior felt similar to what has been reported for licorice and ashwagandha: light water stress led to more build up, while severe drought seemed to shut it down.

There's also research pointing out that the iridoid biosynthetic route, which is the part that makes valerenic acid and related compounds, doesn't stay untouched. It is sensitive to ABA signaling as well as ROS-driven stress responses (Choudhury et al., 2017). During moderate drought, the boost in ABA plus some redirection of metabolic flux appears to help increase valepotriate and valerenic acid synthesis. But under harsher stress, when photosynthetic capacity gets compromised, the carbon substrates those pathways lean on start to disappear, and then concentrations fall again (Mustafavi et al., 2016).

Summary Comparison of Drought Responses Across Medicinal Root Crops : The table below synthesizes documented responses of key medicinal root crops to varying degrees of water deficit, providing a comparative reference for researchers and agronomists.

Table 1 (see in last page)

Biochemical Mechanisms Behind Quality Changes

The ROS-ABA Signaling Axis: The biochemistry behind how a water deficit messes with secondary metabolite production is kind of anchored in two connected signaling systems, reactive oxygen species (ROS) buildup and abscisic acid (ABA) signaling. Both of these start up early during the drought response, and then they sorta coordinate the metabolic reprogramming that decides whether the stressed plant ends up accumulating more secondary metabolites or actually losing them.

Under drought conditions ROS like hydrogen peroxide and superoxide tend to pile up inside plant cells because there's this imbalance between their generation, usually from light reactions and mitochondrial respiration, versus their removal or scavenging by antioxidant enzymes such as superoxide dismutase and catalase. At high levels these ROS are pretty harmful, but at the same time they work as "secondary messengers" in stress pathways. They can trigger WRKY and MYB transcription factors, which then tune gene expression for secondary metabolite biosynthesis. This includes routes for isoprenoid, alkaloid, and phenylpropanoid synthesis (Choudhury et al., 2017). ABA also increases pretty fast, in plant tissues within a few

hours after the water deficit starts. It acts through interactions with PYR/PYL receptor proteins, and then downstream SnRK2 kinases get activated. From there ABA drives a wide transcriptional shift that can involve increased jasmonic acid (JA) biosynthesis (Sah et al., 2016). And then jasmonic acid, as a potent trigger, promotes secondary metabolite biosynthesis in many medicinal plants. It directly stimulates genes tied to alkaloid formation, terpenoid production, and phenolic accumulation (Verma et al., 2016). So overall, this hormonal amplification chain goes like this: drought triggers ABA, ABA ramps up JA, JA then activates secondary metabolite genes. That sequence gives a mechanistic rationale for why even moderately mild water stress can still lead to measurable increases in bioactive compound levels in roots

NADPH Redirection and the Metabolic Surplus Hypothesis: Selmar and Kleinwächter's (2013) metabolic surplus hypothesis still reads as one of the more elegant explanations for why secondary metabolite output can rise during drought. The gist is kind of like this: when stomata start to close and CO, availability drops, the Calvin cycle basically slows down. That slowdown leaves behind an excess of NADPH, which is made in the light reactions, and at that point it cant be used as efficiently for carbon fixation. Instead of letting this reducing energy build up to potentially harmful levels, the plant reroutes it into other metabolic routes, mostly those tied to the formation of very reduced secondary metabolites. These include isoprenoids, which covers terpenoids as well as steroid-like compounds; phenolics, such as flavonoids and curcuminoids; and also nitrogen- rich alkaloids (Selmar & Kleinwächter, 2013).

When we focus on root crops, the story gets even more tangible. The metabolic switch triggered by moderate water stress can show up as a higher density of bioactive compounds in the root tissue, measured at harvest. So, the agronomic takeaway is that intentionally applying mild drought stress might work as a quality-boosting management tool. This idea has been tried in several controlled set ups, with encouraging outcomes reported for licorice (Li et al., 2011) and ashwagandha (Singh et al., 2015).

Conclusion: Water scarcity does not really hit medicinal root crops the same way it does grain or vegetable crops where, "less water" usually turns into "less and worse," fast. The connection here is a bit more tangled , and in a sense, more fascinating. Mild to moderate drought stress can genuinely boost the concentration of important bioactive compounds inside roots like licorice , ashwagandha , and valerian— sometimes, even quite a lot. The explanations are now pretty solid: drought sets off ABA and ROS signaling, and that steers metabolic flow away from basic, primary growth , and over toward secondary metabolite production, largely through the NADPH surplus route.

However severe, and also long lasting drought is a completely different situation. Once the water shortage goes past a certain critical line, the plant's biosynthetic machinery sort of folds , alongside its ability to keep growing. Biomass drops, metabolite concentration drops , and total yield per hectare drops too. Then water scarcity stops being "selectively useful" and becomes simply harmful for medicinal root quality, the same way it is for any other crop. So the main takeaway is precision. For growers of medicinal root crops— and many of them are already working under water limits— the aim should not be to wipe out water stress altogether, it should be to steer it inside that mild deficit range, where biology suggests the plant gets metabolically stimulated. That means better irrigation tech, finer knowledge of each crop's individual thresholds, and tighter linking of plant biochemistry with everyday agronomy choices. And as the global herbal medicine market expands, while water supplies keep shrinking, the capacity to grow high-quality medicinal roots with fewer water inputs will, more and more, separate more resilient producers from the fragile ones.

References:-

1. Aggarwal, B. B., Sundaram, C., Malani, N., & Ichikawa, H. (2007). Curcumin: The Indian solid gold. *Advances in Experimental Medicine and Biology*, *595*, 1–75. https://doi.org/10.1007/978-0-387-46401-5_1
2. Alexandratos, N., & Bruinsma, J. (2012). *World agriculture towards 2030/2050: The 2012 revision* (ESA Working Paper No. 12-03). Food and Agriculture Organization of the United Nations. https://www.fao.org/3/ap106e/ap106e.pdf
3. Choudhury, F. K., Rivero, R. M., Bhatt, D. L., & Bhatt, D. L. (2017). Reactive oxygen species, abiotic stress and stress combination. *The Plant Journal*, *90*(5), 856–867. https://doi.org/10.1111/tpj.13299
4. Farooq, M., Wahid, A., Kobayashi, N., Fujita, D., & Basra, S. M. A. (2009). Plant drought stress: Effects, mechanisms and management. *Agronomy for Sustainable Development*, *29*(1), 185–212. https://doi.org/10.1051/agro:2008021
5. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2011). *The state of the world's land and water resources for food and agriculture (SOLAW): Managing systems at risk*. FAO. https://www.fao.org/3/i1688e/i1688e.pdf
6. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2016). *AQUASTAT main database — Water resources and water use*. FAO. http://www.fao.org/aquastat/en/
7. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2017). *Water for sustainable food and agriculture: A report produced for the G20 Presidency of Germany*. FAO. https://www.fao.org/3/i7959e/i7959e.pdf
8. Hosseini, S. Z., Gorttapeh, A. H., Hasanloo, T., & Badi, H. N. (2018). Water deficit effects on phytochemical accumulation in licorice (*Glycyrrhizaglabra* L.). *Journal of Herbs, Spices & Medicinal Plants*, *24*(3), 261–272.

https://doi.org/10.1080/10496475.2018.1444393

9. Li, W. D., Hou, J. L., Wang, W. Q., Tang, X. M., & Xing, D. (2011). Effect of water deficit on biomass production and accumulation of secondary metabolites in roots of *Glycyrrhizauralensis*. *Russian Journal of Plant Physiology*, *58*(3), 538–544. https://doi.org/10.1134/S1021443711030101
10. Li, X., Zhang, R., Xu, Z., & Wang, J. (2018). Effects of soil moisture content on the growth and physiological status of ginger (*Zingiber officinale* Roscoe). *ScientiaHorticulturae*, *238*, 15–21. https://doi.org/10.1016/j.scienta.2018.04.031
11. Mancosu, N., Snyder, R. L., Kyriakakis, G., & Spano, D. (2015). Water scarcity and future challenges for food production. *Water*, *7*(3), 975–992. https://doi.org/10.3390/w7030975
12. Mekonnen, M. M., & Hoekstra, A. Y. (2016). Four billion people facing severe water scarcity. *Science Advances*, *2*(2), e1500323. https://doi.org/10.1126/sciadv.1500323
13. Mustafavi, S. H., Shekari, F., & Badi, H. N. (2016). Influence of polyamine on physiological and biochemical characteristics of valerian (*Valeriana officinalis* L.) plants under drought stress. *ActaAgriculturaeSlovenica*, *107*(1), 81–93. https://doi.org/10.14720/aas.2016.107.1.09
14. Sah, S. K., Reddy, K. R., & Li, J. (2016). Abscisic acid and abiotic stress tolerance in crop plants. *Frontiers in Plant Science*, *7*, 571. https://doi.org/10.3389/fpls.2016.00571
15. Selmar, D., & Kleinwächter, M. (2013). Stress enhances the synthesis of secondary plant products: The impact of stress-related over-reduction on the accumulation of natural products. *Plant and Cell Physiology*, *54*(6), 817–826. https://doi.org/10.1093/pcp/pct054
16. Shah, S., Saravanan, R., &Gajbhiye, N. A. (2010). Phytochemical and physiological changes in ashwagandha (*Withaniasomnifera*Dunal) under soil moisture stress. *Brazilian Journal of Plant Physiology*, *22*(4), 255–261. https://doi.org/10.1590/S1677-04202010000400006
17. Shohet, D., & Wills, R. B. H. (2006). Effect of postharvest handling on valerenic acids content of fresh valerian (*Valeriana officinalis*) root. *Journal of the Science of Food and Agriculture*, *86*(1), 107–110. https://doi.org/10.1002/jsfa.2333
18. Singh, R., Mishra, A., Dhawan, S. S., Shirke, P. A., Gupta, M. M., & Sharma, A. (2015). Physiological performance, secondary metabolite and expression profiling of genes associated with drought tolerance in *Withaniasomnifera*. *Protoplasma*, *252*(4), 1107–1120. https://doi.org/10.1007/s00709-015-0771-z
19. Tripathi, S. K., Sharma, B., Ray, R., Raha, P., & Denis, A. F. (2018). Performance of turmeric and soil moisture depletion pattern under different water regimes and nutrient sources at new alluvial zone of Indo-Gangetic Plains, India. *Communications in Soil Science and Plant Analysis*, *49*(9), 995–1008. https://doi.org/10.1080/00103624.2018.1448858
20. United Nations. (2018). *The sustainable development goals report 2018*. United Nations Publications. https://unstats.un.org/sdgs/files/report/2018/TheSustainableDevelopmentGoalsReport2018-EN.pdf
21. Verma, N., Shukla, S., & Maheshwari, N. (2016). Jasmonic acid-mediated regulation of secondary metabolite biosynthesis in medicinal plants: An update. *Journal of Phytopharmacology*, *5*(5), 195–200.
22. Zobayed, S. M. A., Afreen, F., &Kozai, T. (2007). Phytochemical and physiological changes in the leaves of *St. John's wort* plants under a water deficit stress. *Environmental and Experimental Botany*, *59*(2), 109–116. https://doi.org/10.1016/j.envexpbot.2005.11.002

Table 1: Effects of Water Deficit on Yield and Key Secondary Metabolite Concentration in Selected Medicinal Root Crops

Crop	Key Bioactive Compound	Effect of Mild Drought	Effect of Severe Drought	Source
Glycyrrhizauralensis	Glycyrrhizic acid	+89% increase in concentration	Significant decline	Li et al. (2011)
Glycyrrhizauralensis	Liquiritin	+125% increase in concentration	Significant decline	Li et al. (2011)
Withaniasomnifera	12-Deoxywitha-stramonolide	Slight decline (~7%) in concentration	~23% decline vs. control	Shah et al. (2010)
Curcuma longa	Curcuminoids	Minor increase per gram dry weight	Overall decline with yield loss	Tripathi et al. (2018)
Zingiber officinale	Total phenolics & flavonoids	Elevated under moderate stress	Declined with severe biomass loss	Li et al. (2018)
Valeriana officinalis	Valerenic acid	Stimulated under mild deficit	Suppressed under severe deficit	Mustafavi et al. (2016)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054, April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Phytochemical Profiling and Antioxidant Potential of Selected Aquatic Medicinal Plants

Dr. Ragini Sikarwar*

***Assistant Professor and HOD (Botany) Govt. Home Science PG Lead College, Narmadapuram (M.P.) INDIA**

Abstract: Aquatic and wetland associated plants have been helping traditional medicine systems across South and Southeast Asia, sub–Saharan Africa, and Latin America, for generations, but their phytochemical as well as antioxidant capabilities are still way less systematically mapped than those of terrestrial medicinal plants. Here we gather reported lab results from six species that have clear medicinal credibility and a real aquatic or semi aquatic home: sacred lotus (Nelumbonucifera), water hyacinth (Eichhorniacrassipes), water spinach (Ipomoea aquatica), blue red water lily (Nymphaea nouchali), Indian pennywort (Centellaasiatica) and the cyanobacterium Spirulina platensis. For each one, the reported total phenolic content (TPC), total flavonoid content (TFC), and DPPH/ABTS radical scavenging IC50 figures are taken from the original articles and set side by side, along with the qualitative phytochemical categories that were identified within each species. Looking across all six, phenolic plus flavonoid levels track quite broadly with how strong the free radical scavenging looks, which fits the standard hydrogen atom transfer, and also single electron transfer explanations used for polyphenolic antioxidants. The reviewed work further hints at uses that go beyond human phytomedicine, like using water spinach, and even algal biomass, in aquafeed mixes to help reduce oxidative stress in fish that are raised on farms. Still, there are fairly big inconsistencies between studies: extraction solvent choices, which plant part was sampled, and how the assay was run. Those issues make direct comparisons between species difficult, and they are addressed here, plus future routes for more standardized research are outlined.
Keywords: phytochemical screening, DPPH assa, Spirulina platensis, aquatic medicinal plants, antioxidant activity, Nelumbonucifera.

Introduction - Reactive oxygen species (ROS) show up sort of continuously, as a by-product of normal aerobic metabolism, and when the environment gets rough, or inflammation steps in, or during ageing, their formation can end up going faster than what the body s own enzymatic and non-enzymatic defenses can manage. That mismatch, and it is usually called oxidative stress, has been tied to the worsening of cardiovascular disease, diabetes, neurodegenerative problems and also several cancers. Because of that link, finding antioxidants that are effective yet safe has stayed pretty much a long-running topic, in pharmacological research for decades.

Synthetic antioxidants like butylated hydroxyanisole (BHA) and butylated hydroxytoluene (BHT) are still used a lot in food and pharma, however worries about their long-term safety, have nudged both industry and academic groups toward plant-derived replacements. Most of the focus has gone to terrestrial medicinal plants, and there are already broad phytochemical collections for examples such as turmeric neem and ginger. Aquatic and wetland-associated plants, though, have gotten less attention overall, even though they have a long history of use in Ayurveda, traditional Chinese medicine and a bunch of local folk-medicine practices across Asia and Africa.

Also there's a sort of biological angle to why we might expect aquatic macrophytes to be a productive source of antioxidant phytochemicals. Plants that grow in, or right along the edges of water bodies, are usually dealing with shifting light strength, herbivory from aquatic fauna, microbial and fungal pressure, and in many situations nutrient or pollutant loading that comes in from the surrounding water. The production of secondary metabolites, like phenolics, flavonoids, tannins, and alkaloids, is considered one of the main defence tactics plants use under these kinds of stress. And several of the species reviewed here are known to build up these compounds at levels on par with, or even above, well known terrestrial medicinal herbs, depending on the study.

This review puts together and compares the published phytochemical and antioxidant information for six species that really have aquatic, semi-aquatic, or wetland margin habitats, plus a documented traditional or newer medicinal use: Nelumbonucifera, Eichhorniacrassipes, Ipomoea aquatica, Nymphaea nouchali, Centellaasiatica and

Spirulina platensis. The aim isn't to add brand new experimental results, but rather to integrate the already peer reviewed evidence into one comparative narrative, emphasizing what keeps turning up consistently, where different papers don't agree, and how useful this literature is for aquaculture, nutraceutical development, and pharmacology.

Aquatic Medicinal Plants: An Overview: Aquatic and semi aquatic medicinal plants can be kind of broadly sorted by they growth habit into submerged macrophytes, which are largely or fully beneath the water surface, then floating macrophytes, those free floating ones out on the surface where they can be rooted or not, and also emergent or marginal species that are rooted in submerged or waterlogged soil, but still most of the plant body sits above the water. In a way the six species reviewed here cover this whole span: Nymphaea nouchali is a rooted floating leaved type, Eichhorniacrassipes is the sort of free-floating aquatic weed that shows up fast, Nelumbonucifera comes in as rooted, with both floating leaves and emergent leaves. For the more creeping, marsh margin and semi aquatic herbs, Ipomoea aquatica and Centellaasiatica are often seen along ditches, paddies, and pond edges. Then Spirulina platensis, more formally placed as Arthrospira platensis, is a filamentous photosynthetic cyanobacterium native to alkaline lakes, and it is now cultivated commercially, in open ponds, and also in photobioreactors all over the world.

All six are described as having traditional or more modern medicinal use. Nelumbonucifera takes up a big role in Ayurvedic practice and also in traditional Chinese medicine, where its seeds, rhizome, leaf and flower are applied in several ways for cardiotonic effects, fever reducing action and also astringent purposes. Nymphaea nouchali , which is the national flower of Bangladesh and Sri Lanka, shows up in South Asian folk medicine for diabetes, liver related troubles and inflammation. Centellaasiatica, often called gotu kola or Indian pennywort, is among the most frequently studied herbs for wound repair and brain support, coming from South and Southeast Asian traditional systems. Ipomoea aquatica, known as water spinach or kangkong, is eaten as a leafy vegetable and it also functions as a folk remedy for digestive issues and hepatic complaints across South and Southeast Asia. Eichhorniacrassipes, despite being famously invasive as one of the world's worst aquatic weeds, is more recently drawing attention for research focused on antioxidant and antimicrobial phytochemical sources, partly as a way of giving value to an otherwise troublesome biomass. Spirulina platensis meanwhile, is already a well-established nutraceutical and functional food component, sold worldwide for its protein, pigment, and antioxidant profile.

Literature Review Approach

This review is based on peer-reviewed studies pulled from PubMed, ScienceDirect, Wiley Online Library, MDPI, Springer, and other related academic databases. We used combinations of each species scientific name with terms like, phytochemical antioxidant total phenolic content total flavonoid content and DPPH. Preference was given to work that reports numerical total phenolic content, (TPC) total flavonoid content, (TFC) and or half-maximal inhibitory concentration, (IC50) from DPPH, ABTS, or similar radical-scavenging tests. Whenever it was available, this was reinforced by more qualitative phytochemical screening data.

Since the surveyed studies differ in plant part, extraction solvent, extract concentration units, and also the reference standard, the information gathered in Tables 1 and 2 and Figures 1 and 2 is not the outcome of a controlled, side-by-side comparison. Instead it should be read as a kind of illustrative synthesis of what has been independently reported for each species, rather than as measurements that are directly equivalent. This constraint, common to most narrative reviews in phytochemical work, is taken up again in Section 8.

Phytochemical Profiles and Antioxidant Potential of Selected Species

Nelumbonucifera (Sacred Lotus): Nelumbonucifera (family Nelumbonaceae) is one of the most thoroughly examined aquatic medicinal plants and it has been described as carrying a wide range of bioactive constituents, like alkaloids, flavonoids, tannins, saponins, plus phenolic acids. These compounds appear to be distributed in unequal ways across the seed, leaf, flower, rhizome, and stamen. So, a hydro-alcoholic seed extract of lotus was reported to contain 7.61% w/w total phenolic content, and it also showed very strong DPPH scavenging behavior, with an IC50 value of 6.12 µg/mL, which was lower, thus more potent, than the rutin reference standard used in the same work. In addition, the very same extract demonstrated hepatoprotective and renoprotective actions against carbon tetrachloride induced oxidative injury in rats.

In contrast, leaf extracts often look richer in phenolic and flavonoid amounts but they tend to show less powerful radical-quenching performance than the seed extract mentioned above. For example, methanolic and aqueous leaf extracts were described with total phenolic contents of 147.63 and 85.01 mg gallic acid equivalents (GAE) per gram of dry mass, respectively, and flavonoid levels of 41.86 and 35.38 mg quercetin equivalents (QE) per gram. Yet their DPPH results moved in the opposite direction, with higher, meaning weaker, IC50 values of 514.36 and 1699.47 µg/mL. Meanwhile, GC-MS based screening of lotus rhizome from an Indonesian freshwater source revealed 238 distinct compounds in the crude ethanolic extract, including linoleic acid, stigmasterol, and betulin. That rhizome fraction showed a more moderate DPPH IC50 of 57.88 ppm.

Flower extracts have also been evaluated in similar lines. A methanolic lotus flower extract, for instance, produced an antioxidant EC50 of 0.17 mg/mL against DPPH

radicals. Overall, the seed extract seems to stand out among lotus tissues because of its unusually strong ability to neutralize radicals, while leaf, rhizome, and flower extracts appear more moderate in that respect, even if they still remain meaningfully active.

Eichhorniacrassipes (Water Hyacinth): Eichhorniacrassipes (family Pontederiaceae) , is that fast-growing free-floating aquatic weed from South America, and it is now naturalised across tropical and subtropical waterways around the globe where it is usually seen as an ecological and economic nuisance, not really a usable resource. What's interesting, though, is that over roughly the past decade phytochemical work has repeatedly shown phenolics, tannins, flavonoids and saponins in extracts from leaves, flowers, and petioles , while alkaloids are mostly reported as absent , or "negative" in the usual screening.

For example, a hydro-methanolic leaf extract was described with a total phenolic content of 491.2 mg GAE/g, and a total flavonoid content of 76.8 mg quercetin equivalents per gram. That's notably higher than the matching aqueous extract (258.3 mg GAE/g and 46.1 mg QE/g). The hydro-methanolic extract also looked stronger in antioxidant assays, giving 221.52 mg ascorbic acid equivalents per gram, versus 97.07 for the aqueous one, and it showed antibacterial action against Escherichia coli and Pseudomonas aeruginosa.

In another study, extracts from water hyacinth flowers were tested using three solvents that increase in polarity. Here the methanolic extract was way more active overall, with a DPPH IC50 of 35.83 ppm, while the ethyl acetate extract came in at 950.71 ppm and the n-hexane extract at 1085.31 ppm. This highlights a strong solvent–polarity effect, which fits the idea that polar phenolic antioxidants tend to perform better. Petiole extracts were also evaluated for cytotoxicity against MG-63 osteosarcoma cells, alongside antioxidant testing. They showed 57.95% DPPH and 60.47% ABTS scavenging at 400 µg/mL, and an IC50 of 177.65 µg/mL against the cancer cell line. So overall, the plant's bioactive potential seems to go past plain radical scavenging, even if it sometimes gets framed as only that.

Ipomoea aquatica (Water Spinach)

Ipomoea aquatica (family Convolvulaceae), you know, usually called water spinach or kangkong, is kind of a semi aquatic vegetable, and also a traditional remedy that people consume a lot across South and Southeast Asia. In one broad metabolite profiling work using UPLC-qTOF-MS/MS they reported more than 65 compounds, and 36 secondary metabolites in the plant overall, with most of them being polyphenolic type substances, plus some alkaloids and terpenoids in the mix. That same study gave total phenolic and flavonoid values of 142.43 mg GAE/g, and 43.06 mg rutin equivalents (RE)/g too, and they also measured ABTS and DPPH IC50 at 0.087 mg/mL and 0.122 mg/mL. On top of that, the extract showed a detectable ability to reduce UV, and hydrogen-peroxide caused DNA damage, in vitro. Now, since this journal is looking at aquatic systems and aquaculture, there was another HPLC-DAD-based investigation that basically zoomed in on water spinach as a candidate bioactive ingredient for fish feed, because it is already used as part of aquafeed recipes. They described a crude ethanolic extract IC50 of 149.30 µg/mL against DPPH radicals. Interestingly, the aqueous fraction came out better, with 176.59 µg/mL, while the n-hexane fraction was weaker at 365.07 µg/mL, and they ended by saying that the plant polyphenol, and flavonoid levels may help justify its inclusion in feed blends intended to boost disease resistance plus stress tolerance in farmed fish. They also hinted that anti nutritional factors would still need to be handled when designing the feed. And in comparison, to land spinach, the terrestrial cousin, both papers? similar results showed water spinach had the stronger antioxidant capacity, and that lined up with water spinach showing the higher total phenol and flavonoid content.

Nymphaea nouchali (Blue-Red Water Lily): Nymphaea nouchali (family Nymphaeaceae) is said to be the national flower of Bangladesh and Sri Lanka, and yes it's a rooted floating-leaved aquatic herb, used in South Asian folk and Ayurvedic practice kinda broadly. People use it for diabetes, inflammation, liver disorders, and also as a sort of general tonic. One report described a hydro-alcoholic seed extract that showed very high tannins, about 195.84 gallic acid equivalents per gram, plus total phenolics at 179.56 GE/g , and flavonoids at 23.55 quercetin equivalents/g. In the DPPH and nitric oxide tests, and also for lipid peroxidation, it gave IC50 values around 42.82, 23.58, and 54.65 µg/mL respectively. It also had a high overall antioxidant capacity, reported as 577.73 mg vitamin E equivalent per gram of extract, which sounds pretty impressive.

Then there's a fuller metabolomic angle, a UHPLC-QTOF-MS study on Egyptian populations of Nymphaea nouchali, where researchers annotated 185 secondary metabolites across flower, leaf and stem. Those compounds ranged through phenolic acids, ellagitannins, flavonoids, anthocyanins, and even alkaloids. The flowers, somehow, showed the strongest antioxidant activity among the three organs. The IC50 values were given as 45.15 µg/mL for DPPH, and 5.02 µg/mL for ABTS scavenging, and the same work also pointed to acetylcholinesterase inhibition, which is often discussed for possible cognitive use. Related work on water lily stems from Bangladesh found more moderate DPPH IC50 values, roughly 28.48 to 36.67 µg/mL, for red and white cultivars respectively. Besides that, there was also appreciable mineral and protein content, so the plant stays used as both something like a food plus a medicinal resource, you know.

Centellaasiatica (Indian Pennywort / Gotu Kola): Centellaasiatica (family Apiaceae) tends to show up, you know, in marshy waterlogged and pond-margin places across tropical Asia. It's also basically one of the most pharmacologically researched semi-aquatic medicinal

herbs, mainly because of its triterpenoidsaponins—asiaticosidemadecassoside, asiatic acid and madecassic acid—those are the backbone of its clearly described wound-healing action. Still, beyond those triterpenoids, the plant carries a notable store of phenolics plus flavonoids, and that's tied to a lot of its antioxidant power, in a more or less straight forward way.

In one report, a chloroform-soluble fraction of Centellaasiatica had the top phenolic level (155.46 mg GAE/g) and flavonoid level (345.17 mg QE/g) out of the solvent fractions that were tested. That same fraction also turned out to have the most forceful DPPH scavenging effect in the group, with an IC50 value of 15.31 µg/mL. They also observed a positive relationship between flavonoid abundance and antioxidant performance, with $r^2 = 0.894$, and it looked pretty convincing. In another separate study, an aqueous leaf extract gave a less impressive DPPH IC50 of 31.25 µg/mL which is about twelve-fold weaker than the ascorbic acid benchmark (2.50 µg/mL). But even so, it remained in the same rough range as the BHT standard (7.58 µg/mL) that was used in that particular experiment; moreover, the aqueous extract showed cytotoxic activity on melanoma, breast cancer, and glioma cell lines.More comparative work, focused on shoot, callus, and cell-suspension cultures, suggested that the callus extract was the strongest overall. It reached an IC50 of 10 µg/mL in the DPPH assay, and it only just edged out the ascorbic acid standard (IC50 26.25 µg/mL) within that specific run, so yes, it's a narrow difference but a real one.

Spirulina platensis (Arthrospira platensis): Spirulina platensis, now more formally reclassified as Arthrospira platensis, is filamentous and photosynthetic, a cyanobacterium grown commercially all over the world, sort of as a protein heavy nutraceutical and functional-food ingredient. Its antioxidant effect is usually pinned mostly on the blue pigment phycocyanin, which is a phycobiliprotein, plus beta-carotene and a smaller set of phenolic compounds, and not so much on terpenoid or alkaloid families that tend to dominate the vascular plant discussion we talked about above.

In whole-biomass work, researchers reported a total phenolic content of 40.45 mg/g at the highest biomass concentration tested. Along with that, DPPH radical inhibition increased when the biomass concentration went up. When phycocyanin is isolated and purified, the antioxidant performance tends to come out stronger and more repeatable than what you see with crude biomass extracts. For example, one paper using a green aqueous two-phase extraction setup measured phycocyanin with DPPH and ABTS IC50 values of 38.15 and 25.70 ppm, respectively. Another study, using a Box-Behnken optimisation design, reported IC50 values of 40.70 µg/mL for DPPH, 23.25 µg/mL for ABTS, and 17.74 µg/mL for nitric oxide scavenging.

Also, a comparative analysis looking at tropical Spirulina platensis alongside the seaweeds Gracilariaarcuata and Ulva lactuca found that Spirulina's aqueous extract had the lowest total phenolic content and the weakest radical-scavenging ability among the three. That suggests, within algae as it does within vascular plants, the extraction solvent and the specific target compound family matter a lot for the antioxidant potency you end up measuring.

Comparative Phytochemical and Antioxidant Data: Table 1 summarises representative total phenolic content, total flavonoid content and DPPH IC50 values reported for each of the six species, drawn directly from the primary studies discussed above. Table 2 presents a qualitative comparison of the major phytochemical classes detected by standard screening tests across the same species.

Table 1 (see in last page)

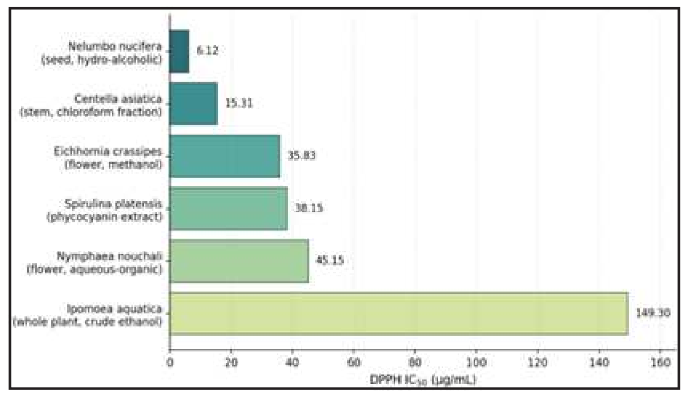

Figure 1: Comparative DPPH Radical-Scavenging Potency of Selected Aquatic Medicinal Plant Extracts

Figure 1 kind of compares the DPPH IC50 numbers (µg/mL) for the most potent extract or fraction that was reported in the referenced work, for each species. Basically, smaller values mean the extract had stronger radical scavenging. The plotted points come from six separate studies, and they used various plant parts , plus different solvents too (Nelumbonucifera seed extract: ScienceDirect, 2005; Centellaasiatica stem chloroform fraction: Clinical Phytoscience, 2023; Eichhorniacrassipes flower methanol extract: Pharmacognosy Journal, 2022; Spirulina platensis phycocyanin extract: ScienceDirect, 2025; Nymphaea nouchali flower extract: Scientific Reports, 2025; Ipomoea aquatica whole-plant crude ethanol extract: Aquaculture, Fish and Fisheries, 2022). Because the assays were done differently, these results really should not be treated as directly comparable.

Table 2 (see in last page)

The comparative data show a kind of broadly consistent pattern, species and extracts with higher reported phenolic and flavonoid content tend, though not fully every time, to come with lower (more potent) DPPH IC50 values, which supports the well-established structure–activity relationship between hydroxylated aromatic compounds and free-radical

scavenging capacity. The lotus seed extract and the Centellaasiatica chloroform fraction kind of stand out as the most potent radical scavengers among the extracts surveyed, both in the low tens of micrograms per millilitre range or even less, and they are comparable to or nearly matching the potency of standard antioxidants such as ascorbic acid and BHT used as positive controls in the same studies. Water spinach by contrast often returns weaker (higher) IC50 values across the studies reviewed, though that might partly be because it usually has a lower degree of extract concentration or the fact that crude extracts were used rather than fractionated ones. Spirulina platensis is a partial exception to the general phenolic–antioxidant correlation, because a lot of its measured antioxidant activity is tied to the phycobiliproteinphycocyanin instead of classical phenolic compounds, and this mechanistic detail is discussed further in Section 6.

Antioxidant Mechanisms of Action: The DPPH and ABTS assays that are used across the studies reviewed here they mostly work via two kind of closely linked mechanisms: hydrogen-atom transfer (HAT), where an antioxidant gives away a hydrogen atom in order to neutralise the radical, and single-electron transfer (SET), where instead an electron is donated, and then it is often followed by proton loss. Phenolic compounds are effective in both routes because their hydroxyl groups, especially when they sit on an aromatic ring with electron-donating substituents, are able to stabilise the phenoxyl radical that forms, thanks to resonance delocalisation. Flavonoids seem to stretch this ability even further, due to their usual three-ring layout; the number and location of hydroxyl groups matter a lot, and the presence of a catechol on the B-ring, is typically linked with stronger radical-scavenging power, which matches the higher activity that was noted in flavonoid-rich fractions like the Centellaasiatica chloroform extract mentioned earlier. Tannins, found across most of the species that were looked at, also support antioxidant activity through a hydroxyl-donating style mechanism, but they add protein- and metal-binding capacity on top of that, so this may be one reason why Nymphaea nouchali seed extract shows especially high tannin and antioxidant values. Alkaloids and terpenoidsaponins, even though they're present in several species, tend to contribute less straight to the radical-scavenging tests, and they are often connected more with other pharmacological effects; for example the wound-healing action often attributed to Centellaasiaticat-riterpenoidsaponins.

Spirulina platensis is a bit of a mechanistically different story. Its main antioxidant, phycocyanin, is a chromoprotein, with a bilin chromophore that is structurally linked to bile pigments. In this case the chromophore takes on free radicals via a mix of hydrogen donation and radical addition, rather than by the more straightforward phenolic mode that seems to dominate in the vascular plants reviewed here. That sort of structural divergence probably accounts for why Spirulina biomass extracts can look like they have comparatively modest phenolic content, and still, when phycocyanin is pulled out and purified the antioxidant effect becomes broadly similar to the stronger phenolic extracts reported for the other species.

Applications: Nutraceutical, Pharmaceutical and Aquaculture Relevance: The species reviewed here kind of have uses that reach way beyond what people usually think of as human phytomedicine. For example, Centellaasiatica extracts have already been put into topical wound care and skin-related products based on their triterpenoid plus antioxidant makeup, even if the exact choice of formulation varies. Meanwhile, Nelumbonucifera seed and leaf extracts have been examined for hepatoprotective roles and also anti-angiogenic effects, which fits with their noted antioxidant activity. Spirulina platensis is one of the most commercially advanced among the six, sold globally as a dietary supplement and more and more studied as a natural colourant, plus antioxidant additive, in cosmetic products especially when it is in a phycocyanin purified format.

Of particular relevance for a journal that leans into aquatic research and environmental studies, it's kind of interesting how several of the reviewed species have direct use, within aquaculture environments. Ipomoea aquatica was evaluated, as a bioactive ingredient in fish feed, with the idea that its polyphenol and flavonoid levels might counter oxidative stress and also bolster disease resistance in cultured fish, which is really practical given how oxidative stress from crowding, handling and water quality swings is a known headache in intensive aquaculture.

Algal biomass, including Spirulina, is also a fairly well established aquafeed additive, mainly because it combines strong protein content with antioxidant pigments. In parallel, growing algae alongside fish operations has been looked at too, as a way to promote nutrient recycling and help with water quality management in integrated aquaculture systems, there is often a rationale there about making the whole setup more self-contained. Water hyacinth, even though it is an invasive species that usually brings major ecological and economic harm in many freshwater areas, can still be seen as a kind of worked example for converting an environmental burden into a usable resource. This is because the antioxidant and antimicrobial phytochemical content has been demonstrated, so in a more controlled scenario it could be valorised via managed harvesting rather than treated only as waste biomass.

Challenges, Limitations and Future Directions: Some limitations keep showing up in the reviewed literature and they sort of make direct comparison between species hard, like not that clean. First, the extraction solvent, which plant part was used, the extract concentration units (for example per gram dry weight, or per gram extract, or even per hundred grams fresh weight) and the reference standards are different a lot from study to study. Sometimes, it's even

different within the same species, which pretty much accounts for a big more than tenfold span in reported IC50 values for one species such as Nelumbonucifera or Nymphaea nouchali. Second, most of the studies that were looked at use in vitro chemical assays, like DPPH and ABTS, which are kind of useful as an quick screening, but they do not always forecast in vivo antioxidant performance or bioavailability. And also, only a small number of the reviewed papers actually go further into animal tests or clinical validation.

Third, because many of the species reviewed do grow in open water bodies that may get hit by agricultural runoff, industrial discharge or urban wastewater, their phytochemical content and safety profile can be kinda influenced by local water quality, including the likelihood of heavy-metal, or other contaminant accumulation, especially with a hyperaccumulator species like Eichhorniacrassipes. This is a key practical point for any proposed use of wild-harvested aquatic plant material, for food, feed or pharmaceutical purposes, and it really supports the need for source-water testing alongside phytochemical characterisation in future work. Fourth, seasonal plus developmental shifts in phytochemical content have been noted even within a single species, like the month-to-month changes in proximate and phytochemical composition for Nymphaea nouchali flowers, suggesting harvest timing is something that future standardisation efforts will have to manage, carefully too.

Future research would do well with harmonised extraction and assay procedures, so that real cross-species and cross-study comparisons are possible, plus more frequent use of complementary assays (FRAP, ORAC, cellular antioxidant assays) next to DPPH and ABTS. There should also be more focus on in vivo confirmation, and toxicological profiling, particularly for species such as water hyacinth, where contamination risk from the environment is a realistic issue. For the aquaculture relevant species discussed in Section 7, controlled feeding trials that quantify impacts on fish growth performance, oxidative stress biomarkers, and disease resistance would back up the applied evidence much more, beyond the current mostly in vitro view.

Conclusion: The six aquatic and wetland connected species that were reviewed here, Nelumbonucifera, Eichhorniacrassipes, Ipomoea aquatica, Nymphaea nouchali, Centellaasiatica and Spirulina platensis collectively show that watery ecosystems can carry a phytochemically abundant and pharmacologically meaningful flora but it still stays a bit under-noticed in mainstream antioxidant research when compared with terrestrial medicinal plants. The published reports, pretty much always link a higher phenolic and flavonoid load to stronger radical scavenging effects across these species, though there is also a lot of variation, caused by which plant part is used, the extraction solvent chosen and, for Spirulina in particular, a different pigment driven antioxidant pathway. Beyond their known, and sometimes still emerging, contributions to human phytomedicine and nutraceuticals, a few of these species also feel quite practical for aquaculture and broader environmental care. This can be through functional feed ingredients, or as a way to turn invasive biomass into something valuable. Using that opportunity more fully will likely depend on future studies that standardise extraction and assay methods, consider the environmental plus safety issues that are unique to plant material grown in water, and then go past only in vitro screening, toward evidence that is both validated in vivo and supported at field scale.

References:-

1. Baehaki, A., et al. (2022). Phytochemical Analysis and Antioxidant Activity of Water Hyacinth Flowers (Eichhorniacrassipes) Extract. Pharmacognosy Journal, 14(6 Suppl).
2. Chemical and biochemical characterization of Ipomoea aquatica: genoprotective potential and inhibitory mechanism of its phytochemicals against á-amylase and á-glucosidase. (2023). Frontiers in Nutrition. PMC10772144.
3. Composition and antioxidant properties of water lily (Nymphaea nouchali) tuber and development of composite biscuits. (2024). ScienceDirect.
4. Detection of proximate, phytochemical compositions, phycocyanin and antioxidant activity of Arthrospira platensis (Spirulina). (2025). Taylor & Francis Online.
5. Evaluation of the Chemical Compounds and Antioxidant and Antimicrobial Activities of the Leaves of Eichhorniacrassipes (Water Hyacinth). (2021). Jundishapur Journal of Natural Pharmaceutical Products (Brieflands).
6. Green extraction and purification of phycocyanin from Spirulina platensis: Evaluation of its bioactivity and photoprotection. (2025). ScienceDirect.
7. Hydroalcoholic extract of Nelumbonucifera seeds promotes wound healing and increases tensile strength in rats. (2025). ScienceDirect.
8. Nutraceutical Prospects and Antioxidant Activity of White and Red Water Lily Stem Available in Bangladesh. (2022). Current Research in Nutrition and Food Science Journal.
9. Parimala, M., &Shoba, F. G. (2013). Phytochemical analysis and in vitro antioxidant activity of hydroalcoholic seed extract of Nymphaea nouchaliBurm. f. Asian Pacific Journal of Tropical Biomedicine, 3(11), 887–895.
10. Phytochemical Analysis and Antioxidant Activity of CentellaAsiatica Extracts: An Experimental and Theoretical Investigation of Flavonoids. (2023). MDPI Plants, 12(20), 3547.
11. Phytochemical investigation and determination of phytoconstituents in flower extract of Nelumbonucifera.

(2019). Journal of Drug Delivery and Therapeutics, 9(1), 146–149.
12. Profiling of bioactive compounds and antioxidant activity of aquatic weed Ipomoea aquatica. Roy, S., et al. (2022). Aquaculture, Fish and Fisheries, Wiley Online Library.
13. Recent updates on the pharmacological and nutritional properties of Spirulina platensis: A comprehensive review. (2026). ScienceDirect.
14. Sivarajan, N. D., et al. Anti-Angiogenic Effect of Nelumbonucifera Leaf Extracts in Human Umbilical Vein Endothelial Cells with Antioxidant Potential. PMC4340789.
15. Stability and Antioxidant Activity of Food-Grade Phycocyanin Isolated from Spirulina platensis. ResearchGate.
16. Chandrika, U. G., et al. Antioxidant, cytotoxic, antibacterial and thrombolytic activities of Centellaasiatica L.: possible role of phenolics and flavonoids. (2023). Clinical Phytoscience, Springer Nature Link.
17. Antioxidant activity of Centellaasiatica: Effect of extraction solvent polarity. (2019). ResearchGate.
18. Antioxidant and Cytotoxic Activities of Centellaasiatica (L) Urb. (2009). International Journal of Molecular Sciences, 10(9), 3713.
19. Antioxidant activity of Nelumbonucifera (sacred lotus) seeds. (2005). ScienceDirect.
20. Antioxidant activity of Indonesian water spinach and land spinach (Ipomoea aquatica): A comparative study. (2019). IOP Conference Series.
21. Comparative Study of Antioxidant Activities of the Leaves and Stem of Ipomoea aquaticaForsk (Water Spinach). ResearchGate.
22. Comparative Study on Antioxidant Activities, Total Phenolic Compound and Pigment Contents of Tropical Spirulina platensis, Gracilariaarcuata and Ulva lactuca Extracted in Different Solvents Polarity. (2020). ResearchGate.
23. Enhancing the quality and antioxidant capacity of phycocyanin extracted from Spirulina platensis PCC 7345: A quality-by-design approach. (2024). ScienceDirect.
24. PHYTOCHEMICAL ANALYSIS OF LOTUS (NELUMBO NUCIFERA) rhizomes in Joto Reservoir, East Java, Indonesia. (2025). SABRAO Journal of Breeding and Genetics, 57(5), 2127–2138.
25. Antioxidant and Anticancer Activity of Spirulina platensis Water Extracts. International Journal of Pharmacology, 11(7), 846–851. (2015).
26. Antioxidant and Cytotoxic Effects of the Methanolic Extract of Eichhorniacrassipes Petioles Upon Mg-63 Cell Lines: An In Vitro Study. PMC10234613.
27. Tyagi, T., & Agarwal, M. (2017). Antioxidant Properties and Phenolic Compounds in Methanolic Extracts of Eichhorniacrassipes. Research Journal of Phytochemistry, 11, 85–89.
28. Unravelling Egyptian blue Lily (Nymphaea nouchali) organs' metabolome via UHPLC/PDA/ESI-QTOF-MS and in relation to their antioxidant and anti-cholinesterase effects. (2025). Scientific Reports (Nature).
29. Water Lily (Nymphaea nouchaliBurm. f): An Ancient Treasure of Food and Medicine. ResearchGate.

Table 2. Qualitative phytochemical screening of selected aquatic medicinal plants (+ = detected; ± = detected in some studies or plant parts only; - = not detected).

Species	Alkaloids	Flavonoids	Tannins	Saponins	Phenols	Terpenoids/Steroids
Nelumbonucifera	+	+	+	+	+	+
Eichhorniacrassipes	-	+	+	+	+	+
Ipomoea aquatica	+	+	+	±	+	+
Nymphaea nouchali	+	+	+	+	+	+
Centellaasiatica	±	+	+	+	+	+
Spirulina platensis	-	+	±	-	+	±

Table 1. Comparative total phenolic content (TPC), total flavonoid content (TFC) and DPPH radical-scavenging IC50 values reported for selected aquatic medicinal plants.

Species	Plant part / extract	TPC (mg GAE/g)	TFC (mg QE or RE/g)	DPPH IC50	Source
Nelumbonucifera	Leaf, methanolic	147.63 ± 2.32*	41.86 ± 1.07*	514.36 µg/mL	Sivarajan et al., 2015, PMC4340789
Nelumbonucifera	Seed, hydro-alcoholic	7.61% w/w (TPC)	—	6.12 ± 0.41 µg/mL	ScienceDirect, 2005
Eichhorniacrassipes	Leaf, hydro-methanolic	491.2 ± 31.9	76.8 ± 7.8**	Not reported (AAE basis)	Brieflands JJNPP, 2021
Eichhorniacrassipes	Flower, methanol	Not reported	Not reported	35.83 ppm	Baehaki et al., Pharmacogn. J., 2022
Ipomoea aquatica	Whole plant, methanolic	142.43	43.06 (RE/g)	122 µg/mL (DPPH)	PMC10772144, 2023
Ipomoea aquatica	Crude extract (fish-feed study)	Not reported	Not reported	149.30 ± 1.43 µg/mL	Roy et al., 2022, Wiley AFF2.56
Nymphaea nouchali	Seed, hydro-alcoholic	179.56 ± 1.59 (GE/g)	23.55 ± 1.46 (QE/g)	42.82 µg/mL	Parimala& Shoba, 2013, PMC3793162
Nymphaea nouchali	Flower, aqueous-organic	Not reported	Not reported	45.15 µg/mL	Nature Sci. Rep., 2025
Centellaasiatica	Stem, chloroform fraction	155.46 ± 0.52	345.17 ± 1.12 (QE/g)	15.31 ± 0.32 µg/mL	Clin. Phytosci., 2023
Centellaasiatica	Leaf, aqueous	286 mg/100 g	36.1 mg/100 g	31.25 µg/mL	MDPI IJMS, 2009
Spirulina platensis	Dry biomass	40.45	Not reported	Not directly comparable (% basis)	IMR Press IJP, 2015
Spirulina platensis	Phycocyanin extract	Not applicable (pigment-protein)	Not applicable	38.15 ± 0.56 ppm	ScienceDirect, 2025

Reported per gram dry mass rather than per gram of crude extract.
Reported as flavonoid content in mg quercetin equivalents per gram dry weight. GAE = gallic acid equivalents; QE = quercetin equivalents; RE = rutin equivalents; AAE = ascorbic acid equivalents.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

स्वस्थ पारिवारिक संबंधों को बढ़ावा देने में पारिवारिक परामर्श की भूमिका: गृह विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

रीना गौतम*

* सहायक प्रोफेसर (गृह विज्ञान) शीएट पी.जी. महाविद्यालय, गहनी, वाराणसी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – परिवार मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं में से एक है। यह व्यक्ति को भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक समर्थन, देखभाल, पहचान, सामाजिक मूल्यों तथा पारस्परिक व्यवहार सीखने का अवसर प्रदान करता है। स्वस्थ पारिवारिक संबंध परिवार के सदस्यों के शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक तथा समग्र कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। किंतु वर्तमान समय में परिवार अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। बदलती पारिवारिक संरचना, आर्थिक दबाव, व्यावसायिक तनाव, बदलती लैंगिक भूमिकाएँ, पीढ़ियों के बीच अंतर, पालन-पोषण संबंधी कठिनाइयाँ, तकनीकी निर्भरता, संवाद की कमी तथा परिवार के सदस्यों की बदलती अपेक्षाएँ पारिवारिक संबंधों को प्रभावित कर सकती हैं। यदि इन समस्याओं का समय रहते समाधान न किया जाए, तो परिवार में तनाव, मतभेद, भावनात्मक दूरी और असंतोष उत्पन्न हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में पारिवारिक परामर्श स्वस्थ पारिवारिक संबंधों को विकसित करने का एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है।

पारिवारिक परामर्श परिवार के सदस्यों को अपनी समस्याओं और भावनाओं को व्यक्त करने, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने, संघर्षों का रचनात्मक समाधान खोजने तथा पारस्परिक सहयोग विकसित करने के लिए एक सुरक्षित एवं व्यवस्थित वातावरण प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गृह विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में स्वस्थ पारिवारिक संबंधों को बढ़ावा देने में पारिवारिक परामर्श की भूमिका का अध्ययन करना है। गृह विज्ञान एक बहुआयामी विषय है, जिसमें मानव विकास, परिवार संसाधन प्रबंधन, स्वास्थ्य, पोषण, सामुदायिक विकास तथा जीवन की गुणवत्ता जैसे क्षेत्र सम्मिलित हैं। इसलिए पारिवारिक परामर्श का गृह विज्ञान से गहरा संबंध है। प्रस्तुत अध्ययन में पारिवारिक परामर्श की अवधारणा, पारिवारिक संबंधों का महत्व, पारिवारिक संघर्ष के कारण, संचार, संघर्ष समाधान, पालन-पोषण, अंतरपीढ़ी संबंध, परिवार संसाधन प्रबंधन तथा परिवार कल्याण में गृह विज्ञान की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पारिवारिक परामर्श केवल संकट की स्थिति में उपचारात्मक उपाय नहीं है, बल्कि स्वस्थ, सहयोगी, सम्मानपूर्ण और सुदृढ़ परिवारों के निर्माण के लिए एक निवारक, शैक्षिक एवं विकासात्मक प्रक्रिया भी है।

शब्द कुंजी – पारिवारिक परामर्श, स्वस्थ पारिवारिक संबंध, गृह विज्ञान, पारिवारिक कल्याण, संचार, पारिवारिक समायोजन, संघर्ष समाधान, पालन-पोषण।

प्रस्तावना – परिवार मानव जीवन की आधारभूत सामाजिक इकाई है। व्यक्ति अपने जीवन के प्रारंभिक चरण में परिवार के माध्यम से भाषा, व्यवहार, सामाजिक मूल्य, जिम्मेदारी, सहयोग, भावनात्मक अभिव्यक्ति और पारस्परिक संबंधों को सीखता है। परिवार के भीतर संबंधों की गुणवत्ता बच्चों, किशोरों, वयस्कों और वृद्धों के विकास तथा कल्याण को प्रभावित करती है। एक सहयोगात्मक एवं स्वस्थ परिवार व्यक्ति को भावनात्मक सुरक्षा और कठिन परिस्थितियों में सहायता प्रदान करता है, जबकि लगातार होने वाले संघर्ष, संवाद की कमी, भावनात्मक सहयोग का अभाव और असमान जिम्मेदारियाँ तनाव एवं असंतोष उत्पन्न कर सकती हैं।

आधुनिक परिवारों की संरचना और कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। नगरीकरण, प्रवास, रोजगार के बदलते स्वरूप, तकनीकी विकास, आर्थिक दबाव, छोटे परिवारों की बढ़ती प्रवृत्ति, लैंगिक भूमिकाओं में परिवर्तन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती भावना ने पारिवारिक जीवन को प्रभावित किया है। ये परिवर्तन अपने आप में नकारात्मक नहीं हैं, बल्कि कई प्रकार के अवसर और स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। किंतु जब परिवार के सदस्य बदलती परिस्थितियों और अपेक्षाओं के साथ उचित समायोजन नहीं कर पाते, तब पारिवारिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

ऐसी परिस्थितियों में पारिवारिक परामर्श महत्वपूर्ण हो जाता है। यह एक ऐसी व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके माध्यम से परिवार के सदस्य अपनी समस्याओं को पहचान सकते हैं, अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझ सकते हैं और समस्याओं के रचनात्मक समाधान विकसित कर सकते हैं। पारिवारिक प्रणाली के दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति को उसके पारिवारिक संबंधों से अलग करके नहीं समझा जा सकता। परिवार के एक सदस्य के व्यवहार में परिवर्तन अन्य सदस्यों को भी प्रभावित कर सकता है।

गृह विज्ञान के दृष्टिकोण से परिवार केवल एक सामाजिक संस्था नहीं है, बल्कि मानव विकास, स्वास्थ्य, संसाधन प्रबंधन और जीवन की गुणवत्ता से संबंधित महत्वपूर्ण क्षेत्र है। गृह विज्ञान एक बहुविषयक विषय है जिसमें मानव विकास, परिवार संसाधन प्रबंधन, स्वास्थ्य, पोषण और सामुदायिक विकास आदि सम्मिलित हैं। अत: पारिवारिक परामर्श गृह विज्ञान के उद्देश्यों

को पूरक बनाता है।

पारिवारिक परामर्श की अवधारणा एवं अर्थ – पारिवारिक परामर्श एक ऐसी व्यावसायिक सहायता प्रक्रिया है जिसके माध्यम से परिवार के सदस्य किसी प्रशिक्षित परामर्शदाता या चिकित्सक की सहायता से पारिवारिक, भावनात्मक, व्यवहारात्मक तथा संचार संबंधी समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने का प्रयास करते हैं। इसका उद्देश्य किसी एक व्यक्ति को समस्या का कारण मानना नहीं, बल्कि परिवार के सदस्यों के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं और संबंधों के स्वरूप को समझना होता है।

पारिवारिक परामर्श का प्रमुख उद्देश्य दोष निर्धारित करना नहीं है। इसका उद्देश्य परिवार के सदस्यों को ऐसा वातावरण प्रदान करना है जिसमेंवे अपनी समस्याओं को सुरक्षित रूप से व्यक्त कर सकें, एक–दूसरे को समझ सकें तथा समस्याओं के लिए सामूहिक एवं रचनात्मक समाधान खोज सकें।

पारिवारिक परामर्श विभिन्न परिस्थितियों में उपयोगी हो सकता है, जैसेकृसंचार संबंधी समस्याएँ, दांपत्य संघर्ष, पालन–पोषण संबंधी कठिनाइयाँ, पीढ़ियों के बीच मतभेद, पारिवारिक तनाव, जीवन में बड़े बदलावों के साथ समायोजन, शोक, अलगाव और अन्य पारिवारिक समस्याएँ।

पारिवारिक प्रणाली सिद्धांत के अनुसार परिवार एक परस्पर जुड़ी हुई प्रणाली है। परिवार का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्यों को प्रभावित करता है और उनसे प्रभावित होता है। इसलिए किसी एक सदस्य की समस्या को समझने के लिए परिवार की समग्र परिस्थितियों को समझना आवश्यक हो सकता है।

गृह विज्ञान के संदर्भ में पारिवारिक परामर्श का विशेष महत्व है क्योंकि गृह विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति एवं परिवार के जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाना है। पारिवारिक परामर्श परिवारों को प्रभावी संवाद, समस्या समाधान, भावनात्मक सहयोग, पालन–पोषण तथा संसाधन प्रबंधन से संबंधित कौशल विकसित करने में सहायता कर सकता है।

स्वस्थ पारिवारिक संबंधों का महत्व– स्वस्थ पारिवारिक संबंध विश्वास, सम्मान, भावनात्मक सहयोग, प्रभावी संचार, सहयोग, सहानुभूति, साझा जिम्मेदारी तथा समस्याओं के रचनात्मक समाधान पर आधारित होते हैं। ऐसे संबंध व्यक्ति को सुरक्षा, अपनापन और भावनात्मक स्थिरता प्रदान करते हैं।

स्वस्थ पारिवारिक संबंधों का महत्व विशेष रूप से कठिन परिस्थितियों में दिखाई देता है। बीमारी, आर्थिक कठिनाई, बेरोजगारी, शैक्षणिक समस्या, स्थान परिवर्तन, वृद्धावस्था तथा अन्य जीवन–परिवर्तनों के समय परिवार व्यक्ति को भावनात्मक एवं व्यावहारिक सहायता प्रदान कर सकता है।

बच्चों के विकास में स्वस्थ पारिवारिक संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। बच्चे परिवार से सामाजिक व्यवहार, भावनात्मक अभिव्यक्ति, सहानुभूति, जिम्मेदारी और संघर्ष समाधान के तरीके सीखते हैं। किशोरावस्था में भी परिवार महत्वपूर्ण रहता है, यद्यपि इस अवस्था में युवा अधिक स्वतंत्रता की इच्छा रखते हैं।

वयस्कों के लिए स्वस्थ पारिवारिक संबंध भावनात्मक स्थिरता, सहयोग, निर्णय लेने और तनाव से निपटने में सहायता करते हैं। वृद्ध सदस्यों के लिए परिवार भावनात्मक सहयोग, साथ और देखभाल का महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है।

समकालीन समाज में पारिवारिक संघर्ष के प्रमुख कारण– परिवार में संघर्ष अनेक सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और पारस्परिक कारणों से उत्पन्न हो सकता है। संचार की कमी, आर्थिक समस्याएँ, बदलती लैंगिक भूमिकाएँ, पीढ़ियों के बीच अंतर, पालन–पोषण संबंधी मतभेद, कार्य और परिवार के बीच असंतुलन तथा तकनीक का अत्यधिक उपयोग प्रमुख कारण हो सकते हैं। विवाह, बच्चे का जन्म, किशोरावस्था, स्थान परिवर्तन, बीमारी, सेवानिवृत्ति और मृत्यु जैसी जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ भी परिवार को नए प्रकार के समायोजन की आवश्यकता पैदा करती हैं।

पारिवारिक परामर्श के सैद्धांतिक दृष्टिकोण – पारिवारिक परामर्श विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित है। पारिवारिक प्रणाली सिद्धांत परिवार को परस्पर जुड़ी प्रणाली के रूप में देखता है। संरचनात्मक दृष्टिकोण परिवार की संरचना, भूमिकाओं और सीमाओं पर ध्यान देता है। रणनीतिक दृष्टिकोण समस्या को बनाए रखने वाले व्यवहारात्मक पैटर्न पर ध्यान देता है। मानवतावादी दृष्टिकोण सहानुभूति, स्वीकृति और सम्मान को महत्व देता है। संज्ञानात्मक–व्यवहारात्मक दृष्टिकोण विचारों, भावनाओं और व्यवहारों के संबंध पर ध्यान देता है। आधुनिक परामर्श में इन दृष्टिकोणों का परिवार की आवश्यकताओं के अनुसार समन्वय भी किया जा सकता है।

स्वस्थ पारिवारिक संबंधों में संचार की भूमिका – संचार स्वस्थ पारिवारिक संबंधों की सबसे महत्वपूर्ण आधारशिलाओं में से एक है। स्वस्थ संचार का अर्थ केवल बोलना नहीं है, बल्कि ध्यानपूर्वक सुनना, भावनाओं को समझना, उचित प्रतिक्रिया देना और दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण का सम्मान करना भी है। पारिवारिक परामर्श परिवार के सदस्यों को सक्रिय रूप से सुनने, स्पष्ट रूप से अपनी बात रखने, भावनाओं को उचित रूप से व्यक्त करने और प्रतिक्रिया देने की तकनीक सिखा सकता है। गृह विज्ञान में परिवार जीवन शिक्षा, अभिभावक शिक्षा और किशोर मार्गदर्शन के माध्यम से संचार कौशल विकसित किए जा सकते हैं।

पारिवारिक परामर्श एवं संघर्ष समाधान – परिवार में मतभेद होना स्वाभाविक है। स्वस्थ परिवार का उद्देश्य सभी मतभेदों को समाप्त करना नहीं, बल्कि उन्हें रचनात्मक ढंग से हल करना है। पारिवारिक परामर्श समस्या की पहचान, प्रत्येक सदस्य को अपनी बात रखने, सक्रिय सुनने, विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने, समाधान खोजने और परिणामों की समीक्षा करने में सहायता करता है। परामर्शदाता को निष्पक्ष, सम्मानपूर्ण और गैर–आलोचनात्मक वातावरण बनाए रखना चाहिए।

पारिवारिक परामर्श, पालन–पोषण एवं बाल विकास – पालन–पोषण पारिवारिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। माता–पिता बच्चों के भावनात्मक, सामाजिक, शैक्षणिक और व्यवहारात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। पारिवारिक परामर्श माता–पिता को अनुशासन, शिक्षा, मोबाइल उपयोग, मित्रता और स्वतंत्रता से संबंधित समस्याओं को समझने में सहायता कर सकता है। प्रभावी पालन–पोषण में स्नेह और उचित सीमाओं के बीच संतुलन आवश्यक है। गृह विज्ञान में मानव विकास और परिवार जीवन शिक्षा के माध्यम से अभिभावक शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं।

पारिवारिक परामर्श एवं अंतरपीढ़ी संबंध – अंतरपीढ़ी संबंधों से आशय दादा–दादी, माता–पिता और बच्चों जैसी विभिन्न पीढ़ियों के बीच संबंधों से है। अलग–अलग पीढ़ियों के विचारों में अंतर हो सकता है। करियर, विवाह, पहनावा, तकनीक, शिक्षा और जीवनशैली पर मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं। पारिवारिक परामर्श विभिन्न पीढ़ियों को एक–दूसरे के दृष्टिकोण को समझने और पारस्परिक सम्मान विकसित करने में सहायता करता है। भारतीय

परिवारों में इसका विशेष महत्व है।

परिवार संसाधन प्रबंधन एवं पारिवारिक कल्याण – परिवार संसाधन प्रबंधन गृह विज्ञान का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। परिवार के संसाधनों में धन के साथ समय, ऊर्जा, ज्ञान, कौशल, स्थान और सामाजिक सहयोग भी शामिल हैं। संसाधनों का उचित प्रबंधन न होने पर परिवार में तनाव उत्पन्न हो सकता है। पारिवारिक परामर्श परिवार के सदस्यों को संसाधनों और प्राथमिकताओं की पहचान करने में सहायता कर सकता है। गृह विज्ञान शिक्षा बजट निर्माण, समय प्रबंधन और घरेलू कार्यों के संगठन का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती है।

पारिवारिक परामर्श एवं परिवार कल्याण में गृह विज्ञान की भूमिका– गृह विज्ञान परिवार कल्याण के क्षेत्र में शिक्षा, अनुसंधान, जागरूकता और सामुदायिक विस्तार कार्यक्रमों के माध्यम से योगदान दे सकता है। मानव विकास, परिवार संसाधन प्रबंधन, स्वास्थ्य एवं पोषण, सामुदायिक विस्तार और अनुसंधान इसके प्रमुख क्षेत्र हैं। गृह विज्ञान विभाग परिवार कल्याण, पालन–पोषण, किशोर मार्गदर्शन और परिवार जीवन शिक्षा से संबंधित कार्यशालाएँ आयोजित कर सकते हैं। गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं, हिंसा या दुर्व्यवहार की स्थिति में योग्य विशेषज्ञों से सहायता लेना आवश्यक है।

निवारक दृष्टिकोण के रूप में पारिवारिक परामर्श – निवारक परामर्श का उद्देश्य गंभीर संघर्ष उत्पन्न होने से पहले परिवार को आवश्यक कौशल प्रदान करना है। विवाह–पूर्व परामर्श, अभिभावक शिक्षा, किशोर–अभिभावक कार्यक्रम, संचार कौशल, तनाव प्रबंधन, परिवार संसाधन प्रबंधन, अंतरपीढ़ी संवाद और कार्य–परिवार संतुलन इसके महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। यह दृष्टिकोण गृह विज्ञान के परिवार कल्याण संबंधी उद्देश्यों के अनुरूप है।

पारिवारिक परामर्श की चुनौतियाँ एवं सीमाएँ– पारिवारिक परामर्श के सामने सामाजिक कलंक, सेवाओं की सीमित उपलब्धता, परिवार के सभी सदस्यों की भागीदारी का अभाव, सांस्कृतिक एवं लैंगिक विविधता तथा गंभीर समस्याओं के लिए विशेष उपचार की आवश्यकता जैसी चुनौतियाँ हैं। हिंसा, शोषण, जबरदस्ती या गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की स्थिति में विशेषज्ञ सेवाओं की आवश्यकता हो सकती है। इसलिए परामर्श प्रशिक्षित एवं योग्य पेशेवरों द्वारा किया जाना चाहिए।

अनुसंधान पद्धति– प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं वैचारिक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। पारिवारिक परामर्श, पारिवारिक संबंधों, पारिवारिक प्रणाली, संचार, पारिवारिक कार्यप्रणाली तथा गृह विज्ञान से संबंधित पुस्तकों, शोध–पत्रों, शोध आलेखों और संस्थागत प्रकाशनों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य उपलब्ध साहित्य का विश्लेषण करके गृह विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक परामर्श की भूमिका को समझना है।

प्रमुख निष्कर्ष एवं चर्चा – अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रभावी संचार स्वस्थ पारिवारिक संबंधों का आधार है। परिवार एक परस्पर जुड़ी हुई प्रणाली है और एक सदस्य की समस्या पूरे परिवार को प्रभावित कर सकती है। पारिवारिक परामर्श संघर्ष समाधान में उपयोगी हो सकता है तथा इसका निवारक महत्व भी है। गृह विज्ञान परिवार को स्वास्थ्य, मानव विकास, संसाधन प्रबंधन, पोषण, पालन–पोषण और सामुदायिक जीवन से जोड़कर एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है। सफल परामर्श में सम्मान, सहानुभूति, सक्रिय सुनना, सहयोग और सांस्कृतिक संवेदनशीलता महत्वपूर्ण हैं।

सुझाव:

1. गृह विज्ञान विभागों में पारिवारिक परामर्श जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
2. परिवार जीवन शिक्षा को उच्च शिक्षा एवं सामुदायिक कार्यक्रमों में अधिक महत्व दिया जाए।
3. गृह विज्ञान विद्यार्थियों को संचार, पारिवारिक समायोजन और रेफरल प्रक्रिया का आधारभूत ज्ञान दिया जाए।
4. नियमित अभिभावक एवं किशोर मार्गदर्शन कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
5. परिवार के सदस्यों को सक्रिय सुनने और सम्मानपूर्ण संवाद के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
6. परिवार संसाधन प्रबंधन में बजट, समय प्रबंधन और घरेलू जिम्मेदारियों के उचित वितरण को शामिल किया जाए।
7. ग्रामीण एवं वंचित समुदायों में परामर्श सेवाएँ अधिक सुलभ बनाई जाएँ।
8. पारिवारिक परामर्श को सांस्कृतिक एवं लैंगिक रूप से संवेदनशील बनाया जाए।
9. गंभीर समस्याओं वाले परिवारों को योग्य विशेषज्ञों से जोड़ा जाए।
10. भारतीय संदर्भ में अधिक अनुभवजन्य शोध किए जाएँ।

निष्कर्ष– परिवार व्यक्ति के विकास और कल्याण का महत्वपूर्ण आधार है। स्वस्थ पारिवारिक वातावरण व्यक्ति को भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक सहयोग, संवाद, अपनापन और कठिन परिस्थितियों से निपटने की क्षमता प्रदान करता है। किंतु आधुनिक जीवन में बदलती पारिवारिक संरचनाएँ, आर्थिक दबाव, व्यावसायिक तनाव, तकनीकी विकास, पीढ़ियों के बीच अंतर, बदलती लैंगिक भूमिकाएँ तथा पालन–पोषण संबंधी चुनौतियाँ पारिवारिक संबंधों में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर सकती हैं। जब संवाद कमजोर हो जाता है और संघर्षों का समाधान नहीं होता, तो परिवार की एकता और सदस्यों के भावनात्मक कल्याण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

पारिवारिक परामर्श इन समस्याओं से निपटने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह परिवार के सदस्यों को अपनी समस्याओं और भावनाओं को व्यक्त करने, एक–दूसरे के दृष्टिकोण को समझने, अस्वस्थ व्यवहारात्मक पैटर्न की पहचान करने और संघर्षों के रचनात्मक समाधान विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। पारिवारिक परामर्श सक्रिय सुनने, सहानुभूति, भावनात्मक अभिव्यक्ति, सामूहिक निर्णय लेने और समस्या समाधान जैसे निवारक कौशल विकसित करने में भी सहायता करता है।

गृह विज्ञान के दृष्टिकोण से पारिवारिक परामर्श का विशेष महत्व है क्योंकि गृह विज्ञान व्यक्ति और परिवार के जीवन की गुणवत्ता को समग्र रूप से समझता है। परिवार के संबंध मानव विकास, स्वास्थ्य, पोषण, संसाधन प्रबंधन, पालन–पोषण, देखभाल और सामुदायिक जीवन से जुड़े हुए हैं। इसलिए गृह विज्ञान की शिक्षा एवं सामुदायिक विस्तार कार्यक्रमों में पारिवारिक परामर्श और परिवार जीवन शिक्षा को उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

अंततः स्वस्थ परिवार का अर्थ ऐसे परिवार से नहीं है जहाँ कभी कोई

मतभेद न हो, बल्कि ऐसे परिवार से है जो सम्मान, संवाद, सहयोग, सहानुभूति और समझदारी के साथ मतभेदों का समाधान करना जानता हो। पारिवारिक परामर्श और गृह विज्ञान शिक्षा का समन्वय मजबूत संचार, बेहतर पारिवारिक समायोजन, भावनात्मक सहयोग तथा जीवन की बेहतर गुणवत्ता को बढ़ावा दे सकता है। अत: पारिवारिक परामर्श को केवल संकट की स्थिति में अपनाई जाने वाली उपचारात्मक प्रक्रिया न मानकर निवारक, शैक्षिक, विकासात्मक और सहयोगात्मक प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Bowen, M. (1978). Family therapy in clinical practice. Jason Aronson.
2. Campione-Barr, N., Skinner, A., Moeller, K., Cui, L., Kealy, C., & Cookston, J. (2025). The role of family relationships on adolescents' development and adjustment during the COVID-19 pandemic: A systematic review. Journal of Research on Adolescence, 35(1), e12969.
3. Lebow, J. L., Chambers, A. L., Christensen, A., & Johnson, S. M. (2012). Research on the treatment of couple distress. Journal of Marital and Family Therapy, 38(1), 145–168.
4. Lebow, J. L. (Ed.). (2012). Handbook of clinical family therapy. Wiley.
5. Todd, E., Pond, R., & Coomber, K. (2025). Client perspectives of family therapy: A qualitative systematic review. Journal of Marital and Family Therapy, 51(3), e70024.
6. Van Es, C. M., El Khoury, B., van Dis, E. A. M., Te Brake, H., van Ee, E., Boelen, P. A., & Mooren, T. (2023). The effect of multiple family therapy on mental health problems and family functioning: A systematic review and meta-analysis. Family Process, 62(2), 499–514.
7. World Health Organization. (2022). The role of friends, family and the community in health. World Health Organization.
8. World Health Organization. (n.d.). Promoting adolescent well-being. World Health Organization.
9. Yerby, J. (1995). Family systems theory reconsidered: Integrating social construction theory and dialectical process. Communication Theory, 5(4), 339–365.
10. Thege, B. K., Petroll, C., Rivas, C., & Scholtens, S. (2021). The effectiveness of family constellation therapy in improving mental health: A systematic review. Family Process, 60(2), 409–423.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
April to June 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIV (54), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

Economic Evaluation of Ethanol Blending: A Study of Petrol Pricing in India

Anil Kumar* Shivani Singh**

*Assistant Professor, Department of Accounts & Law, Faculty of Commerce, K.R.(P.G.) College, Mathura
Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (U.P.) INDIA
** Research Scholar, Dept. of Commerce (Account & Law), (K.R.PG.) College Mathura,
Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (U.P) INDIA

Abstract: The given research study examines the relationship between the cost components of retail petrol prices, such as crudeoil, ethanol procurement price, price charged to dealers, and taxes levied by the government in India. The given research study compares the two time periods from 2013-14 to 2016-17 and 2021-22 to 2024-25, when ethanol blending with the petrol was minimal and when ethanol blending with the petrol was substantial. Secondary sources of data are utilized from the official websites of respected ministries, OMCs, and international organizations suchas MoPNG (Ministry of Petroleum and Natural Gas), NITI Aayog, Reserve Bank of India, IOC (Indian Oil Corporation), PPAC (Petroleum Planning and Analysis Cell), BPCL (Bharat Petroleum Corporation Limited), HPCL (Hindustan Petroleum Corporation Limited), World Bank, and International Energy Agency (IEA). Thefindings revealed that during the period from 2013-14 to 2016-17 crude oil prices sharply declined but the reduction in petrol price was very low and at the same time government levied higher taxes in the form of VAT and Excise duty on petrol which absorbed the benefit of low price of crude oil that can be passed to the consumer. In contrast,while crude oil prices increased from2021-22 to 2024-25, prices charged to dealersand the price of petrol decreased, while the ethanol procurement prices also increased from ₹ 52.92/L to ₹ 71.86/L, indicating that using ethanol may decrease the price of petrol, but the benefit is not passed to the customer, as it is absorbed through higher government taxes. The findings suggest that a more accurate assessment of the impact of ethanol blending on petrol prices would require detailed data on all cost components included before the price charged to dealers.Availability of such data would allow the individual contribution of ethanol procurement and blending to be separated from other components of petrol pricing and would therefore provide a more accurate estimate of its effect on the final petrol price.
Keywords: Cost Components of Petrol; Crude Oil Price; Ethanol Blending Policy; Ethanol Price; Ethanol Procurement Price; Excise Duty; Fuel Policy; Government Ethanol Policy; India; Petrol Price; VAT.

Introduction - India is one of the largest importers of crude oil in the world, and their import demand for crude oil is increasing year by year, like 234262 metric tonnes in 2023-24, 243225 metric tonnes in 2024-25, 245769 metric tonnes in 2025-26, and 60481 metric tonnes in the 1st quarter of 2026-27. Generally, from the 100 tonnes of crude oil, typical types of products we yield are LPG 4-6%, naphtha 8-10%, motor spirit (petrol) 14-18%, ATF 9-11%, high-speed diesel 38-42%, 3-6% fuel oil, 12-18% petroleum coke, bitumen and others. India imports a significant amount of crude oil because of limited crude oil production in some regions of Assam, Maharashtra, Rajasthan and Gujarat. However, after refining the imported crude oil, India exports a significant amount of petroleum products. In 2025-26 petroleum product exports (61,427 million tonnes) exceeded the petroleum product we import (46,193 million tonnes). Blending of ethanol into the petrol is not an overnight program, although it was formally launched in 2004 by the government of India, named the 'Ethanol Blended Petrol (EBP) Programme,' with the objective to reduce greenhouse gas emissions and crude oil imports and to improve farmers' income and energy security and to promote sustainable development. Ethanol is an eco-friendly biofuel produced from sugarcane juice, maize, sugarcane molasses, rice grain, damaged food grain, and other agricultural feedstocks. Indian ethanol industry shows remarkable progress in the production of ethanol over the last 10 years. Ethanol production capacity increased from 421 crores ltr to more than 2000 crore ltrs from 2014 to 2026, supported by the government implicit subsidies, interest subvention scheme and expansion of distillery capacity. In the same way, ethanol supply to OMCS (Oil Marketing Companies) increased from 38 crore L to over 1200 crore L from 2013-14 to 2025-26. As per the data available on the PBI report, it revealed that with the increasing supply of ethanol to OMCs, the blending of ethanol in petrol also increases, such as 8.1%

ethanol mixed with petrol in 2020-21; 10% ethanol-blended petrol in 2021-22; 12.1% ethanol-blended petrol in 2022-23; 14.60% ethanol-blended petrol in 2023-24; and 19.20% ethanol mixed with petrol in 2024-25. By April 1, 2026, the target date for 20% ethanol-blended petrol was 2030, but it was achieved 5 years earlier, by 2026. Today, in every 1 L of gasoline, 20% ethanol is blended, and Ethanol is procured at the price of 71.00 per L for domestically produced ethanol[1]. Ethanol blending reduces the import demand for crude oil (major factor), supports farmers' income, contributes to a clean environment, and promotes cleaner fuel. Despite this benefit, questions remain about whether ethanol blending in gasoline is actually beneficial for the consumer, who is the major stakeholder of this ethanol policy, as their cars are at the risk of a drop in fuel mileage, early malfunction of engine parts, and other components of the car. This study investigates who the real beneficiary of this blending policy is, whether it's the government, the ethanol distillery, or the common customer of blended petrol.

Review of literature

Kutas et al. (2007) examined government support provided to biofuels in the European Union through blending mandates, subsidies, tax concessions, and other incentives. The study highlighted that changes in blending mandates and fuel taxation can influence biofuel markets and may shift costs between governments and consumers. The study provides a useful policy perspective for examining the relationship between government interventions, ethanol blending, taxation, and petrol prices.

Pohit et al. (2009) examined international experiences of ethanol as a transport fuel and identified policy lessons relevant to India, with particular emphasis on Brazil. The study highlighted the potential of ethanol blending to reduce dependence on imported petroleum and improve energy security. However, challenges related to feedstock availability, land, infrastructure, institutional arrangements, and food-fuel competition were also identified. The study provides an important foundation for understanding the economic and policy implications of ethanol blending in India.

Babcock et al. (2010) analysed the effects of US ethanol policies, particularly the blenders' tax credit and import tariff, on taxpayers, consumers, producers, and fuel blenders. The study found that withdrawal of the blenders' tax credit could reduce ethanol production and shift the cost of meeting blending requirements from taxpayers towards fuel blenders and consumers. The findings demonstrate that fiscal incentives and ethanol policies can have significant implications for fuel markets and consumers.

Pokrivèák and Rajèaniová (2011) investigated the relationship among crude oil, gasoline, and ethanol prices using weekly data from 2000 to 2009. The study found a strong positive relationship between gasoline and ethanol prices, while the relationship between crude oil and gasoline prices was considerably stronger. The findings indicated that crude oil prices have a major influence on gasoline prices and are also transmitted to ethanol prices. This study provides a useful basis for examining the interaction between crude oil prices, ethanol prices, and petrol prices in India.

McPhail and Babcock (2012) examined the impact of US biofuel policies on corn and gasoline price variability. The study found that ethanol policies could reduce the price elasticity of demand for corn and gasoline, potentially increasing price volatility during supply shortages. The study indicates that biofuel policies can affect not only fuel prices but also their stability, which is relevant to the analysis of petrol prices under India's ethanol blending programme.

Knittel and Smith (2015) examined whether increased ethanol production resulted in lower gasoline prices in the United States. The study found limited evidence that ethanol use substantially reduced gasoline prices and questioned the strength of the commonly observed relationship between ethanol production and gasoline prices. The findings suggest that the effect of ethanol blending on fuel prices may depend on broader market conditions and policy mechanisms.

Lundberg et al. (2023) examined the impact of biofuel blending mandates on biofuel consumption, emission reductions, and fuel prices in EU member states during 2009–2020. The study found that blending mandates increased biofuel consumption and contributed to reductions in transport-sector emissions. However, no clear relationship was identified between biofuel consumption and fuel prices after excluding taxes, while crude oil prices had a substantially greater influence on fuel prices. The study suggests that the effect of ethanol blending on petrol prices should be assessed along with other major determinants of fuel prices.

Janda et al. (2024) examined the effect of different ethanol blending levels on gasoline prices in the United States. The study found that higher ethanol blending levels generally resulted in lower gasoline prices. The findings indicate that ethanol blending policies can influence fuel prices and may benefit consumers, retailers, producers, and policymakers. The study provides a contemporary basis for examining whether increased ethanol blending has a similar impact on petrol prices in the Indian market.

Statement of the Problem: Although ethanol blended with petrol is able to reduce the crude oil demand, enhance the energy security, improve the foreign reserve, improve the environment, and increase the farmers' wealth, despite all these benefits, one point remained unanswered about the real benefit of ethanol blending: whether the ethanol blending policy is really beneficial for the consumer.

Objectives of the Study: To examine whether the ethanol blending policy is really beneficial for the consumer

Sources of Data: Secondary sources information utilizes from various sources available on the official websites of respected ministries, OMCs, and international organizations. They are as follows: Ministry of Petroleum and Natural Gas (MoPNG), Petroleum Planning and Analysis Cell (PPAC), NITI Aayog, Reserve Bank of India, Indian Oil Corporation, Bharat Petroleum Corporation Limited, Hindustan Petroleum Corporation Limited, World Bank, International Energy Agency (IEA).

Methodology and Tools for Data Analysis: The given research study is descriptive and analytical in nature and Collected data from various official website of government about the policy of ethanol blending in petrol, price calculation of ethanol blended petrol will be analysed with the help of statistical tool like percentage analysis, average analysis, ratio analysis.

Crude Oil → Refinery → Refined Petrol → Ethanol Procurement → Ethanol Blending (E20) → Depot Price → Marketing Margin → Dealer Commission → Central Excise Duty → State VAT → Retail Petrol Price

Data Analysis and Interpretation

Table 1 & 2 (see in last page)

The tables, table no. 1 and table no. 2, represent the data related to the petrol price composition of two different time periods. Table one represents the data from 2021-22 to 2024-25, when the ethanol blending policy is implemented up to 20% ethanol with gasoline, and Table two represents the data from 2013-14 to 2016-17, when the ethanol blending amount is negligible with gasoline. Both the tables show the same component of the cost of petrol and show how the retail petrol price is derived from different cost components and charged to the customers. The cost components of petrol are as follows: cost of crude oil, price charged to dealers, dealers' commission, excise duty on petrol, and VAT on petrol. The cost component between crude oil and the price charged to dealers is not given officially by the government in the public domain. Some third-party data is available on the internet, which is as follows: crude oil, refinery, refined petroleum, ethanol procurement, ethanol blending (E20), depot price, and marketing margin. As this data is not available officially on any government reports, therefore, we are not including these costs in the calculation of retail prices of petrol. The one of the objectives to introduce the ethanol policy is to reduce the price of petrol and give its benefit to the consumer. The above two tables compare the retail prices of petrol charged by the government to the customers when EBP is implemented up to 20% and the ethanol amount blended with the petrol is minimal. Table no. 1 shows Crude oil cost per liter from 2021-22 to 2024-25 are ₹ 37.1, ₹ 47.1, ₹ 43.01 and ₹ 41.7; highest in 2022-23 while the table 2 shows the crude oil cost from 2013-14 to 2016-17 are ₹ 65, ₹ 51.5, ₹ 30.3 and ₹ 31.9; highest in 2013-14. According to data given in the above table, when ethanol blending in petrol is minimal, crude oil prices are highest in 2013-14, ₹ 65/L, and on the other hand, when blending is 12.10%, crude oil prices are highest in 2022-23, ₹ 47.1/L. But the retail petrol prices of both time periods have a significant difference: when crude oil is ₹ 65/L, the retail petrol price is ₹ 72.40/L, and when the crude oil price is ₹ 47.10/L, then the retail petrol price is ₹ 96.72/L. Cost component price charged to the dealer when the crude oil prices are highest during both the period is ₹ 49.06 in 2013-14 when ethanol blending is minimal and ₹ 58.07 when ethanol blending is 12.10%. Data shows that even after blending 12.10% of ethanol with the petrol, the price charged to the dealer is more in comparison when ethanol blending is minimal. In percentage terms, the crude oil cost is 38.29% lower when the Ethanol Blended Petrol (EBP) level reaches 12.10%, compared with the period when ethanol blending was minimal (up to 1.5%). However, the price charged to dealers is 18.36% higher at the 12.10% EBP level than under the minimal ethanol-blending policy. Thus, instead of decreasing with the increased blending of ethanol, the price charged to dealers actually increased. This indicates that, up to the 12.10% EBP level, there is no apparent reduction in the dealer-level cost of petrol attributable to ethanol blending. Now we compare the cost of petrol after price charge to dealer. Again, we consider the year 2022-23 and 2013-14 when crude oil trading at their highest price. Between retail price of petrol and price charged to dealer there are three components named as dealer commission, state VAT on petrol and center excise on petrol. In 2022-23, when EBP 12.10% was implemented, the dealer commission was ₹ 3.76/l, state VAT on petrol was 19.30% on base price, and excise duty was ₹ 19.28/l, which will increase the cost by 66.55% on price charged to dealer and constitutes almost 36.18% of the retail price of petrol. In 2013–14, when ethanol blending under the EBP programme was at a minimal level, the dealer commission was ₹ 1.94 per litre, state VAT on petrol was 20% of the base price, and central excise duty was ₹ 9.48 per Liter. These components together increased the price by ₹ 47.57 per litre and accounted for 32.23% of the retail price of petrol. In comparison, when the EBP level increased to 12.10%, the total cost added to the price charged to dealers increased by 66.55%, compared with 47.57% under the minimal EBP level. This comparison reveals that, at the 12.10% EBP level, more proportion of the price charged to dealers was added through taxes, dealer commission, and other applicable charges. Consequently, the higher EBP level was associated with a higher retail price of petrol, making petrol more expensive for consumers than during the period of minimal ethanol blending.

Finding and conclusions- The given research study examines the relationship between the cost components of retail petrol prices, such as, ethanol procurement price, crude oil, dealers commission, price charged to dealers, and taxes levied by the government in India, which changed significantly over the study period. Data shows that from 2013-14 to 2016-17 crude oil prices declined sharply from ₹ 65/L to ₹ 31.9/L, which is an approx. 50% decrease in crude oil price, but the petrol price does not fall to the same extent, declining only by 9.39% from ₹ 72.40/L to ₹ 65.60/L. Data also reveals that the price charged to dealers fell by 43.19% with the fall in crude oil prices, but the benefit of cheaper crude oil does not pass to the consumer, but this excess benefit is absorbed by the state and center government by way of taxes such as VAT on petrol increasing by 35% and excise duty levied by the center increasing by 126%. During this period, ethanol blending

was minimal, but OMCs were bearing the cost of ethanol blending with the petrol during the given period. The table representing data of the time period from 2021-22 to 2024-25 shows that crude oil prices increased from 37.10/L to 41.70/L, indicating a 12.39% increase in crude oil, but the price charged to dealers falls by 5.14% from 58.16 to 55.17, and gasoline prices decrease by 4.48% from 99.16/L to 94.72/L. That shows that even crude oil became costlier during the period, but the petrol price fell about 4.48%. When blending increases with petrol, it will make it cheaper, but the benefit does not directly pass to the consumer but is absorbed through higher government taxes. From the data interpretation, two periods are compared: the period when ethanol blending was minimal and the period when ethanol blending increased to 12.10%. When crude oil was at its highest point in both periods, the price charged to dealers had no significant difference, but the retail price of petrol showed a higher cost difference. India has increased ethanol blending substantially, especially after 2021–22, but this expansion has not been accompanied by fall in price of petrol. Study also highlighted that cost component before price charged to dealer have no significant effect on retail price of petrol but cost component may have greater role in deciding the retail petrol price whether follow minimal ethanol policy or E10, E20 ethanol blending policy.

References:-

1. Babcock, B. A., Barr, K. J., & Carriquiry, M. A. (2010). Costs and benefits to taxpayers, consumers, and producers from US ethanol policies.
2. Janda, K., Letovska, V., Sila, J., & Zilberman, D. (2024). *Impact of ethanol blending policies on US gasoline prices* (No. 32/2024). IES Working Paper.
3. Knittel, C. R., & Smith, A. (2015). Ethanol production and gasoline prices: a spurious correlation. *The Energy Journal*, *36*(1), 73-114.
4. Kutas, G., Lindberg, C., & Steenblik, R. (2007). *Biofuels—at what Cost?: Government Support for Ethanol and Biodiesel in the European Union* (pp. 14-25). Geneva: International Institute for Sustainable Development.
5. Lundberg, L., Sanchez, O. C., & Zetterholm, J. (2023). The impact of blending mandates on biofuel consumption, production, emission reductions and fuel prices. *Energy Policy*, *183*, 113835.
6. McPhail, L. L., & Babcock, B. A. (2012). Impact of US biofuel policy on US corn and gasoline price variability. *Energy*, *37*(1), 505-513.
7. Petroleum Planning & Analysis Cell. (2026). *Snapshot of India's Oil and Gas Data: Monthly Ready Reckoner (June 2026)*. Ministry of Petroleum and Natural Gas, Government of India. Petroleum Planning & Analysis Cell
8. Pohit, S., Biswas, P. K., Kumar, R., & Jha, J. (2009). International experiences of ethanol as transport fuel: policy implications for India. *Energy policy*, *37*(11), 4540-4548.
9. Pokrivèák, J., & Rajèaniová, M. (2011). Crude oil price variability and its impact on ethanol prices. *Agricultural Economics*, *57*(8), 394-403.
10. Press Information Bureau. (2026, July 5). *Ethanol blending in India: Policy evolution, key milestones and frequently raised concerns*. Government of India, Ministry of Information and Broadcasting. https://www.pib. gov.in
11. Press Information Bureau. (2026, July 5). *Ethanol blending in India: Policy evolution, key milestones and frequently raised concerns*. Government of India. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2281287

Table1

ESY/ Year	Crude Oil Price (₹/ Lequivalent)*	Pricecharged to dealers (₹/L)	Dealer Commission ₹/L	VAT on Petrol	Excise Duty On Petrol(₹/L)	Petrol Price(₹/L)	Ethanol Procurement Price (₹/L)	Blending % / Status
2013–14	≈₹65.0	≈49.06	1.94	20%	9.48	≈72.40	Marketdetermined	≈1.5%
2014–15	≈₹51.5	≈35–40	2	20%	≈10.70	≈63–67	₹ 48.50	2.30%
2015–16	≈₹30.3	35.71	2.07	20%	17.46	66.29	₹ 48.50	≈3.5%
2016-17	≈₹31.9	27.87	2.3	27%	21.48	65.6	₹ 39.00	≈2.1%

Table2

Ethanol Supply Year	Crude Oil Price (₹/litre)	Pricecharged to dealers (₹/litre)	Dealer commission on petrol (₹/L)	VAT on Petrol on Basic Price	Excise Duty on Petrol (₹/L)	Average Petrol Price (₹/Liter)/	Ethanol procurement price (₹)	Blending Percentage/ Status
2021-22	37.1	58.16	3.85	30%	Rs 27.98	99.16	52.92	10.00%
2022-23	47.1	58.07	3.76	19.40%	Rs 19.98	96.72	66.07	12.10%
2023-24	43.01	55.17	3.77	19.40%	Rs 19.98	96.72	71.86	14.60%
2024-25	41.7	55.17	4.30	19.40%	Rs 19.98	94.72	71.86	19.20%

इतिहास के पन्नों में स्थान खोजता छपोरा गढ़

डॉ. रामरतन साहू* ओंकार साहू**

* सह. प्राध्यापक (इतिहास) सी. व्ही. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.) भारत
** अध्ययनकर्ता (इतिहास) बिलासपुर (छ.ग.) भारत

शोध सारांश– छत्तीसगढ़ का इतिहास केवल उसके बड़े नगरों, राजवंशो और प्रसिद्ध पुरातात्विक स्थलों तक सिमित नहीं है बल्कि गाँव तथा स्थानीय क्षेत्रों में शासन करने वाले छोटे–छोटे शासकों, राजवंशो से भी यहाँ की इतिहास व संस्कृति समृद्ध होती है। इस राज्य में ऐसे ही कई प्राचीन कालीन स्थानीय शासको व शासन क्षेत्रो का अध्ययन आज तक इतिहासकारों की दृष्टि से अछुता रहा है। यह शोधपत्र ऐसे ही एक शासन क्षेत्र छपोरा गढ़ तथा उसकी राजधानी छपोरा ग्राम में उपलब्ध प्राथमिक साक्ष्यों जैसे एक बड़े दुर्ग/गढ़ की उपस्थिति ग्राम का व्यस्थित बसाहट, जातिगत अध्ययन, जनमानस मे प्रचलित बातों तथा धार्मिक सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर यहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक–सांस्कृतिक स्थिति का प्राथमिक अध्ययन है। यह शोधपत्र आने वाले समय में इस राज्य के इतिहासकारों को इस क्षेत्र के इतिहास से संबंधित विस्तृत अध्ययन तथा पुरातात्विक उत्खनन आदि द्वारा अन्य स्पष्ट अभिलेखीय साक्ष्यों को प्राप्त करने मे सहायक होगा।

प्रस्तावना – इतिहास प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर तात्कालीन समय की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन है। ये साक्ष्य साहित्यिक स्त्रोतों पुरातात्विक साक्ष्यों जिनमें प्राचीन सिक्को मुद्राओं तथा उत्खनन से प्राप्त स्थापत्यों व नगर नियोजनों आदि के रूप में देखा जाता है। मगर छत्तीसगढ़ में कई ऐसे प्राचीन गाँव हैं जिनकी ग्राम बसाहट व सांस्कृतिक मान्यताएँ उसके समृद्ध इतिहास को प्रतिबिम्बित करते हैं लेकिन दुर्भाग्यवश कारणों से ऐसे गाँव इतिहास के पन्नों में स्थान पाने से वंचित हो जाते हैं। इन्ही समृद्ध ऐतिहासिक गाँवों में एक है मेरा गाँव छपोरा , जिसे छपोरा गढ़ कहा जाना अनुचित नही होगा। मेरे इस गांव छपोरा गढ़ मे वे सभी प्राथमिक साक्ष्य उपलब्ध है जो किसी भी इतिहासकार को अध्ययन करने आकर्षित कर सकता है फिर भी दुर्भाग्यवश इतिहासकारों के अध्ययन से आज तक वंचित रहा है।

इस शोध पत्र में हम इन्ही प्राथमिक साक्ष्यों के आधार पर तथा जनमानस से कुछ अन्य साक्ष्यों का संग्रहण करते हुए इस गाँव के समृद्ध इतिहास का अध्ययन कर इस पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

परिचय– छपोरा गढ़ छत्तीसगढ़ राज्य के सक्ती जिले में स्थित कुछ बड़े ग्रामो मे से एक है। यह सक्ती जिला मुख्यालय से लगभग 30 किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा मे SH– 16 दिपका से पदमपुर मार्ग (उड़ीसा सीमा तक) मे स्थित है। यह गाँव महानदी की सहायक बोरई नदी के तट में डुबान क्षेत्र से एक सुरक्षित स्थल मे बसा है। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 4000 के लगभग थी लेकिन वर्तमान मे यहाँ की जनसंख्या लगभग 5500 के आस पास हो गई है। यहाँ वर्तमान मे लगभग 12 जातियों के लोग निवासरत है।

(1) प्राथमिक उपलब्ध साक्ष्य : अध्ययन का आधार

(1.1) गढ़/किला के साक्ष्यों की उपलब्धता – गांव में गढ़ टिकरा के नाम से जाना जाने वाला दलहन फसलों की खेती के लिए प्रयुक्त उच्चभूमि जिसका क्षेत्रफल लगभग हेक्टेयर है। यह क्षेत्र चारो ओर से जल की खाई से घिरी थी जिसके साक्ष्य आज भी मौजूद हैं लेकिन अब इसके संकट का खतरा बना हुआ। इसी गढ़ मे कुछ अन्य साक्ष्य जो जन मानस से चर्चा करने पर प्राप्त हुई कि पहले इस क्षेत्र में स्थित ठाकुर देव के स्थल के आस पास पत्थर से निर्मित भवन के भग्नावशेष साक्ष्य उपलब्ध थे जो वर्तमान में समाप्त हो गए हैं। एक अन्य बात कि गाँव के खगेश्वर साहू पिता परसदास (गौंटिया जी) द्वारा इस क्षेत्र में आरा मशीन स्थापित करने के निर्माण कार्य के दौरान लगभग 2.5 मी. चौड़े नींव जिसमें बड़े–बड़े पत्थर प्राप्त होना बताया गया लेकिन इस क्षेत्र को पुरातत्व विभाग के नियंत्रणाधीन हो जाने के भय से इस बात को छुपा दिया गया।

(1.2) गाँव की बसाहट– बोराई नदी के डुबान क्षेत्र से दुर एक सुरक्षित क्षेत्र में इस गाँव को सुव्यवस्थित ढंग से बसाया गया था जहाँ लगभग 12 जाति के परिवारों को बसाया गया था। बस्ती में इन परिवार को इनकी सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति के आधार पर बसाया गया था जो यहाँ की सामाजिक स्थिति के बारे में अध्ययन करने में सहायक होते हैं।

इस बस्ती में तेली, कलार, बैरागी, गोड़, संवरा, सुनार और एक राउत परिवार का एक साथ बसाहट मध्य बस्ती में था जिसके प्रमाण आज भी उपस्थित है। इस बस्ती से पूर्व दिशा में क्रमश: नाई, राउत, धोबी, गाड़ा आदि जाति की बस्ती के साक्ष्य आज भी उपलब्ध हैं जो मुख्य गढ़ के परिधि के समान्तर घुमी थी। इन बस्ती से कुछ दुर पूर्व दिशा में चर्मकारो की बस्ती थी जिन्हे आजकल सतनामी जाति के नाम से जाना जाता हैं।

(1.2.1) तालाब– गाँव में अनेक तालाब निर्मित थे जिनमें से एक घरेलु कार्य के लिए, एक घरेलु कार्य के लिए, एक धार्मिक व सांस्कृतिक आयोजनों

के लिए निर्मित था। वहीं दूर खेत के क्षेत्रों में सिंचाई के लिए कुछ तालाब जैसे:- डुमरहा, बनडबरी, लाली डबरी प्रमुख थे। इसके अलावा चर्मकारों का अलग तालाब था। दीवान और रानी (देवानीन) के स्नान के लिए अलग तालाब था जिसे आज क्रमश: देवान डबरी और रानी तालाब के नाम से जाना जाता है। रानी तालाब को राजा द्वारा क्वार्ट्जाइट के छोटे-छोटे पत्थरों से सजाया गया था यही कारण है कि इसे पत्थरी तालाब के नाम से भी जानते है।

(1.3) धार्मिक व सांस्कृतिक मान्यताएं- ग्राम देवी के रूप में माँ घाट गोसाईन दाई का विशेष महत्व इसके अलावा गाँव में प्राचीन काल से ही ठाकुरदेव, सांकर देवता, पाट देवता, सात बहिनिया आदि देवी देवताओं की पूजा होती आ रही है। खेतों व फसलो की रक्षा के लिए मुड़कट्टी व छातर देव की पूजा करने की मान्यता आज भी प्रचलित है। इन सब के अलावा तालाब तट मे एक प्राचीन शिव मंदिर भी मौजूद है।

(1.3.1) दीवान साहब से संबंधित सांस्कृतिक मान्यताएं - गाँवो में आज भी विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक आयोजनों मे दीवान साहब की पूजा की जाती है। जिनकी स्मृति गाँव के देवान डबरी के तट में आज भी स्थित है।

(1.3.2) राउत-राउताइन और बैगा की पूजा- गाँव मे आज भी राउत-राउताइन, जुर्रहा बैगा तथा परउ बैगा की पूजा यहाँ से सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करते है।

(1.4) जातिगत अध्ययन- इस गाँव मे तेली, कलार, चन्द्रनाहू, धोबी, सुनार, बैरागी, राउत, नाई, गांड़ा, गोंड, संवरा तथा सतनामी जिन्हे पूर्व में चर्मकार जाति के नाम से जाना जाता था यहाँ बसे हैं। इन जातियों का अध्ययन करने पर निम्न बातें स्पष्ट होती है -

(1.4.1) तेली जाति का अध्ययन- तेली जाति का अध्ययन करने पर प्राप्त होता है कि तेली जाति में कुछ विशेष गोत्र समुह के लोग यहाँ है जिनमे चौधरी गोत्र के लोग बीच बस्ती के मध्य में एक ऊँचे भूभाग में निवास करते थें जिनके परिवार को आज भी तेली गौंटियाँ के नाम से जाना जाता है।

एक अन्य गोत्र राउतराय जिन्हे आज भी गौंटिया परिवार के नाम से जाता है, इस गोत्र के लोगों के बारे मे अध्ययन करने पर पता चला कि इस गोत्र के लोग कुख्यत: नरसिंह नाथ (उड़ीसा) के आस-पास के क्षेत्र मे बहुतायत पाए जाते है वही छ.ग. मे सारंगढ़ बिलाईगढ़ जिले के कुछ ही चुनिंदा गांव में कुछ परिवार बसे हुए हैं।

इसी अध्ययन से पता चलता है कि छपोरा गढ़ का संबंध कल्चुरी शासन के प्रथम चरण से भी रहा होगा जहाँ पृथ्वीदेव-द्वितीय का सामंत ब्रह्मदेव के साथ मिलकर कलिंग राज्य पर आक्रमण किया और जटेश्वर नामक शासक को पराजित किया था। इसी आक्रमण के दौरान छपोरा गढ़ के दीवान भी सहयोगी रहे होंगे और उस क्षेत्र से राउतराय गोत्र के तेली यहाँ लाए गए होंगे। एक संभावना यह भी बनती है कि यह क्षेत्र सोमवंशीय शासकों से भी संबंधित रहा हो जिसके परिणाम स्वरूप राउतराय गोत्र के तेली यहाँ आए होंगे। इन्हे छपोरा में स्थान तेली गौटिया के घर के पूर्व दिशा में स्थित खाली जगह पर प्रदान किया गया होगा। दो अन्य गोत्र के तेली का भी निवास पुरानी बस्ती में मिलता हैं जिनसे ऊपर में वर्णित परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध था।

(1.4.2) कलार जाति का अध्ययन- कलार जाति का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट रूप से पता चला कि यहाँ कलार जाति के 3 परिवार थे जिनमें 2 परिवारो का प्राचीन कालीन निवास स्थान पुरानी बस्ती में प्राप्त हुए हैं तथा इन तीनों ही परिवार का गोत्र 'पीपल' है तथा इनका संबंध एक समीपस्थ ग्राम 'पिरदा' से जुड़ता है।

इन तथ्यो के आधार पर कई निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। छपोरा गढ़ के अंतर्गत पिरदा तथा उसके आस-पास के गाँव भी नियंत्रण में थे। दीवान द्वारा जब यह गढ़ ग्राम बसाया गया तब कलार जाति के 2 परिवार पिरदा गांव से यहाँ लाकर बसाए गए थे तथा तीसरा परिवार बाद में यहाँ बसने आया था।

(1.4.3) चन्द्रनाहु जाति का अध्ययन- चन्द्रनाहु जाति का अध्ययन करने पर प्राप्त हुआ कि गाँव मे चन्दनाहु जाति के 4 अलग-अलग गोत्र के परिवार निवास करते हैं। कश्यप गोत्र का प्राचीन निवास पुरानी बस्ती (बीच बस्ती) के पूर्व में प्राप्त हुआ। इसके अलावा 'गोरहा' और 'पाण्डेल' गोत्र का निवास पुरानी बस्ती के पश्चिम दिशा में मिलता है। एक अन्य गोत्र 'त्रिकान' का निवास मुख्य तालाब के किनारे मे प्राप्त होता है। जनमानस से चर्चा करने पर प्राप्त हुआ कि त्रिकान गोत्र के परिवार को किसी राजा के काल में कुछ वर्षो के लिए गौंटिया का पद प्रदान किया गया था।

(1.4.4) सतनामी जाति का अध्ययन- प्राचीन गढ़ छपोरा की बस्ती में सतनामी जाति जिन्हें प्राचीन काल में चर्मकार जाति के नाम से जाना जाता था का अध्ययन करने पर प्राप्त हुआ कि यहाँ इनके 4 प्रमुख गोत्रों के परिवारों का प्राचीन काल से संबंध प्राप्त होता है जिनमे खुँटे, कुर्रे, राय और बघेल प्रमुख थे इसके अलावा अन्य गोत्र के परिवार वैवाहिक संबंधों के बाद यहाँ बसे थे। इनकी एक पृथक बस्ती पुरानी बीच बस्ती के पूर्व में 'मंडल डबरी' के आस-पास प्राप्त होती है, जहाँ चर्मकार का कार्य किया जाता था।

(1.4.5) अन्य जातियों का अध्ययन- अन्य जातियों का अध्ययन करने पर प्राप्त हुआ कि इनके एक बैरागी या बावा जाति, नाई, धोबी, राउत, गाड़ा, सुनार, गोंड़ व संवरा जाति के एक-एक परिवारों का घर प्राप्त हुआ। हालांकि वर्तमान में वैवाहिक संबंधों के बाद इनके अनेक परिवार हो गए हैं।

(1.5) अन्य समीपस्थ गाँवों से संबंध- प्राचीन गढ़ ग्राम छपोरा के समीपस्थ गाँवों से संबंधों का अध्ययन करने पर डोमा, अचरीतपाली माहुलदीप, बासीन, बरपाली, देवगाँव घोघरी आदि प्रमुख है जहाँ से निम्न आवश्यकताएँ पूर्ति होती थी। घोघरी के लोहार जाति से औजार आदि की आपूर्ति डोमा तथा बरपाली के महंत (जुलाहा) परिवारों से बुने हुए कपड़ों की आपूर्ति होती थी, अचरीतपाली के गांड़ा जाति रक्षा कार्य मे सहयोग करते थे, बासीन व देवगाँव के कुंभकार यहाँ मिट्टी के बर्तन आदि पहुँचाते थे। इसके अलावा देवगाँव, रनपोटा, मिरौनी, नरियरा, मुड़पार आदि कुछ गाँवों से फल, फूल और सब्जी की आपूर्ति होती थी जिनका महत्व वर्तमान समय तक बना हुआ है।

इस गढ़ के अंतर्गत इन गाँवों के अलावा, नावापारा, कुरदा, कुरदी, पिरदा तथा उसके आस-पास के सभी गाँव अमलीडीह तथा बोराई नदी और महानदी दोआब के गाँवों सें लगान की वसुली की जाती थी।

(2) साक्ष्यों के आधार पर छपोरा गढ़ का ऐतिहासिक अध्ययन -अब तक के प्राप्त प्राथमिक साक्ष्यों के आधार पर छपोरा गढ़ के प्राचीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक-सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन करते हैं। प्रथम द्दष्टया यह स्पष्ट होता है कि छपोरा इस क्षेत्र के शासकों की राजधानी थी तथा इसे सुनियोजित तथा व्यवस्थित ढंग से बसाया गया था।

(2.1) राजनीतिक स्थिति- प्राचीन काल में इस क्षेत्र के लगभग 30-35 गांवों को किसी स्थानीय राजवंशों द्वारा शासन किया गया। इसी राजवंश

के किसी एक शासक द्वारा छपोरा को जो कि सभी दृष्टिकोण से सुरक्षित थी गाँव बसाकर राजधानी बनाया गया। इस राजधानी गाँव छपोरा को दैनिक गतिविधियों के लिए आवश्यक जातियों के परिवारों को लाकर बसाया गया था। इस गाँव की सुव्यवस्थित प्राचीन बस्ती तथा एक बड़े क्षेत्रफल में सुरक्षित किला/गढ़ का साक्ष्य इस बात को प्रमाणित करता है। संभवत: यहाँ गोड़ शासकों का शासन रहा हो।

प्रारंभ मे यह राज्य स्वतंत्र शासन करता रहा लेकिन मल्हार के उत्कर्ष के समय उनके क्षेत्र विस्तार अभियान के बाद यह क्षेत्र उसके अधीन हो गया होगा तथा यहाँ के राजा को 84 गाँवों के एक गढ़ का प्रमुख बना कर दीवान कहा गया होगा।

इस क्षेत्र से अब तक किसी अभिलेखीय या अन्य पुरातात्विक साक्ष्य जैसे सिक्के, मुद्रा आदि प्राप्त न होना 2 संभावनाए लाता है - प्रथम यह राजवंश तथा राज्य क्षेत्र अब तक इतिहासकारों की दृष्टि से बचा रहा हो जिससे कोई उत्खनन कार्य नही हुआ। दुसरा इस राजवंश के राजा के कुशल प्रशासन तथा राजा का जनता के प्रति और जनता का राजा के प्रति स्नेह से प्रभावित होकर कुछ शर्तो जैसे मुद्रा या सिक्के जारी न करना आदि के साथ शासन करने की अनुमति प्रदान की गई हो।

कल्चुरी काल में यह कल्चुरियों के नियंत्रण में था या सोमवंश के अथवा एक स्वतंत्र शासन क्षेत्र था यह किसी ठोस साक्ष्य के अभाव में स्पष्ट करना उचित नही होगा। लेकिन राउत राय गोत्र के तेली परिवार का उड़ीसा के नरसिंह नाथ क्षेत्र से यहाँ आकर बसना इस बात को रेखांकित करता है कि इसका संबंध किसी न किसी प्रकार से अन्य क्षेत्रों व राजवंशों से रहा होगा।

(2.1.1) पतन- संभवत: इस साम्राज्य का पतन राजा/ दीवान के नि:सन्तान मृत्यु हो जाने के कारण हुआ होगा। चुँकी दीवान राजा का जनता के प्रति प्रेम समर्पण तथा नि:स्वार्थ भाव से क्षेत्र की जनता की सेवा करना। यही कारण था कि उनकी जनता ने उनके स्नेह तथा सेवा भाव के कारण आज भी उन्हें गाँव के हर धार्मिक तथा सांस्कृतिक आयोजनों में देव रूप में पूजते हैं।

(2.1.2) पतन के बाद- दीवान राजा के नि:संतान मृत्यु हो जाने के पश्चात यह क्षेत्र उत्तराधिकार विहीन हो गया तथा इस क्षेत्र में अराजकता फैल गई होगी। इस अराजकता को दूर करने में इस गाँव के तात्कालीन प्रमुख चौधरी गोत्र के तेली गौटियाँ परिवार के प्रमुख असफल हुए होंगे जिसके बाद कल्चुरी शासकों ने गौंटिया का पद त्रिकान गोत्र के चन्द्रा परिवार को सौंपा होगा क्योंकि उन्होंने राजा व उनके मंत्री सहित अन्य सहयोगियों की सेवा की थी ऐसी किवदंती गाँव के एक वर्ग मे प्रचलित है। यह गौंटिया भी प्रशासन को सुचारू रुप से चलाने में असमर्थ रहा।

ऐसे समय में राउत राय गोत्र के प्रमुख तथा प्रभुत्वशाली व्यक्ति को गौंटिया बनाया गया जिसने क्षेत्र मे शांति व्यवस्था लाने में सफलता प्राप्त की तथा पुन: इस गाँव व क्षेत्र मे समृद्धि व खुशहाली कायम हो सकी। इस परिवार के मिसल व वंश वृक्ष का भागीरथी के नाम से शुरू होने के रूप में आज भी मिलता है।

(2.2) आर्थिक स्थिति- छपोरा गढ़ कृषि प्रधान गढ़ था। जहाँ लगान वसुली का कार्य दीवान के अधीन सहायक अधिकारियो द्वारा किया जाता था। गढ़ ग्राम छपोरा की बात करें तो यह बाढ़, सुखा आदि से सुरक्षित गांव था जो बोराई नदी के समीप डुबान क्षेत्र से दूर बसाया गया था। सिंचाई सुविधा के लिए कृषि भूमि क्षेत्रों में 3 तालाब बनवाए गए थे इसके अलावा बहरा भूमि तथा मुड़ा भूमि में भी कम मात्रा में पानी रोकने की व्यवस्था थी। इस गाँव के उत्तर की सम्पूर्ण भूमि उपजाऊ मानी जाती थी जहाँ मटासी भूमि में धान की पैदावार अधिक थी तो वहीं कन्हार मिट्टी में रबी फसलों मे गेहूँ आदि उपजाया जाता था। मुख्य तालाब के चारो ओर गन्ने की खेती कर गुड़ प्राप्त किया जाता था। तलवा टिकरा तथा अन्य टिकरा भूमि में उड़द तथा अन्य सब्जियों सहित तिल व अन्य दलहन व तिलहन फसल उपजाए जाते थे।

पशुपालन में गाय व भैंस प्रमुख रूप से पाले जाते थे जिन्हे चराने तथा दुध निकालने आदि कार्य के लिए राउत जाति के लोगों का बसया गया था।

यह गाँव आस पास के व्यवसायी व शिल्पी वर्ग के लागों के लिए प्रमुख बाजार का केन्द्र था। डोमा, बरपाली आदि ग्राम के महंत जाति के लोगों द्वारा वस्त्रों की बुनाई आदि का व्यवसाय तथा घोघरी के लोहार जाति के परिवारों द्वारा औजार निर्माण का कार्य और देवगाँव के कुम्हार जाति द्वारा मिट्टी के बर्तन यहाँ विक्रय किए जाते थे।

(2.3) सामाजिक स्थिति- इस गढ़ ग्राम छपोरा को दैनिक गतिविधियों में सहायक लगभग सभी जातियों के साथ बसाया गया था। यहाँ वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था तथा जातिगत अस्पृश्यता मौजूद थी जिसे प्राचीन कालीन बस्तियों के बसाहट के आधार पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

यहाँ सभी जाति के लोग उनके जातिगत व्यवसाय में संलग्न थे जैसे तेली जाति के लोग तेल निकालने कलार जाति के लोग शराब निकालने तो वैरागी (वैष्णव) जाति के लोग धार्मिक अनुष्ठान व पूजन का कार्य करते थे। इसके अलावा राउत, नाई, धोबी तथा चर्मकार जाति के लोग भी जातिगत व्यवसाय करते थें। बीच बस्ती में बसे सिदार जो गोड़ व संवरा जाति के थे संभवत: राजा व दीवान के सैन्य व अन्य कार्यो में सहयोग करते रहे होंगे।

पुरानी बस्ती के बीच मे बसे सिदार, तेली, कलार, सुनार, बैरागी, चन्द्रनाहु जाति के मध्य जातिगत भेदभाव नही था तथा ये आपस मे सहयोग के भाव से एक दुसरे के साथ जुड़े हुए थे। राउत व नाई जाति के लोग भी सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यो में सहयोग करते थे।

बीच बस्ती से थोड़ी दूर में बसे धोबी व गाड़ा जाति के परिवारों की बस्ती इस बात को स्पष्ट करती है कि इन वर्गो के साथ भेदभाव होता था। चर्मकारों की बस्ती इनसे भी दूर पूर्व दिशा में बसी है जो स्पष्ट करती है कि इस जाति से गाँव के अन्य सभी जातियाँ भेदभाव करती थी। हालाँकि जनसंख्या वृद्धि होने के साथ-साथ बस्ती का विस्तार होने के कारण जातिगत भेदभाव धीरे-धीरे कम हुआ लेकिन पूर्णत: समाप्त न हो सका।

एक बात और जो जातिगत अध्ययन से स्पष्ट होता है यहाँ प्रशासनिक क्षमता तथा योग्यता के आधार पर विभिन्न जाति के लोगों को प्रशासनिक कार्यो में राजा अथवा दीवान द्वारा शामिल कराया जाता था। इसके साथ ही ये सभी कृषि कार्य भी करते थे जो इनके आय वृद्धि तथा समृद्धि का आधार बनी।

(2.4) धार्मिक व सांस्कृतिक स्थिति- प्राचीन काल में यहाँ गोड़ राजाओं का शासन था अत: देवी माता के पूजन का महत्व विशेष रूप से होता था। ग्राम के दो मुख्य तालाब के मध्य में विराजित इस राजवंश की प्रमुख देवी माँ घाटगोसाईन दाई का पूजन आज भी होता है। इस देवी की महिमा व मान्यता आज भी आस-पास के सभी गाँवों मे है। इसके अलावा ग्राम देवता के रूप में ठाकुर देव, सांकरा देव, पाट देवता, मुड़कटी देवता तथा छातर देवता आदि के पूजा की परम्परा प्राचीन काल से लेकर आज तक चल रही है।

इसके अलावा दीवान राजा की पूजा दीवान साहब के रूप में आज भी दीवान डबरी के किनारे स्मृति स्तंभों की पूजा की जाती है। इसके किनारे पर ही रानी की पूजा सात बहिनिया माता के रूप में की जाती है।

गाँव के अन्य प्रतिष्टित व्यक्ति जिन्होंने गाँव की उन्नति समृद्धि व सेवा में अपना संपूर्ण जीवन लगाया ऐसे लोगो की भी पूजा आज भी सभी सांस्कृतिक व धार्मिक आयोजनो में की जाती है। इनमें परउ बैगा, जुरहा बैगा और राउत–राउताइन प्रमुख है।

(3) अध्ययन का महत्व एवं चुनौतियाँ– यह शोधपत्र प्राथमिक रूप से उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर किया गया अध्ययन है। अगर इस शोधपत्र पर ध्यान देते हुए राज्य के पुरातत्व विभाग एवं अन्य इतिहासकार इस गाँव व क्षेत्र पर आगे अध्ययन और उत्खनन करेंगे तो नि:संदेह यहाँ के इतिहास के संबंध में और अधिक स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त हो सकेगा।

इस विषय पर अध्ययन से संबंधित कुछ चुनौतियो में ऐतिहासिक धरोहरो का क्षय होना तथा तालाब आदि को राजनैतिक व आर्थिक लाभ के लिए समतल करना प्रमुख है। अन्य चुनौतियो में गाँव के नागरिको में जागरूकता का आभाव तथा गढ़ भुमि के अपने जमीन को पुरातत्व विभाग के अधीन हो जाने से स्वामित्व खोने की आशंका प्रमुख चुनौतियाँ है।

निष्कर्ष– प्राथमिक उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र मे प्राचीन काल मे किसी स्थानीय राजवंशो का शासन रहा होगा जो संभवत: राजगोड़ वंश से संबंधित रहे हो। इस वंश की राजधानी छपोरा गढ़ थी जिसे इस वंश के शासकों द्वारा सभी तरह से सुरक्षित स्थान में दैनिक गतिविधियों में सहायक जातियों के कुछ परिवारों के साथ बसाया गया था।

यह क्षेत्र आर्थिक रूप से समृद्ध तथा शांति प्रिय क्षेत्र था जहाँ कृषि कार्य राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। इसके साथ यहाँ स्थानीय व्यापार तथा वाणिज्य का भी चलन था। गढ़ ग्राम छपोरा मे सिंचाई सुविधा के लिए तालाब आदि खुदवाए गए थे।

सामाजिक व्यवस्था मे जातिगत भेदभाव तथा वर्ण व्यवस्था मौजूद थी लेकिन योग्यताओं के आधार पर इन्हें प्रशासन के कार्यो में शामिल किया जाता था। विभिन्न सामाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति जो गाँव व क्षेत्र के विकास में सहयोग किए उन्हें आज भी देव रूपों मे पूजा जाता है।

गोड़ राजवंशो मे देवी पूजा का विशेष महत्व होता है तथा इस क्षेत्र में माँ घाट गोसाईन दाई की पूजा प्राचीन काल से लेकर आज तक की जाती है इसके अलावा ठाकुर देव, सांकर देव, पाट देवता आदि की भी पूजा की जाती है।

इस क्षेत्र के राजा मल्हार के उत्कर्ष के काल मे गढ़ प्रमुख के रूप में 'दीवान' के रूप मे जाने गए। यहाँ के अंतिम दीवान जो एक न्यायप्रिय तथा जन–हितैषी शासक थे, नि:सन्तान मृत्यु को प्राप्त हुए और यहाँ दीवान राजा का शासन समाप्त हुआ लेकिन उन्हें आज भी यहाँ श्रद्धापूर्वक पूजा जाता है।

मौखिक साक्ष्य:

1. कपूर बाई साहू
2. रामाधार साहू
3. सागर लाल साहू
4. हितेश चन्द्रा
5. सुरेश डनसेना
6. सुखीराम कुर्रे

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. छत्तीसगढ़ का इतिहास – डॉ. रामकुमार बेहार
2. मल्हार – के. जी. बाजपेयी और एस. के. पाण्डेय
3. समग्र छत्तीसगढ़ – छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी

****